श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

अन्त्यलीला

॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

श्रीकृष्णचैतन्याम्नायचतुर्थाधस्तन-पुरुषराज श्रीरूपानुगवर अप्राकृतकविकुलतिलक

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् कृष्णदास कविराज-गोस्वामी-कृत

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

अन्त्यलीला

श्रीकृष्णचैतन्याम्नायाष्टमाधस्तनपुरुषवर्य-श्रीरूपानुगवर

ॐ विष्णुपाद सच्चिदानन्द श्रीश्रीमद् भक्तिविनोद ठाकुर-कृत

अमृतप्रवाह-भाष्य,

श्रीकृष्णचैतन्याम्नायनवमाधस्तनान्वयवर परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीरूपानुगवर्य

श्रीब्रह्ममाध्वगौड़ीय-सम्प्रदायैकसंरक्षकप्रवर

ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-कृत

श्रीस्वरूप-रूप-विरोधी-सकल-कुसिद्धान्त-निरासपर

अनुभाष्य

एवं भूमिका, विविध सूची एवं विवरण इत्यादि सहित

श्रीश्रीलसरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद के प्रियपार्षद एवं अधस्तन

समस्त भारत में श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ प्रतिष्ठान के प्रतिष्ठाता

नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज

के उपदेश एवं कृपानिर्देश से तथा श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ के वर्त्तमान आचार्य

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वल्लभ तीर्थ गोस्वामी महाराजजी के

उत्साह एवं प्रेरणा से

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविज्ञान भारती गोस्वामी महाराज

द्वारा हिन्दी भाषा में अनुवादित एवं सम्पादित

प्रकाशक

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ,
मथुरा रोड, वृन्दावन—२८११२१

प्रथम संस्करण
श्रीउत्थान एकादशी,
श्रीश्रीमद् भक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज
की आविर्भाव-तिथि
२२ नवम्बर, २०१५

प्राप्तिस्थान

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
मथुरा रोड, वृन्दावन
मथुरा (उ.प्र.)—२८११२१

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
सैक्टर—२० बी,
चण्डीगढ़—१६००२०

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
ईशोद्यान, श्रीमायापुर,
जिला-नदीया—७४१३१३

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
३३९९, हरि मन्दिर गली,
पहाड़गंज, नई दिल्ली—११००५५

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
१८७, डी. एल. रोड,
देहरादून—२४८००१

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
ग्राण्ड रोड,
पुरी (उड़ीसा)—७५२००१

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
श्रीजगन्नाथ-मन्दिर,
पो: अगरतला (त्रिपुरा)

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ
३५, सतीश मुखार्जी रोड,
कोलकाता—७०००२६

अन्त्यलीला की सूची

विषय		पृष्ठ
प्रकाशकीय वक्तव्य		i–iii
परिच्छेदों का विवरण		v–xiii
संस्कृत-श्लोक सूची		xv–xx
प्रयोजनीय अंश की वर्णानुक्रमिक पद्यसूची		xxi–xli
प्रथम परिच्छेद :	पुनः रूप-सङ्गोत्सव	१–४५
द्वितीय परिच्छेद :	श्रीहरिदास-दण्डरूप-शिक्षा	४७–७०
तृतीय परिच्छेद :	श्रीहरिदासठाकुर-महिमा-कथन	७१–१०७
चतुर्थ परिच्छेद :	पुनः सनातन-सङ्गोत्सव	१०९–१४५
पंचम परिच्छेद :	प्रद्युम्नमिश्र-उपाख्यान	१४७–१७३
षष्ठ परिच्छेद :	श्रीरधुनाथदास-मिलन	१७५–२१९
सप्तम परिच्छेद :	वल्लभभट्ट-मिलन	२२१–२४५
अष्टम परिच्छेद :	भिक्षा-सङ्कोच	२४७–२६१
नवम परिच्छेद :	गोपीनाथ पट्टनायक-उद्धार	२६३–२८३
दशम परिच्छेद :	भक्त-दत्तास्वादन	२८५–३०६

विषय		पृष्ठ
एकादश परिच्छेद :	श्रीहरिदास-निर्याण-वर्णन	३०७-३२०
द्वादश परिच्छेद :	श्रीजगदानन्द द्वारा तैलपात्र-भञ्जन	३२१-३४०
त्रयोदश परिच्छेद :	श्रीजगदानन्द का वृन्दावन-गमन	३४१-३६०
चतुर्दश परिच्छेद :	चटकगिरि-गमनरूप-दिव्योन्माद-वर्णन	३६१-३८२
पञ्चदश परिच्छेद :	उद्यान-विहार	३८३-३९८
षोड़श परिच्छेद :	कालिदास-प्रसाद एवं विरहोन्माद-प्रलाप	३९९-४२२
सप्तदश परिच्छेद :	कूर्माकारानुभवोन्माद-प्रलाप	४२३-४३४
अष्टादश परिच्छेद :	समुद्र-पतन	४३५-४५२
उनविंश परिच्छेद :	विरह-प्रलाप-मुख-संघर्षणादि-वर्णन	४५३-४७६
विंश परिच्छेद :	शिक्षाश्लोकार्थ-आस्वादन	४७७-५०१

प्रकाशकीय वक्तव्य

कलियुग पावनावतारी श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि और श्रीराधा-गोविन्ददेव की अपार करुणा एवं उनके अभिन्न प्रकाश विग्रह-श्रीधाम मायापुर ईशोद्यानस्थित मूल श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ और समग्र भारतव्यापी शाखामठ समूह के अध्यक्ष एवं प्रतिष्ठाता आचार्य परमाराध्यतम श्रीश्रीगुरुपादपद्म, नित्यालीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद् भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजजी की अहैतुकी कृपा एवं प्रेरणा से श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थरत्न के बंगला-भाषा से हिन्दी-भाषा में सुसिद्धान्तपूर्ण अन्त्यलीला को प्रकाशित करने का सौभाग्य नतमस्तक होकर वरण कर रहा हूँ। इसमें श्रीश्रीलभक्तिविनोद ठाकुर कृत अमृतप्रवाह भाष्य तथा नित्यलीला प्रविष्ट अस्मदीय परमगुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-कृत श्रीस्वरूप-रूपविरोधी सब प्रकार के कुसिद्धान्त-निरासपर अनुभाष्य, प्रत्येक अध्याय के कथासार आदि का हिन्दी अनुवाद किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बंगला-पयार का हिन्दी अनुवाद भी किया गया है।

हमारे परमगुरुदेव श्रीलप्रभुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने लाहौर विश्वविद्यालय के दर्शन-शास्त्र के प्रधान अध्यापक राजर्षि शरदेन्दु नारायण राय से दार्जिलिङ्ग में अगस्त्य विल्ला में पूछा था, ''यदि आपको कभी साधुसङ्ग के बिना स्वयं से कहीं पर अकेले ही रहना पड़े एवं यदि आपको अपने साथ एक ही ग्रन्थ को रखने के लिये कहा जाये, तो आप कौन-सा ग्रन्थ अपने साथ रखेंगे?'' राजर्षि शरदेन्दु राय ने उत्तर दिया— ''श्रीमद्भगवद्गीता। कारण, एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतम्'' [देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कहा हुआ गीताशास्त्र ही एकमात्र उत्तम शास्त्र है।], ''सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः। पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥'' [सम्पूर्ण उपनिषद-समूह गाय स्वरूप हैं, गोपालनन्दन श्रीकृष्ण उन का दूध दुहनेवाले हैं, अर्जुन बछड़ा है तथा महान् गीतामृत ही उस गाय का दुग्ध है और शुद्ध बुद्धिवाले श्रेष्ठ मनुष्य ही इसके भोक्ता (इस दुग्ध का पान करने वाले) हैं।] ''गीता सुगीता कर्त्तव्या, किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥'' [जो साक्षात् कमलनाभ भगवान् विष्णु के मुखकमल से प्रकट हुई है, उस गीता का ही भलीभाँति गान (अर्थसहित स्वाध्याय) करना चाहिये, अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है।], ''मलनिर्मोचनं पुंसां जलस्नानं दिने दिने। सकृत् गीताम्भसि स्नानं संसार-मलनाशनम्॥'' [जल में प्रतिदिन किया हुआ स्नान मनुष्यों के केवल शारीरिक मल का नाश करता है, परन्तु गीताज्ञानरूप जल में एक बार भी किया हुआ स्नान संसार-मल को नष्ट करनेवाला है।] (श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्यम्)

श्रीमन्महाप्रभु ने गोदावरी के तट पर जिस प्रकार श्रीरामानन्द राय से 'आगे कहो आर', 'आगे कहो आर' कहा था, उसी प्रकार श्रील प्रभुपाद ने भी राजर्षि शरदेन्दु नारायण राय से कहा,—''आगे कहो आर अर्थात् इससे आगे और कुछ बतलाइये।'' तब श्रीशरदेन्दु नारायण राय ने कहा,—''श्रीमद्भागवतम्।'' कारण धर्मः प्रोज्झित-कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्। श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवापरैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥'' (श्रीमद्भागवत १.१.२) [यह श्रीमद्भागवत ग्रन्थ आदि महामुनि श्रीनारायण के द्वारा चतुःश्लोकी रूप में निर्मित है। इसमें निर्मत्सर अर्थात् सब भूतों में दयाविशिष्ट व्यक्तियों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्षपर्यन्त छल रहित (कैतवशून्य) परमधर्म की व्याख्या हुई है। वही धर्म जीवका त्रिताप

नाशक, शिवद (कल्याणकारी) और यथार्थ वस्तु तत्त्वज्ञानप्रद है। जिस किसी समय सुकृतिवान पुरुष इसके श्रवण की इच्छा करते हैं-ईश्वर उसी समय अविलम्ब उनके हृदय में आकर बंदी बन जाते हैं। अब और किसी साधन या शास्त्र से क्या प्रयोजन?]

''यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपुरुषे। भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोक-मोह-भयापहा॥''(श्रीमद्भागवत १.७.७) [कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यास द्वारा रचित परमहंसों की संहिता श्रीमद्भागवत के श्रवणमात्र से पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति परम प्रेममयी भक्ति हो जाती है, जिससे जीव के शोक, मोह और भय नष्ट हो जाते हैं।]

''निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखाद् अमृतद्रवसंयुतम्, पिबतभागवतम् रसमालयम् मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥''(श्रीमद्भागवत १.१.३) [हे भगवत्प्रीति रसज्ञ अप्राकृत-रसविशेष-भावनाचतुर-भक्तवृन्द! यह श्रीमद्भागवत श्रीशुकदेव गोस्वामी के मुख से निःसृत होकर शिष्य-प्रशिष्य आदि परम्परा क्रम से स्वेच्छापूर्वक पृथ्वी पर अखण्डरूप से अवतीर्ण हुआ है। छिलका, गुठली आदि त्याज्य अंश से रहित, तरल पान योग्य इस श्रीमद्भागवत नामक परिपक्व फल को आप लोग मुक्त अवस्था में भी पुनः पुनः पान करते रहें।]

''अर्थोऽयम् ब्रह्मसूत्राणां, भारतार्थ-विनिर्णयः। गायत्रीभाष्यरूपौ असौ, वेदार्थ-परिवृंहितः॥'' (गरुड़ पुराण) [श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्र का अर्थ, महाभारत का तात्पर्य-निर्णय, गायत्री का भाष्य और समस्त वेदों के तात्पर्य का संवर्धन है।]

''सर्व-वेदान्त-सारं हि श्रीमद्भागवतम् इष्यते। तद्-रसामृत-तृप्तस्य ना अन्यत्र स्याद् रतिः क्वचित्॥'' (श्रीमद्भागवत १२.१३.१५) [समस्त वेदों के सार को ही श्रीमद्भागवत कहा जाता है। जो इस रस-सुधा का पान करके छक चुका है, वह और किसी पुराण-शास्त्र में नहीं रम सकता।]

''चारिवेद—दधि, भागवत—नवनीत। मथिलेन शुक, खाइलेन परीक्षित। (चै. भा. म. २१.१६) [चारों वेद 'दधि' हैं और श्रीमद्भागवत उसका 'नवनीत' है। श्रीशुकदेव गोस्वामी ने मथकर उस नवनीत को निकाला तथा परीक्षितजी को खिलाया है।]''

राजर्षि शरदेन्दु नारायण राय के मुख से ऐसा सुनकर श्रील प्रभुपाद ने उनसे कहा—''आगे कहो आर।'' तब उन्होंने कहा—''इससे आगे कहने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है।''

उस समय श्रीप्रभुपाद ने कहा—''चैतन्यचरितामृत।'' यदि सम्पूर्ण विश्व जलमग्न हो जाये, महाप्रलय उपस्थित हो तथा उस समय यदि मैं जीवित रहूँ और देखूँ कि समस्त शास्त्र भी जलमग्न होने जा रहे हैं तो मैं एकमात्र चैतन्यचरितामृत को ही छाती पर लेकर तैरता रहूँगा। कारण, एकमात्र चैतन्यचरितामृत के रहने से समस्त वैदिक ग्रन्थों का अभाव पूर्ण हो जायेगा, वास्तव में अभाव रहेगा ही नहीं।''

श्रीचैतन्य चरितामृत में श्रीमन्महाप्रभु के चरित्र की अद्भुत परिपाटी का अवलम्बन करते हुए श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने कभी तो पञ्चतत्त्वात्मक कृष्ण का उल्लेख करते हुए कृष्ण तत्त्व, राधा तत्त्व, नित्यानन्द (गुरु) तत्त्व, अद्वैत तत्त्व आदि का, तो कभी गुण्डिचा मन्दिर मार्जन एवं रथ-यात्रा के प्रसङ्ग के द्वारा व्रज की, व्रजवासियों की, व्रज की सेवा-परिपाटी की, व्रज की गोपियों की सर्वोत्तमता आदि की, तो कभी श्री रामानन्द राय के प्रसङ्ग के द्वारा क्रममार्ग के द्वारा समस्त शास्त्रों के तारतम्य मूलक विचार एवं परकीया रस की अद्भुत चमत्कारिता का वर्णन किया है, कभी रूप-शिक्षा, सनातन-शिक्षा आदि के माध्यम से सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन-तत्त्व का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण, तो कभी नामाचार्य हरिदास ठाकुर आदि के द्वारा श्रीहरिनाम की अद्भुत चमत्कारपूर्ण महिमा का स्थापन तथा सार्वभौम भट्टाचार्य और प्रकाशानन्द सरस्वती के प्रसङ्ग के द्वारा अद्वैतवाद का सम्पूर्ण रूप से खण्डन तथा

अचिन्त्य-भेदाभेद-वाद का स्थापन किया है। इस ग्रन्थ में श्रीमन्महाप्रभु के अनेकानेक प्रसङ्गों के द्वारा उनका स्वयं आचरण करके शिक्षा प्रदान करने रूपी आदर्श का जिस प्रकार वणन हुआ है वह कलियुग के जीवों के लिये अत्यन्त उपादेय है। सम्भवत: परमगुरुदेव श्रीप्रभुपाद ने इन कारणों से ही उपरोक्त Statement दी है।

''मितञ्च सारं च वचो हि वाग्मिता'' (चै.च. आदि १.१०६) [परिमित सारवाक्यमयी उक्ति को वाग्मिता कहते हैं।] नामक सूत्रानुसार अत्यन्त परिमित शब्दों में समस्त शास्त्रों का सार ही श्रीचैतन्यचरितामृत में वर्णित हुआ है।

मैं श्रीप्रभुपाद से हरिनाम प्राप्त तथा मेरे गुरुदेव से दीक्षा मन्त्र प्राप्त करने वाले श्रीमाधवानन्द प्रभु के साथ श्री राजर्षि शरदेन्दु नारायण राय के घर पर भिक्षा के लिये जाता था। मैंने वहीं पर उनके मुख से दो बार श्रील प्रभुपाद द्वारा कही गयी उपरोक्त बात को सुना। उनके मुख से श्रील प्रभुपाद द्वारा कही गयी बात को सुनकर उस पर दृढ़ विश्वास तो हुआ, किन्तु अनुभव नहीं। बाद में जब श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ को पढ़ा, तब भी श्रील प्रभुपाद के द्वारा कही गयी बात का सम्पूर्ण रूप में अनुभव नहीं हुआ। किन्तु अब जब मैंने चैतन्यचरितामृत का भाषान्तरण करना प्रारम्भ किया, एक-एक शब्द के अर्थ पर ध्यान देना पड़ा, इससे पग-पग पर नित्य-नूतन शिक्षणीय विषय प्राप्त हुआ, श्रीमद्भागवत आदि के भी गूढ़ श्लोकों का विस्तृत अर्थ सरल-सहज रूप में समझ आया, मुझे श्रील प्रभुपाद द्वारा कही गयी बात का साक्षात् अनुभव हो रहा है कि निश्चय ही अन्यान्य धर्म-ग्रन्थों का तो कहना ही क्या, वैदिक वाङ्मय के सर्वोत्तम ग्रन्थ श्रीमद्भागवत से भी श्रीचैतन्य-चरितामृत तुलनात्मक दृष्टिकोण से अधिक उपादेय है।

श्रीप्रभुपाद ने श्रीचैतन्यचरितामृत की भूमिका में लिखा है—''श्रीचैतन्यदेव की लीला के वर्णन में हम श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी के समस्त शास्त्रों में अगाध पाण्डित्य-प्रतिभा, दुरवगाह्य पारमार्थिक दर्शन में असामान्य प्रवेश और लोगों को समझाने की अभूतपूर्व सूक्ष्म-विचार-दक्षता एवं काव्य, पुराण, इतिहास, स्मृति और गणित में पारदर्शिता को देखकर विस्मित होते हैं। विशेषज्ञ व्यक्ति कहा करते हैं कि ऐसे अलौकिक साहित्य का पाठ करने के लिये पृथ्वी के विभिन्न राष्ट्रों के विद्वान किसी-न-किसी दिन बङ्गाली भाषा में अधिकार प्राप्त करने के लिये उन्मुख होंगे। श्रील कविराज गोस्वामी की भाव-माधुर्य-पराकाष्ठा जगत् के विभिन्न काव्य-संसद के लिये अत्यन्त लोभनीय कार्य है। मधुर रस के वर्णन में श्रील कविराज गोस्वामी की गम्भीरता को माप लेने वाले अधिकारी भी विरले ही हैं।

''श्रीचैतन्य चरितामृत के लेखक ने स्वरचित ग्रन्थ में एक साथ महाप्रभु की लीला के साथ परम-निगूढ़ तत्त्व-शास्त्र का अपूर्व समावेश प्रदर्शित करके पाठकों के लघुहृदय की जड़भोग-तात्पर्यपरता का ह्रास किया है।

''श्रीचैतन्यचरित-नित्य है एवं श्रीचैतन्यचरित का आदर्श जीव की भोगबुद्धि को नष्ट करके स्वरूप की नित्य-सेवा-प्रवृत्ति में प्रतिष्ठित कराता है।''

इस ग्रन्थरत्न के प्रकाशन में प्राण-अर्थ-बुद्धि-वाक्य आदि द्वारा जिन्होंने जो कुछ भी आनुकूल्य विधान किया है, उनके प्रति श्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी श्रीश्रीराधा गोविन्द प्रचुर कृपा-आशीर्वाद वर्षण करें, यही दीन सेवक की प्रार्थना है।

प्रूफ-संशोधन तथा मुद्रण काल में हुई त्रुटि-विच्युतियों को अदोषदर्शी सुधी पाठक-पाठिकागण कृपापूर्वक अपने गुणों द्वारा संशोधन करके इस ग्रन्थ का पाठ करें, यही निवेदन है।

अलमतिविस्तरेण

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेशप्रार्थी

त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिविज्ञान भारती

श्रीश्रीचैतन्य चरितामृत
अन्त्य लीला के परिच्छेदों का विवरण

प्रथम परिच्छेद—(१-४५)

स्वरूप गोस्वमी के द्वारा महाप्रभु के वृन्दावन से पुरी लौट आने के संवाद का प्रेरण, समस्त भक्तों सहित शचीदेवी की नीलाचल-यात्रा, शिवानन्द के द्वारा घाटी-समाधान और उनके साथ चलने वाले कुकुर का उपाख्यान, श्रीरूप का वृन्दावन आगमन एवं नाटक-रचना आरम्भ, अपने अनुज सहित श्रीरूप की गौड़ यात्रा और गौड़ में अनुपम की गङ्गा-प्राप्ति, वहाँ से रूप की पुरी यात्रा, सत्यभामापुर में स्वप्न में सत्यभामादेवी के उपदेश की प्राप्ति ही-ललितमाधव रचना का मूल सूत्रपात, पुरी में ठाकुर हरिदास के वासस्थान पर श्रीरूप का आगमन, प्रभु के साथ श्रीरूप का मिलन, भक्तों के साथ श्रीरूप का मिलन, प्रभु का कृपा रूपी आदेश ही विदग्ध-माधव की रचना का मूल सूत्रपात, श्रीरूप द्वारा नाटक का विभाग, रथ के समक्ष नृत्य के समय प्रभु द्वारा पठित 'यः कौमारहरः' श्लोक के अनुरूप श्रीरूप के द्वारा श्लोक लिखन, प्रभु के द्वारा रूपकृत श्लोक का पाठ, प्रभु के द्वारा स्वरूप के समक्ष श्लोक के वृत्तान्त के विषय में बतलाना, श्रीरूप के अक्षरों की प्रंशसा और श्रीरूपकृत नाममहिमा के श्लोक का पठन, श्रीरूप के गुणों का वर्णन, स्वरूप गोस्वामी के द्वारा श्रीरूपकृत श्लोक-पाठ, प्रभु के द्वारा राय रामानन्द और सार्वभौम आदि भक्तों सहित श्रीरूप के नाटक के मुखबन्ध आदि का श्रवण, राय के द्वारा रूपकृत नाटक के अङ्ग-प्रत्यङ्ग आदि का विचार करके उनके सर्वश्रेष्ठत्व का निर्धारण, वैराग्य-युक्-प्रेमभक्ति सिद्धान्त-रस-पाण्डित्य के विषय में राय रामानन्द के साथ सनातन की समानता का कथन, प्रभु की भक्ति के शास्त्रों के प्रचार की इच्छा, चातुर्मास्य के अन्त में भक्तों का गौड़ लौटना, दोल-यात्रा तक श्रीरूप का प्रभु के निकट अवस्थान, प्रभु के द्वारा श्रीरूप में शक्ति का सञ्चार और चार प्रकार की सेवाओं का दायित्व प्रदान, श्रीरूप का वृन्दावन गमन।

द्वितीय परिच्छेद—(४७-७०)

महाप्रभु का साक्षात् दर्शन, योग्य जीव में आवेश और आविर्भाव—यह तीन प्रकार का प्राकट्य, तीन-प्रकार के प्राकट्यों के फल का वर्णन, नकुल ब्रह्मचारी की देह में आवेश और प्रद्युम्न के समक्ष आविर्भाव के उपाख्यान का वर्णन, महाप्रभु के नित्य आविर्भाव के चार स्थान, श्रीकान्त के प्रति कृपा, प्रद्युम्न द्वारा नृसिंहानन्द नाम-प्राप्ति का कारण, प्रद्युम्न को महाप्रभु के द्वारा सर्वविष्णुतत्त्व के साथ अपने अभेद अथवा एक होने का प्रदर्शन, भक्तप्रेमवश्य भगवान्; भगवान् आचार्य के पास मायावादी भ्राता गोपाल भट्टाचार्य का आगमन और प्रभु के साथ मिलन, आचार्य के द्वारा स्वरूप गोस्वामी को मायावादभाष्य श्रवण करने का अनुरोध, स्वरूप के द्वारा मायावाद-दोष वर्णन और तिरस्कार तथा आचार्य के द्वारा भ्राता को अपने गाँव में भेजना, भगवान् आचार्य के आदेश से छोटे हरिदास के द्वारा माधवी देवी से तण्डुल की भिक्षा और छोटे हरिदास के प्रति प्रभु की दण्ड-प्रदान-लीला, माधवीदेवी का परिचय, प्रकृति-सम्भाषी वैरागी के प्रति प्रभु का व्यवहार, छोटे हरिदास की गति, प्रकृति-सम्भाषी का प्रायश्चित्त, छोटा

हरिदास-दण्ड-लीला प्रसङ्ग में सात शिक्षणीय विषय।

तृतीय परिच्छेद—(७१-१०७)

विधवा ब्राह्मणी के पुत्र के प्रति प्रभु का कृपा-स्नेह और प्रभु के प्रति दामोदर का वाक्य-दण्ड, दामोदर पर प्रभु की कृपा और नवद्वीप में शचीमाता के निकट जाने का आदेश, धर्म की रक्षा करने में निरपेक्षता आवश्यक, दामोदर के समक्ष माता के लिए अनेक संवाद प्रदान, माता के घर में प्रभु के आविर्भाव और भोजन लीला का दृष्टान्त, दामोदर के समक्ष किसी की स्वतन्त्रता नहीं, चैतन्यलीला अत्यन्त गम्भीर एवं रहस्यमयी, महाप्रभु-हरिदास-संवाद, प्रभु के द्वारा हरिदास के मुख के माध्यम से नाम, नामाभास और नामापराध के फल एवं उच्च सङ्कीर्त्तन के माहात्म्य का कथन, ठाकुर का बेनापोल में रहने से लेकर मायादेवी पर की गयी कृपा-लीला तक का संक्षिप्त विवरण, उसी के अन्तर्गत वैष्णवचरणाश्रयी की परमागति एवं वैष्णव-अपराधी के भयावह परिणाम का वर्णन, 'रामनाम' और 'कृष्णनाम' के माहात्म्य और वैशिष्ट्य का कथन।

चतुर्थ परिच्छेद—(१०९-१४५)

श्रीसनातन गोस्वामी का मथुरा-मण्डल से झारिखण्ड के पथ से नीलाचल आगमन, बाहरी दृष्टिकोण से सनातन के समस्त अङ्गों में कण्डुरसा (पीप निकलने वाली खाज) दिखलायी देना, सनातन के द्वारा देह के त्याग का सङ्कल्प, हरिदास के साथ मिलन, प्रभु के साथ मिलन, प्रभु के द्वारा सनातन का आलिङ्गन और अनुपम की गङ्गा-प्राप्ति के सवांद का ज्ञापन, सनातन के द्वारा अनुपम की राम-निष्ठा का वर्णन, प्रभु के द्वारा मुरारिगुप्त की राम-निष्ठा के दृष्टान्त का वर्णन, एकान्तिक भक्त और भगवान्, एकान्तिक भक्तवात्सल्य, प्रभु द्वारा सनातन को हरिदास के साथ रहने की आज्ञा, सनातन के देहत्याग-सङ्कल्प के निषेध को उपलक्ष्य करके मनोधर्म-चालित अनर्थयुक्त साधक को प्रभु के द्वारा कृष्ण-प्राप्ति के उपाय की शिक्षा-प्रदान, सिद्ध व्यक्ति की चेष्टाएँ साधक के लिये अनुकरणीय नहीं, गाढ़-अनुराग का वियोग असहनीय, कृष्ण-भजन में योग्यता का निर्देश, नामसङ्कीर्त्तन ही सर्वश्रेष्ठ भक्ति-अङ्ग, अपराधशून्य होकर निरन्तर नामसङ्कीर्त्तन के फल से कृष्णप्रेम की प्राप्ति, भक्त की देह प्रभु का निजधन, सनातन द्वारा प्रभु के चार प्रकार के मनोऽभीष्ट सम्पादन, हरिदास को प्रभु के द्वारा सनातन की देह के दायित्व को सौंपना, हरिदास के द्वारा जीव के लिये प्रभु के आनुगत्य की शिक्षा-प्रदान, प्रभु का हरिदास के द्वारा नाम-महिमा प्रचार, आचार एवं प्रचार, चातुर्मास्य के समय गौड़ीय और उड़िया भक्तों के साथ सनातन का मिलन, प्रभु के द्वारा सनातन की परीक्षा, मर्यादा-रक्षण ही साधु का भूषण, मर्यादा के उल्लंघन से इस लोक और परलोक का नाश, सनातन का जगदानन्द के साथ मिलन और उनके निकट अपने दु:ख का विज्ञापन, जगदानन्द द्वारा सनातन को वृन्दावन जाने का परामर्श प्रदान, सनातन का 'प्रभु-दत्त-देश'-वृन्दावन, सनातन द्वारा प्रभु के समक्ष दु:ख-निवेदन एवं जगादानन्द द्वारा प्रदत्त परामर्श का ज्ञापन, प्रभु का जगदानन्द के प्रति क्रोध-प्रकाश और सनातन के प्रति कृपा-गौरव पूर्ण उक्ति, अपने और पण्डित के प्रति प्रभु के स्नेह की तुलना से सनातन का दु:ख और प्रभु के द्वारा सान्त्वना, पात्र-विशेष के प्रति विषय-भगवान् की प्रीति का वैशिष्ट्य, वैष्णवदेह अप्राकृत, अप्राकृत राज्य में जड़ीय विधि-निषेध के विचार का अभाव, महाभगवत का सर्वत्र विष्णु-प्रतीति-वशत: जड़ीय-भेदज्ञान से उत्पन्न वैषम्यहीन सुदर्शन, भक्त और भगवान् में परस्पर का व्यवहार, वासुदेव विप्र की घटना, दीक्षा के समय कृष्ण के चरणों में आत्म-समर्पण करने वाले भक्त को चिन्मय देह की प्राप्ति, प्रभु के आलिङ्गन और स्पर्श के फल से सनातन की देह

में खुजली की समाप्ति, सनातन को उस वर्ष नीलाचल में रहने की आज्ञा, दोलयात्रा के बाद सनातन को वृन्दावन भेजना, प्रभु और सनातन का विच्छेद, वृन्दावन के मार्ग पर प्रभु की लीला-स्थलियों के दर्शन से सनातन में प्रेमावेश, सनातन और रूप का वृन्दावन में मिलन, श्रीरूप द्वारा धन का विभाग, रूप-सनातन के द्वारा गौर-आज्ञा का पालन, वृन्दावन में लुप्त-तीर्थों का उद्धार और सेवा-प्रकाश एवं ग्रन्थ रचना आदि कार्य, श्रीजीव का परिचय और ग्रन्थ-रचनादि कार्य, श्रीजीव के प्रति नित्यानन्द प्रभु की कृपा, श्रीकविराज गोस्वामी के चार शिक्षागुरु।

पञ्चम परिच्छेद—(१४७-१७३)

प्रभु से कृष्ण कथा को श्रवण करने की इच्छा रखने वाले प्रद्युम्न मिश्र को प्रभु के द्वारा रामानन्द के पास भेजना, रामानन्द का वृत्तान्त, मिश्र का रामानन्द की सभा में गमन और प्रत्यागमन, प्रभु के समक्ष मिश्र द्वारा रामानन्द के वृत्तान्त का वर्णन, प्रभु द्वारा मिश्र के समक्ष रामानन्द तत्त्व का विशेष रूप से प्रकाश, रामानन्द एकमात्र अद्वितीय अधिकारी, रागात्मिका भक्ति का पालन करने वाले नित्यसिद्ध रामानन्द, मिश्र को प्रभु के द्वारा राय के समीप शिक्षा प्राप्ति हेतु पुनः भेजना, श्रीरामानन्द द्वारा मिश्र के समक्ष कृष्णकथा कीर्त्तन, कृष्ण-कीर्त्तन करने वाले गुरु के प्रति मर्त्य बुद्धि करने की निषिद्धता, रामानन्द के मुख से वक्ता श्रीचैतन्य, महत्-पुरुष का स्वभाव, जगद्गुरु गौराङ्ग की लोक-शिक्षा का रहस्य, प्राकृत वर्णाश्रम और पाण्डित्य आदि सत्यधर्म के विषय में निर्णय करने योग्य नहीं हैं, पूर्वबङ्गवासी विप्रवेशी प्राकृत कवि का दृष्टान्त, स्वरूप के क्रोध का कारण—(१) विष्णु के प्रति जीव-बुद्धि नरक जाने का कारण, (२) ईश्वर का देह-देही-भेद निर्देशरूपी आपराध ही प्रमाद, स्वरूप गोस्वामी के द्वारा बङ्गदेशीय कवि को वैष्णव से भागवत-पढ़ने का उपदेश, मूर्ख अथवा विद्वेषी के द्वारा कृष्ण-निन्दोक्ति द्वारा भी शुद्धा सरस्वती की कृष्ण-सेवा, अक्षजज्ञानी इन्द्र, विद्वेषी जरासन्ध और शिशुपाल की निन्दा रूपी उक्ति का दृष्टान्त, दारुब्रह्म एवं जङ्गमब्रह्म के अभेदत्व का संस्थापन, कवि द्वारा वैष्णव चरणों में आत्मसमर्पण-हेतु महाप्रभु की कृपा-प्राप्ति, कवि द्वारा सन्यास ग्रहण और नीलाचल में वास।

षष्ठ परिच्छेद—(१७५-२१९)

विप्रलम्भ-दशा में राय की कृष्णकथा और स्वरूप का गान ही महाप्रभु का जीवन-स्वरूप; कृष्ण के लिये जैसे सुबलसखा, प्रभु के लिये भी वैसे रामराय, श्रीराधा के लिये जैसे ललिता-सखी, प्रभु के लिये वैसे स्वरूप-दामोदर, प्रभु के साथ रघुनाथ के मिलन का प्रसङ्ग, रघुनाथ के प्रति नित्यानन्द की अहैतुकी दया, चिड़ा-दधि-महोत्सव, नित्यानन्द की कृपा से ही चैतन्य-कृपा की प्राप्ति, रघुनाथ का गृह-त्याग और बारह दिनों में पुरी पहुँचना, मार्ग में केवल तीन दिन ही प्रसाद-सेवन, प्रभु और भक्तों के साथ रघुनाथ का मिलन, प्रभु के द्वारा कृष्णकृपा के माहात्म्य का वर्णन, प्रभु के द्वारा हिरण्य-गोवर्धन के चारित्र का कथन, नित्यसिद्ध रघुनाथ में विषय-भोग नहीं होने पर भी अनर्थयुक्त साधक को ही प्रभु द्वारा उपदेश, रधुनाथ को प्रभु द्वारा स्वरूप के हस्त में सौंपना, प्रभु के तीन रघुनाथ, 'स्वरूपेर रघु' नाम, प्रभु द्वारा रघुनाथ को समुद्र-स्नान और जगन्नाथ के दर्शन का आदेश, रघुनाथ की सिंहद्वार पर अयाचक वृत्ति, क्षेत्रमें निष्किञ्चन विरक्त भक्त के व्यवहार का वर्णन, प्रभु के द्वारा वैरागी अथवा गृह-त्यागी व्यक्ति के वैध और अवैध आचार का वर्णन, स्वरूप को शिक्षागुरू के रूप में वरण करने के लिये प्रभु द्वारा रघुनाथ को आदेश, स्वरूप ही साध्य-साधन तत्त्व के आचार्य, प्रभु के द्वारा रागानुगा-भक्ति का पालन करने वाले के आचार का वर्णन, शिवानन्द से रघुनाथ के कठोर वैराग्य की बात सुनकर उनके पिता के द्वारा मुद्राएँ और

सेवक भेजना, रघुनाथ के द्वारा मुद्रादि अस्वीकार, बाद में प्रभु के निमन्त्रण हेतु कुछ अंश स्वीकार, दो वर्षों के बाद प्रभु को निमन्त्रण देना बन्द, विषयी के अन्न के प्रति प्रभु के वचन, रघुनाथ के द्वारा सिंहद्वार-त्याग और माधुकरी भिक्षा को स्वीकार करने का वर्णन, प्रभु द्वारा रघुनाथ को गोवर्धन शिला और गुञ्जामाला प्रदान, प्रभु द्वारा रघुनाथ को शिला-पूजा-प्रणाली बतलाना, रघुनाथ द्वारा शिला में व्रजेन्द्रनन्दन-दर्शन, रघुनाथ का सर्वक्षण कृष्णभजन, छहों वेगों पर विजय प्राप्त करने वाले गोस्वामी रघुनाथ, गोस्वामी द्वारा केवल शरीर के निर्वाह के लिए आवश्थक वस्तु को स्वीकार करना, रघुनाथ के द्वारा 'सड़ा हुआ' प्रसादान्न-ग्रहण।

सप्तम परिच्छेद—(२२१-२४५)

वल्लभभट्ट के साथ प्रभु का मिलन, भट्ट के द्वारा 'युगधर्म-प्रचारक' आदि कहकर प्रभु की स्तुति, महाप्रभु द्वारा भट्ट के समक्ष अद्वैत, नित्यानन्द, सार्वभौम, रामानन्द, दामोदर स्वरूप, ठाकुर हरिदास आदि भक्तों की महिमा का कीर्त्तन, भट्ट का विस्मय और गर्वनाश, भट्ट की भक्त-दर्शन की इच्छा और सगण प्रभु को भिक्षा-प्रदान, भक्त-सन्यासियों का एक पंक्ति में बैठना, रथ-यात्रा के समय सात मण्डलियों में सात संकीर्त्तन करने वाले और चौदह मृदङ्ग, अलातचक्र की भाँति प्रभु का कीर्त्तन में भ्रमण, भट्ट का विस्मय, प्रभु के निकट भट्ट द्वारा स्वरचित भागवत की टीका के श्रवण हेतु आवेदन, प्रभु की उसमें उदासीनता, भट्ट की कृष्णनाम की व्याख्या को प्रकाशित करने की इच्छा और प्रभु की उसमें असम्मति, पण्डित-गोस्वामी के अनिच्छुक होने पर भी भट्ट के द्वारा उनके समक्ष कृष्णनाम की व्याख्या पठन, आचार्य आदि के साथ भट्ट का कुतर्क, आचार्य के द्वारा भट्ट के समस्त सिद्धान्तों का खण्डन, पति रूपी कृष्ण के आदेश से प्रकृति रूपी जीव के लिये सदैव कृष्णनाम-ग्रहण-विधि, नामोच्चारण के फल से कृष्ण के चरणों में प्रेमोदय, प्रतिष्ठा में कमी के कारण भट्ट का दुखित होना, भट्ट के द्वारा श्रीधर स्वामी की निन्दा और प्रभु द्वारा स्वामी-निन्दुक की वेश्याओं में गिनती, भट्ट के गर्व का चूर्ण होना और प्रभु के चरणों में शरण-ग्रहण, प्रभु द्वारा भट्ट को स्वामी के आनुगत्य में भागवत की व्याख्या करने और निरपराध-पूर्वक कृष्णनाम ग्रहण करने का आदेश, सत्यभामा के अवतार जगदानन्द का वाम्य-स्वभाव, रुक्मिणी के अवतार गदाधर पण्डित का दक्षिण-स्वभाव, प्रभु के द्वारा गदाधर के प्रेम की परीक्षा और गदाधर का भयभीत होना, प्रभु का 'गदाधर-प्राणनाथ' नाम, भक्तों के द्वारा 'गदाइ-गौराङ्ग' नाम का गान, भट्ट के द्वारा गदाधर पण्डित से मन्त्रदीक्षा प्राप्त करना।

अष्टम परिच्छेद—(२४७-२६१)

महाप्रभु का परमानन्द पुरी और रामचन्द्र पुरी के साथ मिलन, वैष्णव-सन्यासियों का साम्प्रदायिक व्यवहार, जगदानन्द के द्वारा भिक्षा-प्रदान, रामचन्द्र पुरी का निन्दुक स्वभाव, माधवेन्द्र पुरी द्वारा रामचन्द्र का त्याग एवं ईश्वर पुरी पर कृपा, अप्राकृत विप्रलम्भ-अवस्था में माधवेन्द्र गोस्वामी का अप्राकट्य, रामचन्द्र पुरी का स्वयं प्रभु को भी मर्त्य मानकर उनके दोष का अन्वेषण, प्रभु के द्वारा भिक्षा का सङ्कोच और भक्तों का रामचन्द्र के प्रति क्रोध, निजजन मानकर प्रभु द्वारा गोविन्द और काशीश्वर को अन्यत्र भोजन का आदेश, रामचन्द्र पुरी की प्रभु को वैराग्यशिक्षा-प्रदान करने की उद्दण्डता, जगद्गुरु लोकशिक्षक प्रभु के द्वारा सन्यासधर्म की विधि का निर्णय, अभक्त वर्ण-ब्राह्मण और पंक्ति में एकसाथ बैठने योग्य ब्राह्मण के घर में प्रभु के भिक्षा-ग्रहण की रीति का वैशिष्ट्य, रामचन्द्र पुरी के क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) के त्याग करने पर प्रभु द्वारा सङ्कोच का परित्याग, भक्तों का अत्यधिक आनन्दपूर्वक प्रभु को सन्तुष्ट करना, गुरु की उपेक्षा के फल से जीव का विष्णु-विरोधी अथवा पाषण्डी बनना।

नवम परिच्छेद—(२६३-२८३)

मनुष्य के वेश में देवताओं द्वारा प्रभु का दर्शन, भवानन्द के पुत्र गोपीनाथ की राजदण्ड से मुक्ति हेतु प्रभु के समीप लोगों की प्रार्थना, प्रभु की निरपेक्षता और गोपीनाथ का तिरस्कार, गोपीनाथ के दण्ड का मोचन, प्रभु द्वारा विषय-कथा के प्रति घृणा का ज्ञापन और आलालनाथ जाने की इच्छा, लोक-शिक्षा के लिये प्रभु की कठोर निरपेक्षता, काशीमिश्र द्वारा प्रभु को आश्वासन और स्तुति, जड़ीय इन्द्रियों के तर्पण हेतु विष्णु-भजन की चेष्टा मूर्खता, प्रभु की प्रीति की कामना रखने वाले ही शुद्ध भक्तगण, गोपीनाथ सकाम वणिक नहीं, गोपीनाथ के निधन के प्रयास को देखकर उनके हितैषी व्यक्तियों के द्वारा प्रभु की कृपा की याचना, शुद्ध-भक्त की संज्ञा और आचार—व्यवहार, प्रतापरुद्र के द्वारा अपने गुरु काशीमिश्र की नित्य प्रति पाद-सम्वाहन-सेवा, राजा के समक्ष मिश्र द्वारा गोपीनाथ के वृत्तान्त और प्रभु की आलालनाथ जाने की इच्छा का ज्ञापन, पुरी में प्रभु के अवस्थान हेतु राजा के द्वारा सबकुछ त्याग करने की प्रतिज्ञा एवं गोपीनाथ को पुनः राज-सम्मान प्रदान, पाँच पुत्रों सहित भवानन्द की प्रभु के चरणों में शरणगाति, गौर-स्मरण का मुख्यफल-'गौर-प्रीति' और गौणफल-'विषय सुख', गोपीनाथ के प्रति प्रभु का उपदेश।

दशम परिच्छेद—(२८५-३०६)

भक्तों के द्वारा नीलाचल में प्रभु के दर्शन हेतु गमन, दमयन्ती के द्वारा प्रदत्त झालि-सहित राघव का प्रभु के निकट गमन एवं गोविन्द के निकट समर्पण, राघव की झालि का विवरण, राघव और दमयन्ती की प्रगाढ़ प्रभु-प्रीति, नरेन्द्र सरोवर में भक्तों के साथ महाप्रभु की जलकेलि, सात-सम्प्रदायों में बेड़ा-सङ्कीर्त्तन का वर्णन, प्रभु का परिमुण्डा नृत्य, प्रभु द्वारा महा-ऐश्वर्य प्रकाश, महिषियों के साथ राजा द्वारा सङ्कीर्त्तन का दर्शन, गम्भीरा में गोविन्द के द्वारा प्रभु का पाद-सम्वाहन, प्रभु की देह पर बहिर्वास देकर गोविन्द का प्रभु को लाँघना एवं पाद-सम्वाहन आदि सेवा, गौर-कृष्णेन्द्रिय-तर्पण की इच्छा ही सेवक का एकमात्र लक्षित विषय, भक्तों के साथ प्रभु का गुण्डिचा-मार्जन, प्रभु द्वारा भक्तगण-प्रदत्त अनेक प्रकार के नैवेद्यों का भोजन, प्रभु का भक्तों सहित चातुर्मास्य-व्यतीत करना, प्रभुप्रिय विविध व्यञ्जन, सभी भक्तों द्वारा प्रभु को निमन्त्रण, शिवानन्द का प्रभु को निमन्त्रण, शिवानन्द के ज्येष्ठ पुत्र चैतन्यदास के प्रति प्रभु की कृपा का वर्णन, रामचन्द्र पुरी के भय से प्रभु का अर्धभोजन, गौड़ीय भक्तों का गौड़ में गमन एवं पुरीवासियों का पुरी में अवस्थान।

एकादश परिच्छेद—(३०७-३२०)

श्रीहरिदास-निर्याण-वर्णन-प्रसङ्ग, प्रभु का कृष्ण-विरह में काल-यापन, अप्राकृत विप्रलम्भ-लीला में प्रभु के दो सङ्गी, गोविन्द द्वारा हरिदास ठाकुर को प्रसाद देने के लिये जाना, ठाकुर की अप्रकट-काल की अवस्था, ठाकुर के साथ महाप्रभु का साक्षात्कार और ठाकुर के कुशल की जिज्ञासा, संख्यानाम कीर्त्तन के अभाव से उत्पन्न अपने दुःख का ज्ञापन करने पर महाप्रभु द्वारा सिद्धदेह ठाकुर को साधनाभिनय कम करने का आदेश, प्रभु के समक्ष ठाकुर द्वारा अपने आभिप्राय का ज्ञापन, प्रभु के द्वारा ठाकुर की वाञ्छापूर्ण, ठाकुर के सामने भक्तों सहित महाप्रभु का महाकीर्त्तन-आरम्भ, प्रभु के द्वारा अत्यधिक आनन्द-पूर्वक ठाकुर के गुणों का कीर्त्तन, ठाकुर द्वारा अपने सामने प्रभु के दर्शन एवं प्रभु का नामकीर्त्तन करते हुए ठाकुर का निर्याण, भीष्म की इच्छामृत्यु का स्मरण, ठाकुर की देह को गोद में लेकर प्रभु द्वारा नृत्य, ठाकुर को समुद्र पर लाना एवं समुद्र में स्नान कराना, समुद्र का महातीर्थ बनना, भक्तों द्वारा ठाकुर के चरणों के जल का पान, कीर्त्तन करते हुए समाधि-प्रदान करने की रीति, प्रभु द्वारा अपने श्रीकरकमलों

से ठाकुर को समाधि देना, समाधि-पीठ का निर्माण, भक्तों सहित कीर्त्तन-नृत्य करने के पश्चात् समुद्र स्नान, तत्पश्चात् समाधि-पीठ की परिक्रमा करके मन्दिर में आगमन, स्वयं प्रभु द्वारा प्रसाद की भिक्षा, निर्याण महामहोत्सव, उत्सव में जिस किसी भी प्रकार से योगदान करने वाले को 'कृष्णप्राप्ति' रूपी वर की प्राप्ति, हरिदास के गुणों का वर्णन और जयगान।

द्वादश परिच्छेद—(३२१-३४०)

महाप्रभु का प्रेम-विकार, प्रतिवर्ष की भाँति गौड़ीय भक्तों की सपरिवार प्रभु के दर्शन हेतु पुरी-यात्रा, शिवानन्द सेन द्वारा घाटी-समाधान, प्रभु के निषेध करने पर भी नित्यानन्द द्वारा यात्रा, शिवानन्द के नित्याानन्द के पदाघात रूपी सौभाग्य-प्राप्ति का वर्णन, श्रीकान्त का आभिमान और सबसे पहले प्रभु के समीप आगमन, गोविन्द के द्वारा श्रीकान्त को भगवद्-विग्रह के विषय में मर्यादा-विधि का उपदेश, अन्तर्यामी प्रभु के द्वारा श्रीकान्त के मनोगत भाव का ज्ञापन, श्रीकान्त द्वारा प्रभु के समक्ष पदाघात-संवाद को गुप्त रखना, पुत्रों सहित शिवानन्द के प्रति प्रभु की कृपा, परमानन्द अथवा पुरीदास द्वारा प्रभु के चरण के अँगूठे को चूसना, परमेश्वर मोदक का वृत्तान्त एवं उसके प्रति प्रभु की कृपा, स्त्री का नाम सुनने से जगद्गुरु लोक-शिक्षक प्रभु को सङ्कोच-बोध, गुण्डिचा-मार्जन और रथ के आगे नृत्य, भक्तों के साथ चातुर्मास्य-पालन, भक्तों के दु:ख में भगवान् का दु:ख, भक्तों को सान्त्वना और विदायी प्रदान, नित्यानन्द को गौड़ में रहने का आदेश, जगदानन्द का नवद्वीप में शची के पास जाना एवं प्रभु द्वारा प्रदत्त द्रव्य आदि प्रदान, जगदानन्द से शचीमाता द्वारा निमाइ की कथा का श्रवण, जगदानन्द के द्वारा चन्दन आदि तेल का संग्रह, पुरी में जाकर प्रभु को प्रदान, प्रभु द्वारा तेल के व्यवहार को अस्वीकार करने पर जगदानन्द का प्रणयाभिमानरोष, तैलभञ्जन और उपवास आदि, प्रभु के द्वारा जगदानन्द के कोप को शान्त करना, इस प्रसङ्ग के माध्यम से प्रभु द्वारा लोक-शिक्षा प्रदान।

त्रयोदश परिच्छेद—(३४१-३६०)

प्रभु का केले के शरला (केले के पेड़ की छाल) पर शयन, जगदानन्द का उससे मन:कष्ट एवं तलाइ और तकिया निर्माण, प्रभु के द्वारा उसे अस्वीकार करना और स्वरूप द्वारा केले के शरले से बनायी गयी शय्या को स्वीकार करना, जगदानन्द के मन को दु:ख, जगदानन्द द्वारा वृन्दावन जाने की इच्छा प्रकाश और प्रभु की अनुमति प्राप्ति, जगदानन्द को प्रभु द्वारा मार्ग के विषय में और ऐश्वर्यज्ञानहीन रागमार्गीय भक्तसङ्ग के विषय में सतर्क करना एवं सदैव सनातन के सङ्ग में रहने का उपदेश प्रदान, सनातन को प्रभु के आगमन का संवाद ज्ञापन और भजन स्थान को निर्वाचित करने का आदेश, पण्डित का काशी से होकर मथुरा गमन एवं सनातन के साथ मिलन, दोनों का एक साथ रहना, किन्तु पृथक अभ्यास वशत: पृथक भोज्य-वस्तु ग्रहण, मानद सनातन द्वारा पण्डित की सेवा, सनातन के सिर पर गेरुएँ वस्त्र को देखकर पहले पण्डित में सन्तोष, बाद में वस्त्र-प्राप्ति के कारण को जानकर सनातन के प्रति क्रोध और प्रहार की चेष्टा, वैसा देखकर सनातन में सन्तोष, रागमार्गीय परमहसं के लिये गेरुएँ वस्त्र पहनना निषिद्ध, जगदानन्द की पुरी यात्रा और प्रभु के लिये सनातन द्वारा दिये गये द्रव्य आदि ग्रहण, सनातन द्वारा प्रभु के उद्देश्य से स्थान का निर्वाचन और संस्कार-साधन, जगदानन्द का प्रभु के साथ मिलन और सनातन द्वारा प्रदत्त भेंट प्रदान, पीलु फल को खाने की लीला, देवदासी के गान के श्रवण से प्रभु में आवेश और गोविन्द द्वारा प्रभु को सावधान करना, गौरनागरवाद का खण्डन, रधुनाथ भट्ट गरेस्वामी का वृत्तान्त, रामानन्दी सम्प्रदाय भुक्त रामदास विश्वास की

कथा, भट्ट के प्रति प्रभु की कृपा, रामदास के प्रति प्रभु की उदासीनता और उसका कारण, भट्ट के प्रति प्रभु का आदेश, माता-पिता की परलोक-प्राप्ति तक भट्ट का काशी में रहना, उसके बाद पुरी जाना और प्रभु के आदेश से वृन्दावन जाना, प्रभु द्वारा भट्ट को तुलसी माला आदि प्रदान, भट्ट का वृन्दावन में रूप गोस्वामी की सभा में भागवत पढ़ना, गोविन्द मन्दिर निर्माण आदि।

चतुर्दश परिच्छेद—(३६१-३८२)

महाप्रभु द्वारा कृष्ण-विरह में अधिरूढ़ दिव्योन्माद प्रलाप, प्रभु-कृपा के बिना प्रभु के दिव्योन्माद को समझने की असमर्थता, स्वरूप और रघुनाथ दास-इन दो प्रभुओं के कड़चे (दिनलिपि) ही गौरलीला को वर्णन करने के आकर(मूल) ग्रन्थ, स्वरूप-सूत्रकर्त्ता, रघुनाथ—वृत्तिकार, (चतुर्दश से विंश परिच्छेद तक) सर्वत्र 'गौरनागर'-वाद का खण्डन, प्रभु का अधिरूढ़ महाभाव में दिव्योन्माद, अभ्यासवशत: नित्यकृत्य करना, उड़िया स्त्री की जगन्नाथ-दर्शन में आर्त्ति, अक्षज ज्ञान के द्वारा कृष्ण-सेवक को स्त्री-पुरुष आदि बाह्य परिचय के आधार पर देखने के निषेध रूपी शिक्षा प्रदान, प्रभु की अन्तर्दशा, अर्धबाह्य दशा एवं बाह्य दशा, दशदशा, सम्पूर्ण रात्रि जागकर प्रभु द्वारा उच्चस्वर में नाम-सङ्कीर्त्तन, तीन द्वारों के बन्द होने पर भी घर में प्रभु का नहीं मिलना, प्रभु का सिंहद्वार पर अचेतन अवस्था में मिलना, स्वरूप द्वारा प्रभु के कान में कृष्ण नाम का उच्चारण और प्रभु का बाह्य दशा में अवतरण, प्रभु द्वारा गोवर्धन समझकर चटक पर्वत की ओर भागना, गोविन्द आदि का पीछे दौड़ना, मार्ग में स्तम्भ आदि विकार और भूमि पर गिरना, सभी के द्वारा उच्चसङ्कीर्त्तन और गोविन्द आदि द्वारा जल-छिड़काव, प्रभु की अर्धबाह्य दशा, पुरी और भारती के दर्शन से प्रभु की बाह्य-दशा, श्रीरघुनाथ (दास गोस्वामी) द्वारा रचित चैतन्य-स्तव-कल्पवृक्ष ग्रन्थ।

पञ्चदश परिच्छेद—(३८३-३९८)

अप्राकृत कृष्ण विरह रूपी प्रेमावेश में अचैतन्य प्रभु, प्रभु की अन्तर्दशा, अर्धबाह्य दशा और बाह्य दशा, स्वभाव और अभ्यासवश नित्य-कृत्य आदि, प्रभु द्वारा जगन्नाथ में साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन-दर्शन, प्रभु की इन्द्रियों द्वारा गोविन्द-सेवा-शिक्षा, उपल भोग के बाद भक्तों द्वारा प्रभु को वासस्थान पर लाना और प्रभु का विलाप, गोपियों के द्वारा अप्राकृत पुष्पबाण के माधुर्यबल का वर्णन, प्रभु का स्वरूप और रामानन्द का कंठ धारण करके विलाप, प्रभु का सर्वत्र कृष्ण-लीला दर्शन और उन्हें ढूँढ़ने की लीला के प्रसङ्ग में पुष्पोद्यान में कृष्ण को ढूँढ़ने की लीला का वर्णन, रामानन्द का श्लोक पाठ और स्वरूप का गीत-गोविन्द गान, प्रभु का प्रेमावेश में नृत्य आदि।

षोड़श परिच्छेद—(३९९-४२२)

गौड़ीय भक्तों के साथ कालिदास का श्रीक्षेत्र में आगमन, कालिदास के गुण, पूर्व-परिचय, महाप्रसाद में विश्वास और वैष्णवों में जातिबुद्धि-राहित्य, कालिदास और झड़ु-ठाकुर का वृत्तान्त, कालिदास के द्वारा वैष्णव-माहात्म्य-सूचक श्लोक-पठन, कृष्णभक्त की पदवी का निर्णय, कृष्णभक्त का अमानी एवं मानद होना, झड़ु ठाकुर के द्वारा वैष्णवानुव्रज्या की शिक्षा प्रदान, कालिदास के द्वारा गुप्त रूप से झड़ु ठाकुर की चरण-धूलि का लेपन और उच्छिष्ट सम्मान, कालिदास द्वारा गौड़देश के समस्त वैष्णवों के उच्छिष्ट का सम्मान, कालिदास के प्रति प्रभु की निष्कपट महाकृपा, लोक शिक्षक आचार्य रूपी प्रभु की कठोरता, अन्तरङ्ग भक्तों के अलावा अन्यों का प्रभु के चरणामृत में अनधिकार, कालिदास के द्वारा प्रभु के चरणामृत का पान, प्रभु द्वारा श्रीनृसिंह प्रणाम, कालिदास को प्रभु

की इच्छानुसार गोविन्द द्वारा प्रभु का उच्छिष्ट प्रदान, वैष्णवों के प्रसाद से ही कृष्ण के प्रसाद की प्राप्ति, कृष्ण के उच्छिष्ट और भक्त के उच्छिष्ट की संज्ञा, साधक के 'तीन साधन के बल', पत्नी-पुत्र सहित शिवानन्द का प्रभु-दर्शन, पुरीदास का मौन रहना और स्वरूप के द्वारा उसके तात्पर्य की व्याख्या, सात वर्ष के बालक पुरीदास के द्वारा श्लोक की रचना, चातुर्मास्य के अन्त में भक्तों का गौड़ में गमन और प्रभु का दिव्योन्माद, द्वारपाल को कृष्ण दिखलाने के लिये अनुरोध, द्वारपाल का प्रभु के हाथ को पकड़कर जगन्नाथ के समक्ष लाना और प्रभु द्वारा श्यामसुन्दर दर्शन, गोपाल-वल्लभ भोग, प्रभु द्वारा महाप्रसाद ग्रहण और सात्विक विकार, किन्तु ऐश्वर्यमिश्रित जगन्नाथ के सेवकों को देखकर उसका संगोपन, प्रभु द्वारा फेलामृत के माहात्म्य और चिद्बल का वर्णन एवं सभी को अप्राकृत श्रद्धापूर्वक प्रसाद का सम्मान करने का आदेश, रामानन्द द्वारा प्रभु की आज्ञा से श्लोक उच्चारण, प्रभु की उत्कण्ठा और कृष्ण के अधरामृत के चिद्बल एवं परम महिमा का कीर्त्तन, प्रभु का गोपीभाव में कृष्ण-प्रेमोन्माद।

सप्तदश परिच्छेद—(४२३-४३४)

प्रभु का उन्माद और प्रलाप, प्रभु के नित्यसङ्गी स्वरूप का गान और रामानन्द का श्लोक पाठ, बीच-बीच में स्वयं प्रभु द्वारा श्लोक पाठ, प्रभु का उच्च-नाम-सङ्कीर्त्तन, प्रभु का दिव्योन्माद, घर के द्वार बन्द होने पर भी प्रभु का घर में नहीं मिलना, सभी के द्वारा प्रभु को ढूँढ़ना और तैलङ्गी गैयाओं के बीच में प्रभु का मिलना, प्रभु की कछुए के आकार जैसी अवस्था, उच्च-सङ्कीर्त्तन द्वारा प्रभु का चेतन और अर्धबाह्य दशा में आगमन, स्वरूप को प्रभु द्वारा अपनी अवस्था के विषय में बतलाना, गौर के आदेश से स्वरूप का श्लोक-पठन और प्रभु के द्वारा श्लोक के अर्थ का वर्णन, भाव-शाबल्य, पिङ्गला के वचनों की स्तुति, शाखा-चन्द्र-न्याय, प्रभु का दिव्योन्माद आदि महाभाव—मर्त्यबुद्धि के द्वारा अपरिमेय, चैतन्य-भजन से ही कृष्णप्रेम प्राप्ति।

अष्टादश परिच्छेद—(४३५-४५२)

शारदीय ज्योत्स्ना रात्रि में प्रभु में रासलीला का उद्दीपन, सम्पूर्ण रासपञ्चाध्याय का पाठ और व्याख्या करते समय प्रभु में युगपत् हर्ष और विषाद, भक्तप्रेमनिर्धारण और आस्वादन के परिमाणार्थ कृष्ण द्वारा भक्तभाव-स्वीकार, कृष्णप्रेम का अद्भुत विक्रम, चित्-परमाणु- कण जीव में अप्राकृत कृष्ण-प्रेम-सिन्धु के बिन्दुमात्र को ही स्पर्श करने का अधिकार, स्वरूप-रामानन्द आदि कृष्ण-शक्ति-गणों का ही प्रभु की भावानुभूति में अधिकार, गोपियों के साथ कृष्ण की जलकेलि [लीला से सम्बधित] श्लोक का पाठ और प्रभु की मूर्च्छा, प्रभु द्वारा समुद्र को यमुना जानकर उसमें कूदना और मूर्च्छा, मूर्च्छित-अवस्था में बहते हुए कोणार्क की ओर जाना, भक्तों द्वारा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते समुद्र के तट पर गमन एवं प्रभु के नहीं मिलने पर उनके अन्तर्ध्यान का अनुमान, प्रिय हृदय में प्रिय के अदर्शन हेतु अमङ्गल की आशङ्का, मछुवारे के साथ साक्षात्कार और मछुवारे के वचनानुसार प्रभु-सन्धान-प्रप्ति के विषय में स्वरूप का यथार्थ अनुमान, श्रीनृसिंह के स्मरण से सब विपत्तियों का विनाश, मछुवारे के साथ भक्तों का प्रभु के निकट जाना और चेतनता उत्पन्न कराने हेतु प्रभु की सेवा, सभी के द्वारा उच्च-सङ्कीर्त्तन और प्रभु का अर्धबाह्य दशा में आना, प्रभु की तीन दशाओं का परिचय, अर्धबाह्य दशा में प्रभु का चित्रजल्प, अर्धबाह्य दशा से प्रभु का बाह्य दशा में आगमन एवं स्वरूप आदि के समक्ष अपने वृत्तान्त का वर्णन।

उनविंश परिच्छेद—(४५३-४७६)

प्रभु का दिव्योन्माद, अपनी वात्सल्य-उक्ति को ज्ञापन करने के उद्देश्य से प्रभु द्वारा जगदानन्द को नवद्वीप में प्रेरण, परमानन्दपुरी के अनुरोध से शचीदेवी के निकट वस्त्र और प्रसाद भेजना, अप्राकृत वात्सल्य-प्रेम के वशीभूत भगवान्, जगदानन्द का नवद्वीप आगमन एवं शचीदेवी को प्रभु का सन्देश बतलाना, पण्डित का नवद्वीप और शन्तिपुर में अवस्थान के पश्चात् विदायी की याचना, अद्वैत द्वारा पण्डित के माध्यम से प्रभु के निकट तरजा-पहेली भेजना, पण्डित के द्वारा पुरी जाकर प्रभु के समक्ष पहेली सुनाना और प्रभु का मन्द मुस्कुरा कर मौन धारण करना, स्वरूप के अनुरोध से प्रभु के द्वारा पहेली की व्याख्या का सङ्केत, महायोगेश्वर अद्वैतप्रभु, भक्तों का विस्मय और स्वरूप का उदास होना, प्रभु के कृष्णविरह की दशा की वृद्धि, उद्घूर्णा और प्रलाप, प्रभु द्वारा नाम-सङ्कीर्त्तन में रात व्यतीत करना, प्रभु का मुख-घर्षण रूपी दिव्योन्माद, स्वरूप के द्वारा प्रभु के चरणों के तकिये के रूप में शङ्कर का निर्वाचन, विदुर के साथ शङ्कर की सेवा की सदृश्यता, शङ्कर की प्रभु-सेवा, प्रभु का जगन्नाथवल्लभ उद्यान में गमन और अन्तर्दशा में कृष्ण के अन्वेषण की लीला, स्वरूप और राय की चेष्टा से प्रभु की बाह्य दशा, भ्रमर-गीता में श्रीराधा का प्रलाप एवं महिषी-गीत में दस प्रकार के चित्र-जल्प की उक्ति।

विंश परिच्छेद—(४७७-५०२)

पुरी में अनुक्षण विप्रलम्भ-भाव में व्याकुल प्रभु, परमप्रेष्ठ दो अन्तरङ्ग नित्यसङ्गी, प्रभु में आठ सात्विक एवं तैंतीस व्यभिचारी-भावों का उदय, स्वयं अथवा दो भक्तों के साथ तत्तद्भावोद्दीपक श्लोकों का पाठ अथवा श्रवण, प्रभु के द्वारा श्रीनाम-कीर्त्तन-माहात्म्य- वर्णन, कृष्णकीर्त्तनकारी ही एकमात्र सुबुद्धिमान्, नामाभास एवं शुद्ध नाम का फल—अनर्थ- निवृत्ति और कृष्ण-प्रेम का उदय, प्रभु के श्रीमुख से निःसृत शिक्षाष्टक और उसकी व्याख्या, कुष्ठी विप्र की रमणी के पातिव्रत्य धर्म का वर्णन, शिक्षाष्टक के प्रभु स्वयं ही आस्वादक और स्वयं ही प्रचारक, श्रीशिक्षाष्टक के श्रवण-कीर्त्तन से निश्चय ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति, अन्तिम बारह वर्षों की अन्त्यलीला में अनुक्षण कृष्णप्रेम का आस्वादन, ग्रन्थ के विस्तार के भय से ग्रन्थकार के द्वारा प्रभु की प्रेम-चेष्टा के वर्णन को विराम, ग्रन्थकार के द्वारा ठाकुर वृन्दावन के माहात्म्य का वर्णन एवं अनेक प्रकार से अपने दैन्य का ज्ञापन, ग्रन्थकार के द्वारा उपास्य विग्रहगण और मदन-मोहन की कृपा-प्राप्ति रूपी अपने सौभाग्य का प्रख्यापन , भागवत में व्यास की रीति-अनुसार अन्त्य लीला के परिच्छेदों की संक्षेप में पुनरावृत्ति, अनुवाद, पुनः अलोचना अथवा पुनरावृत्ति के फल से लीला-स्मरणोदय, ग्रन्थकार के द्वारा गौड़ीयों के नाथ श्रीहरि एवं गुरु-वैष्णव-चरणों में वन्दनापूर्वक ग्रन्थ समाप्ति, ग्रन्थ समाप्ति के काल का निर्देश।

❋❋❋

संस्कृत-श्लोक सूची

(मातृका-क्रमानुसार प्रथम एवं तृतीय चरण की सूची)

(श्लोक के पार्श्व में स्थित प्रथम संख्या 'परिच्छेद' एवं द्वितीय संख्या 'श्लोक- संख्या' की निर्देशक है)

अ

अंहः संहरदखिलं ३/१८०
अकारुण्यः कृष्णः १/१४६
अगण्यधन्यचैतन्यगणानां ९/१
अग्रे वीक्ष्य १/१४५
अजामिलोऽप्यगात् ३/६३, ३/१८६
अनर्पितचरीं १/१३२
अनिष्टाशङ्कीनि बन्धुहृदयानि १८/४०
अनुद्घाट्य द्वारत्रयम् १७/७२
अन्तःक्लेशकलङ्किताः १/१५४
अन्तर्वाणीभिः १९/१०५
अन्नानुरूपां १/९२
अन्वीयमान इह १५/५१
अप्येण-पत्न्युपगतः १५/४४
अभिव्यक्ता मत्तः १/१३९
अमानिना मानदेन ६/२३९,२०/२१
अयं नयनदण्डित १/१६५
अयं हि भगवान् ३/८४
अयमागच्छति ६/२८५
अयि दीनदयार्द्रनाथ ८/३२
अयि नन्दतनुज २०/३२
अरण्यजपरिष्क्रिया १/१६५
अस्मिन् सम्पुटिते १/१५४
अहह चटुलैरुत्सर्पद्भिः १/१९०
अहोवत श्वपचः १६/२७
अहो विधातः १९/४५

आ

आक्षिप्तः कालसाम्येन १/१३५
आचार्यो यदुनन्दनः ६/२६३
आत्मानं चेद् ६/३१४
आनन्दाम्बुधिवर्धनं २०/१२
आविष्करोति पिशुनेष्वपि १/१०८
आश्लिष्य वा २०/४७
आस्वाद्यास्वादयन् १६/१

इ

इतररागविस्मारणं १६/११७
इति केन सदाश्रियोज्ज्वलं १/१७०
इति ब्रुवाणं १९/७०
इतो नृसिंहः १६/५३
इत्थं सतां ७/३२
इयं सखि १/१४३

उ

उक्तवापि मुक्तिमाप्नोति ३/५६
उद्घूर्णा-चित्र १४/१६
उपगीयमानमाहात्म्यं ७/३३
उरोऽम्बरतटस्य १/१९१
उरोगुञ्जाहारं ६/३२७
उल्लङ्घितत्रिविधसीम ३/९१

ए

एकस्य श्रुतमेव १/१४२
एतस्य मोहनाख्यस्य १४/१६

एतादृशी तव कृपा २०/१६
एवं व्रतः ३/१७८
एष स्निग्धघनद्युतिः १/१४२

औ

औत्सुक्यावलिभिः १/१६४

क

कच्चित्तुलसि कल्याणि १५/३३
कर्षन् वेणुस्वनैः १/७
कस्मात्त्वया सखि १/१६२
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुंकुम १५/४४
कास्त्यङ्ग ते १७/३१
किं काव्येन कवेः १/१९५
किं पुनर्दर्शन ७/१०
किं भद्रं किमभ्रदं ४/१७५
किमिच्छन् कस्य वा ६/३१४
किमिह कृणुमः १७/५१
किम्वा पामर-काम-कार्मुक १/१५१
कुरङ्गमदजिद्वपुः १९/९१
कुलवरतनुधर्मग्रावबृन्दानि १/१६७
कृतान्दोलं मन्दोन्नतिभिः १/१५८
कृता यत्र चिकित्सापि १/१४३
कृपया तव पादपङ्कजस्थित २०/३२
कृपागुणैर्यः ६/१
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ५/१३७
कृष्णनाम्नो रूढ़िरिति ७/८२
कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं २०/१०
कृष्णविच्छेदजातार्त्या १३/१
कृष्ण विच्छेदविभ्रान्त्या १४/१
कृष्णादन्यः कः ७/१५
कृष्णोऽन्यो यदुसम्भूतो १/६७
क्वचित् कृष्णावृत्ति- १५/९७
क्वचिद्धाराशाली १/१६०
क्वचिद्भृङ्गीगीतं १/१६०
क्वचिन्मिश्रावासे १४/७३
क्व नन्दकुलचन्द्रमाः १९/३५
क्व मे कान्तः १६/८७
क्व रासरसताण्डवी १९/३५

ग

गतिविदस्तव ७/४१
गन्धर्वपालिभिः १८/२५
गिरिधरचरणाम्भोजं २०/१५६
गूढ़ग्रहा रुचिरया १/१३६
गृहान्तः खेलन्त्यो १/१५३
गृहीतकापालिकधर्मकः १४/४१
गोप्यः किमाचरदयं १६/१४०
गौरेण हरिणा १५/१

च

चरितममृतमेतत् २०/१५४
चिन्तात्र जागरोद्वेगौ १४/५३
चिन्त्यतां चिन्त्यतां १२/१
चिरमखिलसुहृच्चकोर १/१७५
चूतप्रियाल-पनस १५/३२
चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी १/९९, १/१२०
चेतोदर्पणमार्जनं २०/१२
चैतन्यचरणाम्भोज ७/१
चैतन्यार्पितमस्तु २०/१५५

ज

जङ्घाधस्तटसङ्गि १/१६६
जयतां सुरतौ १/५
जहौ युवैव ६/१३७
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा ४/१७८
ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां ७/२७

त

तं निर्व्याजं भज ३/६२
तं वन्दे कृष्णचैतन्यं ८/१
तच्चेद्देह-द्रविण-जनता ३/६०

तत्तेऽनुकम्पां ९/७७
तथाप्यन्तःखेलन् १/७९,१/११४
तदपि भजसि शश्वत् १/१६३
तदमलपदपद्मे २०/१५४
तदामृतत्वं ४/१९४
तद्वा इदं ५/१२५
तनुद्यत्सङ्कोचात् १७/७२
तमालश्यामलत्विषि ७/८२
तमालस्य स्कन्धे सखि १/१४६
तयोर्मध्ये हीरोज्ज्वल १/१६१
तरणिरिव तिमिरजलधिं ३/१८०
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं १६/२५
तस्मै नमो भगवते ५/१२५
तस्य हरेः १/२१२
तह तह रुन्धसि १/१४४
तांश्चाकृतार्थान् १९/४५
ताभिर्युतः श्रमम् १८/२५
तासां तत्सौभगमदं १५/८१
तुण्डे ताण्डविनी रतिं १/९९,१/१२०
तृणादपि सुनीचेन ६/२३९,२०/२१
तेनाटवीमटसि ७/४०
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः १६/२७
त्रय्या चोपनिषद्भिश्च ७/३३
त्रैलोक्य-सौभगमिदञ्च १७/३१
त्वत्-साक्षात्करणाह्लाद- ३/१९५

द

दंष्ट्रिदंष्ट्राहतः ३/५६
दत्ताभयञ्च भुजदण्डयुगं १५/७०
दधद्भित्तौ शश्वत् १९/७६
दधाते फुल्लतां १३/१
दशां कष्टाम् १/१६९
दीयमानं न गृह्णन्ति ३/१८७
दीव्यद्वृन्दारण्य १/६
दुर्गमे कृष्णभावाब्धौ १५/१
दुर्गमे पथि मेऽन्धस्य १/२
देह-देहि-विभागोऽयं ५/१२३
देहपातादवन् स्नेहात् ४/१
दैन्यार्णवे निमग्नोऽहं ५/१
दोषेण क्षयितां १/१५०
द्रुतं गच्छ द्रष्टुं १६/८७

ध

धन्यस्यायं नवप्रेमा १९/१०५
धरित्र परिच्छन्दगुणं १/१४४
धर्मः सोऽपि महान्मया १/१५२
धर्मः स्वनुष्ठितः ५/१०

न

न चैवं विस्मयः ३/८३
नटता किरातराजं १/१८४
नदज्जलदनिस्वनः १७/४०
न धनं न जनं २०/२९
नन्दः किमकरोद् ७/३४
न पारयेऽहं निरवद्य ७/४३
नमस्ते नरसिंहाय १६/५२
नमामि हरिदासं ११/१
न मेऽभक्तः १६/२५
नयनं गलदश्रुधारया २०/३६
नवाम्बुद-लसद्द्युतिं १५/६३
न साधयति मां ४/५९
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागः ४/५९
नातः परं परम ५/१२४
नात्यश्नतोऽपि ८/६६
नामैकं यस्य वाचि ३/६०
नाम्नामकारि बहुधा २०/१६
नायं श्रियोऽङ्ग ७/२९
नायं सुखापः ७/२७
निजप्रणयितां १/१७७
निन्येऽधन्यजन ९/१

निमग्नो मूर्च्छालः १८/१
नो चेद्वयं ४/६४
नो जाने जनयम् १/१४५
नोत्पादयेद् यदि रतिं ५/१०
न्यस्य स्वरूपे विदधे ६/१

प

पंगुं लङ्घयते १/१
पतिसुतान्वय भ्रातृ ७/४१
पदानि त्वगतार्थानि १/१८६
पयोराशेस्तीरे १५/९७
परस्य हृदये लग्नं १/१९५
परस्वभावकर्माणि ८/७६
परामृष्टाङ्गुष्ठत्रयम १/१६१
परिमलवासितभुवनं २०/१५६
पश्यामि विश्वसृजम् ५/१२४
पीड़ाभिर्नवकालकूट १/१४८
पुलकैर्निचितं वपुः २०/३६
पुलिन्देनाप्यग्निः १/१३९
पुष्पाणि च १/१५९
पूर्वपरयोर्मध्ये ८/७८
प्रकृतिजड़मशेषं ५/११२
प्रमदरसतरङ्ग १/१७१
प्रलप्य मुखसंघर्षी १९/१
प्रलापो व्याधिरुन्मादः १४/५३
प्रशमाय प्रसादाय १५/८१
प्रहृष्टरोमा भगवत् १९/७०
प्राणोरुसर्वस्व २०/१५७
प्राप्तप्रणष्टाच्युत १४/४१
प्रियः सोऽयं १/७९,१/११४
प्रियेण संग्रथ्य १०/२१
प्रीतिं वो जनयन् १५/३४
प्रेमा सुन्दरि १/१४८
प्रेमोद्भावितहर्ष २०/१
प्रोद्यन्नन्तःकरणकुहरे ३/६२

फ

फलेन फलकारणम् १/९१

ब

बलवानिन्द्रियग्रामो २/११९
बलादक्ष्णोर्लक्ष्मीः १/१६९
बहिर्नृसिंहो हृदये १६/५३
बाहुं प्रियांस उपधाय १५/५१

भ

भक्तानामुदगाद १/१३८
भक्तिं परां भगवति ५/४८
भुङ्क्ते स्वयं १६/१४०
भृत्यस्य पश्यति १/१०८
भ्रमाभा कापि १४/१६

म

मत्प्राणसर्वस्व २०/१५७
मत्सर्वस्व १/५
मदकलचलभृङ्गी १/१७१
मदेन्दुवरचन्दना १९/९१
मधुर मधुर स्मेराकारे १७/५१
मन्ये तदर्पित मनः ४/६९,१६/२६
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे २०/२९
मयूरदलभूषितः १५/६३
मर्त्यो यदा ४/१९४
महासम्पद्वारादपि ६/३२७
महेन्द्रमणिमण्डली १/१६८
मात्रा स्वस्रा २/११९
मानं तनोति १४/८६
मायाबलेन भवता ३/९१
मायाश्रितानां ७/३२
मालत्यदर्शि वः १५/३४
म्रियमाणो हरेर्नाम ३/६३,३/१८६

य

यः कौमारहरः १/७८

य: सर्वलोकैकमन: ६/२६४
यज्ञै: सङ्कीर्त्तनप्रायै: २०/१०
यत्कृपा तमहं वन्दे १/१
यत्ते सुजात ७/४०
यथा तथा वा विदधातु २०/४७
यद्यद्व्यधत्त गौराङ्ग: १४/१
यर्ह्यम्बुजाक्ष न ४/६३
यशोदा वा महाभागा ७/३४
यस्यां समारोपण ६/२६४
यस्याङ्घ्रि पङ्कजरज:स्नपनं ४/६३
यस्योत्सङ्गसुखाशया १/१५२
या माऽभजन् ७/४३
युक्त इत्युच्यते योगी ४/१७८
युक्तस्वप्नावबोधस्य ८/६६
युक्ताहार-विहारस्य ८/६६
युगपदयमपूर्व: १/१६७
युगायितं निमेषेण २०/३९
येऽन्ये परार्थभवका १५/३२
येन केनापि सन्तुष्टं १०/१
येषां प्रसादमात्रेण ७/१
येषां संस्मरणात् ७/१०
यैर्दृष्टं तन्मुखाच्छ्रुत्वा १७/१
योगेश्वरेश्वरे ३/८३
योजयन्ति पदैरन्यै: १/१८६
यो दुस्त्यजान् दारसुतान् ६/१३७

र

रमादिक-वराङ्गना १७/४०
रात्रावत्र ऐक्षवमासीत् ८/४७
रासे हरिमिह १५/८४
रासोत्सवेऽस्य ७/२९
रुन्धन्नम्बुभृत: १/१६४

ल

लपितं गौरचन्द्रस्य २०/१
लिख्यते श्रील-गौरेन्दो: १७/१
लुठन् भूमौ काक्वा १४/७३
लेभे कृष्णार्णव १/१५५
लेभे चत्वरताञ्च १/१३८
लौकिकाहारत: स्वं ८/१

व

वंशीं कुट्मलिते १/१६६
वन्देऽहं श्रीगुरो: २/१,३/१
वन्दे तं कृष्णचैतन्यं १९/१
वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यं कृष्णभावा- १६/१
वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यं भक्तानुग्रह- १०/१
वयं नेतुं युक्ता: १/१५३
वाचालं बालिशं स्तब्धं ५/१३७
वाचोदितं तदनृतं ४/१७५
विकचकमलनेत्रे ५/११२
विक्रीड़ितं व्रजवधूभि: ५/४८
विद्याविनयसम्पन्ने ४ /१७७
विधुरेति दिवा १/१७०
विप्राद्द्विषड्गुणयुताद् ४/६९,१६/२६
विश्वमेकात्मकं ८/७६
विहारसुरदीर्घिका १/१९१
वीक्ष्यालकावृतमुखं १५/७०
वृन्दावनं दिव्यलता-परीतं १/१५९
वृन्दावनं परित्यज्य १/६७
वृन्दावनरमणीनां १६/७४
वृन्दावनात् पुन: प्राप्तं ४/१
वैगुण्यकीट कलित: ५/१
व्रजन्नस्मीत्युक्तवा १४/१२०
व्रजवामदृशां न पद्धति: १/१८८
व्रजातुलकुलाङ्गनेतर १६/११९

श

शरज्ज्योत्स्ना-सिन्धो: १८/१
शाके सिन्ध्वग्निवाणेन्दौ २०/१५८
शुनि चैव श्वपाके ४/१७७
शून्यायितं जगत् २०/३९

श्रवसोः कुवलयम् १६/७४
श्रीचैतन्यकृपातिरेक- ६/२६३
श्रीमद्राधा-श्रीलगोविन्ददेवौ १/६
श्रीमन्मदनगोपाल २०/१५५
श्रीमान् रासरसारम्भी १/७
श्रुत्वा निष्ठुरतां १/१५१
श्रूयतां श्रूयतां १२/१

स

संस्थितामपि यन्मूर्त्तिं ११/१
सखि मुरलि विशाल १/१६३
सखि स्थिरकुलाङ्गना १/१६८
सद्वंशतस्तव जनिः १/१६२
सन्त्ववतारा बहवः ७/१५
सन्यासिनामियं ८/४७
समन्तात सन्तापोद्गम १/१२८
समये तेन विधेयं १/१८४
समीपे नीलाद्रेः १४/१२०
समेत्ययं दास्यति ६/२८५
स लुञ्चित-तमस्ततिः १/१७७
सहचरि निरातङ्कः १/१९०
सह त्वालिकुलैः १५/३३
सा चैवास्मि १/७८
सा जयति निसृष्टार्था १/१८९
साद्वैतं सावधूतं २/१,३/१
सालोक्य-सार्ष्टि-सारूप्य ३/१८७
सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृत ४/६४
सुखानि गोष्पदायन्ते ३/१९५
सुगन्धौ माकन्द १/१५८
सुधाजिदहिवल्लिका १६/११९
सुधानां चान्द्रीणामपि १/१२८
सुधांशुहरिचन्दनोत्पल १५/७८
सुरतवर्धनं १६/११७
सुररिपुसुदृशाम् १/१७५
सुरासुरादि दुर्लभं फलं ३/८४
सूर्याहऽसितपञ्चम्यां २०/१५८
सोऽयं वसन्तसमयः १/१३६
सौन्दर्यामृतसिन्धु १५/१४
सौरभ्यामृतसंप्लवावृतजगत् १५/१४
स्तोत्रं यत्र तटस्थतां १/१५०
स्मरति मनो मम १५/८४
स्रजं न काचिद्विजहौ १०/२१
स्वकृपा-यष्टिदानेन १/२
स्वर्गापगा-हेममृणलिनीनां १/९२
स्वाकीयस्य प्राणार्बुद १९/७६
स्वाविद्या-संवृतो जीवः ५/१२७

ह

हन्तायमद्रिरबलाः १४/८६
हरिः पुरटसुन्दर १/१३२
हरिण्मणिकवाटिका १५/७८
हरिमुद्दिशते १/१८८
हसत्यथो रोदिति ३/१७८
हित्वा दूरे पथि १/१५५
हिरण्यकशिपोर्वक्षः १६/५२
ह्रियमवगृह्यगृहेभ्यः १/१८९
हृदयं त्वदलोककातरं ८/३२
हृदि यस्य प्रेरणया १/२१२
हृद्वाग्वपुभिः ९/७७
ह्लादिन्या संविदा ५/१२७

❋❋❋

प्रयोजनीय अंश की वर्णानुक्रमिक पद्यसूची

(प्रथम एवं द्वितीय चरण)

अ

अङ्गे काँटा लागिल	१३/८२
अचिरात् पाबे तबे	७/१३३
अचिरात् पाबे तुमि	६/२९५
अचिरात् मिले ताँरे	९/७६
अचिरे करिबेन कृपा	१३/१२१
अचेतन देह, नासाय	१४/६४
अचेतन पड़ियाछेन	१७/१७
अज्ञ जीव निज-'हिते	७/११५
अज्ञ मूर्ख सेइ	३/१३२
अतएव 'अद्वैत-आचार्य'	७/१८
अतएव ऐश्वर्य हइते	७/३५
अतएव कृष्ण कहे	७/४२
अतएव गूढ़ अर्थ	३/४८
अतएव नाम लय	७/१०४
अतएव भक्तगण	३/१९४
अतएव शुक-व्यास	७/३१
अतत्त्वज्ञ 'तत्त्व' वर्णे	५/१२०
अति उच्च-नासा तार	३/२०७
अति दैन्ये पुनः	२०/३१
अदृश्य, अस्पृश्य मोरे	११/२८
अद्‌भुत-दयालु चैतन्य	१७/६८
अद्वैताचार्य-गोसाञि	७/१७
अधरेर एइ रीति	१६/१३०
अनन्त चैतन्यलीला	१५/९८
अनिपुणा वाणी	२०/१४९
अनिष्टाशङ्का बिना	१८/३९
अनुरागेर लक्षण एइ	१०/६
'अनुवाद' हैते	२०/१४०
अनेक नाचाइला मोर	११/३०
अनेक-लोकेर वाञ्छा	२०/१७
अनेक 'सुकृते' इहा	१६/११४
अन्तरे 'अनुग्रह', बाह्ये	७/१६४
'अन्तर्दशा','बाह्यदशा'	१८/७७
अन्तर्दशार किछु घोर	१८/७८
अन्तर्ध्यान हइला प्रभु'	१८/३८
अन्तर्यामी प्रभु	७/९४
अन्य ऐछे हय	१६/२९
अन्यकथा, अन्यमन	१७/३७
अन्य कथा नाहि	६/२८६
अन्योपदेशे पण्डित	३/११
अपराध कैनु, क्षम	७/१२६
अपराध छाड़ि' कर	७/१३३
अपराध हउक, किबा	१०/९५
अपार सौन्दर्ये हरे	१५/५६
अप्राकृत-देह तोमार	४/१७३
'अप्राकृत' देह भक्तेर	४/१९१
अप्राकृत-देहे ताँर	४/१९३
अभिमान छाड़ि' भज	७/१३२
अभिमान-पङ्क धुञा	७/१६३
अमानी मानद हञा	६/२३७
अमृत-गुटिकादि	१०/१२५

अमृत हइते पाक ६/११६
अयोग्य हञा ताहा १६/१३७
अयोग्येरे देओयाय १६/१३८
अरण्ये रोदित हैल ३/२४४
अर्थव्यस्त' लिखन सेइ ७/१३०
अर्धबाह्ये' इति-उति १८/७६
अर्धबाह्ये' कहेन प्रभु १८/७९
अर्धरात्रिते प्रभु करेन १७/९
अलौकिक कृष्णलीला १९/१०३
अलौकिक-गन्ध-स्वाद १६/११३
अलौकिक प्रभुर 'चेष्टा' १९/१०६
अल्पसेवा बहु माने १/१०७
अवश्य पूरिबे, प्रभु ११/४२
'अविद्या-नाशक' ५/१४५
अवैष्णव-जगत् केमने ३/२२१
असद्व्यय ना करिह ९/१४४
अस्तिग्रन्थि भिन्न १४/६५

आ

आँचल पातिया प्रसाद ११/७३
आकण्ठ पूराञा ११/८८
आकाश—अनन्त २०/७९
आकाशे कहेन प्रभु १८/७९
आचम्भिते शुनेन १७/१०
'आचार', 'प्रचार'—नामेर ४/१०३
आचार्य कहे,—''आगे ७/१०१
आचार्य-सम्बन्धे २/९१
आजन्म कृष्णकीर्त्तन २/१५८
आजन्म ना दिला जिह्वाय ६/३११
आजि केने एतक्षण १०/९२
आजि भिक्षा दिबा १२/१२२
आजि मोरे भृत्य करि' १२/२७
आजि लाग् पाञाछि ६/५०
आजि हैते २/११३
आज्ञा-पालने कृष्णेर १०/८
आज्ञा लङ्घि' आइला १२/६९
आदिवस्या' एइ स्त्रीरे १४/२६
आनुषङ्गिक फल नामेर ३/१७९
आपन-कारुण्य २/१६८
आपना बिना अन्य माधुर्य १६/१११
आपनार 'असौभाग्य' ४/१६२
आपनार आगे मोर ११/३२
आपनार कथा परमुण्डे ५/७७
आपनार गुण नाहि ५/७८
आपनार सुख-दुःखे ९/७५
आपनारे करे २०/३१
आपनि प्रद्युम्नमिश्र ५/८५
आपनि श्रीमुखे मोरे ६/२३२
आपनि श्रीहस्ते बालु ११/६८
आपने आचरे केह ४/१०२
आपने ना जाने ४/८५
आपने नाचये १८/१८
आपने प्रश्न करि' ५/६४
आमाकेह बुझाइते ४/१६८
आमार उपदेष्टा तुमि ४/१६०
आमार एइ देह प्रभुर ४/९८
आमार दुर्दैव,—नामे २०/१९
आमार शकति ताँरे ११/९५
आमार शरीर २०/९२
आमार 'सर्वनाश' १२/११३
आमार 'हित' करेन ७/१२०
आमारे आदर कर ३/२१७
आमारे खाट-तूलि १३/१५
आमा-सब अधमे ४/१८२
आमा-सबाय नाहि देह ६/३२०
आमा-हेन यदि एक ११/४१
आमि अज्ञ जीव ७/१२२
आमि—अज्ञ, 'हित'-स्थाने ७/१२४

आमि—अति क्षुद्र जीव २०/९०
आमि—कृष्णपद-दासी २०/४८
'आमि जिति',—एइ गर्व ७/११८
आमि त'—सन्यासी ४/१७९, ५/३५
आमि त' सन्यासी,—तैल १२/११६
आमि—नीचजाति १६/२९
आमि—परतन्त्र, आमार प्रभु ७/१४७
आमि लिखि',—इहा २०/९२
आमि सब—केवलमात्र १२/१३४
आमि सब ना जानि २/१३६
आमिह देखिते ताँहा १/२१९
आर ग्रास लैते ६/३२३
आर दिन महाप्रभु ११/२१
आर सब कड़चा १४/८
आरे मूर्ख, आपनार ५/११७
'आवेश' करये २/४
आश्चर्य,—तरुणी-स्पर्शे ५/४१
आस्ते-व्यस्ते गोविन्द १३/८२
आस्वाद दूरे रहु १६/१११
आस्वादिते प्रेमे मत्त १६/११५

इ

इँहा हैते आजि १४/१०६
इँहार जे ज्येष्ठभ्राता १/२००
इँहार सङ्कोचे ६/२८०
इँहारे पुछह ७/१०१
इच्छामात्रे कैला ११/९६
इतर-लोकेर ताते १४/८२
इन्द्र जेन कृष्णेर निन्दा ७/१२४
इन्द्रसम ऐश्वर्य ६/३९
इन्द्रिय चराञा बुले २/१२०
इन्द्रिय-दमन हैल ३/१४०
इहलोक, परलोक ४/१३१
इहा जेइ नाहि शुने १७/४८
इहाते संशय जार ६/१२५
इहार श्लोक-गीते १५/२७
इहा वइ महाभाग्य ५/५८

ई

ईश्वर-चरित्र किछु १२/८५
ईश्वर-चरित्र प्रभुर ८/९३
ईश्वर जगन्नाथ ९/४४
ईश्वर स्वभाव १/१०७, ३/९०
ईश्वर-स्वभाव,—करेन ७/११८
ईश्वरपुरी करेन ८/२६
ईश्वरेर नाहि कभु ५/१२२

उ

उच्च करि' कहे कृष्ण १४/५९
उच्च सङ्कीर्त्तन ताते ३/७५
''उठह पण्डित''—करि' १२/१२१
उठि' ताँरे लाथि १२/२४
उठितेइ अस्थि सब १८/७६
उठि' शिवानन्दे १२/३१
उत्तम हञा आपनाके २०/२२
उदय कैले कृष्णपदे ३/१८४
उदय ना हैते ३/१८२
उदय हैले धर्म-कर्म ३/१८३
उद्धव-दर्शने जैछे १४/१३
उपदेश पाञा माया ३/२५८
उपमा दिवार नाहि ६/१०४
उपरोधे प्रभु मोर ६/२७६
उपासना लागि' देवेर १९/२६

ए

ए-वन्याय जे ना ३/२५३
ए शरीरे साधिमु ४/७८
ए सङ्कटे, कृष्ण, राख ७/९३
ए-सब कथाते कारो ३/२५८
ए सब बान्धिते ६/३९
ए सौभाग्य लागि' ११/१०५

एइ इहार मनः कथा १६/७२
एइ कहे,—नामाभास-मात्रे ३/१९२
एइ चारि ठाञि २/३५
एइ त' स्वभाव ताँर ८/१५
एइ तिन-सेवा १६/६१
एइ दुइद्वारे ८/३०
एइ दुइर कड़चाते १४/७
एइ निमन्त्रणे देखि ६/२७५
एइ नीच देह मोर ११/३६
एइ प्रेम सदा जागे १९/१०४
एइ भाल, एइ मन्द' ४/१७६
एइ भोगे हय कैछे ८/४२
एइमत अष्टमञ्जरी ६/२९७
एइमत गौर-राय १९/५३
एइमत तिन वत्सर ६/२९३
एइमत महाप्रभुर ११/१३
एइमत मोर इच्छा ११/३४
एइमत हञा जेइ २०/२६
एइ रघुनाथे आमि ६/२०२
एइ वाञ्छा-सिद्धि मोर ११/३६
एइ व्रजेर रमणी १९/३८
एइ शिलार कर तुमि ६/२९५
एइ 'शुष्क-वैराग्य' नहे ८/६३
एइ सब हय भक्ति शास्त्र १०/१००
एइ सुख लागि' आमि १२/११३
ए-ऋण शोधिते आमि १३/८६
एक एक पाते ११/८२
एक-एक हस्त-पाद १४/६५
एक कुँजा जल आर ६/२९६
एकक्षण प्रभुर यदि ९/९५
एक जनार दोषे ३/१६३
एकदिन गोविन्द ११/१६
एकदिन प्रभु यमेश्वर १३/७८
एकदिन शिवानन्द १/२०
एकदिनेर लीलार तबु १८/१३, १८/१४
एकपाश हओ, मोरे १०/८६
एकबारे स्फुरे १५/८
एकमन पञ्चदिके १५/९
एक रञ्च लञा तार ११/२०
एक रामानन्देर हय ५/४२
एकलीला-प्रवाहे ५/१६२
एक लीलाय करेन प्रभु २/१६९
एकलीलाय बहे गङ्गार ७/१६१
एकवाक्यता नाहि, ताते ७/११०
एक वाञ्छा हय मोर ११/३१
एकश्लोक पड़िते फिराय १३/१२८
एकसखी सखीगणे १८/८२
एकान्त आश्रय कर ५/१३१
एत अन्न खाओ,—तोमार ८/७२
एत बलि एक ग्रास ६/३२२
एत बलि' घर हैते १२/११९
एत बलि' ताँरे पुनः ६/२८७
एत बलि' महाप्रसाद ११/२०
एत बलि' श्राद्ध-पात्र ३/२२०
एत सब कर्म आमि ४/८३
एबार तोमार जेइ १२/४७

ऐ

ऐछे कवित्व बिना १/१९८
ऐछे चैतन्य निष्ठा १३/५९
ऐछे दयालु दाता लोके १७/६८
ऐछे नामोदयारम्भे ३/१८४
ऐछे स्वाद आर कोन ६/३२४
ऐश्वर्य-ज्ञान हैते ७/४४
ऐश्वर्य-ज्ञाने ना पाइ ७/२६
ऐश्वर्य देखिलेह 'शुद्धेर' ७/३५
ऐश्वर्यज्ञान युक्त', 'केवल' ७/२६

क

कतक्षणे प्रभुर काणे १८/७५
कत ठाञि बुझाइञाछ ४/१६८
कभु गुप्त, कभु व्यक्त ६/१२४
कभु गों गों करे १८/५४
कभु नासाय घ्राण लय ६/२९१
कभु बाह्यस्फूर्त्ति १५/५
कभु भावे मग्न १५/५
कभु लौकिक रीति ८/९१
कभु स्वतन्त्र, करेन ८/९१
कर्ण-मन तृप्त करे ११/१०६
कर्णामृत, विद्यापति १५/२७
कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा ९/४४
कलिकालेर धर्म ७/११
कवित्व ना हय १/१९३
कह, जालिया १८/४६
कहिते ना जुयाय २०/९९
कहिवार नहे, जाहा ५/३७
काँहा करों, काँहा जाउ १५/२४
काँहा 'क्षुद्र' जीव 'दुःखी' ५/१२६
काँहा गेले तोमा पाइ १७/६१
काँहा जाउ, काँहा पाउ १२/५
काँहा तोमार कृष्णरस १/१७९
काँहा 'पूर्णानन्दैश्वर्य' ५/१२६
काँहा यमुना, वृन्दावन १८/१०९
काड़िते ना पारों माथा ४/४०
कान्त-सेवा-सुखपूर २०/६०
कार्यसिद्धि नहे, कृष्ण ६/२२४
काल-देश-नियम नाहि २०/१८
कालिकार बटुया जगा ४/१५८
कालिदासे पाओयाइल १६/५७
कालिन्दी देखिया आमि १८/८०
काष्ठ-पाषाण-स्पर्शे हय ५/१९
काष्ठेर पुतली १/२०३
काष्ठेर पुतली जेन ४/८५, १२/८५
कि करिले हित हय ४/१४०
किन्तु आमार जे ११/३८
किन्तु तोमार स्मरणेर ९/१३७
किन्तु शास्त्रदृष्ट्ये करि एक ५/४४
किबा अनुराग करे २०/४९
किबा ना देय दरशन २०/४८
कि मोर कर्त्तव्य, मुइ ६/२३२
कीर्त्तन समाप्त हैले ३/२३९
कुकुरके 'कृष्ण' कहाञा १/३३
कुबुद्धि छाड़िया कर ४/६५
कुमारेर चाक जेन १५/६
कुलीन, पण्डित, धनीर ४/६८
कुष्ठी-विप्रेर रमणी २०/५७
कृपा करि' कर मोर २०/३४
कृपा करि' कृष्ण ११/९४
कृपा करि' मोर माथे ७/१२६
कृष्ण-आदि, आर ३/२६६
कृष्ण'—एक प्रेमदाता ७/१४
कृष्णकथा-पूजादिते १३/१३२
कृष्णकथाय रुचि तोमार ५/९
कृष्ण करेन, महाप्रभु १८/३२
कृष्ण कृपामय ११/३७
कृष्ण जार ना पाय अन्त १८/१५
कृष्ण ताहा सम्यक् १८/१७
'कृष्ण-नाम' उपदेशि' ३/२५१
'कृष्णनाम' देह' तुमि ३/२५६
'कृष्णनाम' पारक हञा ३/२५५
कृष्णनाम बिना तेंहो १६/५
कृष्णनाम लञा नाचे ३/२६१
कृष्णनाम 'सङ्केते' १६/६
कृष्णनामेर महिमा १/१०१
कृष्णपादपद्म-गन्ध ६/१३६
कृष्णप्राप्ति, सेवामृत २०/१४

कृष्णप्राप्त्येर उपाय ४/५६
कृष्णप्रेम-कण तैछे १८/२०
कृष्णप्रेम' 'कृष्ण' दिते ४/७०
कृष्णप्रेमे मत्त करे ३/२६६
कृष्णप्रेमोद्‌गम २०/१४
कृष्णभक्ति बिना २/९१
कृष्णभजने नाहि ४/६७
कृष्ण मथुराय गेले १४/१२
कृष्ण—मोर जीवन २०/५८
कृष्ण मोरे 'कान्ता' करि' २०/५९
कृष्णरस आस्वादये २०/६९
कृष्णरूपामृतसिन्धु १५/१९
कृष्णलीला-मण्डल १४/४४
कृष्णलीला वर्णिते ५/१०५
कृष्णलीलारस-प्रेम ४/२२०
कृष्णविच्छेदे दुःखे क्षीण १३/४
कृष्ण-विच्छेदे प्रभुर १४/१२
कृष्ण-शक्ति बिना नहे ७/११
कृष्णसुखतात्पर्य ७/३९
कृष्ण-स्वभाव ३/२११
कृष्णाद्भुत बलाहक १५/६५
कृष्णे नामाविष्ट-मना ३/२४४
कृष्णेर उपरे कैल जेन ७/१२०
कृष्णेर जाँते पूर्ण कृपा १६/९९
कृष्णेर जे भुक्त-शेष १६/९८
कृष्णेर प्रसाद, ताते १६/६३
कृष्णेर वियोगे गोपीर १४/५२
कृष्णेर स्वरूप-लीला ५/१३३
कृष्णेरे नाचाय प्रेमा १८/१८
कृष्णेरे बाहिर नाहि १/६६
के कहिते पारे गम्भीर ५/८७
के बुझिते पारे गौरेर ९/५८
के मोर निलेक कृष्ण? १४/३७
केह बले,—'नाम हैते ३/१७६
कैछे नाचे, केबा नाचाय ४/८६
कैला जगते वेणुध्वनि १७/३५
कोटि चिन्तामणि-लाभ ९/९५
कोटि-जन्मे ब्रह्मज्ञाने ३/१९२
कोटि-देह क्षणेके ४/५५
कोटिनामग्रहण-यज्ञ ३/१२३
कोटिमन्मथमोहन १५/५६
कोटियुग पर्यन्त यदि १८/१४
कोथा हैते जानिबे ३/२०४
कोन् छार पदार्थ ९/९५
कोन् जाने क्षुद्र जीव ५/२६
कोनप्रकारे हरिदासेर ३/१०३
कोन प्रवासीरे दिमु १३/६१
कौतुकेते तेंहो १६/७
क्या करों, काँहा जाऊ १७/५३
क्रमे ईश्वर-पर्यन्त ८/९७
क्रमे क्रमे हैल १४/१३
क्षणे क्षणे उठे प्रेमार १८/२१
क्षुद्रजीव सब २/१२०
क्षुधा नाहि बाधे ६/१८६

ख

खण्डिबे आध्यात्मिकादि १९/११०
खाइते शुइते यथा २०/१८
खाउयाञा पुनः तारे ८/७२
खासा वस्तु खाओ सबे ६/३२२

ग

गदाधर-प्राणनाथ ७/१५९
गम्भीरार भित्ये मुख १९/५८
गाढ़ानुरागेर वियोग ४/६२
गीतगोविन्देर पद गाय १५/८३
गुञ्जामाला दिया दिला ६/३०७
गुणमध्ये छले करे ८/७९
गुरु उपेक्षा कैले ८/९७

गुरु' हञा तरुलताय १९/८१
गुर्जरी रागिनी लञा १३/७९
गुह्य अङ्ग जत ५/३९
गृहस्थ' हञा नहे ५/८०
गोपीनाथ-पट्टनायक ९/१७
गोपीभाव हृदये १९/५३
गोवर्द्धन-शिला प्रभु ६/२९१
गोवर्द्धन हैते १४/१०५
गोवर्द्धने ना चड़िह १३/३९
गोवर्द्धनेर शिला', 'गुञ्जा ६/२८७
गोविन्द कहे,—''आमार १०/९५
गोविन्द कहे,—''उठ आसि' ११/१८
गोविन्द कहे,—''जगन्नाथ १३/८६
गोविन्द कहे,—''श्रीकान्त १२/३७
गोविन्द-चरणारविन्द १३/१३०
गोविन्द-चरणे कैला १३/१३०
गोविन्दे देखिया प्रभु १०/९२
गोविन्देरे महाप्रभु १६/४३
गौर लीला, भक्ति ५/१६३
ग्राम्यकथा ना शुनिबे ६/२३६
ग्राम्य-कविर कवित्य ५/१०७
ग्राम्यवार्त्ता ना शुने १३/१३२

घ

घट-पटिया मूर्ख ३/१९९
घर्म-वृष्टि सहे, आनेर २०/२४
घृणा नाहि जन्मे ४/१८६

च

चञ्चल स्वभाव कृष्णेर १५/८०
चन्दन-पङ्केते आमार ४/१७९
चम्पक कलि-सम हस्त ३/२०८
चान्द धरिते चाहे १८/१९
'चित् ब्रह्म, माया मिथ्या' २/९८
चित्त शुद्ध हैल ३/२५१
चित्तशुद्धि, सर्वभक्तिसाधन २०/१३
चेतन पाइते अस्थि १४/७१
चैतन्यचन्द्रेर कृपा ६/४१
चैतन्यचरितामृत जेइ २०/१५१
चैतन्यचरितामृत ५/८९
चैतन्यचरित्र एइ ११/१०६
चैतन्यचरित्र एइ परम ९/१५१
चैतन्य प्रभुर लीला के ७/१६१
चैतन्य-लीलामृत-सिन्धु २०/८८
चैतन्यावतारे कृष्णप्रेमे ३/२६०
चैतन्यावतारे बहे ३/२५२
चैतन्येर कृपाय जाने १०/१००
चैतन्येर प्रेमपात्र १२/१०१
चैतन्येर भक्तगणेर ५/१३२
चैतन्येर लीला ३/४७
चौद्द-हात जगन्नाथेर १३/१२३
चौर-प्रेत-राक्षसादिर ३/१८३

छ

छत्रे गिया यथा-लाभ ६/२८६
छत्रे मागि' खाय ६/२८३
छाड़ि' कृष्णकथा अधन्य १७/५५
छिण्डा-कानि काँथा ६/३१२
छिद्र चाहि' बुले ८/४१
छोट-हरिदासे २/११३

ज

जगत नाचाओ, जार ११/२९
जगत्-निस्तार लागि' ३/२२१
जगत् भासाइते पारे ५/८८
जगते नाहि जगदानन्द ४/१६२
जगतेर मध्ये 'पात्र' २/१०५
जगतेर हित लागि' ७/११३
जगतेर हित' हउक ७/१३६
जगद्गुरु श्रीधरस्वामी ७/१२९

जगदानन्द चाहे १३/१४
जगदानन्दे पियाओ ४/१६३
जगदानन्देर 'प्रेमविवर्त्त' १२/१५४
जगन्नाथ-नृसिंह-सह २/६७
जत दु:ख, जत सुख १८/१६
जत नाचाइला, नाचि' २०/१४९
जन्मदाता पिता नारे ६/४०
जन्मे जन्मे तुमि पञ्च ९/१४१
जन्मे जन्मे तोमार पाय ५/७६
जल-तुलसीर सेवाय ६/३०२
जाँहा गुण शत आछे ८/७९
जाँहा प्रीति ताँहा ३/७
जाते विवरिते १/५७
जानि' हरिदास ताँरे ४/१४
जार कृष्णकथाय रुचि ५/९
जार जत शक्ति २०/७९
जारे कृपा करेन १९/१०९
जारे चाहि छाड़िते १७/५६
जारे जैछे नाचाओ ४/८६
जारे मिले, सेइ माने १२/१०१
जाल बाहिते एक १८/४७
जालिया कहे,—''इँहा १८/४७
जालियार चेष्टा देखि' १८/४५
जावत् कीर्त्तन समाप्त नहे ३/२३९
जावत् बुद्धिर गति २०/८१
जाह, भागवत पड ५/१३१
जाहा देखि' प्रीत हन ६/२२०
जाहार चरित्रे प्रभु १९/४
जाहार दर्शने मुनिर ३/२३६
जाहार श्रवणे भागे ३/४६
जाहार श्रवणे हय ३/२५९
जाहा हैते अन्य पुरुष ५/१४४
जाहा हैते अन्य 'विज्ञ' ५/१४१
जाहा हैते पाइबा १६/५८, १७/६९
जाहा हैते 'प्रेमानन्द' ५/८९
जिह्वाय उच्चारिमु तोमार ११/३४
जिह्वार लालसे जेइ ६/२२७
जीव क्षुद्रबुद्धि कोन् २०/७१
जीव छार काँहा तार १८/२१
जीवज्ञान—कल्पित २/९९
जीव दीन कि करिब १७/६५
जीव-'प्रकृति' 'पति' करि' ७/९९
जीव' हञा केबा सम्यक् २०/८०
जीवे सम्मान दिबे जानि २०/२५
जेइ चतुर, सेइ करुक ९/३३
जेइ जन कहे, शुने ५/४५
जेइ जे मागये, तारे २०/२४
जेइ भजे, सेइ बड़ ४/६७
जेइ महाप्रभु कहान १/२११
जे कराइते चाहे ईश्वर ४/९६
जे-गोपी मोर करे २०/५६
जे ना खाय, तारे ८/७१
जेमन अपराध भृत्येर १२/२७
जे मुक्ति भक्त ना लय ३/१८५
जेरूपे लइले नाम २०/२०
जे वंशेर उपरे ४/४४
जैछे कहाय, तैछे कहि ५/७३
जैछे तैछे करे ८/६२
जैछे नाचाओ, तैछे ४/७४

ट

टानाटानि प्रभुर मन १५/९

ठ

ठाकुर उपवासी रहे २/६५

त

तथाइ आमार सङ्ग १२/८१
तथापि तोमार ताते ४/१७३
तथापि नामेर तेज ३/५५

तथापि नूतनप्राय	१०/१२६	ताँरे बालु दिया उपरे	११/६९
तथापि भक्त-स्वभाव	४/१३०	ताँरे भय नाहि किछु	७/९४
तथापि विषयेर स्वभाव	६/१९९	ताँहा जाब, सेइ मोर	४/१४४
तथापि से निर्लज्ज	१६/१३६	ताँहा बिकाई, जाँहा	१२/७४
तबहिँ विकार पाय	५/३६	ताँहार मनेर भाव	५/४३
तबे आमार नाक काटिमु	३/१९७	ताते अनुरागी वाञ्छे	४/६२
तबे गोविन्द बहिर्वास	१०/८९	ताते जानि अप्राकृत	५/४२
तबे त' जानिबा सिद्धान्त	५/१३२	ताते जानि,—कोन	१६/१३८
तबे पाण्डित्य तोमार	५/१३३	ताते जानि,—पूर्वे	१/११७
तमो-रजो-धर्मे	४/५७	ताते प्रेमभक्ति—'पुरुषार्थ	७/२४
तरजा-प्रहेली आचार्य	१९/१८	ताते बार बार कहि	१६/६२
तरजार ना जानि अर्थ	१९/२७	ताते 'वैष्णवेर झूटा'	१६/५८
तरजा शुनि' महाप्रभु	१९/२३	तार एक कणा स्पर्शि	२०/७२
तर्क ना करिह	३/२२६, १९/१०६	तार एक 'लव'	१६/९८
तर्केर गोचर नहे	३/२०४, १९/१०३	तार दु:ख देखि'	९/७४
तव कृपा काडिल	६/१९४	तार मध्ये पूर्वविधि	८/७७
'तव योग्य नहे' बलि'	६/३२३	तार मध्ये मिथ्या केने	१/१७९
ताँ-सबार आगे भट्ट	७/६०	तारमध्ये सर्वश्रेष्ठ	४/७१
ताँ-सबार आचार-चेष्टा	१३/३७	तार लक्षण-श्लोक	२०/२०
ताँर आज्ञा बिना	७/१४७	तारे मिलिवारे प्रभु	१३/८१
ताँर आज्ञा भाङ्गे	१०/६	तावत् तुमि बसि'	३/१२४
ताँर आज्ञाय आइला	४/२३५	ताहा छाड़िते चाह	४/८३
ताँर चरण धुञा	२०/१५१	ताहा जानिवारे आर	५/४३
ताँर जेइ आज्ञा	१९/२३	ताहा जेइ पाय	१६/१३५
ताँर पिता कहे	६/३८	ताहाते तर्क उठाञा	८/४९
ताँर प्रसादे जानिलुँ	७/२२	ताहाते दीक्षित आमि	३/२३८
ताँर फल कि कहिमु	५/५०	ताहाते सुगन्धि तैल	१२/१०८
ताँर लागि' आमि मरि	१९/५१	ताहा बिना नहे तोमार	१/११७
ताँर शेष पाइले	६/१२३	ताहा बिना रत्न-शून्या	११/९७
ताँर सङ्गे आमार मन	७/१७	ताहार गणना कारो	९/१०९
ताँरा गेले पुन: हैला	१६/७८	ताहा हरि' भोग करे	९/८९
ताँरे कैलि क्षुद्र-जीव	५/११९	तिन अमृते हरे काण	१७/३८
ताँरे कैलि जड़	५/११८	तिनगुण-क्षोभ नहे	५/४६
ताँरे तुमि उठाइला	१८/६५	तिन चापड़ मारि'	१८/६२

तिन-दशाय महाप्रभु १८/७७
तिन-दिन रहि' सेइ ३/२०७
तिनद्वार देउया आछे १४/६०
तिन पुत्र मरुक शिवार १२/२०
तिन भोग खाइला २/६२
तिन 'रघुनाथ'-नाम ६/२०३
तिन लक्ष नाम ३/१७५
तिन हैते कृष्णनाम १६/६३
तीरे रहि' देखि आमि १८/८२
तीर्थेर महिमा २/१६९
तुमि एत कृपा कैला ७/१२५
तुमि ऐछे ना करिले ४/१३२
तुमि कृपा कैले ताँरे ६/१३१
तुमि कृष्णनाम-मन्त्र १६/७१
तुमि खाइले हय ३/२२०
तुमि ना देखाइले १३/५९
तुमि मोरे कैराछ ४/७६
तुमि—सर्व गुरु ४/१०३
तुलसी सेवन करे ३/१४०
तुषानले पोडे २०/४१
तुष्ट हञा शिला-माला ६/२९३
तृतीय दिवसे प्रभु १२/१२१
तृष्णानुरूप झारी २०/८८
तेंह जाँर पदधूलि ७/४५
तेंह जानाइला, कृष्ण ७/२३
तेंह देखाइला मोरे ७/२२
तेंह सेइ शिला ६/२८८
तेंहो कहे,—''वाउलि १२/२३
तेंहो कहे,—''संख्या-कीर्त्तन ११/२३
तैल भाङ्गि' सेइ १२/१२०
तोमरा कृष्णनाम-लह ७/१००
तोमाके देखिये,—जेन ७/८
तोमा-दुँहार कृपाते १/५७
तोमार अनुकम्पा चाहे ९/७६
तोमार आगमने मोर ५/३०
तोमार आगे धार्ष्ट १/१७४
तोमार आगे मूर्ख ७/१२२
तोमार आज्ञाते आमि ३/३९
तोमार एइ दशा १८/४६
तोमार कृपा-अञ्जने ७/१२५
तोमार कृपा बिना केह ६/१३१
तोमार कृपाय वंशे ४/२९
तोमार कृष्णनाम ३/२५०
तोमार गुणे स्तुति कराय ४/१७०
तोमार जैछे विषयत्याग १/२०१
तोमार दर्शन जे पाय ७/८
तोमार देह आमारे ४/१७२
तोमार देह कहेन प्रभु ४/९४
तोमार देह तुमि ४/१७२
तोमार नित्य दास मुइ २०/३३
तोमार बाप-ज्येठा ६/१९७
तोमार भजन-फले ९/६९
तोमार योग्य नहे ११/३८
तोमार शरीर—मोर ४/७८
तोमार सङ्गे लोभ ३/२५४
तोमार सेवक, करों २०/३४
तोमार सेवा छाड़ि' १९/९
तोमार हृदय एइ १/११५
तोमारे उपदेश करे ४/१६९
तोमारे काड़िल विषय ६/१९३
तोमारे क्षीण देखि ८/६३
तोमारे जे स्मरण करे ७/९
तोमारे 'लाल्य' ४/१८४
तोमारेह उपदेशे ४/१६०
तोमा लागि' रामानन्द ९/७०
तोमा लागि' सनातन ९/७०
तोमा-सबार दोष नाहि ३/२०३
तोमा सबारेह उपदेश ४/१५८

तोमा-सम 'निरपेक्ष' ३/२३
तोमा-सम भाग्यवान् ४/९४
तोमा स्पर्शे पवित्र ४/१२९
तोरे देखि' मैले ८/२२
त्रिजगते तोमार चरित्र १२/२८

द

दड़ि बन्धने ताँरे ६/४०
दण्ड-दुइ वइ प्रभुर १०/९१
दधि, चिड़ा भक्षण ६/५१
दम्भ करि' बलि २०/१००
दर्शन रहु दूरे, 'प्रकृति' ५/३५
दर्शने पवित्र हबे ७/९
दशेन्द्रिये शिष्य करि' १४/४७
दाता, भोक्ता—दुँहार ६/२७९
दारी सन्यासी' करि' १२/११४
दारु-प्रकृति हरे २/११८
दास करि' वेतन मोरे २०/३७
दिने नृत्य-कीर्त्तन ११/१२
दिने प्रभु नाना-सङ्गे ६/७
दीक्षाकाले भक्त करे ४/१९२
दीनदयालु-गुण ४/१८२
दीन देखि' कृपा करि' ५/६२
दीने दया करे ३/२३५
दीनेरे अधिक दया ४/६८
दुइ अपूर्व-वस्तु ६/२९०
दुइकार्ये अवधूत ३/१४८
दुइगुण जाँहा, ताँहा ७/१२७
दुइ-ठाञि अपराधे ५/१२०
दुइ त' ईश्वरे तोर ५/११७
दुइदिके दुइपत्र ६/२९७
दुइ प्रकारे सहिष्णुता २०/२२
दुइ वस्तु महाप्रभुर ६/२८९
दुर्गति ना हय तार २/१५९
दुर्दैव-झण्झापवने १५/६८
दुर्दैव सेवक यदि ४/४७
दुर्वार इन्द्रिय करे २/११८
दुर्वासार ठाञि तेंहो ६/११६
दूरे गान शुनि' १३/८०
दूरे रहि' भक्ति करिह १३/३७
देखा दिया मन हरि' १५/८०
देखि एइ उपाये १७/५५
देखिते ना पारो २/११७
देखि' त्रास उपजिल २/१४४
देखेन, एक जालिया १८/४४
देखे, शीघ्र आसि' २/६२
देखे,—हरिदास ११/१७
देखों,—यदि कृष्ण १४/१०६
देहत्यागादि जत, सब ४/५७
देहत्यागादि तमो-धर्म ४/६०
देहत्यागे कृष्ण ना पाइ ४/५६
देह' देह' बलि' ११/८८
देह-देही-भेद ईश्वरे ५/१२१
देहमात्र धन तोमाय १२/७४
देहेर स्वभावे करेन १४/३९
दैन्य-वैराग्य पाण्डित्येर १/२०१
द्रव्य देह' राजा मागे ९/५२
द्वादश वत्सर ऐछे २०/६९
द्वार चाहि' फिरि' शीघ्र १९/६३
द्वार माना, हरिदास २/११४
द्वारे बसि' शुन तुमि ३/२४०
द्वैते' भद्राभद्र-ज्ञान ४/१७६

ध

धन, जन नाहि मागों २०/३०
धर्म छाड़ाय वेणुद्वारे १७/३६
धाञा जायेन प्रभु १३/८३
ध्याने तबे प्रभु ६/७७

न

नयने देखिमु तोमार ११/३३
निवेदन-प्रभावेह तबु ९/११४
ना कहिले हय मोर २०/१००
ना गणि आपन-दु:ख २०/५२
नाटक-लक्षण सब १/१९३
नाटकालङ्कार'-ज्ञान ५/१०४
नाना-भाव-चन्द्रोदये २०/६६
नाना-रोगग्रस्त २०/९४
नाम-प्रेम आस्वादिला ३/२६२
नामसङ्कीर्त्तन—कलौ २०/८
नाम-सङ्कीर्त्तने हय २०/११
नाम समाप्त हैले करिमु ३/२४०
ना मानिले दु:खी ६/२७६
नामाभास हैते हय ३/६१
नामाभासे 'मुक्ति' हय ३/६४
नामेर अक्षर - सबेर ३/५९
नामेर फले कृष्णपदे ३/१७७, ७/१०४
नामेर महिमा जेंह ११/९९
नामेर माधुरी ऐछे १/१०१
नामेर सहित प्राण ११/५६
नारद-प्रह्लादादि आसे ३/२६१
नारायण-हृदि स्थिति २०/६०
निकटे ना आइस ६/५०
निगूढ़ चैतन्यलीला ७/१६५
निज-कृपागुणे प्रभु १२/८३
निज-देहे जे कार्य ४/९५
निज-भक्ते दण्ड करेन २/१४३
निज-सुखे माने लाभ २०/५५
नित्यसिद्ध सेइ ५/५०
नित्यानन्द-कृपापात्र २०/८२
नित्यानन्दप्रभु भोके १२/१९
नित्यानन्दे आज्ञा दिलुँ १२/६९
नित्यानन्दे कहिला १२/८१
नित्यानन्देर नृत्य ६/१०४
निरन्तर नाम कर ३/१३६
निरपराधे नाम लैले ४/७१
निरपेक्ष' नहिले ३/२३
निर्विकार देह-मन ५/४१
निर्विघ्ने चैतन्य पाङ ६/१३३
निर्विण्ण हइनु, मोते ९/१३९
निषेधिह इँहारे ४/८८
निष्किञ्चन भक्त खाड़ा ६/२१६
निस्तारेर हेतु २/३
नीच-जाति नहे ४/६६
नीच-शूद्र-द्वारा ५/८४
नेत्रजले सेइ शिला ६/२९२

प

पड़ियाछों भवार्णवे २०/३३
पञ्चगुणे करे १५/८
पञ्चरोग-पीड़ा २०/९४
पण्डित कहे,—''जे खाइबे १२/१३४
पण्डित हञा मने ३/१५
पण्डिते ना बुझे १९/१०८
पण्डितेर भाव-मुद्रा ७/१५९
पण्डितेह तार चेष्टा १९/१०४
पतिर आज्ञा,—निरन्तर ७/१०३
पतिर आज्ञा पतिव्रता ७/१०३
पतिव्रता हञा पतिर ७/१००
पथे जाइते तैल १२/११४
पथे 'सिजेर बाड़ी' १३/८१
परम दुर्लभ एइ १६/१३५
परमार्थ जाय, आर ६/२२५
परमार्थे प्रभुर कृपा ९/१०८
परविधि 'निन्दा' करे ८/७७
परेर द्रव्य तुमि केने ४/७७
परेर स्थाप्य द्रव्य ४/८८
पाँचगण्डार पात्र हय ९/४०

पाइनु वृन्दावननाथ	१४/३७	प्रभु कहे,—''अज्ञ बालक	८/६६
पाञा कृष्णेर लीला	१४/१०५	प्रभु कहे,—''एइ जे दिला	१६/९७
पाद-सम्वाहन कैल	१०/९०	प्रभु कहे,—''एइ शिला	६/२९४
पार्श्वे गाँथा गुञ्जामाला	६/२८९	प्रभु कहे,—''कर वा	१०/८८
पिकस्वर-कण्ठ	१३/१२८	प्रभु कहे,—''कृष्णकृपा	६/१९३
पिछे निन्दा करे	८/१५	प्रभु कहे,—''कृष्णनामेर	७/८१
पिपीलिका मैले	११/४१	प्रभु कहे,—''कोन व्याधि	११/२३
पुत्र-भृत्य-रूपे तुमि	६/२०२	प्रभु कहे,—''गोविन्द	१३/८५
पुत्र 'वातुल' हइल	६/३८	प्रभु कहे,—''तुमि 'पण्डित'	७/१२७
पुनः पुनः सर्वशास्त्रे	१६/६१	प्रभु कहे,—''तोमार देह	४/७६
पुनरपि सेइ पथे	१३/८४	प्रभु कहे,—''भागवतार्थ	७/७८
पुरीदास बलि' नाम	१२/४७	प्रभु कहे,—''भाल कैल	६/२८४
पुरीर स्वभाव	८/७१	प्रभु कहे,—मोर वश	२/१२४
पुष्पगन्ध लञा बहे	१९/८१	प्रभु कहे,—''रामानन्द	५/७७
पूजा-काले देखे शिलाय	६/३००	प्रभु कहे,—रूपे कृपा	१/५६
पूजा-निर्वाहण हैले	१९/२७	प्रभु कहे,—''वृद्ध	११/२४
पूजा लागि' कत काल	१९/२६	प्रभु कहे,—'वैरागी	२/११७
पूजिते चाहिये आमि	६/१५०	प्रभु कहे,—''वैष्णव देह	४/१९१
पूर्ण-षड़ैश्वर्य चैतन्य	५/११९	प्रभु कहे,—''शक्ति नाहि	१०/८६
पूर्णानन्द-चित् स्वरूप	५/११८	प्रभु कहे,—''सन्यासीर	१२/१०८
पूर्व प्राय यथावत्	१४/७१	प्रभु कहे,—''समुद्र एइ	११/६४
पूर्वे आमि राम-नाम	३/२५४	प्रभु कहे,—''हरिदास	११/३७
पूर्वे जेन रघुनाथ	३/८०	प्रभु कहेन,—''उद्वेगे घरे	१९/६३
पृथिवीते भक्त नाहि	७/४४	प्रभु कहेन,—''कृष्णकथा	५/७
पृथिवीते विज्ञवर	१/२००	प्रभु कहेन,—''तुमि ना	७/१०२
पेटाङ्गि-गाय करे	१२/३७	प्रभु-कृपापात्र	२/१५८
पेटेर भितर हस्त-पाद	१७/१६	प्रभुगणे जाँर देखे	३/४५
प्रकृति-दर्शन कैले	२/१६५	प्रभु ताँर उपर करेन	१९/६८
प्रकृति-दर्शने स्थिर	५/३६	प्रभु ना खाइले	११/८५
प्रकृति-सम्भाषी वैरागी	२/१२४	प्रभु पड़ि' आछेन	१४/६४
प्रचार करेन केह	४/१०२	प्रभु-पादतले शङ्कर	१९/६८
प्रतिध्वनि' नहे	३/७०	प्रभु-पादोपाधान बलि'	१९/६९
प्रतीत करिते कहि	३/२५९	प्रभु बले,—''निति-निति	६/३२४
प्रभु कहे,—''अङ्ग आमि	१०/८७	प्रभु-भङ्गी एइ	२/१५९

प्रभुमात्र बुझेन १९/१८
प्रभुर अत्यन्त प्रिय १९/४
प्रभुर 'अन्तरङ्ग' बलि' ६/११
प्रभुर आगे आङ्गिनाते १२/११९
प्रभुर आज्ञाय कृष्णकथा ५/५८
प्रभुर गम्भीर-लीला २०/७७
प्रभुर जतेक गुण ८/४१
प्रभुर विच्छेदे कार १८/३९
प्रभुर विरहोन्माद १४/५
प्रभुर 'शिक्षाष्टक'- श्लोक २०/६५
प्रभुर सङ्गे जत महान्त ६/१५०
प्रभु लेखा करे २/१०५
प्रभु हासि' कहे,—''स्वामी ७/१११
प्रश्रय-प्रागल्भ्य शुद्ध १२/६०
प्रसन्न ना हय इहाय ६/२७४
प्रसाद-कड़ार-सह १३/१३४
प्रसाद मागिये भिक्षा ११/७४
प्रसिद्धा वैष्णवी हैल ३/१४१
प्राकृत' हेलेह तोमार ४/१७४
प्राण-रक्षा लागि' जेबा ६/३१३
प्राण-राज्य करों ९/९६
प्रीति-स्वभावे काँहाते ४/१७१
प्रेमधन बिना व्यर्थ २०/३७
प्रेम-परकाश नहे ७/१४
प्रेम बिना कृष्णप्राप्ति ४/५८
प्रेमवश गौरप्रभु २/८१
प्रेमवाची 'हा'-शब्द ३/५८
प्रेमार विकार वर्णिते १८/१९
प्रेमावेशे पड़िला १८/६५
प्रेमी भक्त वियोगे ४/६१
प्रेमे आज्ञा भाङ्गिले १०/८
प्रेमे कृष्ण मिले ४/६१
प्रेमेर स्वभाव,—जाँहा २०/२८
प्रेमेर 'स्वरूप' जाने १२/१५४

फ

फलाभास' एइ,—जाते ९/१३७

ब

बड़ बड़ वैष्णव ३/१४१
बसि' कृष्णनाम मात्र ७/७९
बहुजन्म पुण्य करे १६/१३१
बहुदिनेर अपराधे ३/१४६
बाउल' हञा आमि १९/९
बाउलके कहिह,—लोक १९/२०
बान्धे सबारे ५/१४५
बार बार गोविन्द कहे १०/८७
बालिश—तथापि शिशु ५/१४०
बालुकार गर्त्त करि' ११/६६
बासि' 'विस्वाद' नहे १०/१२६
बाहिरे जड़िमा १७/१७
बाह्य अर्थ करिबारे ३/४८
बाह्यार्थ जेइ लय ७/१६४
बाह्ये प्रकाशिते ३/८९
बिश, पञ्चदश, बार ६/१५१
बुझिते ना पारि १४/६
बुद्धि-प्रवेश नाहि २०/७७
बुद्धि भ्रष्ट हैल २/९४
ब्रह्मलोक-आदि सुख ६/१३६
ब्रह्मस्व-अधिक एइ ९/८९
ब्रह्मादि-दुर्लभ एइ १६/९७
ब्रह्मार दुर्लभ तोमार १२/२९
ब्रह्मा-शिव-आदि जार ९/११५
ब्रह्मा-शिव-सनकादि ३/२६०
ब्राह्मणेर सेवा',—एइ १३/९७

भ

'भकतवत्सल' तुमि ११/४२
भक्त-चित्ते भक्त-गृहे ६/१२४
भक्त-ठाञि लुकाइते ३/९०

भक्तपदधूलि आर १६/६०
भक्त-प्रेमार जे-दशा १८/१६
भक्त-भक्ति-कृष्ण-तत्त्व ४/२१९
भक्तभाव अङ्गीकरे १८/१७
भक्तभुक्त-शेष १६/६०
'भक्तशेष' हैले १६/५९
भक्त-स्वभाव ३/२११
भक्ति', 'प्रेम', 'तत्त्व' कहे ५/८५
भक्ति' बिना कृष्णे कभु ४/५८
भक्ति सिद्धान्त-सिन्धु ५/१०३
भक्तिसुख-आगे ३/१९४
भक्तेर प्रेम-विकार देखि' १८/१५
भजनेर मध्ये श्रेष्ठ ४/७०
भद्राभद्र-वस्तुज्ञान नाहि ४/१७४
भवसिन्धु तरिवारे ११/१०७
भागवत पड़, सदा १३/१२१
भागवतार्थ शुनिते ७/७८
भागवते स्वामीर व्याख्यान ७/१०९
भारत-भूमिते जन्मि' ४/९८
भाल कैल, वैरागीर ६/२२२
भाल ना खाइबे, आर ६/२३६
भाल, मन्द— किछु आमि ५/६२
भाल हैल,—जानिया से ६/२८०
भावग्राही महाप्रभु १०/१८
भावानुरूप श्लोक १७/६
भावुकेर सिद्धान्त शुन ३/१९१
भितर-घरे गेला १०/८९
भूत नहे, तेंहो १८/६४
भूत-प्रेत आमार १८/५७
भोके मरि' गेनु १२/२०

म

मड़ा-रूप धरि' १८/५४
मदनमोहन-नाट १९/९८
मधुर प्रसङ्ग इँहार १/१९८
मधुर-मर्दने प्रभुर १०/९०
मध्याह्ने आसिमु, एबे १२/१२२
मनुष्य' नहे राय ५/७१
मने मने जपे १६/७२
मनेर सन्तोषे ३/८९
मन्त्र पाञा कार १६/७१
मन्द मन्द करितेछेन ११/१७
मरुक आमार तिन १२/२३
मर्दनिया एक राख १२/११२
मर्यादा-पालन हय ४/१३०
मर्यादा राखिले, तुष्ट ४/१३२
मर्यादा-लङ्घन आमि ४/१६६
मर्यादा-लङ्घने लोक ४/१३१
मलिन मन हैले ६/२७८
महदनुग्रह-निग्रहेर ८/३०
महदपराधेर फल ३/१४४
महा-अपराध हय प्रभुर १०/९९
महानुभवेर एइ ५/७८
महान्तेर अपमान ३/१६३
महाप्रभु-नित्यानन्द १९/१०९
महाप्रभु पादांगुष्ठ १२/५०
महाप्रभुर आगे, आर ४/१२
महाप्रभुर आसन डाहिने ६/१०७
महाप्रभुर कृपा-ऋण १२/८३
महाप्रभुर दत्त माला १३/१३४
महाप्रभुर दर्शन पाय ६/८२
महाप्रभुर प्रसाद जानि' १३/५२
महाप्रभुर भक्तगणेर ५/२१, ६/२२०
महाप्रभुर श्रीहस्ते ११/८२
महाप्रसाद आनियाछ ११/१९
महाभागवत जेइ, कृष्ण २/९६
महाभागवत तुमि ३/२५०
महाभागवत तेंहो १६/६

महाभागवत हरिदास ११/१०५
महा-महा-विप्र एथा ३/२१७
महा-मादक हय एइ १६/११३
महायोगेश्वर आचार्य १९/२८
महाविषय कर, किबा ९/१४१
महिषीर गीत जेन १९/१०८
मागिया खाञा करे ६/२२३
मागिले वा केने दिबे ९/४०
मातार जैछे बालकेर ४/१८६
मातृभक्तगणेर प्रभु १९/१४
मानसेइ कृष्णचन्द्रे १६/३३
माया-दासी 'प्रेम' मागे ३/२६४
मायावाद शुनिवारे २/९४
मायावाद-श्रवणे २/९६
मायावादी सन्यासी आमि ७/१६
माहितिर भगिनीर नाम २/१०४
मुइ तार घरे जाञा २०/५६
'मुक्ति' तुच्छ-फल ३/१८५
मुक्ति-हेतु तारकब्रह्म ३/२५५
मुखर जगतेर मुख ३/१४
मुखे फेन, पुलकाङ्ग १७/१६
मुञि कोन् क्षुद्र १/१७३
मुद्रा देह' विचारि' ६/१५१
मोर द्रव्य लइत चित्त ६/२७५
मोर पादजल जेन १६/४३
मोर मुखे कथा ५/७४
मोर मुखे कथा कहेन ५/७३
'मोर सखा', 'मोर पुत्र' ७/३१
मोर सुख—सेवने २०/५९
मोरे 'चैतन्य' देह' ६/१३२
मोरे दिते मनः पीड़ा २०/५१
मोरे पियाओ ४/१६३
मोरे मुख ना देखाबि ८/२२
मोरे यदि दिया दुःख २०/५२
मोरे शिक्षा देह' ८/६७

य

यति हञा जिह्वा-लाम्पट्य ८/८३
यतिर धर्म,—प्राण ८/८३
यथायोग्य उदर भरे ८/६४
यद्यपि अन्यत्र सङ्केते ३/५५
यद्यपि ओ तुमि हओ ४/१२९
यद्यपि काहार 'ममता' ४/१७१
यद्यपि ब्रह्मण्य करे ६/१९८
यद्यपि मासेकेर बासि १०/१२५
यद्यपिह प्रभु—कोटिसमुद्र २०/६६
यद्वा तद्वा' कविर वाक्ये ५/१०२
यमुनाते जलकेलि १८/३२
यमुनार जले महारङ्गे १८/८१
यवन सकलेर 'मुक्ति' ३/५३
योग्य जन नाहि पाय १६/१३७

र

रक्तवस्त्र 'वैष्णवेर' १३/६१
रघुनाथ कहे मने ६/१९४
रघुनाथ-दासेर तेंहो १६/८
रघुनाथेर नियम ६/३०९
रघुनाथेर पादपद्मे ४/४०
'रस' 'रसाभास' जार ५/१०३
'रसाभास' हय यदि ५/९७
रागानुग-मार्गे ५/५१
राघवेर घरे रान्धे ६/११५
राजदण्ड्य हय सेइ ९/९०
राज-द्रव्य शोधि' पाय ९/३३
राजहंस-मध्ये जेन ७/९८
राजार वर्त्तन खाय ९/९०
'राज्य-विषय'-फल एइ ९/१०९
रातुल वस्त्र देखि' १३/५२
रात्रिकाले बाड़े प्रभुर ६/७

रात्रे राय-स्वरूप-सने ११/१२
राधिकादि गोपीगण १८/८१
राधिकार भावे प्रभुर १४/१४
रामचन्द्र-खाँन अपराध बीज ३/१४३
रामदास कहे,—'आमि १३/९७
'राम' दुइ अक्षर ३/५८
रामानन्देर कृष्णकथा ६/६
राय कहे,—''ईश्वर तुमि १/२०३
राय कहे,—''कह सहज १/१४९
राय कहे,—''रुपेर काव्य १/१८०
राय, भट्टाचार्य बोले १/११५
रासस्थलीर बालु १३/६७
रूप कहे,—''काँहा तुमि १/१७३
रूप-गोसाञि कहे १/१४९
रौरव हइते मोरे ११/२८

ल

लइते ना पारि ताँर ७/१०९
लक्ष्मी-आदि करि' ३/२६२
लालकेर लाल्ये नहे ४/१८४
लाल्यामेध्य' लालकेर ४/१८७
लीलामृत-वरिषणे १५/६८
लीला सम्वरिबे तुमि ११/३१
लोक-हित लागि' २/१३६

व

वन्दयाभावे 'अनम्र' ५/१४१
वाचाल' कहिये—'वेदप्रवर्त्तक' ५/१४०
वामन हञा जेन चान्द ६/१२९
वायु जैछे सिन्धु-जलेर १८/२०
विदग्ध-आत्मीय-वाक्य ५/१०७
विद्यापति, चण्डीदास १७/६
विद्युतप्राय देखा १४/७८
विप्रेर श्राद्धपात्र खाइनु ११/३०
विरक्त सन्यासी तोमार ९/६८
विरह-वेदनाय प्रभुर ६/६
''विवाह ना करिह'' बलि' १३/११२
विश्वास करिया कर १६/६२
विश्वास करिया शुन ३/२२६
विषय लागि' तोमा भजे ९/६९
विषय-सुख दिते प्रभुर ९/११४
विषयीर अन्न खाइले ६/२७८
विषयीर अन्न हय ६/२७९
विषयीर द्रव्य लञा ६/२७४
विषयी' हञा सन्यासीरे ५/८०
वृक्ष जेन काटिलेह २०/२३
वृद्ध, जरातुर आमि २०/९३
वृद्ध माता-पितार १३/११३
वृद्धा तपस्विनी आर २/१०४
वेणुनाद अमृत-घोले १७/३८
वेश्यागणे आनि' ३/१०३
वेश्यार भितरे तारे ७/१११
वैरागी करिबे सदा ६/२२३
वैरागीर कृत्य—सदा ६/२२६
वैरागी हञा एत खाय ८/१४
वैरागी हञा करे ६/२२५
वैरागी हञा जेबा ६/२२४
वैराग्येर कथा ताँर ६/३११
वैष्णवधर्म निन्दा करे ३/१४६
वैष्णव-पाश भागवत १३/११३
वैष्णव हञा जेबा शारीरक २/९५
वैष्णवेर उच्छिष्ट खाइते १६/८
वैष्णवेर कर्त्तव्य जाँहा ४/२२१
वैष्णवे'र तेज देखि' ७/६०
वैष्णवेर निन्द्य-कर्म १३/१३३
वैष्णवेर शेष-भक्षणेर १६/५७
व्यवहार लागि' तोमा भजे ९/६८
व्यवहारे-परमार्थे ४/१५९
व्यवहित हैलेह ३/५९

व्याकरण नाहि जाने ५/१०४
व्रज छाड़ि' कृष्ण कभु १/६६
व्रजलीला-प्रेमरस जेन १/१९९
व्रजवधु-सङ्गे ५/४५
व्रजे राधाकृष्ण-सेवा ६/२३७
व्रजेश्वर-शुद्धप्रेम २०/६२

श

शङ्कर-पण्डिते प्रभुर १९/६७
शङ्करानन्द-सरस्वती ६/२८८
शङ्ख-घण्टा-आदि १६/८८
शचीर मन्दिरे, आर २/३४
शत-जनेर भक्ष्य १०/१२७
शब्द ना पाञा १४/६०
शरीर सुस्थ हय मोर ११/२२
शाक-पत्र-फल-मूल ६/२२६
शाखा-चन्द्र-न्याय १७/६५
'शास्ति'-छले कृपा कर १२/२८
शास्त्र करि' कतकाल ४/२३५
शास्त्र लोकातीत जेइ १४/८२
शास्त्रे कहे,—नामाभास ३/१९३
शास्त्रे जेइ दुइ धर्म ८/७५
शिखि-माहिति—तिन २/१०६
शिरेर पाथर जेन ८/९५
शिला दिया गोसाञि ६/३०७
शिलारे कहेन प्रभु ६/२९२
शिवानन्देर पत्नी ताँरे १२/२२
शिश्नोदरपरायण ६/२२७
शिष्य हञा गुरुके ८/१८
शीघ्र आसिह, ताँहा १३/३९
शुइया रहिला घरे १२/१२०
शुकाञा मैलेह २०/२३
शुद्ध कृपा कर, गोसाञि ९/१३९
शुद्धप्रेम' व्रजदेवीर ७/३९
शुद्धभक्ति' कृष्ण-ठाञि २०/२७
शुद्धभक्ति देह' मोरे २०/३०
शुद्धभावे व्रजेश्वरी ७/३०
शुद्धभावे सखा करे ७/३०
'शुद्धवैष्णव' नहे ६/१९८
शुनिते शुनिते जुड़ाय १९/१११
शुनि' नित्यानन्द प्रभुर १२/३१
शुनिया आनन्द हैल ६/५१
शुनि' शिवानन्देर पत्नी १२/२१
शुष्क-ब्रह्मज्ञानी, नाहि ८/२५
श्रद्धा करि' एइ लीला ५/१६३
श्रद्धा करि' शुन इहा १९/११०
श्रद्धा करि' शुन सेइ ११/१०७
श्रीकृष्णचरणे ताँर २०/२६
श्रीकृष्णचैतन्यप्रभु ५/१५३
श्रीकृष्णचैतन्य-लीला ५/१६२
श्रीकृष्णचैतन्य'—शब्द ११/५६
श्रीचैतन्य चरितामृत—नित्य १९/१११
श्रीचैतन्यलीला एइ ५/८८
श्रीधर-उपरे गर्वे ७/१३०
श्रीधर स्वामी नाहि मान ७/१२८
श्रीधर स्वामी निन्दि' ७/१२८
श्रीधर स्वामी प्रसादे ७/१२९
श्रीधरानुगत कर ७/१३२
श्रीधरेर अनुगत ७/१३१
श्रीभागवत-शास्त्र ५/४४
श्रीमदनगोपाल मोरे २०/९९
श्रीराधार प्रलाप १९/१०७
श्रीरूप-द्वारा व्रजेर ५/८७
श्रीवास-कीर्त्तने २/३४
श्रोतार पदरेणु २०/१५२

ष

षड़दर्शने जगद्गुरु ७/२१
षोड़शोपचार-पूजाय ६/३०२

स

संख्या-कीर्त्तन पूरे ११/१९
संख्या-नाम-कीर्त्तन जावत् ३/११३
संख्या-नाम पूर्ण मोर ७/७९
संख्या-नाम-सङ्कीर्त्तन ३/२३८
संख्या लागि' दुइ ९/५७
सकल जगते ३/७१
सकल मङ्गल ताहे ४/४३
सङ्कीर्त्तन हैते पाप २०/१३
सङ्कीर्त्तनयज्ञे कलौ २०/९
सखि हे, कृष्णगन्ध १९/९३
सचेतन रहु दूरे १६/१२४
सत्कुल विप्र नहे ४/६६
सनातन ग्रन्थ कैला ४/२१९
सनातन, देहत्यागे ४/५५
सनातन-द्वारा भक्ति ५/८६
सनातनेर क्लेदे ४/१८७
सन्यास करिया सदा १९/१४
सन्यासी,पण्डितगणेर ५/८४
सन्यासी-मानुष आमार १३/१५
सन्यासी हञा करे ८/४२
सन्यासीर तबे सिद्ध ८/६४
सन्यासीर धर्म नहे ८/६२
सन्यासीरे एत खाउयाञा ८/१४
सब जीव प्रेमे भासे ३/२५२
सब त्यजि' भजि जाँरे १९/५१
सब भक्तद्वारे ताँरे ६/१४४
सब मुक्त करि' ३/७८
सब लोक मान्य करि' ७/१३१
सब-लोके निस्तारिला ५/१५३
सबे एइ आस्वाद कर १६/११४
सबे कृपा करि' १/१९९
सबे कृष्ण भजन करे १३/१३३
सबे गाय,—''जय जय ११/९९
सबे चारि-दण्ड आहार ६/३१०
सबे देखि—हय १४/७८
सबे रामानन्द जाने ५/७
समुद्रेर मध्ये २०/८१
सर्वज्ञ कृपालु तुमि ४/७४
सर्वत्र 'व्यापक' प्रभुर ६/१२५
सर्वनाश हबे तोर ३/२००
सर्वभक्त-पदरेणु ११/५४
सर्वभावे भज, लोक १७/६९
सर्वलोक उद्धारिते २/३
सर्वलोकेर निन्दा करे ८/२५
सर्वशास्त्रे कृष्णभक्तये ७/१८
सर्व-शुभोदय कृष्णे २०/११
सर्वोत्तम भजन एइ ७/४२
सहज' धर्म कहे ८/८२
सहजेइ पिपीलिका ८/४९
सहस्र-वदने जबे १८/१३
सहस्रादि पूर्ण हैले ९/५७
सहिते ना पारे प्रभु ५/९७
साड़े सात प्रहर जाय ६/३१०
सात्विक-सेवा एइ ६/२९६
साधक ना पाय ४/६०
'साधुकृपा', 'नाम' बिना ३/२६४
सामान्य भाग्य हैते १६/९९
सावधाने प्रभुर कैला ६/३१२
सिंहद्वारे आसि' ११/७३
सिंहद्वारे भिक्षा-वृत्ति ६/२८४
सिद्ध-देह तुमि ११/२४
सिद्धदेह-तुल्य ५/५१
सिद्धान्तविरुद्ध शुनिते ५/१०२
सिद्धान्तसार ग्रन्थ कैला ४/२२०
सुकृति-लभ्य फेला-लव १६/९६
सुकृति'-शब्दे कहे १६/१००
सुख करि' माने विषय ६/१९७

सुदृढ़ सरलभावे ७/१५८
सुस्थ हओ, हरिदास ११/२१
सूक्ष्मजीवे पुनः ३/७८
से कार्य कराइबे ४/९५
से जैछे तृष्णाय २०/९०
से फेलार एक लव १६/१३१
सेइ अपराधे इँहार ८/२४
सेइ आचरिब, जेइ शास्त्रमत ३/२१९
सेइ कर्म कराय, जाते ६/१९९
सेइ कर्म निरन्तर ८/७५
सेइकाले कृष्ण तारे ४/१९२
सेइकाले देवदासी १३/७८
सेइ कुण्डल काणे १४/४४
सेइ कृपा 'कारण' हैल ३/१६९
सेइ जाँर हय १६/१००
सेइ ठाकुर धन्य ४/४७
सेइ त' सुमेधा २०/९
सेइ दश दशा १४/५२
सेइ दशा कहेन भक्त १८/७८
सेइ देह करे तार ४/१९३
सेइ द्वारा आर सब ७/१६३
सेइ प्रभु धन्य ४/४६
सेइ प्रेमांकुरेर वृक्ष ८/३४
सेइ बीज वृक्ष हञा ३/१४३
सेइ बुझे, गौरचन्द्रे ७/१६५
सेइ बुझे, ताँर पदे ९/१५१
सेइ भक्त धन्य ४/४६
सेइ भक्ष्य-भोज्य-पान १६/१३०
सेइ भावे आपनाके १४/१४
सेइ माने,—'कृष्णे मोर २०/२८
सेइ लीला प्रभु ११/३२
सेइ व्याख्या करेन ७/११०
सेइ हय 'पुरुषाधम' ५/१४४
सेइ हैते अभ्यन्तरे ६/१५५
सेकाले ए दुइ १४/८
सेवा लागि' कोटि १०/९६
सेव्य-सेवक-भाव छाड़ि' २/९५
स्तम्भिल सूर्येर गति २०/५७
'स्त्री-गान' बलि' गोविन्द १३/८३
स्त्री-नाम शुनि' १३/८४
स्त्री-परश हैले १३/८५
स्त्री, पुरुष, के गाय १३/८०
स्थिरचर जीवेर ३/७५
स्नान, दर्शन, भोजन १५/६
स्मरणेर काले गले ६/२९०
स्वकर्मफलभुक् २/१६३
स्वतन्त्र ईश्वर तुमि ११/२९
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा ११/९४
स्व-निमित्त अपराधाभासे' १०/९६
स्वप्नेह छाड़िल सबे २/१४४
स्वभक्तेर गाढ़-अनुराग २/१६८
स्वरूप कहे,—''ऐछे ६/३२०
स्वरूप कहे,—''तथापि २/९८
स्वरूप कहे,—''सिंहद्वारे ६/२८३
स्वरूप-गोसाञि २/१०६
स्वरूप-गोसाञि तारे १८/४५
स्वरूप, देह,—चिदानन्द ५/१२२
स्वरूप—'सूत्रकर्त्ता' १४/१०
'स्वरूपेर रघु' ६/२०३
स्वरूपेर सङ्गे ७/४५
स्वहस्ते करेन मलमूत्रादि ८/२६
स्वामी-आज्ञा पाले,—एइ ७/१०२

ह

हंस-मध्ये बक ५/१२९
हरिदास आछिल पृथिवीर ११/९७
हरिदास कहे,—''आजि ११/१८
हरिदास कहेन,—''केने ३/१९३
हरिदास कहेन,—''जैछे ३/१८२

हरिदास कहेन,—'नामेर	३/१७७	हर्षे प्रभु कहेन,—''शुन	२०/८
हरिदास कृपा करेन	३/१६९	हस्त हाले, मनोबुद्धि	२०/९३
हरिदास-ठाकुर	७/४६	'हा राम, हा राम'	३/५३
हरिदास-ठाकुरे	३/२००	हासे, कान्दे, नाचे	१८/४४
हरिदास-ठाकुरेर	११/७४	हा हा कृष्ण प्राणधन	१७/६०
हरिदास-द्वारा नाम	५/८६	हाहा कृष्ण प्राणनाथ	१२/५
हरिदासे दिते गेला	११/१६	हा हा श्यामसुन्दर	१७/६०
हरिदासे समुद्र-जले	११/६४	हित-निमित्त आइलाङ	४/१४०
हरिदासेर अपराधे	३/१४५	हुङ्कार करिया प्रभु	१८/७५
हरिदासेर इच्छा जबे	११/९५	हृदय-उपरे धरों	२०/५८
हरिदासेर कृपापात्र	३/१६६	हृदये धरिमु तोमार	११/३३
हरिदासेर कैल तेह	४/१४	हृदरोग-काम ताँर	५/४६
हरिदासेर पादोदक	११/६५	हेनकाले 'गोपाल	१६/८८
'हरिबोल' 'हरिबोल' बलेन	११/६८	हेन चरण-स्पर्श	१२/२९
'हरिभक्तिविलास'-ग्रन्थ कैला	४/२२१	हेन 'रस' मोरे पान	५/७६
'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण'	९/५६	हेन वंश घृणा	४/२९

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रो विजयतेतमाम्

श्रीश्रीचैतन्यचरितामृत

❋❋❋

अन्त्यलीला

❋❋❋

प्रथम परिच्छेद

कथासार—महाप्रभु के श्रीवृन्दावन से श्रीक्षेत्र में आगमन की वार्त्ता को सुनकर गौड़ देश के भक्तों ने पुरुषोत्तम धाम की यात्रा की। शिवानन्द सेन [केवल अन्यान्य यात्रियों को ही नहीं, अपितु] एक कुत्ते तक को भी पार कराने का खर्च देकर ले जा रहे थे। एक रात [मार्ग में] उस कुत्ते को भोजन नहीं देने के कारण वह [यात्रियों के सङ्ग को छोड़कर अकेला] श्रीमन्महाप्रभु के पास चला गया। शिवानन्द आदि ने अगले दिन महाप्रभु के निकट पहुँचकर देखा कि वह कुत्ता श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रदान की गयी नारियल की गिरि के प्रसाद को खा रहा है; बाद में वह कुत्ता उद्धार प्राप्त करके (वैकुण्ठ) चला गया। दूसरी ओर, श्रीरूप गोस्वामी वृन्दावन से यात्रा करके गौड़देश पहुँचे। [किन्तु गौड़देश के भक्त पहले ही नीलाचल के लिये प्रस्थान कर चुके थे, इसलिए श्रीरूप उन] भक्तों के साथ नहीं आ पाने के कारण कुछ दिन बाद में नीलाचल आकर हरिदास के साथ रहे। महाप्रभु श्रीरूप के द्वारा विरचित ''प्रियः सोऽयं'' श्लोक को पढ़कर बहुत ही आनन्दित हुए। एकदिन महाप्रभु ने रायरामानन्द, सार्वभौम इत्यादि भक्तों के साथ हरिदास के वासस्थान पर आकर श्रीरूप के 'ललित-माधव' और 'विदग्ध-माधव' नामक दो नाटकों के मुखबन्ध (प्राथमिक वन्दना) आदि श्लोकों का श्रवण किया। रामानन्द राय ने दोनों नाटकों के अनेक अङ्ग-प्रत्यङ्ग का विचार करके 'दोनों नाटक ही सर्वोत्कृष्ट हुए हैं,' ऐसा स्थिर किया। चातुर्मास्य के बाद गौड़देश के भक्तों ने प्रभु की आज्ञा से गौड़देश की यात्रा की। श्रीरूप गोस्वामी श्रीक्षेत्र में ही रहे।

(अः प्रः भाः)

परमदयालु परमेश्वर श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की वन्दना—

पंगुंलङ्घयते शैलं मूकमावर्त्तयेत् श्रुतिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे कृष्णचैतन्यमीश्वरम्॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। जिनकी कृपा लंगड़े को पर्वत पार करने की शक्ति प्रदान करती है एवं गूँगे को वेद का उच्चारण कराती है, मैं उन्हीं ईश्वर श्रीकृष्णचैतन्य की वन्दना करता हूँ।

अनुभाष्य

१। यत्कृपा (यत् यस्य चैतन्यचन्द्रस्य अनुकम्पा) पंगुं (पद-विक्षेपणशक्तिविहीनं जनं) शैलं (परमोच्च-गिरिशिखरं) लङ्घयते (उतारयति), मूकं (वाक्शक्तिविहीनं जनं) श्रुतिं (वेदम्) आवर्त्तयेत् (पाठयेत्), तम् ईश्वरं परमेश्वरं (कृष्णचैतन्यं महाप्रभुम्) अहं वन्दे।

सज्जनों की कृपा की याचना—

दुर्गमे पथि मेऽन्धस्य स्खलत्पादगतेर्मुहुः।
स्वकृपा-यष्टिदानेन सन्तः सन्त्ववलम्बनम्॥ २ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

२। साधुगण अपनी कृपा रूपी यष्टि (लाठी) देकर मुझ दुर्गम पथ में बारम्बार फिसलने वाले और अन्धे का सहारा बनें।

अनुभाष्य

२। सन्तः (साधवः) स्वकृपा-यष्टिदानेन (निज-दयारूपावलम्बन प्रदानेन) दुर्गमे (दुस्तरे) पथि (संसारे) मुहुः (पुनः पुनः) स्खलत्पादगतेः (विक्षिप्तचरणस्य पथभ्रष्टस्य) अन्धस्य (नयनविहीनस्य) मे (मम) अवलम्बनम् (आश्रयपदं) सन्तु (भवन्तु)।

श्रीरूप, सनातन, भट्ट-रघुनाथ।
श्रीजीव, गोपालभट्ट, दास रघुनाथ॥ ३ ॥
एइ छय गुरुर करों चरण वन्दन।
जाहा हैते विघ्ननाश, अभीष्ट-पूरण॥ ४ ॥

३-४। प० अनु०—मैं (श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी) श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी और श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी—इन छह गुरुओं के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिससे समस्त प्रकार के विघ्नों का नाश तथा अभीष्ट पूर्ण हो जाता है।

जयतां सुरतौ पङ्गोर्मम मन्दमतेर्गती।
मत्सर्वस्वपदाम्भोजौ राधा-मदनमोहनौ॥ ५ ॥

५। अनु०—मुझ जैसे पंगु एवं मन्दबुद्धि वाले की जो एकमात्र गति हैं तथा जिनके श्रीचरणकमल ही मेरे सर्वस्व धन हैं, वह परम कृपालु श्रीश्रीराधा-मदनमोहन जययुक्त हों।

अनुभाष्य

५। आदि-लीला के प्रथम परिच्छेद का १५ वाँ श्लोक द्रष्टव्य।

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः
श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ।
श्रीमद्राधा-श्रीलगोविन्ददेवौ
प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि॥ ६ ॥

६। अनु०—ज्योतिर्मय-शोभाविशिष्ट वृन्दावन के कल्पवृक्ष के नीचे, रत्नमन्दिर में स्थित सिंहासन के ऊपर विराजमान जिन श्रीश्रीराधागोविन्द की प्रिय सखीगण सेवा कर रही हैं, मैं उनका स्मरण करता हूँ।

अनुभाष्य

६। आदि-लीला के प्रथम परिच्छेद का १६ वाँ श्लोक द्रष्टव्य।

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः॥ ७ ॥

७। अनु०—वंशीवट के तट पर स्थित रासरसप्रवर्त्तक जो श्रीमद्गोपीनाथ वेणुध्वनि के द्वारा गोपियों का आकर्षण कर रहे हैं, वे हमारा मङ्गल विधान करें।

अनुभाष्य

७। आदि-लीला के प्रथम परिच्छेद का १७ वाँ श्लोक द्रष्टव्य।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा गौरभक्तवृन्द की जय हो।

अन्त्य-लीला का वर्णन आरम्भ—
मध्यलीला संक्षेपेते करिलुँ वर्णन।
अन्त्यलीला-वर्णन किछु शुन, भक्तगण॥ ९ ॥

९। प० अनु०—मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु की मध्य-लीला अर्थात् संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् छह वर्ष तक की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन कर चुका हूँ। हे भक्तो! अब श्रीचैतन्य महाप्रभु की अन्त्य अर्थात् अन्तिम अठारह वर्ष की लीलाओं का कुछ वर्णन कर रहा हूँ, आप श्रवण कीजिए।

पहले मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद में अन्त्य-लीला के सूत्र का वर्णन—
मध्यलीला-मध्ये अन्त्यलीला-सूत्रगण।
पूर्वग्रन्थे संक्षेपेते कैराछि वर्णन॥ १० ॥

१०। प० अनु०—मैंने मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद में अन्त्य-लीला के सूत्रों का संक्षेप में वर्णन किया है।

अनुभाष्य

१०। पूर्वग्रन्थे,—मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद में।

आमि जराग्रस्त, निकटे जानिया मरण।
अन्त्यलीलार कोन सूत्र कैराछि वर्णन॥ ११ ॥

११। प० अनु०—मैं वृद्धावस्था से ग्रस्त हूँ, मध्य-लीला का वर्णन करते समय अपने देहान्त की शीघ्र सम्भावना हेतु मैंने मध्य-लीला में ही श्रीमन्महाप्रभु की अन्त्यलीला के सूत्रों का भी वर्णन किया है।

उल्लेख नहीं किये गये सूत्रों के विस्तारपूर्वक वर्णन की प्रतिज्ञा—
पूर्व-लिखित ग्रन्थसूत्र अनुसारे।
जेइ नाहि लिखि, ताहा लिखिये विस्तारे॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—अब मध्य-लीला में लिखे उन्हीं पूर्व सूत्रों के अनुसार ही मैंने उनमें जो-जो विषय वस्तु विस्तार से नहीं लिखी थी, उसे विस्तार से लिख रहा हूँ।

गौड़ में श्रीमन्महाप्रभु के वृन्दावन से पुरी में आगमन की वार्त्ता का संदेश भेजना—
वृन्दावन हैते प्रभु नीलाचले आइला।
स्वरूप-गोसाञि गौड़े वार्त्ता पाठाइला॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन से नीलाचल श्रीजगन्नाथ पुरी आ गये। श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उनके लौट आने का सन्देश गौड़देश में भेजा।

शची के द्वारा संवाद श्रवण और भक्तों द्वारा पुरी जाने की चेष्टा—
शुनि' शची आनन्दित, सब भक्तगण।
सबे मिलि' नीलाचले करिला गमन॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के पुरी में आगमन के संवाद को सुनकर श्रीशची माता तथा गौड़देश के समस्त भक्त अत्यन्त आनन्दित हुए एवं वे सभी भक्त मिलकर नीलाचल की ओर चल दिये।

शिवानन्द के निकट समस्त भक्तों का आगमन—
कुलीनग्रामी भक्त आर जत खण्डवासी।
आचार्य, शिवानन्दे मिलिला सबे आसि'॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—कुलीनग्राम वासी तथा जितने भी श्रीखण्डवासी भक्त थे वे सर्वप्रथम श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के घर पर एकत्रित हुए तथा फिर वहाँ से उनके आनुगत्य में श्रीजगन्नाथपुरी जाने के मार्ग पर चलते हुए श्रीशिवानन्द सेन के वासस्थान पर साथ आकर उनसे मिले।

अनुभाष्य

१५। आचार्य,—श्रीअद्वैत आचार्य।

सभी की व्यवस्था करने वाले शिवानन्द—

शिवानन्द करे सबार घाटि समाधान।
सबारे पालन करे, देय वासा स्थान॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन नीलाचल जाने वाले समस्त भक्तों का यात्रा-कर चुका रहे थे, सभी के भोजन तथा वासस्थान का भी वही प्रबन्ध कर रहे थे।

शिवानन्द के भगवद्भक्त कुत्ते का वृत्तान्त—

एक कुकुर चले शिवानन्द-सने।
भक्ष्य दिया लञा चले करिया पालने॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन के साथ एक कुत्ता भी नीलाचल की ओर चल रहा था। श्रीशिवानन्द सेन उसे भी भोजन आदि देकर उसका पालन करते हुए उसे नीलाचल लेकर जा रहे थे।

एकदिन एकस्थाने नदी पार हैते।
उड़िया नाविक कुकुर ना चड़ाय नौकाते॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—एक दिन एक स्थान पर सभी यात्री नौका के द्वारा नदी पार कर रहे थे, किन्तु उड़ीसा-वासी नाविक (नौका चलाने वाले) ने कुत्ते को अपनी नौका में बैठाकर पार कराने से मना कर दिया।

कुकुर रहिला,—शिवानन्द दुःखी हैला।
दश पण कड़ि दिया कुकुरे पार कैला॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—कुत्ता पार होने से रह गया, वह वहीं खड़ा रहा,—ऐसा देखकर श्रीशिवानन्द सेन को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने [अन्यान्य यात्रियों के किराये की अपेक्षा कहीं अधिक] दस पण कौड़ी (दस आना) देकर कुत्ते को पार करवाया।

एकदिन शिवानन्द घाटिते रहिला।
कुकुरके भात दिते सेवक पासरिला॥ २० ॥

२०। प० अनु०—एकदिन श्रीशिवानन्द सेन को कर संग्रह करने वाले लोगों के स्थान पर देरी हो गयी तथा दूसरी ओर उनका सेवक कुत्ते को भोजन देना भूल गया।

अमृतप्रवाह भाष्य

२०। पासरिला,—भूल गया।

रात्रे आसि' शिवानन्द भोजनेर काले।
'कुकुर पाञाछे भात?'—सेवके पुछिले॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—रात्रि के समय में जब श्रीशिवानन्द सेन आये तथा भोजन करने बैठे, उसी समय उन्होंने अपने सेवक से पूछा, 'क्या कुत्ते ने भोजन किया है?'

कुकुर नाहि पाय भात, शुनि' दुःखी हैला।
कुकुर चाहिते दश-मनुष्य पाठाइला॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—जब श्रीशिवानन्द सेन ने अपने सेवक के मुख से सुना 'नहीं, कुत्ते को भोजन नहीं दिया गया' तब उन्हें बहुत दुःख हुआ, उन्होंने कुत्ते को ढूँढ़ने के लिये दस व्यक्तियों को भेजा।

अमृतप्रवाह भाष्य

२२। चाहिते,—खोजने (ढूँढ़ने)।

चाहिया ना पाइल कुकुर, लोक सब आइला।
दुःखी हञा शिवानन्द उपवास कैला॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—कुत्ते को सर्वत्र ढूँढ़ने पर भी जब वह नहीं मिला तब सभी लोग लौट आये। श्रीशिवानन्द सेन ने दुःखी होकर उस रात्रि उपवास किया।

प्रभाते कुकुर चाहि' काँहा ना पाइल।
सकल वैष्णवेर मने चमत्कार हैल॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—अगले दिन श्रीशिवानन्द सेन ने प्रातःकाल में भी कुत्ते को सर्वत्र ढूँढ़ा, किन्तु उसका कुछ भी पता नहीं चला, सभी वैष्णवों का मन आश्चर्यचकित रह गया [कि अन्ततः कुत्ता कहाँ चला गया?]

उत्कण्ठाय चलि' सबे आइला नीलाचले।
पूर्ववत् महाप्रभु मिलिला सकले॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये उत्कण्ठित थे, अतएव कुत्ते के विषय में निरुपाय होकर वे चलते-चलते नीलाचल आ पहुँचे। श्रीमन्महाप्रभु पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति सभी भक्तों से मिले।

सबा लञा कैला जगन्नाथ दरशन।
सबा लञा महाप्रभु करेन भोजन॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों को अपने साथ ले जाकर जगन्नाथ का दर्शन किया तथा उन्होंने सभी को अपने साथ बैठाकर भोजन किया।

पूर्ववत् सबारे प्रभु पाठाइला वासा-स्थाने।
प्रभु-स्थाने आर दिन सबार गमने॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों को उनके निर्दिष्ट वासस्थान पर भेजा। अगले दिन सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु से उनके वासस्थान पर मिलने के लिये आये।

आसिया देखिल सबे सेइ त' कुकुरे।
प्रभु-पाशे बसियाछे किछु अल्पदूरे॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—वहाँ आकर सभी भक्तों ने देखा कि वह कुत्ता श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान पर उन से थोड़ी दूरी पर ही बैठा हुआ है।

प्रसाद नारिकेल-शस्य देन फेलाञा।
'राम' 'कृष्ण' 'हरि' कह'—बलेन हासिया॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उसे नारियल प्रसाद की गिरि फैंककर दे रहे थे तथा 'राम', 'कृष्ण', 'हरि' बोलो—मुस्कुराते हुए उसे ऐसा कह रहे थे।

शस्य खाय कुकुर, 'कृष्ण' कहे बार बार।
देखिया लोकेर मने हैल चमत्कार॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—वह कुत्ता नारियल की गिरि खा रहा था तथा बार-बार 'कृष्ण' नाम का उच्चारण कर रहा था। उसे ऐसा करते देखकर सभी भक्तों के मन में अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

शिवानन्द कुकुर देखि' दण्डवत् कैला।
दैन्य करि' निज अपराध क्षमाइला॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने कुत्ते को देखकर उसे दण्डवत् प्रणाम किया तथा दीनतापूर्वक अपने द्वारा हुए अपराध के लिये क्षमा-प्रार्थना की।

कुत्ते की सिद्धि और वैकुण्ठ-प्राप्ति—
आर दिन केह तार देखा ना पाइला।
सिद्ध-देह पाञा कुकुर वैकुण्ठेते गेला॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०—अगले दिन वह कुत्ता किसी को दिखलायी नहीं दिया। वह कुत्ता सिद्ध-देह को प्राप्त करके वैकुण्ठ चला गया।

आलौकिक लीलामय प्रभु—
ऐछे दिव्यलीला करे शचीर नन्दन।
कुकुरके 'कृष्ण' कहाञा करिला मोचन॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—श्रीशचीनन्दन गौरहरि ऐसी अनेक दिव्यलीलाएँ करते हैं, उन्होंने कुत्ते के मुख से 'कृष्ण' कहलवाकर उसका उद्धार कर दिया।

श्रीरूप का वृन्दावन आगमन और नाटक की रचना-आरम्भ—
एथा प्रभु-आज्ञाय रूप आइला वृन्दावन।
कृष्णलीला-नाटक करिते हैल मन॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—दूसरी ओर, श्रीरूप गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा से प्रयाग से वृन्दावन आ गये तथा वहाँ उनकी कृष्णलीला-विषयक-नाटक ग्रन्थ लिखने की इच्छा हुयी। [लीला-विशेष के अभिनयात्मक ग्रन्थ को 'नाटक' कहते हैं। नाटक में 'गद्य' तथा 'पद्य'—दोनों प्राकृत भाषा में रहते हैं। नाटक में मूल-लीला

के नायक, नायिका तथा अन्यान्य परिकरों आदि के वेश में सजकर नाट्यकार लीला का अभिनय करके दर्शकों के समक्ष लीला को उपस्थित करते हैं। मूल-लीला में नायक-नायिका आदि ने जिस प्रकार से आचरण किया है, अथवा कथा-वार्त्ता कही है, इस लीला-अभिनय में भी नाट्यकार वैसा ही करते हैं। इससे उपस्थित दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता है मानो लीला उनके समक्ष ही प्रकटित हुई है। नाटक में कथा-वार्त्ता तथा गान भी साथ-साथ में रहता है।]

अमृतप्रवाह भाष्य

३४। कृष्णलीला-नाटक,—कृष्णलीला-विषयक नाटक।

वृन्दावने नाटकेर आरम्भ करिला।
मङ्गलाचरण 'नान्दी-श्लोक' तथाइ लिखिला॥ ३५॥

३५। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने वृन्दावन में कृष्ण-लीला से सम्बन्धित नाटक की विषय वस्तु को लिखना आरम्भ किया। उन्होंने उस नाटक ग्रन्थ का मङ्गलाचरण श्लोक, जिसे [सुनकर सभी को आनन्द की प्राप्ति होने के कारण उसे] नान्दी-श्लोक भी कहते हैं, वहीं लिखा।

अमृतप्रवाह भाष्य

३५। नान्दी-श्लोक,—नाटक के आरम्भ में जो मङ्गलाचरण श्लोक पठित होता है, उसे 'नान्दी' श्लोक कहते हैं।

अनुभाष्य

३५। नान्दी,—नाटकचन्द्रिका में— ''प्रस्तावनायास्तु मुखे नान्दी कार्या शुभावहा। आशीर्नमस्क्रिया-वस्तु-निर्देशान्यतमान्विता॥ अष्टाभिर्दशभिर्युक्ता किंवा द्वादशभिः पदैः। चन्द्रनामाङ्किता प्रायो मङ्गलार्थ पदोज्ज्वला। मङ्गलं चक्रकमलचकोरकुमुदादिकम्॥'' [अर्थात् प्रस्तावना के प्रारम्भ में नान्दी कार्य शुभावह होता है। आशीर्वाद, नमस्कार और वस्तु-निर्देश के अन्यतम सयुंक्ता नान्दी आठ, दस या फिर बारह पदों से युक्त होता है एवं प्रायः चन्द्र नाम से अङ्कित होकर मङ्गलसूचक पद से सुशोभित होता है। चक्र, कमल, चकोर, कुमुद आदि ही मङ्गल हैं।] साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद की २८२ संख्या में— ''आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते। देवद्विज-नृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥'' [अर्थात् देव, द्विज, नृपति आदि के जिन आशीर्वाद-सूचक वचनों से संयुक्त स्तुति नटगण प्रयोग किया करते हैं, उससे आनन्द उत्पन्न होता है, इसलिए उसे नान्दी कहा जाता है।]

[नाटक के प्रारम्भ में नाटक के लेखक स्वयं अभिनेता के रूप में रङ्गमञ्च पर प्रवेश करते हैं तथा स्वयं द्वारा रचित नाटक के अभिनय-आरम्भक-प्रस्ताव जिसे आमुख अथवा प्रस्तावना कहते हैं, उसे प्रारम्भ करते हैं। नाटकचन्द्रिका नामक ग्रन्थ में वर्णित है कि प्रस्तावना अथवा आमुख के अन्तर्गत सर्वप्रथम नान्दी-कार्य करना शुभ माना जाता है। इसमें स्वयं द्वारा प्रारम्भ किये जा रहे कार्य में विघ्नों के विनाश एवं अभीष्ट के पूर्ण होने आदि के लिये अपने इष्टदेवादि की जो स्मरण-वन्दनात्मक स्तुति की जाती है, उसे नान्दी-कार्य कहते हैं। अभिनया-त्मक ग्रन्थ अर्थात् नाटक का 'नान्दी' तथा अन्यान्य ग्रन्थों में ग्रन्थकार द्वारा किया गया 'मङ्गलाचरण' प्रायः एक ही होते हैं। मङ्गलाचरण तीन प्रकार के होते हैं— (१) आलोच्य अथवा प्रतिपाद्य विषय के उल्लेख के साथ-साथ इष्ट-वन्दना करने रूपी वस्तु-निर्देश- मङ्गलाचरण, (२) द्विज-आदि अथवा इष्ट-वस्तु के मङ्गलमय वचन रूपी आशीर्वाद-मङ्गलाचरण, और (३) इष्टदेव आदि की वन्दना करने रूपी नमस्कार-मङ्गलाचरण।]

अपने अनुज सहित श्रीरूप की गौड़देश यात्रा और सूत्र के आकार में नाटक की पाण्डुलिपि की रचना—

पथे चलि' आइसे नाटकेर घटना भाविते।
कड़चा करिया किछु लागिला लिखिते॥ ३६॥

गौड़ में अनुपम को गङ्गाप्राप्ति—

एइमते दुइभाई गौड़देशे आइला।
गौड़े आसि' अनुपमेर गङ्गा-प्राप्ति हैला॥ ३७॥

३६-३७। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी तथा उनके अनुज श्रीअनुपम—दोनों वृन्दावन से गौड़देश की ओर चल पड़े। श्रीरूप गोस्वामी मार्ग में नाटक ग्रन्थ की विषय वस्तु का चिन्तन करते-करते चलने लगे तथा कुछ-कुछ विषयों को वह मार्ग में ही पाण्डुलिपि के रूप में लिखने भी लगे। इस प्रकार चलते-चलते दोनों भाई गौड़देश में आ पहुँचे। गौड़देश में पहुँचने पर श्रीअनुपम को गङ्गा-प्राप्ति हुयी अर्थात् उन्होंने वहीं पर अपनी देह का परित्याग किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

३६। कड़चा,—खसड़ा अथवा पाण्डुलिपि।

अनुभाष्य

३७। दुइ भाई,—श्रीरूप और उनके अनुज श्रीअनुपम।

श्रीरूप की पुरी में प्रभु के दर्शन हेतु यात्रा—

रूप-गोसाञि प्रभुपाशे करिला गमन।
प्रभुरे देखिते ताँर उत्कण्ठित मन॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के पास जाने के लिये पुरी की ओर चल पड़े। उनका मन श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये उत्कण्ठित हो रहा था।

अनुपम की गङ्गाप्राप्ति हेतु विलम्ब होने के कारण प्रभु के दर्शनों के लिये जाने वाले गौड़ के यात्रियों के साथ श्रीरूप के साक्षात्कार का अभाव—

अनुपमेर लागि' ताँर विलम्ब हइल।
भक्तगण-पाश आइला, लाग ना पाइल॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—मार्ग में श्रीअनुपम के देह-त्यागने के कारण श्रीरूप गोस्वामी को देरी हुयी, इसी कारण गौड़देश में आने पर भी उनका भक्तों के साथ साक्षात्कार नहीं हो पाया [कारण, वे तो पहले ही पुरी के लिये प्रस्थान कर चुके थे।]

अमृतप्रवाह भाष्य

३९। लाग ना पाइल (साक्षात्कार नहीं हुआ),—शिवानन्द आदि भक्त श्रीमन्महाप्रभु के पास जा रहे हैं, ऐसा सुनकर श्रीरूप भी उनके साथ नीलाचल जायेंगे, ऐसा विचार करके वे गौड़देश में आये थे; किन्तु उनके साथ भेंट नहीं हुई, कारण, शिवानन्द सेन आदि पहले ही नीलाचल के लिये प्रस्थान कर चुके थे।

सत्यभामापुर में सत्यभामा-देवी के उपदेश की प्राप्ति ही ललितमाधव की रचना के शुभारम्भ का मुख्य कारण—

उड़िया-देशे 'सत्यभामापुर'-नामे ग्राम।
एक रात्रि सेइ ग्रामे करिला विश्राम॥ ४० ॥

४०। प० अनु०—जब श्रीरूप गोस्वामी गौड़देश से उड़ीसा पहुँचे तो मार्ग में उन्होंने 'सत्यभामापुर' नामक एक गाँव में एक रात्रि विश्राम किया।

अनुभाष्य

४०। कट्टक जिले के अन्तर्गत जानकादेइपुर के निकट ही 'सत्यभामापुर'-ग्राम है।

रात्रे स्वप्ने देखे,—एक दिव्यरूपा नारी।
सम्मुखे आसिया आज्ञा दिला कृपा करि'॥ ४१ ॥
''आमार नाटक पृथक् करह रचन।
आमार कृपाते नाटक हबे विलक्षण॥'' ४२ ॥

४१-४२। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने रात्रि में स्वप्न देखा, जिसमें एक दिव्य रूपवती नारी ने उनके सम्मुख आकर उन्हें कृपापूर्वक आज्ञा देते हुए कहा—''तुम मेरे नाटक की पृथक् रूप से रचना करना, मेरी कृपा से तुम्हारे द्वारा रचित वह नाटक अद्भुत होगा।''

श्रीरूप का मन-मन में विचार—

स्वप्न देखि' रूप-गोसाञि करिला विचार।
सत्यभामार आज्ञा—पृथक् नाटक करिबार॥४३॥

४३। प० अनु०— उपरोक्त स्वप्न को देखकर श्रीरूप गोस्वामी ने मन-ही-मन विचार किया, श्रीसत्यभामा देवी ने मुझे पृथक् नाटक रचना करने की आज्ञा प्रदान की है।

एक साथ में वर्णित व्रज और पुर की लीला को पृथक्-पृथक् नाटक के आकार में वर्णन करने की प्रतिज्ञा—

व्रज-पुर-लीला एकत्र कैराछि घटना।
दुइ भाग करि' एबे करिमु रचना॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—''मैंने तो व्रज तथा पुर की लीलाओं को एक ही साथ लिखने के विषय में विचार करके वैसी ही पाण्डुलिपि बनायी है, किन्तु अब मैं नाटक ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त करके ही उसकी रचना करूँगा।''

पुरी में सिद्धबकुल मठ में ठाकुर श्रीहरिदास के वासस्थान पर उपस्थित होना—

भाविते भाविते शीघ्र आइला नीलाचले।
आसि' उतरिला हरिदास-वासास्थले॥४५॥

४५। प० अनु०— ऐसा विचार करते-करते श्रीरूप गोस्वामी शीघ्र ही नीलाचल आ पहुँचे तथा वे श्रीहरिदास ठाकुर के वासस्थान पर आकर रुके।

ठाकुर की स्नेहपूर्ण उक्ति—

हरिदास-ठाकुर ताँरे बहुकृपा कैला।
''तुमि आसिबे,—मोरे प्रभु जे कहिला॥''४६॥

४६। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीरूप गोस्वामी पर बहुत कृपा की, उन्होंने श्रीरूप से कहा—''तुम आओगे, मुझे श्रीमन्महाप्रभु ने पहले से ही बता दिया था।''

अचानक हरिदास को दर्शन देने के लिये प्रभु का आगमन—

'उपल-भोग' देखि' हरिदासेरे देखिते।
प्रतिदिन आइसेन, प्रभु आइला आचम्बिते॥४७॥

४७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथ-देव को मङ्गल आरती के उपरान्त लगने वाले उपलभोग को देखने के पश्चात् प्रतिदिन श्रीहरिदास ठाकुर से भेंट करने आते थे, आज भी वैसा ही हुआ, किन्तु आज श्रीमन्महाप्रभु सहसा अपने समय से पहले ही वहाँ आ गये।

श्रीरूप द्वारा प्रभु को प्रणाम और प्रभु द्वारा आलिङ्गन—

''रूप दण्डवत् करे'',—हरिदास कहिला।
हरिदासे मिलि' प्रभु रूपे आलिङ्गिला॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा—''रूप आपको दण्डवत् कर रहा है।'' श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर से मिलने के उपरान्त श्रीरूप गोस्वामी का आलिङ्गन किया।

परस्पर संलाप—

हरिदास, रूपे लञा प्रभु बसिला एकस्थाने।
कुशल-प्रश्न, इष्टगोष्ठी कैला कतक्षणे॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास तथा श्रीरूप को लेकर एकस्थान पर बैठ गये तथा उन्होंने श्रीरूप से उनकी कुशल-क्षेम के विषय में पूछा तथा कुछ और देर तक इष्टगोष्ठी भी की।

सनातन के संवाद की जिज्ञासा और श्रीरूप द्वारा सनातन के साथ साक्षात्कार नहीं होने के विषय में बतलाना—

सनातनेर वार्त्ता जबे गोसाञि पुछिल।
रूप कहे,—''ताँर सङ्गे देखा ना हइल॥ ५० ॥

उसके कारण का निर्देश—

आमि गङ्गापथे आइलाङ, तिंहो राजपथे।
अतएव आमार देखा नहिल ताँर साथे॥ ५१ ॥

अनुपम की गङ्गाप्राप्ति का ज्ञापन—

प्रयागे शुनिलुँ,—तेंहो गेला वृन्दावने।''
अनुपमेर गङ्गा-प्राप्ति कैल निवेदने॥ ५२ ॥

५०-५२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने जब श्रीसनातन गोस्वामी के विषय में पूछा तो श्रीरूप ने कहा—''मेरी उनके साथ भेंट नहीं हुयी। मैं गङ्गा के पथ से प्रयाग की ओर आया तथा वे राजपथ के द्वारा प्रयाग से व्रज की ओर गये। अतएव मेरी उनसे भेंट नहीं हो पायी। मैंने प्रयाग में जाकर सुना कि श्रीसनातन प्रभु वृन्दावन गये हैं'', यह सब बतलाने के बाद श्रीरूप ने

श्रीमन्महाप्रभु को श्रीअनुपम की गङ्गा-प्राप्ति के विषय में भी बतलाया।

प्रभु का प्रस्थान और उनके साथ में रहने वाले भक्तों के साथ श्रीरूप का मिलन—

रूपे ताँहा वासा दिया गोसाञि चलिला।
गोसाञिर सङ्गी भक्त रूपेरे मिलिला॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूप को श्रीहरिदास ठाकुर के निवास पर ही वासस्थान प्रदान करके चले गये। श्रीमन्महाप्रभु के साथी भक्त श्रीरूप गोस्वामी से आकर मिले।

अमृतप्रवाह भाष्य

५३। ताँहा (वहाँ),—हरिदास ठाकुर के वासस्थान अर्थात् सिद्धबकुल मठ में।

प्रभु के द्वारा एकदिन भक्तों को श्रीरूप का परिचय-प्रदान—

आर दिन महाप्रभु सब भक्त लञा।
रूपे मिलाइला सबाय कृपा त' करिया॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—एक दिन श्रीमन्महाप्रभु समस्त भक्तों को अपने साथ लेकर श्रीहरिदास ठाकुर की भजन कुटीर में आये तथा उन्होंने श्रीरूप पर कृपा करके उन्हें अपने सभी भक्तों से मिलाया।

श्रीरूप के द्वारा समस्त भक्तों के चरणों की वन्दना, सभी के द्वारा रूप को आलिङ्गन—

सबार चरण रूप करिला वन्दन।
कृपा करि' रूपे सबे कैला आलिङ्गन॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—श्रीरूप ने समस्त भक्तों के चरणों की वन्दना की तथा समस्त भक्तों ने भी कृपा करके श्रीरूप को आलिङ्गन प्रदान किया।

श्रीरूप पर कृपा करने के लिये महाप्रभु के द्वारा निताइ और अद्वैत-दोनों प्रभुओं से अनुरोध—

''अद्वैत, नित्यानन्द, तोमरा दुइजने।
प्रभु कहे,—रूपे कृपा कर कायमने॥ ५६ ॥
तोमा-दुँहार कृपाते इँहार हउ शक्ति।
जाते विवरिते पारेन कृष्णरसभक्ति॥'' ५७ ॥

५६-५७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीअद्वैताचार्य और श्रीनित्यानन्द प्रभु से कहा, ''आप दोनों श्रीरूप पर काय और मन से कृपा कीजिए। आप दोनों की कृपा से इसमें ऐसी शक्ति का सञ्चार हो जाये, जिससे यह कृष्णरस रूपी भक्ति का वर्णन कर सके।''

श्रीरूप—प्रभु के समस्त भक्तों की ही प्रीति के पात्र—

गौड़ीया, उड़िया, जत प्रभुर भक्तगण।
सबार हइल रूप स्नेहेर भाजन॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के गौड़-देशवासी तथा उड़ीसा-देशवासी आदि जितने भी भक्तगण थे, श्रीरूप उन सभी के स्नेह-पात्र बन गये।

स्वयं प्रभु द्वारा श्रीरूप को प्रतिदिन दर्शन रूपी प्रसाद प्रदान—

प्रतिदिन आसि' रूपे करेन मिलने।
मन्दिरे जे प्रसाद पान, देन दुइ जने॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु प्रतिदिन आकर श्रीरूप से भेंट करते तथा उन्हें श्रीजगन्नाथ मन्दिर से जो भी प्रसाद मिलता, वे श्रीहरिदास ठाकुर तथा श्रीरूप को दे देते।

परस्पर कृष्णकथा—

इष्टगोष्ठी दुँहा-सने करि' कतक्षण।
मध्याह्न करिते प्रभु करिला गमन॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीरूप के साथ कुछ देर तक इष्टगोष्ठी करके मध्याह्न कृत्य प्रसाद ग्रहण आदि करने के लिये चले जाते।

प्रभु की कृपा को प्राप्त करने के कारण श्रीरूप का आनन्द—

एइमत प्रतिदिन प्रभुर व्यवहार।
प्रभुकृपा पाञा रूपेर आनन्द अपार॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु नित्यप्रति ऐसा ही

करते थे। श्रीमन्महाप्रभु की कृपा को प्राप्त करके श्रीरूप को अपार आनन्द की अनुभूति होती थी।

भक्तों के साथ प्रभु की नीलाचल-लीला—

भक्तगण लञा कैला गुण्डिचा मार्जन।
आइटोटा आसि' कैला वन्य-भोजन॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने [रथ-यात्रा का समय उपस्थित हो आने पर रथ-यात्रा से एक दिन पहले] अपने भक्तों को साथ में लेकर गुण्डिचा मन्दिर का मार्जन किया तथा फिर उन्होंने सभी भक्तों के साथ आइटोटा में आकर वन्य-भोजन किया।

अनुभाष्य

६२। आइटोटा,—गुण्डिचा मन्दिर के निकट स्थित उपवन।

सभी भक्तों के आनन्द को देखकर श्रीरूप और हरिदास का आनन्द—

प्रसाद खाय, 'हरि' बले सर्वभक्तजन।
देखि' हरिदास-रूपेर हरषित मन॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—सभी भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया तथा उच्चस्वर में 'हरि' नाम का उच्चारण किया, श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीरूप इस दृश्य को देखकर प्रसन्न चित्त हो गये।

प्रभु के उच्छिष्ट-अवशेष की प्राप्ति से दोनों का प्रेममय नृत्य—

गोविन्द द्वारा प्रभुर शेष-प्रसाद पाइला।
प्रेमे मत्त दुइजन नाचिते लागिला॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीरूप श्रीमन्महाप्रभु के सेवक श्रीगोविन्द से महाप्रभु के उच्छिष्ट-अवशेष प्रसाद को प्राप्त करके प्रेम में मत्त होकर नृत्य करने लगे।

अन्य एकदिन रूप के साथ प्रभु का मिलन—

आर दिन प्रभु रूपे मिलिया बसिला।
सर्वज्ञ-शिरोमणि प्रभु कहिते लागिला॥ ६५ ॥

प्रभु का कृपा रूपी आदेश ही विदग्धमाधव की रचना के शुभारम्भ का मुख्य कारण—

''कृष्णेरे बाहिर नाहि करिह व्रज हैते।
व्रज छाड़ि' कृष्ण कभु ना जान काँहाते॥ ६६ ॥

६५-६६। प० अनु०—अन्य किसी एक दिन श्रीमन्महाप्रभु आकर श्रीरूप गोस्वामी से मिले तथा बैठकर सर्वज्ञ-शिरोमणि प्रभु श्रीरूप से कहने लगे—''हे रूप! श्रीकृष्ण को व्रज से बाहर नहीं करना, श्रीकृष्ण व्रज को छोड़कर कभी भी अन्य किसी स्थान पर नहीं जाते।

केवलमात्र व्रज में ही व्रजेन्द्रनन्दन का अवस्थान—
(यामलवचन)

कृष्णोऽन्यो यदुसम्भूतो यस्तु गोपेन्द्रनन्दनः।
वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति॥'' ६७॥

अमृतप्रवाह भाष्य

६७। ''यदुकुमार कृष्ण—वासुदेव तत्त्व हैं, अतएव वे—गोपेन्द्रनन्दन से पृथक हैं; वे ही मथुरा और द्वारका में लीला करते हैं। जो गोपेन्द्रनन्दन हैं, वे वृन्दावन का परित्याग करके कहीं भी नहीं जाते।''

अनुभाष्य

६७। यदुसम्भूतः (यदुकुलोत्पन्नः) कृष्णः— अन्यः (व्रजेन्द्रनन्दनात् अपरः); यः तु गोपेन्द्रनन्दनः (नन्दसुतः) सः तु वृन्दावनं परित्यज्य (विहाय) क्वचित् (कुत्रापि) नैव गच्छति।

प्रभु के वचन सुनकर श्रीरूप द्वारा मन-मन में विचार—

एत कहि' महाप्रभु मध्याह्ने चलिला।
रूप-गोसाञि मने किछु विस्मय हइला॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु तो मध्याह्न कृत्य करने के लिये चल पड़े, किन्तु श्रीरूप गोस्वामी के मन में कुछ विस्मय हुआ।

श्रीसत्यभामा देवी और प्रभु, दोनों का ही पृथक् रूप से यथाक्रम ललितमाधव और विदग्धमाधव नाटक लिखने के लिये आदेश-प्रदान—

''पृथक् नाटक करिते सत्यभामा आज्ञा दिल।
जानिलु, पृथक् नाटक करिते प्रभु-आज्ञा हैल॥ ६९॥

६९। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने मन-ही-मन विचार किया—''श्रीसत्यभामा देवी ने पृथक् नाटक की रचना करने की आज्ञा दी है। अब मुझे पता चला कि श्रीमन्महाप्रभु ने भी पृथक् नाटक की रचना करने की आज्ञा दी है।

पहले एकसाथ में वर्णित दोनों नाटकों का अब पृथक् रूप से चिन्तन और रचना—

पूर्वे दुइ नाटक छिल एकत्र रचना।
दुइभाग करि एबे करिमु घटना॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—''पहले मैं दोनों नाटकों की एकसाथ रचना कर रहा था किन्तु अब मैं श्रीकृष्ण द्वारा की गयी—व्रज लीला और पुर लीला के अनुरूप लीलाओं को दो भागों में विभक्त कर दूँगा।

अनुभाष्य

७०। दुइ भाग,—विदग्धमाधव में व्रजलीला एवं ललितमाधव में पुरलीला,—यही दो भाग हैं।

नान्दी, प्रस्ताव और विषय आदि सब कुछ का ही पृथक् रूप से चिन्तन—

दुइ 'नान्दी'-'प्रस्तावना', दुइ 'संघटना'।
पृथक् करिया लिखि करिया भावना॥'' ७१ ॥

७१। प० अनु०—''मैं दोनों नाटक-ग्रन्थों के लिये अलग-अलग 'नान्दी', 'प्रस्तावना' तथा घटनाओं (लीलाओं) का भली-भाँति विचार करके पृथक् रूप में लिखूँगा।''

अनुभाष्य

७१। [नान्दी का अर्थ अन्त्य १.३५ पयार के अमृत-प्रवाह भाष्य और अनुभाष्य में द्रष्टव्य है। नाटक-अभिनय के आरम्भ में नाटक-लेखक का वेश-धारण करके एक अभिनेता रङ्गमञ्च पर प्रवेश करके नान्दी-मङ्गलाचरणादि का उच्चारण करता है, उस अभिनेता को सूत्रधार कहा जाता है। नान्दी हो जाने के पश्चात् सूत्रधार का ही अनुगत रूपी अभिनेता आकर उनसे मिलता है, उसे पारिपार्श्विक कहा जाता है। वे दोनों मिलकर नाटक के सम्बन्ध में वार्त्तालाप करते हैं। उस वार्त्तालाप में ही सूत्रधार नाटक की लिपि-कुशलता आदि की त्रुटियाँ वर्णन करते हुए अपनी दीनता का ज्ञापन करता है और क्रमशः देश, काल, कथा, वर्णनीय विषय-वस्तु एवं श्रोता आदि की प्रंशसा करता है। पारिपार्श्विक सूत्रधार को पात्रों के साज-शृङ्गार के सम्पूर्ण होने की भी जानकारी देता है। तत्पश्चात् सूत्रधार उस दृश्य का वर्णन करता है, जिस दृश्य में वास्तविक अभिनय का आरम्भ होता है। अभिनयकारी पात्रों के रङ्गमञ्च पर प्रवेश करने से पूर्व सूत्रधार के द्वारा किये गये मङ्गलाचरण तथा उसके पश्चात् सूत्रधार एवं पारिपार्श्विक के बीच होने वाले वार्त्तालाप को ही 'प्रस्तावना' या 'आमुख' कहते हैं। जिसका संक्षिप्त विवरण] साहित्य दर्पण के षष्ठ परिच्छेद के २८७ श्लोक में [—इस प्रकार मिलता है]—''नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा। सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥ चित्रेर्वाक्यैः स्वकार्योथ्यैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः। आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा॥'' अर्थात् नटी, विदूषक अथवा पार्श्ववर्ती नट,—ये सूत्रधार के साथ जहाँ अपने कर्त्तव्य व्यापार-विषयक वास्तविक विषय को उठाकर मधुर वचनों के द्वारा परस्पर सम्पूर्ण रूप से आलाप करते हैं, उसी को 'आमुख' समझना, वही 'प्रस्तावना' (अभिनय के आरम्भ करने का प्रस्ताव) है।

विदग्धमाधव का विषय-सूत्र—विप्रलम्भ भाव में निमग्न प्रभु के मुख से श्लोक को सुनकर श्रीरूप द्वारा उस भाव के सूचक एक अन्य श्लोक की रचना—

रथयात्राय जगन्नाथ दर्शन करिला।
रथ-अग्रे प्रभुर नृत्य-कीर्त्तन देखिला॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीरूप ने रथयात्रा के समय

भगवान् जगन्नाथ के दर्शन किये तथा रथ के समक्ष श्रीमन्महाप्रभु द्वारा किये गये नृत्य-कीर्त्तन को देखा।

प्रभुर नृत्य-श्लोक शुनि' श्रीरूप-गोसाञि।
सेइ श्लोकार्थ लञा श्लोक करिला तथाई॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—श्रीरूप ने श्रीमन्महाप्रभु को नृत्य करते समय एक श्लोक का उच्चारण करते सुना, श्रीरूप ने उसी श्लोक के श्रीमन्महाप्रभु के अभिप्रेत अथवा मनभावन अर्थ के अनुरूप एक नये श्लोक की वहीं रचना कर दी।

मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद में वर्णित होने पर भी अब पुनः संक्षेप में वर्णन—

पूर्वे सेइ सब कथा कैराछि वर्णन।
तथापि कहिये किछु संक्षेपे कथन॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—यद्यपि मैं (श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी) पहले मध्य-लीला में इस प्रसङ्ग का वर्णन कर चुका हूँ, तथापि मैं पुनः संक्षेप में इस प्रसङ्ग के विषय में कुछ लिख रहा हूँ।

श्रीराधाभाव में निमग्न प्रभु के द्वारा उच्चारित गूढ़ श्लोक का मर्मार्थ एकमात्र स्वरूप-दामोदर के अलावा सभी के लिये दुर्बोध्य—

सामान्य एक श्लोक प्रभु पड़ेन कीर्त्तने।
केने श्लोक पड़े,—इहा केह नाहि जाने॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कीर्त्तन करते हुए एक साधारण-से श्लोक का उच्चारण किया। श्रीमन्महाप्रभु किस भाव से उस श्लोक का उच्चारण कर रहे हैं—इसे कोई भी नहीं जानता था।

अमृतप्रवाह भाष्य

७५। केने,—किस भाव से।

उस श्लोक के भाव की पोषक पदावली का गान करके स्वरूप द्वारा प्रभु का सन्तोष-विधान—

सबे एका स्वरूप गोसाञि श्लोकेर अर्थ जाने।
श्लोकानुरूप पद प्रभुके करान आस्वादने॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु द्वारा उच्चारित श्लोक का अर्थ केवलमात्र श्रीस्वरूप दामोदर ही जानते थे तथा वही उस श्लोक के अनुरूप पदों का गान करके श्रीमन्महाप्रभु को उसका आस्वादन कराते थे।

श्रीरूप के द्वारा प्रभु के मन के मतानुसार श्लोक की रचना—

रूप-गोसाञि प्रभुर जानिया अभिप्राय।
सेइ अर्थे श्लोक कैला प्रभुरे जे भाय॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के मनोगत अभिप्राय को जानकर, श्लोक के उसी भाव के अनुरूप, श्रीमन्महाप्रभु को अच्छे लगने वाले एक नये श्लोक की रचना की।

प्रभु के द्वारा उच्चारित श्लोक—काव्यप्रकाश (१.४) में, साहित्यदर्पण (१.१०) में और पद्यावली (३८२) में—

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते॥ ७८॥

७८। अनु०—[एक प्राकृत नायिका अपनी एक सखी से कह रही है—] जिसने कौमार-अवस्था में रेवा नदी के तट पर मेरे चित्त का हरण किया था, वही अब मेरे पति बने हैं; वह मधुमास की रात्रि भी उपस्थित है; विकसित मालती पुष्पों की सुगन्ध भी है; कदम्ब कानन से वायु भी मधुर रूप में बह रही है; सुरत व्यापार लीला के कार्य में मैं वही नायिका भी उपस्थित हूँ; तथापि मेरा चित्त इस अवस्था में सन्तुष्ट न होकर रेवा के तट पर विद्यमान वेतसी (बेंत) के वृक्ष के तल के लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है।

अनुभाष्य

७८। मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ५८ वीं संख्या द्रष्टव्य।

पद्यावली (३८३) में श्रीरूपगोस्वामिकृत-श्लोक—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तःखेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥ ७९ ॥

७९। अनु०—[श्रीमती राधिका अपनी किसी प्रिय सखी से कह रही हैं—] हे सहचरि, (जिन्होंने मेरे साथ वृन्दावन में विहार किया था) मेरे वही अतिप्रिय कृष्ण आज कुरुक्षेत्र में मिलित हुए हैं। यद्यपि मैं भी वही राधा हूँ; और हम दोनों के मिलन का सुख भी वही है; तथापि इन श्रीकृष्ण के द्वारा वन में क्रीड़ा करते हुए मुरली के पञ्चम स्वर (के श्रवण) के आनन्द से आप्लावित कालिन्दी के पुलिन पर स्थित वन के लिये ही मेरा चित्त स्पृहा कर रहा है अर्थात् वहाँ जाने के लिये उत्कण्ठित हो रहा है।

अनुभाष्य

७९। मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ७६ वीं संख्या द्रष्टव्य।

तालपत्रे श्लोक लिखि' चालेते राखिला।
समुद्रस्नान करिबारे रूप-गोसाञि गेला॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने रथयात्रा के समक्ष मन-ही-मन में रचित उपरोक्त श्लोक को एक तालपत्र पर लिखकर उसे अपनी भजन कुटीर वाली झोपड़ी की छत के भीतरी भाग में रख दिया तथा फिर समुद्र में स्नान करने के लिये चले गये।

श्रीरूपकृत श्लोक और प्रभु के वृत्तान्त का वर्णन, प्रभु के द्वारा रूप-रचित श्लोक का पाठ—

हेनकाले प्रभु आइला ताँहारे मिलिते।
चाले श्लोक देखि' प्रभु लागिला पड़िते॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—दूसरी ओर, उसी समय श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूप से मिलने के लिये आये। श्रीमन्महाप्रभु ने झोपड़ी की छत में रखे तालपत्र को देखकर उसे निकाला तथा उस पर लिखे श्लोक को देखकर उसे पढ़ने लगे।

प्रभु का प्रेमावेश—

श्लोक पड़ि' प्रभु सुखे प्रेमाविष्ट हैला।
हेनकाले रूप-गोसाञि स्नान करि' आइला॥ ८२॥

८२। प० अनु०—श्लोक को पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु आनन्द हेतु प्रेमाविष्ट हो गये तथा इसी बीच श्रीरूप गोस्वामी स्नान करके आ गये।

श्रीरूप के प्रति प्रभु की अकृत्रिम स्नेह रूपी कृपा—

प्रभु देखि' दण्डवत् प्राङ्गणे पड़िला।
प्रभु ताँरे चापड़ मारि' कहिते लागिला॥ ८३ ॥

श्रीरूप को गाढ़ आलिङ्गन—

''गूढ़ मोर हृदय तुमि जानिला केमने?''
एत कहि' रूपे कैला दृढ़ आलिङ्गने॥ ८४ ॥

८३-८४। प० अनु०—श्रीरूप श्रीमन्महाप्रभु को देखकर प्राङ्गण में ही दण्डवत् हो गये। श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूप को थपथपा कर कहने लगे—''हे रूप! तुमने मेरे हृदय के गूढ़भाव को कैसे जान लिया?'' इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरूप को गाढ़ आलिङ्गन प्रदान किया।

श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप को श्रीरूप द्वारा रचित श्लोक दिखलाकर अनजान होने का अभिनय करते हुए रहस्य पूर्वक श्रीस्वरूप से श्रीरूप द्वारा उनके मन के भावों को जानने के कारण की जिज्ञासा—

सेइ श्लोक लञा प्रभु स्वरूपे देखाइला।
स्वरूपेर परीक्षा लागि' ताँहारे पुछिला॥ ८५ ॥
''मोर अन्तर-वार्त्ता रूप जानिल केमने?''
स्वरूप कहे,—''जानि, कृपा कैराछ आपने॥ ८६॥

स्वरूप के द्वारा श्रीरूप के प्रभु की कृपा को प्राप्त करने का अनुमान—

अन्यथा ए अर्थ कार नाहि हय ज्ञान।
तुमि पूर्वे कृपा कैला, करि अनुमान॥'' ८७ ॥

८५-८७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने उस तालपत्र पर लिखे श्लोक को ले आकर श्रीस्वरूप दामोदर को दिखलाया तथा श्रीस्वरूप की परीक्षा अर्थात् उपरोक्त श्लोक के सम्बन्ध में उनके मन्तव्य को जानने हेतु उनसे पूछा—''रूप ने मेरे अन्तरहृदय के भाव को कैसे जान लिया?'' श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि आपने ही रूप पर कृपा की है। अन्यथा आपके द्वारा उच्चारित श्लोक के अर्थ को कोई भी नहीं जान सकता। इसलिए मैं अनुमान लगा रहा हूँ कि आपने पूर्व में इस पर कृपा की होगी।''

स्वरूप के निकट प्रभु के द्वारा प्रयाग में रूप को दी गयी शिक्षा के वृत्तान्त का वर्णन—

प्रभु कहे,—''इँहो आमाय प्रयागे मिलिल।
योग्यपात्र जानि' मोर कृपा त' हइल॥ ८८ ॥
तबे शक्ति सञ्चारि' आमि कैलुँ उपदेश।
तुमिह कहिओ इँहाय रसेर विशेष॥'' ८९ ॥

८८-८९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—''रूप मुझसे प्रयाग में मिला था। उसे योग्यपात्र जानकर मेरी उस पर कृपा हो गयी। तब मैंने उसमें अपनी शक्ति का सञ्चार करके उसे उपदेश दिया था, हे स्वरूप! तुम भी रूप को रस तत्त्व की विशेषता के विषय में बतलाना।''

स्वरूप के अनुमान की वास्तविकता —

स्वरूप कहे—''जाते एइ श्लोक देखिलुँ।
तुमि करियाछ कृपा, तबँहि जानिलु॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा—''मैंने जैसे ही इस श्लोक को देखा, मैं तभी समझ गया कि आपने रूप पर कृपा की है।

फल के द्वारा उसके कारण का अनुमान—(न्याय-वचन)

फलेन फलकारणमनुमीयते॥ ९१ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

९१। ''फल के द्वारा ही फल के कारण का अनुमान होता है।

नैषधी (३.१७) में दमयन्ती के प्रति हंस के वचन—

स्वर्गापगा-हेम मृणालिनीनां
नाना-मृणालाग्रभुजो भजामः।
अन्नानुरूपां तनुरूपऋद्धिं
कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते॥'' ९२ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

९२। ''स्वर्ग गङ्गा के सुवर्ण कमल के अग्र भागों का भोजन करके ही हमने उनके जैसे शरीर के सौन्दर्य को प्राप्त किया है। कारण, आदि कारण के अनुरूप ही गुणगण उदित होते हैं।''

अनुभाष्य

९२। हे दमयन्ति, स्वर्गापगा-हेममृणालिनीनां (स्वर्गापगायाः स्वर्गङ्गायाः मन्दाकिन्याः हेममृणालिनीनां स्वर्णतुल्यपद्मानां) नानामृणालाग्रभुजः (विविध-कोमल-पद्मकन्दाग्रभोजनशीलाः वयम्)अन्नानुरूपां (भुक्त-सदृशीं) तनुरूप ऋद्धिं (देहलावण्य-समृद्धिं) भजामः (प्राप्नुमः); हि (यतः) कार्यं (फलं) निदानात् (आदि कारणात्) गुणान् अधीते (प्राप्नोति)।

चातुर्मास्य के उपरान्त गौड़देश के भक्तों का गौड़ में लौटना—

चातुर्मास्य रहि' गौड़े वैष्णव चलिला।
रूप-गोसाञि महाप्रभुर चरणे रहिला॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—गौड़देश के भक्त चातुर्मास्य तक श्रीजगन्नाथ पुरी में रहे। उसके उपरान्त वे गौड़देश लौट गये, किन्तु श्रीरूप गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में जगन्नाथपुरी में ही रह गये।

एक दिन श्रीरूप के नाटक लिखते समय प्रभु का अचानक आगमन—

एकदिन रूप करेन नाटक लिखन।
आचम्बिते महाप्रभुर हैल आगमन॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—एकदिन श्रीरूप नाटक की रचना कर रहे थे कि अचानक श्रीमन्महाप्रभु का आगमन हुआ।

श्रीरूप और हरिदास द्वारा प्रभु को प्रणाम, प्रभु का बैठना—

सम्भ्रमे दुँहे उठि दण्डवत् हैला।
दुँहे आलिङ्गिया प्रभु आसने बसिला॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर तथा श्रीरूप ने सम्भ्रमपूर्वक उठकर श्रीमन्महाप्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीमन्महाप्रभु दोनों को आलिङ्गन करके आसन पर बैठ गये।

प्रभु के द्वारा रूप-लिखित तालपत्र को उठाना और श्रीरूप की लिखाई को देखकर सन्तोष की प्राप्ति—

''क्या पुँथि लिख?'' बलि एक पत्र निला।
अक्षर देखिया प्रभु मने सुखी हैला॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—''कौन-सा ग्रन्थ लिख रहे हो?''—ऐसा कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने एक तालपत्र ले लिया। श्रीरूप के द्वारा लिखे गये अक्षरों को देखकर श्रीमन्महाप्रभु का मन अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

प्रभु के द्वारा श्रीरूप की लिखाई की प्रशंसा—

श्रीरूपेर अक्षर—जेन मुकुतार पाँति।
प्रीत हञा करेन प्रभु अक्षरेर स्तुति॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—श्रीरूप के द्वारा लिखे अक्षर मानों मुक्ताओं की लड़ी हो। प्रसन्न होकर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरूप द्वारा लिखित अक्षरों की बहुत प्रशंसा की।

एक श्लोक को देखकर प्रभु में प्रेमावेश—

सेइ पत्रे प्रभु एक श्लोक देखिला।
पड़ितेइ श्लोक, प्रेमे आविष्ट हइला॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने उसी ताल पत्र पर लिखे एक श्लोक को देखा। उस श्लोक को पढ़ने के साथ-ही-साथ श्रीमन्महाप्रभु प्रेम में आविष्ट हो गये।

कृष्णनाम के माधुर्य का आस्वादन-सूचक श्लोक—विदग्ध-माधव (१.१५) में नान्दी के प्रति पौर्णमासी के वचन—

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्धये
कर्णक्रोड़कड़म्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतःप्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥९९॥

अमृतप्रवाह भाष्य

९९। 'कृष्ण' ये दो वर्ण ना जाने कितने अमृत के साथ उत्पन्न हुए हैं, मैं उसे नहीं जानती हूँ;—देखो, जब (नटी अर्थात् नृत्याङ्गना की भाँति) वह तुण्ड अर्थात् मुख में नृत्य करते हैं, तब बहुत से मुख प्राप्त करने के लिये रति का विस्तार (अर्थात् आसक्ति वर्धित) करते हैं, जब कर्ण कुहरों में प्रवेश करते हैं (अंकुरित होते हैं), तब अरबों कानों के लिये स्पृहा उत्पन्न होती है; जब चित्त के प्राङ्गण में (सङ्गिनी अर्थात् सहचरी के रूप में) उदित होते हैं, तब समस्त इन्द्रियों की क्रिया पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

अनुभाष्य

९९। कृष्णः इति वर्णद्वयी कियद्भिः (कियत्परिमितैः) अमृतैः (सह) जनिता (उत्पादिता, तत् अहं) नो जाने (नः वेद्मि, यतः सा) हे नान्दीमुखि, तुण्डे (मुखे) ताण्डविनी (ताण्डवं—'पुंनृत्यं ताण्डवं प्रोक्तं' इति वाक्यात् 'नाट्यं', तत् कुर्वती सती) तुण्डावली-लब्ध्ये (बहुवदन-श्रेणीनां प्राप्त्ये) रतिं (स्पृहां) वितनुते (प्रकाशयति); कर्णक्रोड़कड़म्बिनी (कर्णपदव्यां कड़म्बिनी अंकुरिता सती) कर्णार्बुदेभ्यः (अर्बुदसंख्यामित-कर्णलाभाय) स्पृहां (वाञ्छां) घटयते; चेतःप्राङ्गणसङ्गिनी (चेतः एव प्राङ्गणं तस्मिन् सहचरी सती) सर्वेन्द्रियाणाम् (इन्द्रियसमूहानां) कृतिं (व्यापारं) विजयते (पराजयते, तदाविष्टं कारयित्वा चेष्टाशून्यं करोति)।

श्लोक को श्रवण करके नामाचार्य का आनन्दपूर्वक नृत्य—

श्लोक शुनि' हरिदास हइला उल्लासी।
नाचिते लागिला श्लोकेर अर्थ प्रशंसि॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—उपरोक्त श्लोक को सुनकर श्रीहरिदास ठाकुर अत्यन्त उल्लसित हो उठे। वे श्लोक के भावार्थ की प्रशंसा करते हुए नृत्य करने लगे।

श्लोक की अद्वितीय कृष्णनाम-माहात्म्य की सूचना—

''कृष्णनामेर महिमा शास्त्र-साधु-मुखे जानि।
नामेर माधुरी ऐछे काँहा नाहि शुनि॥'' १०१ ॥

१०१। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा—''मैंने शास्त्र तथा साधु के मुख से कृष्णनाम की महिमा को जाना है, किन्तु आज तक नाम की ऐसी माधुरी कहीं पर भी नहीं सुनी।''

प्रभु का मध्याह्न स्नान के लिये गमन—

तबे महाप्रभु दुँहे करि' आलिङ्गन।
मध्याह्न करिते समुद्रे करिला गमन॥ १०२॥

१०२। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीरूप को आलिङ्गन करके मध्याह्न अर्थात् दोपहर के समय किये जाने वाले स्नान के लिये समुद्र की ओर चल दिये।

अन्य एकदिन स्वरूप-रामानन्द-भट्ट आदि के साथ प्रभु का श्रीरूप के समीप आगमन—

आर दिन महाप्रभु देखि' जगन्नाथ।
सार्वभौम-रामानन्द-स्वरूपादि-साथ॥ १०३ ॥

मार्ग में स्वयं अपने श्रीमुख से श्रीरूप की प्रशंसा रूपी कीर्त्तन—

सबे मिलि' चलि आइला श्रीरूपे मिलिते।
पथे ताँर गुण सबारे लागिला कहिते॥ १०४ ॥

१०३-१०४। प० अनु०—अन्य एकदिन श्रीमन्महाप्रभु भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करके श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीरामानन्द राय तथा श्रीस्वरूप दामोदर आदि को साथ लेकर श्रीरूप से मिलने के लिये चल पड़े तथा श्रीमन्महाप्रभु मार्ग में सबके समक्ष श्रीरूप के गुणों का वर्णन करने लगे।

श्रीरूप द्वारा रचित ''प्रियः सोऽयं'' और ''तुण्डे ताण्डविनी'' श्लोक की प्रशंसा—

दुइ श्लोक कहि' प्रभुर हैल महासुख।
निज-भक्तेर गुण कहे हञा पञ्चमुख॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूप द्वारा रचित 'प्रियः सोऽयं' तथा 'तुण्डे ताण्डविनी'—इन दो श्लोकों के विषय में इङ्गित में बतलाकर अत्यन्त आनन्दित हुए। श्रीमन्महाप्रभु पञ्चमुख होकर अपने भक्त के गुणों का वर्णन कर रहे थे।

राय और भट्ट के समक्ष स्वयं प्रभु द्वारा श्रीरूप के गुण का वर्णन—

सार्वभौम-रामानन्दे परीक्षा करिते।
श्रीरूपेर गुण दुँहारे लागिला कहिते॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीरूप द्वारा रचित उपरोक्त दोनों श्लोकों की श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य और श्रीरामानन्द राय से परीक्षा कराने हेतु उन्हें अपने साथ श्रीरूप के पास लेकर जा रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु उन दोनों के समक्ष श्रीरूप के गुणों का वर्णन करने लगे।

भगवान् की भक्त-वत्सलता—

'ईश्वर स्वभाव'—भक्तेर ना लय अपराध।
अल्पसेवा बहु माने आत्मपर्यन्त प्रसाद॥ १०७ ॥

१०७। प० अनु०—ईश्वर का स्वभाव ही होता है कि वे अपने भक्तों के अपराध को ग्रहण नहीं करते तथा अपने भक्त के द्वारा की गयी अल्प सेवा को भी बहुत अधिक मानते हैं एवं इतने अधिक प्रसन्न हो जाते हैं कि कृपा के रूप में उन्हें स्वयं तक को भी दे देते हैं।

अनुभाष्य

१०७। आत्मपर्यन्त प्रसाद,—आत्मा को अर्थात् स्वयं को प्रदान करने रूपी अनुग्रह तक भी कर देते हैं।

भक्त के प्रति भगवान् का व्यवहार—

भः रः सिः (२.१.१३८) में—

भृत्यस्य पश्यति गुरूनपि नापराधान्
सेवां मनागपि कृतां बहुधाभ्युपैति।
आविष्करोति पिशुनेष्वपि नाभ्यसूयां
शीलेन निर्मलमतिः पुरुषोत्तमोऽयम्॥ १०८ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१०८। यह भगवान् पुरुषोत्तम—अपनी निर्मल-मति तथा अपने शीलता (सत्स्वभाव से युक्त) धर्म के द्वारा सेवकों के महत् अपराधों को भी नहीं देखते; अत्यन्त अल्प सेवा को भी बहुत मानते हैं एवं स्वयं की निन्दा करने वाले खल के प्रति भी असूया (दोष दृष्टि) प्रकाशित नहीं करते।

अनुभाष्य

१०८। अयं निर्मलमतिः (निर्मला नैसर्गिक-रागद्वेषादिवर्जिता मतिः यस्य सः) पुरुषोत्तमः (कृष्णः,—'कमलेक्षणः' इति पाठान्तरे) शीलेन (सत् स्वभावेन) भृत्यस्य (किङ्करस्य) गुरून् (महतः) अपि अपराधान् न पश्यति, मनाक् (ईषत्) अपि कृतां (अनुष्ठितां) सेवां बहुधा (बहुप्रकारतया) अभ्युपैति (अङ्गीकारोति); पिशुनेषु (खलेषु दुर्जनेषु वा) अपि अभ्यसूयां (दोषदृष्टिं) न आविष्करोति (न प्रकाशयति)।

श्रीरूप और हरिदास के द्वारा सगण प्रभु को प्रणाम—

भक्तसङ्गे प्रभु आइला, देखि' दुइ जन।
दण्डवत् हञा कैला चरण वन्दन॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को अपने भक्तों के साथ आया देखकर श्रीरूप तथा श्रीहरिदास ठाकुर ने दण्डवत् होकर उनके श्रीचरणों की वन्दना की।

भक्तों से वेष्टित (घिरे हुए) प्रभु के समक्ष उनसे निम्न आसन पर दोनों का दीनतापूर्वक बैठना—

भक्तसङ्गे कैला प्रभु दुँहारे मिलन।
पिण्डाते बसिला प्रभु लञा भक्तगण॥ ११० ॥

११०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तों सहित श्रीरूप और श्रीहरिदास ठाकुर से मिले। श्रीमन्महाप्रभु भक्तों को अपने साथ लेकर चबूतरे पर बैठ गये।

रूप-हरिदास दुँहे बसिला पिण्डातले।
सबार अग्रे ना उठिला पिँड़ार उपरे॥ १११ ॥

१११। प० अनु०—श्रीरूप और श्रीहरिदास ठाकुर—ये दोनों चबूतरे के नीचे बैठे, पूजनीय भक्तों के समक्ष ये लोग चबूतरे के ऊपर नहीं बैठे।

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीरूप को "प्रियः सोऽयं" श्लोक का उच्चारण करने हेतु आदेश, श्रीरूप की लज्जा और मौन—

"पूर्वश्लोक पड़, रूप", प्रभु आज्ञा कैला।
लज्जाते ना पड़े रूप मौन धरिला॥ ११२ ॥

११२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरूप गोस्वामी को आज्ञा दी—"हे रूप, स्वरचित पूर्वश्लोक अर्थात् 'प्रियः सोऽयम्' श्लोक का उच्चारण करो", श्रीरूप लज्जा के कारण उसका उच्चारण नहीं कर रहे थे, उन्होंने मौन धारण कर लिया।

स्वरूप के द्वारा श्लोक का उच्चारण, उसके श्रवण से सभी को विस्मय—

स्वरूप-गोसाञि तबे सेइ श्लोक पड़िल।
शुनि' सबाकार चित्ते चमत्कार हैल॥ ११३ ॥

११३। प० अनु०—तब श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने ही उस श्लोक का उच्चारण किया, जिसे सुनकर सभी का चित्त चमत्कृत हो उठा।

पद्यावली (३८३) में श्रीरूपगोस्वामी रचित-श्लोक—

प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित-
स्तथाहं सा राधा तदिदमुभयोः सङ्गमसुखम्।
तथाप्यन्तःखेलन्मधुरमुरलीपञ्चमजुषे
मनो मे कालिन्दीपुलिनविपिनाय स्पृहयति॥ ११४॥

११४। अनु०—[श्रीमती राधिका अपनी किसी प्रिय सखी से कह रही हैं—] हे सहचरि, (जिन्होंने मेरे साथ वृन्दावन में विहार किया था) मेरे वही अतिप्रिय कृष्ण आज कुरुक्षेत्र में मिलित हुए हैं। यद्यपि मैं भी वही राधा हूँ; और हम दोनों के मिलन का सुख भी वही है; तथापि इन श्रीकृष्ण के द्वारा वन में क्रीड़ा करते हुए मुरली के पञ्चम स्वर (के श्रवण) के आनन्द से आप्लावित कालिन्दी के पुलिन पर स्थित वन के लिये ही मेरा चित्त

स्पृहा कर रहा है अर्थात् वहाँ जाने के लिये उत्कण्ठित हो रहा है।

अनुभाष्य

११४। मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ७६ वीं संख्या द्रष्टव्य।

रामानन्दादि भक्तों का अनुमान, प्रभु की कृपा के फल से ही श्रीरूप के द्वारा प्रभु के भाव को जानना—

राय, भट्टाचार्य बले,—''तोमार प्रसाद बिने।
तोमार हृदय एइ जानिबे केमने॥ ११५ ॥
आमाते सञ्चारि' पूर्वे कहिला सिद्धान्त।
जे सब सिद्धान्ते ब्रह्मा नाहि पाय अन्त॥ ११६ ॥
ताते जानि,—पूर्वे तोमार पाञाछे प्रसाद।
ताहा बिना नहे तोमार हृदयानुवाद॥'' ११७ ॥

११५-११७। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय तथा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा,—''आपकी कृपा के बिना रूप आपके हृदय को कैसे जान सकता है?'' श्रीरायरामानन्द ने कहा—''हे श्रीमन्महाप्रभु, आपने पहले मुझमें अपनी शक्ति का सञ्चार करके मेरे मुख के माध्यम से उन सब सिद्धान्तों को प्रकाशित कराया था, जिन सब सिद्धान्तों का ब्रह्मा तक भी अन्त नहीं पा सकते। अतएव उस से ही मैं अनुमान करता हूँ कि रूप ने भी पूर्व में आपकी कृपा को प्राप्त किया है, उसके बिना आपके हृदय के गूढ़ भावों का श्लोक के रूप में अनुवाद नहीं किया जा सकता।

अनुभाष्य

११६। पूर्वे अर्थात् पहले, — [श्रीरूप पर श्रीमन्महाप्रभु द्वारा की गयी कृपा के प्रसङ्ग के लिये] मध्य-लीला का अष्टम परिच्छेद द्रष्टव्य।

अनुभाष्य

११७। हृदयानुवाद,—मन के भावों का कीर्त्तन।

प्रभु द्वारा श्रीरूप को ''तुण्डे ताण्डविनी'' श्लोक का उच्चारण करने का आदेश—

प्रभु कहे,—कह ''रूप, नाटकेर श्लोक।
जे श्लोक शुनिले लोकेर जाय दुःख-शोक॥'११८॥

११८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरूप गोस्वामी से कहा—''हे रूप, तुम अब नाटक के उस श्लोक का उच्चारण करो, जिस श्लोक को सुनने से लोगों का दुःख और शोक नष्ट हो जाता है।''

पहले स्वरचित श्लोक के उच्चारण में लज्जा, बाद में उच्चारण—

बार बार प्रभु तारे आज्ञा यदि दिला।
तबे सेइ श्लोक रूप कहिते लागिला॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०—जब श्रीमन्महाप्रभु ने बार-बार श्रीरूप को उस श्लोक का उच्चारण करने का आदेश दिया, तब श्रीरूप ने उस श्लोक का उच्चारण किया।

विदग्धमाधव (१.१५) में—

तुण्डे ताण्डविनी रतिं वितनुते तुण्डावलीलब्ध्ये
कर्णक्रोड़कड़म्बिनी घटयते कर्णार्बुदेभ्यः स्पृहाम्।
चेतः प्राङ्गणसङ्गिनी विजयते सर्वेन्द्रियाणां कृतिं
नो जाने जनिता कियद्भिरमृतैः कृष्णेति वर्णद्वयी॥१२०॥

१२०।अनु०—[श्रीपौर्णमासी ने नान्दी से कहा—] 'कृष्ण' ये दो वर्ण ना जाने कितने अमृत के साथ उत्पन्न हुए हैं, मैं उसे नहीं जानती हूँ; देखो, जब (नटी अर्थात् नृत्याङ्गना की भाँति) वह तुण्ड अर्थात् मुख में नृत्य करते हैं, तब बहुत से मुख प्राप्त करने के लिये रति का विस्तार (अर्थात् आसक्ति वर्द्धित) करते हैं, जब कर्ण कुहरों में प्रवेश करते हैं (अंकुरित होते हैं), तब अरबों कानों के लिये स्पृहा उत्पन्न होती है; जब चित्त के प्राङ्गण में (सङ्गिनी अर्थात् सहचरी के रूप में) उदित होते हैं, तब समस्त इन्द्रियों की क्रिया पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

अनुभाष्य

१२०। अन्त्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ९९ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्लोक को सुनने से रामानन्द आदि भक्तों में विस्मय और सुख–

जत भक्तवृन्द आर रामानन्द राय।
श्लोक शुनि' सबार हइल आनन्द-विस्मय॥ १२१॥

१२१। प० अनु०—वहाँ पर उपस्थित समस्त भक्तों तथा श्रीरायरामानन्द ने जब श्रीरूप के मुख से उक्त श्लोक को सुना, तब सभी को अत्यन्त आनन्द तथा विस्मय हुआ।

अद्वितीय कृष्णनाम की माधुरी को पुष्ट करने वाला श्लोक–

सबे बले,—''नाम-महिमा शुनियाछि अपार।
एमन माधुर्य केह वर्णे नाहि आर॥'' १२२ ॥

१२२। प० अनु०—सभी ने एक ही स्वर में कहा—''हमने नाम की अपार महिमा का श्रवण किया है, किन्तु नाम के ऐसे माधुर्य का वर्णन अन्य किसी ने भी नहीं किया।''

श्रीराय-रूप-संलाप-वर्णन; राय के द्वारा मूल ग्रन्थ के परिचय की जिज्ञासा–

राय कहे,—''कोन् ग्रन्थ कर हेन जानि?
जाहार भितरे एइ सिद्धान्तेर खनि??'' १२३ ॥

१२३। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने पूछा,—''हे रूप, बतलाओ तो तुम कौन से ऐसे ग्रन्थ की रचना कर रहे हो, जिसके भीतर सिद्धान्त की खान स्वरूप यह श्लोक निहित है?''

स्वरूप के द्वारा दोनों नाटकों का परिचय-प्रदान–

स्वरूप कहे,—''कृष्णलीलार नाटक करिते।
व्रजलीला-पुरलीला एकत्र वर्णिते॥१२४॥
आरम्भियाछिला, एबे प्रभु-आज्ञा पाञा।
दुइ नाटक कैराछेन विभाग करिया॥ १२५ ॥

व्रजलीलात्मक विदग्धमाधव और पुरलीलात्मक ललितमाधव–

विदग्धमाधव आर ललितमाधव।
दुइ नाटके प्रेमरस अद्भुत सब॥'' १२६ ॥

१२४-१२६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने उत्तर दिया—''हे रामानन्द राय, रूप ने कृष्णलीला से सम्बन्धित व्रजलीला और पुरलीला का एक साथ एक ही नाटक के रूप में वर्णन करना प्रारम्भ किया था। किन्तु अब श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा को प्राप्त करके रूप ने उस नाटक को दो भागों में विभक्त कर दिया है। रूप द्वारा रचित श्रीविदग्ध माधव और श्रीललित माधव—इन दोनों नाटकों में अद्भुत प्रेमरस का वर्णन है।''

अनुभाष्य

१२६। 'विदग्धमाधव' १४५४ शकाब्द में एवं 'ललितमाधव' १४५९ शकाब्द में रचित हुआ । १४३७ शकाब्द में इन दोनों ग्रन्थों के प्रसङ्ग में श्रीराय-रामानन्द के साथ श्रीरूप गोस्वामी का आलाप हो रहा है।

श्रीरूप को राय के द्वारा विदग्धमाधव के नान्दी श्लोक के उच्चारण का अनुरोध–

राय कहे,—''नान्दी-श्लोक पड़ देखि, शुनि?''
श्रीरूप श्लोक पड़े प्रभु-आज्ञा मानि'॥ १२७ ॥

१२७। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने श्रीरूप से कहा—''हे रूप, तुमने स्वरचित विदग्ध माधव नाटक के नान्दी श्लोक अर्थात् आनन्द उत्पन्न करने वाले मङ्गलाचरण श्लोक में क्या लिखा है? उसका उच्चारण करो, मैं उसे सुनना चाहता हूँ।'' इसे श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा मानकर श्रीरूप ने नान्दी श्लोक का उच्चारण किया।

अनुभाष्य

१२७। अब श्रीरामानन्द श्रीरूप द्वारा रचित 'विदग्ध माधव' नाटक के विषय की जिज्ञासा कर रहे हैं।

जगत् के मङ्गल का विधान करने वाली कृष्णलीला—विदग्ध-माधव के मङ्गलाचरण (१.१) में–

सुधानां चान्द्रीणामपि मधुरिमोन्माद-दमनी
दधाना राधादिप्रणयघनसारैः सुरभिताम्।
समन्तात् सन्तापोद्गम-विषम संसार-सरणी-
प्रणीतां ते तृष्णां हरतु हरिलीला-शिखरिणी॥ १२८॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१२८। यह हरिलीला-शिखरिणी [शिखरिणी (हरिलीलारूपा रसाला)— दूध, दही, चीनी, इलाइची, लौंग, काली मिर्च तथा कर्पूर आदि को मिलाकर बनायी जाने वाली उपादेय वस्तु-विशेष का नाम 'शिखरिणि' है। शिखरिणी अत्यन्त सुस्वादु, स्निग्ध, सुगन्धित एवं सुशीतल पदार्थ है।] सन्ताप के उत्पादक विषय संसार-मार्ग-भ्रमण जनित आपकी असत् तृष्णा का सम्पूर्णरूप से हरण करे। यह हरिलीला-शिखरिणी चन्द्र-सुधा की मधुरिमा से उत्पन्न मत्तता का दमन करती है एवं श्रीराधा आदि के प्रणय रूपी कर्पूर के द्वारा विशेष सौरभ को धारण किये हुए है।

अनुभाष्य

१२८। चान्द्रीणां (चन्द्रसम्बन्धिणीनां) सुधानां अपि मधुरिमोन्माद-दमनी (मधुरिमोन्मादहेतुना यः उन्मादः— 'अहमेव सर्वतो माधुर्यशालिनी' इति योऽहंङ्कारः तं दमयितुं शीलं यस्याः सा) राधादिप्रणयघनसारैः (राधादीनां प्रणयाः एव घनसाराः कर्पूराः तैः) सुरभितां (सौगन्ध्यं, पक्षे मनोहारित्वं) दधाना हरिलीला-शिखरिणी (हरिलीलारूपा रसाला) समन्तात् (सर्वतः) ते (तव) सन्तापोद्गम-विषम-संसार-सरणीप्रणीतां (सन्तापानां आध्यात्मिकादीनां उद्गमो यस्यां एवम्भूता या विषमा देवनरस्थावरत्व-प्रापक-लक्षणा संसाररूपा सरणी पन्थाः तत्प्रणीतां तत्पर्यटन-जनितां) तृष्णां हरतु (दूरीकरोतु)।

राय के द्वारा रूप को अपने अभीष्ट देव के वर्णन का अनुरोध, श्रीरूप की लज्जा—

राय कहे,—"कह इष्टदेवेर वर्णन।"
प्रभुर सङ्कोचे रूप ना करे पठन॥ १२९॥

१२९। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा—"हे रूप, इष्टदेव से सम्बन्धित श्लोक का वर्णन करो।" श्रीमन्महाप्रभु के साक्षात् विराजमान होने के कारण श्रीरूप संकोच वशतः उस श्लोक का उच्चारण नहीं कर रहे थे।

प्रभु का अनुरोधपूर्वक आदेश—

प्रभु कहे,—"कह-ना केने, कि सङ्कोच-लाजे?
ग्रन्थेर फल शुनाइबा वैष्णव-समाजे??" १३०॥

१३०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"हे रूप, बोलते क्यों नहीं, कैसा संकोच, कैसी लज्जा? ग्रन्थ की रचना करने का फल अर्थात् लाभ उसे वैष्णव-समाज में सुनाना ही तो है ना?"

श्रीरूप के द्वारा आशीर्वाद-श्लोक का उच्चारण, उसे सुनकर प्रभु का बाहर से कृत्रिम-असन्तोष-प्रकाशित करना—

तबे रूप-गोसाञि श्लोक पड़िल।
शुनि' प्रभु कहे,—"एइ अति स्तुति हैल॥" १३१॥

१३१। प० अनु०—तब श्रीरूप गोस्वामी ने इष्टदेव से सम्बन्धित निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण किया जिसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—"यह तो अतिस्तुति हो गयी है।"

विदग्धमाधव (१.२) में—

अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्।
हरिः पुरटसुन्दरद्युति कदम्ब सन्दीपितः
सदा हृदय कन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः॥ १३२॥

१३२। अनु०—सुवर्णकान्तिसमूह द्वारा दैदीप्यमान श्रीशचीनन्दन गौरहरि आपके हृदय में स्फूर्त्ति प्राप्त करें। जिस सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वलरस का दान जगत् को चिरकाल तक नहीं किया था, वे उसी स्वभक्ति-रूपी सम्पत्ति का दान करने के लिए कलिकाल में अवतीर्ण हुए हैं।

अनुभाष्य

१३२। आदि-लीला के तृतीय परिच्छेद की चतुर्थ संख्या द्रष्टव्य। श्रीमद्विश्वनाथ चक्रवर्त्ति-कृत विदग्धमाधव-टीका—"महाप्रभोः स्फूर्त्तिं बिना हरिलीला-रसास्वादनानुपपत्तेरिति भावः। वः युष्माकं हृदय रूपगुहायां शचीनन्दनोः हरिः, पक्षे, सिंहः स्फुरतुः। यः शचीनन्दनः कलौ स्वभक्तिश्रियं स्वभजनसम्पत्तिं करुणया

समर्पयितुमवतीर्णः। कथम्भूताम्?—अनर्पितचरीं केनापि न अर्पितपूर्वाम्। ननु कपिलदेवादिभिः स्वमात्रादिभ्यो भगवद्भजनं पूर्वं किं नोपदिष्टम्? तत्राह— सकलरस-सद्भावेऽपि उन्नतः उज्ज्वलः रसो यस्यां तां भक्तिश्रियम्; तथा चोज्ज्वलरसप्रधाना भक्तिर्नोपदिष्टेति भावः। कथम्भूतः?—पुरटात् सुवर्णादपि सुन्दरद्युतिसमूहेन सन्दीपितः। एवं सति पर्वतकन्दरायाम् उदितः सिंहो यथा तत्रस्थान् हस्तिनो नाशयति, तथा युष्माकं हृदयकन्दराया-मुदितः शचीनन्दनस्वरूपसिंहः हृद्रोगरूपहस्तिनो नाशयतीति ध्वनिः॥'' [अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभु की स्फूर्त्ति के बिना हरिलीला का रसास्वादन सिद्ध नहीं होता— यही अभिप्राय है। 'वः' अर्थात् तुम्हारी, हृदय रूपी गुफा में शचीनन्दन रूपी श्रीहरि, पक्षान्तर में शचीनन्दन रूपी सिंह की स्फूर्त्ति प्राप्त हो—जो शचीनन्दन कलिकाल में 'स्वभक्तिश्रियम्' अर्थात् निजभजन-सम्पत्ति को करुणावशतः समर्पण करने के लिये अवतीर्ण हए हैं; वह सम्पत्ति किस प्रकार की है? 'अनर्पितचरीं' अर्थात् वह किसी के भी द्वारा पहले अर्पित नहीं की गयी। यदि कहो, कपिलदेव इत्यादि ने क्या अपनी माता को भगवद् भजन का उपदेश नहीं दिया? उसके लिये कहा जा रहा है कि समस्त रसों के विद्यमान होने पर भी जिसमें उन्नत-उज्ज्वल रस है, वह भक्ति-सम्पत्ति तथा उज्ज्वल-प्रधाना भक्ति उपदिष्ट नहीं हुयी—यह भाव है। वह शचीनन्दन कैसे हैं? पुरट अर्थात् सुवर्ण की अपेक्षा भी सुन्दरकान्ति समूह द्वारा सम्पूर्ण रूप से दैदीप्यमान। इस प्रकार के होकर, पर्वत की गुफा में उदित सिंह जिस प्रकार वहाँ उपस्थित हाथियों का नाश करता है, उसी प्रकार तुम्हारी हृदयगुफा में श्रीशचीनन्दन रूपी सिंह हृदरोग रूपी हाथी का नाश करें—यही अभिप्राय है।]

श्लोक के श्रवण से भक्तों के द्वारा प्रशंसा—

सब भक्तगण कहे श्लोक शुनिया।
''कृतार्थ करिला सबाय श्लोक शुनाञा॥'' १३३॥

१३३। प० अनु०—श्रीरूप द्वारा उच्चारित उपरोक्त श्लोक को सुनकर सभी उपस्थित भक्तों ने कहा—''हे रूप, तुमने यह श्लोक सुनाकर हम सबको कृतार्थ कर दिया है।''

राय के द्वारा विदग्धमाधव के विविध अङ्ग और परिचय की जिज्ञासा, श्रीरूप के द्वारा नाटक में लिखित श्लोकों का उच्चारण करके उत्तर-प्रदान—

राय कहे,—''कोन् आमुखे पात्र सन्निधान?''
रूप कहे,—''कालसाम्ये 'प्रवर्त्तक' नाम॥'' १३४॥

१३४। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने पूछा—''हे रूप, किस प्रकार के आमुख (प्रस्तावना अथवा भूमिका) को उपलक्ष्य करके आपके नाटक के पात्र [अभिनेता कृष्ण-लीला के जिस परिकर के साज में सजकर, जिसके अनुरूप अभिनय करने के लिये रङ्गमञ्च में प्रवेश करते हैं, कृष्ण-लीला के उस परिकर को 'पात्र' कहते हैं। उस] ने सर्वप्रथम रङ्गमञ्च में प्रवेश (आगमन) किया है?'' श्रीरूप ने कहा—''कालसाम्य अर्थात् तुल्य-धर्म-विशिष्ट समय वर्णन के प्रसङ्ग में आकृष्ट होकर रङ्गमञ्च में नाटक-पात्र के प्रवेश होने के कारण वह 'प्रवर्त्तक' है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१३४। अभिनयकारी नायक आदि (नाटक में उल्लिखित व्यक्तियों) के नाम—'पात्र'; यथा, साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद २८३ श्लोक में—''दिव्यमर्त्त्ये स तद्रूपो मिश्रमन्यतरस्तयोः। सूचयेद्वस्तुबीजं वामुखं पात्रमथापि वा॥'' [अर्थात् यदि नाटक देवता के विषय में होता है, तब वह अभिनेता देवता के रूप में, मनुष्य विषयक होने पर मनुष्य के रूप में एवं स्वर्ग-मर्त्त्य दोनों-विषयक होने पर देवता और मनुष्य, जिस किसी भी एक रूप में वस्तुबीज अथवा आमुख या फिर पात्र की सूचना करेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसका अभिनय करना है, अभिनेता उसी की भाँति वेश-भूषा धारण करके रङ्गमञ्च में प्रवेश करेगा।] 'आमुख' शब्द का अर्थ,—यथा, नाटक चन्द्रिका में—''सूत्रधारो नटी श्रुते स्वकार्य प्रतियुक्तितः।

प्रस्तुताक्षेपिचित्रोक्तया यत्तदामुखमीरितम्॥'' [अर्थात् सूत्रधार प्रतियुक्ति के अनुसार प्रस्तुत-विषय की विचित्र उक्ति के द्वारा जो अपना लेख नटी को बतलाते हैं, वही 'आमुख' कहलाता है।] रामानन्द राय की जिज्ञासा का तात्पर्य यह है कि इस नाटक में अभिनेता पात्र आदि का सन्निधान (रङ्गमञ्च में प्रवेश अथवा आगमन) कौन से 'आमुख' (प्रस्तावना) से हुआ है? श्रीरूप का उत्तर,—कालसाम्ये (उपस्थित उस समय) 'प्रवर्त्तक' (रङ्ग मञ्च में प्रवेश) रूपी आमुख में ही पात्र का सन्निधान हुआ है।

[श्रीरूप गोस्वामी ने उत्तर दिया-''सूत्रधार और पारिपार्श्विक के वार्त्तालाप के अन्तिम चरण में सूत्रधार ने जब पारिपार्श्विक से सुना कि अभिनेताओं की वेश-भूषा सम्पूर्ण हो गयी है, तब उन्होंने अभिनय सूचना के निमित्त जिस श्लोक को बोला, उसे सुनकर बसन्तकाल की पौर्णमासी-रजनी (रात्रि) का दृश्य ही श्रोताओं के चित्त में स्फुरित होता है। सूत्रधार ने पारिपार्श्विक को कहा,-''देखो, देखो, वह बसन्तकाल आकर उपस्थित हुआ है, जिस समय निशाकाल में, नवरागरञ्जित नाथ को सुशोभित करने के निमित्त राधा (अर्थात् विशाखा नक्षत्र) के साथ पौर्णमासी आकर उपस्थित हुयी।''

नैपथ्य से व्रजलीला की पौर्णमासी ने सूत्रधार की बात को सुना। श्लोक में सूत्रधार ने पौर्णमासी शब्द से 'पौर्णमासी तिथि' को लक्ष्य किया था तथा 'राधा' शब्द से 'विशाखा नक्षत्र' को लक्ष्य किया था; किन्तु पौर्णमासी देवी ने सूत्रधार की बात सुनकर 'पौर्णमासी' शब्द से स्वयं को तथा 'राधा' शब्द से श्रीवृषभानु नन्दिनी को ही लक्ष्य किया। अतएव पौर्णमासी देवी ने सूत्रधार की बात का अर्थ समझा :—''बसन्त-रजनी में (राधा)-नाथ श्रीकृष्ण के कौतुक की वृद्धि करने के उद्देश्य से श्रीराधा को साथ लेकर पौर्णमासी देवी आकर उपस्थित हुयी हैं।'' पौर्णमासी ने भी वास्तव में उस बसन्त-रजनी में श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा के मिलन-संघटन का सङ्कल्प किया था। सूत्रधार की बात सुनकर पौर्णमासी कहने लगी—''सूत्रधार, तुम किस प्रकार मेरे मन के गूढ़ अभिप्राय से अवगत हुए?'' यह कहकर वह रङ्गमञ्च की ओर अग्रसर हुयी। दूसरी ओर, सूत्रधार और पारिपार्श्विक पौर्णमासी के आगमन से पहले ही रङ्गमञ्च छोड़कर चले गये।

इस प्रकार विदग्धमाधव नाटक में सर्वप्रथम पौर्णमासी देवी नामक पात्र का रङ्गमञ्च पर आगमन हुआ। पौर्णमासी देवी ने बसन्त-रजनी में श्रीराधा-कृष्ण के मिलन का सङ्कल्प किया था तथा सूत्रधार ने भी बसन्त-रजनी समागत हुई है, ऐसा कहा; यही काल-साम्य हुआ। पौर्णमासी देवी के अभीष्ट काल (बसन्त-रजनी) के साथ सूत्रधार के काल (बसन्त-रजनी) के एक होने के कारण ही इसे काल-साम्य कहा गया।

इस काल-साम्य को उपलक्ष्य करके पात्र ने रङ्गमञ्च पर प्रवेश किया है, इसलिए उसे 'प्रवर्त्तक' कहा गया है।]

अनुभाष्य

१३४। अन्त्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ७१ वीं संख्या [एवं उसका अनुभाष्य] द्रष्टव्य है। आमुख अथवा प्रस्तावना—पाँच प्रकार की होती है; यथा, साहित्य दर्पण के षष्ठ परिच्छेद के २८८ वें श्लोक में—''उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा। प्रवर्तकावलगिते पञ्च प्रस्तावनाभिदाः॥'' अर्थात् (१) उद्घात्यक, (२) कथोद्घात, (३) प्रयोगातिशय, (४) प्रवर्त्तक, (५) अवलगित,—इन पाँच प्रकार से नाटक का 'आमुख' अथवा 'प्रस्तावना' होती है। नाटकचन्द्रिका में—''स्त्रीण्यामुखाङ्गानुच्यन्ते कथोद्घात प्रवर्त्तकम्। प्रयोगातिशयश्चेति तथा वीथ्यङ्गयुग्मकम्। उद्घात्यकावलगित-संज्ञकं मुनिनोदितम्॥'' श्रीरामानन्द ने जिज्ञासा की,—''इन अनेक प्रकार की प्रस्तावनाओं में से कौन-से प्रकार से नाटक की प्रस्तावना लिखी गयी है?'' उसके उत्तर में श्रीरूप गोस्वामी ने कहा,—''उक्त प्रस्तावनाओं में 'प्रवर्त्तक' को ग्रहण किया गया है।'' साहित्य-दर्पण के षष्ठ परिच्छेद के २९२ वें श्लोक में—

''कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत्। तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत् प्रवर्त्तकम्॥'' अर्थात् सूत्रधार उपस्थित जिस काल को आश्रय करके वर्णन करते हैं, यदि उसी काल के आश्रय में नटरूपी पात्र का प्रवेश होता है, तब उसे 'प्रवर्त्तक' कहते हैं।

[चैतन्य चरितामृत के इसी परिच्छेद की पयार सख्या ७१ के अनुभाष्य में वर्णन हुआ है कि किस प्रकार रङ्गमञ्च पर नाटक के आरम्भ में सूत्रधार और पारिपार्श्विक के बीच में वार्त्तालाप हो रहा था तथा यह भी वर्णन आया कि सूत्रधार के द्वारा किये गये मङ्गलाचरण और पारिपार्श्विक के साथ किये जा रहे वार्त्तालाप को ही 'आमुख' अथवा 'प्रस्तावना' कहा जाता है। अब श्रीरामानन्द राय जिज्ञासा कर रहे हैं कि सूत्रधार द्वारा किये जा रहे 'आमुख' के किस अंश को उपलक्ष्य करके नाटक के पात्र का रङ्गमञ्च में आगमन हुआ है, दूसरे शब्दों में आमुख अथवा प्रस्तावना किस प्रकार समाप्त हुयी है तथा वास्तविक रूप में नाटक कैसे प्रारम्भ हुआ है।]

(नाटकचन्द्रिका (१२) में—

आक्षिप्तः कालसाम्येन प्रवेशः स्यात् प्रवर्त्तकः॥१३५॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१३५। उपयुक्त (उपस्थित) काल द्वारा आक्षिप्त (प्रेरित) होकर (नट रूपी पात्र के) रङ्गमञ्च में प्रवेश को 'प्रवर्त्तक' कहते हैं।

अनुभाष्य

१३५। कालसाम्येन (प्रवृत्तकालाश्रयेण) आक्षिप्तः (प्रेषितः सन् उपस्थितं कालम् आश्रित्येत्यर्थः) पात्रस्य (नटस्य) प्रवेशः (एव, 'प्रवृत्तिः' इति वा पाठः) 'प्रवर्त्तकं' स्यात्।

उसका उदाहरण यथा—

विदग्धमाधव (१.१०) में पारिपार्श्विक के प्रति सूत्रधार की उक्ति—

सोऽयं वसन्तसमयः समियाय यस्मिन्
पूर्णं तमीश्वरमुपोढ़-नवानुरागम्।
गूढ़ग्रहा रुचिरया सह राधयासौ
रङ्गाय सङ्गमयिता निशि पौर्णमासी॥ १३६ ॥

१३६। अनु०— चन्द्रपक्षीय अर्थ—यह वही बसन्त-काल उपस्थित हुआ है, जिसमें चन्द्र की ज्योत्स्ना के अत्यधिक गाढ़ होने के कारण गूढ़ ग्रहा अर्थात् नवग्रह समूह की रश्मि सम्पूर्ण रूप से फीकी पड़ गयी है। यह पौर्णमासी अर्थात् पूर्णिमा तिथि नवीन रक्तिमा को प्राप्त परिपूर्ण रजनीनाथ अर्थात् चन्द्र को अत्यन्त सुन्दर विशाखा नक्षत्र के साथ शोभा के लिये रात्रिकाल में सम्मिलित कराएगी। श्रीकृष्णपक्षीय अर्थ—यह वही बसन्तकाल उपस्थित हुआ है, जिसमें गूढ़-आग्रहवती यह भगवती पौर्णमासी देवी नवीन-अनुराग प्राप्त परिपूर्ण ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र को कौतुक-रहस्य को आविष्कृत करने के उद्देश्य से शोभा-सम्पन्ना श्रीराधा के साथ रात्रिकाल में सम्मिलित कराएगी।

अमृतप्रवाह भाष्य

१३६। बसन्तकाल उदित हुआ है; पौर्णमासी [देवी] रात्रि में इस समय नव-अनुराग को प्राप्त पूर्णतम ईश्वर श्रीकृष्ण को लीला-सौन्दर्य के सम्वर्धन करने के उद्देश्य से परम सुन्दरी श्रीराधिका के साथ मिलायेंगी। इस श्लोक का अर्थ दो प्रकार का है—अर्थात्, चन्द्रपक्ष में एवं श्रीकृष्णपक्ष में, इनमें से श्रीकृष्णपक्ष वाला अर्थ ही मुख्य है।

अनुभाष्य

१३६। यस्मिन् (वसन्तसमये) असौ गूढ़ ग्रहा (चन्द्र-ज्योत्स्नातिशयेन गूढ़ाः आवृतरश्मयः ग्रहाः यस्यां सा) पौर्णमासी (तिथिः) निशि उपोढ़नवानुरागम् (उपोढ़ः प्राप्तः नवः अनुगतः रागः रक्तिमा येन तं) पूर्णं तमीश्वरं (तम्याः रजन्याः ईश्वरं चन्द्रं) रूचिरया (शोभनया) राधया (विशाखानक्षत्रेण सह) रङ्गाय (शोभार्थं) सङ्गं (सङ्गम्) अयिता (प्रापयिता), सः अयं वसन्तसमयः समियाय (समुपागतः—एतेन कालवैशिष्ट्यमुक्तम्; पक्षे—गूढ़ः ग्रहः आग्रहः यस्याः सा भगवती पौर्णमासी, तं प्रसिद्धं पूर्णं ईश्वरं श्रीकृष्णं रुचिरया शोभनया राधया सह रङ्गाय कौतुक

रहस्यम् आविष्कर्त्तुं सङ्गमयिता)।

राय कहे,—''प्ररोचनादि कह देखि' शुनि?''
रूप कहे,— महाप्रभुर श्रवणेच्छा जानि॥ १३७ ॥

१३७। प॰ अनु॰—श्रीरामानन्द राय ने कहा—''हे रूप, तुमने प्ररोचना आदि के विषय में क्या लिखा है? अब मुझे वह बतलाओ। मैं उसे सुनना चाहता हूँ।'' श्रीरूप श्रीमन्महाप्रभु की श्रवण की इच्छा समझकर कहने लगे—।

अमृतप्रवाह भाष्य

१३७। प्ररोचना,—[सूत्रधार और पारिपार्श्विक के द्वारा कथोपकथन के माध्यम से नाटक के] देश, काल, नायक तथा सभ्य सभासदों की प्रशंसा के द्वारा [प्ररोचित अर्थात्] श्रोताओं को श्रवण का इच्छुक बनाने की प्रथा ही 'प्ररोचना' है।

अनुभाष्य

१३७। प्ररोचना,—(नाटकचन्द्रिका में)—''देश-काल-कथा-वस्तु-सभ्यादीनां प्रशंसया। श्रोतृणा-मुन्मुखीकारः कथितेयं प्ररोचना॥'' [अर्थात् देश-काल-कथा, वस्तु और सभ्यगणों की प्रशंसा के द्वारा श्रोताओं को उन्मुख कराना ही प्ररोचना कहलाता है।] साहित्य दर्पण के षष्ठ परिच्छेद के २८६ वें श्लोक में—''तस्याः प्ररोचना वीथी तथा प्रहसनामुखे। अङ्गान्यत्रोन्मुखीकारः प्रशंसातः प्ररोचना॥'' [अर्थात् प्ररोचना, वीथी, प्रहसन और आमुख—इन चारों अङ्गों में से कवि के काव्य और सभ्य आदि की सुख्याति अर्थात् अत्यधिक प्रशंसा करके श्रोताओं को अभिनय के विषय में आकृष्ट करने को प्ररोचना कहा जाता है।]—''प्रस्तुताभिनयेषु प्रशंसातः श्रोतृणां प्रवृत्युन्मुखीकरणं प्ररोचना'' अर्थात् प्रशंसा के द्वारा श्रोताओं की प्रवृत्ति को उन्मुख करने का नाम ही 'प्ररोचना' है।

विदग्धमाधव (१.८) में सूत्रधार के प्रति पारिपार्श्विक की उक्ति —

भक्तानामुदगादनर्गलधियां वर्गो निसर्गोज्ज्वलः
शीलैः पल्लवितः स वल्लववधूबन्धोः प्रबन्धोऽप्यसौ।
लेभे चत्वरताञ्च ताण्डवविधेर्वृन्दाटवीगर्भभू-
र्मन्ये मद्विधपुण्यमण्डलपरीपाकोऽयमुन्मीलति॥१३८॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१३८। [पारिपार्श्विक सर्वप्रथम श्रोता भक्तों की प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं—] अनर्गलबुद्धि (चतुर) तथा उज्ज्वलस्वभाव के भक्त उपस्थित हुए हैं; [तत्पश्चात् अभिनय के विषय के सम्बन्ध में प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं—] गोपवधुओं के प्राणनाथ श्रीकृष्ण-विषयक यह प्रबन्ध भी अनेक प्रकार के गुणों से पल्लवित है; दूसरी ओर, [अब स्थान की प्रशंसा करते हुए कह रहे हैं-] यह रङ्गमञ्च भी वृन्दावन में स्थित रासमण्डल की नृत्यविधि का चबूतरा स्वरूप है; अतएव मैं सोचता हूँ कि [पुनः स्वयं को उपलक्ष्य करके उपस्थित समस्त सभ्यगणों के सौभाग्य के विषय में कह रहे हैं—] मेरे जैसे व्यक्तियों की सुकृति-मण्डल की यह परिपक्व-अवस्था प्रकाशित हुई है।

अनुभाष्य

१३८। अनर्गलधियां (अप्रतिहतबुद्धीनां चतुराणां) भक्तानां निसर्गोज्ज्वलः (स्वरूपतः एव उज्ज्वलः) वर्गः (समूहः) उद्गात (उदयं प्राप्तवान्-एतेन पात्रवैशिष्ट्य-मुक्तम्); (एवं) वल्लववधूबन्धोः (श्रीकृष्णस्य) सः असौ (विदग्धमाधवस्वरूपः) प्रबन्धः अपि शीलैः (स्वभावोक्तयलङ्कारैः) पल्लवितः (विस्तारितः); (तथा च अत्र ग्रन्थे सर्वमेव वर्णनं स्वभावोक्तयलङ्कारमयम्—एतेन वस्तुवैशिष्ट्यमुक्तम्), वृन्दाटवीगर्भभूः (वृन्दाटव्याः रासपीठस्वरूपा गर्भभूमिः) ताण्डवविधेः (नृत्यविधेः) चत्वरतां (अङ्गनतां, नृत्यस्थलतां वा) लेभे (प्राप्तवती, एतेन देशवैशिष्ट्यमुक्तम्; अतः) अयं मद्विधपुण्यमण्डल-परीपाकः (मद्विधानां मादृशजनानां पुण्यमण्डलस्य सुकृति निचयस्य परीपाकः उत्कर्षः) उन्मीलति (प्रकाशते)।

विदग्धमाधव (१.६) में पारिपार्श्विक के प्रति सूत्रधार की उक्ति—

अभिव्यक्ता मतः प्रकृतिलघुरूपादपि बुधा
विधात्री सिद्धार्थान् हरिगुणमयी वः कृतिरियम्।
पुलिन्देनाप्यग्निः किमु समिधमुन्मथ्य जनितो
हिरण्यश्रेणीनामपहरति नान्तःकलुषताम्॥ १३९ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१३९। [सूत्रधार श्रीरूप गोस्वामी प्ररोचना सम्बन्धी द्वितीय श्लोक में भी अपनी स्वाभाविक दीनता का प्रकाश करते हुए तथा श्रोताओं की एवं वर्णनीय विषय की प्रशंसा रूपी उद्घोष करते हुए कह रहे हैं -] हे पण्डितगण, स्वभाव से ही लघु सदृश्य मेरे जैसे व्यक्ति के द्वारा भी यह हरिगुण वर्णनमयी रचना अभिव्यक्त (प्रकटित) होकर आपके सिद्धार्थ (सिद्ध मनोरथ) का विधान करे। (अति नीच जाति) पुलिन्द के द्वारा समिधसंघृष्ट (अर्थात् लकड़ी से उत्थित) अग्नि क्या सुवर्णश्रेणी (सुवर्ण जातीय धातुओं की) अन्तःकलुषता (उनके भीतर स्थित मल) का हरण (नाश) नहीं कर सकती?

अनुभाष्य

१३९। भोः बुधाः, (सभ्याः) प्रकृतिलघुरूपात् (प्रकृत्या स्वभावेन लघुस्वरूपात् वराकात्; सरस्वती तु ग्रन्थकर्तुः तद् दैन्यमसहमाना तं रूपगोस्वामिनं स्तौति— प्रकृष्टां कृतिं लघु शीघ्रं रूपयति निरूपयति इति निवध्नाति इत्यर्थः) मत्तः (सकाशात्) अभिव्यक्ता (प्रकाशिता) इयं हरिगुणमयी (तद्वर्णन-मयीत्यर्थः) कृतिः (विदग्ध-माधवनाटकरूपिणी कविता) अपि वः (युष्मान्) सिद्धार्थान् (सिद्धमनोरथान् अभिलषितान्) विधात्री (विधातुं शीलं अस्याः इति विधानं कुर्यात् इत्यर्थः, यतः) पुलिन्देन (अतिनीचास्पृश्य-जातिना) अपि समिधं (काष्ठम्) उन्मथ्य जनितः (मथनेन सङ्घर्षणेन वा जातः) अग्निः अपि हिरण्यश्रेणीनां (सुवर्णसमूहानाम्) अन्तः कलुषतां किमु न अपहरति (दूरीकरोति?— तथा च युष्माकमप्यन्तर्विरहदुःखमेषा कृतिरपहरत्ये-वेत्यर्थः)।

राय कहे,—''कह देखि प्रेमोत्पत्ति-कारण?
पूर्वानुराग, विकार, चेष्टा, कामलिखन??'' १४०॥

१४०। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा,—''हे रूप, तुमने प्रेमोत्पत्ति के कारणों यथा पूर्वानुराग, विकार, चेष्टा तथा काम-लिखन आदि के विषय में क्या लिखा है? मुझे वह बतलाओ।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१४०। पूर्वानुराग,—पूर्वराग; विकार,— प्रणयविकार (दिव्योन्माद-जनित व्याधि); चेष्टा,—प्रेम से उत्पन्न दैहिक क्रिया; कामलिखन,—गोपियों के प्रेम को प्रकाशित करने वाली लिपि। (श्रीरायरामानन्द) प्रभु द्वारा उस प्रेम की उत्पत्ति के कारण की जिज्ञासा करने पर श्रीरूप ने समस्त वर्णन किया।

अनुभाष्य

१४०। कामलिखन,—(उज्ज्वलनीलमणि के विप्रलम्भ प्रकरण का २६ वाँ श्लोक)—''स लेखः कामलेखः स्यात् यः स्वप्रेमप्रकाशकः। युवत्या यूनि यूना च युवत्यां संप्रहीयते॥'' [अपने प्रेम को ज्ञापन करते हुए वह लेख या पत्र जो नायक नायिका को और नायिका नायक को भेजती है, उसे कामलेख कहते हैं।]

क्रमे श्रीरूप-गोसाञि सकलि कहिल।
शुनि' प्रभुर भक्तगणेर चमत्कार हैल॥ १४१ ॥

१४१। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने क्रमपूर्वक सबका वर्णन किया, जिसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के समस्त भक्त चमत्कृत हो उठे।

उसमें रति की उत्पत्ति का हेतु यथा —

विदग्धमाधव (२.९) में ललिता और विशाखा के प्रति श्रीराधा की उक्ति—

एकस्य श्रुतमेव लुम्पति मतिं कृष्णेति नामाक्षरं
सान्द्रोन्मादपरम्परामुपनयत्यन्यस्य वंशीकलः।
एष स्निग्धघनद्युतिर्मनसि मे लग्नः पटे वीक्षणात्
कष्टं धिक् पुरुषत्रये रतिरभून्मन्ये मृतिः श्रेयसी॥१४२॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१४२। पूर्वराग प्राप्त राधिका कह रही हैं,— किसी एक परपुरुष का 'कृष्ण' नामाक्षर श्रवण करके मेरी मति लुप्त हो (खो) गयी है; अन्य किसी एक पुरुष की वंशीध्वनि मेरे हृदय में गाढ़ उन्माद को उदित करा रही है; पुनः चित्र में अन्य एक पुरुष की स्निग्ध मेघकान्ति देखने के समय से ही, वह मेरे हृदय से चिपकी ही हुई है। हा धिक्, मेरी क्या तीन अलग-अलग पुरुषों के प्रति ऐसी रति हो गयी है? मेरा मर जाना ही अच्छा है।

अनुभाष्य

१४२। (हे सखि,) एकस्य (परपुरुषस्य) 'कृष्ण' इति नामाक्षरं श्रुतं एव (मम राधायाः) मतिं (स्त्रीजनोचितां पातिव्रत्यबुद्धिं) लुम्पति (छिनत्ति,—प्रथमं कृष्णनामाक्षर-मात्रं श्रुत्वा परममधुरत्वेनानुभूय तन्नामिनि कृष्णे रतिमुवाहेत्यर्थः)। अन्यस्य (द्वितीयस्य पुरुषान्तरस्य) वंशीकलः (मुरलीध्वनिः श्रुतः सन्) सान्द्रोन्मादपरम्परां (घनीभूतदिव्योन्मादधारां) उपनयति, (प्रापयति—ततश्च वंशीनादं परममधुरत्वेनास्वाद्य तद्वंशीवादिनि रतिमुवाहेत्यर्थः); वीक्षणात् हेतोः एषः (अपरः तृतीय-पुरुषान्तरः) स्निग्धघनद्युतिः (प्रीतिप्रदमेघ-प्रभः) पटे (चित्रे) मे (मम) मनसि (हृदये) लग्नः (एकीभूतः संसक्तः, सङ्गतः भवेत्, ततश्च कृष्णाकारं चित्रं नेत्राभ्यां सकृदेवास्वाद्य तद्भेदेन तस्मिन् रतिमुवाहेत्यर्थः); धिक् कष्टं भोः, पुरुषत्रये (कृष्णाभिधे, मुरलीनिनादकारिणि, इन्द्रनील-घनश्यामरूपिणि नायकत्रये कुलाङ्गनायाः मम प्रथमं तावत् परपुरुषे रतिरेवायोग्या, किमुत तत्त्रये) मम रतिः अभूत, (अतः हेतोः) मृतिः (मृत्युः एव) श्रेयसी (कल्याणास्पदम् इति) मन्ये (मृत्युं विना दुष्परिहरेयं रतिर्धिक्कारिण्येवेति भावः)।

उसमें विकार यथा —

विदग्धमाधव (२.८) में ललिता और विशाखा के प्रति श्रीराधा की उक्ति—

इयं सखि सुदुःसाध्या राधा-हृदयवेदना।
कृता यत्र चिकित्सापि कुत्सायां पर्यवस्यति॥ १४३॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१४३। [श्रीराधा अपनी किसी सखी से स्वयं को लक्ष्य करके अपना नाम उल्लेख करते हुए कह रही हैं—] हे सखि, राधा की हृदय वेदना को आरोग्य (दूर) करना दुःसाध्य है; इसकी चिकित्सा करने पर भी वह चिकित्सा निन्दा में पर्यवसित होगी। [कहने का तात्पर्य यह है कि राधा की वेदना की निवृत्ति तो होगी नहीं, बल्कि चिकित्सा की ही सभी लोग निन्दा करेंगे। अतएव इसकी चिकित्सा करना वृथा ही है।]

अनुभाष्य

१४३। हे सखि, इयं राधा-हृदयवेदना—सुदुःसाध्या, यत्र चिकित्सा कृता अपि कुत्सायां पर्यवस्यति (वेदनायाः अनिवृत्तौ चिकित्सकस्यैव निन्दा स्यात्, तथा च पुरुषत्रये एकक्षणं एव वासनावत्या मम एकपुरुषानयनेऽपि वेदना न यास्यतीति भावः)।

उसमें प्राकृत-भाषा में कन्दर्प का लेखन यथा—

विदग्धमाधव (२.३३) में कृष्ण के समीप मधुमङ्गल के द्वारा ललिता के द्वारा लाये गये श्रीराधिका के द्वारा लिखित पत्र को पढ़ना—

धरिञ पड़िच्छन्दगुणं सुन्दर मह मन्दिरे तुमं वससि।
तह तह रुन्धसि वलिञं जह जह चइदा पलाएम्हि॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१४४। हे सुन्दर, चित्रपट रूप धारण करके तुम मेरे मन्दिर में वास कर रहे हो; मैं चकित होकर लज्जाजनित भय के कारण जिस तरफ दौड़ती हूँ, तुम उसी ओर आकर मेरे मार्ग को रोक लेते हो। प्राकृत भाषा में लिखित श्लोक का संस्कृत में भाषान्तर—''धृत्वा प्रतिच्छन्दगुणं सुन्दर मम मन्दिरे त्वं वससि। तथा तथा रुणत्सि बलितं यथा यथा चकिता पलाये॥''

अनुभाष्य

१४४। हे सुन्दर, तुमं (त्वं) पड़िच्छन्दगुणं (प्रतिच्छन्दगुणं चित्रपटरूपं) धरिञ (धृत्वा) मह (मम) मन्दिरे वससि (तिष्ठसि) जह जह (यथा यथा) चइदा (चकिता सती) पलाएम्हि (पलाये), तह तह (तथा तथा त्वं) वलिञं (बलितं बलयुक्तं यथा स्यात् तथा) रुन्धसि (रुणत्सि)।

उसमें चेष्टा यथा—

विदग्धमाधव (२.१५) में पौर्णमासी के प्रति मुखरा की उक्ति—

अग्रे वीक्ष्य शिखण्डखण्डमचिरादुत्कम्पमालम्बते
गुञ्जानाञ्च विलोकनान्मुहुरसौ साम्रं परिक्रोशति।
नो जाने जनयन्नपूर्वनटनक्रीड़ा-चमत्कारितां
बालायाः किल चित्तभूमिमविशत् कोऽयं नवीनग्रहः॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१४५। अपने सामने मयूर के पंख को देखकर यह बाला सहसा कम्पन का आश्रय ग्रहण करती है, गुञ्जा को देखकर आँसू बहाने के साथ चीत्कार करती है; कौन-सा नवीन ग्रह (भूत-पिशाच) इसकी चित्त भूमि में प्रवेश करके अपूर्व नृत्य-क्रीड़ा की चमत्कारिता को उत्पन्न कर रहा है, मैं उसके विषय में नहीं जानती। [अर्थात् मुझे उसके विषय में कुछ पता नहीं चल रहा है।]

अनुभाष्य

१४५। हे भगवति, पौर्णमासि, असौ (राधा) अग्रे (सम्मुखे) शिखण्डखण्डं (मयूरपुच्छं) वीक्ष्य (दृष्ट्वा) अचिरात् (आशु) उत्कम्पं आलम्बते, गुञ्जानां तु विलोकनात् (सन्दर्शनात्) साम्रं (अश्रुयुक्तः सन्) मुहुः परिक्रोशति;—(अहं) नो जाने, कः अयं नवीनग्रहः अपूर्वनटन क्रीड़ाचमत्कारितां (अत्याश्चर्य- नृत्य-विलासमत्ततां) जनयन् (उत्पादयन्) बालायाः (राधायाः) चित्तभूमिं (हृदयक्षेत्रम्) आविशत् (प्रविष्टवान्)।

वहाँ व्यवसाय यथा—

विदग्धमाधव (२.४७) में विशाखा के प्रति श्रीराधा की उक्ति—

अकारुण्यः कृष्णो यदि मयि तवागः कथमिदं
मुधा मा रोदीर्मे कुरु परमिमामुत्तरकृतिम्।
तमालस्य स्कन्धे सखि कलित-दोर्बल्लरिरियं
यथा वृन्दारण्ये चिरमविचला तिष्ठति तनुः॥१४६॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१४६। जब कृष्ण ही मेरे प्रति निष्ठुर हो गये हैं, तब हे सखि, इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुम वृथा क्रन्दन मत करो; [किन्तु हाँ, मेरे देहत्याग के पश्चात् तुम मेरी इच्छानुरूप]—वृन्दावन में तमाल वृक्ष के स्कन्ध पर मेरी इन भुजाओं को बाँधकर मेरी देह को चिरकाल के लिये रखकर अन्त्येष्टिक्रिया रूप एक कार्य कर सकती हो।

अनुभाष्य

१४६। हे विशाखे, यदि कृष्णः मयि अकारुण्यः (निष्ठुरः अभूत, तर्हि) तव कथं मयि आगः (अपराधः भवेत? तस्मात्) मुधा (व्यर्थं) मा रोदीः; हे सखि, परं (तु) तमालस्य स्कन्धे कलितदोर्वल्लरिः (कलिता निहिता दोर्वल्लरिः भुज-लता यया सा) इयं मे (मम) तनुः वृन्दारण्ये यथा चिरं (सदा) अविचला (सती) तिष्ठति तथा इमां उत्तरकृतिं (अन्त्येष्टिकर्म) कुरु (प्राणत्यागानन्तरं तमालस्य स्कन्धे विनिहिता भुजरूपलता यस्याः एवम्भूता मम तनुः यथा वृन्दारण्ये तिष्ठति, तथा करणीया)।

राय कहे,—''कह देखि भावेर स्वभाव?''
रूप कहे,—''ऐछे हय कृष्ण विषयक 'भाव'॥''१४७॥

१४७। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा,—''हे रूप! तुमने प्रेम के स्वभाव के विषय में क्या लिखा है? अब वह बतलाओ।'' श्रीरूप ने कहा,—''सुनिये, श्रीकृष्ण विषयक 'प्रेम' इस (निम्नोक्त) प्रकार का होता है।''

अनुभाष्य

१४७। भाव—प्रेम।

विदग्धमाधव (२.१८) में नान्दीमुखी के प्रति पौर्णमासी की उक्ति—

पीड़ाभिर्नवकालकूटकटुता-गर्वस्य निर्वासनो
निःस्यन्देन मुदां सुधा मधुरिमाहङ्कार-सङ्कोचनः।
प्रेमा सुन्दरि नन्दनन्दनपरो जागर्ति यस्यान्तरे
ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरास्तेनैव विक्रान्तयः॥१४८॥

१४८। अनु०— हे सुन्दरि, नन्दनन्दन से सम्बन्धित प्रेम जिसके हृदय में जागृत होता है, केवल उसी को कृष्ण के वक्र (कुटिल) और मधुर भाव वाले पराक्रम स्पष्ट प्रतीत होते हैं। वह प्रेम दो प्रकार के स्वभाव से युक्त होता है, अर्थात् नूतन सर्प के विष की कड़वाहट के गर्व को अपने द्वारा उत्पन्न की गयी पीड़ा के द्वारा तिरस्कृत करता है, अर्थात् ऐसे दुःख को उत्पन्न करता है, जिससे बढ़कर और कोई दुःख हो ही नहीं सकता; और दूसरी तरफ, आनन्द की वर्षा के द्वारा अमृत के माधुर्य का जो अहङ्कार है, उसको संकुचित कर देने वाले परम सुख को प्रदान करता है।

अनुभाष्य

१४८। मध्य-लीला के द्वितीय परिच्छेद की ५२ वीं संख्या द्रष्टव्य।

राय कहे,—''कह सहज-प्रेमेर लक्षण''।
रूप-गोसाञि कहे,—''साहजिक प्रेमधर्म''॥१४९॥

१४९। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा,—''हे रूप! सहज (स्वाभाविक अथवा सहजात) प्रेम के लक्षण के विषय में बतलाओ।'' श्रीरूप गोस्वामी ने उत्तर में कहा,—''प्रेम का धर्म ही साहजिक है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१४९। राय के द्वारा प्रेम के 'सहज' लक्षण की जिज्ञासा करने पर श्रीरूप ने उत्तर दिया,—प्रेम धर्म ही 'साहजिक' है।

विदग्धमाधव (५.४) में मधुमङ्गल के प्रति पौर्णमासी की उक्ति—

स्तोत्रं यत्र तटस्थतां प्रकटयच्चित्तस्य धत्ते व्यथां
निन्दापि प्रमदं प्रयच्छति परीहासश्रियं विभ्रती।
दोषेण क्षयितां गुणेन गुरुतां केनाप्यनातन्वती
प्रेम्णः स्वारसिकस्य कस्यचिदियं विक्रीड़ति प्रक्रिया॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५०। स्वारसिक अर्थात् स्वाभाविक प्रेम की प्रक्रिया इस प्रकार क्रीड़ा करती है,—(प्रिय के मुख से) अपनी स्तुति को सुनने पर [वह प्रक्रिया] प्रिय की उदासीनता को प्रकाशित करके [चित्त में] विशेष व्यथा प्रदान करती है; (प्रिय के मुख से अपनी) निन्दा सुनने पर वह [प्रक्रिया]परिहास-श्री को धारण करके [चित्त में अत्यधिक] आनन्द प्रदान करती है। प्रेम के पात्र के किसी दोष को देखने पर उससे प्रेम में कोई कमी नहीं आती, दूसरी ओर, उस प्रेम के पात्र के किसी गुण को देखने पर (उससे प्रेम की) वृद्धि भी नहीं होती।

अनुभाष्य

१५०। यत्र (प्रेम्णि) स्तोत्रं (प्रशंसा-वाक्यं) तटस्थतां (निरपेक्षतां) प्रकटयत् (दर्शयत् सत्) चित्तस्य व्यथां धत्ते, निन्दा अपि परिहासश्रियं (कौतुकशोभां) विभ्रती (धृतवती सती) प्रमदं (आनन्दं) प्रयच्छति (ददाति); केनापि दोषेण क्षयितां न, गुणेन गुरुतां न च आतन्वती (विस्तारयित्री),—कमपि गुणादिकम् उपाधिम् आलम्ब्य जायते चेत्, तदा दोषदर्शनेन क्षीणो भवति, गुणदर्शनेन समृद्धो भवति, परन्तु अत्र निरुपाधिस्तु दोषगुणौ नापेक्षते)—कस्यचित स्वारसिकस्य (साहजिकस्य) प्रेम्णः इयं प्रक्रिया विक्रीड़ति (हृदये खेलति)।

राग की परीक्षा के पश्चात् श्रीकृष्ण के द्वारा पश्चाताप यथा—विदग्धमाधव (२.४०) में मधुमङ्गल के समक्ष श्रीकृष्ण की उक्ति—

श्रुत्वा निष्ठुरतां ममेन्दुवदना प्रेमांकुरं भिन्दती
स्वान्ते शान्तिधुरां विधाय विधुरे प्रायः पराञ्चिष्यति।

**किम्वा पामर-काम-कार्मुकपरित्रस्ता विमोक्ष्यत्यसून्
हा मौग्ध्यात् फलिनी मनोरथलता मृद्वी मयोन्मूलिता॥**

अमृतप्रवाह भाष्य

१५१। मेरी निष्ठुरता का श्रवण करके चन्द्रमुखी राधा प्रेमांकुर को तोड़ करके अपने व्यथित-अन्तःकरण में किसी प्रकार से शान्ति अथवा धैर्यभाव को धारण करके हो सकता है कि मुझसे विमुख हो जायेगी; अथवा दुर्दान्त कन्दर्प के धनुष बाण से भय करके जीवन ही परित्याग कर देगी। हाय, मैंने मूर्खतापूर्वक फलोन्मुखी कोमल मनोरथ लता को सम्पूर्ण रूप से ही उखाड़ दिया।

अनुभाष्य

१५१। इन्दुवदना (चन्द्रमुखी राधिका) मम निष्ठुरतां श्रुत्वा प्रेमांकुरं (नवायमानं प्रेमाणं) भिन्दती (सती) विधुरे (दुःखिते वेदनायुक्ते) स्वान्ते (निजहृदये) शान्तिधुरां (धैर्यातिशयं) विधाय (अवलम्ब्य) पराञ्चिष्यति (विमुखी-भविष्यति); किम्वा पामरकाम-कार्मुक-परित्रस्ता (पामरः दुर्दान्तः कामः कन्दर्पः तस्य कार्मुकाः शराः तैः परित्रस्ता भीता सती) असून् (प्राणान्) विमोक्ष्यति (त्यक्ष्यति); हा (कष्टं भोः) मौग्ध्यात् (मोहात्) मया मृद्वी (जातांकु- रत्वात् कोमला) फलिनी (फलोन्मुखा) मनोरथलता (अभिलाषवल्लरी) उन्मूलिता (उत्पाटिता)।

विदग्धमाधव (२.४१) में विशाखा के द्वारा प्रबोधित की जा रही राधिका की उक्ति—

**यस्योत्सङ्गसुखाशया शिथिलता गुर्वी गुरुभ्यस्त्रपा
प्राणेभ्योऽपि सुहृतमाः सखि तथा यूयं परिक्लेशिताः।
धर्मः सोऽपि महान्मया न गणितः साध्वीभिरध्यासितो
धिग्धैर्यं तदुपेक्षितापि यदहं जीवामि पापीयसी॥१५२॥**

अमृतप्रवाह भाष्य

१५२। हे सखि, जिसके आलिङ्गन के सुख की अभिलाषा से युक्त होकर मैंने पूजनीय व्यक्तियों के समक्ष अत्यधिक होने वाली लज्जा की भी उपेक्षा कर दी थी, और जिसके लिये मैने तुम-जो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो-को भी बहुत कष्ट दिया और जिसके लिये (समस्त) साधवी-स्त्रियों द्वारा सेवित पातिव्रत्य धर्म का भी त्याग कर दिया अर्थात् उसकी सेव्य वस्तु कहकर गणना नहीं की, हाय, उसी कृष्ण के द्वारा उपेक्षित होकर भी मेरी जैसी पापीयसी (अत्यधिक पापी) अभी तक जीवित है! अतएव मेरे धैर्य को धिक्कार है।

अनुभाष्य

१५२। हे सखि, यस्य (कृष्णस्य) उत्सङ्गसुखाशया (उत्कटसङ्गा- नन्दवासनया), गुरुभ्यः (पूज्यवर्गेभ्यः सकाशात्) गुर्वी (महती) त्रपा (लज्जा) शिथिलता (उपेक्षिता) तथा प्राणेभ्यः अपि सुहृतमाः (परम प्रेष्ठाः) यूयं परिक्लेशिताः (तापिताः); साध्वीभिः अध्यासितः (सेवितः यः) महान् धर्मः (पातिव्रत्यरूपः सः) अपि मया (कुलवधूवा) न गणितः, तत् (तेन् कृष्णेन) उपेक्षिता (अनादृता) अपि यत् (यतः) अहं पापीयसी जीवामि, (तत् तस्मात् मम) धैर्यं धिक्।

विदग्धमाधव (२.४६) में श्रीकृष्ण के प्रति श्रीराधिका की उक्ति —

**गृहान्तः खेलन्त्यो निजसहजबाल्यस्य बलना-
दभद्रं भद्रं वा किमपि हि न जानीमहि मनाक्।
वयं नेतुं युक्ताः कथमशरणां कामपि दशां
कथं वा न्याय्या ते प्रथयितुमुदासीनपदवी॥१५३॥**

अमृतप्रवाह भाष्य

१५३। मैं अपने सहज-बाल्यभाव के वशीभूत होकर घर में खेल रही थी, —किसे 'अच्छा' कहते हैं, किसे 'बुरा' कहते हैं, इसके विषय में कुछ भी नहीं जानती थी! ऐसी मुझे असहाय दशा में डाल देना क्या तुम्हारे लिये उचित है? [चलो, माना कि किसी विशेष प्रयोजन हेतु तुमने ऐसा किया होगा, किन्तु] अब तुम्हारा उदासीन पदवी (पथ) का विस्तार करना कहाँ तक उचित है?

अनुभाष्य

१५३। (हे बकीहन्तः), निज सहजबालस्य बलनात् (बलवत्वात्) गृहान्तः खेलन्त्यः वयं किमपि अभद्रं

(दुखं) भद्रं (सुखं) वा मनाक् (ईषदपि) न जानीमहि; कथं वयं कां (एतादृशीं काञ्चित्) अपि अशरणां (आश्रयरहितां) दशां नेतुं युक्ताः (धर्मसङ्गताः भवामः? यदि च नीता दशामेतामधुनापि, तदा) कथं वा ते (तव) उदासीन पदवी (उदासीन्य दशा) प्रथयितुं (प्रकटयितुं) नाय्या (न्यायोचिता?—तस्मादस्माकं वधार्थमेव तव व्यवसायः इति भावः)।

विदग्धमाधव (२.३७) में श्रीकृष्ण के समक्ष ललिता की उक्ति—

अन्तःक्लेशकलङ्किताः किल वयं यामोऽद्य याम्यां पुरीं
नायं वञ्चनसञ्चयप्रणयिनं हासं तथाप्युज्झति।
अस्मिन् सम्पुटिते गभीरकपटैराभीरपल्लीविटे
हा मेधाविनि राधिके तव कथं प्रेमा गरीयानभूत्॥१५४॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५४। हम क्लेश से कलङ्कित अन्तःकरण से युक्त होकर अभी यमपुरी जा रही हैं, किन्तु यह कृष्ण हैं कि अपने वञ्चनापूर्ण-प्रणय-हास्य (प्रचुर वञ्चना करने वाले निष्ठुर हास्य) का परित्याग नहीं कर रहे हैं! हे बुद्धिमति राधिके, इस गम्भीर कपटतापूर्ण गोपी-पल्ली लम्पट के प्रति तुम्हारा इतना अधिक उत्कृष्ट प्रेम किस प्रकार उत्पन्न हुआ था?

अनुभाष्य

१५४। वयम् अन्तः क्लेशकलङ्किताः (अन्तःक्लेशेन कलङ्किताः चिह्निताः सत्यः—मृत्योरनन्तरमप्ययं क्लेशः स्थास्यत्येवेति भावः) अद्य याम्यां पुरीं किल (निश्चितं) यामः, तथापि (अनेन अकारुण्यं व्यज्यते,) अयं श्रीकृष्णः वञ्चनसञ्चयप्रणयिनं (वञ्चनस्य सञ्चयः समूहः तस्य प्रणयिनं करणशीलं) हासं न उज्झति (न परिहरति)! हा मेधाविनि (बुद्धिमति) राधिके, गभीरकपटैः सम्पुटिते (व्याप्ते) अस्मिन् आभीरपल्लीविटे (आभीरपल्लीनां व्रजनागरीणां विटे कामुके कृष्णे) तव गरीयान् (महान्) प्रेमा कथम् अभूत? (अन्यासां प्रेमा भवतु कामान्धी-कृतधियां, मेधाविन्यास्तव तु न युज्यते इति भावः)।

विदग्धमाधव (३.९) में श्रीकृष्ण के प्रति पौर्णमासी की उक्ति—

हित्वा दूरे पथि धवतरोरन्तिकं धर्मसेतो-
र्भङ्गोदग्रा गुरुशिखरिणं रंहसा लङ्घयन्ती।
लेभे कृष्णार्णव नवरसा राधिका-वाहिनी त्वां
वाग्वीचिभिः किमिव विमुखीभावमस्यास्तनोषि॥१५५॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५५। हे कृष्णार्णव (कृष्ण सागर), धर्मपतिरूपी वृक्ष के सङ्ग को दूर से परित्याग करके, अतितीव्र वेग से धर्म के सेतु को तोड़कर, गुरुजन रूपी पर्वत को बलपूर्वक लाँघ करके, नव रस स्वरूपा राधिका-नदी ने तुम्हें प्राप्त किया था, तुम अब वचन रूपी लहर के द्वारा उसके प्रति विमुख-भाव क्यों विस्तार कर रहे हो?

अनुभाष्य

१५५। हे कृष्णार्णव (कृष्ण सिन्धो), धवतरोः (पतिरूपवृक्षस्य) अन्तिकं (समीपं) दूरे पथि हित्वा (त्यक्त्वा), धर्मसेतोः (कुलधर्मः एव सेतुः तस्य) भङ्गोदग्रा (भङ्गे उदग्रं यस्याः सा, भङ्गसमर्था) गुरु शिखरिणं (गुरुजनरूपं शैलं) रंहसा (वेगेन) लङ्घयन्ती (अतिक्रामन्ती) सती, नवरसा (नवः नूतनः रसः शान्तादि-शृङ्गारान्तः रसः यस्यां सा) राधिकावाहिनी (राधिकारूपा नदी) त्वां कृष्णसमुद्रं लेभे (प्राप्तवती); त्वं च वाग्वीचिभिः (वाक्यैः एव तरङ्गैः)किम इव अस्याः (राधानद्याः) विमुखीभावं (वैमुख्यं) तनोषि (विस्तारयसि)?

राय कहे,— ''वृन्दावन, मुरली-निःस्वन ।
कृष्ण, राधिकार कैछे कैराछ वर्णन ?? १५६ ॥
कह, तोमार कवित्व शुनि' हय चमत्कार।''
क्रमे रूप-गोसाञि कहे करि' नमस्कार॥ १५७ ॥

१५६-१५७। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने पूछा,—''हे रूप! तुमने वृन्दावन, मुरली, मुरली की ध्वनि, श्रीकृष्ण तथा श्रीराधिका का कैसे वर्णन किया है? बोलो! तुम्हारे कवित्व को सुनकर मेरा हृदय चमत्कृत

(परम आनन्दित) हो रहा है।'' श्रीरूप ने उन्हें नमस्कार करके क्रमशः एक-एक करके सबकुछ बतलाया।

उसमें वृन्दावन यथा—

विदग्धमाधव (१.२३) में मधुमङ्गल के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति—

सुगन्धौ माकन्दप्रकरमकरन्दस्य मधुरे
विनिस्यन्दे वन्दीकृतमधुपवृन्दं मुहुरिदम्।
कृतान्दोलं मन्दोन्नतिभिरनिलैश्चन्दनगिरे-
र्ममानन्दं वृन्दा-विपिनमतुलं तुन्दिलयति॥ १५८ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५८। आम के मुकुल समूह से निसृत मकरन्द के द्वारा मधुर [यह श्रीवृन्दावन], सर्वत्र व्याप्त उस सुगन्ध हेतु बारम्बार वन्दना करने वाले भ्रमरों से परिपूर्ण [यह श्रीवृन्दावन तथा], चन्दन-(मलय)पर्वत से-प्रवाहित होने वाली पवन के मन्द मन्द सञ्चालन के द्वारा आन्दोलित (कम्पित) यह श्रीवृन्दावन मेरा अतुलनीय आनन्द वर्धित कर रहा है।

अनुभाष्य

१५८। हे मधुमङ्गल, माकन्दप्रकरमकरन्दस्य (माकन्दप्रकराणाम् आम्रमुकुलसमूहानां मकरन्दस्य) मधुरे सुगन्धौ विनिस्यन्दे मुहुः (पुनः पुनः) वन्दीकृतमधुपवृन्दं (वन्दीकृतम् आबद्धं मधुपवृन्दं भृङ्गकुलं येन तत्), चन्दनगिरेः (मलयपर्वतस्य) मन्दोन्नतिभिः (मृदु-सञ्चालितैः) अनिलैः (समीरणैः) कृतान्दोलं (कम्पितं, परिचालितं) इदं वृन्दा-विपिनं मम अतुलं आनन्दं तुन्दिलयति (वर्द्धयति)।

विदग्धमाधव (१.२४) में श्रीदाम के प्रति श्रीबलदेव की उक्ति —

वृन्दावनं दिव्यलता-परीतं
लताश्च पुष्पस्फुरिताग्रभाजः।
पुष्पाणि च स्फीतमधुव्रतानि
मधुव्रताश्च श्रुतिहारिगीताः॥ १५९ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५९। देखो, यह वृन्दावन—दिव्य लताओं से घिरा हुआ है; लताओं के अग्रभाग में पुष्प शोभायमान हैं; पुष्पों पर मधुकर (भँवरे) मधुपान करके प्रमत्त हो रहे हैं; और वे मधुकर कानों को बरबस अपनी ओर खींचने वाले अथवा कानों के लिये रसायन स्वरूप गीत के गान से युक्त हैं ।

अनुभाष्य

१५९। (हे श्रीदामन्, इदमेव) वृन्दावनं दिव्यलता-परीतं (दिव्यवल्लरीवेष्टितं); लताः च पुष्पस्फुरिताग्रभाजः (पुष्पैः स्फुरितं अग्रं भजन्ति याः ताः), पुष्पाणि च स्फीतमधुरतानि (स्फीताः प्रमत्ताः मधुपाः येषु तानि); मधुव्रताश्च श्रुतिहारिगीताः (कर्णरसायनं गीतं येषां ते)।

विदग्धमाधव (१.३१) में मधुमङ्गल के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति—

क्वचिद्भृङ्गीगीतं क्वचिदनिलभङ्गीशिशिरता
क्वचिद्वल्लीलास्यं क्वचिदमलमल्लीपरिमलः।
क्वचिद्धाराशाली करकफलपाली-रसभरो
हृषीकाणां वृन्दं प्रमदयति वृन्दावनमिदम्॥ १६० ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६०। हे सखे, यह वृन्दावन हमारी इन्द्रियों को अनेक प्रकार से आनन्दित कर रहा है,—किसी स्थान पर मधुकर वृन्द का गीत हो रहा है, कोई स्थान मन्द-मन्द मलय की समीर के द्वारा शीतल हो रहा है, किसी स्थान पर लताएँ नृत्य कर रही हैं, किसी स्थान पर मल्लिका के फूलों की अमल परिमल (सुगन्ध) प्रवाहित हो रही है और किसी स्थान पर पंक्तियों में लगे अनेकानेक अनार के वृक्षों पर लगे रस से परिपूर्ण अनार के फल रस का निःसरण कर रहे हैं।

अनुभाष्य

१६०। हे मधुमङ्गल, इदं वृन्दावनं हृषीकाणां (चक्षुकर्णनासाजिह्वात्वगादीनां) वृन्दं (समूहं) प्रमदयति

(आह्लादयति; यथा—कर्णप्रमदाय) क्वचित् भृङ्गीगीतं; (त्वगिन्द्रियसुखाय) क्वचित् अनिलभङ्गीशिशिरता (अनिलस्य वायोः भङ्गी मान्द्यं तया शिशिरता शैत्यं—मन्दानिलस्य शैत्यमित्यर्थः ; नेत्रानन्दाय) क्वचित् वल्लीलास्यं (लतानृत्यं; नासा प्रमदाय) क्वचित् अमलमल्लीपरिमलः (मल्लयाः मल्लिकायाः अमलः अविमिश्रः परिमलः सुगन्धः; जिह्वासुखाय) क्वचित् धाराशाली (पङ्क्तिक्रम- विन्यासविशिष्टा) करकफल-पालीरसभरः (करकफलपाली दाड़िम्बफलश्रेणी तस्याः रसाधिक्यम्)।

वहाँ मुरली यथा—

विदग्धमाधव (३.१) में ललिता के प्रति पौर्णमासी की उक्ति —

परामृष्टाङ्गुष्ठत्रयमसितरत्नैरुभयतो
वहन्ती सङ्कीर्णौ मणिभिररुणैस्तत्परिसरौ।
तयोर्मध्ये हीरोज्ज्वलविमल-जाम्बूनदमयी
करे कल्याणीयं विहरति हरेः केलिमुरली॥१६१॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६१। [आगे से लेकर पीछे तक लम्बाई में] तीन अंगुली के परिमाण वाली, इन्द्रनीलमणि से मढ़ी हुई, दोनों पार्श्वों के परिमाण स्थल [आगे और पीछे के चौड़ाई वाले गोलाकार भाग] पर अरुणमणि द्वारा शोभित, अरुणवर्ण वाले भाग के बीच में हीरक द्वारा उज्ज्वलीकृत विशुद्ध स्वर्णमयी (सोने से बनी) यह कल्याणी कृष्ण-लीला-मुरली कृष्ण के हाथों में विहार कर रही है।

अनुभाष्य

१६१। उभयतः (वंश्याः शिरसि पुच्छे च) अंगुष्ठ त्रयम् (अंगुष्ठत्रय परिमितं स्थलं व्याप्य) असितरत्नैः (इन्द्रनीलमणिभिः) परामृष्टा (व्याप्ता, खचिता) अरुणैः मणिभिः सङ्कीर्णे (खचितौ) अंगुष्ठत्रयम् व्याप्य द्वौ परिसरे तत् परिसरौ मुखपुच्छोभय-प्रदेशे वहन्ती, तयोः (परिसरयोः) मध्ये हीरोज्ज्वल- विमलजाम्बूनदमयी (हीरैः उज्ज्वलं दीप्तं यत् विमलं जाम्बूनदं सुवर्णं तन्मयी) इयं कल्याणी (कल्याणमयी) केलिमुरली (कृष्णक्रीड़ा-वंशी) हरेः (कृष्णस्य) करे (पाणौ) विहरति (विलसति)।

विदग्धमाधव (५.१७) में विशाखा के समक्ष श्रीराधा की उक्ति—

सद्वंशतस्तव जनिः पुरुषोत्तमस्य
पाणौ स्थितिर्मुरलिके सरलासि जात्या।
कस्मात्त्वया सखि गुरोर्विषमा गृहीता
गोपाङ्गनागणविमोहनमन्त्रदीक्षा॥ १६२ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६२। हे सखि मुरलि! तुम—सद्वंश में उत्पन्न हुई हो, पुरुषोत्तम के हाथ में स्थित हो एवं जाति से सरल भी हो, तथापि किसलिए गोपाङ्गनाओं को विमोहित करने वाले विशेष गुरुतर (विषम) मन्त्र में दीक्षित हुई हो?

अनुभाष्य

१६२। हे मुरलिके, सद्वंशतः (उत्तमवंशदण्डतः, सत्कुलात् इत्यर्थः) तव जनिः (जन्म अभूत्); पुरुषोत्तमस्य (कृष्णस्य) पाणौ (हस्ते) तव स्थितिः (वासः); जात्या सरला (अवक्रा ऋजुः) असि; (हे सखि) कस्मात् गुरोः (सकाशात्, प्रसादात् वा) त्वया विषमा (असरला) गोपाङ्गनागण-विमोहन मन्त्रदीक्षा गृहीता (प्राप्ता—गोपीजन चित्तहरणक्षम-मनुना दीक्षिता)?

विदग्धमाधव (४.७) में पद्मा के प्रति चन्द्रावली की उक्ति—

सखि मुरलि विशालच्छिद्रजालेन पूर्णा
लघुरतिकठिना त्वं ग्रन्थिला नीरसासि।
तदपि भजसि शश्वच्चुम्बनानन्दसान्द्रं
हरिकर परिरम्भं केन पुण्योदयेन॥ १६३ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६३। हे सखि मुरलि, तुम—बहुत से विशाल छिद्रों (महादोषों) के समूह से पूर्ण, लघु (सम्मान रहित), अति कठिन (निष्ठुर स्वभाव वाली), नीरस (शुष्क) और जटिल (नीवि अर्थात् नाड़े की गाँठ को खोल देने

वाली निर्लज्ज) होने पर भी किस पुण्य के उदित होने से निरन्तर कृष्ण-मुख-चुम्बन के गाढ़ आनन्द को तथा कृष्ण के हाथ के आलिङ्गन रूपी सेवा को स्वीकार कर रही हो?

अनुभाष्य

१६३। हे सखि मुरलि; त्वं विशालच्छिद्रजालेन (महादोषसमूहेन) पूर्णा (व्याप्ता), लघुः (लाघववती, गौरवहीना), अतिकठिना (निष्ठुरस्वभावा), ग्रन्थिला (नीविग्रन्थिमोचिका), नीरसा (शुष्का) च असि, तदपि केन पुण्योदयेन (प्राक्तनसुकृतिना) शश्वत् (निरन्तरं) चुम्बनानन्दसान्द्रं (चुम्बनोत्थसुखघनं) हरिकरपरिरम्भं (कृष्णहस्तालिङ्गनं) भजसि (प्राप्नोषि)?

विदग्धमाधव (१.२७) में श्रीकृष्ण के प्रति मधुमङ्गल की उक्ति के समय आकाशवाणी—

रुन्धन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपरं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।
उत्सुक्यावलिभिर्वलिं चटुलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्
भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो वभ्राम वंशीध्वनिः॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६४। श्रीकृष्ण की वंशी ध्वनि ने मेघ की गति को अवरुद्ध करके, तुम्बुर आदि गन्धर्वों को चमत्कृत करते हुए, सनन्दन आदि ऋषियों के ध्यान को भङ्ग करके, ब्रह्मा में विस्मय उत्पन्न करके, धीर-स्थिर (अर्थात् अटल-अचल) बलिराज को उत्सुकताओं के द्वारा चटुल चञ्चल बना के, पृथ्वी को धारण करने वाले सर्पराज अनन्त [के मस्तक] को घुमा करके एवं ब्रह्माण्ड के आवरण का छेदन करके चारों ओर भ्रमण किया था।

अनुभाष्य

१६४। वंशीध्वनिः (कृष्णमुरलीनिनादः) अम्बुभृतः (मेघगणान्) रुन्धन तुम्बुरुं (गन्धर्वराजं) मुहुः चमत्कृतिपरं (विस्मयान्वितं) कुर्वन् सनन्दन मुखान् (चतुःसनप्रमुखान् ब्रह्मज्ञानरतान् मुनीन्) ध्यानात् अन्तरयन् (ध्यानं त्यजयन्), वेधसं (ब्रह्माणं) विस्मापयन् (विस्मयमुत्पादयन्), उत्सुक्यावलिभिः (कौतूहलानन्दपुञ्जैः) बलिं चटुलयन् (चञ्चलीकुर्वन्) भोगीन्द्रं (नागराजं शेषम्) आघूर्णयन्, अण्डकटाहभित्तिं (ब्रह्माण्डावरणम्) भिन्दन् अभितः (चतुर्दिक्षु, परितः) वभ्राम।

वहाँ श्रीकृष्ण यथा—

विदग्धमाधव (१.१७) में नान्दीमुखी के प्रति पौर्णमासी की उक्ति—

अयं नयनदण्डितप्रवरपुण्डरीकप्रभः
प्रभाति नवजागुड़-द्युतिविड़म्बिपीताम्बरः।
अरण्यजपरिष्क्रिया-दमितदिव्यवेशादरो
हरिन्मणिमनोहरद्युतिभिरुज्ज्वलाङ्गो हरिः॥ १६५ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६५। जिन कृष्ण ने अपने नयनों की शोभा से अति सुन्दर श्वेतकमल की शोभा का दमन किया है; जिनका नवकुंकुम की द्युति की विडम्बना करने वाला पीताम्बर शोभा पा रहा है [अर्थात् जिनके पीताम्बर की शोभा नवकुंकुम की शोभा को भी लज्जित करने वाली है]; जिन्होंने वन के वेश-अलङ्कार आदि द्वारा दिव्य-वेश आदि के आदर को दूर कर दिया है [अर्थात् जिन्होंने पत्र-पुष्प आदि द्वारा रचित कर्ण-कुण्डल, वैजयन्ती-माला, मुकुट आदि अलङ्कारों की शोभा से मणि-माणिक्य आदि द्वारा रचित दिव्य-अलङ्कार आदि वेश के आदर को पराजित कर दिया है];—ऐसे इन्द्रनीलमणि की अपेक्षा अधिक मनोहर अङ्गकान्ति से सम्पन्न—उज्ज्वल कृष्णचन्द्र शोभा पा रहे हैं।

अनुभाष्य

१६५। अयं हरिः नयनदण्डित-प्रवरपुण्डरीकप्रभः (नयनशोभया दण्डिता दमिता प्रवरस्य उत्तमस्य पुण्डरीकस्य प्रफुल्लश्वेतकमलस्य प्रभा शोभा येन सः), नवजागुड़द्युतिविड़म्बिपीताम्बरः (नवजागुड़स्य नवीन-कुंकुमस्य द्युतिः कान्तिः तां विड़म्बयितुं शीलं यस्य तथाभूतं पीतवर्णं अम्बरं यस्य सः), अरण्यज-परिष्क्रिया दमितदिव्यवेशादरः (अरण्यजाभिः वन्याभिः

परिष्क्रियाभिः अलङ्कारैः दमितः विजितः दिव्यवेशानां आदरः येन सः), हरिन्मणिमनोहर द्युतिभिः (मरकत मणिवत् मनोहराः याः द्युतयः ताभिः) उज्ज्वलाङ्गः (उज्ज्वलम् अङ्गं यस्य सः) प्रभाति (शोभते)।

ललितमाधव (४.२७) में श्रीराधा के प्रति ललिता की उक्ति—

जङ्घाधस्तटसङ्गिदक्षिणपदं किञ्चिद्विभुग्नत्रिकं
साचिस्तम्भितकन्धरं सखि तिरःसञ्चारिनेत्राञ्चलम्।
वंशीं कुट्मलिते दधानमधरे लोलाङ्गुलीसङ्गतां
विभ्रत्भ्रूभ्रमरं वराङ्गि परमानन्दं पुरः स्वीकुरु॥१६६॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६६। हे सखि, हे वराङ्गि, जिनकी बाँयी जंघा के निचले भाग में दाँया चरण रखा हुआ है, जिनके कलेवर का मध्यभाग—किञ्चित् त्रिभङ्गमय है, जिनका स्कन्ध अथवा ग्रीवा बाँका होकर स्तम्भित (स्थिर) हो गया है, जिनकी अपाङ्ग दृष्टि बङ्किम (बाँकी)है, तुम उन्हीं मुकुलित (थोड़े से खुले हुए) अधरों पर चञ्चल अंगुलियों से संलग्न वंशी को धारण करने वाले एवं मुखकमल पर भौंहों रूपी भ्रमरों से परिशोभित तुम्हारे सामने खड़े इन परमानन्दमय पुरुष को स्वीकार करो।

अनुभाष्य

१६६। हे सखि, हे वराङ्गि, पुरः (अग्रस्थितं) जङ्घाधस्तटसङ्गि दक्षिणपदं (वामजङ्घायाः अधस्तटे निम्नदेशे सङ्गि मिलितं दक्षिणपदं दक्षिणचरणप्रान्तं यस्य तं), किञ्चिद्विभुग्नत्रिकं (किञ्चित् ईषत् विभुग्नं त्रिकं मध्यभागः यस्य तं) साचिस्तम्भितकन्धरं (साचि तिर्य्यक् स्तम्भिता निश्चला कन्धरा ग्रीवा यस्य तं) तिरःसञ्चारि-नेत्राञ्चलं (तिर्यक् सञ्चरितुं शीलम् अस्य इति सञ्चारि नेत्राञ्चलं नेत्रप्रान्तं यस्य तं), कुट्मलिते (संकुचिते) अधरे लोलांगुलीसङ्गतां (लोलाभिः परिचालिताभिः अंगुलीभिः सङ्गतां मिलितां) वशीं दधानं विभ्रद्भ्रूभ्रमरं (विभ्रतौ भ्रूरूपौ भ्रमरौ यस्य तं) परमानन्दं (माधवं) स्वीकुरु।

ललितमाधव (१.५२) में ललिता के प्रति श्रीराधा की उक्ति—

कुलवरतनुधर्मग्रावव्रन्दानि भिन्दन्
सुमुखि निशितदीर्घापाङ्गटङ्कच्छटाभिः।
युगपदयमपूर्वः कः पुरो विश्वकर्मा
मरकतमणिलक्षैर्गोष्ठकक्षां चिनोति॥ १६७ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६७। हे सुमुखि, हमारे सामने ये कौन से विश्वकर्मा हैं—जो अपने दीर्घ अपाङ्गरूप (विशाल नेत्रों) के तीक्ष्ण (तीखे, कटीले) टङ्क (पर्वत को तोड़ने में अस्त्र के रूप में उपयोग होने वाले उज्ज्वल पदार्थ, Dynamite पक्षान्तर में कटाक्ष) की छटा के द्वारा ही कुलवधुओं के पातिव्रत्य धर्मरूपी पाषाणों के टुकड़े-टुकड़े करके असंख्य मरकत-मणि-तुल्य अपने श्यामसुन्दर देह के द्वारा गोष्ठ-प्रकोष्ठ की एक ही साथ रचना कर रहे हैं?

अनुभाष्य

१६७। हे सुमुखि, पुरः (अग्रे) अयम् अपूर्वः (अदृष्टाश्रुतः) विश्वकर्मा कः?—यः (युगपत्) निशितदीर्घापाङ्गटङ्कच्छटाभिः (निशितः शाणितः दीर्घा पाङ्ग एव टङ्कः शिलाविदारणास्त्रविशेषः, तस्य छटाभिः दीप्तिभिः) कुलवरतनुधर्मग्रावव्रन्दानि (कुलवरतनूनां कुलवधूनां धर्मान् पातिव्रत्यादिरूपान् एव ग्रावव्रन्दानि पाषाणसमूहान्) भिन्दन् मरकतमणिलक्षैः (मरकत मणीनां हिरन्मणीनां लक्षसंख्याभिः, मरकतमणितयाध्यवसितैः श्यामसौन्दर्यमय पुरेरित्यर्थः) गोष्ठकक्षां (गोष्ठप्रदेशं) चिनोति (रचयति पूरयतीत्यर्थ, अनेन श्लोकेन श्रीकृष्णस्य वैदग्ध्य-सौन्दर्यादि गुणदर्शनेन राधायाश्चमत्कारः)।

ललितमाधव (१.४९) में श्रीराधा के प्रति ललिता की उक्ति—

महेन्द्रमणिमण्डलीमद विड़म्बिदेहद्युति-
र्ब्रजेन्द्रकुलचन्द्रमाः स्फुरति कोऽपि नव्यो युवा।
सखि स्थिरकुलाङ्गना निकर-नीवि-बन्धार्गल-
च्छिदाकरण-कौतुकी जयति यस्य वंशीध्वनिः॥१६८॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६८। हे सखि, महा-इन्द्रमणि मण्डली के मद (घमण्ड) का विनाश करने वाली देह की कान्ति से युक्त व्रजराज कुलचन्द्र सदृश्य यह कौन नवीन युवक स्फूर्त्ति प्राप्त कर रहे हैं;—धैर्यशीला कुलाङ्गनाओं के नीवि के बन्धन को ढ़ीला करने वाली इनकी कौतुकयुक्त अर्थात् उत्साह-शील वंशी की ध्वनि भी जययुक्त हो रही है।

अनुभाष्य

१६८। हे सखि, यस्य स्थिरकुलाङ्गना-निकर-नीविबन्धार्गलच्छिदाकरणकौतुकी (स्थिरकुलाङ्गनानां साधवीस्त्रीणां निकरस्य समूहस्य नीविबन्धः एव अर्गलः कपाटः विष्कम्भकः वा, तस्य छिदाकरणे बन्धनच्छेदने कौतुकं यस्याः सा) वंशीध्वनिः जयति (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते), सः महेन्द्रमणिमण्डलीमदविड़म्बि देह-द्युतिः (महेन्द्रमणिमण्डलीनां मदं गर्वं विड़म्बयितुं शीलम् अस्याः तथाभूता देहस्य द्युतिः कान्तिः यस्यः सः) कः अपि नव्यः युवा व्रजेन्द्रकुलचन्द्रमाः (नन्दकुलशशधरः) स्फुरति।

अनुभाष्य

१६६-१६८। किसी-किसी संस्करण में १६६-१६८ संख्या तक के तीन श्लोक उद्धृत नहीं किये गये हैं, कारण, श्रीरूप विदग्धमाधव का ही वर्णन कर रहे हैं, अतएव उनके द्वारा ललितमाधव को वर्णन करने का कोई अवसर नहीं था तथा किसी नये प्रसङ्ग को वर्णन करने के कारण का भी अभाव था; बाद की १७२ संख्या में ही वे श्रीरामानन्द से ललितमाधव को वर्णन करने का आदेश प्राप्त करते हैं, ऐसा जाना जाता है।

वहाँ श्रीराधा यथा—

विदग्धमाधव (१.३२) में पौर्णमासी की उक्ति—

बलादक्ष्णोर्लक्ष्मीः कवलयति नव्यं कुवलयं
मुखोल्लासः फुल्लं कमलवनमुल्लङ्घयति च।
दशां कष्टामष्टापदमपि नयत्यङ्गिकरुचि-
र्विचित्रं राधायाः किमपि किल रूपं विलसति॥१६९॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६९। जिनके नेत्रों की शोभा नवीन नीलकमल की शोभा को बलपूर्वक ग्रास करती है, जिनका प्रफुल्लित मुखोल्लास कमलवन का उल्लंघन करता है, जिनकी अङ्गकान्ति सुन्दर जाम्बुनद (सुवर्ण) को कष्टदशा में पहुँचा देती है, ऐसी श्रीराधिका का विचित्र रूप आश्चर्यरूप से विलास अर्थात् स्फूर्त्ति प्राप्त कर रहा है।

अनुभाष्य

१६९। (श्रीराधायाः) अक्ष्णोः (नयनयोः) लक्ष्मीः (शोभा) नव्यं (नवप्रस्फुटितं) कुवलयं (उत्पलं) बलात् कवलयति (ग्रसते), मुखोल्लासः (मुखशोभा) फुल्लं (विकसितं) कमलवनं उल्लङ्घयति (दूरीकरोति), आङ्गिकरुचिः (देहकान्तिः) अष्टापदं (सुवर्णम्) अपि कष्टां (क्लेशसमन्वितां) दशां नयति, (अतएव) राधायाः रूपं किल किमपि विचित्रं विलसति (स्फुरति)।

विदग्धमाधव (५.२०) में मधुमङ्गल के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति—

विधुरेति दिवा विरूपतां
शतपत्रं वत शर्वरीमुखे।
इति केन सदाश्रियोज्ज्वलं
तुलनामर्हति मत् प्रियाननम् ॥ १७० ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१७०। चन्द्र की शोभा रात्रि में सुन्दर होने पर भी दिन के समय विरूपता को प्राप्त होती है, कमल भी दिन के समय सुन्दर होने पर भी रात्रि में मलिन (सुन्दरता रहित) हो जाता है, किन्तु हे सखे, मेरी प्रियतमा राधिका का वदन दिन-रात सदैव शोभा से उज्ज्वल रहता है, अतएव किसके साथ उसकी तुलना हो सकती है?

अनुभाष्य

१७०। विधुः (चन्द्रः) दिवा (दिवसे), शतपत्रं

(पद्मं) शर्वरीमुखे (सन्ध्यायां) वत विरूपतां (कान्तिराहित्यं) एति (प्राप्नोति) इति सदा (दिवारात्रे सर्वदा) श्रिया (शोभया) उज्ज्वलं मत्प्रिययाननं (श्रीराधिकामुखं) केन (उपमानेन सह) तुलनां न अर्हति ?

विदग्धमाधव (२.५) में श्रीकृष्ण की स्वयं स्फुरित उक्ति—

प्रमदरसतरगस्मेरगण्डस्थलायाः
स्मरधनुरनुबन्धिभ्रूलता-लास्यभाजः।
मदकलचलभृङ्गीभ्रान्ति भङ्गीं दधानो
हृदयमिदमदाङ्क्षीत् पक्ष्मलक्ष्याः कटाक्षः॥ १७१ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१७१। जिनके मन्द-मन्द हास्ययुक्त कपोल प्रमदरस तरङ्ग से युक्त हैं, जिनकी भ्रूलता मदकलचञ्चला भृङ्गी की भ्रान्ति रूपी भङ्गी को धारण करके कामदेव के धनुष की भाँति नृत्य कर रही है, उन्हीं के नेत्रों की पलकों से निकले कटाक्ष ने मेरे हृदय को दंशन कर दिया है।

अनुभाष्य

१७१। प्रमदरसतरङ्गस्मेरगण्डस्थलायाः (प्रमद रस तरङ्गेण आनन्दरसप्रवाहेण स्मेरं मन्दहासान्वितं गण्डस्थलं यस्याः तस्याः) स्मरधनुरनुबन्धिभ्रूलतालास्यभाजः (कामदेवकार्मुकसदृशा या भ्रूलता, तादृश्याः लास्यं नर्तनं भजति या तस्याः) पक्ष्मलक्ष्याः (पक्ष्मले प्रशस्ताक्षि-लोमान्विते अक्षिणी यस्याः तस्याः राधायाः) मदक-लचलभृङ्गी भ्रान्ति भंगीं (मदेन यः कलः , तेन चला चञ्चला चपला या भृङ्गी तस्याः भ्रान्तिः भ्रमः यतः तादृशीं भङ्गीं शोभां) दधानः (राधायाः) कटाक्षः इदं (मम) हृदयं अदाङ्क्षीत् (दष्टवान्)।

राय के द्वारा श्रीरूप को ललितमाधव के नान्दी श्लोक का उच्चारण करने का अनुरोध—

राय कहे,—''तोमार कवित्व अमृतेर धार।
द्वितीय नाटकेर कह नान्दी-व्यवहार॥'' १७२ ॥

१७२। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा,—''हे रूप! तुम्हारा कवित्व तो अमृत की धारा के समान है। अब तुम स्वरचित द्वितीय अर्थात् ललितमाधव नाटक के नान्दी श्लोक का उच्चारण करो।''

अनुभाष्य

१७२। द्वितीय नाटकेर,—ललितमाधव नाटक के; यहाँ से श्रीरामानन्द, श्रीरूप द्वारा रचित श्रीललितमाधव के विषय की जिज्ञासा कर रहे हैं।

राय के माहात्म्य की तुलना के द्वारा श्रीरूप का अपना दैन्य ज्ञापन—

रूप कहे,—''काँहा तुमि सूर्योपम भास।
मुञि कोन् क्षुद्र,—जेन खद्योत-प्रकाश॥ १७३ ॥
तोमार आगे धाष्ट्र्य एइ मुख-व्यादान।''
एत बलि' नान्दी-श्लोक करिला व्याख्यान॥१७४॥

१७३-१७४। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने कहा,—''कहाँ तो आप सूर्य के समान प्रकाशमान और कहाँ मै अत्यन्त क्षुद्र मानो जुगनु हूँ। आपके समक्ष अपने इस मुख से मेरा कुछ बोलना धृष्टता मात्र ही है।'' इतना कहकर श्रीरूप ने ललितमाधव के नान्दी श्लोक का उच्चारण किया।

मङ्गलाचरण-श्लोक में असुरमर्दन सुरनन्दन मुकुन्द के यश का स्तव—ललितमाधव (१.१) में सूत्रधार (ग्रन्थकार) की उक्ति—

सुररिपुसुदृशामुरोजकोका-
न्मुखकमलानि च खेदयन्नखण्डः।
चिरमखिलसुहृच्चकोरनन्दी
दिशतु मुकुन्दयशः शशी मुदं वः॥ १७५ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१७५। सुररिपु (देवताओं के शत्रु असुरों) की पत्नियों के स्तनरूपी चक्रवाक और मुखरूपी कमल समूह को खिन्न अर्थात् दुःखग्रस्त करके मुकुन्द का जो अखण्ड यशरूपी चन्द्र अपने अखिल सुहृदरूपी चकोरों का निरन्तर आनन्द विधान करता है, वह आपका सुख विधान करे।

अनुभाष्य

१७५। सुररिपुसुदृशां (नरकाद्यसुराङ्गणानाम्) उरोजकोकान् (उरोजाः एव कोकाः चक्रवाकाः तान् स्तनरूपचक्रवाकान्) मुखकमलानि (मुखानि एव कमलानि) च खेदयन् अखिलसुहृच्चकोरनन्दी (अखिलाः सुहृदः एव चकोराः तान् नन्दयितुं शीलं सः) अखण्डः (परिपूर्णः) मुकुन्दयशः शशी (मुकुन्दस्य यशः एव शशी चन्द्रः) वः (युष्माकं) मुदं (सुखं) चिरं दिशतु (विदधातु)।

राय के द्वारा श्रीरूप को स्वाभीष्टदेव के वर्णन करने का अनुरोध, श्रीरूप की लज्जा—

''द्वितीय नान्दी कह देखि?''—राय पुछिला।
सङ्कोच पाञा रूप कहिते लागिला॥ १७६ ॥

१७६। प० अनु०—श्रीरायरामानन्द ने पूछा,—''हे रूप! तुमने द्वितीय नान्दी-श्लोक में क्या लिखा है? अब तुम उसका उच्चारण करो।'' श्रीरूप कुछ संकोच करते हुए बोलने लगे—।

स्वाभीष्ट-देवता श्रीकृष्णचैतन्य के आशीर्वाद की याचना—ललितमाधव (१.३) में सूत्रधार का स्वीय इष्टदेव को प्रणाम—

निजप्रणयितां सुधामुदयमाप्नुवन् यः क्षितौ
किरत्यलमुरीकृतद्विज कुलाधिराजस्थितिः।
स लुञ्चित-तमस्ततिर्मम शचीसुताख्यः शशी
वशीकृतजगन्मनाः किमपि शर्म विन्यस्यतु॥१७७॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१७७। जो पृथ्वी पर उदित होकर अपने प्रणय रस की सुधा का विस्तार कर रहे हैं, उन द्विजकुल के अधिराज के रूप में अवस्थिति को अङ्गीकार करने वाले, अन्धकार के समूह को दूर करने वाले, जगत्वासियों के मानस को वशीभूत करने वाले शचीनन्दन के नाम से प्रसिद्ध चन्द्र मेरा मङ्गल विधान करें।

अनुभाष्य

१७७। यः क्षितौ (पृथिव्याम्) उदयं (प्राकट्यं) आप्नुवन् (प्राप्तः सन्) निजप्रणयितासुधां (स्वप्रेमामृतं) अलम् (अतिशयेन) किरति (विस्तारयति), उरीकृत द्विजकुलाधिराजस्थितिः (उरीकृता अङ्गीकृता द्विज कुलस्य अधिराजः तस्य स्थितिः साम्राज्यमर्यादा येन सः) लुञ्चित-तमस्ततिः (लुञ्चिता ताड़िता तमस्ततिः अज्ञानकैतवपुञ्जः येन सः) वशीकृत-जगन्मनाः (वशीकृतानि जगतां मनांसि येन सः) शचीसुताख्यः (शचीनन्दन नामा) सः शशी (चन्द्रः) मम किमपि शर्म (कल्याणं) विन्यस्यतु (विदधातु)।

प्रभु के अन्तर हृदय में सन्तोष, बाहर में रोष का आभास—

शुनिया प्रभुर यदि अन्तरे उल्लास।
बाहिरे कहेन किछु करि' रोषाभास॥ १७८ ॥
''काँहा तोमार कृष्णरस वाक्य-सुधासिन्धु।
तार मध्ये मिथ्या केने स्तुति-क्षारबिन्दु??''१७९॥

१७८-१७९। प० अनु०—यद्यपि श्रीरूप द्वारा उच्चारित श्लोक के श्रवण से श्रीमन्महाप्रभु के अन्तर में तो उल्लास हुआ, तथापि वे बाहर से कुछ रोषाभास प्रकाशित करते हुए कहने लगे—''रूप, कहाँ तो तुम्हारे द्वारा रचित कृष्णरसपूर्ण वचन अमृत समुद्र के समान हैं, तब फिर तुमने उसमें किस कारण से मेरी मिथ्या स्तुति रूपी क्षार-बिन्दु को मिला दिया है?''

राय के द्वारा श्लोक की प्रशंसा—

राय कहे,—''रूपेर काव्य अमृतेर पूर।
तार मध्ये एक बिन्दु दियाछे कर्पूर॥'' १८० ॥

१८०। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा,—''रूप का काव्य अमृत का पूर (सार) है, उसने उपरोक्त श्लोक को तो उसमें एक बिन्दु कर्पूर के समान मिश्रित किया है।''

प्रभु कहे,—''राय, तोमार इहाते उल्लास।
शुनितेइ लज्जा, लोके करे उपहास॥'' १८१ ॥

१८१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे राय! इन वचनों को सुनकर आपको तो उल्लास हो रहा है किन्तु मुझे तो इसे सुनते ही लज्जा आ रही है तथा इसे सुनकर लोग भी उपहास करेंगे।''

राय कहे,—''लोकेर सुख इहार श्रवणे।
अभीष्ट-देवेर स्मृति मङ्गलाचरणे॥'' १८२ ॥

१८२। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा,—''अभीष्ट-देव की स्मृति कराने वाले इस मङ्गलाचरण को सुनकर लोग प्रसन्न ही होंगे।''

राय के द्वारा ललितमाधव के विविध अङ्गों और परिचय की जिज्ञासा, श्रीरूप के द्वारा नाटक में लिखित श्लोक उच्चारण पूर्वक उत्तर प्रदान—

राय कहे,—''कोन् अङ्गे पात्रेर प्रवेश?''
तबे रूप-गोसाञि कहे ताहार विशेष॥ १८३ ॥

१८३। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने श्रीरूप से पूछा—''ललितमाधव नाटक की प्रस्तावना के किस अङ्ग में तुमने पात्र का प्रवेश कराया है?'' तब श्रीरूप गोस्वामी उसकी विशेषता का वर्णन करने लगे।

अनुभाष्य

१८३। अन्त्य-लीला के इसी प्रथम परिच्छेद की १३४ वीं सख्या और उसका अनुभाष्य द्रष्टव्य है। 'उद्घात्यक','कथोद्घात्','प्रयोगातिशय','प्रवर्त्तक' और 'अवलगित' — यह पाँच प्रकार की प्रस्तावना हैं; एवं भारती-वृत्ति की 'प्ररोचना', 'वीथी' और 'प्रहसना'— यह तीन प्रकार के अङ्ग हैं। श्रीरामानन्द श्रीरूप से जिज्ञासा कर रहे हैं, — तुमने स्वरचित नाटक में उक्त पाँच प्रकार की प्रस्तावनाओं में से किस प्रकार की प्रस्तावना मे भारती-वृत्ति के किस अङ्ग को स्वीकार करके अभिनेता रूपी पात्र को रङ्गमञ्च में प्रवेश कराया है?

ललितमाधव (१.११) में नटी के प्रति सूत्रधार की उक्ति—

नटता किरातराजं निहत्य रङ्गस्थले कलानिधिना।
समये तेन विधेयं गुणवति ताराकरग्रहणम्॥१८४॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१८४। कलानिधि (कृष्णचन्द्र) के द्वारा नृत्य करते-करते रङ्गमञ्च में किरातराज कंस का वध करने के पश्चात् [नाटक-ग्रन्थ के अन्त में] 'पूर्णमनोरथ' नामक गुणयुक्त समय में तारा (श्रीराधा) का पाणि-ग्रहण कार्य विधेय हो रहा है।

अनुभाष्य

१८४। नटता (अभिनयं कुर्वता) तेन कलानिधिना (तन्नाम्ना नटेन) रङ्गस्थले (अभिनय-क्षेत्रे) किरातराजं (किरातदेशाधिपं) निहत्य गुणवति (अनुकूल-नक्षत्राधिष्ठिते) समये ताराकरग्रहणं (तन्नाम्न्याः कन्यायाः पाणिग्रहणं) विधेयम्; पक्षान्तरे,—रङ्ग स्थले (रङ्गक्षेत्रे) तेन चतुःषष्ठि-कलानिधिना (श्रीकृष्णेन्) किरातराजं (कंसं) निहत्य (हत्वा) गुणवति (दशमाङ्काख्ये पूर्णमनोरथनाम्नि) समये ताराकरग्रहणं (श्रीराधिकायाः पाणिग्रहणं) विधेयम्। उपरोक्त श्लोक में आमुख अर्थात् प्रस्तावना का नाम 'उद्घात्यक' एवं भारती वृत्ति के अङ्ग का नाम 'वीथी' कहा गया। साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद की ५२० संख्या में—''वीथ्यामेको भवेदङ्कः कश्चिदेकोऽत्र कल्प्यते। आकाशभाषि-तैरुक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः॥ सूचयेदभूरि शृङ्गारं किञ्चिदन्यान् रसानपि। मुख निर्वहणे सन्धौ अर्थप्रकृतयोऽखिलाः॥'' अर्थात् वीथी में केवल मात्र एक ही अङ्क है; इस अङ्क में कोई एक नायक कल्पनापूर्वक आकाशवाणी द्वारा विचित्र उक्ति-प्रत्युक्ति का आश्रय करके प्रचुर रूप में शृङ्गार-रस की और किञ्चित् रूप में अन्यान्य रस-समूह की भी सूचना करता है एवं उसके मुखबन्ध और सन्धि में समस्त अर्थ प्रकृति अथवा बीज (सार) ही प्रयोज्य है। इस स्थान पर चन्द्र के साथ 'नटता'-शब्द के युक्त होने से अर्थ अस्फुट होता है, इसलिए कृष्ण के साथ युक्त होने

से परिस्फुट-अर्थ का बोध होने के कारण 'उद्घात्यक' नामक प्रस्तावना हुई एवं कृष्णसम्बन्धी अर्थ मानकर ही पौर्णमासी भी रङ्गस्थल में प्रविष्ट हुई।

'उद्घात्यक' नाम एइ 'आमुख'—'वीथी' अङ्ग।
तोमार आगे कहि इहा—धाष्ट्र्येर तरङ्ग॥ १८५ ॥

१८५। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने कहा,—''उद्घात्यक नामक आमुख अर्थात् प्रस्तावना में भारती-वृत्ति के वीथी नामक अङ्ग को स्वीकार करके पात्र रङ्गस्थल में प्रविष्ट हुआ है। हे श्रीरामानन्द राय! आपके समक्ष ये सब बातें करना मेरी धृष्टता की तरङ्ग ही है।

अनुभाष्य

१८५। ['कलानिधि' और 'ताराकरग्रहण'- उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त इन दोनों शब्दों के दो प्रकार के अर्थ हो सकते हैं; यथा—(१) कलानिधि चन्द्र के द्वारा नक्षत्र की किरण को ग्रहण करना विधेय एवं (२) कलानिधि श्रीकृष्ण के द्वारा श्रीराधा का पाणिग्रहण विधेय। किन्तु इन दो प्रकार के अर्थों के विषय में एक आपत्ति का विषय हो सकता है 'कलानिधिना'-शब्द के विशेषण 'नटता' शब्द को लेकर। कारण चन्द्र कभी भी नृत्य नहीं करता। श्रीकृष्णचन्द्र ही समय-समय पर नृत्य करते हैं। कंस का वध करने के समय भी श्रीकृष्ण ने नृत्य किया। अतएव कलानिधि-शब्द का चन्द्र अर्थ करने पर, उसके साथ नटता-शब्द की अर्थ सङ्गति नहीं होती। इसलिए 'कलानिधि' शब्द का श्रीकृष्ण अर्थ करके नटता-शब्द की अर्थ-सङ्गति करने पर उद्घात्यक हुआ। इस उद्घात्यक के द्वारा ही निश्चित रूप से प्रमाणिक हो रहा है कि, 'नटता किरात-राजं'- श्लोक में चन्द्रपक्षीय अर्थ की प्रधानता नहीं है, कृष्ण-पक्षीय अर्थ की ही प्रधानता सूचित हो रही है, कारण, किरातराज कंस का श्रीकृष्ण ने ही वध किया है, चन्द्र ने उसका वध नहीं किया। कृष्ण-पक्षीय अर्थ की प्रधानता स्थापित होने से 'ताराकर-ग्रहणम्'-शब्द का भी 'श्रीराधा का कर ग्रहण अथवा श्रीकृष्ण द्वारा पाणिग्रहण'-रूप अर्थ ही प्राधान्य प्राप्त कर रहा है। मूल विषय यह है कि जिस पद की अर्थ-सङ्गति नहीं होती, उसकी अर्थ-सङ्गति के लिये अन्य पद के साथ योजना को उद्घात्यक कहते हैं।

उद्घात्यक का लक्षण परवर्ती श्लोक में व्यक्त हुआ है। श्रीकृष्ण के द्वारा श्रीराधा का पाणिग्रहण ही विधेय है-यही इस श्लोक में कहा गया। ललित-माधव के पूर्णमनोरथ नामक दशम-अङ्क में श्रीरूप गोस्वामी ने श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण के विवाह की कथा का वर्णन किया है, 'नटता किरातराजम्' श्लोक में उसी का इङ्गित किया है।]

श्रीरूप श्रीरामराय को कह रहे हैं,—आपके जैसे रसशास्त्र के पारदर्शी पण्डित व्यक्ति के समक्ष मेरी एक-एक उक्ति—मानो धृष्टता रूपी समुद्र अर्थात् प्रगल्भता रूपी सागर की एक-एक लहर के समान है।

साहित्यदर्पण में दृश्य-श्रव्य के निरूपण में (६.२८९)—

पदानि त्वगतार्थानि तदर्थगतये नराः।
योजयन्ति पदैरन्यैः स उद्घात्यक उच्यते॥ १८६ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१८६। व्यक्ति अस्फुट अर्थात् अस्पष्ट अर्थ वाले पदों के अर्थ को समझने के लिये जब उसे अन्य पद के साथ जोड़ता है, तो उसे 'उद्घात्यक' कहते हैं।

अनुभाष्य

१८६। नराः (आलङ्कारिकाः) तु अगतार्थानि (अप्राप्तार्थानि, अबोधितार्थानि) पदानि तदर्थगतये (तेषाम् अबोधितार्थानां पदानां गतये अवबोधाय) अन्यैः पदैः यं योजयन्ति, सः 'उद्घात्यक' उच्यते (कथ्यते)।

राय कहे,—''कह आगे अङ्गेर विशेष।''
श्रीरूप कहेन किछु संक्षेपे-उद्देश॥ १८७ ॥

१८७। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा,—''हे रूप! अब तुम नाटक के अन्यान्य अङ्ग विशेष अर्थात् वृन्दावन, मुरली-ध्वनि, राधा-कृष्ण इत्यादि का वर्णन

करो।'' श्रीरूप गोस्वामी कुछ संक्षेप में कहने लगे।

अनुभाष्य

१८७। अङ्गेर विशेष,—पूर्ववर्ती (अन्त्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की) १५६ वीं संख्या द्रष्टव्य अर्थात् पूर्ववत् यथाक्रम से वृन्दावन, मुरलीनि:स्वन, कृष्ण और राधिका का वर्णन।

ललितमाधव (१.२३) में गार्गी के प्रति पौर्णमासी की उक्ति—

हरिमुद्दिशते रजोभरः पुरतः सङ्गमयत्यमुं तमः।
व्रजवामदृशां न पद्धतिः प्रकटा सर्वदृशः श्रुतेरपि॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१८८। गाय के खुर से उत्थित रज हरि की सूचना दे रही है; सामने उपस्थित तमः (अन्धकार) गोपियों के साथ उन्हें मिला रहा है; अतएव गोपवधुओं की पद्धति सर्वज्ञ श्रुतियों के लिये भी अगोचर हो गयी है।

अनुभाष्य

१८८। रजोभरः (रजसां गोखुरोत्थधूलीनां भरः पुञ्जः समूहः) हरिं उद्दिशते (सूचयति), तमः (अन्धकारः) पुरतः अमुं (कृष्णं) सङ्गमयति (संयोजयति, अतः) व्रजवामदृशां (व्रजाङ्गनानां) पद्धतिः (रीतिः) सर्वदृशः (सर्वज्ञायाः) श्रुतेः (वेदस्य) अपि प्रकटा च न (गोचरा न स्यात्)।

त्रिगुण-विषयक वेद में गुणातीत कृष्ण की सूचना और मिलन की कथा अव्यक्त है, रजोगुण के द्वारा विक्षेप हेतु कृष्ण-विमुख बद्धजीवों का कृष्ण-सूचना- राहित्य और तमोगुण के द्वारा आवरण हेतु उनका कृष्ण से मिलन का अभाव हुआ है; किन्तु अप्राकृत वृन्दावन में गैयाओं के खुर से उठी रज द्वारा नित्यमुक्ता गोपियों के निकट कृष्ण का आगमन सूचित होता है एवं तमः अथवा अन्धकार के द्वारा नित्यमुक्ता गोपियों का कृष्ण सङ्गम सम्पादित होता है; अतएव शुद्धसत्त्व गोपियाँ और शुद्धसत्त्व श्रीवृन्दावन, दोनों ही त्रैगुण्य-विषयक वेदों के अगोचर हैं,—यही श्लोकार्थ है।

ललितमाधव (१.२४) में पौर्णमासी के प्रति गार्गी की उक्ति—

ह्रियमवगृह्यगृहेभ्यः कर्षति राधां वनाय या निपुणा।
सा जयति निसृष्टार्था वरवंशजकाकली दूती॥१८९॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१८९। निपुणा, तात्पर्यशालिनी (कार्य-भार प्राप्त), श्रेष्ठवंशज वंशी की काकली (ध्वनि) रूपी जो दूती श्रीराधा की लज्जा दूर कराके उन्हें उनके घर से वन की ओर आकर्षित करती है, वह जययुक्त हो।

अनुभाष्य

१८९। या ह्रियं (लज्जां) अवगृह्य (विहत्य, हृत्वा इत्यर्थः) गृहेभ्यः वनाय (वनगमन निमित्ताय इत्यर्थः) राधां कर्षति, सा निपुणा (दक्षा) निसृष्टार्था (विन्यस्त-कर्मभारा) वरवंशजकाकली (वंशीध्वनिरूपा) दूती जयति (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते)।

निसृष्टार्था,—(उः नीः दूतीभेद प्रकरण के २९वें श्लोक में)—''विन्यस्तकार्यभारा स्याद्द्वयोरेकतरेण या। युक्तयोभौ घटयेदषा निसृष्टार्था निगद्यते।'' [अर्थात् जो दूती नायक अथवा नायिका, दोनों में से किसी एक के द्वारा कार्य-भार प्राप्त करके युक्ति के द्वारा दोनों का मिलन कराती है, उसे निसृष्टार्था-दूती कहा जाता है।]

ललितमाधव (२.११) में श्रीकृष्ण के दर्शन होने पर सखी के प्रति राधा की उक्ति—

सहचरि निरातङ्कः कोऽयं युवा मुदिरद्युति-
र्व्रजभुवि कुतः प्राप्तो माद्यन्मतङ्गजविभ्रमः।
अहह चटुलैरुत्सर्पद्भिर्दृगञ्चलतस्करै-
र्मम धृतिधनं चेतःकोषाद्विलुन्ठयतीह यः॥ १९० ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१९०। हे सहचरि, नवीन मेघ की कान्ति से युक्त, मदमत्त हाथी की भाँति लीला करने वाले तथा आशङ्का-रहित यह युवा कौन है? यह व्रजभूमि में कहाँ से आया है? आहा, यह चञ्चल गति द्वारा एवं चोर की भाँति दृष्टि द्वारा मेरे चित्तकोष से चित्त के धैर्य रूपी धन को लूट रहा है।

अनुभाष्य

१९०। हे सहचरि, अहह इह (वृन्दाविपिने) यः युवा चटुलैः (चपलैः) उत्सर्पद्भिः (सर्वदिक्षु भ्रमद्भिः) दृगञ्चलतस्करैः (नयनकटाक्षचौरैः) मम चेतःकोषात् (हृद्-भाण्डारतः) धृति-धनं (धैर्यरूप-धनं) विलुण्ठयति, मुदिरद्युतिः (मुदिरस्य मेघस्य द्युतिरिव द्युतिः यस्य सः नवमेघरुचिः) माद्यन्मतङ्गज-विभ्रमः (माद्यन् यः मतङ्गजः तद्वत् विभ्रमः विलासः यस्य सः महामत्तगजवच्चञ्चलः) निरातङ्कः (निशङ्कः) अयं युवा कः? कुतः (च) व्रजभुवि प्राप्तः (समायातः)?

ललितमाधव (२.१०) में श्रीराधा को देखने पर श्रीकृष्ण की उक्ति—

विहारसुरदीर्घिका मम मनःकरीन्द्रस्य या
विलोचन-चकोरयोः शरदमन्दचन्द्रप्रभा।
उरोऽम्बरतटस्य चाभरणचारुतारावली
मयोन्नतमनोरथैरियमलम्भि सा राधिका॥ १९१ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१९१। जो राधिका—मेरे मन रूपी मातङ्ग (हाथी)के लिये विहारगङ्गा स्वरूपा है, मेरे चक्षु रूपी चकोर के लिये शारदीय पूर्ण चन्द्र की घनीभूत प्रभा के समान है एवं मेरे वक्षःस्थल रूपी आकाश के लिये उसके आभूषण-स्वरूप सुन्दर-तारावली की भाँति हैं, आज मैंने उस राधिका को उन्नत मनोरथ के साथ अर्थात् बहुत दिनों की अभिलाषा के बाद प्राप्त किया।

अनुभाष्य

१९१। या (राधा) मम मनः करीन्द्रस्य (हृदय मातङ्गस्य) विहार सुरदीर्घिका (स्वर्गङ्गा), या विलोचन-चकोरयोः (विलोचने नयने एव चकोरौ तयोः) शरद-मन्दचन्द्रप्रभा (शरदि अमन्दः पूर्णः यः चन्द्रः तस्य प्रभा), या उरोऽम्बरतटस्य (उरः वक्षः एव अम्बरं आकाशं तस्य तटस्य प्रान्तस्य) च आभरणचारुतारावली (आभरणेषु अलङ्कारेषु चारुतारावली सुन्दर नक्षत्र मण्डली) च सा इयं राधिका मया (कृष्णेन) उन्नत मनोरथैः (बहुदिन-मानसवाञ्छितैः हेतुभूतैः) साम्प्रतम् अलम्भि (प्राप्तवती)।

राय के द्वारा सहस्त्र मुखों से श्रीरूप के कवित्व की अजस्त्र-प्रशंसा—

एत शुनि' राय कहे प्रभुर चरणे।
रूपेर कवित्व प्रशंसि' सहस्त्र-वदने॥ १९२ ॥
''कवित्व ना हय एइ अमृतेर धार।
नाटक-लक्षण सब सिद्धान्तेर सार॥ १९३ ॥
प्रेम परिपाटी एइ अद्भुत वर्णन।
शुनि' चित्त-कर्णेर हय आनन्द-घूर्णन॥ १९४ ॥

१९२-१९४। प० अनु०—इतना सब सुनने के उपरान्त श्रीरायरामानन्द ने श्रीरूप के कवित्व की सैकड़ो मुखों से प्रशंसा करते हुए श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में निवेदन करते हुए कहा—''रूप द्वारा रचित यह कवित्व कवित्व नहीं, बल्कि अमृत की धारा है। नाटक के समस्त लक्षण सिद्धान्त के सार स्वरूप हैं। प्रेम की परिपाटी का ऐसा वर्णन अद्भुत है, जिसे सुनकर चित्त और कर्ण आनन्द से झूम उठते हैं।

(प्राचीनकृत श्लोक)

किं काव्येन कवेस्तस्य किं काण्डेन धनुष्मतः।
परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः॥ १९५ ॥

अमृतप्रवाह भाष्यश

१९५।''दूसरों के हृदय से लगकर यदि उसके मस्तक को ही चञ्चल नहीं कर पाये अर्थात् उसके मस्तक को ही नहीं घुमा दे, तब कवि के काव्य एवं धनुर्धारी के बाण से क्या प्रयोजन?

प्रथम परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

१९५। तस्य कवेः काव्येन (रसात्मक-वाक्येन) किम्? धनुष्मतः (धनुर्धरस्य) काण्डेन (बाणेन) किं (प्रयोजनम्)?—यत् काव्यं काण्डञ्च परस्य हृदये लग्नं सत्, तस्य शिरः न घूर्णयति?

श्रीरूप के प्रति प्रभु की कृपा का अनुमान—

तोमार शक्ति बिना जीवेर नहे एइ वाणी।
तुमि शक्ति दिया कहाओ,—हेन अनुमानि॥ ''१९६॥

१९६। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आपकी शक्ति के बिना किसी भी जीव की लेखनी में ऐसी वाणी प्रकाशित नहीं हो सकती। मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि आप ही शक्ति प्रदान करके श्रीरूप के माध्यम से यह सब कुछ कहलवा रहे हैं।''

प्रभु के द्वारा श्रीरूप के कवित्व की प्रशंसा—

प्रभु कहे,—''प्रयागे आमा-सने हइल मिलन।
इँहार गुणे इँहाते आमार तुष्ट हैल मन॥ १९७ ॥

१९७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,— ''प्रयाग में रूप की मुझसे भेंट हुई थी। इसके गुणों को देखकर मेरा मन इसके प्रति सन्तुष्ट अर्थात् परम प्रसन्न हो गया था।

मधुर प्रसङ्ग इँहार काव्य सालङ्कार।
ऐछे कवित्व बिना नहे रसेर प्रचार॥ १९८ ॥

१९८। प० अनु०—''रूप ने जिस प्रसङ्ग का चयन किया है, वह अत्यन्त मधुर है तथा रूप का काव्य समस्त प्रकार के अलङ्कारों से विभूषित है। ऐसे कवित्व के बिना वास्तव में रस का प्रचार नहीं हो सकता।

स्वयं प्रभु के द्वारा परमस्नेह-कृपा-भाजन श्रीरूप के प्रति भक्तों की कृपा की याचना—

सबे कृपा करि' इँहारे देह' एइ वर।
व्रजलीला-प्रेमरस जेन वर्णे निरन्तर॥ १९९ ॥

१९९। प० अनु०—''हे रामानन्द राय! आप सभी कृपा करके इसे यही वर प्रदान करो कि यह निरन्तर व्रजलीला-प्रेमरस का ही वर्णन करे।

प्रभु के द्वारा श्रीसनातन की प्रशंसा और वैराग्ययुक्त प्रेम-भक्ति-सिद्धान्तरसपाण्डित्य के विषय में उन्हें श्रीराय के साथ समान-मानना—

इँहार जे ज्येष्ठभ्राता, नाम—'सनातन'।
पृथिवीते विज्ञवर नाहि ताँर सम॥ २०० ॥

२००। प० अनु०—''श्रीरूप के ज्येष्ठ भ्राता जिनका नाम सनातन है, सम्पूर्ण पृथ्वी पर उनके समान विज्ञवर अन्य कोई नहीं है।

तोमार जैछे विषयत्याग, तैछे ताँर रीति।
दैन्य-वैराग्य पाण्डित्येर ताँहातेइ स्थिति॥ २०१ ॥

२०१। प० अनु०—''जिस प्रकार से आपका विषय-त्याग है, उनकी भी वैसी ही रीति है। वास्तव में दैन्य, वैराग्य तथा पाण्डित्य उन्हीं में ही विराज कर रहे हैं।

अनुभाष्य

२०१। श्रीमहाप्रभु ने श्रीरामानन्द राय से कहा,— तुम समस्त विषय परित्याग करके जिस प्रकार से एकान्तिक कृष्णसेवा कर रहे हो, सनातन गोस्वामी भी ठीक तुम्हारी ही भाँति कृष्ण के अलावा अन्य विषय-समूह को छोड़कर सर्वदा उसी प्रकार 'तृणादपि सुनीच' अर्थात् निष्किञ्चन भाव से युक्त और कृष्ण के अलावा अन्य भोग विवर्जित अर्थात् कृष्ण के अलावा अन्य विषयों के बन्धन से मुक्त होकर, कृष्ण सेवा रूपी विषय ग्रहण करके पराभक्ति की विद्या में पारङ्गत हैं। निष्कपट दैन्य, वैराग्य और पाण्डित्य के आदर्श विग्रह श्रीसनातन शुद्ध अर्थात् युक्त वैराग्य और प्रेमभक्ति सिद्धान्त-रस-पाण्डित्य आदि में ठीक तुम्हारी ही भाँति अभिज्ञ (विद्वान्) और पारदर्शी हैं।

श्रीरूप-सनातन को शक्ति सञ्चार करके व्रज में भेजने का वर्णन—

एइ दुइ भाइये आमि पाठाइलुँ वृन्दावने।
शक्ति दिया भक्तिशास्त्र करिते प्रवर्त्तने॥'' २०२ ॥

२०२। प० अनु०—''मैंने इन दोनों भाइयों को शक्ति प्रदान करके भक्ति शास्त्र का प्रवर्त्तन करने के लिये वृन्दावन भेजा था।''

राय के द्वारा प्रभु को प्रयोजक कर्त्ता मानकर उनकी स्तुति–

राय कहे,—''ईश्वर तुमि जे चाह करिते।
काष्ठेर पुतली तुमि पार नाचाइते॥ २०३ ॥

२०३। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु, आप ईश्वर हैं । आप जो भी करना चाहें, वही कर सकते हैं। आप तो इच्छा करने पर लकड़ी की पुतली तक को भी नचा सकते हैं।

राय के कीर्त्तन में और श्रीरूप की लेखनी में एक ही प्रेम-भक्तिरस का प्रचार–

मोर मुखे जे सब रस करिला प्रचारणे।
सेइ रस देखि एइ इँहार लिखने॥ २०४ ॥

२०४। प० अनु०—''आपने मेरे मुख के माध्यम से जिस रस को प्रकाशित कराया था, मैं देख रहा हूँ कि वही रस ही श्रीरूप की लेखनी में है।

प्रभु अपनी इच्छा के द्वारा चालित भक्त के द्वारा अप्राकृत व्रजरस के माहात्म्य का प्रचार करने वाले –

भक्ते कृपा-हेतु प्रकाशिते चाह व्रज-रस।
जारे कराओ, सेइ करिबे, जगत् तोमार वश॥ ''२०५॥

२०५। प० अनु०—''भक्तों पर कृपा करने के उद्देश्य से ही आप व्रज-रस को प्रकाशित करवाना चाहते हैं। आप जिसके माध्यम से व्रज-रस को प्रकाशित करायेंगे, वही करेगा, वास्तव में सम्पूर्ण जगत् ही आपके वश में है।''

प्रभु द्वारा श्रीरूप को आलिङ्गन, श्रीरूप द्वारा भक्तों के चरणों की वन्दना–

तबे महाप्रभु कैला रूपे आलिङ्गन।
ताँरे कराइला सबार चरण वन्दन॥ २०६ ॥

२०६। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरूप का आलिङ्गन किया तथा उन्होंने श्रीरूप से सभी भक्तों के चरणों की वन्दना करायी।

नित्यानन्द-अद्वैतादि सभी के द्वारा श्रीरूप को आलिङ्गन–

अद्वैत-नित्यानन्दादि सब भक्तगण।
कृपा करि' रूपे सबे कैला आलिङ्गन॥ २०७ ॥

२०७। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य एवं श्रीनित्यानन्द आदि सभी भक्तों ने कृपा करके श्रीरूप को आलिङ्गन किया।

श्रीरूप के प्रति प्रभु की कृपा और श्रीरूप के कृष्णाकर्षक गुण के दर्शन से सभी को विस्मय–

प्रभु-कृपा रूपे, आर रूपेर सद्गुण।
देखि' चमत्कार हैल सबाकार मन॥ २०८ ॥

२०८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की श्रीरूप के प्रति कृपा तथा श्रीरूप के सद्गुण —इसे देखकर सभी भक्तों का मन चमत्कृत हो उठा।

श्रीरूप को ठाकुर-हरिदास द्वारा आलिङ्गन–

तबे महाप्रभु सब भक्त लञा गेला।
हरिदास-ठाकुर रूपे आलिङ्गन कैला॥ २०९ ॥

२०९। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु अपने समस्त भक्तों को अपने साथ लेकर चले गये। इधर, श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीरूप को आलिङ्गन किया।

हरिदास के द्वारा श्रीरूप के सौभाग्य की प्रशंसा–

हरिदास कहे,—''तोमार भाग्येर नाहि सीमा।
जे सब वर्णिला, इहार के जाने महिमा??'' २१० ॥

२१०। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''हे रूप! तुम्हारे सौभाग्य की सीमा नहीं है। तुमने जो सब वर्णन किया है, उसकी महिमा कौन जानता है?''

श्रीरूप के द्वारा दैन्य ज्ञापन, स्वयं को यन्त्री-प्रभु का यन्त्र-ज्ञान–

श्रीरूप कहेन,—''आमि किछुइ ना जानि।
जेइ महाप्रभु कहान, सेइ कहि वाणी॥'' २११ ॥

२११। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने कहा,—''मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। श्रीमन्महाप्रभु मुझसे जो कहलवाते हैं, मैं वही कहता हूँ।''

भ: र: सि: (१.१.२) में–

हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्तितोऽहं वराकरूपोऽपि।
तस्य हरे: पदकमलं वन्दे चैतन्यदेवस्य॥ २१२ ॥

२१२।अनु०—हृदय में जिनकी प्रेरणा से सामान्य काङ्गालरूपी मैं भक्तिग्रन्थ की रचना में प्रवृत्त हुआ हूँ, मैं उन श्रीचैतन्यदेव हरि के पदकमल की वन्दना करता हूँ।

अनुभाष्य

२१२। मध्य-लीला के उन्नविंश परिच्छेद की १३४ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्रीरूप और हरिदास का कृष्णकथा-आलाप–

एइमत दुइजन कृष्णकथा-रङ्गे।
सुखे काल गोङाय रूप हरिदास-सङ्गे॥ २१३ ॥

२१३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीरूप, श्रीहरिदास ठाकुर के साथ कृष्णकथा के आनन्द में सुखपूर्वक अपने समय को व्यतीत कर रहे थे।

चातुर्मास्य के अन्त में गौड़ से आये भक्तों का गौड़ लौटना–

चारि मास रहि' सब प्रभुर भक्तगण।
गोसाञि विदाय दिला, गौड़े करिला गमन॥२१४॥

२१४। प० अनु०—गौड़देश बङ्गाल से आये श्रीमन्महाप्रभु के भक्त चार मास तक जगन्नाथपुरी में रहे। तदुपरान्त श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें विदायी दी तथा सभी गौड़देश लौट गये।

दोलयात्रा (होली उत्सव) तक श्रीरूप का प्रभु के चरणों में अवस्थान–

श्रीरूप प्रभुपदे नीलाद्रि रहिला।
दोलयात्रा प्रभुसङ्गे आनन्दे देखिला॥ २१५ ॥

२१५। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में नीलाद्रि श्रीजगन्नाथ पुरी में ही रह गये तथा उन्होंने आनन्दपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु के साथ दोलयात्रा (होली उत्सव) के दर्शन किये।

श्रीरूप में प्रभु द्वारा शक्तिसञ्चार–

दोलयात्रा हैले प्रभु रूपे आज्ञा दिला।
अनेक प्रसाद करि' शक्ति सञ्चारिला॥ २१६ ॥

वृन्दावन में गमनपूर्वक सनातन को पुरी-भेजने की आज्ञा–

''वृन्दावने जाह' तुमि, रहिह वृन्दावने।
एकबार इँहा पाठाइह सनातने॥ २१७ ॥

२१६-२१७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने दोलयात्रा के समाप्त हो जाने पर श्रीरूप पर अनेक कृपा करके उनमें शक्ति का सञ्चार किया तथा उन्हें आज्ञा देते हुए कहा—''तुम वृन्दावन जाओ और वृन्दावन में ही रहना तथा सनातन को एकबार यहाँ जगन्नाथपुरी में भेजना।

वृन्दावन में चार प्रकार की सेवा के कार्य का दायित्व प्रदान–(१) भक्ति-रसशास्त्र की रचना, (२) लुप्ततीर्थों का उद्धार, (३) श्रीविग्रह और मन्दिर में सेवा का संस्थापन और (४) अप्राकृत भक्ति-रस-प्रचार–

व्रजे जाइ' रसशास्त्र करिह निरूपण।
लुप्त-तीर्थ सब ताँहा करिह प्रचारण॥ २१८ ॥
कृष्णसेवा, रसभक्ति करिह प्रचार।
आमिह देखिते ताँहा जाइमु एकबार॥ २१९ ॥

२१८-२१९। प० अनु०—''व्रज में जाकर रसशास्त्र का निरूपण करना। वहाँ पर समस्त लुप्त-तीर्थों को प्रकाशित करना। कृष्ण (विग्रह) सेवा तथा रसभक्ति का प्रचार करना। तुमने वहाँ पर क्या-क्या किया है, उसे देखने मैं भी एकबार वहाँ पर जाऊँगा।''

अनुभाष्य

२१९। महाप्रभु का पुन: वृन्दावन गमन नहीं सुना जाता।

प्रथम परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

प्रभु का आलिङ्गन, श्रीरूप का प्रणाम–

एत बलि' प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गन।
रूप-गोसाञि शिरे धरे प्रभुर चरण॥ २२० ॥

२२०। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने

श्रीरूप का आलिङ्गन किया तथा श्रीरूप गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को अपने सिर पर धारण किया।

भक्तों से विदायी लेकर गौड़देश से होते हुए श्रीरूप का व्रज में आगमन—

प्रभुर भक्तगण-पाशे विदाय लइया।
पुनरपि गौड़-पथे वृन्दावने आइला॥ २२१ ॥

२२१। प० अनु०—श्रीरूप ने श्रीमन्महाप्रभु के समस्त भक्तों से विदायी ली तथा पुनः गौड़देश से होते हुए वृन्दावन आ गये।

प्रभु-रूप-मिलन-संवाद के श्रवण से अचैतन्य जीव को चैतन्यपद की प्राप्ति—

एइ त' कहिलाङ पुनः रूपेर मिलन।
इहा जेइ शुने, पाय चैतन्यचरण॥ २२२ ॥

२२२। प० अनु०—इस प्रकार मैंने (श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने) श्रीमन्महाप्रभु के साथ श्रीरूप के पुनः मिलन का वर्णन किया। जो कोई भी इस प्रसङ्ग का श्रवण करता है, उसे श्रीचैतन्यदेव के चरणों की प्राप्ति होती है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ २२३ ॥

२२३। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे श्रीरूपसङ्गोत्सवो नाम प्रथमः परिच्छेदः।

❋ ❋ ❋

द्वितीय परिच्छेद

कथासार—महाप्रभु का साक्षात्-दर्शन, आवेश और आविर्भाव जिस-जिस स्थान पर हुआ था, उसका विवरण बतलाते हुए ग्रन्थकार ने नकुल ब्रह्मचारी की कथा, नृसिंहानन्द की महिमा तथा अन्यान्य भक्तों की कथा को लिखा है। भगवान् आचार्य की प्रभु के प्रति निष्ठा के होने पर भी स्वरूप दामोदर ने भगवान् आचार्य के भ्राता गोपाल भट्टाचार्य के मुख से मायावाद के भाष्य को सुनने के लिये उन्हें मना किया। उसके उपरान्त छोटे-हरिदास ने भगवान् आचार्य की आज्ञा के अनुसार माधवी-देवी के पास जाकर चावल की भिक्षा की तथा प्रभु ने उन्हें वैरागी के प्रकृति-सम्भाषण (स्त्री के साथ भोग बुद्धि से वार्त्तालाप) के दोष से (अपने वासस्थान के द्वार में प्रवेश करने हेतु) निषेध किया एवं वैष्णवों के अनुरोध करने पर भी उन्हें पुनः स्वीकार नहीं किया। एक वर्ष के बाद छोटे-हरिदास ने प्रयाग-त्रिवेणी में डूबकर अपने प्राण त्याग दिये तथा अप्राकृत देह से महाप्रभु को गान सुनाया। गौड़ीय-वैष्णवों के द्वारा आकर छोटे-हरिदास के त्रिवेणी में प्राण-त्यागने का संवाद देने पर स्वरूप आदि सभी को इसके विषय में जानकारी प्राप्त हुयी।

(अः प्रः भाः)

छह रूपों में विलास करने वाले अन्तरङ्ग परिकर सहित श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु को और सेवा में रत प्रेष्ठ सखियों से परिवेष्टित श्रीराधा-कृष्ण को प्रणाम—

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगणरघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगणललिता-श्रीविशाखान्वितांश्च॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। मैं श्रीगुरु [अर्थात् अपने मन्त्र-दीक्षा गुरु तथा भजन-शिक्षा गुरु] के पदकमलों एवं समस्त गुरुओं [अर्थात् गुरुवर्गों], समस्त वैष्णवों [अर्थात् चारों युगों में आविर्भूत महाभागवतों], रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, सगण रघुनाथ [दास गोस्वामी] और जीव [गोस्वामी], अद्वैतप्रभु, नित्यानन्द प्रभु एवं परिजन सहित श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव, [सखी-मञ्जरी आदि के] गणसहित ललिता-विशाखा आदि से युक्त श्रीराधा-कृष्ण की वन्दना करता हूँ।

अनुभाष्य

१। अहं श्रीगुरोः (मन्त्रदीक्षागुरोः भजनशिक्षागुरोः वा) श्रीयुतपदकमलं (श्रीमच्चरणसरोजं) श्रीगुरून् (परमपरात्परप्रभृति-गुरुगणान् श्रीमदानन्द-तीर्थ-श्रीमन्माधवेन्द्रपुरी-प्रमुख गुरुवर्गान्) वैष्णवान् (चतुर्युगोद्भूतान् भागवतान्) च; साग्रजातं (अग्रजेन श्रीमता गोस्वामिना सनातनेन सह वर्तमानं) सहगणरघुनाथान्वितं (स्वभक्तैः सह रूपानुगेन श्रीरघुनाथेन दास-गोस्वामिना च सह सहितं) सजीवं (निजानुकम्पितेन रूपानुगेन श्रीजीवगोस्वामिना सह विद्यमानं) तं श्रीरूपं; साद्वैतं (अद्वैतप्रभु सहितं) सावधूतं (नित्यानन्दप्रभुसमन्वितं) परिजनसहितं (सावरण पार्षदं) कृष्णचैतन्यदेवं (महाप्रभुं); सहगणललिता-श्रीविशाखान्वितान् (गणेन सखि-मञ्जरीभिः सह वर्त्तमानाभ्यां ललितविशाखाभ्याम् अन्वितान् युक्तान्) श्रीराधाकृष्ण पादान् च वन्दे।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैत चन्द्र की जय हो तथा गौरभक्तवृन्द की जय हो।

तीन प्रकार से प्रभु द्वारा जीवों का उद्धार—

सर्वलोक उद्धारिते गौर-अवतार।
निस्तारेर हेतु तार त्रिविध प्रकार॥ ३ ॥

३। प० अनु०—सभी लोगों का उद्धार करने के लिये ही गौर-अवतार हुआ है। उन्होंने जगत्-वासियों का उद्धार तीन प्रकार से किया।

(१) साक्षात्-दर्शन, (२) योग्य जीव में आवेश, (३) आविर्भाव—

साक्षात्-दर्शन, आर योग्यभक्त-जीवे।
'आवेश' करये काँहा, काँहा 'आविर्भावे'॥ ४ ॥

४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहीं साक्षात्-दर्शन से, कहीं योग्यभक्त जीव में आवेश -रूप से तथा कहीं आविर्भाव रूप से जीवों का उद्धार किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

३-४। श्रीमन्महाप्रभु, ने जीवों को साक्षात्-दर्शन देकर, किसी योग्यभक्त जीव में आविष्ट होकर एवं किसी भक्त जीव [के समक्ष] में आविर्भूत होकर जीवों का उद्धार किया।

तीन प्रकार के प्राकट्य का वर्णन—

'साक्षात् दर्शने' प्राय सब निस्तारिला।
नकुल-ब्रह्मचारीर देहे 'आविष्ट' हइला॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने प्राय: सभी का तो साक्षात्-दर्शन देकर ही उद्धार किया था। एक बार श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनकुल ब्रह्मचारी की देह में 'आविष्ट' होकर सब दर्शनार्थियों का उद्धार किया था।

ईश्वर का स्वभाव—

प्रद्युम्न-नृसिंहानन्द आगे कैला 'आविर्भाव'।
'लोक-निस्तारिब',—एइ ईश्वर-स्वभाव॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीप्रद्युम्न अथवा श्रीनृसिंहानन्द के समक्ष स्वयं को आविर्भूत कराया एवं अनेक लोगों का उद्धार किया।[जिस किसी भी प्रकार से क्यों न हो,] जीवों का उद्धार करना ही ईश्वर का स्वभाव है।

अनुभाष्य

५-६। 'साक्षात् दर्शन' प्रदान करके, नकुल ब्रह्मचारी की देह में 'आविष्ट' होकर एवं प्रद्युम्न अथवा नृसिंहानन्द-ब्रह्मचारी के समक्ष 'आविर्भूत' होकर महाप्रभु ने लोगों का उद्धार किया। (१) श्रीशची के गृह मन्दिर में, (२) श्रीनित्यानन्द प्रभु के नर्त्तन स्थल पर, (३) श्रीवास के आङ्गन में कीर्त्तन के स्थल पर एवं (४) श्रीराघव पण्डित के भवन में,—इन चार स्थानों पर महाप्रभु नित्य 'आविर्भाव' प्रकटित करते थे (इसी परिच्छेद की ३४ वीं संख्या द्रष्टव्य है)।

तीन प्रकार के प्राकट्यों के फल का वर्णन; प्रभु के 'साक्षात्-दर्शन' का फल—

साक्षात्-दर्शने सब जगत् तारिला।
एकबार जे देखिला, से कृतार्थ हइला॥ ७ ॥

७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने साक्षात्-दर्शन देकर समस्त जगत् का उद्धार कर दिया। जिस किसी ने एकबार भी उनका दर्शन किया, वह कृतार्थ हो गया।

गौड़-देशेर भक्तगण प्रत्यब्द आसिया।
पुनः गौड़देशे जाय प्रभुरे मिलिया॥ ८ ॥

८। प० अनु०—गौड़-देश के भक्त प्रत्येक वर्ष आकर श्रीमन्महाप्रभु से मिलकर पुन: गौड़-देश लौट जाते थे।

आर नाना-देशेर लोक आसि' जगन्नाथ।
चैतन्य चरण देखि' हइल कृतार्थ॥ ९ ॥

९। प० अनु०—अन्य-अन्य स्थानों के लोग भी श्रीजगन्नाथ पुरी में आकर श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों का दर्शन करके कृतार्थ हो गये।

सप्तद्वीपेर लोक आर नवखण्डवासी।
देव, गन्धर्व, किन्नर मनुष्य-वेशे आसि'॥ १० ॥
प्रभुरे देखिया जाय 'वैष्णव' हञा।
कृष्ण बलि' नाचे सब प्रेमाविष्ट हञा॥ ११ ॥

१०-११। प० अनु०—सातों द्वीपों के लोग, नौ खण्डों के निवासी, देवता, गन्धर्व तथा किन्नर भी मनुष्य के वेश में आकर श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करते तथा उसके प्रभाव से वैष्णव बनकर 'कृष्ण' नाम का उच्चारण करके प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करने लगते।

अनुभाष्य

१०। सप्तद्वीप,—मध्य-लीला के विंश परिच्छेद की २१८ वीं संख्या का अनुभाष्य एवं भा: के पञ्चम स्कन्ध का १६ वाँ और २० वाँ अध्याय द्रष्टव्य। नवखण्ड,—सिद्धान्त-शिरोमणि में गोलाध्याय के भुवनकोश में ''ऐन्द्रं कशेरुसकलं किल ताम्रपर्णमन्यद्गभस्ति-मदतश्च कुमारिकाख्यम्। नागञ्च सौम्यमिह वारुणमन्त्यखण्डं गान्धर्वसंज्ञमिति भारतवर्ष मध्ये॥'' १) ऐन्द्र, (२) कशेरु, (३) ताम्रवर्ण, (४) गभस्तिमत्, (५) कुमारिका, (६) नाग, (७) सौम्य, (८) वारुण और (९) गान्धर्व।

प्रभु के आवेश का कारण, देश, काल और पात्र के वैशिष्ट्य का वर्णन—

एइमत दर्शने त्रिजगत् निस्तारि'।
जे केह आसिते नारे अनेक संसारी॥ १२ ॥
ता-सबा तारिते प्रभु सेइ सब देशे।
योग्यभक्त-जीवदेहे करेन 'आवेशे'॥ १३ ॥

१२-१३। प० अनु०—इस प्रकार अपने दर्शनों से श्रीमन्महाप्रभु ने त्रिभुवन का उद्धार कर दिया तथापि अनेकानेक संसारी लोग ऐसे भी थे जो श्रीजगन्नाथ पुरी में आकर श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों को प्राप्त नहीं कर सके। उन सबका भी उद्धार करने के लिये श्रीमन्महाप्रभु उनके स्थानों पर किसी योग्यभक्त-जीव की देह में अपना 'आवेश' प्रकट करते।

आवेश का फल—

सेइ जीवे निज-शक्ति करेन प्रकाशे।
ताहार दर्शने 'वैष्णव' हय सर्वदेशे॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उस जीव में अपनी शक्ति का प्रकाश कर देते तथा उसी आविष्ट जीव के दर्शन से समस्त प्रान्तवासी वैष्णव बन जाते।

एइमत आवेशे तारिल त्रिभुवन।
गौड़े जैछे आवेश, करि दिग्दरशन॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने आवेश के द्वारा त्रिभुवन का उद्धार कर दिया, श्रीमन्महाप्रभु ने गौड़देश में जिस प्रकार से आवेश प्रकाशित किया, मैं यहाँ उसका दिग्दर्शन प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'आवेश' का दृष्टान्त—नकुल ब्रह्मचारी में प्रभु का 'आवेश' और उनकी अवस्था का वर्णन—

आम्बुया-मुलुके हय नकुल-ब्रह्मचारी।
परम-वैष्णव तेंहो बड़ अधिकारी॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—गौड़देश में श्रीनवद्वीपधाम के निकट आम्बुया-मुलुक में एक श्रीनकुल ब्रह्मचारी नामक परम वैष्णव रहते थे, जो कि भक्ति राज्य में उत्तम अधिकारी थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

१६। आम्बुया-मुलुक,—उस समय मुलुक विभाग करके एक-एक स्थान पर यवन-राजाओं की तहसील-कचहरी थी। 'अम्बिका' (वर्धमान जिले के कालना नगर से संलग्न एक पल्ली) नामक स्थान पर एक मुलुक था। उसके अन्तर्गत जो स्थान अब 'प्यारीगञ्ज' के नाम से प्रसिद्ध है, वहीं नकुल ब्रह्मचारी रहते थे।

गौड़देशेर लोक निस्तारिते मन हैल।
नकुल-हृदये प्रभु 'आवेश' करिल॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—जब श्रीमन्महाप्रभु के मन में गौड़देश के लोगों का उद्धार करने की इच्छा हुयी तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनकुल ब्रह्मचारी के हृदय में अपना 'आवेश' प्रकाशित किया।

ग्रहग्रस्तप्राय नकुल प्रेमाविष्ट हञा।
हासे, कान्दे, नाचे गाय उन्मत्त हञा॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—जिस प्रकार कोई व्यक्ति ग्रह (भूत-पिशाच) से ग्रस्त होकर उसी की भाँति क्रियाएँ करने लगता है, ठीक उसी प्रकार श्रीनकुल ब्रह्मचारी श्रीमन्महाप्रभु का 'आवेश' हो आने के कारण प्रेमाविष्ट हो गये। वे उन्मत्त होकर कभी तो हँसने लगे, कभी रोने लगे तथा कभी नृत्य-गान करने लगे।

अश्रु, कम्प, स्तम्भ, स्वेद, सात्विक विकार।
निरन्तर प्रेमे नृत्य, सघन हुङ्कार॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—श्रीनकुल ब्रह्मचारी की देह में अश्रु, कम्प, स्तम्भ तथा स्वेद आदि अष्ट-सात्विक विकार प्रकाशित होने लगे। वे प्रेम में निमग्न होकर निरन्तर नृत्य तथा अत्यधिक उच्च हुङ्कार करने लगे।

तैछे गौरकान्ति, तैछे सदा प्रेमावेश।
ताहा देखिबारे आइसे सर्व गौड़देश॥ २० ॥

२०। प० अनु०—श्रीनकुल ब्रह्मचारी की अङ्गकान्ति भी श्रीमन्महाप्रभु की भाँति गौरवर्ण की हो गयी तथा उनमें श्रीमन्महाप्रभु की भाँति ही निरन्तर प्रेम का आवेश होने लगा, उनके दर्शन करने के लिये गौड़देश के प्राय: समस्त लोग आने लगे।

अनुभाष्य

२०। सर्वगौड़देश,—समस्त गौड़देशवासी (गौड़ीय भक्त)।

ब्रह्मचारी का उपदेश—
जारे देखे, तारे कहे,—'कह कृष्णनाम'।
ताँहार दर्शने लोक हय प्रेमोद्दाम॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—श्रीनकुल ब्रह्मचारी जिस-किसी को भी देखते, वे उसी को कहते—'कृष्णनाम का उच्चारण करो'। उनके दर्शनों से ही सभी लोग प्रेम में प्रमत्त हो उठते।

अनुभाष्य

२१। प्रेमोद्दाम,—प्रेम में प्रमत्त।

चैतन्येर आवेश हय नकुलेर देहे।
शुनि' शिवानन्द आइला करिया सन्देहे॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—श्रीनकुल ब्रह्मचारी की देह में श्रीचैतन्य देव का आवेश हुआ है, इस बात को सुनकर श्रीशिवानन्द सेन कुछ सन्देह करते हुए ही वहाँ पर आये।

शिवानन्द का संशय और परीक्षा लेने की इच्छा—
परीक्षा करिते ताँर जबे इच्छा हैल।
बाहिरे रहिया तबे विचार करिल॥ २३ ॥

शिवानन्द का विचार और दूर में अवस्थान—
''आपने बोलान मोरे, इहा यदि जानि।
आमार इष्ट-मन्त्र जानि' कहेन आपनि॥ २४ ॥
तबे जानि, इँहाते हय चैतन्य-आवेशे।''
एत चिन्ति' शिवानन्द रहिला दूरदेशे॥ २५ ॥

२३-२५। प० अनु०—जब श्रीशिवानन्द सेन के मन में श्रीनकुल ब्रह्मचारी की परीक्षा करने की इच्छा हुई, तब उन्होंने श्रीनकुल ब्रह्मचारी के घर से थोड़ी दूरी पर बैठकर विचार किया, ''यदि नकुल ब्रह्मचारी यह जान जायें कि मैं बाहर खड़ा हूँ तथा वे मुझे स्वयं ही भीतर बुलायें एवं मेरे इष्ट-मन्त्र को जानकर वे उसे मुझे बतला दें, तभी मैं मानूँगा कि उनमें श्रीचैतन्यदेव का आवेश हुआ है।'' ऐसा सोचकर श्रीशिवानन्द सेन कुछ दूरी पर ही खड़े रहे।

असंख्य लोकेर घटा,—केह आइसे जाय।
लोकेर संघट्टे केह दर्शन ना पाय॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—असंख्य लोगों की भीड़ थी, कोई आ रहा था तो कोई जा रहा था। लोगों की भीड़ के कारण किसी-किसी को तो श्रीनकुल ब्रह्मचारी के दर्शन तक भी प्राप्त नहीं हो रहे थे।

शिवानन्द को अपने निकट बुलाने हेतु लोगों को भेजना—

ब्रह्मचारी कहे,—''शिवानन्द आछे दूरे।
जन दुइ-चारि जाह, बोलाह ताहारे॥'' २७ ॥

२७। प० अनु०—श्रीनकुल ब्रह्मचारी ने अपने समीप उपस्थित लोगों को उपलक्ष्य करके कहा,—''शिवानन्द सेन कुछ दूरी पर हैं। दो-चार लोग जाकर उन्हें बुलाकर ले आओ।''

चारिदिके धाय लोके 'शिवानन्द' बलि'।
''शिवानन्द कोन् तोमाय बोलाय ब्रह्मचारी॥'' २८॥

२८। प० अनु०—लोग 'शिवानन्द' 'शिवानन्द' पुकारते हुए तेजी से चारों दिशाओं में दौड़ पड़े । वे कहने लगे —''शिवानन्द कौन हैं? आपको श्रीनकुल ब्रह्मचारी बुला रहे हैं।''

शिवानन्द का शीघ्र आना—

शुनि' शिवानन्द सेन ताँहा शीघ्र आइल।
नमस्कार करि' ताँर निकटे बसिल॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—उस ध्वनि को सुनकर श्रीशिवानन्द सेन शीघ्र ही श्रीनकुल ब्रह्मचारी के पास आ गये तथा उन्हें नमस्कार करके उनके निकट बैठ गये।

शिवानन्द के सन्देह का दूर होना—

ब्रह्मचारी बले,—''तुमि करिला संशय।
एक मना हञा ताहा शुनह निश्चय॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—श्रीनकुल ब्रह्मचारी ने कहा,—''हे शिवानन्द सेन! आपने मुझ पर संशय किया। अब आप एकाग्रचित्त होकर उसका समाधान सुनो।

'गौरगोपाल-मन्त्र' तोमार चारि-अक्षर।
अविश्वास छाड़, जेइ कैराछ अन्तर॥'' ३१ ॥

३१। प० अनु०—''आप चार अक्षर वाले 'गौरगोपाल-मन्त्र' का जप करते हैं। आपने अपने हृदय में जिस अविश्वास को पाल रखा है, अब उसे छोड़ो।''

अमृतप्रवाह भाष्य

३१। गौरगोपाल-मन्त्र,—गौरवादिगण 'गौराङ्ग'-नाम से चार अक्षर वाले गौरमन्त्र को लक्ष्य करते हैं। केवल-कृष्णवादिगण इस 'गौरगोपालमन्त्र'-शब्द से राधा-कृष्ण के चार अक्षर वाले मन्त्र को लक्ष्य करते हैं।

अनुभाष्य

३१। अन्तर—मन में।

शिवानन्द का विश्वास—

तबे शिवानन्देर मने प्रतीति हइल।
अनेक सम्मान करि' बहु भक्ति कैल॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०—तब श्रीशिवानन्द सेन के हृदय में श्रीनकुल ब्रह्मचारी के प्रति दृढ़ विश्वास हुआ तथा उन्होंने अत्यधिक सम्मान पूर्वक श्रीनकुल ब्रह्मचारी की बहुत सेवा की।

एइमत महाप्रभुर अचिन्त्य प्रभाव।
एबे शुन प्रभुर जैछे हय 'आविर्भाव'॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का ऐसा अचिन्त्य प्रभाव है। श्रीमन्महाप्रभु का 'आविर्भाव' कैसे होता है, अब उसके विषय में श्रवण करो।

प्रेम से आकृष्ट प्रभु के 'नित्य-आविर्भूत' होने के चार स्थान—

शचीर मन्दिरे, आर नित्यानन्द-नर्त्तने।
श्रीवास-कीर्त्तने, आर राघव-भवने॥ ३४ ॥
एइ चारि ठाञि, प्रभुर सदा 'आविर्भाव'।
प्रेमाकृष्ट हय—प्रभुर सहज-स्वभाव॥ ३५ ॥

३४-३५। प० अनु०—श्रीशचीमाता के घर में, श्रीनित्यानन्द प्रभु के नृत्य करने के स्थान में, श्रीवास पण्डित के घर पर कीर्त्तन के समय में तथा श्रीराघव पण्डित के भवन में—इन चारों स्थानों पर श्रीमन्महाप्रभु

का सदा 'आविर्भाव' होता है। कारण यह है कि श्रीमन्महाप्रभु का प्रेम में आकृष्ट होने का सहज-स्वभाव है।

कदाचित् 'आविर्भूत' होने का दृष्टान्त; प्रद्युम्न अथवा नृसिंह ब्रह्मचारी के वृत्तान्त का वर्णन—

नृसिंहानन्देर आगे आविर्भूत हञा।
भोजन करिला, ताहा शुन मन दिया॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनृसिंहानन्द के आगे आविर्भूत होकर किस प्रकार भोजन किया, इस प्रसङ्ग को ध्यानपूर्वक श्रवण कीजिए।

श्रीकान्त सेन की कथा; प्रभु के दर्शन हेतु उनका अकेले श्रीक्षेत्र में गमन—

शिवानन्देर भागिना श्रीकान्त-सेन नाम।
प्रभुर कृपाते तेंहो बड़ भाग्यवान्॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन के भान्जे जिनका नाम श्रीकान्त सेन था, उन पर श्रीमन्महाप्रभु की कृपा होने के कारण वे परम सौभाग्यशाली थे।

एक वत्सर तेंहो प्रथम एकेश्वर।
प्रभु देखिबारे आइला उत्कण्ठा-अन्तर॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—एक वर्ष श्रीकान्त सेन पहली बार अकेले ही हृदय में उत्कण्ठा के कारण श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये श्रीजगन्नाथपुरी गये।

अनुभाष्य

३८। एकेश्वर,—अकेले, सेवक के बिना।

उनके प्रति प्रभु की कृपा और आदेश—

महाप्रभु तारे देखि' बड़ कृपा कैला।
मास-दुइ तेंहो प्रभुर निकटे रहिला॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीकान्त सेन को आये देखकर उन पर बहुत कृपा की, वे दो महीने तक श्रीमन्महाप्रभु के पास रहे।

गौड़ीय-भक्तों को पुरी आने हेतु निषेध-आज्ञा—

तबे प्रभु ताँरे आज्ञा कैला गौड़े जाइते।
भक्तगणे निषेधिला इहाँके आसिते॥ ४० ॥

पौषमास में स्वयं के गौड़ में जाने को अङ्गीकार करना—

''ए-वत्सर ताँहा आमि जाइमु आपने।
ताँहाइ मिलिमु सब अद्वैतादि सने॥ ४१ ॥

४०-४१। प० अनु०—दो महीने के बाद श्रीचैतन्य महाप्रभु ने श्रीकान्त सेन को गौड़देश में जाने का आदेश दिया तथा उन्होंने श्रीकान्त के माध्यम से गौड़देश के भक्तों को इस वर्ष श्रीजगन्नाथपुरी आने के लिये निषेध करते हुए कहा—''इस वर्ष मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा, मैं वहीं पर ही अद्वैत आदि समस्त भक्तों से मिलूँगा।

अनुभाष्य

४०। इँहाके,—इस स्थान पर,श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र में।

अनुभाष्य

४१। ताँहा, (वहाँ पर)—गौड़देश में।

शिवानन्दे कहिह,—आमि एइ पौष-मासे।
आचम्बिते अवश्य आमि जाइमु ताँर पाशे॥ ४२ ॥
जगदानन्द हय ताँहा, तेंहो भिक्षा दिबे।
सबारे कहिह,—ए वत्सर केह ना आसिबे॥'' ४३॥

४२-४३। प० अनु०—''हे श्रीकान्त! शिवानन्द सेन से कहना कि मैं इस पौष-मास में अवश्य अचानक ही उनके पास जाऊँगा। जगदानन्द पण्डित वहीं पर हैं, वे मेरे लिये भोजन की व्यवस्था कर देंगे। तुम सभी से कहना कि इस वर्ष यहाँ कोई भी नहीं आये।''

गौड़देश में आकर श्रीकान्त के द्वारा प्रभु की आज्ञा के विषय में बतलाना, भक्तों का आनन्दपूर्वक गौड़ में ही रहना—

श्रीकान्त आसिया गौड़े सन्देश कहिल।
शुनि' भक्तगण-मने आनन्द हइल॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—श्रीकान्त ने गौड़देश में आकर सभी भक्तों को श्रीमन्महाप्रभु का सन्देश सुनाया।

श्रीमन्महाप्रभु के सन्देश को सुनकर भक्तों का मन आनन्दित हो गया।

अमृतप्रवाह भाष्य

४४। सन्देश,—संवाद।

अनुभाष्य

४४। सन्देश,—अगले पौषमास में श्रीमन्महाप्रभु के गौड़देश में आगमन की वार्त्ता।

शिवानन्द और जगदानन्द के द्वारा प्रतिदिन प्रभु की प्रतीक्षा—

चलितेछिला आचार्य रहिला स्थिर हञा।
शिवानन्द, जगदानन्द रहे प्रत्याशा करिया॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—यद्यपि श्रीअद्वैताचार्य श्रीजगन्नाथ पुरी जाने के लिये प्रस्तुत हो ही रहे थे कि वे श्रीमन्महाप्रभु के सन्देश को सुनकर रुक गये। श्रीशिवानन्द सेन तथा श्रीजगदानन्द पण्डित प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों की आशा कर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे।

अनुभाष्य

४५। आचार्य,—श्रीअद्वैतप्रभु।

पौष-मास आइल, दुँहे सामग्री करिया।
सन्ध्या-पर्यन्त रहे अपेक्षा करिया॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—पौष मास आ गया। श्रीशिवानन्द सेन और श्रीजगदानन्द पण्डित—ये दोनों नित्यप्रति श्रीमन्महाप्रभु के लिये भोजन-सामग्री प्रस्तुत करके सन्ध्या तक उनकी प्रतीक्षा करते थे।

प्रभु के नहीं आने के कारण दोनों का दुःख—

एइमत मास गेल, गोसाञि ना आइला।
जगदानन्द, शिवानन्द दुःखित हइला॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—इस प्रकार एक-एक दिन करके प्रायः पूरा पौष-मास समाप्त होने को आया, किन्तु श्रीचैतन्य गोसाञि नहीं आये। श्रीजगदानन्द पण्डित तथा श्रीशिवानन्द सेन बहुत दुःखी हुए।

अनुभाष्य

४७। गोसाञि,—महाप्रभु।

प्रद्युम्न ब्रह्मचारी का आगमन तथा दुःख के कारण की जिज्ञासा—

आचम्बिते नृसिंहानन्द ताँहाइ आइला।
दुँहे ताँरे मिलि तबे स्थाने बसाइला॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—अचानक ही श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी जो श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के नाम से भी जाने जाते थे, वे श्रीशिवानन्द सेन के घर पर आ गये। श्रीशिवानन्द सेन तथा श्रीजगदानन्द पण्डित उनसे मिले एवं फिर उन्हें एक आसन पर बैठाया।

दुँहे दुःखी देखि' ताँरे कहे नृसिंहानन्द।
''तोमा दुँहाकारे केने देखि निरानन्द??'' ४९ ॥

४९। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन और श्रीजगदानन्द पण्डित—इन दोनों को दुःखी देखकर श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने कहा—''आप दोनों मुझे दुःखी दुःखी क्यों लग रहे हो?''

शिवानन्द के द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाना—

तबे शिवानन्द ताँरे सकल कहिला।
''आसिब आज्ञा दिया प्रभु केने ना आइला??''५०॥

५०। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी को सारा वृत्तान्त सुनाने के पश्चात् कहा—''न जाने क्यों, आने का सन्देश देकर भी श्रीमन्महाप्रभु आये नहीं?''

प्रद्युम्न के द्वारा आश्वासन तथा प्रबोध-प्रदान—

शुनि' ब्रह्मचारि कहे,—''करह सन्तोषे।
आमि त' आनिब ताँरे तृतीय दिवसे॥'' ५१॥

५१। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन की बात सुनकर श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने कहा,—''आप थोड़ा धैर्य धारण कीजिए। मैं श्रीमन्महाप्रभु को आज से तीसरे दिन ही यहाँ ले आऊँगा।''

शिवानन्द और जगदानन्द, दोनों को विश्वास–

ताँहार प्रभाव-प्रेम जाने दुइजने।
आनिबे प्रभुरे एबे, निश्चय कैला मने॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन तथा श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के श्रीमन्महाप्रभु के प्रति प्रभावशाली प्रेम के विषय में भली-भाँति जानते थे, अब उनके मन में यह निश्चय अर्थात् दृढ़ विश्वास हो गया कि ये श्रीमन्महाप्रभु को अवश्य ही यहाँ ले आयेंगे।

'नृसिंहानन्द' नाम की प्राप्ति का कारण–

'प्रद्युम्न ब्रह्मचारी'—ताँर निज-नाम।
'नृसिंहानन्द' नाम ताँर कैला गौरधाम॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी का स्वयं का नाम तो 'प्रद्युम्न ब्रह्मचारी' था, किन्तु श्रीगौरहरि ने भङ्गीपूर्वक उनका 'नृसिंहानन्द' नाम कर दिया।

प्रभु को प्रकटित करने में प्रद्युम्न ब्रह्मचारी की प्रतिज्ञा और भोग रन्धन करने का प्रयास–

दुइदिन ध्यान करि' शिवानन्देरे कहिल।
''पाणिहाटि-ग्रामे आमि प्रभुरे आनिल॥ ५४ ॥
कालि मध्याह्ने तेंहो आसिबेन तोमार घरे।
पाक सामग्री आनह, आमि भिक्षा दिमु ताँरे॥ ५५ ॥
तबे ताँरे एथा आमि आनिब सत्वर।
निश्चय कहिलाङ, किछु सन्देह ना कर॥ ५६ ॥

५४-५६। प० अनु०—श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने दो दिन तक ध्यान करने के बाद श्रीशिवानन्द सेन से कहा—''मैं श्रीमन्महाप्रभु को पाणिहाटि-ग्राम तक ले आया हूँ। कल दोपहर तक वे आपके घर पर आ जायेंगे। आप रसोई बनाने की समस्त सामग्री लाकर मुझे दो, तभी मैं उन्हें शीघ्र यहाँ पर लेकर आ पाऊँगा और स्वयं उन्हें भोजन कराऊँगा। मैं यह बात दृढ़ करके ही कह रहा हूँ, मेरी बात में बिल्कुल भी सन्देह मत करना।

जे चाहिये, ताहा कर हञा तत्पर।
अति त्वराय करिब पाक, शुन अतःपर॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—''मैं जो कुछ भी चाहता हूँ, आप तत्पर होकर उसे ला दो। सुनो, अब मैं बहुत शीघ्रतापूर्वक रन्धन कार्य करूँगा।

पाक-सामग्री आनह, आमि जाहा चाइ।''
जे मागिल, शिवानन्द आनि' दिला ताइ॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—''मैं जो रन्धन की सामग्री चाहता हूँ, आप उसे ला दो।'' श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने जो कुछ माँगा, श्रीशिवानन्द सेन ने लाकर दे दिया।

प्रद्युम्न का रन्धन एवं प्रभु, जगन्नाथ और अपने इष्टदेव नृसिंह–सभी के लिये तीन अलग-अलग नैवेद्य-भोग सजाना–

प्रातःकाल हैते पाक करिला अपार।
नाना सूप, व्यञ्जन, पिठा, क्षीर-उपहार॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने प्रातःकाल से लगकर बहुत-सा रन्धन किया। उन्होंने अनेक प्रकार की रसे वाली सब्जियाँ, व्यञ्जन, पीठा-पाना तथा दूध से बनी वस्तुएँ बनायी।

जगन्नाथेर भिन्न भोग पृथक् बाड़िला।
चैतन्य प्रभुर लागि' आर भोग कैला॥ ६० ॥
इष्टदेव नृसिंह लागि' पृथक् बाड़िला।
तिनजने समर्पिया बाहिरे ध्यान कैला॥ ६१ ॥

६०-६१। प० अनु०—श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने श्रीजगन्नाथ देव के उद्देश्य से बनाये गये अलग भोग को पृथक करके सजाया तथा उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभु के उद्देश्य से बनाये गये भोग को अलग से सजाया। पुनः अपने इष्टदेव श्रीनृसिंहदेव के उद्देश्य से बनाये गये भोग को भी अलग से सजाया तथा तीनों को उनका-उनका भोग निवेदन करके बाहर बैठकर ध्यान करने लगे।

ब्रह्मचारी के ध्यान में 'आविर्भूत' प्रभु के द्वारा तीनों नैवेद्यों का भक्षण–

देखे, शीघ्र आसि' बसिला चैतन्य-गोसाञि।
तिन भोग खाइला, किछु अवशिष्ट नाइ॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने देखा कि श्रीचैतन्य गोसाञि बहुत शीघ्र आकर बैठ गये तथा वे अकेले ही तीनों भोग खा गये, कुछ भी अवशिष्ट नहीं छोड़ा।

ऐसा देखकर प्रद्युम्न के हृदय में आनन्द, बाहर में दु:ख का आभास—

आनन्दे विह्वल प्रद्युम्न, पड़े अश्रुधार।
''हाहा किबा कर'' बलि' करये फुत्कार॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—यद्यपि श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी आनन्द से भाव-विभोर हो रहे थे तथा उनके नेत्रों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी तथापि वे जोर-जोर से चिल्लाते हुए कह रहे थे—''हाय! हाय! (महाप्रभु!) यह क्या कर रहे हो?''

प्रभु के प्रति प्रद्युम्न का आरोप; अपने इष्टदेव नृसिंह के प्रति निष्ठा—

''जगन्नाथे तोमाय ऐक्य, खाओ ताँर भोग।
नृसिंहेर भोग केने कर उपयोग?? ६४ ॥

६४। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप और जगन्नाथ तो एक ही हैं, आप यदि उनका भोग खा भी लेते हैं, तो कोई बात नहीं, किन्तु आप श्रीनृसिंह भगवान् का भोग क्यों ग्रहण कर रहे हो?

नृसिंहेर हैल जानि आजि उपवास।
ठाकुर उपवासी रहे, जिये कैछे दास??'' ६५ ॥

६५। प० अनु०—''हे भगवान्, आज तो श्रीनृसिंहदेव का उपवास हो गया। यदि ठाकुरजी ही उपवासी रहेंगे, तब फिर दास किस प्रकार से जीवित रहेगा?''

भोजन देखि' यद्यपि ताँर हृदये उल्लास।
नृसिंह लक्ष्य करि' बाह्ये किछु करे दु:खाभास।।६६॥

६६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को समस्त भोग खाते देखकर यद्यपि श्रीनृसिंहानन्द के हृदय में उल्लास हो रहा था, किन्तु श्रीनृसिंहदेव को उपलक्ष्य करके वे बाहर से कुछ दु:ख का आभास प्रकाशित कर रहे थे।

प्रभु के द्वारा तीनों पात्रों के भोजन की लीला के माध्यम से प्रद्युम्न को समस्त विष्णु तत्त्वों के साथ अपने अभेद अथवा एक समान होने का प्रदर्शन—

स्वयं भगवान् कृष्णचैतन्य-गोसाञि।
जगन्नाथ-नृसिंह-सह किछु भेद नाइ॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—श्रीकृष्णचैतन्य गोसाञि स्वयं भगवान् हैं तथा श्रीजगन्नाथदेव एवं श्रीनृसिंहदेव के साथ उनका कोई भेद नहीं है।

इहा जानिवारे प्रद्युम्नेर गूढ़ हैत मन।
ताहा देखाइला प्रभु करिया भोजन॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—इसी उपरोक्त सिद्धान्त को भली-भाँति जानने के लिये श्रीप्रद्युम्न (नृसिंहानन्द) ब्रह्मचारी के मन में प्रबल इच्छा जागृत होती थी, श्रीचैतन्य महाप्रभु ने श्रीनृसिंहदेव तथा श्रीजगन्नाथदेव के उद्देश्य से निवेदित भोजन को ग्रहण करके इसी सिद्धान्त को स्थापित किया।

भोजन के अन्त में प्रभु का पाणिहाटि स्थित राघव-भवन में नित्य-अवस्थान हेतु गमन—

भोजन करिया प्रभु गेला पाणिहाटि।
सन्तोष पाइला देखि' व्यञ्जन-परिपाटी॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—भोजन करने के उपरान्त श्रीचैतन्य महाप्रभु पाणिहाटी चले गये। श्रीमन्महाप्रभु श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी द्वारा प्रस्तुत की गयी व्यञ्जन की परिपाटी को देखकर अत्यधिक सन्तुष्ट हुए।

शिवानन्द के द्वारा ब्रह्मचारी के दु:खी होने के कारण की जिज्ञासा और ब्रह्मचारी के द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त का वर्णन—

शिवानन्द कहे,—''केने करह फुत्कार?''
ब्रह्मचारी कहे,—''देख, प्रभुर व्यवहार॥ ७० ॥
तिन जनार भोग तेंहो एकेला खाइला।
जगन्नाथ-नृसिंह उपवासी हइला॥'' ७१ ॥

७०-७१। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी से कहा,—''आप किसलिए उच्च स्वर से चिल्ला रहे हैं?'' श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया,—''श्रीमन्महाप्रभु के व्यवहार को देखो, उन्होंने तीन लोगों के भोग को अकेले ही खा लिया है। इसी कारण श्रीजगन्नाथदेव तथा श्रीनृसिंहदेव उपवासी रह गये।''

शिवानन्द का सन्देह—

शुनि' शिवानन्देर चित्ते हइल संशय।
किबा प्रेमावेशे कहे, किबा सत्य हय॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी की बात सुनकर श्रीशिवानन्द सेन के चित्त में संशय उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे कि पता नहीं श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी यह बात प्रेम के आवेश में कह रहे हैं या फिर यह बात सत्य है।

शिवानन्द को श्रीनृसिंह के भोग को प्रस्तुत करने हेतु सामग्री लाने का आदेश—

तबे शिवानन्दे किछु कहे ब्रह्मचारी।
''सामग्री आनह नृसिंहेर, पुनः पाक करि॥'' ७३॥

७३। प० अनु०—तब श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने श्रीशिवानन्द सेन से कहा—''आप श्रीनृसिंहदेव के लिये फिर से भोग-सामग्री लाकर दीजिये, मैं पुनः रन्धन करूँगा।''

नृसिंह को पुनः भोग समर्पण—

तबे शिवानन्द भोग-सामग्री आनिला।
पाक करि' नृसिंहेर भोग लागाइला॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—तब श्रीशिवानन्द सेन पुनः भोग-सामग्री लेकर आये तथा श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी ने रन्धन करके श्रीनृसिंहदेव को भोग लगाया।

अगली वर्षाऋतु के समय गौड़ीय-भक्तों का पुरी में गमन—

वर्षान्तरे शिवानन्द लञा भक्तगण।
नीलाचले देखे जाइया प्रभुर चरण॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—एक वर्ष के पश्चात् श्रीशिवानन्द सेन भक्तों को साथ लेकर नीलाचल श्रीजगन्नाथपुरी में गये तथा वहाँ जाकर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों का दर्शन किया।

एकदिन प्रभु के द्वारा नृसिंहानन्द के पूर्वोक्त भोजन के वृत्तान्त का वर्णन—

एकदिन सभाते प्रभु बात चालाइला।
नृसिंहानन्देर गुण कहिते लागिला॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—एकदिन सभा में श्रीमन्महाप्रभु बात-ही-बात में प्रसङ्ग उठाकर श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के गुणों का वर्णन करने लगे।

अनुभाष्य

७६। बात चालाइला,—उस प्रसङ्ग को उठाया।

''गतवर्ष पौषे मोरे कराइल भोजन।
कभु नाहि खाइ ऐछे मिष्ठान्न-व्यञ्जन॥'' ७७ ॥

७७। प० अनु०—श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी के गुणों का गान करते समय श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—''पिछले वर्ष पौष मास में नृसिंहानन्द ने मुझे भोजन कराया था, मैंने वैसे मिष्ठान्न-व्यञ्जन पहले कभी नहीं खाये थे।''

प्रभु के वचनों के द्वारा शिवानन्द के पूर्व सन्देह का दूर होना—

शुनि' भक्तगण मने आश्चर्य मानिल।
शिवानन्देर मने तबे प्रत्यय जन्मिल॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर समस्त भक्तों को अत्यधिक आश्चर्य हुआ, तथा श्रीशिवानन्द सेन के मन में दृढ़ विश्वास उत्पन्न हुआ।

चार स्थानों पर प्रभु का 'नित्य-आविर्भाव'—

एइमत शचीगृहे सतत भोजन।
श्रीवासेर गृहे करेन कीर्त्तन-दर्शन॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु श्रीशची माता के घर में सतत भोजन करते तथा श्रीवास पण्डित के घर में कीर्त्तन का दर्शन करते।

नित्यानन्देर नृत्य देखेन आसि' बारे बारे।
'निरन्तर आविर्भाव' राघवेर घरे॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु बार-बार आकर श्रीनित्यानन्द प्रभु के नृत्य को देखते तथा श्रीराघव पण्डित के घर पर भी 'निरन्तर आविर्भूत' होते।

भक्तों के प्रेम के वशीभूत गौरसुन्दर—
प्रेमवश गौरप्रभु, जाँहा प्रेमोत्तम।
प्रेमवश हञा ताँहा देन दरशन॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—श्रीगौरसुन्दर प्रेम के वशीभूत हैं। वे जहाँ कहीं पर भी उत्तम प्रेम को देखते हैं, वहीं पर ही प्रेम के वशीभूत होकर दर्शन देते हैं।

शिवानन्द का अनिर्वचनीय गौरप्रेम—
शिवानन्देर प्रेमसीमा के कहिते पारे?
जाँर प्रेमे वश प्रभु आइसे बारे बारे॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन के प्रेम की महिमा का कौन वर्णन कर सकता है? जिनके प्रेम के वशीभूत होकर श्रीमन्महाप्रभु पुनः पुनः उनके निकट आते हैं।

गौर के 'आविर्भाव' के श्रवण से कृष्ण-चैतन्य की महिमा की जानकारी—
एइ त' कहिलुँ गौरेर 'आविर्भाव'।
इहा जेइ शुने, जाने चैतन्य-प्रभाव॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीगौरसुन्दर के चार स्थानों पर नित्य 'आविर्भाव' तथा अन्य स्थानों पर उनके कदाचित् 'आविर्भाव' के विषय में वर्णन किया। इसे जो कोई भी श्रवण करता है, वह श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रभाव अर्थात् उनकी महिमा को जान जाता है।

अन्य प्रसङ्ग-वर्णन, भगवान् आचार्य के वृत्तान्त का वर्णन—
पुरुषोत्तमे प्रभु-पाशे भगवान्-आचार्य।
परम वैष्णव तेंहो सुपण्डित आर्य॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०—पुरुषोत्तम धाम में श्रीमन्महाप्रभु के निकट भगवान् आचार्य नामक एक परम वैष्णव रहते थे, वे बहुत अच्छे पण्डित तथा आर्य अर्थात् सरल व्यक्ति थे।

अनुभाष्य

८४। भगवान् आचार्य—आदि लीला के दशम परिच्छेद की १३६ वीं संख्या द्रष्टव्य।

सख्यभावाक्रान्त-चित्त, गोप-अवतार।
स्वरूप-गोसाञि-सह सख्य-व्यवहार॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—व्रजलीला के किसी गोप सखा के अवतार होने के कारण श्रीभगवान् आचार्य का चित्त सख्य भाव से विभावित था। श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ भी उनका सख्य व्यवहार था।

बीच-बीच में अपने घर पर रन्धन करके एकमात्र प्रभु को ही भोजन कराना—
एकान्तभावे आश्रियाछेन चैतन्यचरण।
मध्ये मध्ये प्रभुर तेंहो करेन निमन्त्रण॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य ने एकान्तिक भाव से श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरण कमलों का आश्रय किया हुआ था। बीच-बीच में वे श्रीचैतन्य महाप्रभु को निमन्त्रण भी किया करते थे।

घरे भात करि' करेन विविध व्यञ्जन।
एकले गोसाञि लञा करान भोजन॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य अपने घर में अन्न आदि रन्धन करके विविध व्यञ्जन बनाते थे तथा वे श्रीचैतन्य गोसाञि को अकेले ले जाकर केवल उन को ही भोजन कराते थे।

अनुभाष्य

८७। घरे भात करि' (घर पर ही भोजन बनाकर)—

श्रीजगन्नाथदेव के प्रसाद को मँगवाकर उसके द्वारा अपने परिवार के सदस्यों, भिक्षुकों तथा निमन्त्रित व्यक्तियों की तृप्ति के स्थान पर उन्हें घर पर भोजन करवाने हेतु चावल इत्यादि के रन्धन अर्थात् साधारण द्रव्य आदि के पाक करने को 'घर में बनाया गया भात' कहते हैं। उड़ीसा में 'आमानी' एवं 'प्रसादी' नामक दो शब्दों का उपयोग किया जाता है; श्रीजगन्नाथदेव के उद्देश्य से बनाये गये नैवेद्यभोग के समर्पित होने पर वह 'प्रसाद' एवं साधारण वस्तुओं का रन्धन करने पर वह 'आमानी' अर्थात् जगन्नाथदेव का 'उच्छिष्ट नहीं' है, ऐसा जाना जाता है।

भगवान् आचार्य एवं उनके पिता और अनुज (छोटे भाई) का चरित्र–

ताँर पिता 'विषयी' बड़ शतानन्द-खाँन।
'विषयविमुख' आचार्य—'वैराग्य-प्रधान'॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य के पिता शतानन्द खाँन बहुत ही अधिक 'विषयी' अर्थात् धनवान् थे, किन्तु, श्रीभगवान् आचार्य विषयों से सम्पूर्ण रूप में विमुख तथा वैराग्यपूर्ण जीवन से युक्त थे।

'गोपाल-भट्टाचार्य' नाम, ताँर छोट-भाइ।
काशीते 'वेदान्त' पड़ि' गेला आचार्य-ठाञि॥ ८९॥

८९। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य का गोपाल भट्टाचार्य नामक एक छोटा भाई था, वह काशी में वेदान्त पढ़ने के उपरान्त श्रीभगवान् आचार्य के निकट श्रीजगन्नाथ पुरी में आया।

अनुभाष्य

८९। वेदान्त,—यहाँ पर वेदान्त का अर्थ शारीरिक सूत्र का शङ्कराचार्य-कृत निर्विशेष ब्रह्मपरक भाष्य है। आचार्य,—ज्येष्ठभ्राता भगवान् आचार्य।

आचार्य ताहारे प्रभुपदे मिलाइला।
अन्तर्यामी प्रभु, चित्ते सुख ना पाइला॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य ने अपने छोटे भाई गोपाल भट्टाचार्य को श्रीमन्महाप्रभु से मिलवाया। श्रीमन्महाप्रभु अन्तर्यामी हैं, इसलिए गोपाल भट्टाचार्य से मिलकर उनके चित्त में आनन्द नहीं हुआ।

शुद्ध कृष्ण भजन से ही गौर-प्रीति, अभक्त की भक्ति विरोधी विद्धा-चेष्टा से प्रभु द्वारा उनका अनादर–

आचार्य-सम्बन्धे बाह्ये करे प्रीत्याभास।
कृष्णभक्ति बिना प्रभुर ना हय उल्लास॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीभगवान् आचार्य के भाई होने के कारण उनके प्रति बाहर में प्रीति का आभास प्रकाशित किया, किन्तु वास्तव में जब तक किसी के हृदय में श्रीकृष्ण की भक्ति न हो, तब तक श्रीमन्महाप्रभु को उल्लास की प्राप्ति नहीं होती।

एकदिन आचार्य के द्वारा अपने छोटे भाई के मुख से स्वरूप को शाङ्कर मायावाद-भाष्य के श्रवण हेतु अनुरोध–

स्वरूप गोसाञिरे आचार्य कहे आर दिने।
''वेदान्त पड़िया गोपाल आइसाछे एखाने॥ ९२ ॥
सबे मेलि' आइस, शुनि 'भाष्य' इहार स्थाने।''
प्रेम-क्रोध करि' स्वरूप बलय वचने॥ ९३ ॥

९२-९३। प० अनु०—एकदिन श्रीभगवान् आचार्य ने श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी से कहा—''मेरा भाई गोपाल काशी से वेदान्त पढ़कर यहाँ श्रीजगन्नाथ पुरी में आया है। आप सभी एकत्रित होकर आ जाओ और हम सभी मिलकर उससे वेदान्त के भाष्य का श्रवण करेंगे।'' श्रीभगवान् आचार्य के वचन सुनकर श्रीस्वरूप दामोदर ने प्रेमपूर्वक क्रोध करते हुए कहा—।

स्वरूप के द्वारा तिरस्कार –

''बुद्धि भ्रष्ट हैल तोमार गोपालेर सङ्गे।
मायावाद शुनिवारे उपजिल रङ्गे॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—''हे भगवान् आचार्य! प्रतीत होता है कि गोपाल का सङ्ग करने से तुम्हारी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी है, इसी कारण तुम में आनन्दपूर्वक मायावाद सुनने की अभिलाषा जाग उठी है।

समस्त वैष्णवों के गुरु श्रीदामोदर-स्वरूप के द्वारा मायावाद के दोष का वर्णन और उसकी निन्दा; शङ्कर के मायावाद-भाष्य के प्रति शुद्ध-विष्णु-भजन करने के इच्छुक व्यक्ति के व्यवहार की विधि—

वैष्णव हञा जेबा शारीरक-भाष्य शुने।
सेव्य-सेवक-भाव छाड़ि' आपनारे 'ईश्वर' माने॥

९५। प० अनु०—''वैष्णव होकर भी जो वेदान्त के शारीरक-भाष्य का श्रवण करता है, वह सेव्य और सेवक के भाव को छोड़कर स्वयं को ही 'ईश्वर' मानने लगता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९५। शारीरक-भाष्य,—श्रीमत् शङ्कराचार्य कृत वेदान्त सूत्र का भाष्य।

अनुभाष्य

९५। केवलाद्वैतवादी शङ्कर ने कल्पना का आश्रय लेकर शारीरक-ब्रह्म-सूत्र-भाष्य में 'मायावाद' अथवा 'विद्ध केवलाद्वैतवाद' की स्थापना की है; किन्तु ब्रह्मसूत्र के श्री-सम्प्रदायी श्रीरामानुज-रचित श्रीभाष्य में 'विशिष्टाद्वैतवाद', ब्रह्म-सम्प्रदायी श्रीमध्व-रचित पूर्णप्रज्ञ भाष्य में 'शुद्ध-द्वैत-वाद', चतुःसन-सम्प्रदायी श्रीनिम्बार्ककृत पारिजात-सौरभ भाष्य में 'द्वैताद्वैतवाद' एवं रुद्र सम्प्रदायी श्रीविष्णु स्वामि-रचित सर्वज्ञ-भाष्य में 'शुद्धाद्वैतवाद' के वेदान्त-तात्पर्य के नाम से प्रचलित होने के कारण एवं उनमें सेव्य-सेवक भाव के विद्यमान रहने के कारण उपरोक्त चार—भगवान् विष्णु के भक्तों के लिये पठनीय एवं उनमें विद्यमान तत्त्वसमूह—सत्-सम्प्रदाय में अर्थात् वैष्णवों में चिरकाल से अथवा सदा के लिये अत्यन्त आदरणीय हैं। आदि-लीला के सप्तम परिच्छेद की १०१ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य है। ब्रह्मसूत्र अथवा वेदान्त की व्याख्या में विद्ध-केवलाद्वैतवाद अथवा निर्विशेष ब्रह्म-मत-स्थापन हेतु प्रयास करने पर, वह पूर्णतया शुद्ध-भक्ति-विरुद्ध कुमतवाद मात्र है।

मायावाद रूपी विष की तीव्रता का वर्णन और श्रवण से पतन की आशङ्का—

महाभागवत जेइ, कृष्ण प्राणधन जाँर।
मायावाद-श्रवणे चित्त अवश्य फिरे ताँर॥'' ९६॥

९६। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९६। जिनके प्राणधन—कृष्ण हैं, ऐसे जो महाभागवत हैं, वे भी यदि मायावाद से परिपूर्ण शारीरक भाष्य को श्रवण करें, तब उनका भी चित्त अवनत (भ्रष्ट) होकर भक्ति से च्युत हो जाता है।

आचार्य के द्वारा अपनी कृष्ण-निष्ठा की प्रशंसा—

आचार्य कहे,—''आमा-सबार कृष्णनिष्ठ-चित्ते।
आमा-सबार मन भाष्य नारे फिराइते॥'' ९७॥

९७। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य ने कहा,—''हम सबका चित्त तो कृष्ण के प्रति निष्ठा से युक्त है, इसलिए मायावादी भाष्य हम सबके मन को विचलित नहीं कर सकता।''

स्वरूप के द्वारा शुद्ध भक्तों के हृदय के विदारक (टुकड़े-टुकड़े करने वाले) मायावाद के अर्थ का निरूपण—

स्वरूप कहे,—''तथापि मायावाद-श्रवणे।
'चित् ब्रह्म, माया मिथ्या'—एइमात्र शुने॥ ९८॥
जीवज्ञान—कल्पित, ईश्वरे—सकल अज्ञान।
जाहार श्रवणे भक्तेर, फाटे मन-प्राण॥ ९९॥

९८-९९। प० अनु०— अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९८-९९। [श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा—''] यद्यपि तुम्हारा चित्त कृष्ण-निष्ठ होने के कारण शाङ्कर-भाष्य आदि सुनकर विकृत नहीं होता, तथापि उस मायावाद में, 'ब्रह्म—चित्स्वरूप निराकार'; 'यह जगत्—मायामात्र अथवा मिथ्या', 'जीव वास्तव में नहीं है,—वह केवल

अज्ञान-कल्पित है', एवं 'ईश्वर में माया-मुग्धतारूप अज्ञान ही विद्यमान है' इत्यादि विचार हैं। इन सब बातों को सुनने से भक्तों को अत्यन्त दु:ख होता है [उनके मन तथा प्राण फटने लगते हैं'']।

अनुभाष्य

९८-९९। आदि लीला के पञ्चम परिच्छेद की ५८ वीं संख्या एवं सप्तम परिच्छेद की ११३ वीं तथा १२१-१२६ तक की संख्या द्रष्टव्य है।

आचार्य को स्वरूप के वचनों की उपलब्धि एवं अनुज को अपने गाँव में भेजना—

लज्जा-भय पाञा आचार्य मौन हइला।
आर दिन गोपालेरे देशे पाठाइला॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर के वचन सुनकर श्रीभगवान् आचार्य बहुत लज्जित हुए तथा भय के कारण वे मौन हो गये एवं उन्होंने अगले दिन ही अपने भाई गोपाल को अपने ग्राम में भेज दिया।

अन्य एकदिन छोटे-हरिदास को प्रभु के भोजन के उद्देश्य से माधवी देवी के निकट तण्डुल लाने हेतु भेजना—

एकदिन आचार्य प्रभुरे कैला निमन्त्रण।
घरे भात करि' करे विविध व्यञ्जन॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—एकदिन श्रीभगवान् आचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण किया तथा घर पर ही अन्न एवं विविध व्यञ्जन रन्धन करने का विचार किया।

'छोट-हरिदास' नाम प्रभुर कीर्त्तनीया।
ताहारे कहेन डाकि' आपने आनिया॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु के 'छोटा-हरिदास' नामक कीर्त्तनीया को स्वयं बुलाकर उनसे कहा—।

''मोर नामे शिखि-माहितिर भगिनी-स्थाने गिया।
शुक्ल चाउल एक-मान आनह मागिया॥'' १०३ ॥

१०३। प० अनु०—''तुम शिखि-माहिति की बहन माधवी देवी के घर पर जाकर मेरा नाम लेकर उनसे एक मान (चार सेर) शुक्ल चावल माँग कर ले आओ।''

अनुभाष्य

१०३। पाठान्तर में, 'अरोया चाउल'—'अरोया'-नामक शालि धान के चावल; मान—उड़ीसा में प्रचलित वजन का माप।

महाभागवत माधवी-देवी का परिचय—

माहितिर भगिनीर नाम—माधवी-देवी।
वृद्धा तपस्विनी आर परमा-वैष्णवी॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—श्रीशिखि माहिति की बहन का नाम माधवी देवी था। वे वृद्ध, तपस्विनी तथा परम-वैष्णवी थी।

प्रभु के समस्त भक्तों में से केवल साढ़े तीन जन ही श्रीमती के गण—

प्रभु लेखा करे जाँरे—राधिकार 'गण'।
जगतेर मध्ये 'पात्र'—साड़े तिन जन॥ १०५ ॥
स्वरूप-गोसाञि, आर राय-रामानन्द।
शिखि-माहिति—तिन, ताँर भगिनी—अर्द्धजन॥१०६॥

१०५-१०६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु इस जगत् में केवल साढ़े तीन व्यक्तियों को ही श्रीमती राधिका का 'गण' कहकर गिनते थे। श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरामानन्द राय, श्रीशिखि माहिति—ये तीन जन तथा श्रीशिखि माहिति की बहन श्रीमाधवी देवी को आधा गिनकर कुल साढ़े तीन व्यक्ति होते हैं।

माधवी से हरिदास द्वारा सूक्ष्म (पतले, बारीक) तण्डुल का लाना तथा आचार्य के द्वारा रन्धन—

ताँर ठाञि तण्डुल मागि' आनिल हरिदास।
तण्डुल देखि' आचार्येर अधिक उल्लास॥ १०७ ॥

१०७। प० अनु०—छोटा-हरिदास श्रीमाधवी देवी से तण्डुल माँगकर ले आये। तण्डुल को देखकर

श्रीभगवान् आचार्य को बहुत अधिक उल्लास अर्थात् आनन्द प्राप्त हुआ।

स्नेहे रान्धिल प्रभुर प्रिय जे व्यञ्जन।
देउल-प्रसाद, आदा-चाकि, लेम्बु-सलवण॥१०८॥

१०८। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य ने अत्यधिक प्रीतिपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु को प्रिय लगने वाले व्यञ्जनों का रन्धन किया। उन्होंने श्रीजगन्नाथदेव का प्रसाद, अदरक के टुकड़े, नमक तथा नींबू आदि भी एकत्रित करके रखे।

अनुभाष्य

१०८। देउल प्रसाद,—देवालय (मन्दिर) का प्रसाद अर्थात् श्रीजगन्नाथ मन्दिर से लाया गया महाप्रसाद।

प्रभु के द्वारा भोजन और सूक्ष्म तण्डुल को प्राप्त करने के कारण की जिज्ञासा—

मध्याह्ने आसिया प्रभु भोजने बसिला।
शाल्यन्न देखि' प्रभु आचार्ये पुछिला॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—मध्याह्न के समय श्रीमन्महाप्रभु आकर भोजन के लिये बैठे तथा सफेद छोटे-पतले चावलों को देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीभगवान् आचार्य से पूछा—।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०९। शाल्यन्न,—सफेद छोटे-पतले चावल।

''उत्तम अन्न एत तण्डुल काँहाते पाइला?''
आचार्य कहे,—''माधवी-पाश मागिया आनिला॥''

११०। प० अनु०—''हे भगवान् आचार्य! यह चावल तो उत्तम प्रतीत होते हैं, इतने चावल तुम्हें कहाँ से मिले हैं?'' श्रीभगवान् आचार्य ने उत्तर दिया— ''माधवी देवी के पास जाकर माँगकर ले आये हैं।''

आचार्य के द्वारा माधवी और छोटे-हरिदास के नाम का उल्लेख—

प्रभु कहे,—''कोन् जाइ' मागिया आनिल?''
छोट-हरिदासेर नाम आचार्य कहिल॥ १११ ॥

१११। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा,—''कौन जाकर माँगकर ले आया है?'' श्रीभगवान् आचार्य ने कहा—''छोटा-हरिदास लेकर आया है।''

भोजन के अन्त में प्रभु के द्वारा गोविन्द को छोटे-हरिदास के लिये अपने घर में प्रवेश हेतु निषेध-आज्ञा—

अन्न-प्रशंसिया प्रभु भोजन करिला।
निजगृहे आसि' गोविन्देरे आज्ञा दिला॥ ११२ ॥
''आजि हैते एइ मोर आज्ञा पालिबा।
छोट-हरिदासे इँहा आसिते ना दिबा॥'' ११३ ॥

११२-११३। प० अनु०—चावलों की प्रशंसा करके श्रीमन्महाप्रभु ने भोजन किया तथा अपने वासस्थान पर आकर उन्होंने अपने सेवक गोविन्द को आदेश दिया—''आज से छोटे-हरिदास को यहाँ पर आने मत देना। तुम मेरी इस आज्ञा का पालन करना।''

हरिदास का अत्यधिक दु:ख और उपवास—

द्वार माना, हरिदास दु:खी हैल मने।
कि लागिया द्वार माना, केह नाहि जाने॥ ११४ ॥

११४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का द्वार मेरे लिये बन्द है, ऐसा जानकर छोटे-हरिदास का मन बहुत दु:खी हुआ। किसी को भी नहीं पता था कि श्रीमन्महाप्रभु ने छोटे-हरिदास को अपने यहाँ आने के लिये मना क्यों किया है।

तिन दिन हरिदास करे उपवास।
स्वरूपादि सबे पुछिला प्रभुर पाश॥ ११५ ॥

प्रभु के निकट जाकर स्वरूप आदि के द्वारा कारण की जिज्ञासा—

''कोन् अपराध, प्रभु, कैल हरिदास?
कि लागिया द्वार-माना, करे उपवास??'' ११६ ॥

११५-११६। प० अनु०—छोटे-हरिदास ने तीन दिन तक उपवास किया। श्रीस्वरूप दामोदर आदि सभी भक्तों ने श्रीमन्महाप्रभु से पूछा—''हे प्रभु! छोटे-हरिदास ने कौन-सा अपराध किया है? आपने किस कारण से उसे अपने यहाँ आने के लिये मना किया है? छोटा-हरिदास तीन दिन से उपवास कर रहा है।''

प्रभु के द्वारा उत्तर-प्रदान; प्रकृति से भोगमय बुद्धि द्वारा बातचीत करने वाले वैरागी के मुख का दर्शन करने हेतु वितृष्णा (अनिच्छा) व्यक्त—

प्रभु कहे,—''वैरागी करे प्रकृति सम्भाषण।
देखिते ना पारो आमि ताहार वदन॥ ११७ ॥

११७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''छोटा-हरिदास वैरागी होकर स्त्री से सम्भाषण अर्थात् भोगमय बुद्धि से बातचीत करता है, मैं उसका मुख नहीं देख सकता।

अमृतप्रवाह भाष्य

११७। वैष्णव, या तो गृहस्थ होकर स्त्री तथा परिवार के साथ रहेंगे, अन्यथा स्त्री-सम्बन्ध को परित्याग करके 'वैरागी' बनेंगे। वैरागी बनने पर फिर स्त्रियों का भोगबुद्धि से दर्शन अथवा उनसे बातचीत करने का अधिकार नहीं रहता। पापवासना के नहीं रहने पर भी अथवा बाहरी रूप से किसी भक्तिमय कार्य को उद्देश्य बनाकर भी उस प्रकार से स्त्री के साथ सम्बन्ध-युक्त होना वैरागी का कर्त्तव्य नहीं है। अतएव वैरागी होकर जो व्यक्ति स्त्री-सम्भाषण करता है, धर्म का नाश करने वाला होने के कारण उसका मुख मैं देख नहीं पाऊँगा।

अनुभाष्य

११७। 'सरलता'—वैष्णव का प्रधान लक्षण है, एवं 'कपटता'—भक्ति की विरोधी उपशाखा-विशेष है। कृष्ण से आसक्ति होने पर कृष्ण के अलावा अन्य वस्तुओं से विरक्त होकर भक्त जड़ीय-भोगमय-दर्शन से उत्पन्न विषयों का त्याग करता है; किन्तु लोगों की दृष्टि में उसकी [श्रीकृष्ण के प्रति]वैसी आसक्ति के प्रचारित हो जाने के पश्चात् पुनः कपटता [अर्थात् अपरिपक्व अवस्था में कृष्ण के प्रति आसक्ति का अभिनय कर लोगों को भ्रमित करने रूपी कपटता]के प्रकाशित होने पर लोग उसके व्यवहार के प्रति श्रद्धा नहीं रख पाते।

जड़ीय इन्द्रियों का भोग-प्रवणता रूपी स्वभाव और स्त्री-दर्शन का विषमय फल—

दुर्वार इन्द्रिय करे विषय-ग्रहण।
दारु-प्रकृति हरे मुनेरपि मन॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—''इन्द्रियाँ दुर्दमनीय हैं अर्थात् उनका दमन करना अत्यन्त कठिन है। इन्द्रियाँ विषयों को ग्रहण करती हैं। लकड़ी की बनी स्त्री की मूर्त्ति भी मुनि तक के मन को हरण कर लेती है।

अमृतप्रवाह भाष्य

११८। दारु-प्रकृति हरे मुनेरपि मन,—लकड़ी से बनी नारी भी मुनि के मन का हरण कर सकती है, अतएव वैरागी व्यक्ति स्त्री-सम्बन्ध का अवश्य ही त्याग करेंगे।

अनुभाष्य

११८। रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श,—इन पाँच विषयों को ग्रहण करना ही क्रमशः चक्षु, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा रूपी पाँच इन्द्रियों का स्वभाव है। बद्धजीवों में से किसी-किसी के द्वारा स्वयं को इन्द्रियों के दमन करने में समर्थ समझने पर भी वास्तव में बहिर्मुखता वशतः उसके लिये इन्द्रियाँ दुर्दमनीय हैं। भोगमय दर्शन में विषयों की उपस्थिति हेतु प्राकृत-बुद्धि-सम्पन्न मनुष्य मुनि धर्म को ग्रहण करने पर भी लकड़ी से बनी नारी की मूर्त्ति को देखकर ही क्षुब्ध तथा चञ्चल हो जाता है।

अग्नि और घी की भाँति पुरुष अभिमानी के लिये स्त्री-सङ्ग-निषेध—श्रीमद्भागवत (९.१९.१७) में और मनुसंहिता (२.२१५) में—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो वसेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥ ११९ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

११९। ''माता के साथ, बहन के साथ एवं पुत्री के साथ निर्जन में कभी भी मत रहना; कारण, बलवान् इन्द्रियाँ विद्वान व्यक्ति के भी मन को आकर्षित कर सकती हैं।

अनुभाष्य

११९। महाराज ययाति काम के वशीभूत और स्त्री के द्वारा पराजित होकर ग्राम्य विषय समूह भोग करते-करते अपने सर्वनाश को समझकर अन्त में निर्वेद युक्त होकर पत्नी देवयानी के समक्ष अपने चरित्र और व्यवहार का वर्णन करते हुए स्त्री-सङ्ग की निन्दा कर रहे हैं—

मात्रा (जनन्या) स्वस्रा (भगिन्या) दुहित्रा (कन्यया वा सह) अविविक्ता-सनः (अविविक्तं सङ्कीर्णम् आसनं यस्य सः तथाभूतः) न वसेत् ('भवेत्' इति पाठान्तरम्; यतः) बलवान् (प्रचुरबल विशिष्टः) इन्द्रियग्रामः (इन्द्रियसमूहः) विद्वांसं (बन्धविमोक्षवित् पुरुषम्) अपि कर्षति (आकर्षति, बन्धाय नियोजयति)।

कृष्ण की इन्द्रियों की तृप्ति के विधान को छोड़ने पर ही अनधिकारी वैरागी-ब्रुव (दिखावटी वैरागी) का पुरुषाभिमान में प्रकृति का भोग एवं बाहरी वेष के आश्रय में कृत्रिम अस्थिर वैराग्य हेतु जिह्वा-उदर-उपस्थ लाम्पट्य—

क्षुद्रजीव सब मर्कट-वैराग्य करिया।
इन्द्रिय चराञा बुले 'प्रकृति' सम्भाषिया॥'' १२०॥

१२०। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१२०। साधन भक्ति की चर्चा करते-करते भाव के उदित होने पर जिस पुरुष में विरक्ति उत्पन्न होती है, उसका ही वैराग्य में अधिकार है। उस अवस्था को प्राप्त करने से पहले जो 'भेक' (वैष्णव-वेष) ग्रहण करते हैं, उन्हीं के वैराग्य का नाम 'मर्कट-वैराग्य' है। अनधिकारी जीव किसी-न-किसी कारण अनुचित समय पर वैराग्य ग्रहण करके उसके बाद इन्द्रियों के वशीभूत होकर प्रकृति अर्थात् स्त्रियों के साथ सम्भाषण करने लगता है। इन्हें धर्मध्वजी अथवा धर्म के नाम पर कलङ्क जानकर अवश्य ही [अपने से] दूर रखना चाहिए।

अनुभाष्य

१२०। मर्कट,—सौत्र मर्क् (गत्यर्थक) +अटन् कर्त्तृवाच्ये, —चञ्चल, अस्थिर; इन्द्रिय चराञा, —इन्द्रियों के वशीभूत होकर; बुले—भ्रमण करता है। बाहर में वैराग्य दिखलाकर जो लोगों से सम्मान संग्रह करते हैं एवं विषय-भोगवासना से निर्मुक्त हृदय वाले नहीं बन पाने के कारण स्त्रियों के साथ भोगबुद्धि से बातचीत करके स्वयं को 'पुरुष' मानकर आठ प्रकार से स्त्रियों के संग की वासना करते हैं, ऐसे प्राकृत-सहजिया जीव कभी भी 'महत्'-शब्द वाच्य नहीं है। विवित्सा अथवा धीर सन्यासियों में प्रकृति-सम्भाषण-रूप अपराध—उनके स्वयं के लिये विशेष रूप से अमङ्गल का कारण है, किन्तु श्रीरामानन्द राय आदि प्रमुख 'विद्वत्' अथवा 'नरोत्तम' सन्यासी परमहंसों को यदि कोई अक्षजज्ञानी अपने दुर्भाग्यवशतः स्त्री-सम्भाषी समझें, तब उनका स्वयं का पतन अवश्यम्भावी है।

प्रभु का क्रोध के आवेश में स्थान का त्याग, सभी भक्तों द्वारा मौन धारण—

एत कहि' महाप्रभु अभ्यन्तरे गेला।
गोसाञिर आवेश देखि' सबे मौन हैला॥ १२१ ॥

१२१। प० अनु०—इतना कहकर श्रीचैतन्य गासाञि अन्दर चले गये तथा उनके क्रोध के आवेश को देखकर सभी मौन हो गये।

अनुभाष्य

१२१। आवेश,—क्रोध का आवेश।

हरिदास के लिये अन्य एक दिन भक्तों का प्रभु के निकट आवेदन—

आर दिने सबे मेलि' प्रभुर चरणे।
हरिदास लागि' किछु कैला निवेदने॥ १२२ ॥
''अल्प अपराध, प्रभु, करह प्रसाद।
एबे शिक्षा हइल, ना करिबे अपराध॥'' १२३ ॥

१२२-१२३। प० अनु०—अगले दिन सभी भक्तों ने मिलकर छोटे-हरिदास के लिये श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में निवेदन करते हुए कहा,—''हे प्रभु! छोटे-हरिदास से थोड़ा अपराध हो गया है, आप उस पर कृपा कीजिए। अब उसे अच्छी शिक्षा मिल गयी है, वह अब पुनः अपराध नहीं करेगा।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१२३। अल्प अपराध,—माधवी देवी के पास जाकर चावल की भिक्षा करने में छोटे-हरिदास का अन्य कोई उद्देश्य नहीं था, केवल महाप्रभु की सेवा-सुख वासना ही थी, तथापि उस सेवा-कार्य में एक अपराध हुआ था। वैरागी का वेश लेकर पुनः स्त्रियों के साथ में सम्भाषण करना जो एक अपराध है, वह यद्यपि वैरागी के लिये महत् अपराध है, किन्तु प्रभु की सेवा के लिये वैसे अपराध को 'सामान्य' कहने पर कहा भी जा सकता है।

जगद्गुरु लोक शिक्षक प्रभु की निरपेक्षता और वज्र से भी अधिक कठोरता—

प्रभु कहे,—''मोर वश नहे मोर मन।
प्रकृति-सम्भाषी वैरागी ना करे स्पर्शन॥ १२४ ॥

१२४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मेरा मन मेरे वश में नहीं है। वह स्त्री से सम्भाषण करने वाले वैरागी का स्पर्श नहीं करना चाहता।

प्रभु का तीव्र शासन—

निज-कार्ये जाह सबे, छाड़ वृथा कथा।
पुनः यदि कह आमा ना देखिबे हेथा॥'' १२५ ॥

१२५। प० अनु०—''व्यर्थ की बातें छोड़कर सभी अपने-अपने काम पर जाओ। यदि पुनः आप लोगों ने छोटे-हरिदास की कोई बात कही तो फिर मुझे यहाँ पर कभी नहीं देखोगे अर्थात् मैं यहाँ से चला जाऊँगा।''

प्रभु के वचन सुनकर सभी में भय और लज्जा—

एत शुनि' सबे निज-कर्णे हस्त दिया।
निज-निज कार्ये सबे गेल त' उठिया॥ १२६ ॥

१२६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मुख से ऐसी बात को सुनकर सबने अपने कानों पर हाथ रख लिया तथा सभी उठकर अपने-अपने काम पर चले गये।

दुर्बोध्य प्रभु की लीला का तात्पर्य—

महाप्रभु मध्याह्न करिते चलि' गेला।
बुझन ना जाय एइ महाप्रभुर लीला॥ १२७ ॥

१२७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु मध्याह्न करने के लिये चले गये। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा की जा रही इस लीला को कोई भी समझ नहीं पा रहा था।

हरिदास के लिये परमानन्दपुरी गोस्वामी द्वारा प्रभु के समीप आवेदन—

आर दिन सबे परमानन्दपुरी-स्थाने।
''प्रभुके प्रसन्न कर''—कैला निवेदने॥ १२८ ॥

१२८। प० अनु०—अन्य किसी दिन सभी भक्तों ने मिलकर श्रीपरमानन्द पुरी के चरणों में निवेदन करते हुए कहा—''आप ही श्रीमन्महाप्रभु को प्रसन्न कीजिए।''

तबे पुरी-गोसाञि एका प्रभुस्थाने आइला।
नमस्करि' प्रभु ताँरे सम्भ्रमे बसाइला॥ १२९ ॥

१२९। प० अनु०—तब श्रीपरमानन्दपुरी गोस्वामी अकेले श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान पर आये। श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें प्रणाम करके सम्भ्रमपूर्वक बैठाया।

पुछिला,—''कि आज्ञा? केने हैल आगमन?''
हरिदासे प्रसाद लागि, कैला निवेदन॥ १३० ॥

१३०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा—''मेरे लिये क्या आदेश है? आपका किस उद्देश्य से आगमन हुआ है?'' श्रीपरमानन्द पुरी ने निवेदन करते हुए कहा,—''छोटे-हरिदास के प्रति आपकी कृपा प्राप्ति के उद्देश्य से आया हूँ।''

अत्यधिक गम्भीर प्रभु द्वारा असन्तुष्ट चित्त हेतु गोविन्द के साथ पुरी त्याग करके आलालनाथ जाने का भय-प्रदर्शन—

शुनिया कहेन प्रभु,—''शुनह, गोसाञि।
सब वैष्णव लञा तुमि रह एइ ठाञि॥ १३१ ॥
मोरे आज्ञा हय, मुञि जाऊ आलालनाथ।
एकले रहिब ताँहा, गोविन्द-मात्र साथ॥'' १३२॥

१३१-१३२। प० अनु०—श्रीपरमानन्दपुरी की बात सुनकर श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा,—''हे गोसाञि, सुनिये! आप सभी वैष्णवों के साथ मिलकर यहीं पर रहिये। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं आलालनाथ चला जाऊँगा। मैं वहाँ अकेला रहूँगा, केवल गोविन्द को अपने साथ ले जाऊँगा।''

एत बलि' प्रभु यदि गोविन्दे बोलाइला।
पुरीरे नमस्कार करि' उठिया चलिला॥ १३३ ॥

१३३। प० अनु०—इतना कहकर साथ-ही-साथ श्रीमन्महाप्रभु ने गोविन्द को बुलाया तथा श्रीपरमानन्द पुरी को प्रणाम करके उठकर चल दिये।

पुरी गोस्वामी में लज्जा और भय एवं अत्यधिक दीनतापूर्वक प्रभु को घर पर लौटाकर लाना—

आस्ते-व्यस्ते पुरी-गोसाञि प्रभु-आगे गेला।
अनुनय करि' प्रभुरे घरे फिराइला॥ १३४ ॥

१३४। प० अनु०—झटपट श्रीपरमानन्द पुरी गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के आगे गये तथा अनुनय-विनय करके उन्हें पुनः उनके वासस्थान में लौटा लाये।

पुरी के द्वारा प्रभु की स्तुति और अपने स्थान पर लौटना—

''तोमार जे इच्छा, कर, स्वतन्त्र ईश्वर।
केबा कि बलिते पारे तोमार उपर? १३५ ॥
लोक-हित लागि' तोमार सब व्यवहार।
आमि सब ना जानि गम्भीर हृदय तोमार॥''१३६॥

१३५-१३६। प० अनु०—श्रीपरमानन्द पुरी ने कहा,—''आप स्वतन्त्र ईश्वर हैं, आपकी जैसी इच्छा हो आप वैसा ही कीजिए। आपकी बात के ऊपर क्या कोई कुछ कह सकता है? आपके समस्त प्रकार के आचरण लोगों के हित के लिये ही हैं। हम सब आपके गम्भीर हृदय के विचारों को नहीं समझ पाते।''

विफल-मनोरथ होकर भक्तों का हरिदास के समीप जाना—

एत बलि' पुरी-गोसाञि गेला निज-स्थाने।
हरिदास-स्थाने गेला सब भक्त गणे॥ १३७ ॥

१३७। प० अनु०—इतना कहकर श्रीपरमानन्द पुरी गोस्वामी अपने स्थान पर लौट गये। सभी भक्त मिलकर छोटे-हरिदास के स्थान पर गये।

स्वरूप गोस्वामी के द्वारा हरिदास को आशा और सान्त्वना-प्रदान—

स्वरूप-गोसाञि कहे,—''शुन, हरिदास।
सबे तोमार हित वाञ्छि, करह विश्वास॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा,—''हे हरिदास, सुनो! हम सब तुम्हारा हित चाहते हैं, तुम हमारी बात पर विश्वास करो।

प्रभु हठे पड़ियाछे स्वतन्त्र ईश्वर।
कभु कृपा करिबेन दयालु-अन्तर॥ १३९ ॥

१३९। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु स्वतन्त्र ईश्वर हैं, अभी उन्होंने हठ (जिद्द) पकड़ ली है, किन्तु उनका अन्तर हृदय तो दया से पूर्ण है, कभी-न-कभी तो वे अवश्य ही तुम पर कृपा करेंगें।

अनुभाष्य

१३९। हठ,—जोर-जबरदस्ती, जिद्द।

तुमि हठ कैले ताँर हठ से बाड़िबे।
स्नान-भोजन कैले, आपने क्रोध जाबे॥'' १४०॥

१४०। प० अनु०—''यदि तुमने भी जिद्द पकड़ ली तब तो फिर उसे देखकर श्रीमन्महाप्रभु की जिद्द भी बढ़ जायेगी। यदि तुम स्नान तथा भोजन करोगे तो धीरे-धीरे श्रीमन्महाप्रभु का क्रोध भी स्वयं ही दूर हो जायेगा।''

एत बलि' तारे स्नान-भोजन कराञा।
आपन-भवन आइला तारे आश्वासिया॥ १४१ ॥

१४१। प० अनु०—इतना कहकर श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों ने छोटे-हरिदास को स्नान तथा भोजन कराया एवं उन्हें आश्वासन देकर सभी भक्त अपने-अपने स्थान पर लौट गये।

दूर रहकर हरिदास के द्वारा प्रभु का दर्शन—

प्रभु यदि जान जगन्नाथ-दरशने।
दूरे रहि' हरिदास करेन दर्शने॥ १४२ ॥

१४२। प० अनु०—जब श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन के लिये जाते, तब छोटा-हरिदास दूर में खड़े-खड़े ही उनके दर्शन करता।

धर्म-सेतु धर्म-वर्म (रक्षक)प्रभु की परम करुणा—

महाप्रभु-कृपासिन्धु, के पारे बुझिते?
निज-भक्ते दण्ड करेन 'धर्म' बुझाइते॥ १४३ ॥

१४३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु कृपा के सागर हैं, इसे कौन समझ सकता है? जगत्-वासियों को धर्म की शिक्षा देने के लिये वे अपने भक्त तक को दण्ड प्रदान करते हैं।

अनुभाष्य

१४३। यद्यपि कपटतापूर्वक अवैध स्त्री-सङ्ग भी पाप के अन्तर्गत एक पाप मात्र है, तथापि वैष्णवों के त्रिगुणातीत अप्राकृत परम-उच्च आसन को समझाने के लिये एवं भविष्य काल के विद्ध-प्राकृत-सहजिया आदि उपधर्म और अपधर्म का पालन करने वाले नारकी व्यक्तियों का व्यवहार अत्यन्त अधर्म की नींव के ऊपर बना हुआ और शुद्ध वैष्णव धर्म के सम्पूर्ण विपरीत और स्वतन्त्र है,—उसे समझाने के लिये श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्त हरिदास को दण्ड प्रदान किया। श्रीमाधवी देवी—उच्चाधिकारिणी महाभागवत; उनके पास जाकर तण्डुल की भिक्षा ग्रहण हरिदास जैसे प्रभु-पार्षद का अवैध-कार्य नहीं होने पर भी भविष्य में ऐसे उदाहरण अथवा आदर्श का अनुकरण करके अनेक लोग शठता और कपटता का विस्तार करके कलिजनोचित अवैष्णव-मत का प्रचार कर सकते हैं,—उसी को रोकने के उद्देश्य से जगद्गुरु लोकशिक्षक भगवान् की यह हरिदास-सम्बन्धिनी दण्ड लीला है। श्रीगौरसुन्दर ने असामान्य दया के सागर होने पर भी कलियुग के जीवों की दुर्बलता को समझकर ही इस प्रकार के सङ्गत्याग रूपी सुकठोर दण्ड का विधान करके अमन्दोदया-दया की पराकाष्ठा को प्रदर्शित किया।

छोटे-हरिदास के दण्ड को देखकर साधकों का पुरुष अथवा भोक्ता के अभिमान में इन्द्रिय-तर्पण के उद्देश्य से भोगमय नेत्रों द्वारा भोग्या-स्त्री-दर्शन का त्याग—

देखि' त्रास उपजिल सब-भक्तगणे।
स्वप्नेह छाड़िल सबे स्त्री-सम्भाषणे॥ १४४ ॥

१४४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु द्वारा छोटे-हरिदास को दिये जा रहे दण्ड को देखकर समस्त भक्तों के हृदय में अत्यन्त भय उत्पन्न हो गया, सभी ने स्वप्न तक में भी स्त्री के साथ सम्भाषण करना छोड़ दिया।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४४। त्रास उपजिल सब-भक्तगणे,—साधु- वैष्णव का वेष ग्रहण करने वाले (साधक) भक्तों में ऐसा भय उपस्थित हुआ कि वे इस घटना के पश्चात् किसी स्त्री के साथ बात तक नहीं करते थे।

अनुभाष्य

१४४। स्त्री-सम्भाषण,—भोक्ता अथवा पुरुष के अभिमान में स्त्री को अपनी इन्द्रियों की भोग्या समझकर उस के साथ विषयी व्यक्ति की जो बातचीत होती है, वह।

एक वर्ष के बाद भी प्रभु की अटल निरपेक्षता—

एइमते हरिदासेर एक वत्सर गेल।
तबु महाप्रभुर मने प्रसाद नहिल॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०—इस प्रकार छोटे-हरिदास का

एक वर्ष व्यतीत हो गया, किन्तु तब भी श्रीमन्महाप्रभु के मन में उनके प्रति कृपा उत्पन्न नहीं हुयी।

प्रभु के ऐसे व्यवहार को देखकर छोटे-हरिदास के द्वारा प्रभु की सेवा की प्राप्ति का सङ्कल्प लेकर प्रयाग में जाकर त्रिवेणी में देहत्याग—

रात्रि-शेषे प्रभुरे दण्डवत् हञा।
प्रयागेते गेल कारेह किछु ना बलिया॥ १४६ ॥

१४६। प० अनु०—एक रात्रि के अन्त में छोटा-हरिदास श्रीमन्महाप्रभु के उद्देश्य से दण्डवत् प्रणाम करके बिना किसी को बताये प्रयाग चले गये।

प्रभुपद-प्राप्ति लागि' सङ्कल्प करिल।
त्रिवेणी प्रवेश करि' प्राण छाड़िल॥ १४७ ॥

१४७। प० अनु०—छोटे-हरिदास ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की प्राप्ति का सङ्कल्प किया तथा त्रिवेणी में प्रवेश करके उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये।

छोटे-हरिदास के द्वारा अपनी दिव्य देह के माध्यम से अदृश्य अवस्था में प्रभु के समीप कीर्त्तन-गान-सेवा—

सेइक्षणे प्रभुस्थाने दिव्य-देहे आइला।
प्रभुकृपा पाञा अन्तर्द्धाने रहिला॥ १४८ ॥

१४८। प० अनु०—छोटा-हरिदास उसी समय दिव्य देह धारण करके श्रीमन्महाप्रभु के निकट आये तथा श्रीमन्महाप्रभु की कृपा प्राप्त करके अदृश्य अवस्था में ही वहाँ रहने लगे।

गन्धर्व-देहे गान करेन अन्तर्द्धाने।
रात्र्ये प्रभुरे शुनाय, अन्ये नाहि जाने॥ १४९ ॥

१४९। प० अनु०—छोटा-हरिदास अदृश्य रूप में गन्धर्व देह के द्वारा रात्रि के समय श्रीमन्महाप्रभु को अपने गान का श्रवण कराते। अन्य कोई भी इस बात को नहीं जानता था।

एकदिन प्रभु के द्वारा भक्तों से हरिदास की वार्त्ता पूछना—

एकदिन महाप्रभु पुछिला भक्तगणे।
''हरिदास काँहा? तारे आनह एखाने॥'' १५० ॥

१५०। प० अनु०—एकदिन श्रीमन्महाप्रभु ने भक्तों से पूछा—''छोटा-हरिदास कहाँ है? उसे यहाँ पर लेकर आओ।''

सभी के द्वारा हरिदास के सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता बतलाना—

सब कहे,—''हरिदास वर्षपूर्ण दिने।
रात्रे उठि' काँहा गेला, केह नाहि जाने॥'' १५१ ॥

१५१। प० अनु०—सभी भक्तों ने कहा,—''[आपकी कृपा के बिना] एक वर्ष व्यतीत होने के बाद छोटा-हरिदास रात्रि में उठकर कहाँ चला गया, इस विषय में कोई कुछ भी नहीं जानता।''

प्रभु का हास्य; उसे देखकर भक्तों में विस्मय—

शुनि' महाप्रभु ईषत् हासिया रहिला।
सब भक्तगण-मने विस्मय जन्मिला॥ १५२ ॥

१५२। प० अनु०—भक्तों का उत्तर सुनकर श्रीमन्महाप्रभु थोड़ा सा मुस्कुराए। श्रीमन्महाप्रभु की मुस्कुराहट को लक्ष्य करके सब भक्तों के मन में विस्मय हुआ।

एकदिन समुद्र स्नान के समय स्वरूप और गोविन्द आदि भक्तों के द्वारा अदृश्य हरिदास के गान का श्रवण—

एकदिन जगदानन्द, स्वरूप, गोविन्द।
काशीश्वर, शङ्कर, दामोदर, मुकुन्द॥ १५३ ॥
समुद्रस्नाने गेला सबे, शुने कथो दूरे ।
हरिदास गायेन, जेन डाकि' कण्ठस्वरे॥ १५४ ॥
मनुष्य ना देखे,—मधुर गीतमात्र शुने।
गोविन्दादि सब मेलि' कैल अनुमाने॥ १५५ ॥

१५३-१५५। प० अनु०—एकदिन श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीगोविन्द, श्रीकाशीश्वर पण्डित, श्रीशङ्कर, श्रीदामोदर पण्डित तथा मुकुन्द—सभी भक्त मिलकर समुद्र स्नान करने के लिये गये। उन्होंने

सुना कि जैसे कुछ दूरी पर छोटा-हरिदास उच्च स्वर में गान कर रहा है। इन सभी भक्तों को कोई व्यक्ति दिखलायी नहीं दिया, केवल मधुर गीत ही सुनाई दे रहा था। इसी कारण श्रीगोविन्द आदि सभी भक्तों ने अनुमान लगाया—।

स्वरूप के अलावा गोविन्द आदि भक्तों के द्वारा हरिदास का आत्महत्या के फल से ब्रह्म-राक्षस-योनि को प्राप्त करने का अनुमान—

''विषादि खाञा हरिदास आत्मघात कैल।
सेइ पापे जानि 'ब्रह्मराक्षस' हैल॥ १५६ ॥
आकार ना देखि, मात्र शुनि तार गान।''
स्वरूप कहेन,— ''एइ मिथ्या अनुमान॥ १५७ ॥

१५६-१५७। प० अनु०—''लगता है कि छोटे-हरिदास ने विष आदि खाकर आत्महत्या की है, जिस पाप के फलस्वरूप वह 'ब्रह्मराक्षस' बन गया है। इसी कारण हमें उसका आकार दिखायी नहीं दे रहा, केवलमात्र उसका गान ही सुनायी दे रहा है।'' श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''आप लोगों का ऐसा अनुमान गलत है।

स्वरूप के द्वारा छोटे-हरिदास के गुण और सद्गति की प्रशंसा—

आजन्म कृष्णकीर्त्तन, प्रभुर सेवन।
प्रभु-कृपापात्र, आर क्षेत्रेर मरण॥ १५८ ॥
दुर्गति ना हय तार, सद्गति से हय।
प्रभु-भङ्गी एइ, पाछे जानिबा निश्चय॥'' १५९ ॥

१५८-१५९। प० अनु०—जन्म से ही छोटे-हरिदास ने कृष्ण का कीर्त्तन किया है, श्रीमन्महाप्रभु की सेवा की है, वह श्रीमन्महाप्रभु का कृपा-पात्र है तथा क्षेत्र में उसकी मृत्यु हुयी है। उसकी कभी भी दुर्गति नहीं हो सकती, उसकी सद्गति ही हुयी होगी। किन्तु जो सब तुम लोग देख-सुन रहे हो, यह निश्चित जानो कि उसके पीछे अवश्य ही श्रीमन्महाप्रभु की कोई भाव-भङ्गिमा है, तुम लोगों का बाद में उसका पता चलेगा।''

प्रयाग से नवद्वीप में लौटे एक वैष्णव के मुख से श्रीवास आदि के द्वारा हरिदास के देह-त्याग का श्रवण—

प्रयाग हैते एक वैष्णव नवद्वीप आइल।
हरिदासेर वार्त्ता तेंहो सबारे कहिल॥ १६० ॥

१६०। प० अनु०—दूसरी ओर, प्रयाग से एक वैष्णव नवद्वीप में आये तथा उन्होंने छोटे-हरिदास की वार्त्ता को सबको बताया।

जैछे सङ्कल्प, जैछे त्रिवेणी प्रवेशिल।
शुनि' श्रीवासादिर मने विस्मय हइल॥ १६१ ॥

१६१। प० अनु०—छोटे-हरिदास ने जिस प्रकार से सङ्कल्प ग्रहण किया था, जिस प्रकार से त्रिवेणी में प्रवेश किया था, उस वार्त्तालाप को सुनकर श्रीवास आदि भक्तों के मन में बहुत विस्मय हुआ।

अगले वर्ष गौड़ीय भक्तों का पुरी में आगमन—

वर्षान्तरे शिवानन्द सब भक्त लञा।
प्रभुरे मिलिला आसि' आनन्दित हञा॥ १६२ ॥

१६२। प० अनु०—एक वर्ष के बाद श्रीशिवानन्द सेन सभी भक्तों को अपने साथ लेकर श्रीजगन्नाथपुरी आये तथा आनन्दित होकर श्रीमन्महाप्रभु से आकर मिले।

प्रभु के निकट श्रीवास द्वारा छोटे-हरिदास के सम्बन्ध में जिज्ञासा और प्रभु का उत्तर—

''हरिदास काँहा?'' यदि श्रीवास पुछिला।
''स्वकर्मफलभुक् पुमान्''—प्रभु उत्तर दिला॥१६३॥

१६३। प० अनु०—जब श्रीवास पण्डित ने पूछा—''छोटा-हरिदास कहाँ है?'' तब श्रीमन्महाप्रभु ने उत्तर दिया—''मनुष्य अपने किये का फल भोग करता है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१६३। ''स्वकर्मफलभुक् पुमान्''—मनुष्य अपने कर्मों के फल का भोग करते हैं।

श्रीवास के द्वारा छोटे-हरिदास के देहत्याग के वृत्तान्त का वर्णन—

तबे श्रीवास तार वृत्तान्त कहिल।
जैछे सङ्कल्प, जैछे त्रिवेणी प्रवेशिल॥ १६४ ॥

१६४। प० अनु०—तब श्रीवास पण्डित ने छोटे-हरिदास ने कैसे सङ्कल्प किया तथा कैसे त्रिवेणी में प्रवेश किया, इसका सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सद्धर्म के पालक जगद्गुरु लोकशिक्षक प्रभु के द्वारा विधि की व्यवस्था का विधान—

शुनि' प्रभु हासि' कहे सुप्रसन्न-चित्त।
''प्रकृति-दर्शन कैले एइ प्रायश्चित॥'' १६५ ॥

१६५। प० अनु०—श्रीवास पण्डित की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने अत्यधिक प्रसन्नचित्त होकर मुस्कुराते हुए कहा,—''प्रकृति (स्त्री) का भोगबुद्धि से दर्शन करने का यही प्रायश्चित है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१६५। भेकधारी अर्थात् वैष्णव वेष-धारी साधक यदि इच्छापूर्वक स्त्री का दर्शन करता है, तो फिर अगले जन्म में निर्दोष होने के अभिप्राय से त्रिवेणी में डूब कर मरना ही प्रायश्चित है।

द्वितीय परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

त्रिवेणी आदि विष्णु-तीर्थ में देह-त्याग का फल—

स्वरूपादि मिलि' तबे विचार करिला।
त्रिवेणी-प्रभावे हरिदास प्रभुपाश आइला॥ १६६॥

१६६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों ने एकत्रित होकर विचार किया कि त्रिवेणी के प्रभाव से छोटा-हरिदास श्रीमन्महाप्रभु के निकट आ गया है।

प्रभु की लीला भक्तों के हृदय और कानों के रसायन स्वरूप—

एइमत लीला करे शचीर नन्दन।
जाहा शुनि' भक्तगणेर जुड़ाय कर्ण-मन॥ १६७ ॥

१६७। प० अनु०—श्रीशचीनन्दन गौरहरि ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर भक्तों के कान तथा मन शीतल हो जाते हैं।

छोटे-हरिदास के दण्ड-प्रदान-लीला में शिक्षणीय विषय—

आपन-कारुण्य, लोके वैराग्य-शिक्षण।
स्वभक्तेर गाढ़-अनुराग-प्रकटीकरण॥ १६८ ॥
तीर्थेर महिमा, निज-भक्ते आत्मसात्।
एक लीलाय करेन प्रभु कार्य पाँच-सात॥ १६९ ॥

१६८-१६९। प० अनु०—एक छोटे-हरिदास की दण्ड-प्रदान की लीला के माध्यम से श्रीमन्महाप्रभु ने पाँच-सात कार्य साधित किये हैं। यथा—अपनी करुणा का प्रकाश, लोगों को वैराग्य की शिक्षा, अपने भक्तों के अत्यधिक घने अनुराग का प्राकट्य, तीर्थ की महिमा तथा अपने भक्तों को आत्मसात् करना आदि।

अनुभाष्य

१६८-१६९। प्रभु के द्वारा छोटे-हरिदास को दण्ड प्रदान करने की लीला के द्वारा शुद्ध गौर-कृष्ण भजन के इच्छुक साधक महाप्रभु की निम्नलिखित शिक्षा को लक्ष्य करेंगे—

१) भगवान् गौरसुन्दर ने जीवों के प्रति परम करुणायुक्त होकर अपने पार्षद-भक्त छोटे-हरिदास का बाहरी रूप से त्याग किया। यदि प्रभु उसका त्याग न करते, तब फिर अवैधरूप से प्रश्रय पाकर कलिकाल के दुर्बल जीव प्राकृत-सहजिया आदि जड़ीय अपधर्म और उपधर्म को 'वैष्णव-धर्म' मानकर नरक में सड़ते रहते, उसमें प्रभु की करुणा का परिचय नहीं होता।

२) प्रचार करने वाले वैष्णव-आचार्य का आसन और आचरण करने वाले भक्त का आसन कैसा होना उचित है, उसका इस दण्ड-प्रदान के माध्यम से प्रभु ने सर्वसाधारण को उपदेश दिया है।

३) शुद्ध, सरल और निष्पाप-जीवन युक्त होकर भगवान् के भक्तों का जिस प्रकार गौर-कैङ्कर्य (दासता) करना कर्त्तव्य है, महाप्रभु ने जीवों को वैसे

कृष्णेतर-विषयभोग-त्याग रूपी 'वैराग्य' की शिक्षा प्रदान की।

४) प्रभु के निजभक्तों का सुनिर्मल चरित्र कितना उच्च और लोभनीय आदर्श स्थलीय है एवं (शुद्ध) सद्भक्तों को वे किस प्रकार अपना जन मानकर ग्रहण करते हैं तथा कृष्ण के अलावा अन्य विषयों के प्रति अनुराग की छाया से ही कैसा विषमय फल उत्पन्न होता है, उसे भी प्रभु ने प्रदर्शित किया।

५) हरिदास के प्रति प्रभु की दण्ड-विधान रूपी अमन्दोदया दया एवं प्रभु के प्रति हरिदास की सेवा-बुद्धि अथवा गाढ़ अनुराग कितना अधिक परिमाण में था, उसे दिखलाने के लिये उनकी सामान्य गलती भी प्रभु सहन करने के लिये प्रस्तुत नहीं थे। प्रभु के गाढ़ अनुराग के पात्र होने की इच्छा करने पर शुद्ध भजन के इच्छुक भक्तगण सब प्रकार के लौकिक इन्द्रियसुख की लालसा का सम्पूर्ण रूप से त्याग करेंगे, अन्यथा श्रीगौरहरि उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे।

६)यदि कोई प्रयाग आदि विष्णु-तीर्थ में देह-त्याग करता है तो उसके अपराध आदि मार्जित हो जाते हैं तथा वह मुक्त हो जाता है, जिससे उसे सुकृति तथा सद्गति की प्राप्ति होती है।

७) लोक शिक्षा के लिये अपने भक्त हरिदास को ग्रहण नहीं करके बाद में उसके मुख से कृष्ण कीर्त्तन-श्रवण-रूप सेवा स्वीकार करके प्रभु ने छोटे-हरिदास को अपने भक्त के रूप में स्वीकार किया।

द्वितीय परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

असत्सङ्ग त्याग में दृढ़ प्रयत्न करने वाले बुद्धिमान् निष्कपट कृष्ण भजन के इच्छुक का ही परम गम्भीर कृष्ण-चैतन्य की लीला के मर्म को अनुभव करने में अधिकार—

मधुर चैतन्यलीला—समुद्र गम्भीर।
लोके नाहि बुझे, बुझे जेइ 'भक्त', 'धीर'॥ १७० ॥

१७०। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की मधुर लीलाएँ समुद्र की भाँति गम्भीर (गहरी) हैं। इसे साधारण लोग नहीं समझ सकते, केवल 'धीर' भक्त ही उसे समझ सकते हैं।

तर्कपन्था को त्याग करके श्रौत-पथ के आश्रय में सभी को अप्राकृत चैतन्य-लीला का श्रवण करने के उद्देश्य से ग्रन्थकार का अनुरोध—

विश्वास करिया शुन चैतन्यचरित।
तर्क ना करिह, तर्के हबे विपरीत॥१७१॥

१७१। प० अनु०—हे भक्तों! श्रीचैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का दृढ़ विश्वासपूर्वक श्रवण करो। इनमें किसी प्रकार का कोई तर्क मत करना, तर्क से उल्टा फल ही प्राप्त होता है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १७२ ॥

१७२। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे श्रीहरिदास दण्ड रूप-शिक्षा नाम द्वितीयः परिच्छेदः।

❋ ❋ ❋

तृतीय परिच्छेद

कथासार—पुरुषोत्तम-क्षेत्र में किसी सुन्दरी ब्राह्मणी युवती का एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र था। उसे प्रतिदिन महाप्रभु के निकट आते देखकर दामोदर पण्डित ने महाप्रभु से कहा,—''बालक को आदर (प्यार) करने से लोग आपके चरित्र पर सन्देह करेंगे।'' यह बात सुनकर महाप्रभु ने एकदिन दामोदर को बुलाया तथा उन्हें श्रीनवद्वीप में भेजकर अपनी माता शची की देखभाल के कार्य में नियुक्त किया एवं जाते समय उन्हें सन्देश दिया,—''मैं माता के पास बीच-बीच में जाकर भोजन करता हूँ,—यह बात उन्हें स्मरण करा देना।'' दामोदर महाप्रसाद आदि लेकर नवद्वीप गये। उसके बाद एकदिन महाप्रभु ने ब्रह्म हरिदास से जिज्ञासा की,—''कलिकाल में सभी यवन किस प्रकार उद्धार प्राप्त करेंगे?'' हरिदास ने उसके उत्तर में उच्च-सङ्कीर्त्तन के माहात्म्य को बतलाकर सभी नामाभास से उद्धार प्राप्त करेंगे—ऐसा सिद्धान्त वर्णन किया।

यहाँ पर हरिदास ठाकुर के पूर्व-वृत्तान्त का वर्णन करते हुए, कविराज-गोस्वामी ने बेनापोल के वन में पाषण्ड (पाखण्डी) ब्रह्मबन्धु रामचन्द्र खाँन के द्वारा प्रेरित वेश्या, जिसने हरिदास की कृपा से उद्धार प्राप्त किया था, उसका विवरण कहा। वैष्णव-अपराध से एवं बाद में नित्यानन्द प्रभु के अभिशाप से रामचन्द्र खाँन की जो दुर्दशा हुई थी, वह भी वर्णित हुई है। बेनापोल से चाँदपुर में आकर हरिदास बलराम-आचार्य के घर पर रहे। उसके बाद हिरण्य और गोवर्धन मजुमदार की सभा में नामतत्त्व को लेकर हरिदास ठाकुर और गोपाल चक्रवर्ती नामक आरिन्दा [पत्र, राजकर तथा धन-सम्पत्ति को इधर-से-उधर ले जाने वाले]-ब्राह्मण के साथ जो सब कथोपकथन हुआ था एवं हरिदास के प्रति अपराध करने से गोपाल चक्रवर्ती को 'कुष्ठ रोग रूपी' दण्ड की प्राप्ति हुई थी, उसका वर्णन किया गया है। हरिदास ठाकुर चाँदपुर से शान्तिपुर जाकर अद्वैताचार्य के घर पर रहे। वहाँ मायादेवी छल करने के लिये आयी तथा उसने हरिदास की कृपा से कृष्णनाम को प्राप्त किया।

(अ: प्र: भा:)

वन्देऽहं श्रीगुरो: श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगणरघुनाथान्वितं तं सजीवम्।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगणललिता-श्रीविशाखान्वितांश्च॥

१। अनु०—मैं श्रीगुरु [अर्थात् अपने मन्त्र-दीक्षा गुरु तथा भजन-शिक्षा गुरु] के पदकमलों एवं समस्त गुरुओं [अर्थात् गुरुवर्गों], समस्त वैष्णवों [अर्थात् चारों युगों में आविर्भूत महाभागवतों], रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, सगण रघुनाथ [दास गोस्वामी]और जीव [गोस्वामी], अद्वैतप्रभु, नित्यानन्द प्रभु एवं परिजन सहित श्रीकृष्णचैतन्यदेव, [सखी-मञ्जरी आदि के] गणसहित ललिता-विशाखा आदि से युक्त श्रीराधाकृष्ण की वन्दना करता हूँ।

अनुभाष्य

१। अन्त्य-लीला के द्वितीय परिच्छेद की १ संख्या द्रष्टव्य।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैत चन्द्र जय गौर भक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो।

श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैत चन्द्र की जय हो तथा श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

एक विधवा-ब्राह्मणी के महासौभाग्यवान् सुन्दर पुत्र के प्रति प्रभु की अहैतुकी कृपा-स्नेह—

पुरुषोत्तमे एक उड़िया-ब्राह्मण कुमार।
पितृशून्य, महासुन्दर, मृदु-व्यवहार॥ ३ ॥

३। प० अनु०—श्रीपुरुषोत्तम धाम में एक उड़िया ब्राह्मण बालक रहता था। उसके पिता परलोक सिधार गये थे। वह बालक अत्यन्त सुन्दर तथा कोमल स्वभाव का था।

प्रभु-स्थाने नित्य आइसे, करे नमस्कार।
प्रभु-सने बात् कहे, प्रभु—'प्राण' तार॥ ४ ॥

४। प० अनु०—वह बालक नित्यप्रति श्रीचैतन्य महाप्रभु के वासस्थान पर आता, श्रीमन्महाप्रभु को प्रणाम करता, उन से बातें करता, श्रीमन्महाप्रभु उसके 'प्राण' स्वरूप थे।

ऐसा दामोदर पण्डित को नापसन्द—

प्रभुते ताहार प्रीति, प्रभु दया करे ।
दामोदर तार प्रीति सहिते ना पारे ॥ ५ ॥

५। प० अनु०—उस बालक की श्रीमन्महाप्रभु के प्रति प्रीति थी, श्रीमन्महाप्रभु उस पर दया करते थे किन्तु श्रीदामोदर पण्डित उस बालक की श्रीमन्महाप्रभु के प्रति प्रीति को सहन नहीं कर पा रहे थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

५। दामोदर, — पण्डित-दामोदर ।

दामोदर के निषेध करने पर भी ब्राह्मण बालक का प्रभु के प्रति अनुराग—

बार बार निषेध करे ब्राह्मणकुमारे ।
प्रभुरे ना देखिले सेइ रहिते ना पारे ॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीदामोदर पण्डित पुनः पुनः उस ब्राह्मण बालक को श्रीमन्महाप्रभु के पास आने के लिये मना करते, किन्तु वह बालक श्रीमन्महाप्रभु को देखे बिना रह ही नहीं पाता था।

बालसुलभ धर्मवशतः स्नेह से परिपूर्ण प्रभु के निकट उसका प्रतिदिन आगमन —

नित्य आइसे, प्रभु तारे करे महाप्रीत ।
जाँहा प्रीति ताँहा आइसे, — बालकेर रीत ॥ ७ ॥

७। प० अनु०—वह ब्राह्मण बालक नित्यप्रति श्रीमन्महाप्रभु के पास आता तथा श्रीमन्महाप्रभु उससे बहुत अधिक स्नेह करते। बालक की तो रीति ही होती है कि उसे जहाँ प्रीति दिखलायी देती है, वह वहीं आता है।

दामोदर के लिये दो सङ्कट —

ताहा देखि' दामोदर दुःख पाय मने ।
बलिते ना पारे, बालक निषेध ना माने ॥ ८ ॥

८। प० अनु०—ऐसा देखकर श्रीदामोदर पण्डित मन-ही-मन बहुत दुःखी होते। श्रीमन्महाप्रभु से वह कुछ कह नहीं पाते तथा बालक उनके निषेध को भी नहीं मानता था।

एकदिन प्रभु के निकट से बालक का अपने स्थान पर प्रस्थान—

आर दिन सेइ बालक प्रभु स्थाने आइला ।
गोसाञि तारे प्रीति करि' वार्त्ता पुछिला ॥ ९ ॥

९। प० अनु०—एकदिन वह ब्राह्मण बालक जब श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान पर आया तब श्रीचैतन्य गोसाञि ने उससे प्रीतिपूर्वक कोई संवाद पूछा।

कतक्षणे से बालक उठि' जबे गेला ।
सहिते ना पारे' दामोदर कहिते लागिला ॥ १० ॥

१०। प० अनु०—कुछ देरी के बाद जब वह ब्राह्मण बालक उठकर चला गया, तब श्रीदामोदर पण्डित सहन नहीं कर पाने के कारण कहने लगे—।

अधीर दामोदर की शिकायत और प्रभु के कार्य की समालोचना—

''अन्योपदेशे पण्डित'' — कहे गोसाञि ठाञि।
'गोसाञि' 'गोसाञि' एबे जानिमु 'गोसाञि'॥ ११॥

११। प० अनु०— अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

११। दामोदर-पण्डित महाप्रभु को कह रहे हैं,— ''आप अन्यों को उपदेश प्रदान करते समय 'पण्डित' हैं, एवं सभी आपको 'गोसाञि' 'गोसाञि' (आचार्य) कहते हैं; इस बार पता चलेगा कि आप किस प्रकार 'गोसाञि' बने रह सकते हैं।''

एबे गोसाञिर गुण सब लोके गाइबे ।
गोसाञि- प्रतिष्ठा सब पुरुषोतमे हइबे ॥'' १२ ॥

१२। प० अनु०— श्रीदामोदर पण्डित ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा,— ''अब सभी लोग गोसाञि के गुणों का गान करेंगे तथा सम्पूर्ण पुरुषोत्तम क्षेत्र में गोसाञि को प्रतिष्ठा अर्थात् सम्मान की प्राप्ति होगी।''

प्रभु को मर्यादा दिखलाकर दामोदर द्वारा तिरस्कार और शासन—

शुनि' प्रभु कहे , — ''क्या कह दामोदर?''
दामोदर कहे — ''तुमि स्वतन्त्र 'ईश्वर'॥ १३ ॥

१३। प० अनु०— श्रीदामोदर पण्डित की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,— ''हे दामोदर! क्या कह रहे हो?'' श्रीदामोदर पण्डित ने उत्तर दिया,— ''आप स्वतन्त्र ईश्वर हैं।

स्वच्छन्दे आचार कर, के पारे बलिते?
मुखर जगतेर मुख पार आच्छादिते॥ १४ ॥

१४। प० अनु०— ''आप जैसा चाहें स्वछन्द होकर वैसा आचरण कर सकते हैं, आपको कौन कुछ कह सकता है? आप तो मुखरित जगत् के लोगों के मुख को भी बन्द कर सकते हैं।

पण्डित हञा मने केने विचार ना कर?
राण्डी ब्राह्मणीर बालके प्रीति केने कर?? १५ ॥

१५। प० अनु०—''पण्डित होने पर भी आप स्वयं विचार क्यों नहीं करते? आप विधवा ब्राह्मणी के पुत्र से प्रीति क्यों करते हैं?

अमृतप्रवाह भाष्य

१५। राण्डी,—विधवा।

यद्यपि ब्राह्मणी सेइ तपस्विनी सती।
तथापि ताहार दोष—सुन्दरी युवती॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—''यद्यपि वह ब्राह्मणी सती-साध्वी स्त्री है, तपस्विनी है, तब भी सुन्दरी युवती होना ही उसका दोष है।

तुमिह—परम-युवा, परम-सुन्दर।
लोकेर काणाकाणि-बाते देह अवसर॥'' १७ ॥

१७। प० अनु०—''आप भी परम युवा हैं, परम सुन्दर हैं। आप लोगों को कानाफूसी करने का अवसर प्रदान कर रहे हैं।''

दामोदर के वाक्य-दण्ड को सुनकर प्रभु का मन-मन में विचार—

एत बलि' दामोदर मौन हइला।
अन्तरे सन्तोष प्रभु हासि' विचारिला॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—इतना बोलकर श्रीदामोदर पण्डित मौन हो गये। उनकी बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के हृदय में सन्तोष ही हुआ तथा उन्होंने मुस्कुराकर मन-ही-मन विचार किया—।

''इहारे कहिये शुद्धप्रेमेर तरङ्ग।
दामोदर-सम मोर नाहि 'अन्तरङ्ग'॥'' १९ ॥

१९। प० अनु०—''इसी को शुद्धप्रेम की तरङ्ग कहते हैं, वास्तव में दामोदर पण्डित के समान मेरा कोई अन्तरङ्ग नहीं है।''

एतेक विचारि' प्रभु मध्याह्ने चलिला।
आर दिने दामोदरे निभृते बोलाइला॥ २० ॥

२०। प० अनु०—ऐसा विचार करके श्रीमन्महाप्रभु मध्याह्न के लिये चल दिये तथा अगले दिन उन्होंने श्रीदामोदर पण्डित को एकान्त में बुलाया।

नवद्वीप में शचीमाता की देख-भाल करने के लिये पण्डित को भेजना—

प्रभु कहे,— ''दामोदर, चलह नदीया।
मातार समीपे तुमि रह ताँहा जाञा॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीदामोदर पण्डित से कहा,—''दामोदर, तुम नदिया (नवद्वीप) में जाओ। वहाँ जाकर तुम श्रीशचीमाता के पास जाकर रहो।

प्रभु के द्वारा दामोदर की व्याज (छल के माध्यम से) स्तुति—

तोमा बिना ताँहार रक्षक नाहि आन।
आमाकेह जाते तुमि कैला सावधान॥ २२ ॥

२२। प० अनु०— ''मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे अलावा उनकी देख-रेख ठीक से अन्य कोई नहीं कर सकता। कारण, तुमने तो मुझे भी सावधान किया है।

तोमा-सम 'निरपेक्ष' नाहि मोर गणे।
'निरपेक्ष' नहिले 'धर्म' ना जाय रक्षणे॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—''तुम्हारे समान निरपेक्ष अन्य कोई भी भक्त मेरी गोष्ठी में नहीं है। वास्तव में निरपेक्ष हुये बिना धर्म की रक्षा नहीं की जा सकती।

अमृतप्रवाह भाष्य

२३। धर्म के रक्षक निरपेक्ष होंगे, अर्थात् किसी भी प्रकार की लोकापेक्षा के द्वारा धर्म को कुण्ठित नहीं होने देंगे।

आमा हैते जे ना हय, से तोमा हैते हय।
आमारे करिला दण्ड, आन केबा हय॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—''मुझसे भी जो कार्य अर्थात् निरपेक्ष रहना सम्भवपर नहीं हो सकता, वह तुम कर सकते हो। तुमने तो मुझे भी दण्ड दिया है, अन्यों का तो फिर कहना ही क्या?

अनुभाष्य

२४। जे ना हय, से (जो नही होता, वह),— जो निरपेक्षत्व रक्षित नहीं होता, वह।

मातार गृहे रह जाइ' मातार चरणे।
तोमार आगे नाहि कारो स्वच्छन्दाचरणे॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—''तुम श्रीशची माता के घर पर जाकर उनके श्रीचरणों में ही रहना। तुम्हारे समक्ष कोई भी स्वच्छन्द रूप से आचरण नहीं कर पायेगा।

मध्ये मध्ये आसिबा कभु आमार दरशने।
शीघ्र करि' पुनः ताँहा करह गमने॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—''बीच-बीच में कभी मुझसे मिलने के लिये आना तथा फिर शीघ्र ही पुनः वहाँ लौट जाना।

प्रभु की प्रसन्नता का वर्णन करके शुद्ध गौर स्नेहवात्सल्यमयी शचीमाता को सन्तुष्ट करने का आदेश—

मातारे कहिह मोर कोटी नमस्कारे।
मोर सुख-कथा कहि' सुख दिह' ताँरे॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—''श्रीशची माता को मेरा कोटि-कोटि नमस्कार कहना। मेरे सुखपूर्ण जीवन की बातें बताकर माता को प्रसन्न रखना।

'निरन्तर निज-कथा तोमारे शुनाइते।
एइ लागि' प्रभु मोरे पाठाइला इँहाते॥' २८ ॥

२८। प० अनु०—''तुम श्रीशची माता से कहना कि निमाञि ने निरन्तर उनकी बातें आपको सुनाने के लिये ही मुझे आपके पास भेजा है।

एत कहि' मातार मने सन्तोष जन्माइह।
आर गुह्य कथा ताँरे स्मरण कराइह॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—''ऐसा कहकर श्रीशची माता के मन में सन्तुष्टि उत्पन्न कराना तथा उन्हें मेरी अन्य एक और गूढ़ बात स्मरण कराना—।

माता के घर में प्रभु का आविर्भाव और भोजन-लीला—

'बारे बारे आसि' आमि तोमार भवने।
मिष्ठान्न व्यञ्जन सब करिये भोजने॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—''मैं बार-बार आपके भवन में आता हूँ तथा मिष्ठान्न व्यञ्जन आदि सबका भोजन करता हूँ।

भोजन करिये आमि, तुमि ताहा जान।
बाह्य विरहे ताहा स्फूर्त्ति करि' मान'॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—''मैं भोजन करता हूँ आप उसे जानती हैं, किन्तु तब भी विरह के कारण बाहर में उसे केवल स्फूर्त्ति ही मानती हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

३१। जगत् के प्रति जब तुम्हारी बाह्यदृष्टि होती है, तब तुम्हारे मन में,—'निमाञि मेरे स्मरण पथ पर आया था'—यद्यपि ऐसी स्फूर्त्तिमात्र होती है; किन्तु मैं सचमुच ही तुम्हारे निकट जाकर अन्न-व्यञ्जन आदि भोजन करता हूँ।

अनुभाष्य

३१। बाह्य दृष्टि से विरह के कारण तुम मुझे प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखने पर भी मेरी भोजन-लीला के भली-भाँति दर्शन से अत्यधिक वात्सल्यप्रेम से भरकर मानो मुझे साक्षात् रूप से ही अनुभव कर रही हो, ऐसा मानकर भ्रम करती हो।

शची के विश्वास को उत्पन्न करने के लिये एक दिन की घटना का वर्णन—

एइ माघ-संक्रान्त्ये तुमि रन्धन करिला।
नाना व्यञ्जन, क्षीर, पिठा, पायस रान्धिला॥ ३२॥

३२। प० अनु०—''इसी माघ मास की संक्रान्ति के दिन ही आपने अनेक व्यञ्जन, घना दूध, पीठा तथा खीर आदि का रन्धन किया।

कृष्णे भोग लागाञा जबे कैला ध्यान।
आमार स्फूर्त्ति हैल, अश्रु भरिल नयन॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—''श्रीकृष्ण को भोग लगाने के बाद जब आपने ध्यान किया, तब आपको मेरी स्फूर्त्ति हो आयी तथा आपके नेत्र अश्रुओं से भर गये।

आस्ते-व्यस्ते आमि गिया सकलि खाइल।
आमि खाइ,—देखि' तोमार सुख उपजिल॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०— ''मैं बहुत ही झटपट करके वहाँ गया तथा मैंने सबकुछ खा लिया। मैं खा रहा हूँ, ऐसा देखकर आपको बहुत प्रसन्नता हुई थी।

क्षणेके अश्रु मुछिया शून्य देखि' पात।
स्वप्न देखिलुँ, 'जेन निमाञि खाइल भात'॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—''थोड़ी देर के बाद अश्रुओं को पोंछकर जब आपने भोजन के पात्र को खाली देखा तब आपने सोचा कि शायद मैंने स्वप्न में देखा है कि निमाञि ने भात खाया है।

बाह्य-विरह-दशाय पुनः भ्रान्ति हैल।
'भोग ना लागाइलुँ',—एइ ज्ञान हैल॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—''बाहरी रूप से मुझसे विरह की दशा में आपको पुनः भ्रान्ति हुयी तथा ऐसा लगा कि शायद आपने भोग ही नहीं लगाया है।

पाकपात्रे देखिला, सब अन्न आछे भरि'।
पुनः भोग लागाइला, स्थान-संस्कार करि'॥ ३७॥

३७। प० अनु०—''तब आपने रसोई के बर्तनों को जाकर देखा तथा पाया कि पात्रों में सबकुछ तो ज्यों-का-त्यों भरा हुआ है। तब आपने स्थान का सस्कार करके पुनः भोग लगाया।

शची माता का शुद्ध गौर-वात्सल्य-प्रेम –

एइमत बार बार करिये भोजन।
तोमार शुद्धप्रेमे मोरे करे आकर्षण॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—''इस प्रकार मैं बार-बार आकर भोजन करता हूँ। आपका शुद्धप्रेम मुझे आकर्षित करता है।

प्रभु के अतुलनीय मातृभक्ति सूचक वचन–

तोमार आज्ञाते आमि आछि नीलाचले।
निकटे लञा जाओ आमा तोमार प्रेमबले॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—''मैं आपकी आज्ञा से ही नीलाचल में रह रहा हूँ। आप मुझे अपने प्रेम के बल से अपने निकट खींच लेती हो।

एइमत बार बार कराइह स्मरण।
मोर नाम लञा ताँर वन्दिह चरण॥'' ४० ॥

४०। प० अनु०—''हे दामोदर! इस प्रकार बारम्बार तुम उन्हें यह बातें स्मरण कराना तथा मेरी ओर से उनके चरणों की वन्दना करना।''

एत कहि' जगन्नाथेर प्रसाद आनाइला।
माताके, वैष्णवे दिते पृथक् पृथक् दिला॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीदामोदर पण्डित को इतना कहकर श्रीजगन्नाथदेव का प्रसाद मँगवाया तथा श्रीशचीमाता और अन्य-अन्य वैष्णवों को देने के लिये पृथक-पृथक भाग कर दिया।

दामोदर का नवद्वीप में आगमन एवं शची और अद्वैत आदि भक्तों को लाया हुआ महाप्रसाद देना–

तबे दामोदर चलि' नदीया आइला।
मातारे मिलिया ताँर चरणे रहिला॥ ४२ ॥

४२। प० अनु०—तब श्रीदामोदर पण्डित जगन्नाथ पुरी से चलकर नवद्वीप आ गये तथा श्रीशचीमाता से मिलकर उनके चरणों के आश्रय में रहने लगे।

आचार्यादि वैष्णवेरे महाप्रसाद दिला।
प्रभुर जैछे आज्ञा, पण्डित ताहा आचरिला॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—श्रीदामोदर पण्डित ने श्रीअद्वैताचार्य आदि वैष्णवों को महाप्रसाद दिया। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीदामोदर पण्डित को जो आज्ञा प्रदान की थी, उन्होंने उसी का पालन किया।

नवद्वीप में दामोदर के कठोर शासन के द्वारा मर्यादा-संस्थापन, सभी को ही भय–

दामोदर-आगे स्वातन्त्र्य ना हय काहार।
तार भये सबे करे सङ्कोच व्यवहार॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—श्रीदामोदर पण्डित के समक्ष किसी की भी स्वतन्त्रता नहीं चलती थी, उनके भय से सभी संकुचित होकर ही व्यवहार इत्यादि करते थे।

प्रभुगणे जाँर देखे अल्प मर्यादा-लङ्घन।
वाक्यदण्ड करि' करे मर्यादा-स्थापन॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—श्रीदामोदर पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों में से यदि किसी को थोड़ी भी मर्यादा का उल्लंघन करते हुए देखते, तब वे उसे वाक्यदण्ड प्रदान करके मर्यादा का स्थापन करते थे।

दामोदर के वाक्यदण्ड के वृत्तान्त का श्रवण करके आत्मेन्द्रिय तृप्ति वाञ्छा रूपी कैतव और अपराध का नाश–

एइ त' कहिल दामोदरेर वाक्यदण्ड।
जाहार श्रवणे भागे 'अज्ञान' 'पाषण्ड'॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—इस प्रकार मैंने [श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने] श्रीदामोदर पण्डित के वाक्यदण्ड का वर्णन किया, जिसके श्रवण से 'अज्ञान' तथा 'पाषण्डता' इत्यादि भाग जाते हैं।

अनुभाष्य

४६। भागे,—पलायन करता है।

अत्यधिक गम्भीर-रहस्यमयी चैतन्यलीला–

चैतन्येर लीला—गम्भीर, कोटिसमुद्र हैते।
कि लागि' कि करे, केह ना पारे बुझिते॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की लीला करोड़ो समुद्रों से भी गम्भीर है। श्रीमन्महाप्रभु किसलिए क्या करते हैं, इसे कोई भी नहीं समझ सकता।

अतएव गूढ़ अर्थ किछुइ ना जानि।
बाह्य अर्थ करिबारे करि टानाटानि॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—अतएव मैं श्रीमन्महाप्रभु द्वारा की जाने वाली लीलाओं के गूढ़ अर्थों को बिल्कुल भी नहीं जानता हूँ, केवल मात्र बाहरी अर्थों को प्रकाशित करने के लिये ही खींचातानी करता हूँ।

प्रभु-हरिदास-संवाद; प्रभु का प्रश्न, हरिदास का उत्तर—

एकदिन प्रभु हरिदासेरे मिलिला।
ताँहा लञा गोष्ठी करि' ताँहारे पुछिला॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—एकदिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर से मिले। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर से इष्टगोष्ठी करते हुए उनसे पूछा—।

अनुभाष्य

४९। पाठान्तर में इस स्थान पर यह श्लोक दिखलायी देता है,—''दामोदराद्वाक्यदण्डमङ्गीकृत्य दयानिधिः। गौरः स्वां हरिदासास्याद्- गूढ़लीलामथाशृणोत्॥'' [अर्थात् दयानिधि श्रीगौरचन्द्र ने श्रीदामोदर पण्डित के द्वारा दिये गये वाक्य रूपी दण्ड को अङ्गीकार करने के पश्चात् श्रीहरिदास के मुख से अपनी गूढ़लीला का श्रवण किया।]

प्रभु के द्वारा हरिदास से कलियुग में सुदुराचारी अन्त्यज्य-आदि के उद्धार के उपाय की जिज्ञासा—

''हरिदास, कलिकाले यवन अपार।
गो-ब्राह्मणे हिंसा करे महा-दुराचार॥ ५० ॥
इहा-सबार कोन् मते हइबे निस्तार?
ताहार हेतु ना देखिये,—ए दुःख अपार॥'' ५१ ॥

५०-५१। प० अनु०—''हे हरिदास! कलियुग में असंख्य यवन हैं। वे अत्यधिक दुराचारी एवं गैयाओं तथा ब्राह्मणों के प्रति हिंसा करने वाले हैं। इन सबका किस प्रकार से उद्धार होगा? मैं इनके उद्धार का कोई उपाय नहीं देख पाने के कारण अत्यन्त दुःखी हूँ।''

हरिदास का उत्तर; नामाभास के माहात्म्य का कीर्त्तन—

हरिदास कहे,—''प्रभु, चिन्ता ना करिह।
यवनेर संसार देखि' दुःख ना भाविह॥ ५२ ॥
यवन सकलेर 'मुक्ति' हबे अनायासे।
'हा राम, हा राम' बलि' कहे नामाभासे॥ ५३ ॥

५२-५३। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''हे प्रभु! आप किसी भी प्रकार की चिन्ता मत कीजिए। यवनों के संसार रूपी दुःख को देखकर दुःखी मत होइए। इन यवनों की मुक्ति तो अनायास ही हो जायेगी, कारण, ये लोग तो 'हा राम, हा राम' बोलकर नामाभास करते हैं।

महाप्रेमे भक्त कहे,—'हा राम', 'हा राम'।
यवनेर भाग्य देख, लय सेइ नाम॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—''भक्तगण अत्यन्त प्रेम में 'हा राम, हा राम' का उच्चारण करते हैं, आप इन यवनों का भाग्य देखिये, ये भी उसी नाम का उच्चारण करते हैं।

नामाभास का अतुलनीय प्रभाव—

यद्यपि अन्यत्र सङ्केते हय नामाभास।
तथापि नामेर तेज ना हय विनाश॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—''यद्यपि नामी के प्रति लक्ष्य न रखकर अन्य वस्तु अथवा व्यक्ति को सङ्केत करके अर्थात् लक्ष्य करके नाम का उच्चारण करने से नामाभास (नाम का आभास)होता है, तथापि नाम का तेज नष्ट नहीं होता।

(नृसिंह-पुराण-वचन)—

दंष्ट्रिदंष्ट्राहतो म्लेच्छो हा रामेति पुनः पुनः।
उक्त्वापिमुक्तिमाप्नोति किं पुनः श्रद्धया गृणन्॥ ५६॥

अमृतप्रवाह भाष्य

५६। ''किसी म्लेच्छ ने किसी काटने वाले वराह (सुअर) के द्वारा काटे जाने पर घृणापूर्वक 'हाराम', 'हाराम' यह शब्द बोलने पर भी मृत्यु के समय मुक्ति को प्राप्त किया था। 'हाराम' शब्द में 'हा राम' यह साङ्केतिक 'राम' शब्द होने पर, वह म्लेच्छ नाम के सङ्केत (नामाभास के बल) से उद्धार प्राप्त कर गया। श्रद्धापूर्वक 'राम' नाम लेने से क्या होता है, उस का वर्णन नहीं किया जा सकता।

अनुभाष्य

५६। दंष्ट्रिदंष्ट्राहतः (दंष्ट्री वराहः तस्य दंष्ट्रया दशनेन आहतः यः सः) म्लेच्छः (यवनः) 'हाराम' इति (यावनिकभाषायाम् अस्पृश्यत्वज्ञापकं शब्दविशेषं) पुनः पुनः उक्त्वा अपि मुक्तिं (नामाभासबलेन भवबन्धनात् मोचनम्) आप्नोति (आप); श्रद्धया गृणन् (नाम्नः बलेन) किं पुनः वक्तव्यम्?

अजामिल का पुत्र के नाम के सङ्केत से नामाभास–

अजामिल पुत्रे बोलाय बलि 'नारायण'।
विष्णुदूत आसि' छाड़ाय ताहार बन्धन॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—''अजामिल ने 'नारायण' कहकर अपने पुत्र को पुकारा था, किन्तु उसी के प्रभाव से विष्णु के दूतों ने आकर यमदूतों से उसके बन्धन को छुड़वाया था।

'हा राम' के उच्चारण से नामाभास–

'राम' दुइ अक्षर इहा नहे व्यवहित।
प्रेमवाची 'हा'-शब्द ताहाते भूषित॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०— ''यवन लोगों के द्वारा उच्चारित 'हा राम' में 'राम' नामक दो अक्षरों में किसी प्रकार का कोई व्यवधान (बाधा) नहीं है, बल्कि उसमें प्रेमपूर्वक कहा जाने वाला 'हा' शब्द भूषण-स्वरूप विभूषित है।

नाम का अतुलनीय तेज –

नामेर अक्षर - सबेर एइ त' स्वभाव ।
व्यवहित हैलेह ना छाड़े आपन-प्रभाव ॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—''[व्यवधान-रहित होने की तो बात ही क्या] नाम के समस्त अक्षरों का यही तो स्वभाव है कि वह व्यवधान युक्त होने पर भी अपने प्रभाव को नहीं छोड़ते।

अनुभाष्य

५९। व्यवहित, – इस स्थान पर, वर्ण अथवा अक्षर गत व्यवधान, अथवा तत्त्वगत 'व्यवधान' उद्दिष्ट नहीं हुआ ; क्योंकि, वैसा जड़ीय व्यवधान –श्रद्धाहीन जीवों के आत्मेन्द्रिय तर्पण अथवा जड़ीय भोग परायण प्रवृत्ति से उत्पन्न होता है, अतएव वह शुद्धनाम नहीं है, जड़ीय शब्द अथवा अक्षर का एकत्रित होना मात्र है, वह शुद्धनाम के उच्चारण के फल का अर्थात्, कृष्णप्रेम प्राप्ति का प्रतिबन्धक (बाधक) मात्र है; दूसरी ओर, यहाँ पर सेवोन्मुख व्यक्ति का अस्फुट अथवा खण्ड आंशिक नामोच्चारण रूपी व्यवधान ही उद्दिष्ट हुआ है, जिस कारण उसके होने पर भी श्रीनामप्रभु सेवोन्मुख व्यक्ति के श्रद्धायुक्त हृदय में अपने प्रभाव अर्थात् अनर्थों के क्षय और प्रेमोदय रूपी फल के दान की शक्ति प्रकटित करते हैं ।

दस-अपराध रहित नामाभास के श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण के फल से ही अनर्थ-क्षय; नामापराध से–अनर्थ निवृत्ति और प्रेम में बाधा–हरिभक्ति विलास (१.२८९) एवं पद्म-पुराण-वचन–

नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा
शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहित-रहितं तारयत्येव सत्यम्।
तच्चेद्देह द्रविण जनता लोभ-पाषण्ड-मध्ये
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ॥ ६०॥

अमृतप्रवाह भाष्य

६०। जिसके मुख में एक हरिनाम उदित होता है, स्मरण के पथ अथवा श्रोतमूल (कान) को प्राप्त होता है, वह शुद्धवर्ण के द्वारा ही कहा जाये अथवा व्यवधानयुक्त

अशुद्धवर्ण के द्वारा ही कहा जाये, व्यवधान रहित ही हो, अथवा खण्ड मात्र (अपूर्ण) ही उच्चारित हो, नाम-ग्रहण करने वाले का अवश्य ही उद्धार करता है। हे विप्र, यद्यपि नाम का ऐसा माहात्म्य है, किन्तु वह नामाक्षर देह, द्रविण, जनता (जन बल की प्राप्ति) तथा लोभ इत्यादि पाषाण स्वरूप अपराधों में पतित होने पर शीघ्र फल उत्पन्न करने वाला नहीं होता अर्थात् नामापराध से निवृत्ति का जो उपाय है, उसका अवलम्बन (आश्रय) नहीं करने पर नामापराध दूर नहीं होता। ('लोभ-पाषण्ड-मध्ये' ऐसा पाठ भी है)।

अनुभाष्य

६०। हे विप्र, एकं नाम (कृष्णनाम) यस्य (सुकृतिनः) वाचि (उच्चारितं) स्मरणपथगतं (स्मृतमित्यर्थः) श्रोत्रमूलं गतं (आकर्णितं) वा, शुद्धवर्णं अशुद्धवर्णं वा, व्यवहितरहितं (व्यवहितानि व्यवधानानि दशनामापराधरूपाणि अन्तराणि तैः रहितं शून्यं निरन्तरमिति यावत्; यद्वा, व्यवहितं तद्रहितं च; तत्र 'व्यवहितं' शब्दान्तरेण अक्षरान्तरेण भावान्तरेण वा अन्तरितं, 'तद्रहितं' केनचिदंशेनहीनम् अपि) वा (सत् तादृशोच्चारणकारिणं) तारयति (उद्धारयति) एव (इति) सत्यम् ; चेत् (यदि) तत् (नाम) देह-द्रविण- जनता-लोभ-पाषण्ड-मध्ये ('देहः' नश्वरं कुणपं, 'द्रविणं' धनं, 'जनता' आभिजनस्य, स्त्रीजनस्य लोकसंग्रहमूलायाः प्रतिष्ठायाः वा स्पृहा, 'लोभः' असति बहिरर्थे लौल्यं, जिह्वालाम्पट्यं वा, 'पाषण्डः' हरिगुरुवैष्णवावज्ञारूपः अपराधः,— एतेषु मध्ये) निक्षिप्तं (विन्यस्तं, निजेन्द्रियतर्पणकामनायै प्रयुक्तम् अनुशीलितं वा तदा) अत्र (इह लोके तुच्छफल-प्रदत्वात्) शीघ्रं (सद्यः) फलजनकं (परमफलप्रदं) न स्यात् (न भवेत्)।

हरिभक्तिविलास के एकादश विलास २८९ संख्या की दिग्दर्शिनी टीका में श्रीसनातन प्रभु—''वाचि गतं प्रसङ्गाद् वाङ्मध्ये प्रवृत्तमपि, स्मरणपथगतं कथञ्चिन्मनः स्पृष्टमपि, श्रोत्रमूलं गतं किञ्चित् श्रुतमपि; शुद्धवर्णं वा अशुद्धवर्णं अपि वा, 'व्यवहितं' शब्दान्तरेण यद्वयवधानं, वक्ष्यमाण-नारायण-शब्दस्य किञ्चिदुच्चारणानन्तरं प्रसङ्गादापतितं शब्दान्तरं तेन रहितं सत्; यद्वा, यद्यपि 'हलं रिक्तम्' इत्याद्युक्तौ हकार-रिकारयोर्वृत्त्या हरीति नामास्त्येव, तथा 'राजमहिषी' इत्यत्र राम-नामापि, एवमन्यदप्यूह्यं, तथापि तत्तन्नाम-मध्ये व्यवधायकम-क्षरान्तरमस्तीत्येतादृश व्यवधान-रहित मित्यर्थः ; यद्वा, व्यवहितञ्च तद्रहितञ्चापि वा ; तत्र 'व्यवहितं'— नाम्नः किञ्चिदुच्चारणानन्तरं कथञ्चिदापतितं शब्दान्तरं समाधाय पश्चान्नामावशिष्टाक्षरग्रहणमित्येवं रूपं, मध्ये शब्दान्तरेणान्तरितमित्यर्थः, 'रहितं' पश्चादवशिष्टाक्षरग्रहण वर्जितं, केनचिदंशेन हीनमित्यर्थः, तथापि तारयत्येव— सर्वेभ्यः पापेभ्योऽपराधेभ्यश्च संसारादप्युद्धारयत्येवेति सत्यमेव; किन्तु नामसेवनस्य मुख्यं यत् फलं, तन्न सद्यः सम्पद्यते तथा देहभरणाद्यर्थमपि नामसेवनेन मुख्यं फलमाशु न सिद्धयतीत्याह—तच्चेदिति। तन्नाम चेत् यदि देहादिमध्ये निक्षिप्तं—देहभरणाद्यर्थमेव विन्यस्तं, तदापि फलजनकं न भवति किम्? अपि तु भवत्येव, किन्तु अत्र इहलोके शीघ्रं न भवति, किन्तु विलम्बेनैव भवतीत्यर्थः।'' [अर्थात् श्रीनाम 'वाचि गतं' अर्थात् प्रसङ्ग वशतः जिह्वा में प्रवृत्त होने पर भी, 'स्मरण-पथगतं' अर्थात् किसी प्रकार से मन से स्पृष्ट होने पर भी, 'श्रोत्रमूलं गतं' अर्थात् किञ्चित् सुनाई देने पर भी, शुद्ध वर्ण अथवा अशुद्ध वर्ण होने पर भी एवं 'व्यवहित-रहितं'-व्यवहित अर्थात् शब्दान्तर के द्वारा जो व्यवधान, जैसे, उपयुक्त 'नारायण'-शब्द के किञ्चित् उच्चारित होने के पश्चात् प्रसङ्ग वशतः आये किसी अन्य शब्द, उस प्रकार के व्यवधान से रहित होकर, अथवा-यद्यपि 'हलं रिक्तम्', इस प्रकार की उक्ति में 'ह' कार और 'रि' कार इन दोनों की वृत्ति के द्वारा 'हरि', यह नाम बनता है उसी प्रकार 'राजमहिषी'-यहाँ पर 'राम' नाम भी बनता है, इस प्रकार अकथित अन्य जो सब नाम बनते हैं, तथापि उन-उन नामों के बीच में व्यवधान उत्पन्न करने वाले अन्य जो अक्षर वर्त्तमान रहते हैं, उस प्रकार के व्यवधान से रहित-यही अर्थ है; अथवा 'व्यवहितरहितं' का अर्थ व्यवहित एवं तद्रहित

है,ऐसा अर्थ भी होता है—ऐसे में 'व्यवहित ' का अर्थ है— नाम के किञ्चित् उच्चारण के पश्चात् किसी भी प्रकार से आये अन्य शब्द को संलग्न करने के बाद वाले नाम के अवशिष्ट अक्षर को ग्रहण, इस प्रकार के व्यवधान युक्त रूप अर्थात् शब्दान्तर के द्वारा अन्तरित (व्यवहित) यही अर्थ, एवं 'तद्रहित' का अर्थ—नाम का अवशिष्ट जो अक्षर है, उसे ग्रहण किये बिना अर्थात् किसी अंश में हीन (कम), यह अर्थ; तथापि उक्त नाम 'तारयत्येव' अर्थात् सब प्रकार के पापों से एवं अपराधों से यहाँ तक कि संसार से भी उद्धार करता है—यह सत्य ही है; किन्तु नाम सेवन का जो मुख्य फल है, वह शीघ्र सम्पादित नहीं होता तथा देह के पोषण आदि के लिये नाम के सेवन के द्वारा मुख्य फल लेशमात्र भी सिद्ध नहीं होता—यही 'तच्चेद्' इत्यादि अंश से कहा जा रहा है। वह नाम यदि देह आदि में निक्षिप्त होता है अर्थात् देह के पोषण आदि के लिये विन्यस्त (रचित) होता है, ऐसा होने पर भी क्या वह फलदायक नहीं होता? निश्चय ही होता है, तब भी 'अत्र' अर्थात् इस लोक में, शीघ्र नहीं होता किन्तु देरी से होता है— यह अर्थ है।]

मध्य-लीला के षोड़श परिच्छेद की ७२ वीं संख्या का अनुभाष्य एवं भक्तिसन्दर्भ की २६५ वीं संख्या में श्रीजीवप्रभु द्वारा रचित इस श्लोक की कारिका द्रष्टव्य है।

नामाभास से समस्त अनर्थों की निवृत्ति—

नामाभास हैते हय सर्वपापक्षय।
नामाभास हैते हय संसारेर क्षय॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—''नामाभास से समस्त प्रकार के पापों का क्षय होता है तथा नामाभास से संसार [-बन्धन] का क्षय हो जाता है।

नामाभास से महापातक का नाश—(भः रः सिः दः विः विभावलहरी का १०३ वाँ श्लोक)

तं निर्व्याजं भज गुणनिधे पावनं पावनानां
श्रद्धा रज्यन्मतिरतितरामुक्तमःश्लोकमौलिम्।
प्रोद्यन्नन्तः करणकुहरे हन्त यन्नामभानो-
राभासोऽपि क्षपयति महापातकध्वान्तराशिम्॥ ६२॥

अमृतप्रवाह भाष्य

६२। हे गुणनिधे, आप परम-पावन उत्तम श्लोक मौलि (शिरोमणि) श्रीकृष्ण का श्रद्धामूलक मति के साथ अत्यधिक शीघ्र ही सरलभाव से भजन करो; कारण, उनके नामरूपी सूर्य का आभास भी अन्तःकरण में उदित होने पर महापातकरूपी अन्धकार राशि को विनष्ट कर देता है।

अनुभाष्य

६२। हे गुणनिधे, यन्नामभानोः (यद् यस्य भगवतः नाम एव भानुः भास्करः तस्य नामरूपिणः सूर्यस्य) आभासः (अपराधरूप-तमोऽतीतः ईषत् प्रकाशः) अन्तःकरणकुहरे (चितगह्वरे) प्रोद्यन् (प्रकटयन्) महापातकध्वान्तराशिं (महापातकम् एव धवान्तं तस्य राशिम् अन्धकारततिं) हन्त क्षपयति (दूरीकरोति), तं पावनानां पावनं (पवित्री कुर्वतां तीर्थानाम् अपि पावनं पावित्र्यकरं) उत्तमः श्लोकमौलिं (उत् उद्गच्छति तमः यस्मात् तथाभूतः श्लोकः कीर्तिः येषां तेषां मौलिं शिरोभूषणं) तं (श्रीकृष्णं) श्रद्धा रज्यन्मतिः (श्रद्धया सुदृढ़विश्वासेन रज्यन्ती उल्लसन्ती रागमयी मतिः बुद्धिः यस्य तथाभूतः सन्) अतितरां (शीघ्रं) निर्व्याजं (निष्कपटं यथा स्यात्तथा) भज।

नामाभास से मुक्ति—श्रीमद्भागवत (६.२.४९) में—

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन्॥ ६३॥

अमृतप्रवाह भाष्य

६३। ''पुत्र के उद्देश्य से हरिनाम ग्रहण करके ही मुमूर्षु (मृत्यु के मुख में पतित/मरणोन्मुख) अजामिल ने जब वैकुण्ठ में गमन किया, तब श्रद्धापूर्वक नाम लेने से जो फल प्राप्त होता है, उसके विषय में वर्णन नहीं किया जा सकता।

अनुभाष्य

६३। मृत्यु के समय सङ्केत नामाभास के फल से पापमुक्त अजामिल के पुनर्जीवन प्राप्त करने के बाद पश्चाताप सहित श्रीहरि की आराधना के फल से वैकुण्ठ में जाने का वर्णन करके, शुकदेव अध्याय के अन्त में परीक्षित के समक्ष प्रसङ्गवशत: नामाभास और शुद्धनाम के माहात्म्य के वैशिष्ट्य का कीर्त्तन कर रहे हैं—।

अजामिल: म्रियमाण: (मृत्युमुखासीन: अवशत्वेन श्रद्धाविहीनोऽपि) पुत्रोपचारितं (नारायणेति पुत्रनामतया कथितं) हरे: नाम गृणन् (उच्चारयन्) धाम (वैकुण्ठपदं) अगात् (जगाम), श्रद्धया (अप्राकृत- दृढ़विश्वासेन सह तत् नाम) गृणन् (जन:) किमुत् (किं वक्तव्यम्)?

श्लोक का अर्थ—

नामाभासे 'मुक्ति' हय सर्वशास्त्रे देखि।
श्रीभागवते ताते अजामिल —साक्षी॥'' ६४ ॥

६४। प० अनु०—''सभी शास्त्रों में लिखा हुआ देखता हूँ कि नामाभास से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत में वर्णित अजामिल ही इसके साक्षी हैं।''

प्रभु के हर्ष की वृद्धि, पुन: प्रश्न—

शुनिया प्रभुर सुख बाड़ये अन्तरे।
पुनरपि भङ्गी करि' पुछये ताँहारे॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—यद्यपि श्रीहरिदास ठाकुर के वचन सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के हृदय में आनन्द वर्धित हो रहा था, तथापि उन्होंने पुन: भङ्गिमा करते हुए श्रीहरिदास ठाकुर से पूछा—।

स्थावर-जङ्गम-जीवों के उद्धार के उपाय की जिज्ञासा—

''पृथिवीते बहुजीव — स्थावर-जङ्गम।
इहा-सबार कि प्रकारे हइबे मोचन??'' ६६ ॥

६६। प० अनु०—''हे हरिदास! पृथ्वी पर तो स्थावर और जङ्गम—बहुत प्रकार के जीव हैं। इन सबका उद्धार किस प्रकार होगा?''

हरिदास का उत्तर—

हरिदास कहे,—''प्रभु, से कृपा तोमार।
स्थावर-जङ्गम आगे कैराछ निस्तार॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आपने अपनी कृपा से स्थावर और जङ्गम जीवों का पहले से ही उद्धार कर दिया है।

स्थावर और जङ्गम, दोनों प्रकार के जीवों के लिये उच्चनाम-सङ्कीर्त्तन श्रवण के प्रभाव का वर्णन—

तुमि जे कैराछ एइ उच्च सङ्कीर्त्तन।
स्थावर-जङ्गमेर सेइ हय त' श्रवण॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—''आपने जिस उच्च-सङ्कीर्त्तन की पद्धति का प्रवर्त्तन किया है, स्थावर और जङ्गम—सभी को ही तो वह सुनायी पड़ता है।

अनुभाष्य

६८। उच्च-सङ्कीर्त्तन का प्रभाव—चै: भा: आदि-लीला के १६ वें अ: की २७७-२९१ वीं संख्या एवं प्रभु के द्वारा सङ्कीर्त्तन का प्रवर्त्तन— श्री चै: च: आदि-लीला के तृतीय परिच्छेद की ७६ वीं संख्या और मध्य-लीला के ११ वें परिच्छेद की ९७-९८ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

शुनिया जङ्गमेर हय संसार-क्षय।
स्थावरे से शब्द लागे, प्रतिध्वनि हय॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—''उच्च-सङ्कीर्त्तन की ध्वनि को श्रवण करने से जङ्गम का संसार-क्षय होता है तथा स्थावर से उच्च-सङ्कीर्त्तन की ध्वनि जाकर टकराती है, तो उससे भी प्रतिध्वनि निकला करती है।

'प्रतिध्वनि' नहे सेइ करये कीर्त्तन'।
तोमार कृपार एइ अकथ्य कथन॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—''वास्तव में वह प्रतिध्वनि नहीं, बल्कि स्थावर के द्वारा किया जाने वाला कीर्त्तन ही है। आपकी कृपा का यह अकथ्य (वर्णनातीत) कथन है।

सकल जगते हय उच्च सङ्कीर्त्तन।
शुनिया प्रेमावेशे नाचे स्थावर-जङ्गम॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—''समस्त जगत् में उच्च-सङ्कीर्त्तन हो रहा है, जिसे सुनकर स्थावर तथा जङ्गम प्रेमावेश में नृत्य कर रहे हैं।

प्रभु की लीला से उच्च-सङ्कीर्त्तन के श्रवण के दृष्टान्त का प्रदर्शन—

जैछे कैला झारिखण्डे वृन्दावन जाइते।
बलभद्र-भट्टाचार्य कहियाछेन आमाते॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—''जैसा आपने वृन्दावन जाते समय झारिखण्ड के वन में किया था। बलभद्र भट्टाचार्य ने मुझे उस समस्त वृत्तान्त के विषय में बतलाया है।

अनुभाष्य

७२। मध्य-लीला के सप्तदश परिच्छेद की २४-५४ वीं संख्या द्रष्टव्य।

वासुदेव जीव लागि' कैल निवेदन।
तबे अङ्गीकार कैला जीवेर मोचन॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—''जिस समय श्रीवासुदेव दत्त ने जीवों के उद्धार के लिये आपके समक्ष निवेदन किया था, उस समय आपने जीवों का उद्धार करना अङ्गीकार किया था।

अनुभाष्य

७३। मध्य-लीला के पञ्चदश परिच्छेद की १५९-१७९ वीं संख्या द्रष्टव्य।

जगद्गुरु आचार्य के रूप में नाम-प्रेम-प्रचार के द्वारा प्रभु की जीवों के उद्धार की लीला के रहस्य का उद्घाटन—

जगत् निस्तारिते तोमार अवतार।
भक्तभाव आगे ताते कैला अङ्गीकार॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—''जगत्-वासियों का उद्धार करने के लिये ही आपने इस जगत् में अवतरण किया है। उस पर भी आपने भक्त के भाव को अङ्गीकार किया है।

उच्च सङ्कीर्त्तन ताते करिला प्रचार।
स्थिरचर जीवेर खण्डाइला संसार॥'' ७५ ॥

७५। प० अनु०—''उस पर भी आपने स्वयं उच्च-सङ्कीर्त्तन का प्रचार किया है एवं उसके द्वारा स्थावर-जङ्गम सभी जीवों का संसार मोचन कर दिया है।''

अनुभाष्य

७५। स्थिरचर,—स्थावर और जङ्गम।

प्रभु के द्वारा जीवों की मुक्ति की प्राप्ति के बाद ब्रह्माण्ड की अवस्था की जिज्ञासा—

प्रभु कहे,—''सब जीव मुक्ति जबे पाबे।
एइ त' ब्रह्माण्ड तबे जीवशून्य हबे!!'' ७६ ॥

७६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा,—''हे हरिदास! यदि समस्त जीवों को ही मुक्ति की प्राप्ति हो जायेगी, तब तो यह ब्रह्माण्ड जीवों से रहित हो जायेगा!''

हरिदास का उत्तर; प्रभु की कृपा से उनके प्रकट कालीन समस्त जीवों के उद्धार के बाद पुनः कारणोदशायी महाविष्णु से प्रकटित जीवों के द्वारा जगत् व्याप्ति—

हरिदास बले,—''तोमार जावत् मर्त्त्ये स्थिति।
तावत् स्थावर-जङ्गम, सर्वजीव-जाति॥ ७७ ॥
सब मुक्त करि' तुमि वैकुण्ठे पाठाइबा।
सूक्ष्मजीवे पुनः कर्मे उद्बुद्ध करिबा॥ ७८ ॥

७७-७८। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने उत्तर प्रदान किया,—''जब तक आप इस मर्त्यलोक में हैं, तब तक आप स्थावर-जङ्गम आदि सब प्रकार के जीवों को मुक्त करके वैकुण्ठ में भेज देंगे तथा सूक्ष्म जीवों को पुनः कर्म में प्रवृत्त कर देंगे।

अमृतप्रवाह भाष्य

७८। हे प्रभो, आपने ब्रह्माण्ड में अवतीर्ण होकर जितने जीवों के साथ सम्बन्ध बनाया है, सभी उद्धार प्राप्त करेंगे। इस प्रकार ब्रह्माण्ड यद्यपि उद्धार प्राप्त कर लेगा, तथापि आप पुनः अनन्त सूक्ष्मजीवों को कर्मक्षेत्र में

प्रवृत्त करेंगे। इस प्रकार ब्रह्माण्ड पुनः जीवों के द्वारा परिपूर्ण हो जायेगा।

सेइ जीव हबे इँहा स्थावर-जङ्गम।
ताहाते भरिबे ब्रह्माण्ड जेन पूर्व-सम॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—''वही जीव फिर यहाँ पर स्थावर-जङ्गम बनेंगे तथा उनसे यह ब्रह्माण्ड फिर से पूर्व की भाँति ही भर जायेगा।

पूर्वकाल में श्रीरामचन्द्र के द्वारा जीवों के उद्धार की लीला का दृष्टान्त—

पूर्वे जेन रघुनाथ सब अयोध्या लञा।
वैकुण्ठके गेला, अन्य जीवे अयोध्या भराञा॥ ८०॥

८०। प० अनु०—''पहले जैसे भगवान् श्रीरामचन्द्र समस्त अयोध्या-वासियों को वैकुण्ठ लेकर चले गये थे तथा अयोध्या पुनः अन्य जीवों से भर गयी थी।

अनुभाष्य

८०। रामायण (बङ्गवासी संस्करण) में उत्तरकाण्ड के १२२ वें सर्ग का २१-२२ श्लोक एवं १२३ सर्ग द्रष्टव्य।

अवतरि' तुमि ऐछे पातियाछ हाट।
केह ना बुझिते पारे तोमार गूढ़ नाट॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आपने भी अवतरित होकर वैसा ही हाट (अस्थायी बाजार) लगाया है अर्थात् जीवों के उद्धार के लिये वैसी ही लीला प्रकटित की है। आपके गूढ़ उद्देश्य को कोई भी नहीं समझ सकता।

पूर्व में श्रीकृष्ण द्वारा की गयी जीवों के उद्धार की लीला का दृष्टान्त—

पूर्वे जेन व्रजे कृष्ण करि' अवतार।
सकल-ब्रह्माण्ड-जीवेर खण्डाइला संसार॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—''पहले जैसे श्रीकृष्ण ने भी व्रज में अवतरित होकर ब्रह्माण्ड के समस्त जीवों को संसार-बन्धन से मुक्त कर दिया था।

स्वयं भगवान् कृष्ण में अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के उद्धार का सामर्थ्य—श्रीमद्भागवत (१०.२९.१६) में—

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे।
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते॥ ८३ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

८३। जिनसे यह स्थावर-अस्थावर जगत् सम्पूर्ण रूप में विमुक्त होता है, जन्मरहित भगवान् योगेश्वर उन कृष्ण के कार्यों में ऐसा विस्मय प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है।

अनुभाष्य

८३। रासपूर्णिमा की रात्रि में कृष्ण की वंशी की ध्वनि के श्रवण के कारण कृष्ण के मिलन रूपी सङ्ग की कामना करने वाली गोपियों के सौभाग्य का वर्णन करते-करते श्रीशुकदेव परीक्षित को परमेश्वर श्रीकृष्ण की महिमा का कीर्त्तन करते हुए उपदेश रूपी शिक्षा प्रदान कर रहे हैं— हे राजन्, यतः (श्रीकृष्णात्) एतत् (स्थावर- जङ्गमादिकमपि प्राणिमात्रं विमुच्यते, अतः) भवता भगवति (सर्वैश्वर्य-समन्विते) अजे (स्वयमाविर्भूते) योगेश्वरेश्वरे (योगैश्वर्याणामधीश्वरे परमे परमात्मनि) कृष्णे एवं (मोक्षदानशक्तौ) विस्मयः न च एव कार्यः।

विष्णुपुराण (४.१५.१७) में—

अयं हि भगवान् दृष्टः कीर्तितः
संस्मृतश्च द्वेषानुबन्धेनाप्यखिल-
सुरासुरादि दुर्लभं फलं प्रयच्छति,
किमुत सम्यग्भक्तिमताम् इति॥ ८४ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

८४। यह भगवान् द्वेष के साथ देखने, कीर्तित अथवा

स्मरण किये जाने पर भी जब अखिल सुर (देवता) और असुरों के लिये दुर्लभ फल दिया करते हैं, तब सम्पूर्ण रूप से भक्तिमान् व्यक्तियों के विषय में तो बात ही क्या?

अनुभाष्य

८४। द्वेषानुबन्धेनापि (शत्रुभावेनापि) अयं भगवान् हि दृष्टः (अवलोकितः), कीर्तितः (वाचा उच्चारितः) मनसा (संस्मृतः च) अखिलसुरासुरादिदुर्लभं फलं (मोक्षादिकं) प्रयच्छति, उत् सम्यग्-भक्तिमतां (अन्याभिलाषकर्मज्ञानाद्यभक्तिमार्गत्रय-त्यागपराणां शुद्धभक्तानां) किं वक्तव्यम्?

प्रभु के प्रकटकाल में ब्रह्माण्डके समस्त जीवों का ही उद्धार—

तैछे तुमि नवद्वीपे करि' अवतार।
सकल-ब्रह्माण्ड-जीवेर करिला निस्तार॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—"उसी प्रकार आपने नवद्वीप में अवतरित होकर समस्त ब्रह्माण्ड के जीवों का उद्धार कर दिया है।

हरिदास का दैन्य—

जे कहे,—'चैतन्य-महिमा मोर गोचर हय।'
से जानुक, मोर पुनः एइ त' निश्चय॥ ८६ ॥
तोमार जे लीला महा-अमृतेर सिन्धु।
मोर मनोगोचर नहे तार एक बिन्दु॥" ८७ ॥

८६-८७। प० अनु०—"जो कहता है 'मैंने श्रीचैतन्य महाप्रभु की महिमा जान ली है', तो वह जाने। किन्तु मेरा तो पुनः यही निश्चय है कि आपकी जो लीला महा-अमृत के सिन्धु के समान है, उसकी एक भी बूँद मेरे मन के गोचर नहीं है।"

अनुभाष्य

८६-८७। मध्य-लीला के एकविंश परिच्छेद की २५-२६ वीं संख्या और भाः १०.१४.३६ द्रष्टव्य।

भक्त के द्वारा भगवान् की लीला के रहस्य के उद्घाटन की क्षमता से भगवान् को भी विस्मय—

एत शुनि' प्रभुर मने चमत्कार हैल।
"मोर गूढ़लीला हरिदास केमने जानिल??" ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर के मुख से उपरोक्त विचार सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के मन में चमत्कार हुआ कि "मेरी गूढ़लीला को हरिदास ने कैसे जान लिया?"

अनुभाष्य

८८। गूढ़लीला,—जीवोद्धार-लीला।

प्रभु द्वारा आलिङ्गन—

मनेर सन्तोषे ताँरे कैला आलिङ्गन।
बाह्ये प्रकाशिते ताहा करिला वर्जन॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर के वचन सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुए, उन्होंने जी भरकर श्रीहरिदास ठाकुर का आलिङ्गन किया एवं श्रीहरिदास ठाकुर से उपरोक्त प्रकाशित अवतरित होने इत्यादि के विचार को जगत्वासियों के समक्ष प्रकाशित करने के लिये निषेध किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

८९। हरिदास के समस्त तात्त्विक वचनों को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु सन्तुष्ट हुए, किन्तु बाह्य दशा प्रकाश करके अपने स्तुतिमूलक वचन कहने से मना किया।

भक्तों के वश में भगवान्—

ईश्वर-स्वभाव,—ऐश्वर्य चाहे आच्छादिते।
भक्त-ठाञि लुकाइते नारे, हय त' विदिते॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—ईश्वर का स्वभाव सदैव अपने ऐश्वर्य को आच्छादित करना होता है किन्तु भक्तों के समक्ष उनका ऐश्वर्य छिप नहीं पाता, प्रकाशित हो ही जाता है।

अनुभाष्य

९०। आदि-लीला के तृतीय परिच्छेद की ८५-८९ वीं संख्या द्रष्टव्य।

भक्त के समक्ष अजित भी जित, वैकुण्ठ भी मापने योग्य—(आलवन्दारु अथवा श्रीयामुनाचार्यकृत-स्तोत्ररत्न का १८ वाँ श्लोक)

उल्लङ्घितत्रिविधसीमसमातिशायि-
सम्भावनं तव परिब्रढ़िमस्वभावम्।
मायाबलेन भवतापि निगुह्यमानं
पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्यभावाः॥ ९१ ॥

९१। अनु०—हे भगवन्! देश, काल एवं चिन्ता—इन्हीं तीन सीमाओं के द्वारा सभी वस्तु समूह आबद्ध हैं, किन्तु आपका गूढ़स्वभाव सम एवं अतिशय शून्य होने के कारण उक्त तीनों सीमाओं का अतिक्रमण करके विद्यमान है। मायाबल के द्वारा आप इस स्वभाव को आच्छादित करते हैं, परन्तु आपके अनन्य-भक्त सदैव आपके दर्शन करने योग्य होते हैं।

अनुभाष्य

९१। आदि-लीला के तृतीय परिच्छेद की ८८ वीं संख्या द्रष्टव्य।

प्रभु के द्वारा हरिदास की प्रशंसा—

तबे महाप्रभु निजभक्त-पाशे जाञा।
हरिदासेर गुण कहे शतमुख हञा॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०— तब श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्तों के निकट जाकर सौ-सौ मुखों वाले होकर अर्थात् अत्यन्त मुखर होकर श्रीहरिदास ठाकुर के गुणों का गान किया।

भक्तों के गुणों का कीर्त्तन करने वाले भगवान्—

भक्तेर गुण कहिते प्रभुर बाड़ये उल्लास।
भक्तगण-श्रेष्ठ ताते श्रीहरिदास॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—भक्तों के गुणों का वर्णन करने से श्रीमन्महाप्रभु का उल्लास बढ़ता ही जाता है, और उस पर भी श्रीहरिदास ठाकुर तो उन भक्तों में श्रेष्ठ हैं।

ठाकुर हरिदास की अनन्त गुण-राशि—

हरिदासेर गुणगण—असंख्य, अपार।
केह कोन अंशे वर्णि' नाहि पाय पार॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर के गुण असंख्य, अपार हैं। कोई उनके किसी गुण के एक अंश का भी वर्णन करते हुए उसका पार नहीं पा सकता।

चैतन्यभागवत में ठाकुर के गुण आंशिक रूप से वर्णित—

चैतन्यमङ्गले श्रीवृन्दावन-दास।
हरिदासेर गुण किछु कैराछे प्रकाश॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने श्रीचैतन्यभागवत में श्रीहरिदास ठाकुर के गुणों को आंशिक रूप से प्रकाशित किया है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९५। चैतन्यमङ्गल में, —चैतन्यभागवत आदि-लीला का चतुर्दश अध्याय द्रष्टव्य।

अपने चित्त की शुद्धि के लिये हरिदास के चरित्र रूपी अगाध सिन्धु के बिन्दु का स्पर्श—

सब कहा ना जाय हरिदासेर चरित्र।
केह किछु कहे करिते आपना पवित्र॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर के सम्पूर्ण चरित्र का वर्णन करना सम्भवपर नहीं है, यह जानने पर भी कोई-कोई स्वयं को पवित्र करने के लिये ही जितना हो सकता है, श्रीहरिदास ठाकुर के चरित्र के विषय में कुछ वर्णन करता है।

चैतन्यभागवत में अवर्णित चरित्र के अंश के वर्णन की ही प्रतिज्ञा—

वृन्दावन-दास जाहा ना कैला वर्णन।
हरिदासेर गुण किछु शुन, भक्तगण॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने श्रीहरिदास ठाकुर के जिन चरित्रों का वर्णन नहीं किया, हे भक्तो! अब आप श्रीहरिदास ठाकुर के गुणों से समन्वित उन चरित्रों का श्रवण करो।

बेनापोल में ठाकुर द्वारा रामचन्द्र-खाँन के द्वारा प्रेरित वेश्या के उद्धार का वृत्तान्त—

हरिदास जबे निज-गृह त्याग कैला।
बेनापोलेर वन-मध्ये कतदिन रहिला॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने जब अपने घर का त्याग किया तब वे बेनापोल के वन में आकर कुछ दिनों तक रहे।

अमृतप्रवाह भाष्य

९८। बेनापोल,—यशोहर जिले का एक ग्राम।

अनुभाष्य

९८। बेनापोल,—ई, वि, आर, रेल लाइन में खुलना के मार्ग पर बनगाँ जंक्शन के बाद बेनापोल स्टेशन है; उसका निकटवर्त्ती स्थान ही 'बेनापोल' है।

निर्जन-वने कुटीर करि' तुलसी सेवन।
रात्रि-दिने तिन-लक्ष नाम-सङ्कीर्त्तन॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने निर्जन वन में एक कुटीर बनायी थी तथा वे वहाँ पर तुलसी की सेवा करते थे एवं रात-दिन अर्थात् चौबीस घंटे में तीन लाख नाम-सङ्कीर्त्तन करते थे।

ब्राह्मणेर घरे करे भिक्षा निर्वाहण।
प्रभावे सकल लोक करये पूजन॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ब्राह्मणों के घर से भिक्षा माँगकर अपनी शरीर-यात्रा का निर्वाह करते थे। श्रीहरिदास ठाकुर के प्रभाव को देखकर सभी लोग उनका आदर-सत्कार करते थे।

सेइ देशाध्यक्ष नाम—रामचन्द्र-खाँन।
वैष्णवविद्वेषी सेइ पाषण्ड-प्रधान॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—उस बेनापोल के अध्यक्ष का नाम रामचन्द्र-खाँन था। वह महा पाषण्डी वैष्णव-विद्वेषी था।

हरिदासे लोके पूजे, सहिते ना पारे।
ताँर अपमान करिते नाना उपाय करे॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—रामचन्द्र खाँन लोगों के द्वारा किये जाने वाले श्रीहरिदास ठाकुर के आदर-सत्कार को सहन नहीं कर पा रहा था, इसी कारण वह श्रीहरिदास ठाकुर का अपमान करने के लिये अनेक उपाय करने लगा।

कोनप्रकारे हरिदासेर छिद्र नाहि पाय।
वेश्यागणे आनि' करे छिद्रेर उपाय॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—रामचन्द्र खाँन को श्रीहरिदास ठाकुर का अपमान करने के लिये उनमें किसी प्रकार का कोई दोष ढूँढ़कर भी नहीं मिला। इसलिए वह वेश्याओं को अपने निकट बुलवाकर श्रीहरिदास ठाकुर में किसी प्रकार से दोष को निकाल पाने के उपाय का सन्धान करने लगा।

वेश्यागणे कहे,—''एइ वैरागी हरिदास।
तुमि-सब कर इहार वैराग्य-धर्म नाश॥'' १०४ ॥

१०४। प० अनु०—रामचन्द्र खाँन ने वेश्याओं से कहा,—''तुम सब हरिदास नामक वैरागी के वैराग्यधर्म का नाश करो।''

वेश्यागण-मध्ये एक सुन्दरी युवती।
से कहे,—''तिन दिने हरिब ताँर मति॥'' १०५ ॥

१०५। प० अनु०—उन वेश्याओं में एक अत्यन्त सुन्दरी युवती वेश्या थी। उसने कहा,—''मैं तीन दिन में ही हरिदास की मति का हरण कर लूँगी।''

खाँन कहे — ''मोर पाइक जाउक तोमार सने।
तोमार सहित एकत्र तारे धरि' जेन आने।।'' १०६॥

१०६। प० अनु०—रामचन्द्र खान ने कहा,—''मेरा पाइक (सिपाही) तुम्हारे साथ चला जायेगा और वह तुम्हारे साथ उसे रङ्गे हाथो पकड़ लायेगा।''

वेश्या कहे,—''मोर सङ्ग हउक एकबार।
द्वितीयबारे धरिते पाइक लइमु तोमार॥'' १०७ ॥

१०७। प० अनु०—वेश्या ने कहा,—''पहले एकबार मेरे साथ उसका सङ्ग होने दो, फिर दूसरी बार मैं आपके सिपाही को हमें पकड़ने के लिये ले जाऊँगी।''

रात्रिकाले सेइ वेश्या सुवेश धरिया।
हरिदासेर वासाय गेल उल्लसित हञा॥ १०८ ॥

१०८। प० अनु०—रात्रि के समय में वह वेश्या बहुत सुन्दर वेश धारण करके अत्यन्त उल्लसित होकर श्रीहरिदास ठाकुर की भजन कुटीर में गयी।

तुलसी नमस्करि' हरिदासेर द्वारे जाञा।
गोसाञिरे नमस्करि' रहिला दाण्डाञा॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—वेश्या ने सर्वप्रथम श्रीहरिदास ठाकुर की भजन कुटीर के आङ्गन में विराजमान तुलसी को प्रणाम किया तथा फिर श्रीहरिदास ठाकुर की कुटिया के द्वार पर जाकर श्रीहरिदास ठाकुर को नमस्कार किया तथा वहीं खड़ी हो गयी।

अङ्ग उघाड़िया देखाइ बसिला दुयारे।
कहिते लागिला किछु सुमधुर स्वरे॥११०॥

११०। प० अनु०—फिर वह वेश्या अपने अङ्गों को उघाड़कर दिखलाते हुए द्वार पर बैठ गयी एवं बहुत मीठे स्वर में कहने लगी—।

''ठाकुर, तुमि—परमसुन्दर प्रथम यौवन।
तोमा देखि' कोन नारी धरिते पारे मन? १११ ॥

१११। प० अनु०—''हे हरिदास ठाकुर! आप परम सुन्दर हैं तथा आपने अभी-अभी युवावस्था में प्रवेश किया है। आपको देखकर कौन-सी नारी अपने मन को रोककर रख सकती है?

तोमार सङ्गम लागि' लुब्ध मोर मन।
तोमा ना पाइले प्राण ना जाय धारण॥'' ११२ ॥

११२। प० अनु०—''आपके साथ सङ्गम करने के लिये मेरा मन लालायित हो रहा है। आपको प्राप्त नहीं कर पाने की अवस्था में मेरे लिये प्राणों को धारण कर पाना असम्भव होगा।''

हरिदास कहे,—''तोमा करिमु अङ्गीकार।
संख्या-नाम-कीर्त्तन जावत् ना समाप्त आमार॥ ११३॥
तावत् तुमि बसि' शुन नाम-सङ्कीर्त्तन।
नाम-समाप्त हैले करिमु जे तोमार मन॥'' ११४ ॥

११३-११४। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''मैं तुम्हें अङ्गीकार करूँगा, किन्तु जब तक मेरे द्वारा की जा रही भगवान् के नाम-कीर्त्तन की संख्या पूर्ण नहीं हो जाये, तब तक तुम यहीं बैठकर नाम-सङ्कीर्त्तन का श्रवण करो। जब मेरी नाम-संख्या सम्पूर्ण हो जायेगी, तब मैं जो तुम्हारा मन चाहेगा, वही करूँगा।''

एत शुनि' सेइ वेश्या बसिया रहिला।
कीर्त्तन करे हरिदास प्रातःकाल हैला॥ ११५ ॥

११५। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर के मुख से इतना सुनकर वह वेश्या वहीं बैठी रही। श्रीहरिदास ठाकुर तो नाम-सङ्कीर्त्तन करते रहे, देखते-ही-देखते प्रातःकाल हो गया।

प्रातःकाल देखि' वेश्या उठिया चलिला।
समाचार रामचन्द्र-खाँनेरे कहिला॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०—प्रातःकाल देखकर वह वेश्या वहाँ से उठकर चली गयी तथा उसने रामचन्द्र खाँन को जाकर सब समाचार दिया तथा कहने लगी—।

"आजि आमार सङ्ग करिबे कहिला वचने।
अवश्य ताहार सङ्गे हइबे सङ्गमे॥" ११७ ॥

११७। प० अनु०—"हरिदास ने वचन दिया है कि 'वह आज मेरा सङ्ग करेगा' अतएव उसके साथ मेरा अवश्य ही सङ्गम होगा।"

आर दिन रात्रि हैले वेश्या आइल।
हरिदास तारे बहु आश्वास करिल॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—पुनः रात्रि होने पर वह वेश्या श्रीहरिदास ठाकुर की भजन कुटीर में आयी, उसे देखकर श्रीहरिदास ने उसे बहुत अधिक आश्वासन देते हुए कहा—।

"कालि दुःख पाइला, अपराध ना लइबा मोर।
अवश्य करिमु आमि तोमाय अङ्गीकार॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०—"कल तुम्हें मेरे कारण दुःख प्राप्त हुआ, इसके लिये मेरा कोई अपराध मत लेना। मैं तुम्हें अवश्य ही अङ्गीकार करूँगा।

तावत् इँहा बसि' शुन नाम-सङ्कीर्त्तन।
नाम पूर्ण हैले, पूर्ण हबे तोमार मन॥"१२०॥

१२०। प० अनु०—"तब तक तुम यहीं बैठकर नाम-सङ्कीर्त्तन का श्रवण करो। मेरी नाम की संख्या पूर्ण होने पर तुम्हारे मन की अभिलाषा भी पूर्ण होगी।"

तुलसीरे तबे वेश्या नमस्कार करि'।
द्वारे बसि' नाम शुने, बले—'हरि' 'हरि'॥ १२१ ॥

१२१। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर की बात सुनकर वेश्या तुलसी को प्रणाम करके द्वार पर बैठकर नाम सुनने लगी तथा 'हरि' 'हरि' बोलने लगी।

रात्रि-शेष हैल, वेश्या उसिमिसि करे।
तार रीति देखि' हरिदास कहेन ताहारे॥ १२२ ॥

१२२। प० अनु०— रात्रि समाप्त हो गयी। वेश्या कभी तो उठ रही थी तथा कभी बैठ रही थी। उसे ऐसा करते देखकर श्रीहरिदास ठाकुर ने उससे कहा—।

अमृतप्रवाह भाष्य

१२२। उसिमिसि करे,—उसिमिसि अर्थात् बारम्बार उठना बैठना करते-करते चञ्चल अथवा उतावली हो गयी।

ठाकुर हरिदास द्वारा अपनी महामन्त्र की दीक्षा का वर्णन और दैक्ष्य-ब्राह्मणता—

"कोटिनामग्रहण-यज्ञ करि एकमासे।
एइ दीक्षा करियाछि, हैल आसि' शेषे॥ १२३ ॥

१२३। प० अनु०—"मैं एक मास में एक करोड़ नाम ग्रहण करने का यज्ञ करता हूँ। मैंने ऐसा ही नियम बनाया हुआ है। अब वह प्रायः समाप्त होने ही वाला है।

अनुभाष्य

१२३। प्रतिदिन तीन लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस से थोड़ी सी ऊपर की संख्या की गणना करते हुए हरिनाम ग्रहण करने पर एकमास में एक करोड़ नाम होते हैं। इस नामग्रहण यज्ञ में नामी-स्वरूप भगवान् की उपासना होती है। साधारण लौकिक विश्वास के अनुसार हरिदास ठाकुर शौक्र अथवा सावित्र्य यज्ञ करने वाले के रूप में परिचित नहीं होने पर भी नामयज्ञ में दीक्षित होने के कारण, वैदिक एकायनशाखी दैक्ष ब्राह्मण के रूप में नाम-यज्ञ का साधन करते थे। त्रिज (तृतीयजन्म दीक्षा प्राप्त) हरिदास ठाकुर ने अप्राकृत याज्ञिक-ब्राह्मण बनकर जिस नामयज्ञ को आरम्भ किया था, वही नाम-सम्बन्धीय यज्ञ समाप्त प्राय हो गया था, दूसरी ओर, समाप्त नहीं होने पर भी पुनः उनका यज्ञ भङ्ग होगा, ऐसा उन्होंने कहा।

आजि समाप्त हइबेक,—हेन ज्ञान छिल।
समस्त रात्रि निलुँ नाम समाप्त ना हैल॥ १२४ ॥

१२४। प० अनु०—"मुझे ऐसा लगा था कि मेरा एक करोड़ नाम ग्रहण आज रात्रि में ही समाप्त हो जायेगा किन्तु सारी रात नाम ग्रहण करने पर भी वह समाप्त नहीं हुआ।

कालि समाप्त हबे, तबे हबे व्रतभङ्ग।
स्वच्छन्दे तोमार सङ्गे हइबेक सङ्ग॥" १२५ ॥

१२५। प० अनु०—"अब तो कल ही नाम यज्ञ समाप्त होगा एवं तभी मेरा व्रत खुलेगा तथा स्वच्छन्दता-

पूर्वक मेरा तुम्हारे साथ सङ्गम होगा।''

वेश्या गिया समाचार खाँनेरे कहिल।
आर दिन सन्ध्याकाले ठाकुर-ठाञि आइल॥ १२६॥

१२६। प० अनु०—वेश्या ने प्रात:काल जाकर रामचन्द्र खाँन को समाचार दिया तथा अगले दिन वह सन्ध्या के समय श्रीहरिदास ठाकुर के पास आ गयी।

तुलसीके, ठाकुरके नमस्कार करि'।
द्वारे बसि' नाम शुने, बले 'हरि' 'हरि'॥ १२७॥

१२७। प० अनु०—वेश्या तुलसी तथा श्रीहरिदास ठाकुर को प्रणाम करके द्वार पर बैठ गयी और नाम का श्रवण करने लगी तथा 'हरि' 'हरि' बोलने लगी।

''नाम पूर्ण हबे आजि'',—बले हरिदास।
''तबे पूर्ण करिमु तोमार अभिलाष॥'' १२८॥

१२८। प० अनु०—वेश्या को आया देखकर श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''आज जब मेरी नामसंख्या सम्पूर्ण हो जायेगी, तब मैं तुम्हारी अभिलाषा को पूर्ण करूँगा।''

साधुसङ्ग में वेश्या का पश्चाताप एवं ठाकुर की कृपा की याचना —

कीर्त्तन करिते ऐछे रात्रि-शेष हैल।
ठाकुरेर सने वेश्यार मन फिरि' गेल॥ १२९॥

१२९। प० अनु०—कीर्त्तन करते-करते ही रात्रि समाप्त हो गयी। श्रीहरिदास ठाकुर के सङ्ग से उस वेश्या का मन परिवर्तित हो गया।

दण्डवत् हञा पड़े ठाकुर-चरणे।
रामचन्द्र-खाँनेर कथा कैल निवेदने॥ १३०॥

१३०। प० अनु०—वेश्या दण्डवत् होकर श्रीहरिदास ठाकुर के चरणों में गिर गयी तथा उसने श्रीहरिदास ठाकुर को रामचन्द्र खाँन के मन के विचार के विषय में बतलाया।

''वेश्या हञा मुञि पाप कैराछों अपार।
कृपा करि' कर मो-अधमे निस्तार॥'' १३१॥

१३१। प० अनु०—उस वेश्या ने कहा,—''हे श्रीहरिदास ठाकुर! वेश्या होने के कारण मैंने अपार पाप किये हैं। आप कृपा करके मुझ अधम का उद्धार कीजिए।''

ईश्वर के विद्वेषी रामचन्द्र खाँन के प्रति ठाकुर की उपेक्षा पूर्ण उक्ति—

ठाकुर कहे,—''खाँनेर कथा सब आमि जानि।
अज्ञ मूर्ख सेइ, तारे दु:ख नाहि मानि॥ १३२॥

१३२। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''मैं रामचन्द्र खाँन की हृदगत समस्त भावनाओं को जानता हूँ, किन्तु मैं उसकी किसी बात से दु:खी नहीं होता, कारण वह अबोध (अज्ञानी) एवं मूर्ख है।

वेश्या के प्रति कृपा का उदय—

सेइदिन जाइताम एस्थान छाड़िया।
तिन दिन रहिलाङ तोमार लागिया॥'' १३३॥

१३३। प० अनु०—''जिस रात तुम आयी थी, मैं उसी रात ही चला जाता, किन्तु तुम्हारे कारण ही मैं तीन दिन तक यहाँ रह गया।''

वेश्या के द्वारा अपने उद्धार की प्रार्थना—

वेश्या कहे,—''कृपा करि' करह उपदेश।
कि मोर कर्त्तव्य, जाते जाय भव-क्लेश॥'' १३४॥

१३४। प० अनु०—वेश्या ने कहा,—''आप कृपा करके मुझे कुछ उपदेश कीजिए। मुझे मेरे कर्त्तव्य के विषय में बतलाइये, जिससे मेरा संसार का क्लेश दूर हो जाये।''

वेश्या को संसार और सर्वस्व त्याग करने का उपदेश—

ठाकुर कहे,—''घरेर द्रव्य ब्राह्मणे कर दान।
एइ घरे आसि' तुमि करह विश्राम॥ १३५॥

१३५। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—

''तुम अपने घर के समस्त द्रव्यों को ब्राह्मणों को दान कर दो तथा इस घर में आकर तुम यहीं विश्राम अर्थात् वास करो।

वैष्णवसेवा और निरन्तर कृष्णकीर्त्तन के फल से ही जीव के प्रयोजन की सिद्धि–

निरन्तर नाम कर, तुलसी सेवन।
अचिरात् पाबे तबे कृष्णेर चरण॥'' १३६ ॥

१३६। प० अनु०—''निरन्तर भगवान् का नाम करो तथा तुलसी की सेवा करो। ऐसा करने से तुम्हें अतिशीघ्र ही श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति होगी।''

वेश्या को महामन्त्र की दीक्षा-प्रदान–

एत बलि' तारे 'नाम' उपदेश करि'।
उठिया चलिला ठाकुर बलि' 'हरि' 'हरि'॥ १३७ ॥

१३७। प० अनु०—इतना कहकर श्रीहरिदास ठाकुर ने उस वेश्या को नाम का उपदेश किया तथा 'हरि', 'हरि' बोलते हुए उठकर चल दिये।

वेश्या के द्वारा गुरु की आज्ञा का पालन–

तबे सेइ वेश्या गुरुर आज्ञा लइल।
गृहवित्त जेबा छिल, ब्राह्मणेरे दिल॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०—तब उस वेश्या ने गुरु श्रीहरिदास ठाकुर की आज्ञा का पालन करते हुए घर में एकत्रित समस्त सम्पत्ति को ब्राह्मणों में बाँट दिया।

अनुभाष्य

१३८। गुरुर,—श्रीहरिदास की; गृहवित्त,—पाठान्तर में, 'गृहवृत्ति'-शब्द भी देखा जाता है; किन्तु वह सङ्गत नहीं है, कारण, उसकी वृत्ति अर्थात् वेश्यावृत्ति अवश्य ही ब्राह्मण को प्रदत्त नहीं हुई, वेश्यावृत्ति से सञ्चित वित्त ही ब्राह्मणों को अर्पित हुआ था। शिष्य का सर्वस्व गुरुदेव के प्राप्य होने पर भी वैष्णव-गुरु शिष्य के गृह-वित्त आदि प्राकृत मलसमूह को स्वयं ग्रहण नहीं करते। जो दक्षिणा ग्रहण करते हैं, वे दक्षिणा-मार्ग के द्वारा यमदूतों के माध्यम से यम के भवन में लेकर जाये जाते हैं; वैष्णव-गुरु वैसे यमराज के भवन के यात्री नहीं हैं, वे—उत्तरा-मार्ग के पथिक हैं। इसलिए कर्मी-ब्राह्मणों को प्राकृत वैभव समूह आदि देने की व्यवस्था है। वैष्णव-गुरु शिष्य के हरि की विमुखता को उत्पन्न करने वाले भोग्य विषय-वैभव को स्वयं ग्रहण करके शिष्य का आनुगत्य अथवा मुखापेक्षा (मुख को ताकना) नहीं करते; परन्तु वैसे वैभव को हरि की विमुखता को उत्पन्न करने वाला मानकर उसे अवश्य ही त्याग करते हैं। शिष्य को जागतिक- अभिमान से मुक्त करना एवं उसके द्वारा त्याग किये गये जागतिक मल को स्वयं ग्रहण नहीं करना ही सदाचारी वैष्णव-गुरु का कर्त्तव्य है,—ठाकुर हरिदास की यही शिक्षा है।

गुरु के गृह में वैराग्य के साथ निरन्तर नाम-कीर्त्तन-सेवा–

माथा मुड़ि' एकवस्त्रे रहिल सेइ घरे।
रात्रि-दिने तिन लक्ष नाम ग्रहण करे॥ १३९ ॥

१३९। प० अनु०—वह अपने सिर को मुण्डवाकर तथा एक वस्त्र को धारण करके ही श्रीहरिदास ठाकुर की भजन-कुटीर में रहने लगी तथा रात-दिन अर्थात् चौबीस घण्टों में तीन लाख नाम ग्रहण करने लगी।

नामसाधन के फल से धैर्यशीलता की प्राप्ति, इन्द्रियजय और सिद्धिलाभ अथवा प्रेमोदय–

तुलसी सेवन करे, चर्वण, उपवास।
इन्द्रिय-दमन हैल, प्रेमेर प्रकाश॥ १४० ॥

१४०। प० अनु०—वह तुलसी की सेवा करने लगी। वह कभी तो कुछ चना आदि चबा लेती तथा कभी-कभी तो उपवास ही कर लेती। इस प्रकार उसकी समस्त इन्द्रियों का दमन हो गया तथा उसमें प्रेम का प्रकाश हो आया।

उसे वैष्णवी-प्रतिष्ठा और गुरुत्व-की प्राप्ति–

प्रसिद्धा वैष्णवी हैल परम-महान्ती।
बड़ बड़ वैष्णव ताँर दर्शनेते जान्ति॥ १४१ ॥

१४१। प० अनु०—वह एक परम-महान्त प्रसिद्ध

वैष्णवी बन गयी तथा बड़े-बड़े वैष्णव भी उसके दर्शन के लिये जाते थे।

पाप से शिष्य को उद्धार की प्राप्ति और अप्राकृत-साधुचरित्र के दर्शन से गुरु के माहात्म्य की ख्याति—

वेश्यार चरित्र देखि' लोके चमत्कार।
हरिदासेर महिमा कहे करि' नमस्कार॥ १४२ ॥

१४२। प० अनु०—उस वेश्या के ऐसे परम पवित्र चरित्र को देखकर लोग चमत्कृत हो उठे। वे श्रीहरिदास ठाकुर को प्रणाम करके उन की महिमा का गान करते।

पाषण्डी रामचन्द्र-खाँन के भीषण वैष्णव-अपराध का फल—

रामचन्द्र-खाँन अपराध-बीज कैल।
सेइ बीज वृक्ष हञा आगेते फलिल॥ १४३ ॥

१४३। प० अनु०—रामचन्द्र खाँन ने अपराध का बीज बोया, वही बीज बाद में वृक्ष का रूप धारण करके उसके समक्ष ही फलित हुआ।

महदपराधेर फल अद्‌भुत कथन।
प्रस्ताव पाञा कहि, शुन, भक्तगण॥ १४४ ॥

१४४। प० अनु०—हे भक्तो! महद्-व्यक्ति के चरणों में अपराध करने के फल की अद्‌भुत अर्थात् आश्चर्य-चकित कर देने वाली कथा है। मैं प्रसङ्गवश उसका वर्णन कर रहा हूँ।

अनुभाष्य

१४४। प्रस्ताव,—प्रसङ्ग।

अनादि बहिर्मुख रामचन्द्र खाँन की वैष्णव-अपराध के फल से वैष्णव-विद्वेष-वृद्धि—

सहजेइ अवैष्णव रामचन्द्र-खाँन।
हरिदासेर अपराधे हैल असुर-समान॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०—रामचन्द्र खाँन एक तो पहले ही स्वभाव से अवैष्णव था, उस पर श्रीहरिदास ठाकुर के चरणों में अपराध करने के कारण वह असुर के समान व्यवहार करने वाला बन गया।

अनुभाष्य

१४५। ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करने पर भी विष्णु के चरणों में अपराध के प्रभाव से विश्वश्रवा के पुत्र रावण का नाम 'असुर' हुआ था। भक्त के चरणों में अपराधी बनकर रामचन्द्र खाँन भी 'असुरसम अर्थात् असुर समान' के नाम से समाज में प्रचारित हुआ।

वैष्णवधर्म निन्दा करे, वैष्णव-अपमान।
बहुदिनेर अपराधे पाइल परिणाम॥ १४६ ॥

१४६। प० अनु०—रामचन्द्र खाँन वैष्णवधर्म की निन्दा करता तथा वैष्णवों का अपमान करता। उसे बहुत दिनों से किये जा रहे अपने अपराधों का फल मिला।

नित्यानन्द प्रभु का वृत्तान्त—

नित्यानन्द-गोसाञि गौड़े जबे आइला।
प्रेम प्रचारिते तबे भ्रमिते लागिला॥ १४७ ॥

१४७। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु जब गौड़देश में आये तो वे प्रेम का प्रचार करते हुए भ्रमण करने लगे।

गौर सर्वस्व श्रीनित्यानन्द के दो प्रकार के गौर-सेवन-कार्य—

प्रेम-प्रचारण आर पाषण्डदलन।
दुइकार्ये अवधूत करेन भ्रमण॥ १४८ ॥

१४८। प० अनु०—प्रेम का प्रचार तथा पाषण्ड का दलन—इन दो कार्यों को करने के उद्देश्य से अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु भ्रमण करने लगे।

श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणों में पाषण्डी रामचन्द्र खाँन के अपराध के वृत्तान्त का वर्णन—

सर्वज्ञ नित्यानन्द आइला तार घरे।
आसिया बसिला दुर्गामण्डप-उपरे॥ १४९ ॥

१४९। प० अनु०—भ्रमण करते-करते जब श्रीनित्यानन्द प्रभु बेनापोल में आये, तब सर्वज्ञ होने के कारण वे रामचन्द्र खाँन के घर पर आये तथा आकर उसके घर के आङ्गन में बने दुर्गामण्डप पर बैठ गये।

अनुभाष्य

१४९। दुर्गा-मण्डप,—अवैष्णव सम्भ्रान्त-गृहस्थ के घर में जिस स्थान पर दुर्गापूजा होती है, उस मण्डप को 'चण्डीमण्डप' अथवा 'दुर्गामण्डप' कहते हैं; शारदीय अथवा बासन्ती पूजा के समय में चार दिनों के अलावा अन्य समय में वह मण्डप अतिथि और साधारण लोगों द्वारा व्यवहार किया जाता है।

अनेक लोकजन सङ्गे अङ्गन भरिल।
भितर हैते रामचन्द्र सेवक पाठाइल॥ १५० ॥

१५०। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ अनेक लोग थे, उन्हीं से रामचन्द्र खाँन का आङ्गन भर गया। लोगों को अपने घर आया देखकर रामचन्द्र खाँन ने अन्दर से अपने एक सेवक को कुछ कहकर भेजा।

श्रीनित्यानन्द प्रभु की अवमानना (अवज्ञा)—

सेवक बले—''गोसाञि, मोरे पाठाइल खाँन।
गृहस्थेर घरे तोमाय दिमु वासा स्थान॥ १५१ ॥

१५१। प० अनु०—सेवक ने बाहर आकर कहा,—''हे श्रीनित्यानन्द गोस्वामी, मुझे अन्दर से रामचन्द्र खाँन ने भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा, 'यह तो जमींदार का घर है, किसी साधारण गृहस्थ का नहीं। इसलिए गोसाञि को रहने के लिये यहाँ पर तो स्थान मिलेगा नहीं, तुम अन्य किसी गृहस्थ के घर में उन्हें रहने का स्थान दिलवा दो।'

गोयालार गोशाला हय अत्यन्त विस्तार।
इँहा सङ्कीर्ण-स्थल, तोमार मनुष्य—अपार॥''१५२॥

१५२। प० अनु०—''रामचन्द्र खाँन ने और भी कहलवाया है, यह घर तो बहुत छोटा है, किन्तु ग्वाले गृहस्थों की गौशाला बहुत बड़ी होती है, आपके साथ लोग भी बहुत हैं। इसलिए आपकी वहीं रहने आदि की व्यवस्था करवा देते हैं।''

श्रीनित्यानन्द का क्रोध—

भितरे आछिला, शुनि' क्रोधे बाहिरिला।
अट्ट अट्ट हासि' गोसाञि कहिते लागिला॥ १५३ ॥

१५३। प० अनु०—जब श्रीनित्यानन्द गोसाञि ने रामचन्द्र खाँन के सेवक के मुख से उसके भीतर होने की बात सुनी तो वे क्रोधपूर्वक अन्दर दुर्गामण्डप से उठकर बाहर आ गये तथा अट्टहास करते हुए कहने लगे—।

श्रीनित्यानन्द की भविष्यवाणी—

''सत्य कहे,—एइ घर मोर योग्य नय।
म्लेच्छ गो-वध करे, तार योग्य हय॥'' १५४ ॥

१५४। प० अनु०—''रामचन्द्र खाँन ठीक ही कह रहा है कि उसका यह घर मेरे रहने योग्य नहीं है। यह घर तो उन म्लेच्छों के ही वास योग्य है जो गाय का वध करते हैं।''

सगण-प्रभु का विष्णु-वैष्णव-विद्वेषी के स्थान का परित्याग—

एत बलि' क्रोधे गोसाञि उठिया चलिला।
तारे दण्ड दिते से ग्रामे ना रहिला॥ १५५ ॥

१५५। प० अनु०—इतना कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभु क्रोधपूर्वक वहाँ से चल दिये तथा उसे दण्ड देने के उद्देश्य से वे उस ग्राम तक में भी नहीं रहे।

रामचन्द्र खाँन की चूड़ान्त पाषण्डता—

इँहा रामचन्द्र-खाँन सेवके आज्ञा दिल।
गोसाञि जाँहा बसिला, तार माटी खोदाइल॥ १५६॥

१५६। प० अनु०—दूसरी ओर, रामचन्द्र खाँन ने अपने सेवकों को आदेश देकर अपने घर के उस स्थान की मिट्टी तक को खुदवा कर फैंक दिया, जहाँ पर श्रीनित्यानन्द गोसाञि बैठे थे।

गोमय-जले लेपिला सब मन्दिर-प्राङ्गण।
तबु रामचन्द्रेर मन ना हैल परसन्न॥ १५७ ॥

१५७। प० अनु०—उस रामचन्द्र खाँन ने सम्पूर्ण दुर्गामण्डप के प्राङ्गण को गोबर-जल से लिपवाया किन्तु इतना करने पर भी उसका मन प्रसन्न नहीं हुआ।

विष्णु वैष्णव-विद्वेष का भीषण फल अथवा सजा की प्राप्ति—

दस्युवृत्ति करे रामचन्द्र राजारे ना देय कर।
क्रुद्ध हञा म्लेच्छ उजिर आइल तार घर॥ १५८ ॥

१५८। प० अनु०—रामचन्द्र खाँन डकैतों जैसा कार्य करता था। वह राजा को राज कर नहीं देता था। क्रोधित होकर म्लेच्छ वजीर उसके घर पर आया।

आसि' सेइ दुर्गामण्डपे वासा कैल।
'अवध्य' वध करि घरे मांस रान्धिल॥ १५९ ॥

१५९। प० अनु०—उस म्लेच्छ वजीर ने आकर उसी दुर्गामण्डप में वास किया तथा अवध्य अर्थात् वध करने के अयोग्य गाय आदि का वध करके उसके घर में ही माँस पकाया।

स्त्री-पुत्र-सहित रामचन्द्रेरे बान्धिया।
तार घर-ग्राम लुटे तिनदिन रहिया॥ १६० ॥

१६०। प० अनु०—उस म्लेच्छ वजीर ने रामचन्द्र खाँन को उसकी स्त्री तथा उसके पुत्र सहित बाँध दिया एवं उसने तीन दिन तक उस ग्राम में रहकर रामचन्द्र खाँन के घर के साथ-ही-साथ वहाँ के सभी घरों में लूटपाट की।

सेइ घरे तिन दिन अमेध्य रन्धन।
आर दिन सबा लञा करिला गमन॥ १६१ ॥

१६१। प० अनु०—उस म्लेच्छ वजीर ने रामचन्द्र खाँन के घर में तीन दिन तक अमेध्य पकाया तथा चौथे दिन वह अपने सभी साथियों को लेकर वहाँ से चला गया।

जाति-धन-जन खाँनेर सकल लइल।
बहुदिन पर्यन्त ग्राम उजाड़ रहिल॥ १६२ ॥

१६२। प० अनु०—उस म्लेच्छ वजीर ने रामचन्द्र खाँन की जाति, धन तथा जन आदि सबकुछ हर लिया। बहुत समय तक रामचन्द्र खाँन का वह गाँव उजाड़ पड़ा रहा।

विष्णु-वैष्णव विद्वेष के फल से दशा अथवा अवस्था—

महान्तेर अपमान जे देश-ग्रामे हय।
एक जनार दोषे सब देश उजाड़य॥ १६३ ॥

१६३। प० अनु०—महान्त अर्थात् किसी महत् पुरुष का जिस देश अथवा ग्राम में अपमान होता है, एक व्यक्ति के दोष के कारण सम्पूर्ण देश ही उजड़ जाता है।

सप्तग्राम के अन्तर्गत चाँदपुर में अनुगत बलराम आचार्य के घर में ठाकुर-हरिदास—

हरिदास-ठाकुर चलि' आइला चान्दपुरे।
आसिया रहिला बलराम-आचार्येर घरे॥ १६४ ॥

१६४। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर वेश्या से वैष्णवी बनी महिला को अपनी भजन कुटीर देकर चाँदपुर चले आये तथा वहाँ आकर वे पुरोहित श्रीबलराम और श्रीयदुनन्दन आचार्य के ग्राम में रहने लगे।

अमृतप्रवाह भाष्य

१६४। चान्दपुरे,—सप्तग्राम-त्रिवेणी में हिरण्य और गोवर्धन के घर की पूर्वदिशा में 'चाँदपुर'-ग्राम है; वहाँ हिरण्य-गोवर्धन के पुरोहित बलराम और यदुनन्दन आचार्य का घर था।

अनुभाष्य

१६४। चान्दपुर,—हुगली जिले के अन्तर्गत त्रिवेणी के निकट यह ग्राम है; किसी-किसी के मतानुसार, परवर्त्तीकाल में इसी ग्राम का नाम 'कृष्णपुर' हुआ था।

हिरण्य और गोवर्धन मजुमदार और बलराम आचार्य का परिचय—

हिरण्य, गोवर्द्धन—मुलुकेर मजुमदार।
तार पुरोहित—'बलराम' नाम ताँर॥ १६५ ॥

१६५। प० अनु०—श्रीहिरण्य और श्रीगोवर्धन मजुमदार चाँदपुर नामक मुलुक (प्रदेश) के जमींदार थे तथा उन्हीं के पुरोहित का नाम श्रीबलराम आचार्य था।

अमृतप्रवाह भाष्य

१६५। मुलुक,—सप्तग्राम-मुलुक (प्रदेश)।

अनुभाष्य

१६५। मजुमदार,—'मज्मु-आदार'; नवाबी आमले (मुस्लिम भाषा) में राजस्व के हिसाब की रक्षा करने वाले।

हरिदासेर कृपापात्र, ताते भक्तिमाने।
यत्न करि' ठाकुरेरे राखिला सेइ ग्रामे॥ १६६ ॥

१६६। प० अनु०—श्रीबलराम आचार्य श्रीहरिदास ठाकुर के कृपा पात्र थे तथा उनके प्रति भक्ति से सम्पन्न थे, उन्होंने अत्यधिक प्रयत्न पूर्वक श्रीहरिदास ठाकुर को उस ग्राम में रखा।

निर्जन पर्णशालाय करेन कीर्त्तन।
बलराम-आचार्य-गृहे भिक्षा-निर्वाहण॥ १६७ ॥

१६७। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर निर्जन में बनी एक पर्णकुटी में कीर्त्तन करते तथा श्रीबलराम आचार्य के घर पर भिक्षा ग्रहण करके अपनी देह-यात्रा का निर्वाह करते थे।

बाल्यकाल में रघुनाथदास गोस्वामी को हरिदास के संग रूपी कृपा की प्राप्ति—

रघुनाथ दास बालक करेन अध्ययन।
हरिदास-ठाकुरेरे जाइ' करेन दर्शन॥ १६८ ॥

१६८। प० अनु०— श्रीगोवर्धन मजुमदार के पुत्र श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी उस समय बालक थे तथा अध्ययन करते थे, वे बीच-बीच में जाकर श्रीहरिदास ठाकुर का दर्शन करते थे।

साधु के सङ्ग और कृपा के फल से चैतन्य-प्राप्ति—

हरिदास कृपा करेन ताँहार उपरे।
सेइ कृपा 'कारण' हैल चैतन्य पाइबारे॥ १६९ ॥

१६९। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर बालक रघुनाथ पर बहुत कृपा करते तथा उनकी वही कृपा ही बाद में बालक रघुनाथ के श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा को प्राप्त करने का कारण बनी।

चाँदपुर में हिरण्य-गोवर्धन की सभा में हरिदास के वृत्तान्त का वर्णन—

ताँहा जैछे हैल हरिदासेर कथन।
व्याख्यान,—अद्भुत कथा शुन, भक्तगण॥ १७०॥

१७०। प० अनु०—चाँदपुर में श्रीहरिदास ठाकुर ने जिस प्रकार नाम की व्याख्या की, वह भी अपने आप में एक अद्भुत कथा है। हे भक्तो! अब आप उसका श्रवण करो।

बलराम की प्रार्थना से एकदिन हिरण्य-गोवर्धन की सभा में ठाकुर का गमन—

एकदिन बलराम मिनति करिया।
मजुमदारेर सभाय आइला ठाकुरे लञा॥ १७१ ॥

१७१। प० अनु०—एकदिन श्रीबलराम आचार्य श्रीहरिदास ठाकुर को विनती करके उन्हें श्रीहिरण्य तथा श्रीगोवर्धन मजुमदार की सभा में ले आये।

हिरण्य और गोवर्धन के द्वारा ठाकुर का यथायोग्य आदर-सत्कार—

ठाकुर देखि' दुइ भाइ कैला अभ्युत्थान।
पाय पड़ि' आसन दिला करिया सम्मान॥ १७२ ॥

१७२। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर को आये देखकर श्रीहिरण्य और श्रीगोवर्धन मजुमदार दोनों उठकर खड़े हो गये। उन्होंने श्रीहरिदास ठाकुर के चरणों में प्रणाम किया तथा अत्यधिक सम्मानपूर्वक उन्हें आसन प्रदान किया।

अनेक पण्डित सभाय, ब्राह्मण, सज्जन।
दुइ भाइ महापण्डित—हिरण्य, गोवर्द्धन॥ १७३ ॥

१७३। प० अनु०—उस सभा में अनेक विद्वान्, ब्राह्मण तथा सज्जन व्यक्ति थे एवं श्रीहिरण्य और श्रीगोवर्धन मजुमदार नामक दोनों भाई भी बहुत विद्वान् थे।

हरिदास की प्रशंसा श्रवण करके दोनों भाइयों को सुख की प्राप्ति—

हरिदासेर गुण सबे कहे पञ्च मुखे।
शुनिया त' दुइ भाइ पाइला बड़ सुखे॥ १७४ ॥

१७४। प० अनु०—सभा में उपस्थित सभी व्यक्तियों ने श्रीहरिदास के गुणों की इतनी अधिक महिमा का वर्णन किया, मानों उनके पाँच-पाँच मुख हों। सभी के मुख से श्रीहरिदास ठाकुर की महिमा को श्रवण करके श्रीहिरण्य और श्रीगोवर्धन मजुमदार बहुत अधिक आनन्दित हुए।

ठाकुर को देखकर पण्डितों द्वारा नामतत्त्व का विचार—

तिन लक्ष नाम ठाकुर करेन कीर्त्तन।
नामेर महिमा उठाइल पण्डितगण॥ १७५ ॥

१७५। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर प्रतिदिन तीन लाख नाम कीर्त्तन करते हैं, उपस्थित व्यक्तियों के मुख से ऐसा सुनकर विद्वानों ने नाम की महिमा का प्रसङ्ग उठाया।

सभी के द्वारा नामाभास को ही शुद्ध नाम मानना—

केह बले,—''नाम हैते हय पापक्षय।''
केह बले,—''नाम हैते जीवेर मोक्ष हय॥'' १७६ ॥

१७६। प० अनु०—कुछ विद्वान् कहने लगे ''नाम से पाप क्षय होते हैं'' तथा अन्य कुछ विद्वान् कहने लगे ''नाम से जीवों को मुक्ति की प्राप्ति होती है।''

ठाकुर के द्वारा शुद्धनाम के फल का कीर्त्तन—

हरिदास कहेन,—''नामेर एइ दुइ फल नय।
नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय॥ १७७ ॥

१७७। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''नहीं, आपके द्वारा बतलाये गये दोनों प्रकार के फल वास्तव में नाम के फल नहीं हैं। नाम के फलस्वरूप तो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है।

शास्त्र-प्रमाण—श्रीमद्भागवत (११.२.४०) में—

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥ १७८ ॥

१७८। ''कृष्णसेवा-व्रती पुरुष विवश-चित्त होकर निज प्रियतम श्रीकृष्ण के नामकीर्त्तन में जातानुरागवश श्लथ- हृदय (कोमल हृदय वाले) होते हैं; वे उन्मत्त की भाँति लोक- बाह्य अर्थात् अपेक्षा-रहित होकर कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी शोर मचाते हैं, कभी गाते हैं और कभी नृत्य करते हैं।

अनुभाष्य

१७८। आदि-लीला के सप्तम परिच्छेद की ९४ वीं संख्या द्रष्टव्य।

शुद्धनाम और उसके फलस्वरूप प्रेमोदय के बीच में ही नामाभास और उसका फल अनर्थ-निवृत्ति अन्तर्भुक्त—

आनुषङ्गिक फल नामेर—'मुक्ति', 'पापनाश'।
ताहार दृष्टान्त जैछे सूर्येर प्रकाश॥ १७९ ॥

१७९। प० अनु०— ''मुक्ति और पापों का नाश तो नाम का आनुषङ्गिक फल है, सूर्य का प्रकाश ही उसका दृष्टान्त है।

अनुभाष्य

१७९। नाम के गौण फलस्वरूप संसार बन्धन का मोचन (मुक्ति) और संसार-आसक्ति रूपी पाप का ध्वंस (पाप-नाश)होता है। नाम से युक्त मन्त्रदीक्षा की संज्ञा—''दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्। तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्वकोविदैः॥'' [अर्थात् क्योंकि यह दिव्यज्ञान (सम्बन्धज्ञान) प्रदान करता है एवं

पाप (पाप, पापबीज और अविद्या) जड़ सहित विनाश करता है, इसलिए भगवत्तत्त्वविद् पण्डितगण इस अनुष्ठानको 'दीक्षा' के नाम से पुकारते हैं।] लिखी हुई है। उदाहरण-स्वरूप कहा जाता है कि सूर्योदय का मुख्यफल—स्वप्रकाश, परप्रकाश, आनन्द आदि के अलावा अवान्तर (गौण) फल-स्वरूप अन्धकार राहित्य भी लक्षित होता है।

नाम रूपी सूर्य के उदित होने पर अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश—(पद्यावली में उद्धृत श्रीलक्ष्मीधर-स्वामि-कृत 'नामकौमुदी'-श्लोक)

अहंः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकल-लोकस्य।
तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१८०। ''सूर्य जिस प्रकार उदित होकर गाढ़ अन्धकार राशि का नाश करते हैं, उसी प्रकार जो हरिनाम मात्र एकबार उदित होने पर ही समस्त लोकों के पापों का नाश करते हैं, वे जगत् का मङ्गल करने वाले हरिनाम जययुक्त हों।

अनुभाष्य

१८०। जगन्मङ्गलं (जगतां मङ्गलं प्रेमपर्यन्त मङ्गलप्रदं) हरेः नाम (हरिनामप्रभुः) सकृत् (वारमेकं) उदयात् (सेवोन्मुखे इन्द्रियादौ प्राकट्येन कीर्त्तन-श्रवणाद्यनुष्ठानात्) एव तरणिः (सूर्यः) तिमिरजलधिं (गाढ़ान्धकारराशिम्) इव (नाशयति यथा तथा) सकल लोकस्य (सर्वजगतः) अखिलं अंहः (संसार-हेतुकं पापं) संहरत् (दूरी कुर्वत्) जयति (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते)।

पण्डितगणों के अनुरोध से ठाकुर के द्वारा श्लोक की व्याख्या—

एइ श्लोकेर अर्थ कर पण्डितेर गण॥''
सब कहे,—''तुमि कह अर्थ-विवरण॥'' १८१ ॥

१८१। प० अनु०— श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''हे पण्डितों! इस श्लोक का अर्थ कीजिए।'' सभी विद्वानों ने कहा,—''आप ही इस श्लोक के अर्थ की व्याख्या कीजिए।''

ठाकुर के द्वारा शुद्धनाम और नामाभास तत्त्व की व्याख्या—

हरिदास कहेन,—''जैछे सूर्येर उदय।
उदय ना हैते आरम्भ तमेर हय क्षय॥ १८२ ॥

१८२। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''शुद्ध नाम ऐसे हैं जैसे सूर्य का उदय, किन्तु सूर्य के उदित होते-न-होते ही अन्धकार का क्षय होना आरम्भ हो जाता है।

चौर-प्रेत-राक्षसादिर भय हय नाश।
उदय हैले धर्म-कर्म-आदि परकाश॥ १८३ ॥

१८३। प० अनु०—''चोर, प्रेत, राक्षस आदि से होने वाला भय समाप्त हो जाता है तथा सूर्य के उदित होने पर धर्म-कर्म आदि प्रकाशित होते हैं।

नाम के फल से कृष्ण प्रेम का उदय—

ऐछे नामोदयारम्भे पाप-आदिर क्षय।
उदय कैले कृष्णपदे हय प्रेमोदय॥ १८४ ॥

१८४। प० अनु०—''इसी प्रकार नाम के उदित होने के आरम्भ में ही पाप आदि का क्षय हो जाता है तथा उसके सम्पूर्ण रूप से उदित होने पर कृष्ण के चरणों में प्रेम का उदय हो जाता है।

नामाभास के फल से मुक्ति—

'मुक्ति' तुच्छ-फल हय नामाभास हैते।
जे मुक्ति भक्त ना लय, से कृष्ण चाहे दिते॥ १८५॥

१८५। प० अनु०—''मुक्ति रूपी तुच्छ फल तो नामाभास से ही प्राप्त हो जाता है। कृष्ण के द्वारा मुक्ति देने की अभिलाषा करने पर भी भक्त उसे स्वीकार नहीं करते।

अमृतप्रवाह भाष्य

१८५। शुद्धभक्त कृष्ण के द्वारा मुक्ति देने की इच्छा करने पर भी उसे नहीं लेते।

श्रीमद्भागवत (६.२.४९) में–

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम्।
अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन्॥ १८६॥

१८६। ''पुत्र के उद्देश्य से हरिनाम ग्रहण करके ही मुमूर्षु अजामिल ने जब वैकुण्ठ में गमन किया, तब श्रद्धापूर्वक नाम लेने से क्या होता है, इसके विषय में बोला नहीं जा सकता।

अनुभाष्य

१८६। अन्त्य-लीला के तृतीय परिच्छेद की ६३ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (३.२९.१३) में–

सालोक्य-सार्ष्टि-सारूप्य-सामीप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥ १८७ ॥

१८७। सालोक्य (वैकुण्ठवास), सार्ष्टि (ऐश्वर्य-सम्पदा), सामीप्य (निकट वास), सारुप्य (चतुर्भुजाकार), एकत्व (सायुज्य अथवा अभेद गति) देने पर भी भक्तवृन्द उन्हें ग्रहण नहीं करते, क्योंकि मेरी अप्राकृतसेवा को छोड़कर उनके लिये और कुछ भी प्रार्थनीय नहीं है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१८७। आदि-लीला के चतुर्थ परिच्छेद की २०७ वीं संख्या द्रष्टव्य।

नाम में अर्थवाद करने वाले पाषण्डी गोपाल-चक्रवर्ती का वृत्तान्त–

'गोपाल चक्रवर्त्ती' नाम एकजन।
मजुमदारेर घरे सेइ आरिन्दा प्रधान॥ १८८ ॥

१८८। प० अनु०— गोपाल चक्रवर्ती नामक एक व्यक्ति श्रीहिरण्य एवं श्रीगोवर्धन मजुमदार के घर पर एक प्रधान आरिन्दे के पद पर नियुक्त था।

अमृतप्रवाह भाष्य

१८८। आरिन्दा,—तहसील कर का संग्रह करने वाला पदातिक (पत्र और राजकर-वाहक पेयादा)

गौड़े रहि' पात्साहा-आगे आरिन्दागिरि करे।
बार-लक्ष मुद्रा सेइ पात्साहारे भरे॥ १८९ ॥

१८९। प० अनु०— गोपाल चक्रवर्त्ती श्रीहिरण्य एवं श्रीगोवर्धन मजुमदार की ओर से प्रतिवर्ष बारह लाख मुद्राएँ ले जाकर गौड़देश के बादशाह के पास जमा करके आरिन्दे का कार्य करता था।

परम-सुन्दर, पण्डित, नूतन-यौवन।
नामाभासे 'मुक्ति' शुनि' ना हइल सहन॥ १९० ॥

१९०। प० अनु०— गोपाल चक्रवर्त्ती अत्यधिक सुन्दर, विद्वान तथा नवयुवक था। श्रीहरिदास ठाकुर के मुख से—'नामाभास के द्वारा ही मुक्ति की प्राप्ति होती है'—ऐसा सुनकर वह इस बात को सहन नहीं कर पाया।

क्रोध से भरकर ठाकुर के प्रति अवज्ञापूर्ण उक्ति–

क्रुद्ध हञा बले सेइ सरोष वचन।
''भावुकेर सिद्धान्त शुन, पण्डितेर गण॥'' १९१॥

पाषण्डियों का नाम में अर्थवाद–

कोटि-जन्मे ब्रह्मज्ञाने जेइ 'मुक्ति' नय।
एइ कहे,—नामाभास-मात्रे सेइ 'मुक्ति' हय॥ १९२॥

१९१-१९२। प० अनु०— गोपाल चक्रवर्त्ती सभासदों को सम्बोधित करके क्रोधपूर्वक रोषपूर्ण वचन कहने लगा—''हे विद्वानों, इस भावुक व्यक्ति का सिद्धान्त सुनो। करोड़ों जन्मों तक ब्रह्मज्ञान का अनुशीलन करने से जिस मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती, यह कह रहा है कि नामाभास मात्र से ही उस मुक्ति की प्राप्ति होती है।''

ठाकुर के द्वारा शास्त्र के प्रमाण का उद्धार और प्रेम भक्ति परायण के लिये मुक्ति की तुच्छता का वर्णन–

हरिदास कहेन,—''केने करह संशय?
शास्त्रे कहे,—नामाभास-मात्रे 'मुक्ति' हय॥ १९३॥

१९३। प० अनु०— श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''आप संशय क्यों कर रहे हैं? शास्त्रों में ही कहा गया है कि नामाभास मात्र से ही 'मुक्ति' की प्राप्ति हो जाती है।

भक्तिसुख-आगे 'मुक्ति' अति-तुच्छ हय।
अतएव भक्तगण 'मुक्ति' नाहि लय॥ १९४ ॥

१९४। प० अनु०— ''भक्ति के सुख के समक्ष मुक्ति अत्यन्त तुच्छ है। अतएव भक्तगण [भगवान् के देने पर भी] मुक्ति नहीं लेते।''

हरिभक्ति सुधोदय (१४.३६) में—

त्वत्-साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे ।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्माण्यपि जगद्गुरो ॥ १९५॥

१९५। हे जगद्गुरो, मैं आपके स्वरूप का साक्षात्कार प्राप्त करके आह्लादरूप-विशुद्ध समुद्र में अवस्थान कर रहा हूँ। बाकी सब सुख मुझे गोष्पद-स्वरूप लग रहे हैं; ब्रह्मलय में जीवों का जो सुख है, वह भी गोष्पद-स्वरूप है। गोष्पद में अर्थात् गायों के पदचिह्न से जो गड्ढा होता है, उसमें जो जल रहता है, वह समुद्र की तुलना में अतिक्षुद्र है।

अनुभाष्य

१९५। आदि-लीला के सप्तम परिच्छेद की ९८ वीं संख्या द्रष्टव्य ।

ठाकुर को प्रतिज्ञाबद्ध होकर दृढ़ वचन-प्रदान —

विप्र कहे, —''नामाभासे यदि 'मुक्ति' नय ।
तबे तोमार नाक काटि' करह निश्चय ॥'' १९६ ॥

१९६। प० अनु०— गोपाल चक्रवर्त्ती ने कहा,— ''यदि नामाभास से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती हो, तो तुम निश्चित ही जानो कि मैं तुम्हारा नाक काट दूँगा।''

ठाकुर के द्वारा प्रतिज्ञाबद्ध होकर दृढ़ वचन को अङ्गीकार करना—

हरिदास कहेन, —''यदि नामाभासे 'मुक्ति' नय।
तबे आमार नाक काटिमु, — एइ सुनिश्चय॥''१९७॥

१९७। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,— ''यदि नामाभास से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती हो, तो तुम भी गाँठ बाँध लो कि मैं स्वयं ही अपनी नाक काट दूँगा।''

सभ्य व्यक्तियों द्वारा ब्राह्मणाधम को धिक्कार-देना —

शुनि' सभासद उठे करि हाहाकार ।
मजुमदार सेइ विप्रे करिल धिक्कार ॥ १९८ ॥

१९८। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर के वचन सुनने मात्र से ही सभा में उपस्थित सभी व्यक्ति हाहाकार करने लगे। श्रीहिरण्य तथा श्रीगोवर्धन मजुमदार ने उस ब्राह्मण अर्थात् गोपाल-चक्रवर्त्ती को धिक्कार किया।

उसे नास्तिक हेतुवादी जानकर बलराम आचार्य द्वारा तिरस्कार और अभिशाप-प्रदान —

बलाइ-पुरोहित तारे करिल भर्त्सन ।
''घट-पटिया मूर्ख तुञि, भक्ति काँहा जान?? १९९॥

१९९। प० अनु०—श्रीहिरण्य एवं श्रीगोवर्धन मजुमदार के पुरोहित श्रीबलराम आचार्य ने भी गोपाल चक्रवर्त्ती का तिरस्कार करते हुए कहा,—''तुम घट को पट और पट को घट करने वाले मूर्ख हो, तुम भक्ति के विषय में कहाँ कुछ जानते हो?

अमृतप्रवाह भाष्य

१९९। घटपटिया,—घट और पट को लेकर वृथा का तर्क करने वाले नैयायिक।

हरिदास-ठाकुरे तुञि कैलि अपमान!
सर्वनाश हबे तोर, ना हबे कल्याण॥'' २०० ॥

२००। प० अनु०—''तुमने श्रीहरिदास ठाकुर का अपमान किया है, तुम्हारा सर्वनाश होगा, कभी कल्याण नहीं होगा ।''

नाम में अर्थवाद करने वाले के सङ्ग का परित्याग—

शुनि' हरिदास तबे उठिया चलिला।
मजुमदार सेइ विप्रे त्याग करिला॥ २०१ ॥

२०१। प० अनु०—इस प्रकार की बातों को सुनकर

श्रीहरिदास ठाकुर उठकर चल दिये। श्रीहिरण्य तथा श्रीगोवर्धन मजुमदार ने उस ब्राह्मण का त्याग कर दिया अर्थात् उसे वहाँ से निकाल दिया अथवा आरिन्दे के पद से हटा दिया।

सभ्य व्यक्तियों के द्वारा ठाकुर के चरणों में क्षमा-प्रार्थना—

सभा-सहिते हरिदासेर पड़िला चरणे।
हरिदास हासि' कहे मधुर-वचने॥ २०२ ॥

२०२। प० अनु०—श्रीहिरण्य तथा श्रीगोवर्धन मजुमदार सभा के सभी सदस्यों सहित श्रीहरिदास ठाकुर के चरणों में गिर गये। श्रीहरिदास ठाकुर ने मुस्कुराते हुए मधुर वचन कहे-।

अदोषदर्शी ठाकुर के द्वारा क्षमा—

''तोमा-सबार दोष नाहि, एइ अज्ञ ब्राह्मण।
तार दोष नाहि, तार तर्कनिष्ठ मन॥ २०३ ॥

२०३। प० अनु०—''आप सबका कोई दोष नहीं है, यह ब्राह्मण अज्ञ (अबोध) है, इसमें इसका भी कोई दोष नहीं है, कारण, इसका मन तर्क में निष्ठा रखने वाला है।

अचिन्त्य स्वभाव से युक्त अधोक्षज नामप्रभु—जड़ीय युक्ति और तर्क से अतीत—

तर्केर गोचर नहे नामेर महत्व।
कोथा हैते जानिबे से एइ सब तत्व?? २०४ ॥

२०४। प० अनु०—''किन्तु नाम का माहात्म्य तो तर्क के द्वारा नहीं देखा-समझा जा सकता। यह ब्राह्मण इन सब तत्त्वों को कहाँ से जानेगा?

कृष्ण के निकट सभी की कुशल-याचना—

जाह घर, कृष्ण करुन कुशल सबार।
आमार सम्बन्धे दुःख ना हउक काहार॥'' २०५ ॥

२०५। प० अनु०—''आप सभी अपने-अपने घर जाइये, कृष्ण सबका कुशल-मङ्गल करें। मेरे साथ किये उस ब्राह्मण के व्यवहार के कारण कोई भी दुःखी मत होइये।''

हिरण्य-गोवर्धन के द्वारा पाषण्डी ब्रह्मबन्धु के सङ्ग का वर्जन—

तबे से हिरण्यदास निज-घरे आइल।
सेइ ब्राह्मणे निज-द्वार माना कैल॥ २०६ ॥

२०६। प० अनु०—तब श्रीहिरण्य मजुमदार अपने घर लौट आये तथा उन्होंने उस ब्राह्मण को काम से तो छुट्टी दे ही दी थी, अब उसे आगे से अपने घर पर आने से भी मना कर दिया।

नाम में अर्थवाद और वैष्णव-अवज्ञा का भीषण फल अथवा सजा—

तिन-दिन रहि' सेइ विप्रेर 'कुष्ठ' हैल।
अति उच्च-नासा तार गलिया पड़िला॥ २०७ ॥

२०७। प० अनु०—तीन दिन में ही उस गोपाल चक्रवर्ती नामक ब्राह्मण को कुष्ठ रोग हो गया तथा उसकी अत्यधिक ऊँची नाक गलकर गिर गयी।

चम्पक कलि-सम हस्त-पदांगुलि।
कोंकड़ हइल सब, कुष्ठे गेल गलि'॥ २०८ ॥

२०८। प० अनु०— गोपाल चक्रवर्ती के हाथ तथा पैरों की अंगुलियाँ चम्पक पुष्प की कली के समान थी, वे भी कुष्ठ रोग के कारण गल गयीं तथा वे सम्पूर्ण रूप से सिकुड़ गयीं।

ठाकुर के ऐश्वर्य के दर्शन से सभी के द्वारा उनकी स्तुति—

देखिया सकल लोक हैल चमत्कार।
हरिदासे प्रशंसि' ताँरे करे नमस्कार॥ २०९ ॥

२०९। प० अनु०—गोपाल चक्रवर्ती की ऐसी अवस्था देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने श्रीहरिदास ठाकुर की बहुत प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रणाम किया।

भगवान् और भक्त अर्थात् विष्णु और वैष्णवों का स्वभाव—

यद्यपि हरिदास विप्रेर दोष ना लइला।
तथापि ईश्वर तारे फल भुञ्जाइला॥ २१० ॥

२१०। प० अनु०—यद्यपि श्रीहरिदास ठाकुर ने

गोपाल चक्रवर्ती का कोई अपराध नहीं लिया, तब भी भगवान् ने उसे उसके किये का फल भुगवाया।

भक्त-स्वभाव,—अज्ञ-दोष क्षमा करे।
कृष्ण-स्वभाव,—भक्त-निन्दा सहिते ना पारे॥ २११॥

२११। प० अनु०—अबोध व्यक्ति के द्वारा किये गये दोष के लिये उसे क्षमा कर देना ही भक्त का स्वभाव होता है तथा भक्त की निन्दा को सहन नहीं कर पाना कृष्ण का स्वभाव है।

ब्राह्मणाधम के क्लेश का श्रवण करके स्थान-त्याग और शान्तिपुर में आगमन—

विप्र-दुःख शुनि' हरिदास मने दुःखी हैला।
बलाइ-पुरोहिते कहि' शान्तिपुर आइला॥ २१२ ॥

२१२। प० अनु०—गोपाल चक्रवर्त्ती के कष्ट भोग करने की बात को सुनकर श्रीहरिदास ठाकुर का मन बहुत दुःखी हुआ। श्रीहरिदास ठाकुर पुरोहित श्रीबलराम आचार्य को अपने चाँदपुर से जाने की बात को बतलाकर शान्तिपुर आ गये।

श्रीअद्वैताचार्य के साथ मिलन—

आचार्ये मिलिया कैला दण्डवत् प्रणाम।
अद्वैत आलिङ्गन करि' करिला सम्मान॥ २१३ ॥

२१३। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने शान्तिपुर में श्रीअद्वैताचार्य से मिलकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया तथा श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने उन्हें आलिङ्गन करके उनका सम्मान किया।

आचार्य के द्वारा ठाकुर का आनुकूल्य-विधान और गीता-भागवत-कीर्त्तन—

गङ्गातीरे गोफा करि' निर्जने ताँरे दिला।
भागवत-गीतार भक्ति-अर्थ शुनाइला॥ २१४ ॥

२१४। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने निर्जन स्थान पर गङ्गा के तट पर एक गुफा बनाकर उसे श्रीहरिदास ठाकुर को रहने के लिये दे दिया तथा उन्होंने श्रीहरिदास ठाकुर को भागवतम् तथा भगवद्गीता के भक्तिमय अर्थों का श्रवण कराया।

दोनों का नित्य कृष्णकथा-संलाप—

आचार्येर घरे नित्य भिक्षा-निर्वाहण।
दुइ जना मिलि' कृष्णकथा-आस्वादन॥ २१५ ॥

२१५। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर का भोजन नित्यप्रति श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के घर पर ही होता था तथा दोनों मिलकर कृष्णकथा का आस्वादन करते थे।

हरिदास की दैन्यपूर्ण उक्ति—

हरिदास कहे,—''गोसाञि, करि निवेदने।
मोरे प्रत्यह अन्न देह' कोन प्रयोजने?? २१६ ॥

२१६। प० अनु०—एक दिन श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''हे श्रीअद्वैताचार्य गोस्वामी, मैं एक निवेदन अर्थात् निष्कपट जिज्ञासा कर रहा हूँ कि आप प्रतिदिन मुझे किस उद्देश्य से भोजन कराते हैं?

महा-महा-विप्र एथा कुलीन-समाज।
आमारे आदर कर, ना वासह लाज!! २१७ ॥

२१७। प० अनु०—''इस शान्तिपुर में समाज कुलीन है तथा यहाँ श्रेष्ठ-श्रेष्ठ ब्राह्मण वास करते हैं, तब भी आप मेरा इतना आदर करते हैं। क्या आपको कोई सङ्कोच नहीं होता!

अलौकिक आचार तोमार, कहिते पाइ भय।
सेइ कृपा करिबा,—जाते तोमार रक्षा हय॥'' २१८॥

२१८। प० अनु०—''आपका आचरण अलौकिक अर्थात् लोक-समाज की विचार-धारा से भिन्न असामान्य है। आपको यह सब कहते हुए यद्यपि मुझे भय भी लगता है तथापि मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मुझ पर वही कृपा करना जिससे आपकी किसी प्रकार की कोई निन्दा न हो।''

अनुभाष्य

२१८। रक्षा—व्यवहारिक लोक समाज रक्षा अथवा सामाजिक लज्जा निन्दा आदि से रक्षा।

जगद्गुरु लोकशिक्षक श्रीअद्वैताचार्य के निरपेक्ष सात्वत-शास्त्र-सम्मत वचन—

आचार्य कहेन,—''तुमि ना करिह भय।
सेइ आचरिब, जेइ शास्त्रमत हय॥ २१९ ॥

२१९। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने कहा,—''हे हरिदास ठाकुर! आप भय मत कीजिए। मैं वही आचरण करूँगा, जो शास्त्रों का मत है अर्थात् जिसके लिये शास्त्र अनुमति प्रदान करते हैं।

तुमि खाइले हय कोटि ब्राह्मण-भोजन।''
एत बलि' श्राद्ध-पात्र कराइला भोजन॥ २२० ॥

२२०। प० अनु०—''आपके भोजन करने से करोड़ो ब्राह्मणों का भोजन करना हो जाता है।'' इतना कहकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर को श्राद्ध-पात्र का भोजन कराया।

अमृतप्रवाह भाष्य

२२०। श्राद्धपात्र,—श्राद्ध के दिन गृहस्थ-वैष्णवों को सब प्रकार के खाद्य द्रव्यों को भगवान् को निवेदन करके वैष्णवों और ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है। अद्वैत प्रभु ने संसार में उस प्रकार के श्राद्ध के दिन के उपस्थित होने पर हरिदास को श्राद्ध का पात्र (अप्राकृत ब्राह्मण गुरु मानकर) खिलाया।

तृतीय परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

२२०। भक्तिसन्दर्भ की १७७ वीं संख्या में उद्धृत गरुड़ पुराण वचन,—''ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते। सत्रयाजि सहस्रेभ्यः सर्ववेदान्त-पारगः॥ सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते। वैष्णवानां सहस्रेभ्यः एकान्त्येको विशिष्यते॥'' [अर्थात् हजार ब्राह्मणों की अपेक्षा एक यज्ञ करने वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है, हजारों याज्ञिक ब्राह्मणों की अपेक्षा एक सर्ववेदान्त-शास्त्रज्ञ व्यक्ति श्रेष्ठ है, करोड़ो सर्ववेदान्त शास्त्रों को जानने वालों की अपेक्षा एक वैष्णव श्रेष्ठ है एवं हजारों वैष्णवों की अपेक्षा एक एकान्तिक भक्त श्रेष्ठ है।] ''भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्त्तते। स विप्रेन्द्रो मुनिश्रेष्ठः स ज्ञानी स च पण्डितः। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः॥''[अर्थात् भगवद्भक्तों के प्रति वात्सल्य, पूजा के विषय में अनुमोदन, भगवत् कथा के श्रवण में प्रीति, स्वर नेत्रादि विकार, भगवत् प्रीति के लिये नृत्य, दम्भ परित्याग, स्वयं अर्चन करना एवं विष्णु को जीविका नहीं बनाना—यह आठ प्रकार की भक्ति यदि किसी म्लेच्छ में भी विद्यमान हो, तो वह व्यक्ति विप्रश्रेष्ठ, मुनिश्रेष्ठ पण्डित, ज्ञानी कहलाता है, उसे दान करना, उसका अवशेष ग्रहण करना एवं श्रीहरि की भाँति उसकी पूजा करना कर्त्तव्य है।] ''न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः। तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथाह्यऽहम्॥'' [अर्थात् चारों वेदों को जानने पर भी यदि कोई मेरा अभक्त हो तो भी वह मुझे प्रिय नहीं है, परन्तु चण्डाल के भक्त होने पर वह मुझे प्रिय है, उसे दान करना चाहिए, उसका उच्छिष्ट ग्रहण करना चाहिए और वह मेरी भाँति ही पूज्य है।]

श्रीअद्वैताचार्य की जीवों के प्रति अतुलनीय कृपा —

जगत्-निस्तार लागि' करेन चिन्तन।
अवैष्णव-जगत् केमने हइबे मोचन?? २२१ ॥

२२१। प० अनु०— श्रीअद्वैताचार्य प्रभु चिन्तन करते थे कि अवैष्णव जगत् का उद्धार किस प्रकार होगा?

आचार्य के द्वारा कृष्ण की आराधना—

कृष्णे अवतारिते अद्वैत प्रतिज्ञा करिला।
जल-तुलसी दिया पूजा करिते लागिला॥ २२२ ॥

२२२। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने श्रीकृष्ण को अवतरित कराने की प्रतिज्ञा की तथा वे जल एवं

तुलसी देकर श्रीकृष्ण की पूजा करने लगे।

हरिदास के द्वारा नाम कीर्त्तन—

हरिदास करे गोफाय नाम-सङ्कीर्त्तन।
कृष्ण अवतीर्ण हइबेन,—एइ ताँर मन॥ २२३ ॥

२२३। प० अनु०—दूसरी ओर, श्रीहरिदास ठाकुर गुफा में बैठकर हरिनाम-सङ्कीर्त्तन करते थे। उनके मन में भी यही बात आती थी कि श्रीकृष्ण अवश्य ही अवतरित होंगे।

दोनों के आह्वान से जीवों का उद्धार करने के लिये कृष्ण-चैतन्य-अवतार और नामप्रेम के वितरण के द्वारा समस्त जगत् का उद्धार—

दुइजनेर भक्तये चैतन्य कैला अवतार।
नाम-प्रेम प्रचार करि' कैला जगत्-उद्धार॥ २२४॥

२२४। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य प्रभु एवं श्रीहरिदास ठाकुर—इन दोनों की भक्ति के प्रभाव से श्रीचैतन्य महाप्रभु अवतरित हुए तथा उन्होंने नाम-प्रेम का प्रचार करके जगत् का उद्धार किया।

ठाकुर के अप्राकृत चरित्र का वर्णन—

आर अलौकिक एक चरित्र ताँहार।
जाहार श्रवणे लोके हय चमत्कार॥ २२५ ॥

२२५। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर का अन्य एक अलौकिक चरित्र है, जिसके श्रवण से लोग आश्चर्य-चकित हो जाते हैं।

श्रौतपन्था में अप्राकृत अनुभूति, तर्कपन्था में उसकी असम्भावना—

तर्क ना करिह, तर्कागोचर ताँर रीति।
विश्वास करिया शुन, करिया प्रतीति॥ २२६ ॥

२२६। प० अनु०—हे भक्तों! आप श्रीहरिदास ठाकुर के विषय में वर्णित किसी भी घटना में किसी प्रकार का तर्क मत करना, कारण, श्रीहरिदास ठाकुर जैसे भक्तों की रीति तर्क के अगोचर है। आप सभी दृढ़ विश्वास के साथ इन सभी कथाओं को श्रवण कीजिए।

ठाकुर-हरिदास और माया देवी के उद्धार के वृत्तान्त का वर्णन—

एकदिन हरिदास गोफाते बसिया।
नाम-सङ्कीर्त्तन करेन उच्च करिया॥ २२७ ॥

२२७। प० अनु०—एकदिन श्रीहरिदास ठाकुर गुफा में बैठकर उच्च स्वर से नाम-सङ्कीर्त्तन कर रहे थे।

ज्योत्सनावती रात्रि, दश दिक् सुनिर्मल।
गङ्गार लहरी ज्योत्स्नाय करे झल-मल ॥ २२८ ॥

२२८। प० अनु०—ज्योत्स्ना (चाँदनी) रात में दसों दिशाएँ सुनिर्मल थीं। चाँदनी के कारण गङ्गा जी की लहरें झलमल कर (चमक) रही थीं।

द्वारे तुलसी—लेपा-पिण्डिर उपर।
गोफार शोभा देखि' लोकेर जुड़ाय अन्तर॥ २२९॥

२२९। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर की गुफा के द्वार पर एक मञ्च के ऊपर तुलसी विराजमान थी, गुफा की शोभा को देखकर लोगों का हृदय शीतल हो जाता था।

हेनकाले एक नारी अङ्गने आइल।
ताँर अङ्गकान्त्ये स्थान पीतवर्ण हइल॥ २३० ॥

२३०। प० अनु०—उसी समय एक नारी श्रीहरिदास ठाकुर के वासस्थान के आङ्गन में आयी। उसकी अङ्ग कान्ति से सम्पूर्ण स्थान स्वर्ण का हो गया।

ताँर-अङ्ग-गन्धे दश दिक् आमोदित।
भूषण-ध्वनिते कर्ण हय चमकित॥ २३१ ॥

२३१। प० अनु०—उस नारी के अङ्ग की गन्ध से दसों दिशाएँ सुगन्ध से भर गयी, उसके आभूषणों की मधुर झनझनाहट से कान आश्चर्यान्वित हो रहे थे।

आसिया तुलसीरे सेइ कैला नमस्कार।
तुलसी परिक्रमा करि' गेला गोफा-द्वार॥ २३२ ॥

२३२। प० अनु०—उस नारी ने आकर तुलसी को नमस्कार किया तथा वह तुलसी की परिक्रमा करके गुफा के द्वार पर चली गयी।

जोड़-हाते हरिदासेर वन्दिला चरण।
द्वारे बसि' कहे किछु मधुर वचन॥ २३३ ॥

२३३। प० अनु०—उस नारी ने अपने हाथ जोड़कर श्रीहरिदास ठाकुर के चरणों की वन्दना की तथा द्वार पर बैठकर निम्नलिखित मधुर वचन कहने लगी।

जीव मोहिनी माया के द्वारा हरिदास ठाकुर की परीक्षा—
''जगतेर बन्धु तुमि रूप गुणवान्।
तव सङ्ग लागि' मोर एथाके प्रयाण॥ २३४ ॥

२३४। प० अनु०—''हे हरिदास ठाकुर! आप सम्पूर्ण जगत् के बन्धु हैं तथा अत्यन्त रूपवान् और गुणवान् हैं। आपके सङ्ग हेतु ही मेरा यहाँ पर आगमन हुआ है।

मोरे अङ्गीकार कर हञा सदय।
दीने दया करे,—एइ साधु-स्वभाव हय॥'' २३५॥

२३५। प० अनु०—''आप मेरे प्रति दया से युक्त होकर मुझे अङ्गीकार कीजिए। वास्तव में दीन व्यक्तियों पर दया करना ही साधु का स्वभाव होता है।''

एत बलि' नाना-भाव करये प्रकाश।
जाहार दर्शने मुनिर हय धैर्य-नाश॥ २३६ ॥

२३६। प० अनु०—वह नारी इतना कहकर अनेक प्रकार के भाव प्रकाशित करने लगी, जिन्हें देखकर मुनियों का धैर्य भी नष्ट हो जाता है।

निर्विकार हरिदास गम्भीर-आशय।
बलिते लागिला ताँरे हञा सदय॥ २३७ ॥

२३७। प० अनु०—किन्तु गम्भीर-आशय से युक्त श्रीहरिदास ठाकुर तो निर्विकार थे। वे उस नारी के प्रति दया से युक्त होकर उस से कहने लगे—।

ठाकुर हरिदास की संख्या नामकीर्त्तन-यज्ञ में दीक्षा और निष्ठा—
''संख्या-नाम-सङ्कीर्त्तन—एइ 'महायज्ञ' मन्ये।
ताहाते दीक्षित आमि हइ प्रतिदिने॥ २३८ ॥

२३८। प० अनु०— ''मैं दीक्षित होकर संख्या पूर्वक किये जाने वाले नाम-सङ्कीर्त्तन को ही 'महायज्ञ' मानकर प्रतिदिन उसका पालन करता हूँ।

जावत् कीर्त्तन समाप्त नहे, ना करि अन्य काम।
कीर्त्तन समाप्त हैले, हय दीक्षार विश्राम॥ २३९ ॥

२३९। प० अनु०—''जब तक कीर्त्तन समाप्त नहीं होता, मैं तब तक अन्य कोई काम नहीं करता, कीर्त्तन के समाप्त होने पर ही दीक्षा का विश्राम होता है।

द्वारे बसि' शुन तुमि नाम-सङ्कीर्त्तन।
नाम समाप्त हैले करिमु तव प्रीति-आचरण॥''२४०॥

२४०। प० अनु०—''तुम द्वार पर बैठकर नाम-सङ्कीर्त्तन श्रवण करो। नाम के समाप्त होने पर मैं तुम्हारी इच्छानुसार आचरण करूँगा।''

एत बलि' करेन तेंहो नाम-सङ्कीर्त्तन।
सेइ नारी बसि' करे श्रीनाम-श्रवण॥ २४१ ॥

२४१। प० अनु०—इतना कहकर श्रीहरिदास ठाकुर नाम-सङ्कीर्त्तन करने लगे तथा वह नारी बैठकर श्रीनाम-श्रवण करने लगी।

कीर्त्तन करिते आसि' प्रातःकाल हैल।
प्रातःकाल देखि' नारी उठिया चलिल॥ २४२ ॥

२४२। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर सम्पूर्ण रात्रि कीर्त्तन ही करते रहे, प्रातः काल हो आया, ऐसा देखकर वह नारी वहाँ से उठकर चली गयी।

तीन दिन तक माया द्वारा कठोर परीक्षा–

एइमत तिनदिन करे आगमन।
नाना-भाव देखाय, जाते ब्रह्मार हरे मन॥ २४३ ॥

२४३। प० अनु०—वह नारी इसी प्रकार तीन दिन तक श्रीहरिदास ठाकुर के पास आती-जाती रही, वह ऐसे अनेक-अनेक प्रकार के भाव दिखाती, जिससे वह ब्रह्मा का मन भी हरण कर सकती थी।

अद्वयज्ञान नामप्रभु के एकान्तिक सेवक द्वितीय-अभिनिवेश से युक्त भोक्ता के भाव से रहित ठाकुर के निकट माया पराजित–

कृष्णे नामाविष्ट-मना सदा हरिदास।
अरण्ये रोदित हैल स्त्रीभाव प्रकाश॥ २४४ ॥

२४४। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर का मन तो सदैव कृष्णनाम में ही आविष्ट रहता था, इसी कारण उस नारी के द्वारा प्रकाश किये जाने वाले सभी भाव निर्जन वन में किये जाने वाले क्रन्दन की भाँति व्यर्थ हो गये।

अनुभाष्य

२४४। हरिदास का मन हरिनाम ग्रहण के समय सदैव कृष्णनाम में आविष्ट रहने के कारण, मायादेवी की पुरुषों को आकर्षित करने वाली कुहकमयी बद्धजीव-मोहिनी स्त्रीभाव-माला निर्जन अरण्य में क्रन्दन करने की भाँति विफल हो गयी।

तृतीय दिवसेर रात्रि-शेष जबे हैल।
ठाकुरेर स्थाने नारी कहिते लागिल॥ २४५ ॥

२४५। प० अनु०—तीसरे दिन जब रात्रि समाप्त हुयी, तब वह नारी श्रीहरिदास ठाकुर से कहने लगी—।

''तिन दिन वञ्चिला आमा करि' आश्वासन।
रात्रि-दिने नहे तोमार नाम-समापन॥'' २४६ ॥

२४६। प० अनु०—''आपने आश्वासन देने के बावजूद भी तीन दिन तक मेरी वञ्चना की है। रात-दिन आपका नाम करना ही समाप्त नहीं होता।''

ठाकुर की अपने नियमानुसार सेवा–

हरिदास ठाकुर कहेन,—''आमि कि करिमु?
नियम कैराछि ताहा केमने छाड़िमु??'' २४७ ॥

२४७। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''मैं क्या करूँ? मैंने जो व्रत लिया है, उसे कैसे त्याग दूँ?''

माया के द्वारा आत्मपरिचय प्रदान–

तबे नारी कहे ताँरे करि' नमस्कार।
''आमि-माया' करिते आइलाङ परीक्षा तोमार॥२४८॥

२४८। प० अनु०—तब उस नारी ने श्रीहरिदास ठाकुर को प्रणाम करके उनसे कहा,—''वास्तव में मैं माया हूँ और आपकी परीक्षा लेने के लिये आयी थी।

अपनी पराजय-स्वीकार–

ब्रह्मादि जीव, आमि सबारे मोहिलुँ।
एकेला तोमारे आमि मोहिते नारिलुँ॥ २४९ ॥

२४९। प० अनु०—''ब्रह्मा आदि पर्यन्त समस्त जीवों को मैंने मोहित किया है, मैं एकमात्र आपको ही मोहित नहीं कर पायी।

अनुभाष्य

२४९। मायादेवी आब्रह्मस्तम्भ अर्थात् ब्रह्मा से आरम्भ करके देव-नर-पशु-पक्षी-त्रिर्यग-स्थावर आदि पर्यन्त समस्त श्रेणियों के सभी प्राणियों को स्वयं का 'भोक्ता' एवं स्वयं को 'भोग्या' के रूप में उपलब्धि कराके मोहित करती है, किन्तु हरिदास का हृद्गत कृष्णेन्द्रिय-तर्पण परायण कृष्णसेवामय भाव किसी भी प्रकार से माया के कुहकमय प्रलोभन से वशीभूत नहीं हुआ। हरिदास की भाँति समस्त शुद्ध वैष्णवों की यही वैदान्तिक धारणा है कि नित्यकृष्णभोग्य शुद्धभक्त कभी भी माया के भोक्ता नहीं हैं। जीव —नित्य, वैकुण्ठ, अधोक्षज, गुणातीत अथवा अप्राकृत वस्तु हैं तथा वे देहात्मबुद्धि अथवा विवर्त्त को

छोड़कर स्वयं को कृष्णदास अथवा वैष्णव समझने अर्थात् अधोक्षज सेवा के फल से ही माया के विक्रम अथवा अनर्थ से निर्मुक्त हो सकते हैं।

ठाकुर की प्रशंसा और स्तुति–

महाभागवत तुमि,—तोमार दर्शने।
तोमार कृष्णनाम-कीर्त्तन-श्रवणे॥ २५० ॥

ठाकुर से कृपा याचना–

चित्त शुद्ध हैल, चाहे कृष्णनाम लैते।
'कृष्ण-नाम' उपदेशि' कृपा करह आमाते॥ २५१॥

२५०-२५१। प० अनु०—''हे हरिदास ठाकुर! आप महाभागवत हैं। आपके दर्शन करने एवं आपके मुख से विगलित श्रीकृष्णनाम-कीर्त्तन के श्रवण से मेरा चित्त शुद्ध हो गया है तथा वह भी कृष्णनाम-कीर्त्तन करने की अभिलाषा कर रहा है। आप कृष्णनाम का उपदेश प्रदान करके मुझ पर कृपा कीजिए।

अहैतुकी कृपा-अवतीर्ण चैतन्य के आश्रय में कृष्णभक्ति के अनुशीलन के बिना जीव जड़तुल्य–

चैतन्यावतारे बहे प्रेमामृत-वन्या।
सब जीव प्रेमे भासे, पृथिवी हैल धन्या॥ २५२ ॥

२५२। प० अनु०—''चैतन्य अवतार के समय प्रेम रूपी अमृत की बाढ़ आयी हुयी है। समस्त जीव प्रेम में निमग्न हो रहे हैं, पृथ्वी धन्य हो गयी है।

ए-वन्याय जे ना भासे, सेइ जीव—छार।
कोटिकल्पे तबे तार नाहिक निस्तार॥ २५३ ॥

२५३। प० अनु०—''इस प्रेम की बाढ़ में जो निमग्न नहीं होगा, उस जीव का जीवन वृथा है। करोड़ों कल्पों तक भी उस का निस्तार नहीं होगा।

अनुभाष्य

२५३। तैंतालीस लाख बीस हजार (४३,२०,०००) सौरवर्षों में एक महायुग होता है, उसी प्रकार के सहस्त्र महायुगों का एक कल्प होता है; उसका भी करोड़ों गुणा परिमित समय।

तृतीय परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

पहले मदन को जय करने वाले शम्भु से तारक-ब्रह्म रामनाम की प्राप्ति–

पूर्वे आमि राम-नाम पाञाछि 'शिव' हैते।
तोमार सङ्गे लोभ हैल कृष्णनाम लैते॥ २५४ ॥

२५४। प० अनु०—''पहले मैंने शिव जी से राम नाम प्राप्त किया है किन्तु अब आपके सङ्ग से कृष्णनाम ग्रहण करने का लोभ जागृत हो गया है।

'रामनाम' और 'कृष्णनाम' के माहात्म्य का वैशिष्ट्य–

मुक्ति-हेतु तारकब्रह्म हय 'रामनाम'।
'कृष्णनाम' पारक हञा करे प्रेमदान॥ २५५ ॥

२५५। प० अनु०—''मुक्ति प्राप्ति का हेतु होने के कारण 'रामनाम' तारकब्रह्म कहलाता है किन्तु 'कृष्णनाम' पारक बनकर प्रेमदान करते हैं।

कृष्णनाम-महामन्त्र की दीक्षा और कृष्णप्रेम की याचना–

'कृष्णनाम' देह' तुमि मोरे कर धन्या।
आमारे भासाय जैछे एइ प्रेमवन्या॥'' २५६ ॥

२५६। प० अनु०—''हे श्रीहरिदास ठाकुर! आप मुझे कृष्णनाम प्रदान करके ऐसे धन्य कर दीजिए कि प्रेम की बाढ़ मुझे भी सराबोर कर दे।''

मायादेवी के द्वारा ठाकुर के समक्ष प्रणिपात (शरणागत होना) और ठाकुर के द्वारा उसे कृष्णनाम-महामन्त्र की दीक्षा प्रदान–

एत बलि' वन्दिला हरिदासेर चरण।
हरिदास कहे,—''कर कृष्ण-सङ्कीर्त्तन॥'' २५७ ॥

२५७। प० अनु०—इतना कहकर माया देवी ने श्रीहरिदास ठाकुर के चरणों की वन्दना की। श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''तुम कृष्ण-सङ्कीर्त्तन करो।''

माया का अन्तर्ध्यान होना—

उपदेश पाञा माया चलिला हञा प्रीत।
ए-सब कथाते कारो ना जन्मे प्रतीत॥ २५८ ॥

२५८। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर से उपदेश प्राप्त करके मायादेवी ने प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान किया। किसी-किसी को इन सब बातों में दृढ़ विश्वास नहीं होता।

अप्राकृत घटना में अप्राकृत विश्वास ही श्रेय प्राप्ति का कारण—

प्रतीत करिते कहि कारण इहार।
जाहार श्रवणे हय विश्वास सबार॥ २५९ ॥

२५९। प० अनु०—इन बातों में सबका दृढ़ विश्वास हो, इसलिए मैं इसका एक कारण बतलाता हूँ, जिसे श्रवण करने से सभी को विश्वास हो जायेगा।

कृष्णप्रेम प्रदाता चैतन्य के अवतार में कृष्णप्रेम की प्राप्ति के लिये देव-ऋषि आदि एवं नित्यसिद्ध भक्तों का भी मनुष्यों के रूप में जन्मग्रहण और कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

चैतन्यावतारे कृष्णप्रेमे लुब्ध हञा।
ब्रह्मा-शिव-सनकादि पृथिवीते जन्मिया॥२६०॥
कृष्णनाम लञा नाचे, प्रेमवन्याय भासे।
नारद-प्रह्लादादि आसे मनुष्य-प्रकाशे॥२६१॥

२६०-२६१। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु के अवतार के समय कृष्णप्रेम के लिये लालायित होकर ब्रह्मा-शिव-सनक आदि पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करके कृष्णनाम का उच्चारण करते हुए नृत्य करते हैं, प्रेम की बाढ़ में सराबोर हो जाते हैं तथा नारद-प्रह्लाद आदि भी साधारण मनुष्य का रूप धारण करके इस धराधाम पर आते हैं।

लक्ष्मी आदि का भी मनुष्य के रूप में कृष्ण-प्रेम आस्वादन—

लक्ष्मी-आदि करि' कृष्णप्रेमे लुब्ध हञा।
नाम-प्रेम आस्वादिला मनुष्ये जन्मिया॥२६२॥

२६२। प० अनु०—कृष्णप्रेम के प्रति लोभयुक्त होकर लक्ष्मी आदि ने भी मनुष्य के रूप में जन्म ग्रहण करके नाम-प्रेम का आस्वादन किया।

स्वयं कृष्ण के द्वारा अपने माधुर्य-प्रेम का आस्वादन—

अन्येर का कथा, आपने व्रजेन्द्रनन्दन।
अवतरि' करेन प्रेम-नाम आस्वादन॥२६३॥

२६३। प० अनु०—अन्यों का तो कहना ही क्या, स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन भी अवतरित होकर प्रेम-नाम का आस्वादन करते हैं।

मायादेवी का भी कृष्णप्रेम आस्वादन के प्रति लोभ, एकमात्र शुद्धनाम और शुद्धकीर्त्तन करने वाले की कृपा से ही कृष्ण प्रेम की प्राप्ति—

माया-दासी 'प्रेम' मागे,—इथे कि विस्मय?
'साधुकृपा', 'नाम' बिना 'प्रेम' ना जन्माय॥२६४॥

२६४। प० अनु०—तब श्रीकृष्ण की दासी माया यदि प्रेम माँगती हैं तो उसमें कैसा विस्मय? वास्तव में साधुकृपा और नाम के बिना प्रेम उत्पन्न नहीं होता।

चैतन्य-अवतार में जगत् जीवों को कृष्ण प्रेम की प्राप्ति—

चैतन्य-गोसाञिर लीलार एइ त' स्वभाव।
त्रिभुवन नाचे, गाय, पाञा प्रेमभाव॥२६५॥

२६५। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की लीलाओं का यही तो स्वभाव है कि त्रिभुवन वासी प्रेमभाव को प्राप्त करके नृत्य एवं गान करते हैं।

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आदि समस्त ईश्वर तत्त्वों और स्थावर-जङ्गम आदि जीवों की कृष्णकीर्त्तन के प्रभाव से कृष्णप्रेम में मत्तता—

कृष्ण-आदि, आर जत स्थावर-जङ्गमे।
कृष्णप्रेमे मत्त करे कृष्ण-सङ्कीत्तने॥२६६॥

२६६। प० अनु०—भगवान् श्रीकृष्ण आदि जितने भी भगवद्-तत्व हैं तथा जितने भी स्थावर- जङ्गम हैं, श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन उन सभी को कृष्णप्रेम में मत्त कर देता है।

श्रौतपन्था में गुरु मुख से ग्रन्थकार के द्वारा इन समस्त लीलाओं का वर्णन—

स्वरूप-गोसाञि कड़चाय जे-लीला लिखिल।
रघुनाथदास-मुखे जे सब शुनिल॥२६७॥

स्वयं ग्रन्थकार की दैन्यपूर्ण उक्ति—

सेइ सब लीला कहि संक्षेप करिया।
चैतन्य-कृपाते लिखि क्षुद्रजीव हञा॥२६८॥

२६७-२६८। प० अनु०— श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने स्वरचित कड़चे (दिनलिपि) में श्रीमन्महाप्रभु की जिन सब लीलाओं को लिखा है तथा मैंने श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के मुख से जिन समस्त लीलाओं का श्रवण किया है, क्षुद्रजीव होने पर भी मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से उन सभी लीलाओं का संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ।

नामाचार्य ठाकुर के माहात्म्य के श्रवण से शुद्धभक्तों को आनन्द—

हरिदास-ठाकुरेर कहिलुँ महिमार कण।
जाहार श्रवणे भक्तेर जुड़ाय श्रवण॥२६९॥

२६९। प० अनु०— मैंने श्रीहरिदास ठाकुर की महिमा के एक कण का ही वर्णन किया है, जिसके श्रवण से भक्तों के कर्ण शीतल हो जाते हैं।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥२७०॥

१७०। प० अनु०— श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे श्रीहरिदास-ठक्कुर-महिमा-कथनं नाम तृतीयः परिच्छेदः।

❋❋❋

चतुर्थ परिच्छेद

कथासार—श्रीसनातन गोस्वामी मथुरा मण्डल से अकेले झारिखण्ड के वन के मार्ग से पुरुषोत्तम (श्रीजगन्नाथ पुरी) में आये। मार्ग में जल के दोष और उपवास के कारण उनके शरीर में कण्डुरसा (पीप निकलने वाली खाज नामक रोग) हो गया। कण्डुरसा की यातना से उन्होंने मन-ही-मन विचार किया,—''मैं प्रभु के समक्ष ही जगन्नाथ के रथ के पहिये के नीचे इस शरीर का परित्याग करूँगा।'' पुरुषोत्तम में आकर वे हरिदास के वासस्थान पर ही रहे। महाप्रभु सनातन को देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। बाद में प्रभु ने सनातन गोस्वामी को अनुपम की गङ्गाप्राप्ति की बात एवं राम के चरणों के प्रति उनकी निष्ठा की बात बतलायी। एकदिन महाप्रभु ने सनातन से कहा,—''देह-त्याग आदि तामसिक धर्म हैं,—देहत्याग के द्वारा कृष्णप्रेम प्राप्त नहीं किया जा सकता; तुम इस तमोबुद्धि का परित्याग करो। तुम्हारा शरीर तुमने मुझे अर्पित किया है, इसलिए तुम्हें इस शरीर को परित्याग करने का कोई अधिकार नहीं है। तुम्हारे इस शरीर के द्वारा मैं अनेक भक्ति शास्त्रों का प्रचार एवं वृन्दावन के लुप्त तीर्थों का उद्धार करूँगा।'' महाप्रभु के उठ कर चले जाने पर हरिदास और सनातन में बहुत बातचीत हुई। एकदिन प्रभु ने सनातन को यमेश्वर टोटा में बुला भेजा, सनातन समुद्र के पथ से वहाँ गये। महाप्रभु के द्वारा पूछने पर सनातन ने कहा,—''सिंहद्वार के मार्ग से जगन्नाथ के सेवक गमनागमन करते हैं, इसलिए मैं बालु के मार्ग से आया हूँ। मेरे पैरों में जो फफोले पड़ गये हैं, मुझे उसका पता ही नहीं चला।'' सनातन के इन मर्यादा-स्थापक वचनों को सुनकर प्रभु सन्तुष्ट हुए। कण्डुरसा प्रभु के शरीर में लगेगा, इसी कारण सनातन प्रभु से दूर-दूर रहते, किन्तु प्रभु बलपूर्वक उनका आलिङ्गन करते। इससे सनातन बहुत दु:खी हुए तथा उन्होंने जब जगदानन्द पण्डित से कुछ परामर्श माँगा, तब जगदानन्द पण्डित ने उन्हें रथयात्रा के बाद वृन्दावन जाने का उपदेश प्रदान किया। महाप्रभु ने इस बात को सुनकर जगदानन्द का कुछ तिरस्कार किया एवं उनकी अपेक्षा सनातन के श्रेष्ठत्व को दिखलाया। महाप्रभु ने और भी कहा,—''तुम शुद्ध भक्त हो, तुम्हारी देह के भद्र और अभद्र होने का विचार करना उचित नहीं हैं, विशेषत: मैं—सन्यासी हूँ, मेरे द्वारा वैसा विचार करना उचित नहीं है।'' अन्त में उन्होंने कहा,—''तुम मेरे लाल्य हो एवं मैं लालक हूँ, अतएव तुम्हारे क्लेद (पीप) के प्रति मेरी घृणा नहीं है।'' इन सब प्रसङ्गों के बाद महाप्रभु ने सनातन को आलिङ्गन किया, जिसके फलस्वरूप सनातन के अङ्गों से कण्डुरसा रोग दूर हो गया। उस वर्ष सनातन को पुरी में ही रखकर प्रभु ने (अगले वर्ष उन्हें) श्रीवृन्दावन जाने की आज्ञा दी। सनातन भी उनकी आज्ञानुसार वन के पथ का अवलम्बन करके वृन्दावन चले गये। दूसरी ओर, श्रीरूप गोस्वामी महाप्रभु के चरणों से विदायी लेकर, गौड़देश (बङ्गाल) में एक वर्ष तक रहकर, कुटुम्ब, ब्राह्मण और देवालय (मन्दिर) में सम्पूर्ण अर्थ को बाँटने के पश्चात्, वृन्दावन में जाकर सनातन से मिले। इसके पश्चात् कविराज गोस्वामी ने रूप, सनातन और जीव गोस्वामी द्वारा रचित ग्रन्थों के नामों का उल्लेख किया है।

(अ: प्र: भा:)

सनातन की देहत्याग के सङ्कल्प से रक्षा करने वाले गौरसुन्दर—

वृन्दावनात् पुनः प्राप्तं श्रीगौरः श्रीसनातनम्।
देहपातादवन् स्नेहात् शुद्धं चक्रे परीक्षया॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। श्रीगौरचन्द्र ने वृन्दावन से आये सनातन को स्नेहवशत: देहत्याग से उद्धार [रक्षा] करके परीक्षा पूर्वक शुद्ध किया था।

अनुभाष्य

१। श्रीगौरः (महाप्रभुः) वृन्दावनात् पुनः प्राप्तं (काशीमिलनानन्तरं क्षेत्रमागतं) श्रीसनातनं (प्रभुं) स्नेहात् देहपातात् (शरीरनाशात्) अवन् (रक्षन्) परीक्षया शुद्धं चक्रे।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैत चन्द्र की जय हो तथा श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

रूप का पुरी से गौड़ जाना, सनातन का वृन्दावन से पुरी में आगमन—

नीलाचल हैते रूप गौड़े जबे गेला।
मथुरा हैते सनातन नीलाचल आइला॥ ३ ॥

३। प० अनु०—जब श्रीरूप गोस्वामी नीलाचल से गौड़देश गये तभी श्रीसनातन गोस्वामी मथुरा से नीलाचल पहुँचे।

झारिखण्ड के मार्ग में बहुत कष्ट स्वीकार करके पुरी में आगमन—

झारिखण्ड-वनपथे आइला एकेला चलिया।
कभु उपवास, कभु चर्वण करिया॥ ४ ॥

४। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी झारिखण्ड के जङ्गल वाले मार्ग से अकेले चलते-चलते आये। उन्होंने मार्ग में कभी तो उपवास किया तथा कभी कुछ चने इत्यादि चबा लिये।

बहिर्दर्शन अनुसार सनातन के समस्त अङ्गों में कण्डुयन (पीप निकलने वाली खाज) का दिखलायी देना—

झारिखण्डेर जलेर दोषे, उपवास हैते।
गात्रे कण्डु हैल, रसा पड़े खाजुयाइते॥ ५ ॥

५। प० अनु०—झारिखण्ड के जल के दोष के कारण तथा बहुत अधिक उपवास करने से श्रीसनातन गोस्वामी के शरीर में कण्डुरसा (पीप निकलने वाली खाज) नामक रोग उत्पन्न हो गया। सारे शरीर में वे जहाँ कहीं भी खुजाते, वहीं से रस (पीप) बहने लगता।

अमृतप्रवाह भाष्य

५। खाजुयाइते—तवचा को खुजलाने से।

मार्ग में सनातन का निर्वेद (निराशा) और आत्म दैन्यपूर्ण उक्ति—

निर्वेद हइल पथे, करेन विचार।
नीच-जाति, देह मोर—अत्यन्त असार॥ ६ ॥

६। प० अनु०—मार्ग में चलते-चलते श्रीसनातन गोस्वामी अपने शरीर की ऐसी अवस्था को देखकर कुछ निराश होकर विचार करने लगे—''मैं नीच जाति का हूँ तथा मेरी देह भजन के अत्यन्त अयोग्य है।

अनुभाष्य

६। निर्वेद—विरक्ति (निराशा); असार,— कृष्णभजन के अयोग्य।

जगन्नाथे गेले ताँर दर्शन ना पाइमु।
प्रभुर दर्शन सदा करिते नारिमु॥ ७ ॥

७। प० अनु०—''शरीर की ऐसी अवस्था के कारण श्रीजगन्नाथपुरी में जाने पर भी मैं भगवान् जगन्नाथ के दर्शन नहीं कर पाऊँगा तथा सदैव श्रीमन्महाप्रभु के भी दर्शन नहीं कर पाऊँगा।

मन्दिर-निकटे शुनि ताँर वासा-स्थिति।
मन्दिर-निकटे जाइते मोर नाहि शक्ति॥ ८ ॥

८। प० अनु०— ''मैंने सुना है कि श्रीमन्महाप्रभु का वासस्थान जगन्नाथ मन्दिर के निकट ही है तथा मन्दिर के निकट जाने की शक्ति (योग्यता) मुझमें नहीं है।

स्वयं को लौकिक अपवित्र जीव समझकर मर्यादा के उल्लंघन का भय—

जगन्नाथेर सेवक फेरे कार्य-अनुरोधे।
ताँर स्पर्श हैले मोर हबे अपराधे॥ ९ ॥

९। प० अनु०—''मन्दिर के आस-पास भगवान् श्रीजगन्नाथ के सेवक सेवा के उद्देश्य से इधर-उधर आना-जाना करते हैं, उनके शरीर से मेरे शरीर के स्पर्श होने पर मेरा अपराध हो जायेगा।

जगन्नाथ के रथ के आगे प्रभु के नृत्य के समय देहत्याग का सङ्कल्प—

ताते यदि एइ देह भाल-स्थाने दिये।
दुःख-शान्ति हय आर सद्गति पाइये॥ १० ॥

१०। प० अनु०—''इसलिए यदि इस देह को किसी अच्छे स्थान पर त्याग दिया जाये तो एक तो दुःख से छुटकारा मिल जायेगा, दूसरा मुझे सद्गति की भी प्राप्ति होगी।

जगन्नाथ रथयात्राय हइबेन बाहिर।
ताँर रथ-चाकाय छाड़िमु एइ शरीर॥ ११ ॥

११। प० अनु०—''अतएव जब भगवान् जगन्नाथ रथ-यात्रा के उपलक्ष्य में अपने मन्दिर से बाहर आयेंगे, तब मैं उनके रथ के पहिये के नीचे आकर इस देह को त्याग दूँगा।

महाप्रभुर आगे, आर देखि' जगन्नाथ।
रथे देह छाड़िमु,—एइ परम-पुरुषार्थ॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—''मैं श्रीमन्महाप्रभु के सामने ही भगवान् श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन करके रथ के पहिये के नीचे देह त्याग करूँगा,—यही परम पुरुषार्थ है।''

ठाकुर हरिदास के स्थान पर आगमन—

एइ त' निश्चय करि' नीलाचले आइला।
लोके पुछि' हरिदास-स्थाने उतरिला॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ऐसा निश्चय करके नीलाचल में आये तथा लोगों से पूछ-पूछकर वे श्रीहरिदास ठाकुर की भजन कुटीर पर आ पहुँचे।

हरिदास को प्रणाम, हरिदास के द्वारा आलिङ्गन—

हरिदासेर कैल तेंह चरण वन्दन।
जानि' हरिदास ताँरे कैला आलिङ्गन॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीहरिदास ठाकुर के चरणों की वन्दना की। उनका परिचय जानकर श्रीहरिदास ठाकुर ने उन्हें आलिङ्गन दान किया।

प्रभु के चरणों का दर्शन करने के लिये व्याकुल सनातन—

महाप्रभु देखिते ताँर उत्कण्ठित मन।
हरिदास कहे, —''प्रभु आसिबेन एखन॥'' १५ ॥

१५। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी का मन श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये उत्कण्ठित हो रहा था। श्रीहरिदास ठाकुर ने उन्हें कहा, —''श्रीमन्महाप्रभु अभी आने ही वाले हैं।''

प्रभु का आगमन—

हेनकाले प्रभु 'उपलभोग' देखिया।
हरिदासे मिलिते आइला भक्तगण लञा॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—उसी समय श्रीमन्महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथ के 'उपलभोग' का दर्शन करके अपने भक्तों सहित श्रीहरिदास ठाकुर से मिलने के लिये आये।

दोनों के द्वारा प्रभु को प्रणाम, प्रभु द्वारा हरिदास का आलिङ्गन—

प्रभु देखि' दुँहे पड़े दण्डवत् हञा।
प्रभु आलिङ्गिला हरिदासेरे उठाञा॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को आया देखकर श्रीहरिदास ठाकुर तथा श्रीसनातन गोस्वामी—दोनों ने दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर को उठाकर उनका आलिङ्गन किया।

सनातन के आगमन से प्रभु में विस्मय और प्रीति—

हरिदास कहे,—''सनातन करे नमस्कार।''
सनातने देखि' प्रभु हैला चमत्कार॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''महाप्रभु! सनातन आपको प्रणाम कर रहा है।'' श्रीसनातन गोस्वामी को जगन्नाथपुरी में आये देखकर श्रीमन्महाप्रभु आश्चर्यचकित हो गये।

अपने प्रिय भक्तवर को आलिङ्गन करने के लिये भगवान् का आगे जाना, सनातन का दूर भागना और दैन्यपूर्ण उक्ति—

सनातने आलिङ्गिते प्रभु आगु हैला।
पाछे भागे सनातन कहिते लागिला॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीसनातन गोस्वामी को आलिङ्गन करने के लिये जैसे ही आगे बढ़े, श्रीसनातन गोस्वामी पीछे भागते हुए कहने लगे—।

''मोरे ना छुँइह प्रभु, पड़ों तोमार पाय।
एके नीचजाति अधम, आर कण्डुरसा गाय॥''२०॥

२०। प० अनु०— ''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप कृपया मुझे स्पर्श मत कीजिए, मैं आपके चरणों में नतमस्तक हो रहा हूँ। एक तो मैं नीचजाति का होने के कारण अधम हूँ, उस पर भी मेरे शरीर में कण्डुरसा (पीप निकलने वाली खाज) नामक रोग हो गया है।''

बलपूर्वक भगवान् द्वारा अपने प्रिय भक्तवर का आलिङ्गन—

बलात्कारे प्रभु ताँरे आलिङ्गन कैल।
कण्डुक्लेद महाप्रभुर श्रीअङ्गे लागिल॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—तब भी श्रीमन्महाप्रभु ने बलपूर्वक श्रीसनातन गोस्वामी का आलिङ्गन किया, जिसके फलस्वरूप कण्डुरसा (पीप) श्रीमन्महाप्रभु के सुन्दर अङ्गों पर लग गया।

भक्तों के साथ सनातन का मिलन—

सब भक्तगणे प्रभु मिलाइला सनातने।
सनातन कैला सबार चरण वन्दने॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अपने उपस्थित सभी भक्तों के साथ श्रीसनातन गोस्वामी की भेंट करायी। श्रीसनातन गोस्वामी ने सभी भक्तों के चरणों की वन्दना की।

दीनतापूर्वक हरिदास और सनातन का भक्तों से नीचे बैठना—

प्रभु लञा बसिला पिण्डार उपरे भक्तगण।
पिण्डार तले बसिला हरिदास, सनातन॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु अपने समस्त भक्तों को साथ में लेकर एक चबूतरे पर बैठ गये, श्रीहरिदास ठाकुर तथा श्रीसनातन गोस्वामी चबूतरे के नीचे बैठे।

प्रभु के द्वारा सनातन और व्रजवासी भक्तों के कुशल की जिज्ञासा और सनातन का उत्तर—

कुशलवार्त्ता महाप्रभु पुछेन सनातने।
तेंह कहेन,—''परम मङ्गल देखिनु चरणे॥'' २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसनातन से उनकी कुशलता के विषय में पूछा। श्रीसनातन ने उत्तर दिया—''सब ओर से परम मङ्गल है, कारण मुझे आपके चरणों के दर्शन प्राप्त हो गये हैं।''

मथुरार वैष्णव-सबेर कुशल पुछिला।
सबार कुशल सनातन जानाइला॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसनातन गोस्वामी से मथुरा के समस्त वैष्णवों की कुशलता के विषय में भी पूछा। श्रीसनातन गोस्वामी ने उन सभी की कुशलता के विषय में सबकुछ बतलाया।

प्रभु के द्वारा सनातन को रूप और अनुपम का संवाद-प्रदान—

प्रभु कहे,—''इँहा रूप छिल दशमास।
इँहा हैते गौड़े गेला, हैल दिन दश॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''रूप दस महीने तक श्रीजगन्नाथपुरी में था। वह यहाँ से दस दिन पहले ही गौड़देश गया है।

तोमार भाइ अनुपमेर हैल गङ्गा-प्राप्ति।
भाल छिल, रघुनाथे दृढ़ ता'र भक्ति॥'' २७ ॥

२७। प० अनु०—''आपके भाई अनुपम को गङ्गा-प्राप्ति हुयी है अर्थात् उन्होंने गङ्गा के निकट ही देह-त्याग दिया है। अनुपम बहुत ही अच्छे भक्त थे, उनकी भगवान् श्रीरामचन्द्र के प्रति दृढ़ भक्ति थी।''

सनातन के द्वारा अपने विषय में दैन्य-उक्ति और प्रभु की अयाचित कृपा की महिमा का वर्णन—

सनातन कहे,—''नीच-वंशे मोर जन्म।
अधर्म, अन्याय जत,—आमार कुलधर्म॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! मेरा जन्म नीच वंश में हुआ है। अधर्म तथा अन्यायपूर्ण कार्य करना तो मेरा कुलधर्म है।

अनुभाष्य

२८। नीच-वंशे,—मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की १८९ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

हेन वंशे घृणा छाड़ि' कैला अङ्गीकार।
तोमार कृपाय वंशे मङ्गल आमार॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—''आपने मेरे ऐसे वंश के प्रति घृणा का त्याग करके मुझे स्वीकार किया है, आपकी कृपा से मेरे वंश में मङ्गल ही है।

छोटे भाई अनुपम की ऐकान्तिकी रामनिष्ठा का वर्णन—

सेइ अनुपम-भाइ शिशुकाल हैते।
रघुनाथ-उपासना करे दृढ़चित्ते॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—''वह मेरा भाई अनुपम बचपन से ही भगवान् रघुनाथ की दृढ़ चित्त से उपासना करता था।

रात्रि-दिने रघुनाथेर 'नाम' आर 'ध्यान'।
रामायण निरवधि शुने, करे गान॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—''अनुपम रात-दिन भगवान् रघुनाथ का ही नाम और उन का ही ध्यान करता था, वह निरन्तर रामायण का श्रवण तथा कीर्त्तन करता था।

तीनों भाइयों की परस्पर अकृत्रिम प्रीति—

आमि आर रूप—तार ज्येष्ठ-सहोदर।
आमा-दोंहा-सङ्गे तेंह रहे निरन्तर॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०—''मैं (श्रीसनातन गोस्वामी) और रूप अनुपम से बड़े उसके सगे भाई हैं, अनुपम निरन्तर हम दोनों के साथ ही रहता था।

आमा-सबा-सङ्गे कृष्णकथा, भागवत शुने।
ताहार परीक्षा कैलुँ आमि-दुइजने॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—''अनुपम मेरे और रूप के साथ श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कथाएँ तथा भागवत का भी श्रवण करता था। मैंने और रूप ने अनुपम की परीक्षा लेते हुए कहा था—।

अनुपम को दोनों बड़े भाइयों द्वारा कृष्ण के गुण-माधुर्य के वर्णन के द्वारा कृष्णभजन का प्रलोभन देना—

''शुनह वल्लभ, कृष्ण—परम-मधुर।
सौन्दर्य, माधुर्य, प्रेम-विलास—प्रचुर॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—''हे वल्लभ (अनुपम)! सुनो, श्रीकृष्ण परम मधुर हैं। श्रीकृष्ण में सौन्दर्य, माधुर्य तथा प्रेमरूपी विलास भगवान् रघुनाथ से कहीं अधिक है।

कृष्णभजन कर तुमि आमा-दुँहार सङ्गे।
तिन भाइ एकत्र रहिमु कृष्णकथा-रङ्गे॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—''अतएव हे अनुपम ! तुम हम दोनों भाईयों के साथ मिलकर भगवान् श्रीकृष्ण का भजन

करो। हम तीनों भाई एक साथ कृष्णकथा के आनन्द में डूबे रहेंगे।

दोनों बड़े भाइयों के अत्यधिक अनुरोध करने पर एकान्तिक अनुपम का थोड़े समय के लिये चित्त-परिवर्त्तन—

एइमत बार बार कहि दुइजन।
आमा-दुँहार गौरवे किछु फिरि' गेल मन॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—''इस प्रकार जब हम दोनों बारम्बार उसे ऐसा कहने लगे तो हम दोनों के प्रति सम्मान के कारण अनुपम का मन थोड़ा-सा परिवर्त्तित हो गया।

अनुपम की कृष्णभजन करने की इच्छा—

''तोमा-दुँहार आज्ञा आमि केमने लङ्घिमु?
दीक्षा-मन्त्र देह', कृष्ण-भजन करिमु॥'' ३७ ॥

३७। प० अनु०—''अनुपम ने हमसे कहा,—'मैं आप दोनों भाईयों की आज्ञा का कैसे उल्लङ्घन करूँ? आप मुझे दीक्षा-मन्त्र प्रदान कीजिए, मैं कृष्ण भजन करूँगा।'

राम के भजन का परित्याग करने के कारण अनुपम की चिन्ता और व्याकुलता—

एत कहि' रात्रिकाले करेन चिन्तन।
केमने छाड़िमु रघुनाथेर चरण॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—''इतना कहकर अनुपम ने रात्रि के समय में विचार किया 'मैं भगवान् श्रीरघुनाथ के चरणों का कैसे परित्याग करूँगा!'

क्रन्दन, जागरण और निवेदन—

सब रात्रि क्रन्दन करि' कैल जागरण।
प्रातःकाले आमा-दुँहाय कैल निवेदन॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—''अनुपम ने सम्पूर्ण रात्रि क्रन्दन करते हुए ही व्यतीत कर दी तथा प्रातः होने पर उसने हम दोनों के समक्ष निवेदन किया।

अनुपम की अत्यधिक एकान्तिक-रामनिष्ठा—

''रघुनाथेर पादपद्मे बेचियाछों माथा।
काड़िते ना पारों माथा, पाङ बड़ व्यथा॥ ४० ॥
कृपा करि' मोरे आज्ञा देह' दुइजन।
जन्मे जन्मे सेवों रघुनाथेर चरण॥ ४१ ॥
रघुनाथेर पादपद्म छाड़ान ना जाय।
छाड़िवार मन हैले प्राण फाटि' जाय॥'' ४२ ॥

४०-४२। प० अनु०—''अनुपम ने हमसे कहा,—'मैंने भगवान् श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में अपने मस्तक को बेच दिया है। मैं अपने मस्तक को वहाँ से उठा नहीं पा रहा हूँ, मुझे ऐसा करने में बहुत अधिक पीड़ा हो रही है। आप दोनों कृपा करके मुझे यही आज्ञा प्रदान कीजिए कि मैं जन्म-जन्मान्तर तक भगवान् श्रीरघुनाथ के चरणों की सेवा करूँ। मैं श्रीरघुनाथ के चरण कमलों का परित्याग नहीं कर सकता, इस बात के मन में आने पर ही मेरे प्राण फटकर निकलने लगते हैं।'

छोटे भाई को दोनों बड़े भाइयों द्वारा आशीर्वाद—

तबे आमि-दुँहे तारे आलिङ्गन कैलुँ।
'साधु-दृढ़भक्ति तोमार'—कहि' प्रशंसिलुँ॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—''तब मैंने और रूप ने अनुपम को आलिङ्गन किया तथा 'तुम्हारी श्रीरघुनाथ के प्रति दृढ़ भक्ति उचित ही है'—ऐसा कहकर हमने उसकी प्रशंसा की।

प्रभु की कृपा के प्रति दृढ़-आस्था—

''जे वंशेर उपरे तोमार हय कृपा-लेश।
सकल मङ्गल ताहे, खण्डे सब क्लेश॥'' ४४ ॥

४४। प० अनु०—'' हे श्रीमन्महाप्रभु! जिस वंश के प्रति आपकी लेश मात्र भी कृपा होती है, वहाँ पर समस्त प्रकार के मङ्गल विराजमान हो जाते हैं तथा समस्त प्रकार के कष्ट दूर हो जाते हैं।''

प्रभु के द्वारा मुरारिगुप्त की रामनिष्ठा के दृष्टान्त का वर्णन—

गोसाञि कहेन,—''एइमत मुरारि-गुप्त।
पूर्वे आमि परीक्षिलुँ तार एइ रीत॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैंने भी तुम्हारी ही भाँति पहले मुरारि गुप्त की परीक्षा ली थी, उसकी भी अनुपम की भाँति श्रीरघुनाथ के प्रति दृढ़ भक्ति थी।

अनुभाष्य

३०-४५। इस प्रसङ्ग में मध्य-लीला के पञ्चदश परिच्छेद की १३७ से १५७ वीं संख्या में वर्णित श्रीमुरारि गुप्त की श्रीरामनिष्ठा आलोच्य है।

एकान्तिक भक्त और भगवान्, परस्पर की प्रीति की विशेषता—

सेइ भक्त धन्य, जे ना छाड़े प्रभुर चरण।
सेइ प्रभु धन्य, जे ना छाड़े निज-जन॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—''वही भक्त धन्य है जो अपने प्रभु के चरणों को कभी भी नहीं छोड़ता तथा वही प्रभु धन्य हैं जो अपने निज जनों को कभी नहीं त्यागते।

एकान्तिक भक्तवत्सल भगवान्—

दुर्दैवे सेवक यदि जाय अन्य-स्थाने।
सेइ ठाकुर धन्य तारे चुले धरि' आने॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—''दुर्भाग्यवशतः यदि सेवक अन्य किसी स्थान पर चला जाता है तो वही प्रभु धन्य हैं, जो अपने उस सेवक को उसके केशों से पकड़कर खींचकर ले आते हैं।

सनातन को हरिदास के सङ्ग में रहने की आज्ञा—

भाल हैल, तोमार इँहा हैल आगमने।
एइ घरे रह इँहा हरिदास-सने॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—''अच्छा ही हुआ जो तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ है। तुम यहीं इसी घर में हरिदास के साथ रहो।

सनातन और हरिदास की प्रशंसा करके प्रभु द्वारा उन्हें आदेश—

कृष्णभक्तिरसे दुँहे परम प्रधान।
कृष्णरस आस्वादन कर, लह कृष्णनाम॥'' ४९ ॥

४९। प० अनु०—''तुम दोनों ही कृष्णभक्ति के रस को जानने वालों में सबसे प्रधान हो। तुम दोनों कृष्णरस का आस्वादन करो तथा कृष्ण के नाम का उच्चारण करो।''

प्रभु का प्रस्थान; दोनों के लिये प्रसाद भेजना—

एत बलि' महाप्रभु उठिया चलिला।
गोविन्द-द्वाराय दुँहे प्रसाद पाठाइला॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु उठकर चल दिये तथा उन्होंने अपने सेवक गोविन्द के हाथों श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन गोस्वामी के लिये प्रसाद भिजवाया।

सनातन के द्वारा मन्दिर के चक्र को देखकर प्रणाम—

एइमत सनातन रहे प्रभु-स्थाने।
जगन्नाथेर चक्र देखि' करेन प्रणामे॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०— इस प्रकार श्रीसनातन श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा निर्देशित स्थान पर रहने लगे, वे श्रीजगन्नाथ मन्दिर के शिखर पर लगे चक्र को देखकर उसे प्रणाम करते।

अमृतप्रवाह भाष्य

५१। चक्र—नीलचक्र।

प्रतिदिन दोनों के साथ प्रभु का साक्षात्कार और महाप्रसाद-प्रदान—

प्रभु आसि' प्रतिदिन मिलेन दुइजने।
इष्टगोष्ठी, कृष्णकथा कहे कतक्षणे॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु आकर प्रतिदिन श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन गोस्वामी से मिलते थे तथा कुछ देर तक कृष्णकथा कीर्त्तन रूपी इष्टगोष्ठी करते थे।

दिव्य प्रसाद पाञा नित्य जगन्नाथ-मन्दिरे।
ताहा आनि' नित्य अवश्य देन दोंहाकारे॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु नित्यप्रति श्रीजगन्नाथ मन्दिर से प्राप्त होने वाले दिव्य महाप्रसाद को लाते तथा उसे अवश्य श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन गोस्वामी को देते थे।

एकदिन अन्तर्यामी प्रभु द्वारा सबके समक्ष सनातन के पूर्व-सङ्कल्प के विषय में बतलाना—

एकदिन आसि' प्रभु दुँहारे मिलिला।
सनातने आचम्बिते कहिते लागिला॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—एकदिन श्रीमन्महाप्रभु आकर श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन गोस्वामी से मिले तथा उनसे भेंट करने के पश्चात् अचानक श्रीसनातन गोस्वामी से कहने लगे—।

सनातन को उपलक्ष्य करके मनोधर्म के द्वारा चलने वाले अनर्थयुक्त साधक को प्रभु के द्वारा शिक्षा प्रदान; फल्गु-ज्ञान और वैराग्य कृष्णप्राप्ति के उपाय नहीं—

''सनातन, देहत्यागे कृष्ण यदि पाइये।
कोटि-देह क्षणेके तबे छाड़िते पारिये॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—''हे सनातन! देह त्याग करने से यदि कृष्ण प्राप्त होते हों, तब तो मैं एक क्षण में ही करोड़ों शरीरों को त्याग सकता हूँ।

युक्त वैराग्य के साथ शुद्ध भक्ति ही कृष्णप्राप्ति का उपाय, अन्य कुछ नहीं—

देहत्यागे कृष्ण ना पाइ, पाइये भजने।
कृष्णप्राप्त्येर उपाय कोन नाहि 'भक्ति' बिने॥ ५६॥

५६। प० अनु०—''वास्तव में देहत्याग से कृष्ण प्राप्त नहीं हो सकते, वह तो भजन से ही प्राप्त होते हैं। भक्ति के अलावा कृष्ण को प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

अप्राकृत विशुद्धसत्त्वमयी भक्ति में ही कृष्ण का वास, प्राकृत गुणमयी कर्म-ज्ञान की चेष्टा से कृष्ण की प्राप्ति का अभाव—

देहत्यागादि जत, सब—तमो-धर्म।
तमो-रजो-धर्मे कृष्णेर ना पाइये मर्म॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—''देहत्याग आदि करना तो तमोगुण धर्म के अन्तर्गत हैं। तमोगुण और रजोगुण आदि की क्रियाओं से मिश्रित धर्म के द्वारा कृष्ण के मर्म को नहीं जाना जा सकता।

कृष्णभक्ति ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति का एकमात्र उपाय—

'भक्ति' बिना कृष्णे कभु नहे 'प्रेमोदय'।
प्रेम बिना कृष्णप्राप्ति अन्य हैते नय॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—''भक्ति के बिना कृष्ण के प्रति कभी भी प्रेम का उदय नहीं हो सकता तथा प्रेम के बिना अन्य किसी उपाय से कृष्ण की प्राप्ति सम्भवपर नहीं है।

श्रीमद्भागवत (११.१४.२०) में—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥ ५९॥

५९।अनु०— 'हे उद्धव, मेरे प्रति की गई प्रबला भक्ति जिस प्रकार मुझे वशीभूत कर सकती है, अष्टांग-योग, अभेद-ब्रह्मवाद रूपी सांख्य-ज्ञान, ब्राह्मणों द्वारा स्वशाखा-अध्ययन रूपी स्वाध्याय, सर्वविध तपस्या और त्याग रूपी सन्यास आदि द्वारा मैं उस प्रकार वशीभूत नहीं होता।

अनुभाष्य

५९। आदि-लीला के सप्तदश परिच्छेद की ७६ वीं संख्या द्रष्टव्य।

मनोधर्मी साधक द्वारा भेदबुद्धि पर आधारित फल्गु-त्याग और ज्ञान की चेष्टा—जड़ेन्द्रिय तृप्तिमयी है, कृष्णप्रीति-तात्पर्यमयी नहीं होने के कारण उसके द्वारा कृष्णप्राप्ति असम्भव—

देहत्यागादि तमो-धर्म—पातक-कारण।
साधक ना पाय ताते कृष्णेर चरण॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—''देहत्याग आदि तमोधर्म का पालन तो पातक का कारण बनता है, उससे साधक को कृष्ण

के चरणों की प्राप्ति नहीं होती।

सिद्ध अनुरागी भक्त की गाढ़-विप्रलम्भ से उत्पन्न देहत्याग की इच्छा—सम्पूर्ण कृष्ण की इच्छा से चालित और कृष्णप्रीति चेष्टामयी, उससे ही उसे कृष्ण की प्राप्ति—

प्रेमी भक्त वियोगे चाहे देह छाड़िते।
प्रेमे कृष्ण मिले, सेह ना पारे मरिते॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—''प्रेमी भक्त भगवान् के विरह में अपनी देह को त्यागना चाहता है, किन्तु उसी विरह रूपी प्रेम की अवस्था में उसे श्रीकृष्ण के सङ्ग रूपी स्फूर्त्ति की प्राप्ति होती है, जिसके कारण वह देह को त्याग ही नहीं पाता।

अमृतप्रवाह भाष्य

६१। कृष्ण के विच्छेद में प्रेमिक भक्त अपनी देह को त्याग करने की इच्छा करता है; उसी प्रेम के बल से ही वह कृष्ण को प्राप्त करता है, देह त्याग नहीं कर पाता अर्थात् कृष्ण उसे मरने नहीं देते।

गाढ़ानुरागेर वियोग ना जाय सहन।
ताते अनुरागी वाञ्छे आपन मरण॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—''गाढ़ अनुराग की अवस्था में कृष्ण के विरह को सहन कर पाना सम्भवपर नहीं होता, इसी कारण अनुरागी व्यक्ति अपनी मृत्यु की कामना करता है।

अनुभाष्य

६१-६२। मध्य-लीला के द्वादश परिच्छेद की ३१ वीं संख्या द्रष्टव्य—''किन्तु अनुरागी लोकेर स्वभाव एक हय। इष्ट ना पाइले निजप्राण से छाड़य॥'' [अर्थात् किन्तु अनुरागी व्यक्तियों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने इष्ट को न पाकर अपने प्राणों को त्याग देते हैं।]

वासुदेव के प्रति रुक्मिणी के द्वारा अनुराग का निवेदन—श्रीमद्भागवत (१०.५२.४३) में—

यस्यांघ्रि पङ्कजरजः स्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्॥ ६३ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

६३। ''हे अम्बुजाक्ष (कमलाक्ष), अपने तमोगुण का विनाश करने के लिये शिव जैसे श्रेष्ठ व्यक्ति भी जिन चरणकमलों की रज में स्नान करने की इच्छा करते हैं, आपका वह प्रसाद यदि मुझे प्राप्त नहीं हुआ, तब फिर आपकी प्राप्ति के लिये व्रत से कृश (दुर्बल) होकर जीवन परित्याग करके [पुनः जन्म प्राप्त करने पर भी इसी रीति का अवलम्बन करके अन्ततः] सौ जन्मों के बाद आपकी कृपा को प्राप्त कर ही लूँगी।

अनुभाष्य

६३। लोगों के मुख से श्रीकृष्ण की अनन्त सद्गुणावली श्रवण करके, भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी ने [मन-ही-मन में] यद्यपि उन्हें अपने पति के रूप में वरण कर लिया था, तब भी, उनके बड़े भाई कृष्णद्वेषी रुक्मी ने चैद्य-शिशुपाल को ही उनके वर के रूप में चुना है, ऐसा सुनकर [रुक्मिणी ने] निर्जन में एक प्रेमपत्र लिखकर एक विश्वसनीय ब्राह्मण को देकर तत्क्षणात् उसे श्रीकृष्ण के पास भेजा। ब्राह्मण द्वारका में उपस्थित होकर श्रीकृष्ण के द्वारा यथाविधि सत्कार प्राप्त करने के पश्चात् श्रीकृष्ण की अनुमति से रुक्मिणी के उस प्रेमपत्र को पढ़ने लगे—

हे अम्बुजाक्ष (कमलनयन), आत्मनः (स्वस्य) तमः (अज्ञानम्) अपहत्यै (विनाशाय) उमापतिः (शिवः) इव महान्तः (ब्रह्मादयः) यस्य (भवतः) अंघ्रिपङ्कजरजः स्नपनं (अंघ्रिपङ्कजस्य पादपद्मस्य रजोभिः स्नपनं) वाञ्छन्ति, (तद्) भवत् प्रसादं (तस्य भवतः अनुग्रहं) यर्हि अहं न लभेय (न प्राप्नुयां तर्हि) व्रत कृशान् (व्रतैः उपवासादिभिः कृशान्) असून् (प्राणान्) जह्यां (त्यजेयम्,—एवमेव) शतजन्मभिः (अपि तव प्रसादः) स्यात्।

श्रीकृष्ण के प्रति रासोत्सुक गोपियों के द्वारा अनुराग का निवेदन—श्रीमद्भागवत (१०.२९.३५) मे—

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोक-कल-गीतज-हृच्छयाग्निम्।
नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते॥ ६४ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

६४। ''हे प्रिय, हमारी ओर देखकर हमें निहारने वाले मुस्कुराते हुए आपके मुख को देखकर और आपके कल गीत अर्थात् मधुर वशी ध्वनि को श्रवण करके हमारी जो कामाग्नि वर्धित हुई है, उसे आपके अधरामृत के सञ्चार के द्वारा सिञ्चित करके शीतल करो; वैसा नहीं करने से, हे सखे, हम तुम्हारे विरह से उत्पन्न अग्नि के द्वारा दग्ध देह से ध्यान के द्वारा तुम्हारी चरणपदवी को प्राप्त करेंगी।

अनुभाष्य

६४। ज्योत्स्ना (चाँदनी) से परिपूर्ण शारदीय रात्रि में श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि से सम्पूर्ण रूप में आकृष्ट गोपियाँ आत्म-विस्मृत होकर श्रीकृष्ण के निकट उपस्थित हुईं, श्रीकृष्ण ने उनके अनुराग को और भी अधिक वर्धित करने के उद्देश्य से उन्हें घर में जाने के लिये कहा, तब कृष्ण को अपने प्राण समर्पित करने वाली गोपियाँ दुःखित होकर अवरुद्धकण्ठ से गद्गद वचनों के द्वारा श्रीकृष्ण से कह रही हैं—

हे अङ्ग (कृष्ण,) त्वदधरामृतपूरकेण (तव अधर सम्बन्धिना सुधाप्रवाहेन) नः (अस्माकं) हासावलोक-कलगीतजहृच्छयाग्निं (हाससहितेन अवलोकः च कलगीतं मधुरवंशीध्वनिः च ताभ्यां जातः यः हृदि शेते वसति हृच्छयः कामः सः एव अग्निः दाहकः तं) सिञ्च (निर्वापय); नोचेत् हे सखे, वयं विरहजाग्न्युप्युक्तदेहाः (विरहजेन विरहात् जनिष्यते यः अग्निः तेन उपयुक्तदेहाः दग्धशरीराः सत्यः योगिनः इव) ध्यानेन ते (तव) पदयोः पदवीं (अन्तिकं) याम (प्राप्नुयाम्)।

सनातन को उपलक्ष्य करके प्रभु के द्वारा अनर्थयुक्त साधक को निरन्तर हरिभजन की शिक्षा प्रदान—

कुबुद्धि छाड़िया कर श्रवण-कीर्त्तन।
अचिरात् पाबे तबे कृष्णप्रेम-धन॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—''अतएव हे सनातन! कुबुद्धि का परित्याग करके श्रवण और कीर्त्तन करो, तब तुम्हें अतिशीघ्र कृष्णप्रेम रूपी धन की प्राप्ति होगी।

अनुभाष्य

६५। कुबुद्धि,—कृष्णसेवा-परायण बुद्धि के अतिरिक्त नश्वर जड़ेन्द्रिय-तर्पण-परायण असती बुद्धि।

स्त्री-पुरुष के सङ्ग से होने वाले शौक्र जन्म (जाति)-वाद का खण्डन, कृष्णभजन में योग्यता का निर्देश, शुद्धभक्त ही गुरु अथवा महत्तम—

नीच जाति नहे कृष्णभजने अयोग्य।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०— ''नीच-जाति में उत्पन्न व्यक्ति कृष्णभजन के अयोग्य नहीं होता, दूसरी ओर, केवलमात्र सत्कुल में उत्पन्न ब्राह्मण होने से ही कोई कृष्णभजन के योग्य नहीं बन जाता।

अनुभाष्य

६६। (भाः ३.३३.७)—''अहो बतश्वपचोऽतो गरीयान्, यत् जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्। तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या, ब्रह्मानूचुर्नाम् गृणन्ति ये ते।'' [(अर्थात् सोमयज्ञ के अधिकारी ब्राह्मण से भी जिस किसी कुल में उत्पन्न श्रीनाम उच्चारणकारी व्यक्ति अधिक श्रेष्ठ है।) अहो! नाम-ग्रहणकारी व्यक्तियों की श्रेष्ठता के विषय में और क्या कहूँ? जिनकी जिह्वा के अग्रभाग में एक बार भी आपका नाम उच्चारित होता है, वह इस नामोच्चारण के कारण ही चण्डाल के घर में उत्पन्न होने पर भी पूज्यतम है। उनकी व्यवहारिक ब्राह्मणता तो पूर्वसिद्ध है, क्योंकि वे पूर्व-पूर्व जन्मों में ही व्यवहारिक ब्राह्मणों के समस्त अधिकारोचित कृत्य अर्थात् समस्त प्रकार की तपस्या, सब प्रकार के यज्ञ, सभी तीर्थों में स्नान, सभी वेदों का

अध्ययन और सदाचार समापन करके इस वर्त्तमान जन्म में नाम ग्रहण कर रहे हैं।] (भा. १.८.२६)— ''जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमान मदः पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥'' [अर्थात् हे श्रीकृष्ण! उच्चकुल में जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और रूपादि को प्राप्तकर जिनका अभिमान बढ़ता जाता है, वे कभी भी आपके श्रीकृष्ण, गोविन्द इत्यादि पावन नामों का कीर्त्तन करने में समर्थ नहीं हो सकते। यह सौभाग्य तो एकमात्र सांसारिक अभिमान से रहित निष्किञ्चन भक्तों को ही प्राप्त होता है।]

जेइ भजे, सेइ बड़, अभक्त—हीन, छार।
कृष्णभजने नाहि जाति-कुलादि विचार॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—''वास्तव में जो कृष्ण का भजन करता है, वही बड़ा है। अभक्त तो हीन है, घृणित है। कृष्ण भजन में जाति तथा कुल आदि का कोई विचार ही नहीं है।

प्राकृत जन्म, ऐश्वर्य, पाण्डित्य और सुन्दरता इत्यादि दुःसङ्ग त्याग करके कृष्ण में सर्वस्व समर्पण करने वाले एकान्तिक शरणागत की ही भगवान् की कृपा को प्राप्त करने की योग्यता—

दीनेरे अधिक दया करे भगवान्।
कुलीन, पण्डित, धनीर बड़ अभिमान॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—''भगवान् दीन व्यक्ति पर अधिक कृपा करते हैं। कारण, श्रेष्ठ कुल में जन्म लेने वाले कुलीन, विद्वान तथा धनी व्यक्तियों में बहुत अभिमान होता है।

श्रीमद्भागवत (७.९.१०) में—

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादिरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित मनोवचनेहितार्थ
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥ ६९ ॥

६९।अनु०— ''कृष्ण के चरणकमलों से विमुख द्वादश गुणों से युक्त ब्राह्मण की अपेक्षा जिसका कृष्ण में मन, वचन, चेष्टा, अर्थ और प्राण समर्पित हैं, ऐसे चण्डाल को ही मैं श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि वह (चण्डाल कुल में उत्पन्न भक्त) अपने कुल को पवित्र करता है और अत्यधिक सम्मान से युक्त ब्राह्मण वैसा नहीं कर पाता।

अनुभाष्य

६९। मध्य-लीला के विंश परिच्छेद की ५९ वीं संख्या द्रष्टव्य।

अभिधेय से ही सम्बन्ध और प्रयोजन की प्राप्ति—

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति।
'कृष्णप्रेम' 'कृष्ण' दिते धरे महाशक्ति॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—''भजन के अनेकानेक अङ्गों में से नवधा भक्ति अर्थात् नौ प्रकार के भक्ति के अङ्ग श्रेष्ठ हैं। उन नौ प्रकार के भक्ति-अङ्गों में कृष्ण के प्रति प्रेम तथा कृष्ण [के साथ जीव के सम्बन्ध] को प्रदान करने की महाशक्ति है।

अनुभाष्य

७०। नवविधा भक्ति,—(भा. ७.५.२३)''श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥'' नवविधा भक्ति (अभिधेय) ही कृष्णप्रेम (प्रयोजन) एवं कृष्ण (सम्बन्ध) को प्रदान करने की महाशक्ति को धारण करती है। साधन भक्ति ही अभिधेय के रूप में प्रकट होकर बाद में प्रेमभक्ति के स्वरूप को प्राप्त करती है। प्रयोजन रूपी कृष्णप्रेम ही सम्पूर्णरूप से कृष्ण को प्रदान करता है।

दस अपराधों से रहित होकर निरन्तर (स्थिर अन्तर वाले होकर) अविश्रान्त कृष्णकीर्त्तन के फल से कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम-सङ्कीर्त्तन।
निरपराधे नाम लैले पाय प्रेमधन॥" ७१ ॥

७१। प० अनु०—''उपरोक्त नौ प्रकार के भक्ति के अङ्गों में से नाम-सङ्कीर्त्तन ही सर्वश्रेष्ठ है। अपराध

रहित होकर भगवन्नाम ग्रहण करने से प्रेमधन की प्राप्ति होती है।''

अनुभाष्य

७१। श्रीजीवगोस्वामि प्रभु (भक्तिसन्दर्भ की २७० वीं संख्या में),—"इयञ्च कीर्त्तनाख्या भक्तिर्भगवतो-द्रव्य-जातिगुणक्रियाभिर्दीनजनैकविषयापारकरुणामयीति श्रुतिपुराणादिविश्रुतिः। अतएव कलौ स्वभावत एवातिदीनेषु लोकेषु आविर्भूय तानायासेनैव तत्तदयुगगत-महासाधनानां सर्वमेव फलं ददाना सा कृतार्थयति। अतएव तयैव कलौ भगवतो विशेषतश्च सन्तोषो भवति॥" (२३७ वीं संख्या में)—''अतएव यद्यन्यापि भक्तिः कलौ कर्त्तव्या, तदा तत्संयोगेनैव॥" [अर्थात् जो द्रव्य, जाति, गुण एवं क्रिया के विषय में दीन हैं अर्थात् जिनके पास उत्तम द्रव्य (धन), जाति, गुण एवं क्रिया नहीं हैं, उनके एकमात्र विषय के रूप में ही अपार करुणामयी यह भगवान् की नाम-रूप-गुण-कीर्त्तनाख्या भक्ति है,—यह श्रुति-पुराणादि शास्त्रों में प्रसिद्ध है। अतएव कलियुग में स्वभावतः अतिदीन मानवों में आविर्भूत हुयी यह कीर्त्तनाख्या भक्ति अनायास उन्हें अन्यान्य युगगत महासाधन-समूह के समस्त फल ही प्रदान करके कृतार्थ करती है— कारण, उसके द्वारा भगवान् का विशेष रूप से सन्तोष होता है। अतएव कलियुग में यद्यपि अन्यान्य अनुष्ठान कर्त्तव्य हैं, किन्तु उन्हें कीर्त्तनाख्या भक्ति के संयोग से ही करना चाहिए।]

श्रीरूपप्रभु (नामाष्टक के प्रथम श्लोक में),—''निखिल-श्रुतिमौलिरत्नमालाद्युतिनीराजित पाद-पङ्कजान्त। अयिमुक्तकुलैरुपास्यमानं परितस्त्वां हरिनाम संश्रयामि॥'' [अर्थात् हे हरिनाम! मैं आपका सर्वतोभाव से आश्रय ग्रहण करता हूँ, क्योंकि आपका महत्त्व विचित्र है। देखो, समस्त श्रुतियों की मुकुटमणिरूप उपनिषत्-स्वरूप रत्नों की माला की चमचमाती हुई कान्ति के द्वारा आपके नखकमल की आरती उतारी जाती है, और मुक्त मुनिगण भी आपकी उपासना करते रहते हैं। अतएव हे हरिनाम! मैं सब प्रकार के अपराधों से विमुक्त होकर आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।]

श्रीसनातन प्रभु (बृहद्भागवतामृत के प्रथम खण्ड प्रथम अध्याय के नवम श्लोक में)—''जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारेर्विरमित-निजधर्मध्यानपूजादियत्नम्। कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां यत् परममृतमेकं जीवनं भूषणं मे॥'' [अर्थात् जो वर्णाश्रमधर्म, ध्यान और पूजादि से छुटकारा देनेवाले हैं अर्थात् जो वर्णाश्रम धर्म के अनुष्ठान, ध्यान-परायण व्यक्तियों का मनोनिग्रह तथा पूजा-निष्ठित व्यक्तियों के पूजा के उपकरण संग्रह आदि दुःखों का निवारण करते हैं; जो किसी प्रकार एकबार मात्र गृहीत होने पर प्राणीमात्र को मुक्ति प्रदान करते हैं, जो मेरे एकमात्र परम अमृतस्वरूप- जीवनस्वरूप-भूषणस्वरूप हैं, वे आनन्दमय श्रीहरिनाम सभी प्रकार से जययुक्त हों, जययुक्त हों॥]

(भा. २.१.११)—''एतन्निर्विद्यमाना-नामिच्छताम-कुतोभयम्। योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्॥'' [अर्थात् हे राजन्! जो इस संसारसे विरक्त होकर ऐकान्तिक भक्ति कर रहे हैं, जिनकी स्वर्ग अथवा मोक्षादि की कामना है और जो आत्माराम योगी पुरुष हैं, उन सभी के लिए श्रीहरि के नाम और गुणों का पुनः- पुनः श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण ही परम साधन और साध्य के रूप में पूर्व-पूर्व आचार्यों द्वारा निर्णीत हुआ है।] (भा. ६.३.२२)—''एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः। भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः॥''[अर्थात् नाम-सङ्कीर्त्तनादि द्वारा श्रीभगवान् के प्रति जो भक्ति योग है, उसे ही इस जगत् में जीवों का परम धर्म कहा गया है।] गौरहरि (स्वकृत शिक्षाष्टक के तृतीय श्लोक में)—''तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥'' [अर्थात् सर्वपद-दलित अत्यन्त तुच्छ तृण से भी अपने को दीन-हीन नीच समझकर, वृक्ष से भी अधिक सहनशील बनकर, स्वयं अमानी होकर, दूसरों को यथायोग्य मान देनेवाला बनकर सदा सर्वदा—निरन्तर श्रीहरिनामसङ्कीर्त्तन करना कर्त्तव्य है।]

निरपराधे,—अर्थात् दस नामापराधों से रहित निरन्तर अथवा अविश्रान्त नामसेवा में रत होकर। दस

नामापराध,—आदि-लीला अष्टम परिच्छेद की २४ वीं संख्या का अमृतप्रवाह भाष्य और अनुभाष्य द्रष्टव्य।

प्रभु के अभिप्राय अनुसार सनातन के द्वारा फल्गु देहत्याग की इच्छा को परित्याग करने रूपी लीला के अभिनय के द्वारा जीवों को शिक्षा प्रदान—

एत शुनि' सनातनेर हैल चमत्कार।
''प्रभुरे ना भाय मोर मरण-विचार॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मुख से विगलित उपरोक्त वचनों को सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी आश्चर्यचकित रह गये। श्रीसनातन गोस्वामी ने मन-ही-मन विचार किया—''श्रीमन्महाप्रभु को मेरा देह-त्याग करने का विचार उचित नहीं लगा।

अनुभाष्य

७२। ना भाय—उचित नहीं लगा।

सर्वज्ञ महाप्रभु निषेधिला मोरे।''
प्रभुर चरण धरि' कहेन ताँहारे॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—''सर्वज्ञ श्रीमन्महाप्रभु ने मुझे देह-त्याग करने के लिये निषेध किया है।'' श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़कर उनसे कहने लगे—।

निष्किञ्चन वैष्णवाचार्य सनातन की दैन्य-उक्ति, प्रभु-स्तुति और अपने देहिक कर्त्तव्य की जिज्ञासा—

''सर्वज्ञ, कृपालु तुमि—ईश्वर स्वतन्त्र।
जैछे नाचाओ, तैछे नाचि,—जेन काष्ठ यन्त्र॥ ७४॥

७४। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप सर्वज्ञ हैं, कृपालु हैं, स्वतन्त्र ईश्वर हैं। [वैसे तो,] आप मुझे जैसे नचाते हो, मैं वैसे ही नाचता हूँ, मानो मैं लकड़ी का बना कोई यन्त्र हूँ, [तब भी मेरा एक प्रश्न है कि—]

नीच, अधम, पामर मुञि पामर-स्वभाव।
मोरे जियाइले तोमार किबा हबे लाभ??'' ७५ ॥

७५। प० अनु०—''मैं तो नीच हूँ, अधम हूँ, पामर (पापी) हूँ तथा मेरा स्वभाव भी पामर व्यक्ति की भाँति है। मेरे जैसे व्यक्ति को जीवित रखने से आपको क्या लाभ होगा?''

प्रभु का उत्तर, सनातन का काय-मन-वाक्य आदि सर्वस्व ही गौर-कृष्ण के द्वारा आत्मसात और स्वाङ्गीकृत, उसके माध्यम से ही गौर-कृष्ण के द्वारा अपना सेवा-कार्य-साधन—

प्रभु कहे,—''तोमार देह मोर निज-धन।
तुमि मोरे कैराछ आत्मसमर्पण॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''तुम्हारी देह मेरी अपनी सम्पत्ति है, कारण, तुमने मेरे प्रति आत्म-समर्पण किया है।

दीक्षा-सिद्ध भक्तों के लिये कृष्ण की इच्छा को ही अपना परिचालन करने वाली मानकर स्वकर्त्तृत्वाभिमान अथवा अहङ्कार के त्याग की कर्त्तव्यता—

परेर द्रव्य तुमि केने चाह विनाशिते?
धर्माधर्म-विचार किबा ना पार करिते?? ७७ ॥

७७। प० अनु०—''हे सनातन! किसी अन्य व्यक्ति की अर्थात् मेरी वस्तु को तुम विनष्ट क्यों करना चाहते हो? क्या तुम धर्म और अधर्म के विषय में विचार नहीं कर सकते हो?

सनातन भगवान् कृष्ण-चैतन्य के अभिन्न प्रकाश विग्रह चिद्विलास श्रीसनातन प्रभु—

तोमार शरीर—मोर प्रधान 'साधन'।
ए शरीरे साधिमु आमि बहु प्रयोजन॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—''तुम्हारा शरीर मेरा प्रधान साधन अर्थात् अभिलषित वस्तु को प्राप्त कराने वाला है, तुम्हारे इस शरीर में विराज करके मैं अपने बहुत से प्रयोजन साधूँगा।

मथुरा मण्डल में सनातन के माध्यम से प्रभु के द्वारा (१) भक्त और भगवत्तत्त्व अथवा अभिधेय, सम्बन्ध और प्रयोजन तत्त्व का प्रकाश, (२) वैष्णव-स्मृति- सङ्कलनपूर्वक वैष्णव-

सदाचार-प्रवर्त्तन, (३) मठ-मन्दिर आदि में कृष्णविग्रह अर्चन रूपी वैधीभक्ति, मन में राग अथवा प्रेमसेवा के आदर्श का प्रदर्शन, (४) लुप्त तीर्थों का उद्धार और युक्त वैराग्य के साथ शुद्धभक्तिमय जीवन दिखलाकर शिक्षा—

भक्त-भक्ति-कृष्णप्रेम-तत्वेर निर्धार।
वैष्णवेर कृत्य, आर वैष्णव-आचार॥ ७९ ॥
कृष्णभक्ति, कृष्ण प्रेमसेवा-प्रवर्त्तन।
लुप्ततीर्थ-उद्धार आर वैराग्य-शिक्षण॥ ८० ॥
निज-प्रियस्थान मोर—मथुरा-वृन्दावन।
ताँहा एत धर्म चाहि करिते प्रचारण॥ ८१ ॥

७९-८१। प० अनु०—''मैं भक्त, भक्ति तथा कृष्णप्रेम-तत्त्व का निर्धारण, वैष्णवों के कृत्य तथा वैष्णवों का आचार, कृष्ण [की वैधी] भक्ति, कृष्ण की प्रेमपूर्वक की जाने वाली सेवा का प्रवर्त्तन, लुप्त तीर्थों का उद्धार एवं वैराग्य की शिक्षा—इन सभी तत्त्वों का अपने प्रिय स्थान मथुरा-वृन्दावन में प्रचार करना चाहता हूँ।

अनुभाष्य

७९-८१। श्रीसनातन गोस्वामी के द्वारा श्रीमहाप्रभु ने सर्वप्रथम श्रीबृहद्भागवतामृत की रचना कराके भक्त, भक्ति और कृष्णप्रेमतत्त्व को निर्धारित किया है; दूसरा, श्रीहरिभक्तिविलास संग्रह कराके वैष्णवों के कृत्य और वैष्णवों के आचार को निर्धारित किया है; तीसरा, सनातन गोस्वामी के अद्भुत अनुष्ठान द्वारा श्रीवृन्दावन में श्रीविग्रहों की सेवा एवं आदर्श भजनानन्दमय चरित्र द्वारा मानस में व्रज-भजन को प्रवर्त्तित कराया है; चौथा, कुण्ड आदि लुप्त तीर्थों का उद्धार एवं उनके वैराग्य युक्त भक्तिरसमय आदर्श भक्त-जीवन के द्वारा शुद्धभक्तों के अनुकरणीय 'विषयों से अत्यधिक दूर अवस्थित' विरक्त जीवन-यापन की शिक्षा दी है। श्रीमथुरा-वृन्दावन श्रीगौरसुन्दर की अत्यन्त प्रियभूमि है, श्रीसनातन को उस भूमि में वास कराकर प्रभु ने उनके द्वारा पूर्वोक्त धर्मसमूह का प्रचार करने की अभिलाषा की।

माता की आज्ञा से स्वयं क्षेत्रमण्डल में रहकर अपने अभिन्न प्रकाश-विग्रह चिद्विलास श्रीसनातन के रूप में मथुरा मण्डल में पूर्वोक्त चार प्रकार की मनोऽभीष्ट कृष्णसेवा का सम्पादन—

मातार आज्ञाय आमि बसि नीलाचले।
ताँहा 'धर्म' शिखाइते नाहि निज-बले॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—''मैं माता शची की आज्ञा से इस जगन्नाथपुरी में वास कर रहा हूँ। इसी कारण, मेरे इस शरीर के द्वारा मथुरा-वृन्दावन में जाकर वहाँ इन तत्त्वों का प्रचार करना मेरे वश में नहीं है।

अनुभाष्य

८२। ताँहा (वहाँ)—मथुरा मण्डल में।

एत सब कर्म आमि जे-देहे करिमु।
ताहा छाड़िते चाह तुमि, केमने सहिमु??'' ८३ ॥

८३। प० अनु०—''अतएव इतने सारे कार्य मैं जिस देह के माध्यम से करूँगा, तुम मेरी उसी देह को त्यागना चाहते हो, मैं इसे कैसे सहन कर सकता हूँ?''

सनातन के द्वारा स्वयं को यन्त्री प्रभु के यन्त्र के रूप में स्वीकार कर प्रभु की स्तुति—

तबे सनातन कहे,—''तोमाके नमस्कारे।
तोमार गम्भीर हृदय के बुझिते पारे?? ८४ ॥

८४। प० अनु०—तब श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आपको नमस्कार है। आपके गम्भीर हृदय को कौन समझ सकता है?

काष्ठेर पुतली जेन कुहके नाचाय।
आपने ना जाने, पुतली किबा नाचे गाय!! ८५ ॥

८५। प० अनु०—''कुहक जब लकड़ी की बनी पुतली को नचाता है तो स्वयं पुतली तक भी नहीं जानती कि वह कैसे नाचती-गाती है!

जारे जैछे नाचाओ, से तैछे करे नर्त्तने।
कैछे नाचे, केबा नाचाय, सेह नाहि जाने॥'' ८६ ॥

८६। प० अनु०—''उसी प्रकार आप जिसे जैसे

नचाते हैं, वह वैसे ही नृत्य करता है। किन्तु वह कैसे नाचता है, उसे कौन नचाता है, वह इस बात को स्वयं भी नहीं जानता।''

हरिदास को साक्षी मानकर प्रभु के द्वारा हरिदास पर अपने निजी कहकर स्वीकार किये गये(स्वकीय) सनातन की देह के रक्षण का दायित्व प्रदान–

हरिदासे कहे प्रभु,—''शुन, हरिदास।
परेर द्रव्य इँह चाहेन करिते विनाश॥ ८७ ॥
परेर स्थाप्य द्रव्य केह ना खाय, बिलाय।
निषेधिह इँहारे,—जेन ना करे अन्याय॥'' ८८ ॥

८७-८८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर से कहा,—''हे हरिदास, सुनो! यह सनातन दूसरे की वस्तु को विनष्ट करना चाहता है। आप इसे अन्यायपूर्ण कार्य अर्थात् समर्पित देह को त्याग करने से मना करना, इसे समझाना कि किसी दूसरे की अमानती वस्तु को न तो स्वयं ही भोग करना चाहिए और न ही बाँटना चाहिए।

अनुभाष्य

८८। स्थाप्य,—रक्षणीय; खाय,—स्वयं ही भोग करे; बिलाय,—वितरण करे, अन्याय—मुझमें अर्थात् कृष्ण में समर्पित इसकी देह का विनाश।

हरिदास के द्वारा जीवों को शिक्षा, अधोक्षज प्रभु की अप्राकृत हृदयगत कृष्णेन्द्रिय तर्पण-इच्छा के आनुगत्य में ही बद्धजीव के द्वारा फल्गु-अहङ्कारत्याग की कर्त्तव्यता–

हरिदास कहे,—''मिथ्या अभिमान करि।
तोमार गम्भीर हृदय बुझिते ना पारि॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा—''मैं तो मिथ्या अभिमान करता हूँ कि मैं आपको जानता हूँ, वास्तव में मैं आपके गम्भीर हृदय को नहीं समझ सकता।

कोन् कोन् कार्य तुमि कर कोन् द्वारे।
तुमि ना जानाइले केह जानिते ना पारे॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—''आप किस-किसके माध्यम से क्या-क्या कार्य करते हैं, उसके विषय में जब तक आप नहीं बतलाते, तब तक कोई नहीं जान पाता।

हरिदास के द्वारा सनातन के प्रभु-कृपा-प्राप्ति रूपी सौभाग्य के वर्णन के पश्चात् प्रभु की स्तुति–

एतादृश तुमि इँहारे कैराछ अङ्गीकार।
एत सौभाग्य इँहा ना हय काहार॥'' ९१ ॥

९१। प० अनु०—''आपने सनातन को इतना अधिक अङ्गीकार (आत्मसात) किया है, इतना सौभाग्य इस जगन्नाथ पुरी में अन्य किसी का भी नहीं है।''

दोनों को आलिङ्गन करने के पश्चात् प्रभु का प्रस्थान–

तबे महाप्रभु करि' दुँहारे आलिङ्गन।
'मध्याह्न' करिते उठि' करिला गमन॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन को आलिङ्गन करके मध्याह्न-कृत्य करने के लिये उठकर चल दिये।

हरिदास के द्वारा सनातन के सौभाग्य का वर्णन–

सनातने कहे हरिदास करि' आलिङ्गन।
''तोमार भाग्येर सीमा ना जाय कथन॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीसनातन गोस्वामी को आलिङ्गन करते हुए कहा—''तुम्हारे भाग्य की सीमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीसनातन की देह प्रभु का ही अपना कहकर स्वीकार किया गया धन-

तोमार देह कहेन प्रभु 'मोर निज-धन'।
तोमा-सम भाग्यवान् नाहि कोन जन॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—''तुम्हारी देह को श्रीमन्महाप्रभु 'अपनी निजी-सम्पत्ति' कहते हैं, तुम्हारे समान भाग्यशाली अन्य कोई व्यक्ति नहीं है।

मथुरा मण्डल में सनातन की देह के द्वारा प्रभु के चार प्रकार के मनोऽभीष्ट-सम्पादन–

निज-देहे जे कार्य ना पारेन करिते।
से कार्य कराइबे तोमा, सेह मथुराते॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु अपनी देह के द्वारा जिन कार्यों को नहीं कर पा रहे, वे कार्य तुम्हारे द्वारा करवायेंगे और वह भी मथुरा में।

अनुभाष्य

९५। पूर्वोक्त (अन्त्य-लीला के चतुर्थ परिच्छेद की) ७९-८१ वीं संख्या द्रष्टव्य।

सफलता अथवा सिद्धि—कृष्ण की इच्छा के अनुगामी दास—
जे कराइते चाहे ईश्वर, सेइ सिद्ध हय।
तोमार सौभाग्य एइ कहिलुँ निश्चय॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—''भगवान् जो भी कार्य करवाना चाहते हैं, वही कार्य ही सिद्ध होता है। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि यह तुम्हारा सौभाग्य ही है।

सनातन के माध्यम से प्रभु के द्वारा मुख्यत: शुद्धभक्ति और वैष्णव स्मृति के सङ्कलन द्वारा वैष्णव-आचार का संस्थापन—
भक्तिसिद्धान्त, शास्त्र-आचार-निर्णय।
तोमा-द्वारे कराइबेन, बुझिलुँ आशय॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—''मुझे श्रीमन्महाप्रभु का यही आशय समझ आता है कि वे तुम्हारे द्वारा भक्ति के सिद्धान्त तथा शास्त्रीय-आचरण का निर्णय करवाना चाहते हैं।

हरिदास का स्वाभाविक वैष्णवोचित दैन्य और हृदय की व्यथा को बतलाना—
आमार एइ देह प्रभुर कार्ये ना लागिल।
भारत-भूमिते जन्मि' एइ देह व्यर्थ हैल॥'' ९८ ॥

९८। प० अनु०—''मेरी यह देह श्रीमन्महाप्रभु के किसी भी कार्य में नहीं लग सकी, भारत भूमि में जन्म ग्रहण करने पर भी मेरी यह देह व्यर्थ ही चली गयी।''

अनुभाष्य

९८। भारतभूमिते,—आदि-लीला के नवम परिच्छेद की ४१ वीं संख्या एवं भा: ५.१९.१९-२७ श्लोक द्रष्टव्य।

सनातन के द्वारा हरिदास की स्तुति—
सनातन कहे,—''तोमा-सम केबा आछे आन?
महाप्रभुर गणे तुमि—महाभाग्यवान् !! ९९ ॥

९९। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा,—''हे श्रीहरिदास ठाकुर! आपके समान अन्य कौन है? श्रीमन्महाप्रभु के पार्षदों में आप अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं!

शुद्धकृष्णनाम कीर्त्तन अथवा प्रचार ही आचार्यरूपी भगवान् के अवतार का निजकृत्य, कीर्त्तन-आचार्य हरिदास के माध्यम से प्रभु के द्वारा नाम का प्रचार—
अवतार-कार्य प्रभुर—नाम-प्रचारे।
सेइ निज-कार्य प्रभु करेन तोमार द्वारे॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु के अवतरित होने का मुख्य कार्य नाम का प्रचार ही है, अपना वही कार्य श्रीमन्महाप्रभु आपके माध्यम से ही करवा रहे हैं।

अनुभाष्य

१००। स्वयं का कार्य जो शुद्ध कृष्ण नाम का प्रचार है, उसे प्रभु ने हरिदास के द्वारा सम्पादित किया।

ठाकुर हरिदास का आचार और प्रचार—
प्रत्यह कर तिनलक्ष नाम-सङ्कीर्त्तन।
सबार आगे कर नामेर महिमा कथन॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—''आप प्रतिदिन तीन लाख नाम-सङ्कीर्त्तन करते हैं तथा सभी के समक्ष नाम की महिमा का गान करते हैं।

असुष्ठु अथवा असम्पूर्ण आचार-प्रचार—
आपने आचरे केह, ना करे प्रचार।
प्रचार करेन केह, ना करेन आचार॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—''कोई व्यक्ति स्वयं तो आचरण करते हैं, किन्तु प्रचार नहीं करते तथा अन्य कोई व्यक्ति प्रचार तो करते हैं, किन्तु आचरण नहीं करते।

कृष्णेन्द्रिय प्रीतियुक्त चेष्टामय यथार्थ आचार्य का ही शुद्धनाम-भक्ति प्रचार में अधिकार; चारों प्रकार के वर्ण और आश्रम के व्यक्ति तथा जगत् के गुरु वैष्णव-आचार्य परमहंस हरिदास ठाकुर का आदर्श-जीवन—

'आचार', 'प्रचार'—नामेर करह 'दुइ' कार्य।
तुमि—सर्व गुरु, तुमि—जगतेर आर्य॥'' १०३ ॥

१०३। प० अनु०—''आप नाम का 'आचार' एवं 'प्रचार' —इन दोनों कार्यों को करते हैं। आप सभी के गुरु तथा जगत् के आर्य अर्थात् मङ्गलकारी अथवा सर्वपूज्य हैं।''

अनुभाष्य

१०३। हरिदास ठाकुर—सर्वमान्य जगद्गुरु हैं, क्योंकि वे एक ही साथ स्वयं दीक्षित ब्राह्मण के रूप में शुद्ध नाम को ग्रहण करके 'आचार्य' एवं उच्चकीर्त्तन करके समस्त जगत्-वासियों को नामयज्ञ में दीक्षित कराने के कारण 'प्रचारक' हैं—यही उनका 'आचार और प्रचार' है।

हरिदास और सनातन का परस्पर कृष्णकथा की चर्चा में समय व्यतीत करना—

एइमत दुइजन नाना-कथा-रङ्गे।
कृष्णकथा आस्वादय रहि' एक सङ्गे॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—इस प्रकार श्रीहरिदास ठाकुर एवं श्रीसनातन गोस्वामी एकसाथ रहकर अनेक प्रकार की कृष्ण कथा के आनन्द का आस्वादन करते।

रथयात्रा के समय गौड़ीय भक्तों का पुरी में आगमन और दर्शन—

यात्राकाले आइला सब गौड़ेर भक्तगण।
पूर्ववत् कैला सबे रथयात्रा दरशन॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—रथयात्रा के समय गौड़देश के समस्त भक्त आये तथा पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति सभी ने रथयात्रा के दर्शन किये।

रथ के आगे प्रभु के नृत्य को देखकर सनातन का विस्मय—

रथ-अग्रे प्रभु तैछे करिला नर्त्तन।
देखि' चमत्कार हैल सनातनेर मन॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—रथ के समक्ष श्रीमन्महाप्रभु ने पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति नृत्य किया, उसे देखकर श्रीसनातन गोस्वामी के मन में बहुत आश्चर्य हुआ।

चातुर्मास्य के समय गौड़ीय और उड़िया भक्तों के साथ सनातन का मिलन—

वर्षार चारि-मास रहिला सब निज-भक्तगणे।
सबा-सङ्गे प्रभु मिलाइला सनातने॥ १०७ ॥

१०७। प० अनु०—वर्षा ऋतु के चार मास तक श्रीमन्महाप्रभु के समस्त भक्त श्रीजगन्नाथपुरी में ही रहे, श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसनातन गोस्वामी को अपने समस्त भक्तों से मिलवाया।

अद्वैत, नित्यानन्द, श्रीवास, वक्रेश्वर।
वासुदेव, मुरारि, राघव, दामोदर॥ १०८ ॥
पुरी, भारती, स्वरूप, पण्डित-गदाधर।
सार्वभौम, रामानन्द, जगदानन्द, शङ्कर॥ १०९ ॥
काशीश्वर, गोविन्दादि जत भक्तगण।
सबा-सने सनातनेर कराइला मिलन॥ ११० ॥

१०८-११०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसनातन गोस्वामी की श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीवास पण्डित, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीवासुदेव दत्त, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीराघव पण्डित, श्रीदामोदर पण्डित, श्रीपरमानन्द पुरी, श्रीब्रह्मानन्द भारती, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य, श्रीरामानन्द राय, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीशङ्कर पण्डित, श्रीकाशीश्वर पण्डित, श्रीगोविन्द आदि समस्त भक्तों के साथ भेंट करायी।

श्रीसनातन सभी की ही प्रीति के पात्र—

यथायोग्य कराइला सबार चरण वन्दन।
ताँरे कराइला सबार कृपार भाजन॥ १११ ॥

१११। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसनातन गोस्वामी के द्वारा यथायोग्य समस्त भक्तों के चरणों की वन्दना करायी तथा उन्हें सभी की कृपा का भाजन (पात्र) बनाया।

अपने गुणों के द्वारा विष्णु-वैष्णव के स्नेह-प्रीति के पात्र—

सद्‌गुणे, पाण्डित्ये, सबार प्रिय—सनातन।
यथायोग्य कृपा-मैत्री-गौरव-भाजन॥ ११२ ॥

११२। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी अपने सद्‌गुणों तथा पाण्डित्य के कारण सबके प्रिय थे तथा वे श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों में से यथायोग्य किसी की कृपा, किसी की मित्रता तथा अन्य किसी के गौरव (सम्मान) के पात्र थे।

गौड़ीय भक्तों का गौड़देश में लौटना और सनातन का पुरी में अवस्थान—

सकल वैष्णव जबे गौड़देशे गेला।
सनातन महाप्रभुर चरणे रहिला॥ ११३ ॥

११३। प० अनु०—गौड़देश के समस्त वैष्णवों के लौट जाने पर भी श्रीसनातन श्रीमन्महाप्रभु के चरणकमलों में ही रह गये।

प्रभु के साथ सनातन द्वारा दोलयात्रा का दर्शन—

दोलयात्रा-आदि प्रभुर सङ्गेते देखिल।
दिने-दिने प्रभु-सङ्गे आनन्द बाड़िल॥ ११४ ॥

११४। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के साथ दोल यात्रा (होली-महोत्सव) आदि का दर्शन किया तथा उनका श्रीमन्महाप्रभु के साथ रहते हुए दिन-प्रतिदिन आनन्द वर्धित होने लगा।

ज्येष्ठ मास में सनातन की परीक्षा-विषयक वृत्तान्त का वर्णन—

पूर्व वैशाख-मासे सनातन जबे आइला।
ज्येष्ठमासे प्रभु ताँरे परीक्षा करिला॥ ११५ ॥

११५। प० अनु०— श्रीसनातन गोस्वामी वैशाख-मास में जगन्नाथपुरी में आये तथा श्रीमन्महाप्रभु ने ज्येष्ठमास में उनकी परीक्षा ली।

यमेश्वर-टोटा में प्रभु के द्वारा दोपहर में भिक्षा—

ज्येष्ठमासे प्रभु यमेश्वर-टोटा आइला।
भक्त-अनुरोधे ताँहा भिक्षा जे करिला॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०—ज्येष्ठ मास में श्रीमन्महाप्रभु यमेश्वर टोटा आये तथा भक्त के अनुरोध करने पर उन्होंने वहीं पर भिक्षा अर्थात् भोजन स्वीकार किया।

अनुभाष्य

११६। यमेश्वर टोटा,—यमेश्वर शिव के बगीचे वाली गली में; टोटा-शब्द का अर्थ उड़िया भाषा में 'बगीचा' होता है।

प्रभु द्वारा सनातन का आह्वान, सनातन का आनन्द—

मध्याह्न-भिक्षाकाले सनातने बोलाइल।
प्रभु बोलाइला, ताँर आनन्द बाड़िल॥ ११७ ॥

११७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने मध्याह्न भोजन के समय श्रीसनातन गोस्वामी को भी बुलवा भेजा। 'श्रीमन्महाप्रभु ने मुझे बुलाया है' यह सोचकर श्रीसनातन गोस्वामी का आनन्द बहुत अधिक वर्धित हो गया।

प्रभु की प्रीति के वशीभूत आत्म-विस्मृत सनातन की देह की स्मृति की लुप्त-अवस्था में प्रखर तप्त तीक्ष्ण बालु के पथ पर प्रभु के समीप गमन—

मध्याह्ने समुद्र-बालु हञाछे अग्नि-सम।
सेइपथे सनातन करिला गमन॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—दोपहर के समय समुद्र की बालु आग की भाँति तप रही थी। श्रीसनातन गोस्वामी उसी समुद्र तट वाले मार्ग से यमेश्वर टोटा गये।

''प्रभु बोलाञाछे'',—एइ आनन्दित मने।
तप्त-बालुकाते पा पोड़े ताहा नाहि जाने॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु ने बुलाया है'',—यह विचार श्रीसनातन गोस्वामी के मन को इतना अधिक

आनन्दित कर रहा था कि गर्म बालु पर चरण पड़ने से उनके चरण जल रहे हैं, वह इस बात को भी नहीं जान पाये।

दुइ पाये फोस्का हैल, तबु गेला प्रभुस्थाने।
भिक्षा करि' महाप्रभु कैराछेन विश्रामे॥ १२० ॥

१२०। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी के दोनों चरणों में फफोले पड़ गये, तब भी वह श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर गये। उस समय श्रीमन्महाप्रभु भोजन करने के उपरान्त विश्राम कर रहे थे।

प्रभु के भुक्त-अवशिष्ट प्रसाद की प्राप्ति—

भिक्षा-अवशेष-पात्र गोविन्द तारे दिला।
प्रसाद पाञा सनातन प्रभुपाशे आइला॥ १२१ ॥

१२१। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने श्रीसनातन गोस्वामी को श्रीमन्महाप्रभु का अवशिष्ट भोजन प्रदान किया। श्रीसनातन गोस्वामी प्रसाद पाने के बाद जहाँ श्रीमन्महाप्रभु विश्राम कर रहे थे, वहीं आ गये।

स्नेह पूर्वक प्रभु द्वारा उनके आगमन के उपाय की जिज्ञासा, सनातन का अत्यधिक दीनतापूर्ण उत्तर—

प्रभु कहे,—"कोन पथे आइला, सनातन?"
तेंह कहे,—"समुद्र-पथे, करिलुँ आगमन॥" १२२॥

१२२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"हे सनातन, तुम कौन से मार्ग से आये हो?" श्रीसनातन गोस्वामी ने उत्तर दिया,—"मैं समुद्रतट के मार्ग से आया हूँ।"

प्रभु कहे,—"तप्त-बालुकाते केमने आइला?
सिंहद्वारेर पथ—शीतल, केने ना आइला?? १२३॥

१२३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"हे सनातन, तुम तपती हुई बालु पर कैसे चलकर आये? सिंहद्वार का मार्ग तो शीतल है, तुम वहाँ से क्यों नहीं आये?

अनुभाष्य

१२३। सिंहद्वार—जगन्नाथमन्दिर के मुख्य पूर्व दिशा वाले द्वार को सिंहद्वार कहते हैं।

तप्त-बालुकाय तोमार पाय हैल व्रण।
चलिते ना पार, केमने करिला सहन??" १२४ ॥

१२४। प० अनु०—"हे सनातन! तपती हुई बालु पर चलकर आने से तुम्हारे पैरों में फफोले पड़ गये हैं। अब तो तुम चल भी नहीं पा रहे हो, तुमने बालु पर चलने का कष्ट कैसे सहन किया?"

सनातन कहे,—"दुःख बहुत ना पाइलुँ।
पाये व्रण हञाछे, ताहा ना जानिलुँ॥ १२५ ॥

१२५। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा,—"हे श्रीमन्महाप्रभु! मुझे बहुत अधिक कष्ट नहीं हुआ। पैरों में फफोले पड़ गये हैं, मैं उसे नहीं जान पाया।"

स्वयं रागमार्गीय परमहंस होने पर भी आदर्श मानद (मान प्रदान करने वाले) वैष्णवाचार्य के रूप में सनातन प्रभु द्वारा साधकों को शिक्षा प्रदान करने के लिये वैध अर्चन-मार्ग के प्रति यथोचित मर्यादा-प्रदर्शन—

सिंहद्वारे जाइते मोर नाहि अधिकार।
विशेष—ठाकुरेर ताँहा सेवकेर प्रचार॥ १२६ ॥

१२६। प० अनु०—"मैं सिंहद्वार की ओर से आने वाले मार्ग पर चलने का अधिकारी नहीं हूँ। विशेष करके उस मार्ग पर श्रीजगन्नाथदेव के सेवकों का आना-जाना लगा रहता है।

सेवक गतागति करे, नाहि अवसर।
ताँर स्पर्श हैले, सर्वनाश हबे मोर॥" १२७ ॥

१२७। प० अनु०—"श्रीजगन्नाथदेव के सेवक सब समय ही उस मार्ग पर आते-जाते रहते हैं, मार्ग कभी भी खाली नहीं रहता। श्रीजगन्नाथदेव के सेवकों की देह से

मुझ अधम का स्पर्श होने से तो मेरा सर्वनाश (अपराध) हो जायेगा।''

सनातन की उक्ति और मानद व्यवहार के श्रवण से प्रभु को आनन्द—

शुनि' महाप्रभु मने सन्तोष पाइला।
तुष्ट हञा ताँरे किछु कहिते लागिला॥ १२८ ॥

१२८। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी का विचार सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के मन में बहुत सन्तुष्टि हुयी। सन्तुष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु श्रीसनातन गोस्वामी से कहने लगे—।

भगवान् के द्वारा भक्त की स्तुति—

''यद्यपिओ तुमि हओ जगत् पावन।
तोमा स्पर्शे पवित्र हय देव-मुनिगण॥ १२९ ॥

स्वयं प्रभु के द्वारा भक्त अथवा साधु की रीति और गुण के वैशिष्ट्य का वर्णन—

तथापि भक्त-स्वभाव—मर्यादा-रक्षण।
मर्यादा-पालन हय साधुर भूषण॥ १३० ॥

१२९-१३०। प० अनु०—''हे सनातन! यद्यपि तुम जगत् को पवित्र करने वाले हो तथा तुम्हें स्पर्श करने से तो देवता और मुनि भी पवित्र होते हैं तथापि मर्यादा की रक्षा करना ही भक्तों का स्वभाव होता है। मर्यादा का पालन करना ही साधु का भूषण है।

साधक के द्वारा मर्यादा के उल्लंघन का फल—

मर्यादा-लङ्घने लोक करे उपहास।
इहलोक, परलोक,—दुइ हय नाश॥ १३१ ॥

१३१। प० अनु०—''साधु के द्वारा मर्यादा का उल्लङ्घन करने से लोग उसका उपहास करते हैं तथा उस साधु वेश धारी का यह लोक और परलोक—दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

जगद्गुरु लोकशिक्षक प्रभु के द्वारा वैध-मर्यादा के पालन में आदर-प्रदर्शन और सनातन के आचरण को देखकर उन्हें आचार्य के रूप में अङ्गीकार करना—

मर्यादा राखिले, तुष्ट हय मोर मन।
तुमि ऐछे ना करिले करे कोन् जन??'' १३२ ॥

१३२। प० अनु०—''मर्यादा का पालन करने से मेरा मन सन्तुष्ट होता है, यदि तुम ऐसा आचरण नहीं करोगे, तो फिर कौन करेगा?''

अप्राकृत देह वाले अपने श्रेष्ठ भक्त को भगवान् के द्वारा आलिङ्गन—

एत बलि' प्रभु ताँरे आलिङ्गन कैल।
ताँर कण्डुरसा प्रभुर श्रीअङ्गे लागिल॥ १३३ ॥

१३३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने ऐसा कहकर श्रीसनातन गोस्वामी को आलिङ्गन किया, श्रीसनातन गोस्वामी के शरीर का कण्डुरसा श्रीमन्महाप्रभु के श्रीअङ्ग पर लग गया।

आलिङ्गन के फल से प्रभु की देह में अपने कण्डुरसा के स्पर्श हेतु दैन्य विग्रह सनातन के द्वारा वेदना का अनुभव—

बार-बार निषेधेन, तबु करेन आलिङ्गन।
अङ्गे रसा लागे, दुःख पाय सनातन॥ १३४ ॥

१३४। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु को स्वयं का आलिङ्गन करने के लिये पुनः पुनः निषेध करते, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु तब भी उन्हें आलिङ्गन करते। ऐसा करने से श्रीमन्महाप्रभु के अङ्गों में कण्डुरसा लग जाता, जिससे श्रीसनातन गोस्वामी को बहुत दुःख होता।

सनातन-जगदानन्द-संवाद—

एइमते सेवक-प्रभु दुँहे घर गेला।
आर दिन जगदानन्द सनातनेरे मिलिला॥ १३५ ॥

१३५। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु और उनके दास श्रीसनातन गोस्वामी दोनों अपने-अपने वासस्थान पर चले गये। किसी अन्य दिन श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीसनातन गोस्वामी से मिले।

अनुभाष्य

१३५। सेवक-प्रभु—श्रीसनातन और श्रीमन्महाप्रभु।

पण्डित के साथ कृष्णकथा का संलाप और प्रसङ्गवशत: सनातन के द्वारा अपने दु:ख का ज्ञापन—

दुइजन बसि' कृष्णकथा-गोष्ठी कैला।
पण्डितेरे सनातन दु:ख निवेदिला॥ १३६ ॥

१३६। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित और श्रीसनातन गोस्वामी—दोनों ने बैठकर कृष्णकथा रूपी इष्ट-गोष्ठी की। श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीजगदानन्द पण्डित के समक्ष अपना दु:ख निवेदन करते हुए कहा—।

आराध्य-दर्शन-सेवन-अभाव-जनित दु:ख के मोचन के लिये रथ के आगे देह-त्याग का सङ्कल्प करके पुरी में आगमन—

''इँहा आइलाङ प्रभुरे देखि' दु:ख खण्डाइते।
जेबा मने, ताहा प्रभु ना दिला करिते॥ १३७ ॥

१३७। प० अनु०—''मैं यहाँ पर श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करके अपने सेवा के अभावरूपी दु:ख को दूर करने हेतु मन में जगन्नाथ के रथ के पहिये के नीचे आकर देह-त्याग का सङ्कल्प लेकर आया था, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने मुझे वैसा करने नहीं दिया।

अनुभाष्य

१३७। दु:ख,—सर्वदा प्रभु और जगन्नाथदेव के दर्शन रूपी सेवा के अभाव से उत्पन्न कष्ट; जेबा मने,—जगन्नाथ रथ के आगे प्रभु के नृत्य के समय अपनी देह त्याग।

प्रभु की देह में अपने कण्डुरसा के स्पर्श-हेतु दैन्य-विग्रह सनातन में लज्जा, वेदना और अपराध की आशङ्का—

निषेधिते प्रभु आलिङ्गन करेन मोरे।
मोर कण्डुरसा लागे प्रभुर शरीरे ॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०— ''श्रीमन्महाप्रभु निषेध करने पर भी मेरा आलिङ्गन करते हैं, जिससे मेरे शरीर का कण्डुरसा श्रीमन्महाप्रभु के शरीर पर लग जाता है।

अपराध हय मोर, नाहिक निस्तार।
जगन्नाथेह ना देखिये,—ए दु:ख अपार॥ १३९ ॥

१३९। प० अनु०—''इससे मेरा अपराध होता है, जिसके कारण मेरा कभी भी निस्तार नहीं होगा, साथ ही मैं भगवान् जगन्नाथ का भी दर्शन नहीं कर पाता—मुझे इसका भी अत्यन्त दु:ख है।

अमङ्गल की आशङ्का हेतु पण्डित से मङ्गल की जिज्ञासा—

हित-निमित्त आइलाङ आमि, हैल विपरीते।
कि करिले हित हय नारि निर्धारिते॥'' १४० ॥

१४०। प० अनु०—''मैं तो यहाँ अपने मङ्गल के उद्देश्य से आया था, किन्तु हो गया ठीक उसके विपरीत। मैं स्वयं निर्धारित नहीं कर पा रहा हूँ कि क्या करने से मेरा हित होगा।''

सरल रूप से पण्डित के द्वारा सनातन को वृन्दावन-गमन का परामर्श प्रदान—

पण्डित कहे,—''तोमार वासयोग्य 'वृन्दावन'।
रथयात्रा देखि' ताँहा करह गमन॥ १४१ ॥

१४१। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने कहा,—''आपके रहने योग्य स्थान वृन्दावन है। रथयात्रा देखकर आप वहीं के लिये प्रस्थान करो।

प्रभुर आज्ञा हञाछे तोमा' दुइ भाये।
वृन्दावन बैस, ताँहा सर्वसुख पाइये॥ १४२ ॥

१४२। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु की आपके और आपके भाई श्रीरूप के प्रति यही आज्ञा हुई है कि आप दोनों वृन्दावन में ही रहो, वहीं पर आपको सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होगी।

जे-कार्ये आइला, प्रभुर देखिला चरण।
रथे जगन्नाथ देखि' करह गमन॥'' १४३ ॥

१४३। प० अनु०—''आप जिन श्रीमन्महाप्रभु के चरणकमल-दर्शन रूपी उद्देश्य से आये थे, वह कार्य तो

हो गया है, अब आप रथ पर विराजमान भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करके वृन्दावन की ओर प्रस्थान कीजिए।''

सनातन की सम्मति, श्रीवृन्दावनधाम को अप्राकृत कृष्णधाम जानने पर भी 'प्रभु के द्वारा निर्वाचित स्थान' मानकर सनातन का अतुलनीय गौरप्रेम—

सनातन कहे,—''भाल कैला उपदेश।
ताँहा जाब, सेइ मोर 'प्रभुदत्त देश'॥'' १४४ ॥

१४४। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा,—''आपने अच्छा ही उपदेश दिया है। मैं वहीं वृन्दावन ही जाऊँगा, वह मेरा 'प्रभुदत्त देश' अर्थात् श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रदत्त मेरा वासस्थान है।''

अनुभाष्य

१४४। 'प्रभुदत्त देश',—तात्पर्य यह है कि जीव के लिये नित्य-आराध्य श्रीहरि-गुरु-वैष्णव के द्वारा निर्वाचित और निर्धारित स्थान ही उसका नित्य-वाञ्छनीय कृष्ण-सेवा-दायित्व प्राप्त स्थान श्रीवृन्दावन है; उसमें वास करके उनका सुख-विधान करने से ही जीव को नित्य-मङ्गल की प्राप्ति होती है।

एकदिन प्रभु का आगमन—

एत बलि' दुँहे निज-कार्ये उठि' गेला।
आर दिन महाप्रभु मिलिवारे आइला॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०—वार्त्तालाप करने के बाद श्रीजगदानन्द पण्डित और श्रीसनातन गोस्वामी—दोनों अपनी-अपनी सेवाएँ करने के लिये उठकर चल दिये। अन्य किसी दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन गोस्वामी से मिलने के लिये आये।

हरिदास के द्वारा प्रणाम, प्रभु द्वारा हरिदास का आलिङ्गन—

हरिदास कैला प्रभुर चरण वन्दन।
हरिदासे कैला प्रभु प्रेम-आलिङ्गन॥ १४६ ॥

१४६। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना की। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर को प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया।

आलिङ्गन करने के लिये प्रभु द्वारा सनातन को अपने निकट बुलाना—

दूर हैते दण्ड-परणाम करे सनातन।
प्रभु बोलाय बार-बार करिते आलिङ्गन॥ १४७ ॥

१४७। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने दूर से ही श्रीमन्महाप्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया, श्रीमन्महाप्रभु श्रीसनातन गोस्वामी को आलिङ्गन करने के लिये पुनः पुनः बुलाने लगे।

सनातन को अपराध की आशङ्का; प्रभु का तेजी से उनके निकट आगमन—

अपराध-भये तेंह मिलिते ना आइल।
महाप्रभु मिलिवारे सेइ ठाञि गेल॥ १४८ ॥

१४८। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी अपराध के भय से श्रीमन्महाप्रभु से मिलने के लिये नहीं आये, तो श्रीमन्महाप्रभु स्वयं उनसे मिलने के लिये उनके पास चले गये।

सनातन के द्वारा दौड़ने का प्रयास, प्रभु के द्वारा बलपूर्वक आलिङ्गन—

सनातन भागि' पाछे करेन गमन।
बलात्कारे धरि' प्रभु कैला आलिङ्गन॥ १४९ ॥

१४९। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी दौड़कर पीछे की ओर जाने लगे। श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें बलपूर्वक पकड़कर उनका आलिङ्गन किया।

प्रभु और दोनों भक्तों का बैठना; दैन्यविग्रह सनातन के द्वारा स्वयं को अपवित्र बद्धजीव मानकर प्रभु के निकट गम्भीर दैन्य-उक्ति और प्रभु के स्पर्श हेतु अपने अपराध की आशङ्का—

दुइजन लञा प्रभु बसिला पिण्डाते।
निर्विण्ण सनातन लागिला कहिते॥ १५० ॥

१५०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन गोस्वामी को अपने साथ लेकर चबूतरे

पर जा बैठे। श्रीसनातन गोस्वामी दु:खपूर्वक कहने लगे—।

अमृतप्रवाह भाष्य

१५०। निर्विण्ण,—निर्वेद अर्थात् विराग युक्त।

''हित लागि' आइनु मुञि, हैल विपरीत।
सेवायोग्य नहि, अपराध करों निति नित॥ १५१ ॥

१५१। प० अनु०—''मैं अपने मङ्गल के उद्देश्य से यहाँ आया था, किन्तु हुआ है सब विपरीत! मैं सेवा करने योग्य तो हूँ नहीं, बल्कि नित्य-निरन्तर अपराध ही कर रहा हूँ।

सहजे नीच-जाति मुञि, दुष्ट, 'पापाशय'।
मोरे तुमि छुँइले मोर अपराध हय॥ १५२ ॥

१५२। प० अनु०—''एक तो मैं सहज ही नीच जाति का हूँ, दुष्ट हूँ तथा पाप करने वाले आशय से युक्त हूँ। आपके द्वारा मुझे स्पर्श करने से मेरा अपराध होता है।

ताहाते आमार अङ्गे कण्डु-रसा-रक्त चले।
तोमार अङ्गे लागे, तबु स्पर्शह तुमि बले॥ १५३ ॥

१५३। प० अनु०—''उस पर भी मेरे शरीर से जो कण्डुरसा युक्त रक्त बहता है, वह आपके श्रीअङ्ग पर लगता है, किन्तु तब भी आप बलपूर्वक मेरा आलिङ्गन करते हैं।

अनुभाष्य

१५३। बले,—बलपूर्वक।

वीभत्स स्पर्शिते ना कर घृणा-लेशे।
एइ अपराधे मोर हबे सर्वनाशे॥ १५४ ॥

१५४। प० अनु०—''आप घृणित शरीर को स्पर्श करने में लेशमात्र भी घृणा नहीं करते हैं, इस अपराध से मेरा सर्वनाश अवश्य ही होगा।

अपराध की आशङ्का हेतु उसके मोचन के लिये वृन्दावन जाने की अनुमति देने की प्रार्थना—

ताते इँहा रहिले मोर ना हय 'कल्याण'।
आज्ञा देह'—रथ देखि' जाङ वृन्दावन॥ १५५ ॥

१५५। प० अनु०—''अतएव यहाँ रहने पर मेरा 'कल्याण' होगा नहीं, आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं जगन्नाथ रथयात्रा का दर्शन करके वृन्दावन लौट जाऊँ।

जगदानन्द पण्डित से वृन्दावन जाने के परामर्श की प्राप्ति के विषय में बतलाना—

जगदानन्द-पण्डिते आमि युक्ति पुछिल।
वृन्दावन जाइते तेंह उपदेश दिल॥''१५६॥

१५६। प० अनु०—''मैंने श्रीजगदानन्द पण्डित से भी अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में पूछा था, उन्होंने मुझे वृन्दावन जाने का ही उपदेश दिया है।''

क्रोध से भरकर प्रभु द्वारा पण्डित का तिरस्कार—

एत शुनि' महाप्रभु सरोष-अन्तरे।
जगदानन्दे क्रुद्ध हञा करे तिरस्कारे॥१५७॥

१५७। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के हृदय में रोष छा गया तथा वे क्रोधित होकर श्रीजगदानन्द पण्डित का तिरस्कार करते हुए कहने लगे—।

''कालिकार बटुया जगा ऐछे गर्वी हैल।
तोमा सबारेह उपदेश करिते लागिल?? १५८ ॥

१५८। प० अनु०—''कल का बच्चा जगदानन्द इतना अभिमानी हो गया है कि वह तुम सबको भी उपदेश करने लगा है?

सनातन के प्रति प्रभु की प्रचुर कृपा-गौरव पूर्ण उक्ति—

व्यवहारे-परमार्थे तुमि—तार गुरु-तुल्य।
तोमारे उपदेश करे, ना जाने आपन-मूल्य?? १५९॥

१५९। प० अनु०—''व्यवहार में हो या फिर परमार्थ

में ही क्यों न हो, तुम उसके गुरु के समान हो। वह तुम्हें उपदेश देता है, अपने मूल्य (अधिकार) तक को नहीं जानता?

आमार उपदेष्टा तुमि—प्रामाणिक आर्य।
तोमारेह उपदेशे बालका-करे ऐछे कार्य॥'' १६०॥

१६०। प० अनु०—''तुम तो मुझे भी उपदेश प्रदान करने वाले प्रामाणिक आर्य अर्थात् सम्मानपूर्वक स्वीकार किये जाने वाले व्यक्ति हो, और वह बालक तुम्हें उपदेश देने जैसा कार्य कर रहा है।''

सनातन के द्वारा जगदानन्द के सौभाग्य और अपने दुर्भाग्य का वर्णन—

शुनि' सनातन पाये धरि' प्रभुरे कहिल।
''जगदानन्देर सौभाग्य आजि से जानिल॥ १६१ ॥

१६१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के इन वचनों को सुनकर श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण करके उनसे कहा—''आज ही मुझे श्रीजगदानन्द के सौभाग्य का पता चला है।

आपनार 'असौभग्य' आजि हैल ज्ञान।
जगते नाहि जगदानन्द-सम भाग्यवान्॥ १६२ ॥

१६२। प० अनु०—''मुझे अपने 'दुर्भाग्य' का भी आज ही ज्ञान हुआ है, इस जगत् में जगदानन्द पण्डित के समान अन्य कोई भाग्यशाली नहीं है।

अनुभाष्य

१६२। आपनार असौभाग्य,—अर्थात् अपना दुर्भाग्य।

अपने और पण्डित के प्रति प्रभु के स्नेह की तुलना—

जगदानन्दे पियाओ आत्मीयता-सुधारस।
मोरे पियाओ गौरव स्तुति-निम्ब-निशिन्दा-रस॥१६३॥

१६३। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप जगदानन्द पण्डित को आत्मीयता (अपनेपन) रूपी अमृत रस का पान कराते हो और मुझे सम्मान-स्तुति रूपी नीम-निशिन्दा रस का पान कराते हो।

अनुभाष्य

१६३। नीम और निशिन्दा रस कड़वा होता है, इसलिए पीते समय वह प्रीतिप्रद नहीं होता, स्नेह-भाजन और कृपा-पात्र लाल्य-व्यक्ति के लिये उनके सेव्य और पूज्य लालक-व्यक्ति के द्वारा गौरव और वन्दना आदि सम्मान की प्राप्ति भी वैसे ही अप्रीतिप्रद होती है।

सेवक को सेव्य के निजजन-मानकर प्रेम के कारणरूप सम्बन्ध की अनुभूति; सनातन के अत्यन्त हृदयव्यथा सूचक वचन—

आजिह नहिल मोरे आत्मीयता-ज्ञान!
मोर अभाग्य, तुमि—स्वतन्त्र भगवान्!!" १६४ ॥

१६४। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आपको आज तक भी मेरे प्रति आत्मीयता का ज्ञान नहीं हुआ है। इसमें मेरा ही दुर्भाग्य है, आप तो स्वतन्त्र भगवान् हैं।''

प्रभु की लज्जा और सनातन के प्रति सान्त्वनापूर्ण वचन—

शुनि' महाप्रभु किछु लज्जित हैला मने।
ताँरे सन्तोषिते किछु बलेन वचने॥ १६५ ॥

१६५। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु मन-ही-मन कुछ लज्जित हुए तथा श्रीसनातन गोस्वामी को सन्तुष्ट करने के लिये कहने लगे—।

जगदानन्द और सनातन के प्रति प्रभु की स्नेह-प्रीति के वैशिष्ट्य का वर्णन; जगदानन्द के प्रति तिरस्कार का कारण—

''जगदानन्द प्रिय आमार नहे तोमा हैते।
मर्यादा-लङ्घन आमि ना पारों सहिते॥ १६६ ॥

१६६। प० अनु०—''हे सनातन! जगदानन्द मुझे तुमसे अधिक प्रिय नहीं है, किन्तु मैं मर्यादा का उल्लङ्घन सहन नहीं कर पाता हूँ।

अनुभाष्य

१६६। जिसकी जो मर्यादा है, उस मर्यादा को लांघकर

अपने गुरुत्व की उपलब्धि करके सम्मान के पात्र को परामर्श प्रदान के कार्य में महाप्रभु ने उत्साह प्रदान नहीं किया, साथ ही, जगदानन्द जैसे आयु में कम व्यक्ति के वैसे व्यवहार का अनुमोदन अर्थात् उसे स्वीकृति भी प्रदान नहीं की।

दोनों के गुणों के वैशिष्ट्य का वर्णन–

काँहा तुमि—प्रामाणिक, शास्त्रे प्रवीण!
काँहा जगा—कालिकार बटुआ नवीन!! १६७ ॥

१६७। प० अनु०—''कहाँ तो तुम प्रामाणिक व्यक्ति हो, शास्त्र में प्रवीण हो और कहाँ जगदानन्द पण्डित कल का नया बच्चा है!''

प्रभु के द्वारा सनातन के गुण-गौरव की स्तुति–

आमाकेह बुझाइते तुमि धर शक्ति।
कत ठाञि बुझाइञाछ व्यवहार-भक्ति॥ १६८ ॥

१६८। प० अनु०—''तुम तो मुझे भी समझाने की योग्यता रखते हो। तुमने तो मुझे ही कितने स्थानों पर मर्यादा अथवा शिष्टाचार के विषय में समझाया है।

अनुभाष्य

१६८। कत ठाञि,—मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की २२२-२२४ वीं संख्या, अथवा मध्य-लीला के षोड़श परिच्छेद की २६६ वीं संख्या द्रष्टव्य; व्यवहार-भक्ति,—मर्यादा अथवा शिष्टाचार प्रदर्शन।

तोमारे उपदेश करे, ना जाय सहन।
अतएव तारे आमि करिये भर्त्सन॥ १६९ ॥

१६९। प० अनु०—''जगदानन्द पण्डित तुम्हें उपदेश प्रदान करे, यह मुझसे सहन नहीं हुआ, इसलिए मैंने उसकी भर्त्सना की है।

भक्त के गुणों से आकृष्ट भगवान् के द्वारा भक्त के गुणों का वर्णन–

बहिरङ्ग-ज्ञाने तोमारे ना करि स्तवन।
तोमार गुणे स्तुति कराय जैछे तोमार गुण॥ १७० ॥

१७०। प० अनु०—''हे सनातन! मैं तुम्हें बहिरङ्ग मानकर तुम्हारी स्तुति नहीं करता हूँ, तुम्हारे गुण ही ऐसे हैं कि वह मुझे तुम्हारा गुणगान करने के लिये बाध्य करते हैं।

ममता के पात्र बहुत से 'आश्रय' रहने पर भी किसी विशेष पात्र के प्रति 'विषय' की प्रीति का वैशिष्ट्य–

यद्यपि काहार 'ममता' बहुजने हय।
प्रीति-स्वभावे काँहाते कोन भावोदय॥ १७१ ॥

१७१। प० अनु०—''यद्यपि किसी-किसी की ममता (प्रीति) बहुत से लोगों में होती है, किन्तु वह प्रीति सबमें एक समान नहीं होती है, प्रीति के स्वभाव के अनुसार किसी के प्रति एक प्रकार का भाव होता है तो अन्य किसी के प्रति अन्य प्रकार का।

अपने सम्मान की अङ्क्षाक्षा से रहित भक्त के द्वारा दैन्यवशत: स्वयं को प्राकृत जीव मानकर सुनीच समझने पर भी वास्तव में वह—चित्-दर्शन में भगवान् के द्वारा आलिङ्गित अप्राकृत-ब्रह्मवस्तु–

तोमार देह तुमि कर वीभत्स-ज्ञान।
तोमार देह आमारे लागे अमृत-समान॥ १७२ ॥

१७२। प० अनु०—''यद्यपि तुम अपनी देह को घृणित मानते हो, किन्तु तुम्हारी देह मुझे अमृत की भाँति लगती है।

अप्राकृत-देह तोमार 'प्राकृत' कभु नय।
तथापि तोमार ताते प्राकृत-बुद्धि हय॥ १७३ ॥

१७३। प० अनु०—''तुम्हारी अप्राकृत देह कभी भी प्राकृत नहीं हो सकती, तथापि तुम्हारी उसके प्रति प्राकृत बुद्धि होती है।

अनुभाष्य

१७३। कृष्णोन्मुख भक्त अपने सुख की प्राप्ति रूपी भोग-वासना की तृप्ति के लिये किसी देहिक कामाचार को स्वीकार नहीं करते; कृष्ण के सुख के अभिलाषी होकर एकमात्र कृष्ण-प्रेम-सेवा के उद्देश्य से ही समस्त

अप्राकृत भजन के अनुष्ठानों को किया करते हैं। कर्मी कर्मफल के भोग के आधार प्राकृत-देह को नश्वर-फलभोग के उद्देश्य से नियुक्त करते हैं। भक्तों की वैसी चेष्टा नहीं है,—वे सब प्रकार से सदैव हरिसेवा के उद्देश्य से ही अपनी देह के अस्तित्व को स्वीकार और समस्त प्रकार के देहिक कार्यों के द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा का अनुष्ठान किया करते हैं। प्रकृति के प्रति अभिनिवेश-वशतः प्राकृत-फलभोग-कामना के कारण ही कर्मी की देह—प्राकृत है, पुनः कृष्ण की सेवा की निष्ठा के कारण देह का अस्तित्व अथवा देहिक क्रियादि सब कुछ ही कृष्ण की अप्राकृत-सेवा परायण होने के कारण भक्त की चिन्मय देह अवश्य ही अप्राकृत है। कृष्ण-विमुख कर्मीगण जिस प्रकार शुद्ध भक्तों की देह को निज भोग-तात्पर्य परक अपनी प्राकृत-देह की भाँति 'प्राकृत' मानते हैं, शुद्धभक्त और उनके दास उनकी भाँति शुद्धभक्तों की देह को कभी भी 'प्राकृत' नहीं समझते अर्थात् चित् और अचित्, अप्राकृत और प्राकृत, विधि के अतीत और विधि के अधीन वस्तु को अथवा कृष्ण और कृष्ण के अतिरिक्त अन्यान्य वस्तु माया को 'समान' अथवा 'एक' मानकर कृत्रिम उदारता अथवा निरपेक्षता की छलना में चित् वस्तु और जड़ीय वस्तु के समन्वयवाद (एक समान मानने वाले वाद) का आवाहन करके कभी भी नामापराधी नहीं बनते; परन्तु शुद्धभक्तों की चिदानन्दमय देह को अप्राकृत-स्वरूप मानकर कृष्णसेवा के उपयोगी समझते हैं।

उत्तमाधिकारी भक्त अपनी अनुभूति को कृष्णप्रेम रहित जानकर स्वयं को दरिद्र और प्राकृत जीव समझते हैं। प्राकृत-सहजिया आदि अप-सम्प्रदाय में कृष्ण-बहिर्मुख व्यक्ति मूर्खतावशतः स्वयं की प्राकृत देह को 'अप्राकृत-वैष्णवदेह' मानकर शुद्ध वैष्णवों के अप्राकृत आचार अथवा भक्ति से बहुत दूर जा पड़ता है। इसे लक्ष्य करके ही लोक-शिक्षा के लिये ठाकुर भक्तिविनोद ने स्व-रचित 'कल्याण-कल्पतरु'-ग्रन्थ में लिखा है—''आमि त' वैष्णव, ए बुद्धि हइले, अमानी ना हब आमि। प्रतिष्ठाशा आसि' हृदय दूषिबे, हइब निरयगामी॥ निजे श्रेष्ठ जानि', उच्छिष्टादि-दाने, हबे अभिमान भार। ताइ शिष्य तव, थाकिया सर्वदा, ना लइब पूजा कार॥'' [अर्थात् यदि मेरी "मैं वैष्णव हूँ" ऐसी बुद्धि हो जाएगी, तो मैं कदापि अमानी नहीं रह पाऊँगा तथा दूसरों से प्रतिष्ठा प्राप्ति की आशा से मेरा हृदय दूषित हो जाएगा, जिसके फलस्वरूप मैं नरकगामी हो जाऊँगा। आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिए कि मैं गुरु होने के मिथ्या अभिमान का परित्याग कर अपने को आपका दास मान सकूँ, तथा आपके उच्छिष्ट एवं चरणामृत को निष्कपट रूप से ग्रहण कर पाऊँ क्योंकि अपने को श्रेष्ठ (गुरु) मानकर अपना उच्छिष्ट दूसरों को प्रदान करने से अभिमान आकर मेरा सर्वनाश कर देगा। अतः आप ऐसी कृपा कीजिए कि मैं सदैव आपका शिष्य बन कर रहूँ तथा किसी से भी पूजा-प्रतिष्ठा ग्रहण न करूँ।] कविराज गोस्वामी ने भी लिखा है, (अन्त्य-लीला के विंश परिच्छेद की २८ वीं संख्या में)—''प्रेमेर स्वभाव—जाँहा प्रेमेर सम्बन्ध। सेइ माने कृष्णे मोर नाहि भक्तिगन्ध॥'' [अर्थात् प्रेम का स्वभाव ही ऐसा है,—जहाँ प्रेम का सम्बन्ध होता है, वह मानता है कि मुझमें श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति की गन्ध भी नहीं है।]

निर्गुण अप्राकृत-राज्य में गौण अचित्-दर्शन से उत्पन्न मनोधर्म-सुलभ जड़ीय विधि-निषेध के विचार का अभाव—

'प्राकृत' हैलेह तोमार वपु नारि उपेक्षिते।
भद्राभद्र-वस्तुज्ञान नाहि 'अप्राकृते'॥ १७४ ॥

१७४। प० अनु०—''यदि तुम्हारी देह प्राकृत हो भी, तो भी मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, कारण अप्राकृत वस्तु में (अर्थात् अप्राकृत स्वरूप सन्यासी मुझमें) भद्र और अभद्र अर्थात् अच्छे और बुरे का कोई विचार होना उचित ही नहीं है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१७४। प्रभु ने सनातन से कहा—तुम वैष्णव हो, तुम्हारी देह—अप्राकृत है, उसके प्रति 'भद्र-अभद्र' बुद्धि

करना उचित नहीं है; उस पर भी मैं—सन्यासी हूँ, तुम्हारी देह यदि प्राकृत भी होती, तब भी मैं उसकी उपेक्षा नहीं कर पाता; क्योंकि, अप्राकृत स्वरूप सन्यासी के लिये भद्र-अभद्र-वस्तु ज्ञान रहना कभी भी उचित नहीं है।

गौण अचिद्-दर्शन से उत्पन्न जड़ीय भेद-ज्ञान मूलक मनोधर्म में पवित्रता, अपवित्रता अथवा विधि-निषेध सब कुछ ही एक समान और अवास्तव—श्रीमद्भागवत (११.२८.४) में—

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियत्।
वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च॥ १७५ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१७५। ''(अद्वयज्ञान कृष्णप्रतीति के अतिरिक्त उनसे भिन्न मायिक-प्रतीति से युक्त) द्वैत-वस्तु की अवास्तवता-हेतु वाक्य द्वारा उदित (कही गयी) एवं मन के द्वारा ध्यान की गयी (जो भी वस्तुएँ हैं), सब 'अनृत' (नश्वर) हैं; अतएव उसमें भद्र और अभद्र कैसा? (अर्थात् उसमें 'भद्र' अथवा 'अभद्र' ऐसा जड़ीय) भेद तो है, किन्तु अद्वयज्ञान वस्तु की प्रतीति में वैसा कुछ भी नहीं है।

अनुभाष्य

१७५। भगवान् उद्धव को पहले विस्तारपूर्वक वर्णित शुद्ध भगवद्-ज्ञान-वर्णन के प्रसङ्ग में अक्षज-दर्शन की निन्दा कर रहे हैं—

(यतः) वाचा (यत्) उदितं (कथितं, चक्षुरादिभिश्च यत् दृश्यं, यच्च)मनसा ध्यातं, तत् (सर्वम्) एव च अनृतं (नश्वरं न सर्वकालसत्यम्; अतः) अवस्तुनः (अद्वय-ज्ञानेतर-वस्तुनः पृथक् सत्वाभावेन वस्तुत्वेन स्वीकर्त्तुमशक्यस्य) द्वैतस्य (प्रपञ्चस्य मध्ये) किं (कियत् किं परिमाणं) भद्रं, किम् (कियत्) वा अभद्रम्?

श्लोक का सरल अर्थ—

'द्वैते' भद्राभद्र-ज्ञान, सब—'मनोधर्म'।
'एइ भाल, एइ मन्द',—एइ सब 'भ्रम'॥ १७६ ॥

१७६। प० अनु०—''द्वैत अर्थात् प्राकृत वस्तु में भद्र और अभद्र का ज्ञान करना तो मन का धर्म है। वह अच्छा है, यह बुरा है—यह सब तो भ्रम है।

अनुभाष्य

१७६। अद्वयज्ञान-व्रजेन्द्रनन्दन में अविनश्वर- सत्य नित्य ही विराजमान है। द्वितीय-अभिनिवेश- वशतः कृष्ण से भिन्न माया के हाथ में पतित जीव के अपने मङ्गल अथवा अमङ्गल के निर्णय इत्यादि समस्त सङ्कल्प ही विकल्पात्मक मन के धर्म हैं। स्व-स्वरूप और कृष्ण-विस्मृति प्राप्त जीव की भोक्ता अभिमान वशतः अक्षज-ज्ञान हेतु, अच्छे-बुरे की विचार चेष्टा अनेक प्रकार के भ्रम उत्पन्न करती है।

श्रीमद्भगवद्गीता (५.१८) में—

विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ १७७॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१७७। ''जो विद्या और विनय से सम्पन्न ब्राह्मण में एवं चण्डाल, गाय, हाथी एवं कुत्ते में समान दृष्टि वाले हैं, वही पण्डित हैं।

अनुभाष्य

१७७। विद्या-विनयसम्पन्ने (विद्याविनयाभ्यां सम्पन्ने संयुक्ते सर्वब्रह्मण्यविराजिते, न तु मूर्खे दुर्विनीते) ब्राह्मणे श्वपाके (चण्डाले सर्वाधमे) गवि (पवित्रायां धेनौ) शुनि (अपवित्रे कुकुरे) हस्तिनि (शुद्धाशुद्ध- विचार-रहिते गजे) पण्डिताः (बन्धमोक्षविदः) समदर्शिनः (समं ब्रह्मैव द्रष्टुं शीलं येषां ते, तुल्यबुद्धयः इत्यर्थः)।

युक्त वैरागी शुद्ध भक्त गोस्वामी का ही सर्वत्र कृष्ण-सम्बन्ध-हेतु समदर्शन—श्रीमद्भगवद्गीता (६.८) में—

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ट्राश्मकाञ्चनः॥ १७८॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१७८। ''जो ज्ञान-विज्ञान के द्वारा परितृप्त हैं, कूटस्थ

अर्थात् चित् स्वभाव में स्थित (निर्विकार) हैं, जितेन्द्रिय हैं एवं मिट्टी के ढ़ेले, पत्थर और स्वर्ण में समान बुद्धि वाले हैं, उन्हें ही 'योगी' अर्थात् 'योगारूढ़' कहा जाता है।

चतुर्थ परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

१७८। ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा (ज्ञानं उपदेशिकं, 'विज्ञानम्' अपरोक्षानुभवः, ताभ्यां तृप्तः निराकाङ्क्षः आत्मा चित्तं यस्य सः अतः) कूटस्थः (एकेनैव स्वभावेन सर्वकालं व्याप्य स्थितः निर्विकारः वा, अतएव) विजितेन्द्रियः (विजितानि इन्द्रियाणि येन सः, अतएव) समलोष्ट्राश्मकाञ्चनः (समानि मृत् पिण्ड पाषाण खण्ड-सुवर्णानि यस्य सः, लोष्ट्रादिषु हेयोपादेयबुद्धिशून्यः इत्यर्थः) योगी युक्तः (योगारूढ़ः) उच्यते।

जड़ीय विधि-निषेध से अतीत नैष्कर्म्य को प्राप्त विद्वत् सन्यासी अथवा उत्तम महाभागवत के लिये ही सर्वत्र विष्णु प्रतीति हेतु जड़ीय भेदज्ञान से उत्पन्न विषमता-रहित सुदर्शन—

आमि त'—सन्यासी, आमार 'सम-दृष्टि' धर्म।
चन्दन-पङ्केते आमार ज्ञान हय 'सम'॥ १७९ ॥

१७९। प० अनु०—"मैं तो सन्यासी हूँ और सभी के प्रति समान दृष्टि रखना ही मेरा धर्म है। मैं चन्दन तथा कीचड़ को समान ही समझता हूँ।

अनुभाष्य

१७९। समस्त वस्तुओं के प्रति समान दृष्टि से युक्त होना ही सन्यासी, पण्डित अथवा वैष्णव का धर्म है; कारण, उन में प्राकृत अभिनिवेश नहीं है। इन्द्रिय-तर्पण के लिये उनकी चन्दन की सुगन्ध को ग्रहण करने की आसक्ति अथवा इन्द्रियों की प्रीति के लिये कीचड़ की दुर्गन्ध को त्यागने की इच्छा नहीं है। प्राकृत वस्तु को ग्रहण करना और त्याग देना—इन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों का दास्य करने अर्थात् उनके वशीभूत होने के लिये अग्रसर नहीं होकर, युक्त वैराग्यशील 'वैष्णव'—प्राकृत भोग-त्याग के प्रति उदासीन होकर सुदर्शन अथवा चित्-विलास-दर्शन से युक्त होते हैं।

अपने धर्म से पतित होने की आशङ्का हेतु अप्राकृत-वैष्णव के प्रति प्राकृत बुद्धि करने का निषेध—

एइ लागि' तोमा त्याग करिते ना जुयाय।
घृणा बुद्धि करि यदि, निज-धर्म जाय॥" १८० ॥

१८०। प० अनु०—"इसी कारण तुम्हारा त्याग करना शोभा नहीं देता, यदि मैं तुम्हारे प्रति घृणा बुद्धि करूँ तो फिर मेरा अपना धर्म नष्ट होता है।"

अनुभाष्य

१८०। श्रीरूपप्रभु रचित उपदेशामृत के षष्ठ श्लोक—"दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषैः न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्। गङ्गाम्भसां न खलु बुदबुदफेनपङ्कैर्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीरधर्मैः॥"

[अर्थात् इस जगत् में अवस्थित भक्तजनों में नीचवर्ण, कठोरता और आलस्य आदि दिखायी पड़नेवाले स्वाभाविक दोषों के द्वारा अथवा कुरूपता और ज्वर आदि पीड़ाओं से विकृत दिखायी पड़ने वाले शारीरिक दोषों के द्वारा भक्तजनों का प्राकृतत्व नहीं देखना चाहिये अर्थात् उन्हें प्राकृत जीव नहीं समझना चाहिये, जैसे बुलबुलों, फेन और कीचड़ आदि के सम्बन्ध से गङ्गाजल जलधर्म को अङ्गीकार करके भी अपना द्रवीभूत-ब्रह्म होने का धर्म त्याग नहीं करता अर्थात् अप्राकृत धर्म नहीं छोड़ता; वैसे ही आत्मस्वरूप प्राप्त वैष्णवों में प्राकृत दोषों का आरोप नहीं करना चाहिये।]

सम्मान की अभिलाषा से रहित दोनों भक्तों का प्रभु के द्वारा की गयी प्रशंसा को अस्वीकार करना—

हरिदास कहे,—"प्रभु जे कहिला तुमि।
एइ 'बाह्य प्रतारणा', नाहि मानि आमि॥ १८१ ॥

१८१। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—"हे श्रीमन्महाप्रभु! आपने हमें वैष्णव मानकर जो सब कहा है, मैं उस 'बाह्य प्रतारणा' को नहीं मानता हूँ।

अनुभाष्य

१८१। बाह्य प्रतारणा— वैष्णव मानकर गौरव पूर्ण स्तुति।

स्वयं को दीन-मानकर दोनों के द्वारा प्रभु की स्तुति—

आमा-सब अधमे जे कैराछ अङ्गीकार।
दीनदयालु-गुण तोमार ताहाते प्रचार॥'' १८२ ॥

१८२। प० अनु०—''आपने जो हमारे जैसे अधमों को अङ्गीकार किया है, उसमें आपका दीनों के प्रति दयालु होने का गुण प्रकाशित होता है।''

दोनों के प्रति प्रभु के द्वारा यथार्थ हृदय के भाव को व्यक्त करना—

प्रभु हासि' कहे,—''शुन, हरिदास, सनातन।
तत्वतः कहि तोमा-विषये आमार जैछे मन॥ १८३॥

१८३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने मुस्कुराते हुए कहा,—''हे हरिदास! हे सनातन! मेरी बात सुनो! मेरे मन में तुम लोगों के लिये वास्तव में जो सब भावनाएँ है, अब मैं उन सबके विषय में बतलाता हूँ।

भक्त और भगवान् का परस्पर व्यवहार—

तोमारे 'लाल्य', आपनाके 'लालक'-अभिमान।
लालकेर लाल्ये नहे दोष-परिज्ञान॥ १८४ ॥

१८४। प० अनु०—''मुझमें तुम लोगों के प्रति लाल्य तथा स्वयं के प्रति लालक होने का अभिमान है, लालक लाल्य के दोष को कभी भी अनुभव नहीं करता।

अनुभाष्य

१८४। जो—लालक होता है, वह लाल्य के प्रति अपने वात्सल्य के कारण उसमें किसी दोष के रहने पर भी उसे समझ नहीं पाता।

शुद्धभक्त के प्रति वात्सल्य होने के कारण सुदर्शनधारी भगवान् में उनके दोष दर्शन का अभाव—

आपनारे हय मोर अमान्य-समान।
तोमा-सबारे करों मुञि बालक-अभिमान॥ १८५॥

१८५। प० अनु०—''मैं स्वयं को सम्मान के अयोग्य मानता हूँ तथा तुम सबके प्रति मुझमें मेरे बालक होने का अभिमान है।

अनुभाष्य

१८५। मैं—तुम्हारे गौरव अथवा सम्मान अर्थात् पूजा का पात्र हूँ,—यह बात भक्त-प्रेम-वत्सल मेरे मन में नहीं रहती।

मातार जैछे बालकेर 'अमेध्य' लागे गाय।
घृणा नाहि जन्मे, आर महासुख पाय॥ १८६ ॥

१८६। प० अनु०—''माता को जैसे बालक का अमेध्य (मल) लगने पर भी उसमें घृणा उत्पन्न नहीं होती, बल्कि बहुत अधिक सुख की प्राप्ति होती है।

आत्मसात अथवा स्व-अङ्गीकृत निज-प्रेष्ठ सनातन को प्रभु के द्वारा अपने समान मानना—

'लाल्यामेध्य' लालकेर चन्दन-सम भाय।
सनातनेर क्लेदे आमार घृणा ना उपजाय॥'' १८७॥

१८७। प० अनु०—''जिस प्रकार लाल्य का मल लालक को चन्दन की भाँति लगता है, उसी प्रकार सनातन के शरीर से निकलने वाले कन्दुरसा के लगने पर मुझमें किसी प्रकार की कोई घृणा उत्पन्न नहीं होती।''

विविध घटनाओं के माध्यम से हरिदास के द्वारा प्रभु की अतुल-कृपा और भक्तवात्सल्य का वर्णन—

हरिदास कहे,—''तुमि ईश्वर दयामय।
तोमार गम्भीर हृदय बुझन ना जाय॥ १८८ ॥

१८८। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप दयामय भगवान् हैं। आपके गम्भीर हृदय को कोई नहीं समझ सकता।

कुष्ठ से ग्रस्त वासुदेव-विप्र की घटना—

वासुदेव—गलत्कुष्ठी, ताते अङ्ग—कीड़ामय।
तारे आलिङ्गन कैला हञा सदय॥ १८९ ॥

१८९। प० अनु०—''दक्षिण भारत के वासुदेव विप्र, जिन्हें गले हुए कुष्ठ का रोग तो था ही, साथ में उनका शरीर कीड़ों से भी भरा हुआ था, आपने दयावान होकर

उसे भी आलिङ्गन किया था।

अनुभाष्य

१८९। वासुदेव का गलित कुष्ठ—मध्य-लीला के सप्तम परिच्छेद की १३६-१४८ वीं संख्या द्रष्टव्य; कीड़ामय,—कीट से पूर्ण।

आलिङ्गिया कैला तार कन्दर्प-सम अङ्ग ।
बुझिते ना पारि तोमार कृपार तरङ्ग॥'' १९० ॥

१९०। प० अनु०—''वासुदेव विप्र को आलिङ्गन करके आपने उसके अङ्गों को कन्दर्प (कामदेव) के समान सुन्दर बना दिया था, मैं आपकी कृपा की तरङ्ग को समझ नहीं पाता हूँ।''

प्रभु के द्वारा वैष्णवों के अप्राकृत-स्वरूप का वर्णन—
प्रभु कहे,—''वैष्णव-देह 'प्राकृत' कभु नय।
'अप्राकृत' देह भक्तेर 'चिदानन्दमय'॥ १९१ ॥

१९१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''वैष्णव की देह कभी भी प्राकृत (भौतिक) नहीं होती, भक्तों की अप्राकृत देह चिदानन्दमय होती है।

अनुभाष्य

१९१। श्रीगौरसुन्दर ने अपने पदाश्रित भक्तों को यही समझाया कि—कर्मी, ज्ञानी अथवा अन्याभिलाषी व्यक्तियों के भोगमय जड़ीय आनन्द से युक्त प्राकृत-देह की भाँति वैष्णवों की देह कभी भी भोगपर प्राकृत नहीं है। भक्त की देह—चिदानन्दमय अर्थात् कृष्ण-सेवन के उपयोगी और प्रकृति से अतीत भावमय है, उसमें सच्चिदानन्दत्व विराजित है।

वैष्णव विष्णु के द्वारा अङ्गीकार किये गये 'आश्रय' होने के कारण उनके अभिन्न चित्-विलास; गुरु के द्वारा दीक्षित व्यक्ति की अच्युतात्मता—
दीक्षाकाले भक्त करे आत्मसमर्पण।
सेइकाले कृष्ण तारे करे आत्मसम॥ १९२ ॥

१९२। प० अनु०—''दीक्षा के समय भक्त आत्मसमर्पण करता है, उसी समय कृष्ण उसे अपने समान बना देते हैं।

दीक्षित अथवा लब्ध-भगवत्-सम्बन्ध ज्ञान ब्राह्मणों की ही अभिधेय विष्णुभक्ति योग में वैष्णव-आख्या (उपाधि), अतएव वैष्णवता में ब्राह्मणता अनुस्यूत (अन्तर्गत)—
सेइ देह करे तार चिदानन्दमय।
अप्राकृत-देहे ताँर चरण भजय॥ १९३ ॥

१९३। प० अनु०—''कृष्ण भक्त की उसी देह को ही चिदानन्दमय बना देते हैं तथा भक्त अपनी अप्राकृत देह से कृष्ण के चरणों का भजन करता है।

अनुभाष्य

१९३। दीक्षा के समय भक्त अपनी प्राकृत-अनुभूति को समर्पित करके अप्राकृत-सम्बन्धज्ञान से युक्त होते हैं। अप्राकृत दिव्यज्ञान प्राप्त करके वे अप्राकृत स्वरूप में कृष्ण की सेवा के अधिकार को प्राप्त करते हैं। कृष्ण से भिन्न माया के आश्रय से च्युत (अलग) होने पर ही कृष्ण शरणागत भक्त को आत्मसात करते हैं। तब उनका जड़ीय-भोग राज्य के 'भोक्ता' होने का जड़ीय अभिमान दूर होता है एवं अपनी अस्मिता (शुद्ध अहङ्कार)में नित्य कृष्ण दास्य-स्फूर्त्ति की प्राप्ति होती है। तब भक्त सच्चिदानन्दमय अपने स्वरूप में नित्य-सेवक-विग्रह होने की उपलब्धि करके अप्राकृत देह में कृष्ण चन्द्र की सेवा के अधिकारी होते हैं। भक्त की तत्कालोचित अप्राकृत-देह के द्वारा अप्राकृत-भाव सेवा को भी प्राकृत-बुद्धि के दोष के कारण कर्मीगण अपनी ही भाँति भोग परायण प्राकृत-कर्मानुष्ठान समझते हैं; इसी अपराध के कारण वे अप्राकृत-गुरु की कृपा की प्राप्ति से वञ्चित हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में बृहद्भागवतामृत में १.३.४५ [उस वैकुण्ठलोक में जो वास करते हैं, उन सभी की सच्चिदानन्द देह है। वे उस स्थान में रहने पर भी सच्चिदानन्दमय परम वैभव स्वरूप श्रीहरि के समान ऐश्वर्य को प्राप्त कर उस वैभव का तनिक भी आदर नहीं करते।] और २.३.१३९ संख्या में [भक्त वैकुण्ठ में

वास करें अथवा अन्य किसी स्थान पर, उनकी उपयुक्त सच्चिदानन्दरूप देह और इन्द्रियादि स्वत: ही प्रकाशित होती हैं]श्रीसनातन प्रभु का विचार द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भागवत (११.२९.३४) में–

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा
निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो
मयात्मभूयाय च कल्पते वै॥ १९४ ॥

१९४।अनु०—''[श्रीभगवान् ने कहा–] मरणशील जीव जब समस्त कर्मों का परित्याग कर स्वयं को मेरे प्रति सम्पूर्ण रूप से निवेदन करके मेरी इच्छा से क्रिया करता है, तब वह अमृतत्व को प्राप्त करके मेरे साथ एक सूत्र में चिद् स्वरूप रस के भोग करने के योग्य होता है।

अनुभाष्य

१९४। मध्य-लीला के द्वाविंश परिच्छेद की १०१ वीं संख्या द्रष्टव्य।

प्राकृत अक्षजदर्शन और सम्पूर्ण कृष्ण की इच्छा से परिचालित अप्राकृत वैष्णव-आचार–

सनातनेर देहे कृष्ण कण्डु उपजाञा।
आमा परीक्षिते इँहा दिला पाठाञा॥ १९५ ॥

१९५। प० अनु०—''श्रीकृष्ण ने सनातन की देह में कण्डुरसे को उत्पन्न कर के उसे मेरी परीक्षा के लिये यहाँ भेजा है।

मर्त्यबुद्धि से गुणातीत गुरु-वैष्णवों के किसी प्रकार के दोषों के दर्शन से अपराध होने के कारण नरक की प्राप्ति–

घृणा करि' आलिङ्गन ना करिताम जबे।
कृष्ण-ठाञि अपराधी हइताम तबे॥ १९६ ॥

१९६। प० अनु०—''मैं यदि घृणा करके सनातन को आलिङ्गन नहीं करता तो फिर कृष्ण के चरणों में अपराधी बनता।

भगवद्-पार्षद गुरु-वैष्णव–गौण इन्द्रिय धर्म से अतीत वैकुण्ठ-वस्तु–

पारिषद-देह एइ, ना हय दुर्गन्ध।
प्रथम दिवसे पाइलुँ चतु:सम-गन्ध॥'' १९७ ॥

१९७। प० अनु०—''सनातन की देह तो भगवान् की पारिषद-देह है, उसमें दुर्गन्ध नहीं हो सकती, मुझे पहले दिन ही सनातन की देह से चतु:सम की सुगन्ध प्राप्त हुई थी।''

अनुभाष्य

१९७। पारिषद-देह ही कृष्ण सेवामय देह है; प्राकृत भोग परायण मन के द्वारा चलायमान घ्राण (नाक)के द्वारा महाभागवत परमहंसकुलचूड़ामणि श्रीसनातन गोस्वामी की देह के दुर्गन्धयुक्त जैसे प्रतीत होने पर भी स्वयं प्रभु उसके विषय में कह रहे हैं कि,–'कृष्ण सेवा परायणता के कारण सनातन की इस अप्राकृत पारिषद-देह में मुझे पहले दिन ही चतु:सम अर्थात् चन्दन, कर्पूर अथवा अगुरु, कस्तूरी एवं कुंकुम मिश्रित द्रव्य की गन्ध आई।' चतु:सम,–(गरुड़ पुराण में) –''कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य तु। कुंकुमस्य त्रयश्चैक: शशिन: स्यात् चतु:समम्॥'' दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग कुंकुम अथवा जाफराण एवं एक भाग शशी अर्थात् कर्पूर एकत्रित करके 'चतु:सम'-नामक सुगन्धित द्रव्य प्रस्तुत होता है। हरिभक्तिविलास के षष्ठ विलास की ११५ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

प्रभु के आलिङ्गन के स्पर्श से सनातन के अङ्ग की गन्ध–

वस्तुत: प्रभु जबे कैला आलिङ्गन।
ताँर स्पर्शे गन्ध हैल चन्दनेर सम॥ १९८ ॥

१९८। प० अनु०—वास्तव में श्रीमन्महाप्रभु ने जब पहले दिन श्रीसनातन गोस्वामी को आलिङ्गन किया था, उन्हीं के स्पर्श से गन्ध चन्दन जैसी हो गयी थी।

प्रभु के द्वारा सनातन को सान्त्वना-प्रदान, सनातन के स्पर्श से प्रभु को सुख–

प्रभु कहे,—''सनातन ना मानिह दुःख।
तोमार आलिङ्गने आमि पाइ बड़ सुख॥ १९९ ॥

१९९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे सनातन! तुम किसी प्रकार का दुःख मत करना, तुम्हें आलिङ्गन करके मुझे बहुत अधिक सुख की प्राप्ति होती है।

उस वर्ष सनातन को अपने निकट रखने के उपरान्त अगले वर्ष वृन्दावन जाने की आज्ञा प्रदान—

ए वत्सर तुमि इँहा रह आमा-सने।
वत्सर रहि' तोमारे आमि पाठाइमु वृन्दावने॥''२००॥

२००। प० अनु०—''तुम इस वर्ष यहाँ मेरे पास रहो। एक वर्ष यहाँ रहने के बाद मैं तुम्हें वृन्दावन भेज दूँगा।''

प्रभु के आलिङ्गन-स्पर्श के फल से सनातन की देह की स्वर्णकान्ति—

एत बलि' पुनः ताँरे कैला आलिङ्गन।
कण्डु गेल, अङ्ग हैल सुवर्णेर सम॥ २०१ ॥

२०१। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने पुनः श्रीसनातन गोस्वामी को आलिङ्गन किया। श्रीसनातन गोस्वामी की देह से कण्डुरसा नामक रोग गायब हो गया तथा उनका शरीर स्वर्ण की भाँति उज्ज्वल हो गया।

ऐसा देखकर हरिदास का विस्मय और सम्पूर्ण रूप से प्रभु की इच्छा से परिचालित सनातन की देह में अक्षज-दर्शन से दिखलायी देने वाले कण्डुरस के कष्ट को प्रदर्शित करने की लीला के वास्तविक मर्मार्थ का वर्णन—

देखि' हरिदास मने हैला चमत्कार।
प्रभुरे कहेन,—''एइ भङ्गी जे तोमार॥ २०२ ॥

२०२। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी की देह को देखकर श्रीहरिदास ठाकुर के मन में बहुत आश्चर्य हुआ। श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा,—''यह आपकी ही भाव-भङ्गिमा है।

सेइ झारिखण्डेर पानी तुमि खाउयाइला।
सेइ पानी-लक्ष्ये इँहार कण्डु उपजाइला॥ २०३ ॥

२०३। प० अनु०—''आपने ही सनातन को झारिखण्ड के जल का पान कराया तथा उसी जल के माध्यम से इनकी देह में कण्डुरसा उत्पन्न कराया ।

अनुभाष्य

२०३। पानी लक्ष्ये,— झरिखण्ड के पानीय जल को उपलक्ष्य करके।

कण्डु-करि' परीक्षा करिले सनातने।
एइ लीला-भङ्गी तोमार केह नाहि जाने॥'' २०४ ॥

२०४। प० अनु०—''कण्डुरसा उत्पन्न कराके आपने ही सनातन की परीक्षा ली। आपकी इस लीला-भङ्गी को कोई नहीं जान सकता।''

प्रभु का प्रस्थान और दोनों भक्तों के द्वारा भगवान् की कृपा की चर्चा—

दुँहे आलिङ्गिया प्रभु गेला निजालय।
प्रभुर गुण कहे दुँहे हञा प्रेममय॥ २०५ ॥

२०५। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन गोस्वामी को आलिङ्गन करके श्रीमन्महाप्रभु अपने वासस्थान पर लौट गये। श्रीहरिदास ठाकुर और श्रीसनातन गोस्वामी प्रेममय होकर श्रीमन्महाप्रभु के गुणों का गान करने लगे।

प्रतिदिन सनातन के द्वारा हरिदास के साथ प्रभु की कथा का आलाप—

एइमत सनातन रहे प्रभु-स्थाने।
कृष्णचैतन्य-गुण-कथा हरिदास-सने॥ २०६ ॥

२०६। प० अनु०—इस प्रकार श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के निकट उनके आनुगत्य में श्रीजगन्नाथपुरी में रहे तथा उन्होने श्रीहरिदास ठाकुर के साथ सदैव श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के गुणों की कथाओं का आलाप

करते हुए समय को व्यतीत किया।

दोल-यात्रा (होली-उत्सव) के बाद सनातन को वृन्दावन भेजना—

दोलयात्रा देखि' प्रभु ताँरे विदाय दिला।
वृन्दावने जे करिबेन, सब शिखाइला॥ २०७ ॥

२०७। प० अनु०—दोलयात्रा के दर्शन करने के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसनातन को विदायी दी तथा श्रीसनातन को वृन्दावन में जाकर क्या-क्या करना है, वह सब भी सिखलाया।

विदायी के समय भक्त और भगवान् में तीव्र विरह-दु:ख—

जे-काले विदाय हैला प्रभुर चरणे।
दुइ जनार विच्छेद-दशा ना जाय वर्णने॥ २०८ ॥

२०८। प० अनु०—जिस समय श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के चरणों से विदा हुए, उस समय उन दोनों की कैसी अवस्था हुयी, उस विच्छेद-दशा का वर्णन करना सम्भवपर नहीं है।

प्रभु के पथ का अनुगमन करते हुए वृन्दावन-यात्रा—

जेइ वन-पथे प्रभु गेला वृन्दावन।
सेइ पथे जाइते मन कैला सनातन॥ २०९ ॥

२०९। प० अनु०—जिस वन के मार्ग से श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन गये थे, श्रीसनातन गोस्वामी ने भी उसी वन के मार्ग से वृन्दावन जाने की इच्छा की।

प्रभु के साथ में जाने वाले बलभद्र से जाने वाले मार्ग की सूचना एकत्रित करना—

जे-पथे, जे-ग्राम-नदी-शैल, जाँहा जेइ लीला।
बलभद्रभट्ट-स्थाने सब लिखि' निला॥ २१० ॥

२१०। प० अनु०—जिस मार्ग पर, जिस ग्राम में, जिस नदी में, जिस पर्वत पर—श्रीमन्महाप्रभु ने जहाँ पर जो लीला की थी, श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के वृन्दावन-यात्रा के सङ्गी श्रीबलभद्र भट्टाचार्य से पूछकर सब लिख लिया।

यात्रा के प्रारम्भ में भक्तों के साथ मिलन के बाद यात्रा—

महाप्रभुर भक्तगणे सबारे मिलिया।
सेइपथे चलि' जाय से स्थान देखिया॥ २११ ॥

२११। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के समस्त भक्तों से मिले तथा तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु की यात्रा के मार्ग पर चलते हुए उन-उन स्थानों के दर्शन करते हुए आगे चले।

प्रभु के लीला-स्थानों के दर्शन से सनातन में प्रेमावेश—

जे-जे-लीला प्रभु पथे कैला जे-जे-स्थाने।
ताहा देखि' प्रेमावेश हय सनातने॥ २१२ ॥

२१२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने जो-जो लीला जिस-जिस स्थान पर की थी, उस उस स्थान को देखकर श्रीसनातन गोस्वामी प्रेम में आविष्ट हो गये।

पहले सनातन का, बाद में रूप का वृन्दावन में आगमन—

एइमते सनातन वृन्दावने आइला।
पाछे आसि' रूप-गोसाञि ताँहारे मिलिला॥ २१३॥

२१३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीसनातन गोस्वामी श्रीवृन्दावन आ गये। बाद में श्रीरूप गोस्वामी भी वृन्दावन आकर उनसे मिले।

श्रीरूप के वृन्दावन आगमन में विलम्ब का कारण—

एक वत्सर रूप-गोसाञि गौड़े विलम्ब-हैल।
कुटुम्बेर 'स्थिति'-अर्थ विभाग करि' दिल॥ २१४॥

२१४। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी को गौड़देश में एक वर्ष की देरी हुयी। वहाँ उन्होंने अपने परिवार की भू-सम्पत्ति और अर्थ का विभाजन कर दिया।

अनुभाष्य

२१४। स्थिति-अर्थ,—भू-सम्पत्ति एवं अर्थ अथवा सञ्चित धन। [श्रीरूप गोस्वमी ने] चल एवं अचल सम्पत्ति को यथायोग्य पात्रता अनुरूप अपने कुटुम्बियों के बीच में विभजित कर दिया।

गौड़े जे अर्थ छिल, ताहा आनाइला।
कुटुम्ब-ब्राह्मण-देवालये बाँटि' दिला॥ २१५ ॥

२१५। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने गौड़देश में जहाँ-जहाँ पर धन रखा था, वहाँ से मंगवाकर उसे कुटुम्बियों, ब्राह्मणों तथा मन्दिरों में विभाजित कर दिया।

नित्यसिद्धकुलशिरोमणि श्रीरूप के द्वारा विषय-विभाग करने के बाद निश्चिन्त मन से व्रजवास तथा अनर्थयुक्त साधक का गृहव्रत रूपी बुद्धि से उत्पन्न जनशैथिल्य 'एक' नहीं—

सब मनःकथा गोसाञि करि' निर्वाहण।
निश्चिन्त हञा शीघ्र आइला वृन्दावन॥ २१६ ॥

२१६। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी अपनी इच्छानुरूप समस्त कार्य करने के उपरान्त निश्चिन्त होकर शीघ्र वृन्दावन लौट आये।

अनुभाष्य

२१६। मनःकथा,—जो-जो उनकी इच्छा थी।

दोनों भाइयों का व्रजवास और प्रभु की चार प्रकार की आज्ञा रूपी सेवा का पालन—

दुइभाइ मिलि' वृन्दावने वास कैला।
प्रभुर जे आज्ञा, दुँहे सब निर्वाहिला॥ २१७ ॥

२१७। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी एवं श्रीरूप गोस्वामी—इन दोनों भाईयों ने वृन्दावन में वास किया एवं श्रीमन्महाप्रभु ने जो आज्ञा दी थी, दोनों ने सम्पूर्णरूप से उस आज्ञा का पालन किया।

अनुभाष्य

२१७-२३१। मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ३१-४५ वीं संख्या और अनुभाष्य एवं भक्तिरत्नाकर प्रथम तरङ्ग द्रष्टव्य।

नानाशास्त्र-आनि' लुप्त-तीर्थ उद्धारिला ।
वृन्दावने कृष्णसेवा प्रकाश करिला॥ २१८ ॥

२१८। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीरूप गोस्वामी ने बहुत से शास्त्रों को एकत्रित करके उन्हीं के आधार पर लुप्त तीर्थों का उद्धार किया तथा वृन्दावन में कृष्ण की सेवा को प्रकाशित किया।

अनुभाष्य

२१८। नाना-शास्त्र,—भक्तिरत्नाकर ग्रन्थ में इन समस्त शास्त्रों की प्रमाणावली उद्धृत हुई है। वृन्दावन में श्रीरूप गोस्वामी ने श्रीगोविन्द की सेवा एवं श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमदनमोहन की सेवा को प्रकाशित किया।

श्रीसनातन द्वारा ग्रन्थ-रचना आदि कार्य—

सनातन ग्रन्थ कैला 'भागवतामृते'।
भक्त-भक्ति-कृष्ण-तत्त्व जानि जाहा हैते॥ २१९ ॥

२१९। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने बृहद्भागवतामृत नामक ग्रन्थ की रचना की, जिससे मुझे भक्त, भक्ति तथा कृष्णतत्त्व के विषय में जानकारी मिली है।

अनुभाष्य

२१९। भागवतामृत,—बृहद्भागवतामृत; मध्य- लीला के प्रथम परिच्छेद की ३५ वीं संख्या द्रष्टव्य।

सिद्धान्तसार ग्रन्थ कैला 'दशम-टिप्पणी'।
कृष्णलीलारस-प्रेम जाहा हैते जानि॥ २२० ॥

२२०। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने सिद्धान्त के सार-स्वरूप 'दशम-टिप्पणी' अर्थात् श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की टीका ग्रन्थ की रचना की, जिससे मुझे कृष्णलीला रस तथा प्रेम के विषय में जानकारी मिली है।

अनुभाष्य

२२०। दशम-टिप्पणी,—बृहद्वैष्णवतोषणी टीका।

'हरिभक्तिविलास'-ग्रन्थ कैला वैष्णव-आचार।
वैष्णवेर कर्त्तव्य जाँहा पाइये पार॥ २२१ ॥

२२१। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने वैष्णवों के आचरण से सम्बन्धित हरिभक्तिविलास नामक ग्रन्थ

की रचना की, जिससे वैष्णवों के कर्त्तव्यों को विस्तृत रूप में जाना जा सकता है।

अनुभाष्य

२२१। हरिभक्तिविलास,—इस ग्रन्थ का बाद में श्रीमद्गोपाल-भट्ट-गोस्वामिप्रभु ने श्रील सनातन- गोस्वामी प्रभु के द्वारा संगृहीत 'दिग्दर्शिनी-टीका' सहित सङ्कलन किया। कोई-कोई जिज्ञासा करते हैं कि कर्मी स्मार्त्तगणों ने 'हरिभक्तिविलास' में उद्धृत सात्वत शास्त्र समूह के मत को ग्रहण नहीं करके उन -उन शास्त्रों में से ही किस प्रकार अन्यमत की कल्पना की? उसका उत्तर यह है कि हरिभक्तिविलास का मत शास्त्र-सम्मत और अत्यधिक विशुद्ध होने पर भी कर्मी शुद्ध शास्त्रीय मत को त्याग करके केवलमात्र अपने-अपने प्राकृत-अशुद्ध विष्णुभक्ति विरोधी मत के प्रमाण को ही स्वीकार करते हैं; मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ३५ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

आर जत ग्रन्थ कैला, ताहा के करे गणन।
मदनगोपाल-गोविन्देर 'सेवा'-प्रकाशन॥ २२२ ॥

२२२। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने अन्य जिन-जिन ग्रन्थों की रचना की, उनकी गणना कौन कर सकता है। श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमदनगोपाल तथा श्रीरूप गोस्वामी ने श्रीगोविन्ददेव की सेवा को प्रकाशित किया।

अनुभाष्य

२१९-२२२। ''सनातन-गोस्वामी के चार ग्रन्थ'' (भक्तिरत्नाकर की-प्रथम तरङ्ग में)-(१) बृहद्-भागवतामृत, (२) हरिभक्तिविलास और उसकी 'दिग्दर्शिनी'-नामक टीका एवं (३) लीला-स्तव (४) भागवत दशम स्कन्ध की टिप्पणी ('वैष्णव- तोषणी'); मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ३५ वीं संख्या में कविराज-गोस्वामी का मत द्रष्टव्य है।

श्रीरूप का ग्रन्थ-रचना आदि कार्य—

रूप-गोसाञि कैला 'रसामृतसिन्धु' सार।
कृष्णभक्ति-रसेर जाँहा पाइये विस्तार॥ २२३ ॥

२२३। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने सारस्वरूप भक्तिरसामृतसिन्धु की रचना की, जिसमें कृष्णभक्ति रस का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है।

अनुभाष्य

२२३। रसामृतसिन्धु—भक्तिरसामृतसिन्धु; उज्ज्वलनीलमणि, विदग्धमाधव और ललितमाधव—मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ३८ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

'उज्ज्वलनीलमणि'-नाम ग्रन्थ कैल आर।
राधाकृष्ण-लीलारस ताँहा पाइये पार॥ २२४ ॥

२२४। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने उज्ज्वल-नीलमणि नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें राधा-कृष्ण की लीलाओं के रस का चूड़ान्त वर्णन मिलता है।

'विदग्ध-माधव','ललित-माधव',—नाटक युगल।
कृष्णलीला-रस ताँहा पाइये सकल॥ २२५ ॥

२२५। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने विदग्धमाधव तथा ललितमाधव नामक दो नाटकों की रचना भी की, जिनमें कृष्णलीला-रस सम्पूर्ण रूप से प्राप्त होता है।

'दानकेलिकौमुदी' आदि लक्षग्रन्थ कैला।
सेइ सब ग्रन्थे व्रजेर रस विचारिला॥ २२६ ॥

२२६। प० अनु०—श्रीरूप गोस्वामी ने दानकेलि-कौमुदी आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिनमें कुल मिलाकर एक लाख श्लोक हैं। श्रीरूप गोस्वामी ने उन समस्त ग्रन्थों में व्रज रस की ही विस्तृत व्याख्या की है।

अनुभाष्य

२२६। लक्षग्रन्थ,—श्रीरूप-रचित ग्रन्थ समूह में प्राय एक लाख श्लोक हैं; पद्य की संख्या के अलावा गद्य की गणना करने की भी प्रणाली है। लिपिकार अपने-अपने परिश्रम के परिमाण के निर्णय के समय गद्य और पद्य

के श्लोकग्रन्थ (अर्थात् श्लोकों) की संख्या की गणना करते है। कोई भ्रम में पड़कर ऐसा न सोचे कि श्रीरूप प्रभु ने एक लाख ग्रन्थों की रचना की थी। भक्ति-रत्नाकर की प्रथम तरङ्ग में—''श्रीरूप-गोस्वामी ग्रन्थ षोड़श करिल।''[अर्थात् श्रीरूप गोस्वमी ने सोलह ग्रन्थों की रचना की।] —आदि-लीला के दशम परिच्छेद की ८४ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

श्रीजीव का परिचय और ग्रन्थ-रचनादि-कार्य—

ताँर लघुभ्राता—श्रीवल्लभ-अनुपम।
ताँर पुत्र महापण्डित—श्रीजीव-नाम॥ २२७ ॥

२२७। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीरूप गोस्वामी के कनिष्ठ भ्राता श्रीवल्लभ अथवा अनुपम के पुत्र श्रीजीव गोस्वामी बहुत बड़े विद्वान थे।

सर्व त्यजि' तेंहो पाछे आइला वृन्दावन।
तेंह भक्तिशास्त्र बहु कैला प्रचारण॥ २२८ ॥

२२८। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी और श्रीरूप गोस्वामी के व्रज में आने के कुछ समय पश्चात् श्रीजीव गोस्वामी भी वृन्दावन में आये, उन्होंने भी बहुत से भक्तिशास्त्रों की रचना की।

'भागवत-सन्दर्भ'-नाम कैला ग्रन्थ-सार।
भागवत-सिद्धान्तेर ताँहा पाइये पार॥ २२९ ॥

२२९। प० अनु०—श्रीजीव गोस्वामी ने भागवत-सन्दर्भ नामक ग्रन्थों के सार की रचना की, उसमें श्रीमद्भागवत के सिद्धान्तों की पराकाष्ठा का वर्णन प्राप्त होता है।

अनुभाष्य

२२९। भागवत-सन्दर्भ,—दूसरा नाम—'षड्-सन्दर्भ'; मध्य-लीला के प्रथम परिच्छेद की ४३ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

'गोपाल-चम्पू' आर नाना ग्रन्थ कैला।
व्रज-प्रेम-लीला-रस-सार देखाइला॥ २३० ॥

२३०। प० अनु०—श्रीजीव गोस्वामी ने गोपालचम्पू तथा अन्य अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिसमें उन्होंने व्रज-प्रेम-लीला-रस के सार को प्रदर्शित किया।

'षट्सन्दर्भे' कृष्णप्रेम-तत्त्व प्रकाशिला।
चारिलक्ष ग्रन्थ तेंहो विस्तार करिला॥ २३१ ॥

२३१। प० अनु०—श्रीजीव गोस्वामी ने षट्सन्दर्भ में कृष्णप्रेमतत्त्व को प्रकाशित किया, इस प्रकार उन्होंने कुल मिलाकर चार लाख श्लोकों में इन समस्त तत्त्वों की व्याख्या की।

श्रीजीव गोस्वामी का पूर्व-वृत्तान्त; मथुरा जाने से पहले श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपा और आज्ञा की प्राप्ति—

जीव-गोसाञि गौड़ हैते मथुरा चलिला।
नित्यानन्दप्रभु-ठाञि आज्ञा मागिला॥ २३२ ॥

२३२। प० अनु०—श्रीजीव गोस्वामी जब गौड़देश से मथुरा की ओर चले थे, तब उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभु से आज्ञा माँगी थी।

प्रभु प्रीत्ये ताँर माथे धरिला चरण।
रूप-सनातन-सम्बन्धे कैला आलिङ्गन॥ २३३ ॥

२३३। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने प्रसन्न होकर श्रीजीव गोस्वामी के सिर पर अपने चरण रखे थे तथा श्रीरूप गोस्वामी और श्रीसनातन गोस्वामी के सम्बन्ध से उन्होंने श्रीजीव गोस्वामी को आलिङ्गन दान दिया था।

श्रीसनातन से युक्त श्रीरूपानुग गणों को ही वृन्दावन-वास का अधिकार-प्राप्त—

आज्ञा दिला,—''शीघ्र तुमि जाह वृन्दावने।
तोमार वंशे प्रभु दियाछेन सेइस्थाने॥" २३४ ॥

२३४। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीजीव गोस्वामी को आज्ञा दी—''तुम शीघ्र वृन्दावन चले जाओ, श्रीमन्महाप्रभु ने तुम्हारे वंश को वृन्दावन नामक स्थान ही प्रदान किया है।''

नित्यानन्दकृपा और आज्ञा-प्राप्ति के फलस्वरूप श्रीजीव का आचार्यत्व—

ताँर आज्ञाय आइला, आज्ञा-फल पाइला।
शास्त्र करि' कतकाल 'भक्ति' प्रचारिला॥ २३५॥

२३५। प० अनु०—श्रीजीव गोस्वामी श्रीनित्यानन्द प्रभु की आज्ञा लेकर वृन्दावन में आये तथा उन्हें उस आज्ञा के फल की प्राप्ति हुई, उन्होंने वृन्दावन में रहकर अनेक शास्त्रों की रचना करके बहुत समय तक भक्ति का प्रचार किया।

ग्रन्थकार के तीन शिक्षागुरु—

एइ तिन गुरु, आर रघुनाथदास।
इँहा-सबार चरण वन्दों, जाँर मुञि 'दास'॥ २३६॥

२३६। प० अनु०—मैं श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरूप गोस्वामी एवं श्रीजीव गोस्वामी, अपने इन तीन गुरूओं तथा श्रीरघुनाथदास गोस्वामी के चरणों की वन्दना करता हूँ, मैं इन सबका दास हूँ।

अनुभाष्य

२३६। एइ तिन गुरु (ये तीन गुरु),—(१) श्रीरूप, (२) श्रीसनातन और (३) श्रीजीव-गोस्वामी प्रभु ।

चतुर्थ परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

प्रभु और सनातन के मिलन के संवाद को सुनकर प्रभु के द्वारा दी गयी लोकशिक्षा के अभिप्राय का अनुभव—

एइ त' कहिलुँ पुनः सनातन-सङ्गमे।
प्रभुर आशय जानि जाहार श्रवणे॥ २३७॥

२३७। प० अनु०—इस प्रकार मैंने (श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने) श्रीमन्महाप्रभु से श्रीसनातन गोस्वामी के पुनः मिलन के विषय में बतलाया है, जिसके श्रवण से श्रीमन्महाप्रभु के हृद्गत अभिप्राय को जाना जा सकता है।

निरन्तर अनुशीलन रूप मन्थन के फल से चैतन्यचरितसिन्धु से कृष्ण-प्रीति रूपी अमृत की प्राप्ति—

चैतन्य चरित्र एइ—इक्षुदण्ड-सम।
चर्वण करिते हय रस-आस्वादन॥ २३८॥

२३८। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु का चरित्र गन्ने के समान है, इसका चर्वण करने से रस का आस्वादन होता है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ २३९॥

२३९। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे पुनः सनातनसङ्गोत्सवो नाम चतुर्थः परिच्छेदः।

❋❋❋

पञ्चम परिच्छेद

कथासार—श्रीहट्ट निवासी प्रद्युम्न मिश्र के द्वारा महाप्रभु से कृष्ण-कथा को श्रवण करने की इच्छा करने पर, प्रभु ने उन्हें राय रामानन्द के निकट भेजा। देवदासियों के साथ रामानन्द के व्यवहार के विषय में सुनकर प्रद्युम्न मिश्र वहाँ से लौट आये। बाद में महाप्रभु ने श्रीप्रद्युम्न मिश्र को रामानन्द के तत्त्व के विषय में भली-भाँति समझा दिया। मिश्र ने पुनः जाकर रामानन्द से तत्त्व-उपदेश ग्रहण किये। बङ्गदेशीय एक ब्राह्मण के द्वारा महाप्रभु की लीला के सम्बन्ध में एक नाटक की रचना करके लाने पर, [यद्यपि पहले] स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उसे श्रवण करके उसमें मायावाद रूपी दोष दिखला दिया, तथापि [बाद में]उस ब्राह्मण द्वारा रचित कविता का दूसरा अर्थ करके स्वरूप दामोदर ने उन्हें सन्तुष्ट किया; वह कवि चरितार्थ होकर सर्वस्व त्याग करके नीलाचल में वैष्णवों के आश्रय में रह गये।

(अः प्रः भाः)

भव रोग से ग्रस्त संसार रूपी समुद्र में पतित अचैतन्य जीवों का चैतन्य के चरणाश्रय में ही मङ्गल—

वैगुण्यकीट कलितः पैशुन्य-व्रणपीड़ितः।
दैन्यार्णवे निमग्नोऽहं चैतन्य-वैद्यमाश्रये॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। कर्म-विपाक रूपी कीट से डसा,[अन्यों के प्रति] हिंसा [करने वाली प्रवृत्ति]से पीड़ित और दैन्य रूपी समुद्र में निमग्न होने के कारण मैंने चैतन्यरूपी वैद्य का आश्रय किया है।

अनुभाष्य

१। वैगुण्यकीटकलितः (वैगुण्यं कर्म-विपाकः तद्रूपेण कीटेन कलितः दष्टः) पैशुन्यव्रणपीड़ितः (पैशुन्यं खलत्वं तद्रूपेण व्रणेन क्षतेन पीड़ितः) दैन्यार्णवे (दैन्य समुद्रे) निमग्नः अहं चैतन्यवैद्यं (महाप्रभुरूपं चिकित्सकम्) आश्रये (आश्रितोऽस्मि)।

जय जय शचीसुत श्रीकृष्णचैतन्य।
जय जय कृपामय नित्यानन्द धन्य॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीशचीनन्दन कृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। कृपामय तथा धन्य श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो, जय हो।

जयाद्वैत कृपासिन्धु जय भक्तगण।
जय स्वरूप, गदाधर, रूप सनातन॥ ३ ॥

३। प० अनु०—कृपा-सिन्धु श्रीअद्वैताचार्य प्रभु की जय हो, समस्त भक्तों की जय हो। श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीरूप गोस्वामी तथा श्रीसनातन गोस्वामी प्रभु की जय हो।

प्रभु और प्रद्युम्न मिश्र का संवाद; मिश्र के द्वारा प्रभु के निकट कृष्णकथा श्रवण करने के लिये दीनतापूर्वक प्रार्थना—

एकदिन प्रद्युम्न-मिश्र प्रभुर चरणे।
दण्डवत् करि' किछु करे निवेदने॥ ४ ॥

४। प० अनु०—एकदिन श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में दण्डवत् करके उनसे निवेदन किया—।

''शुन, प्रभु, मुञि दीन गृहस्थ अधम!
कोन भाग्ये पाञाछों तोमार दुर्लभ चरण॥ ५ ॥

५। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! मैं एक दीन-हीन अधम गृहस्थ हूँ! मुझे किसी सौभाग्य से आपके दुर्लभ चरणों की प्राप्ति हुई है।

कृष्णकथा शुनिवारे मोर इच्छा हय।
कृष्णकथा कह मोरे हञा सदय॥'' ६ ॥

६। प० अनु०—''मेरी कृष्णकथा को सुनने की इच्छा होती है, आप दया करके मुझे कृष्णकथा सुनाइए।''

प्रभु के द्वारा कृष्णकथा नहीं जानने का छल, शौक्र विप्र कुल में आविर्भूत मिश्र को अशौक्र विप्र कुल में आविर्भूत चारों वर्णों और आश्रमों के गुरु रामानन्द के समीप सेवा भावना से युक्त शिष्य के रूप में अभिगमन करने की आज्ञा—

प्रभु कहेन,—''कृष्णकथा आमि नाहि जानि।
सबे रामानन्द जाने, ताँर मुखे शुनि॥ ७ ॥

७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैं कृष्णकथा के विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ, उसे एकमात्र रामानन्द राय ही जानता है, मैं स्वयं भी उसी के मुख से कृष्णकथा श्रवण करता हूँ।

अमृतप्रवाह भाष्य

७। प्रभु कहेन,—महाप्रभु ने कहा।

कृष्णकथा को श्रवण करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के सौभाग्य की प्रशंसा—

भाग्ये तोमार कृष्णकथा शुनिते हय मन।
रामानन्द-पाश जाइ' करह श्रवण॥ ८ ॥

८। प० अनु०—''हे प्रद्युम्न मिश्र! तुम परम सौभाग्यशाली हो जो तुम्हारे मन में कृष्णकथा सुनने की इच्छा हो रही है, तुम रामानन्द राय के पास जाकर कृष्णकथा श्रवण करो।

वास्तविक सौभाग्यवान् व्यक्ति की परिभाषा का निर्देश—

कृष्णकथाय रुचि तोमार—बड़ भाग्यवान्।
जार कृष्णकथाय रुचि, सेइ भाग्यवान्॥ ९ ॥

९। प० अनु०—''हे प्रद्युम्न मिश्र! कृष्णकथा में रुचि होने के कारण तुम बहुत भाग्यवान् हो। वास्तव में जिसकी कृष्णकथा में रुचि है, वही भाग्यशाली है।

साध्यभक्ति कृष्णरति के बिना वैध-धर्म का आचरण निष्फल—श्रीमद्भागवत (१.२.८) में—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥'' १०॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१०। व्यक्ति के द्वारा उत्तम रूप से अनुष्ठित वर्णाश्रम धर्म यदि कृष्णकथा में रति उत्पन्न नहीं करे, तब वह धर्म भी श्रम मात्र ही है।

अनुभाष्य

१०। शौनक आदि ऋषियों ने श्रीशुकदेव के शिष्य श्रीसूत के निकट श्रीमद्भागवत-श्रवण के प्रारम्भ में जो छह प्रश्न किये, उनमें से ''मनुष्य का एकान्तिक श्रेयः (वास्तविक मङ्गल) क्या है?''—इस प्रथम प्रश्न के उत्तर में श्रीसूत गोस्वामी अधोक्षज भजन की कर्त्तव्यता के वर्णन के प्रसङ्ग में वैध धर्म (वैधी भक्ति) की सार्थकता की प्राप्ति के उपाय के विषय में बतला रहे हैं—

पुंसां (नराणां) यः स्वनुष्ठितः (सुष्ठु सम्पादित धर्मः दैववर्णाश्रमपालनादिः साधनभक्तिरूपः सन् अपि) यदि विष्वक्सेनकथासु (विष्वक्सेनस्य भगवतः भागवतस्य च कथासु तन्नामरूपगुणलीलाकीर्त्तनादिषु) रतिं (रुचिं) न उत्पादयेत् (न जनयेत्, तर्हि सः स्व-धर्मः) केवलं (कार्त्स्न्येन) हि (निश्चितम्) श्रमः एव (पण्डश्रमः निष्फलः, तस्य धर्मस्य किञ्चिदपि साफल्यं नास्ति, निश्चितं स व्यर्थः भवतीत्यर्थः—(भाः ३.२३.५६) ''नेह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते। न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥'' इति वचनात्)[अर्थात् इस संसार में जिस पुरुष के कार्य धर्म-अर्थ-कामरूप धर्म की ओर उन्मुख होकर नहीं किये जाते, जिसका धर्म निष्काम होकर कृष्ण के अतिरिक्त अन्यान्य विषयों से

वैराग्य उत्पन्न नहीं करता और जिसका वैराग्य तीर्थपद श्रीहरि की सेवा में पर्यवसित नहीं होता, वह व्यक्ति जीवित होनेपर भी मृत ही है]।

श्रीराधा-गोविन्द की साक्षात् सेवा में भली-भाँति रत रामानन्द के घर पर प्रद्युम्न मिश्र का गमन, राय के सेवक के द्वारा उनका आदर पूर्वक स्वागत—

तबे प्रद्युम्न-मिश्र गेला रामानन्देर स्थाने।
रायेर सेवक ताँरे बसाइल आसने॥ ११ ॥

११। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के आदेशानुसार श्रीप्रद्युम्न मिश्र श्रीरामानन्द राय के वासस्थान पर गये। श्रीरामानन्द राय के सेवक ने श्रीप्रद्युम्न मिश्र को आसन पर बैठाया।

मिश्र के द्वारा जिज्ञासा किये जाने पर, सेवक के द्वारा महाभागवत परमहंस आत्माराम राय के कृत्य का वर्णन—

रायेर दर्शन ना पाञा सेवके पुछिल।
रायेर वृत्तान्त सेवक कहिते लागिल॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने श्रीरामानन्द राय को नहीं देखकर उनके सेवक से श्रीरामानन्द राय के विषय में पूछा। सेवक श्रीरामानन्द राय के विषय में बतलाते हुए कहने लगा—।

''दुइ देव-कन्या हय परम-सुन्दरी।
नृत्य-गीते सुनिपुणा, वयसे किशोरी॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—''दो देवकन्याएँ (देवदासियाँ) जो परम सुन्दर हैं, नृत्य-गीत में सुनिपुण तथा आयु के अनुसार किशोरियाँ हैं।

सेइ दुँहे लञा राय निभृत उद्याने।
निज-नाटक-गीतेर शिखाय नर्त्तने॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—''उन्हीं दोनों देवकन्याओं को एकान्त उद्यान में ले जाकर श्रीरामानन्द राय स्वरचित नाटक के गीत पर उन्हें किस प्रकार से नृत्य करना है, उसी की शिक्षा दे रहे हैं।

अनुभाष्य

१४। निज-नाटक—श्रीरामानन्दराय-रचित संस्कृत भाषा में लिखित 'जगन्नाथवल्लभ'-नाटक।

मिश्र को थोड़ी देर बैठने के लिये प्रार्थना—

तुमि इँहा बसि' रह, क्षणेके आसिबेन।
ताँरे जेइ आज्ञा देह, सेइ करिबेन॥'' १५ ॥

१५। प० अनु०—''आप यहीं पर बैठे रहिए, वे अभी आ जायेंगे। आप उन्हें जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, वे वही कार्य करेंगे।''

मिश्र के द्वारा प्रतीक्षा—

तबे प्रद्युम्न-मिश्र ताँहा रहिल बसिया।
रामानन्द निभृते सेइ दुइ-जन लञा॥ १६ ॥

आत्माराम रामानन्द के द्वारा श्रीराधा की साक्षात् चिन्मयी सेवा—

स्वहस्ते करेन तार अभ्यङ्ग-मर्द्दन।
स्वहस्ते करान स्नान, गात्र-संमार्जन॥ १७ ॥

१६-१७। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय के सेवक की बात सुनकर श्रीप्रद्युम्न मिश्र वहीं पर बैठे रहे। दूसरी ओर, श्रीरामानन्द राय उन दोनों देवदासियों को एकान्त उद्यान में ले जाकर अपने हाथों से उन दोनों की तेल से मालिश कर रहे थे तथा अपने हाथों से ही उन्हें स्नान करा रहे थे तथा उनके अङ्गों का अत्यधिक लग्नपूर्वक मार्जन कर रहे थे।

अनुभाष्य

१७। अभ्यङ्ग-मर्द्दन,—तेल की मालिश।

स्वहस्ते परान वस्त्र, सर्वाङ्ग मण्डन।
तबु निर्विकार राय-रामानन्देर मन॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय अपने हाथों से ही उन देवदासियों को वस्त्र पहना रहे थे तथा उनके समस्त अङ्गों को अलङ्कार आदि द्वारा मण्डित (विभूषित) कर रहे थे। उपरोक्त समस्त क्रियाएँ करने पर भी श्रीरामानन्द

राय का मन सम्पूर्ण रूप से विकार रहित था।

अनुभाष्य

१८। मण्डन,—अलङ्कार आदि के द्वारा विभूषित करना; निर्विकार,—अपनी इन्द्रियों के तर्पण के उद्देश्य से सर्वत्र अधोक्षज श्रीराधा-कृष्ण द्रष्टा, (मध्य-लीला के अष्टम परिच्छेद की २७३, २७४ और २७६ वीं संख्या द्रष्टव्य) परमहंसकुलचूड़ामणि विद्वत् (अर्थात् स्वाभाविक सन्यासी अथवा वेश के अधीन नहीं हैं जो ऐसे) सन्यासियों के भी गुरु रामानन्द प्रभु स्त्री-दर्शन आदि के द्वारा जागतिक पुरुषाभिमानी व्यक्तियों की भाँति जड़ीय भोग परायण होकर कायिक अथवा मानसिक विकार के वशीभूत नहीं हुए।

जड़ीय भोगों से मुक्त विद्वत्-सन्यासी शिरोमणि, छह प्रकार के वेगों को जीतने वाले श्रीरामानन्द-गोस्वामी का स्वभाव—

काष्ठ-पाषाण-स्पर्शे हय जैछे भाव।
तरुणी-स्पर्शे रामानन्देर तैछे 'स्वभाव'॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—लकड़ी तथा पत्थर आदि को स्पर्श करने पर जैसा भाव होता है, युवती कन्याओं के स्पर्श करने पर श्रीरामानन्द राय का भी स्वभावतः वैसा ही भाव था।

अपनी अप्राकृत चिदानन्दमय सिद्धदेह में गोपीभाव से रागात्मिका भक्ति का पालन करने वाले महाभागवत राय का अपनी ईश्वरी श्रीराधा का अप्राकृत चित्-विलास रूपी कैङ्कर्य (दासी बनकर सेवा करना)—

सेव्य-बुद्धि आरोपिया करेन सेवन।
स्वाभाविक दासीभाव करेन आरोपण॥ २० ॥

२०। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय उन देवदासियों के प्रति सेव्य-बुद्धि के भाव को ग्रहण करके उनकी सेवा कर रहे थे तथा स्वयं के प्रति स्वाभाविक दासी भाव को ग्रहण कर रहे थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

२०। राय रामानन्द ने 'जगन्नाथवल्लभ' नामक एक नाटक की रचना की थी। वे उस नाटक को श्रीजगन्नाथदेव के निकट अभिनय कराने के लिये दो देवकन्याओं अर्थात् नवीन देवदासियों को (जिन्हें अब 'माहारी' कहते हैं, उन्हें) लाकर उस नाटक के अभिनय-योग्य गोपीभाव की शिक्षा दे रहे थे। वे दो कन्याएँ प्रधान गोपियों की लीला का अभिनय करेंगी, इसलिए उन्हें प्रधान गोपियों के रूप में सेव्य-बुद्धि करके स्वयं उनकी अनुगत दासी का भाव ग्रहण करके भावी अभिनय के गीत-सेवा आदि की शिक्षा दे रहे थे। श्रीरामानन्द स्वयं को श्रीमती की दासी जानकर श्रीमती का अभिनय करने वाली देवदासी के प्रति सेव्यबुद्धि को ग्रहण करके उनकी देह का संस्कार और मण्डन आदि कर रहे थे।

गौरभक्तों का अचिन्त्य माहात्म्य, उनमें से श्रीराय में भाव-प्रेम-भक्ति की चरम सीमा विद्यमान—

महाप्रभुर भक्तगणेर दुर्गम महिमा।
ताहे रामानन्देर भाव—भक्ति-प्रेम-सीमा॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों की महिमा को जानना अत्यन्त दुर्गम अर्थात् कठिन है, उस पर, श्रीरामानन्द राय का भाव तो प्रेमभक्ति की भी चरम सीमा है।

श्रीजगन्नाथ के सामने स्वरचित 'जगन्नाथवल्लभ'-नाटक के अभिनय हेतु जगन्नाथवल्लभ उद्यान में अभिनय की शिक्षा-प्रदान—

तबे सेइ दुइजने नृत्य शिखाइला।
गीतेर गूढ़ अर्थ अभिनय कराइला॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने उन दोनों देवकन्याओं को नृत्य सिखलाया तथा स्वरचित गीत के गूढ़ अर्थ के अनुरूप अभिनय कराया।

अनुभाष्य

२२। नाटक में लिखित गीत के अन्तर्निहित भावों को अभिनय करने वाली देवदासियों के द्वारा अप्राकृत

व्रजरस के रसिक के निकट सुष्ठु रूप से प्रकाशित करना सिखलाया।

सञ्चारी, सात्विक, स्थायि-भावेर लक्षण।
मुखे-नेत्रे अभिनय करे प्रकटन॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने उन दोनों को सञ्चारी, सात्विक तथा स्थायी भाव के लक्षणों को अपने मुख एवं नेत्रों के अभिनय के द्वारा व्यक्त करना सिखाया।

भावप्रकटन-लास्य राय जे शिखाय।
जगन्नाथेर आगे दुँहे प्रकट देखाय॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय उन दोनों देवकन्याओं को भाव प्रकाश करने वाले स्त्री-नृत्य के विषय में जो कुछ भी सिखलाते, वे दोनों देवकन्याएँ उसे भगवान् श्रीजगन्नाथ के समक्ष प्रकटित करके दिखलाती।

अनुभाष्य

२४। भावप्रकटनलास्य,—भावप्रकाश करने वाला स्त्री का नृत्य।

भोजन-सम्पादन के बाद दोनों देवदासियों को अज्ञ (मूर्ख) अक्षज-द्रष्टा रूपी समालोचकों के मङ्गल के उद्देश्य से गुप्त रूप में घर में भेजना—

तबे सेइ दुइजने प्रसाद खाउयाइला।
निभृते दुँहारे निज-घरे पाठाइला॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—तदुपरान्त श्रीरामानन्द राय ने उन दोनों को प्रसाद पवाया तथा उन्हें गुप्त रूप से उनके घर भेजा।

महाभागवत राय के द्वारा सिद्धदेह में अपनी ईश्वरी की सेवा-चेष्टा, तर्कपन्थी जीवों के अक्षजज्ञान के द्वारा उसे जानना-समझना असम्भव—

प्रतिदिन राय ऐछे कराय साधन।
कोन् जाने क्षुद्र जीव काँहा ताँर मन?? २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय प्रतिदिन उन देवदासियों को इसी प्रकार की शिक्षा प्रदान करते थे, कोई भी क्षुद्र जीव किस प्रकार जान सकता है कि श्रीराय रामानन्द का मन कहाँ रहता था?

अनुभाष्य

२६। [श्रीरामानन्द राय] प्रतिदिन ही देवदासियों को इस प्रकार के अप्राकृत अभिनय का साधन करने की शिक्षा देते थे। क्षुद्र जागतिक बुद्धि वाले विषयी, इन्द्रिय-तर्पण में रत मनुष्य अपने अचित्-भोग-परायण मन के द्वारा प्रभु रामानन्द के कृष्ण-सेवा-परायण अलौकिक अप्राकृत-शुद्ध-सत्त्व-रूप मन के राज्य का निर्णय करने में [अर्थात् उनके मन की वास्तविक स्थिति को समझने में] समर्थ नहीं होते।

दास के मुख से मिश्र के आगमन के विषय में श्रवण करके मानद (सम्मान प्रदान करने वाले) राय का सभागृह में आगमन—

मिश्रेर आगमन राये सेवक कहिला।
शीघ्र रामानन्द तबे सभाते आइला॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय के सेवक ने उन्हें श्रीप्रद्युम्न मिश्र के आगमन के विषय में बतलाया। सेवक की बात सुनकर श्रीरामानन्द राय शीघ्र अपने सभागृह में आ गये।

अमानी (सम्मान की आशा नहीं रखने वाले) और मानद (सम्मान प्रदान करने वाले) राय के द्वारा मिश्र का यथोचित अभिनन्दन और दैन्य-ज्ञापन—

मिश्रेरे नमस्कार करे सम्मान करिया।
निवेदन करे किछु विनीत हञा॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने सम्मानपूर्वक श्रीप्रद्युम्न मिश्र को नमस्कार किया तथा विनीत होकर निवेदन किया—।

''बहुक्षण आइला, मोरे केह ना कहिल।
तोमार चरणे मोर अपराध हइल॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—''हे प्रद्युम्न मिश्र! आप बहुत देर से आये हुए हैं, किन्तु मुझे इस विषय में किसी ने कुछ

भी नहीं बतलाया। इससे मेरा आपके चरणों में अपराध हुआ है।

तोमार आगमने मोर पवित्र हैल घर।
आज्ञा कर, क्या करों तोमार किङ्कर॥'' ३०॥

३०। प० अनु०—''आपके आगमन से मेरा घर पवित्र हो गया है। आपका यह दास आपके लिये क्या करे, कृपया आज्ञा प्रदान कीजिए।''

मिश्र का सविनय प्रत्युत्तर-प्रदान—

मिश्र कहे,—" तोमा देखिते हैल आगमने।
आपना पवित्र कैलुँ तोमार दरशने॥" ३१॥

३१। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने उत्तर दिया,—''मैं आपके दर्शन करने के लिये ही यहाँ आया हूँ। मैंने आपके दर्शन से स्वयं को पवित्र किया है।''

असमय देखकर उस दिन मिश्र का घर पर लौट आना—

अतिकाल देखि' मिश्र किछु ना कहिल।
विदाय हइया मिश्र निजघर गेल॥ ३२॥

३२। प० अनु०—बहुत समय हो गया है, ऐसा देखकर श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने अन्य कुछ भी नहीं कहा, श्रीरामानन्द राय से विदायी लेकर वे अपने वासस्थान पर लौट गये।

अनुभाष्य

३२।अतिकाल,—बातचीत करने का समय बीत गया है अर्थात् असमय में वार्त्तालाप के आरम्भ होने से दोनों के लिये ही असुविधा होगी।

अन्य दिन मिश्र से प्रभु के द्वारा राय के निकट कृष्णकथा की प्राप्ति के विषय में जिज्ञासा—

आर दिन मिश्र आइल प्रभु विद्यमाने।
प्रभु कहे—" कृष्णकथा शुनिला रायस्थाने??" ३३॥

३३। प० अनु०—अन्य दिन जब श्रीप्रद्युम्न मिश्र श्रीमन्महाप्रभु से आकर मिले, तब श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे पूछा—''क्या आपने रामानन्द राय से कृष्णकथा सुनी?''

प्रभु के निकट मिश्र द्वारा श्रीराय के वृत्तान्त का वर्णन—

तबे मिश्र रामानन्देर वृत्तान्त कहिला।
शुनि' महाप्रभु तबे कहिते लागिला॥ ३४॥

३४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की बात सुनकर श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने श्रीरामानन्द राय के वृत्तान्त को कह सुनाया, श्रीप्रद्युम्न मिश्र की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु उनसे कहने लगे—।

अमानि-धर्म (स्वयं सम्मान की आशा नहीं रखने वाले) के आदर्श-शिक्षक भगवान् का दीनतापूर्वक अपनी अपेक्षा अपने भक्तों के अत्यधिक कृष्णानुराग के माहात्म्य का कीर्त्तन—

''आमि त' सन्यासी, आपनारे विरक्त करि' मानि।
दर्शन रहु दूरे, 'प्रकृतिर' नाम यदि शुनि॥ ३५॥
तबहिँ विकार पाय मोर तनु-मन।
प्रकृति-दर्शने स्थिर हय कोन् जन??'' ३६॥

३५-३६। प० अनु०—''मैं तो सन्यासी हूँ एवं स्वयं को वैरागी मानता हूँ। दर्शन की तो बात ही दूर, स्त्री का नाम श्रवण करने के साथ-ही-साथ मेरा तन तथा मन विकृत हो जाता है। स्त्री के दर्शन से कौन-सा व्यक्ति स्थिर रह सकता है?''

अनुभाष्य

३५। प्रकृति,—पुरुषभोग-योग्य 'योषित्' अथवा स्त्री।

इन्द्रियसुख की लालसा और स्त्री-दर्शन की प्रवृत्ति से रहित विरक्त विद्वत्-सन्यासी शिरोमणि अधोक्षज-द्रष्टा महाभागवत आत्माराम श्रीरामानन्द गोस्वामी के चरित्र का वर्णन—

रामानन्द-रायेर कथा शुन, सर्वजन।
कहिवार नहे, जाहा आश्चर्य-कथन॥ ३७॥

३७। प० अनु०—''सभी राय रामानन्द के विषय में श्रवण कीजिए, उनकी महिमा वास्तव में अकथनीय है, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है।

एके देवदासी, आर सुन्दरी तरुणी।
ताहादेर सब सेवा करेन आपनि॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—''रामानन्द राय द्वारा निभृत स्थान पर लेकर जायी जाने वाली कन्याएँ एक तो देवदासियाँ (अविवाहिता) हैं, उस पर भी अत्यन्त सुन्दर तथा युवतियाँ हैं और उस पर भी रामानन्द राय स्वयं उनकी समस्त प्रकार की सेवाएँ करते हैं।

अनुभाष्य

३८। सब सेवा,—सब प्रकार की सेवा (३९ वीं संख्या द्रष्टव्य)।

स्नानादि कराय, पराय वास-विभूषण।
गुह्य अङ्ग जत, तार दर्शन-स्पर्शन॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—''रामानन्द राय स्वयं उन देवदासियों को स्नान आदि कराते हैं, उन्हें वस्त्र-आभूषण आदि से विभूषित करते हैं। ऐसा करते समय उनका देवदासियों के गुप्त अङ्गों का दर्शन तथा स्पर्श करना भी होता है।

तबु निर्विकार राय-रामानन्देर मन।
नाना भावोद्‌गम तारे कराय शिक्षण॥ ४० ॥

४०। प० अनु०—''इतना होने पर भी रामानन्द राय के मन में कोई भी विकार उत्पन्न नहीं होता, रामानन्द राय उन देवदासियों को अनेक प्रकार के भावों को प्रकाशित करने की शिक्षा प्रदान करते हैं।

अनुभाष्य

४०। नाना भावोद्‌गम,—कृष्णलीला के अभिनय के उपयोगी तैंतीस प्रकार के भावों का प्रकाश।

निर्विकार देह-मन—काष्ठ-पाषाण सम!
आश्चर्य,—तरुणी-स्पर्शे निर्विकार मन॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—''इतना सब करने पर भी रामानन्द राय का शरीर तथा मन—लकड़ी तथा पत्थर के समान विकार रहित है। कैसे आश्चर्य की बात है कि युवती कन्याओं का स्पर्श करने पर भी उनका मन निर्विकार रहता है।

अनुभाष्य

४१। वृद्धि रूपी धर्म से रहित अचेतन काष्ठ (लकड़ी) एवं द्रव-धर्म (द्रवीभूत होने) से रहित कठोर पत्थर की भाँति रामानन्द के शरीर एवं मन में विकार उत्पन्न नहीं होता।

फल के द्वारा कारण का अनुमान; गुणातीत शुद्धसत्त्व चिद्‌वस्तु का प्राकृत गुण के स्पर्श-रहित होने के कारण रामानन्द—अप्राकृत चिदानन्द शरीर वाले—

एक रामानन्देर हय एइ अधिकार।
ताते जानि अप्राकृत-देह ताँहार॥ ४२ ॥

४२। प० अनु०—''एकमात्र रामानन्द राय का ऐसा अधिकार(योग्यता) है, इसी से ही पता चलता है कि रामानन्द राय का शरीर अप्राकृत है।

अधोक्षज भक्त की चित्तवृत्ति—अक्षजज्ञान से अतीत—

ताँहार मनेर भाव तेंह जाने मात्र।
ताहा जानिवारे आर द्वितीय नाहि पात्र॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—''एकमात्र रामानन्द राय ही अपने मन के भावों को जानते हैं, उनके मन के भावों को जानने वाला दूसरा कोई पात्र (व्यक्ति) नहीं है।

अमल शब्द प्रमाण श्रीभागवत के आनुगत्य में ही अनुमान की सार्थकता; श्रीराय की अप्राकृत चित्तवृत्ति हेतु निर्देश रूपी सिद्धान्त—

किन्तु शास्त्रदृष्ट्ये करि एक अनुमान।
श्रीभागवत-शास्त्र—ताहाते प्रमाण॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—''किन्तु शास्त्रों के निर्देशानुसार मैं एक अनुमान कर रहा हूँ तथा उसका प्रमाण श्रीमद्भागवत शास्त्र है।

अप्राकृत श्रद्धा अथवा रागानुगा भक्ति का पालन करने वाले को कृष्णलीला के श्रवण और कीर्त्तन के फल से सिद्धि

अथवा गोस्वामित्व की प्राप्ति–

व्रजवधु-सङ्गे कृष्णेर रासादि-विलास।
जेइ जन कहे, शुने करिया विश्वास॥ ४५ ॥
हृदरोग-काम ताँर तत्काले हय क्षय।
तिनगुण-क्षोभ नहे, 'महाधीर' हय॥ ४६ ॥

४५-४६। प० अनु०—''जो भी व्यक्ति व्रजगोपियों के साथ श्रीकृष्ण के रास आदि विलास का विश्वास के साथ श्रवण करता है, उसके हृदय में विराजित काम तत्काल क्षय हो जाता है, उसमें सत, रज और तमोगुण से उत्पन्न होने वाले क्षोभ (विकार) नहीं रहते तथा वह व्यक्ति अत्यन्त धीर बन जाता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

४६। तीन गुण,—सत्त्व, रजः और तमः, —इन तीन गुणों द्वारा लुब्ध होने से जो स्त्री और पुरुष के व्यवहार की इच्छा होती है, ऐसी इच्छा उसमें नहीं रहती।

अनुभाष्य

४५-४६। जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण की अप्राकृत रास आदि मधुर लीला का अपने अप्राकृत हृदय के द्वारा विश्वास करके वर्णन करते हैं अथवा उसका श्रवण करते हैं, उनका लौकिक मन के द्वारा सृजित काम सम्पूर्ण रूप से क्षीण हो जाता है। अप्राकृत कृष्णलीला के वक्ता अथवा श्रोता अप्राकृत राज्य में अपने अस्तित्व का अनुभव करते हैं, जिसके फलस्वरूप प्रकृति के तीन गुण उन्हें पराजित करने में समर्थ नहीं होते। वे जड़ वस्तुओं में परम निर्गुण भाव से युक्त होकर अचञ्चल मति एवं कृष्ण की सेवा में अपना अधिकार समझने में समर्थ होते हैं। प्राकृत सहजियाओं की भाँति इस प्रसङ्ग में कोई इस प्रकार नहीं समझे कि, ''प्राकृत काम से लुब्ध जीव यदि सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर प्राकृत बुद्धि से युक्त होकर अपने भोगमय राज्य में वास करते हुए, साधन भक्ति का परित्याग करके कृष्ण के रासादि अप्राकृत विहार अथवा लीला को अपने जैसे प्राकृत-भोग का आदर्श जानकर, उसका श्रवण और कीर्त्तन आदि करे तो उनसे उसका जड़ीय काम विनष्ट हो जायेगा।'' इसका निषेध करने के लिये ही महाप्रभु ने 'विश्वास'-शब्द के द्वारा प्राकृत सहजियाओं की प्राकृत बुद्धि का निरसन (खण्डन) किया है। श्रीशुक ने भी (भाः १०.३३.३० श्लोक में) कहा है,—''नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः। विनश्यत्याचरन् मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषम्॥'' [अर्थात् सामर्थ्यहीन अनधिकारी व्यक्ति कदापि मन के द्वारा भी ऐसी अप्राकृत लीला का अनुकरण न करें। रुद्र के अतिरिक्त अन्य कोई समुद्र से उत्पन्न विष का भक्षण करके जिस प्रकार विनाश को प्राप्त करता है, उसी प्रकार मूढ़ता वशतः अप्राकृत लीला का अनुकरण करने से अवश्य ही विनाश हो जाता है।]

कृष्णलीला के श्रवण और कीर्त्तन से कृष्ण-प्रेम रूपी आनन्द के सागर की वृद्धि–

उज्ज्वल मधुर-रस प्रेमभक्ति पाय।
आनन्दे कृष्णमाधुर्ये विहरे सदाय॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—''कृष्णलीला के श्रवण और कीर्त्तन से भक्त को उज्ज्वल मधुर-रस रूपी प्रेमभक्ति की प्राप्ति होती है तथा वह सदैव आनन्दपूर्वक कृष्ण के माधुर्य में ही विहार करता है।

भागवत-शास्त्र-प्रमाण—श्रीमद्भागवत (१०.३३.३९) में–

विक्रीड़ितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥ ४८ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

४८। ''जो अप्राकृत श्रद्धा से युक्त होकर इस रासपञ्चाध्याय में व्रजवधुओं के साथ कृष्ण के अप्राकृत लीला-वर्णन को सुनता अथवा वर्णन करता है, वही धीर पुरुष भगवान् में यथेष्ट (अत्यधिक) परा-भक्ति प्राप्त करके हृदयरोग रूपी जड़ीय काम को शीघ्र ही दूर करता है। तात्पर्य यह है कि, कृष्णलीला—सम्पूर्णतः 'चिन्मय'

है। चिन्मयी गोपियों के साथ पूर्ण चिन्मय (अधोक्षज) कृष्ण की लीला श्रद्धापूर्वक अर्थात् चिन्मय तत्त्व की उपलब्धि करने के प्रयत्न सहित आलोचना (चर्चा) करते-करते चिद्-प्रेम के उदित होने के परिमाणानुसार जड़ीय आसक्ति एवं जड़ीय काम आदि दूर होते रहते हैं; सम्पूर्ण चिन्मय लीला के उदित होने पर फिर जड़ीय काम की लेशमात्र गन्ध भी नहीं रहती।

अनुभाष्य

४८। यः पुमान् श्रद्धान्वितः (श्रद्धया अप्राकृत सुदृढ़ विश्वासेन युक्तः सेवोन्मुखः सन्) व्रजवधूभिः (गोपीभिः सह) विष्णोः (नन्दनन्दनस्य परमस्य विभोः) इदं (पूर्वोक्तरासपञ्चाध्यायोक्तं) च विक्रीड़ितं (रासाख्यां विशिष्टां क्रीडां) अनुशृणुयात् (अनु निरन्तरं गुरुमुखात् प्राकृतव्यवधानराहित्येन शृणुयात्) अथ (अनन्तरं) वर्णयेत् (रूपानुगक्रमपथेन कृष्णनाम रूप गुण लीलादिकं सङ्कीर्त्तनं कुर्यात् सः) धीरः (षड्वेगजयी अचञ्चलः रागानुगः गोस्वामी) अचिरेण भगवति (कृष्णे) परां भक्तिम् (उत्कृष्टां प्रेमभक्तिं) प्रतिलभ्य (प्राप्य) हृद्रोगं (मनोभवकामरूपाधिम्) आशु (शीघ्रम्) अपहिनोति (दूरीकरोति)।

रागानुगों की निरन्तर कृष्णलीला के अनुशीलन से स्वरूपसिद्धि तथा चिदानन्द शरीर को प्राप्त करना—

जे शुने, जे पड़े, ताँर फल एतादृशी।
सेइ भावाविष्ट, जेइ सेवे अहर्निशि॥ ४९ ॥
ताँर फल कि कहिमु, कहने ना जाय।
नित्यसिद्ध सेइ, प्राय-सिद्ध ताँर काय॥ ५० ॥

४९-५०। प० अनु०—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

अनुभाष्य

४९-५०। जो श्रीकृष्ण के अप्राकृत रास आदि विलास का श्रवण और कीर्त्तन करता है एवं श्रीरूप के अप्राकृत भावानुसार सर्वक्षण ही शुद्ध अकृत्रिम (वास्तविक) राग में आविष्ट होकर मानस में कृष्ण सेवा करता है, उसके अपूर्व फल की प्राप्ति लौकिक भाषा के द्वारा वर्णन नहीं की जा सकती। वह नित्यसिद्ध पार्षद है, अथवा उसका सिद्धप्राय शरीर लोगों के समक्ष दिखलायी देने पर भी वह स्वरूप सिद्धि के क्रम से कृष्ण सेवन परायण भाव समूह के अधिष्ठान हेतु अप्राकृत चेष्टा से युक्त है। कृष्ण की इच्छा से वस्तु सिद्धि की अपेक्षा करने वाला उसका शरीर सिद्धप्राय और अप्राकृत है।

रागात्मिका-भक्ति का पालन करने वाले नित्यसिद्ध श्रीराय—

रागानुग-मार्गे जानि रायेर भजन।
सिद्धदेह-तुल्य, ताते 'प्राकृत' नहे मन॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—''रामानन्द राय का भजन रागानुग-मार्गीय है, वे सिद्धदेह प्राप्त व्यक्ति के समान हैं, इसी कारण उनका मन प्राकृत नहीं है।

कृष्णेन्द्रिय प्रीतिचेष्टामयी कृष्णतत्त्व विद्या ही गुरुत्व का उदाहरण है, शौक्र आभिजात्य नहीं—

आमिह रायेर स्थाने शुनि कृष्णकथा।
शुनिते इच्छा हय यदि, पुनः जाह तथा॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—''मैं स्वयं भी रामानन्द राय से कृष्णकथा श्रवण करता हूँ, यदि तुम्हारी कृष्णकथा सुनने की अभिलाषा हो तो पुनः उन्हीं के पास जाओ।

प्रभु द्वारा मिश्र को राय के समीप शिष्यत्व प्राप्त करने के लिये पुनः प्रेरण—

मोर नाम कहिह—'तेंहो पाठाइला मोरे।
तोमार स्थाने कृष्णकथा शुनिवार तरे॥' ५३ ॥

५३। प० अनु०—''हे प्रद्युम्न मिश्र! तुम रामानन्द राय के पास जाकर मेरा नाम लेना, कहना कि मैंने तुम्हें उनके पास कृष्णकथा सुनने के लिये भेजा है।

शीघ्र जाह, यावत् तेंहो आछेन सभाते।"
एत शुनि' प्रद्युम्न-मिश्र चलिला त्वरिते॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०— ''जब तक रामानन्द राय सभा में है, उसी बीच तुम शीघ्र ही चले जाओ।" श्रीमन्महाप्रभु

के मुख से ऐसा सुनकर श्रीप्रद्युम्न मिश्र शीघ्रतापूर्वक चल पड़े।

मिश्र का राय के घर में जाना, अमानी और मानद राय के द्वारा मिश्र का अभिनन्दन—

राय-पाश गेल, राय प्रणति करिल।
''आज्ञा-कर, जे लागि' आगमन हैल॥'' ५५ ॥

५५। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र श्रीरामानन्द राय के पास पहुँचे, श्रीरामानन्द राय ने उन्हें प्रणाम किया एवं कहा—''आपका जिस उद्देश्य से यहाँ आगमन हुआ है, कृपया आज्ञा कीजिए।''

मिश्र के द्वारा प्रभु का परिचय प्रदान—

मिश्र कहे,—''महाप्रभु पाठाइला मोरे।
तोमार स्थाने कृष्णकथा शुनिवार तरे॥'' ५६ ॥

५६। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने कहा,—''हे रामानन्द राय! मुझे श्रीमन्महाप्रभु ने कृष्णकथा सुनने के लिये आपके पास भेजा है।''

राय का आनन्द—

शुनि' रामानन्द मने हइला सन्तोषे।
कहिते लागिला किछु मनेर हरिषे॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र की बात सुनकर श्रीरामानन्द राय मन-ही-मन बहुत सन्तुष्ट हुए, वे अत्यधिक प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—।

प्रभु की आदेश-वाणी के श्रवण से राय के द्वारा अपने सौभाग्य का वर्णन—

''प्रभुर आज्ञाय कृष्णकथा शुनिते आइला एथा।
इहा वइ महाभाग्य आमि पाब कोथा??'' ५८ ॥

५८। प० अनु०—''हे प्रद्युम्न मिश्र! आप श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा से कृष्णकथा सुनने के लिये यहाँ पर आये हैं। इससे बढ़कर परम सौभाग्य मुझे और कहाँ पर मिलेगा?''

गुप्त रूप में मिश्र से जिज्ञासा—

एत कहि' तारे लज्जा निभृते बसिला।
''कि कथा शुनिते चाह?'' मिश्रेरे पुछिला॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—इतना कहकर श्रीरामानन्द राय श्रीप्रद्युम्न मिश्र को एकान्त स्थान पर ले जाकर बैठ गये तथा उन्होंने श्रीप्रद्युम्न मिश्र से पूछा—''आप क्या सुनना चाहते हैं?''

पहले राय-महाप्रभु-संवाद में वर्णित सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजनात्मक कृष्णकथा का पुनः कीर्त्तन करने की प्रार्थना—

तेंहो कहे,—''जे कहिला विद्यानगरे।
सेइ कथा क्रमे तुमि कहिबा आमारे॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने कहा,—''हे रामानन्द राय! आपने विद्यानगर में श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष जिस कथा को सुनाया था, आप क्रमशः वही कथा मुझे सुनाइये।

मिश्र की दैन्यपूर्ण उक्ति—

आनेर कि कथा, तुमि—प्रभुर उपदेष्टा!
आमि त' भिक्षुक विप्र, तुमि—मोर पोष्टा॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०— ''अन्य व्यक्तियों का तो कहना ही क्या? आप तो श्रीमन्महाप्रभु को भी उपदेश प्रदान करने वाले हैं! मैं तो भिक्षुक ब्राह्मण हूँ और आप मेरा पालन करने वाले हैं।

भाल, मन्द—किछु आमि पुछिते ना जानि।
'दीन' देखि' कृपा करि' कहिबा आपनि॥'' ६२ ॥

६२। प० अनु०—''मैं अच्छा-बुरा कुछ भी पूछना नहीं जानता हूँ, आप मुझ दीन पर कृपा करके स्वयं ही हरिकथा का श्रवण कराइए।''

श्रीरामानन्द के द्वारा कृष्णकथा का कीर्त्तन—

तबे रामानन्द क्रमे कहिते लागिला।
कृष्णकथा-रसामृत-सिन्धु उथलिला॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—तब श्रीरामानन्द राय क्रमशः कृष्णकथा का गान करने लगे, जिससे कृष्णकथा रूपी रसामृत का समुद्र उमड़ पड़ा।

शिष्य का अधिकार समझकर स्वयं ही प्रश्न करने और उत्तर देने वाले—

आपने प्रश्न करि' पाछे करेन सिद्धान्त।
तृतीय प्रहर हैल, नहे कथा-अन्त॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय स्वयं ही प्रश्न उठाकर फिर सिद्धान्त स्थापित करते। इस प्रकार करते-करते तीसरा प्रहर हो गया किन्तु तब भी कथा समाप्त नहीं हुयी।

दोनों ही कृष्ण की कथा में आत्म-विस्मृत—

वक्ता श्रोता कहे शुने दुँहे प्रेमावेशे।
आत्मस्मृति नाहि, काँहा जाने दिन-शेषे॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—वक्ता श्रीरामानन्द राय तथा श्रोता श्रीप्रद्युम्न मिश्र प्रेम में आविष्ट होकर श्रीकृष्णकथा का क्रमशः कीर्त्तन-श्रवण कर रहे थे, उन्हें जब आत्मस्मृति तक भी नहीं रहीं, तब उन्हें कैसे पता चलता कि दिन समाप्त होने जा रहा है।

कृष्ण की कथा में दिन का ढलना—

सेवक कहिल,—''दिन हैल अवसान।''
तबे राय कृष्णकथार करिला विश्राम॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय के सेवक ने आकर कहा,—''हे श्रीरामानन्द राय प्रभु! दिन समाप्त हो गया है।'' सेवक की बात सुनकर श्रीरामानन्द राय ने कृष्णकथा को विश्राम दिया।

मिश्र को विदायी प्रदान और मिश्र का हर्ष—

बहुसम्मान करि' मिश्रे विदाय दिला।
'कृतार्थ हइलाङ' बलि' मिश्र नाचिते लागिला॥६७॥

६७। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय ने बहुत अधिक सम्मानपूर्वक श्रीप्रद्युम्न मिश्र को विदायी दी। श्रीप्रद्युम्न मिश्र—'मैं कृतार्थ हुआ'—ऐसा कहकर नृत्य करने लगे।

सन्ध्या के समय प्रभु के निकट मिश्र का आगमन—

घरे गिया मिश्र कैल स्नान, भोजन।
सन्ध्याकाले देखिते आइल प्रभुर चरण॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने अपने घर जाकर स्नान तथा भोजन किया, वे सन्ध्या के समय श्रीमन्महाप्रभु के चरण दर्शन करने के लिये आये।

प्रभु के द्वारा मिश्र से कृष्णकथा की प्राप्ति के विषय में जिज्ञासा—

प्रभुर चरण वन्दे उल्लसित-मने।
प्रभु कहे,—''कृष्णकथा हइल श्रवणे??'' ६९ ॥

६९। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने उल्लसित होकर श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणों की वन्दना की। श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे पूछा—''क्या कृष्णकथा का श्रवण किया?''

मिश्र के द्वारा अपनी कृतार्थता का ज्ञापन—

मिश्र कहे,—''प्रभु, मोरे कृतार्थ करिला।
कृष्णकथामृतार्णवे मोरे डुबाइला॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—श्रीप्रद्युम्न मिश्र ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु, आपने मुझे कृष्णकथा रूपी अमृत के समुद्र में डुबाकर कृतार्थ कर दिया।

कृष्णकीर्त्तन करने वाले गुरु के प्रति मर्त्य-बुद्धि करने की निषिद्धता—

रामानन्द-राय-कथा कहिले ना हय।
'मनुष्य' नहे राय, कृष्णभक्तिरसमय॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—''मैं श्रीरामानन्द राय की महिमा बोलने पर भी बोल नहीं पाऊँगा, वे वास्तव में कोई साधारण मनुष्य नहीं, बल्कि कृष्णभक्तिरूपी रस की प्रतिमूर्त्ति हैं।

गुरुदेव श्रीरामानन्द के मुख से वक्ता श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु—

आर एक कथा राय कहिला आमारे।
'कृष्णकथा-वक्ता करि' ना जानिह मोरे॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—''श्रीरामानन्द राय ने मुझसे अन्य एक बात भी कही है—'मुझे कृष्णकथा का वक्ता मत समझना।

मोर मुखे कथा कहेन आपने गौरचन्द्र।
जैछे कहाय, तैछे कहि,—जेन वीणायन्त्र॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—''मेरे मुख से स्वयं श्रीगौरचन्द्र कथा बोलते हैं। वे मुझसे जैसा कहलवाते हैं, मैं वीणा रूपी वाद्ययन्त्र की भाँति वैसा ही कहता हूँ।

योग्यपात्र रामानन्द के मुख से प्रभु द्वारा कृष्णकथा का प्रचार—
मोर मुखे कथा इँहा करे परचार।
पृथिवीते के जानिबे ए-लीला ताँहार??' ७४ ॥

७४। प० अनु०—''श्रीगौरचन्द्र मेरे मुख के माध्यम से इन समस्त कथाओं का प्रचार करवाते हैं। पृथ्वी पर उनकी इस लीला के विषय में कौन जान सकता है?'

राय के मुख से कीर्त्तित और मेरे द्वारा सुनी गयी कृष्णकथा—ब्रह्मा के भी अगोचर—
जे-सब शुनिलुँ, कृष्ण—रसेर सागर।
ब्रह्मादि-देवेर ए सब ना हय गोचर॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! मैंने श्रीरामानन्द राय के मुख से रस-समुद्र श्रीकृष्ण के विषय में जो सब श्रवण किया है, यह सब तो ब्रह्मा आदि देवताओं तक के भी गोचर नहीं होता।

प्रभु के चरणों में मिश्र का आत्म-निवेदन—
हेन 'रस' मोरे पान कराइला तुमि।
जन्मे जन्मे तोमार पाय बिकाइलाङ आमि॥'' ७६॥

७६। प० अनु०—''आपने मुझे श्रीरामानन्द राय के मुख के माध्यम से ऐसे रस का पान कराया है, मैं जन्म-जन्मान्तर के लिये आपके श्रीचरणों में बिक गया हूँ।''

प्रभु के द्वारा राय के आदर्श के अनुसार शुद्ध वैष्णव के स्वभाव का कीर्त्तन—
प्रभु कहे,—''रामानन्द विनयेर खनि।
आपनार कथा परमुण्डे देन आनि'॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,— ''रामानन्द राय विनय की खान हैं, वे अपनी योग्यता का श्रेय अन्य को दे देते हैं।''

साधु, सज्जन, महत् अथवा वैष्णवों का स्वभाव—
महानुभवेर एइ सहज 'स्वभाव' हय।
आपनार गुण नाहि आपने कहय॥'' ७८ ॥

७८। प० अनु०—''महानुभव व्यक्तियों का सहज ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे स्वयं अपने गुणों का वर्णन नहीं करते।''

अशौक्र विप्र कुल में उत्पन्न समस्त ब्राह्मण कुल के गुरु कृष्ण कीर्त्तन करने वाले श्रीराय के श्रोता रूपी शिष्य मिश्र—
रामानन्द-रायेर एइ कहिलुँ गुण-लेश।
प्रद्युम्न-मिश्रेरे जैछे कैला उपदेश॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—(श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कह रहे हैं—) इस प्रकार मैंने श्रीरामानन्द राय के द्वारा श्रीप्रद्युम्न मिश्र को किये गये उपदेश के माध्यम से उनके गुणों के लेशमात्र का वर्णन किया।

राय के महत्-गुण से शिक्षणीय विषय—बाह्य वर्णाश्रम-आचार कृष्णभक्ति अथवा गुरुत्व का उदाहरण नहीं—
'गृहस्थ' हञा नहे राय षड्वर्गेर वशे।
'विषयी' हञा सन्यासीरे उपदेशे॥'' ८०॥

८०। प० अनु०—गृहस्थ आश्रम में होने पर भी श्रीरामानन्द राय छह वेगों के वशीभूत नहीं हैं। बाहरी रूप से विषयी जैसे दिखलायी देने पर भी वे अपने आदर्श-चरित्र द्वारा सन्यासी तक को उपदेश प्रदान करने में समर्थ हैं।

अनुभाष्य

८०। श्रीरामानन्द प्रभु—प्राकृत लोगों के दृष्टिकोण

से प्रवृत्ति-मार्गीय गृहस्थ हैं। संयत इन्द्रिय ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ अथवा भिक्षु नहीं हैं, ऐसा प्रतीत होता है। लौकिक गृहस्थ इन्द्रियों के वशीभूत होकर गृहव्रत धर्म ग्रहण करते हैं, किन्तु घर में स्थित अप्राकृत वैष्णव, अवैष्णव गृहस्थों की भाँति अदान्तगो (असंयत इन्द्रियों वाले) होकर लेशमात्र भी छह वेगों के वशीभूत नहीं होते। गृहस्थ-आश्रमी की लीला में श्रीरामानन्द प्रभु का प्राकृत लोगों की भोगमयी दृष्टि में 'विषयी' होना प्रतीत होता है तथापि अप्राकृत श्रीकृष्णलीला ही उनके शुद्ध-सत्त्व अप्राकृत मन के सर्वक्षण उपास्य-विषय होने के कारण वे—कृष्ण-विषयी हैं, वे भगवान् के चित् विलास के विरोधी निर्विशेष-वादी तार्किक नहीं हैं। वे विषयों को त्यागने वाले निर्गुण सन्यासियों को कृष्ण-प्रतीति हीन जड़ विषय त्याग कराके कृष्ण-विषयानुशीलन में प्रवृत्त कराने में समर्थ हैं।

राय के द्वारा कृष्णभक्त अथवा गुरु के महात्म्य का प्रदर्शन—

एइसब गुण ताँर प्रकाश करिते।
मिश्रेरे पाठाइला ताँहा श्रवण करिते॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरामानन्द राय के इन समस्त गुणों को प्रकाशित करने के लिये ही श्रीप्रद्युम्न मिश्र को उनके पास कृष्णकथा श्रवण करने के लिये भेजा था।

भक्तगुण-कीर्त्तनकारी भगवान्—

भक्तगुण प्रकाशिते प्रभु भाल जाने।
नाना-भङ्गीते प्रकाशि' निज-लाभ माने॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तों के गुणों को भली-भाँति प्रकाशित करना जानते हैं तथा वे अनेक प्रकार से कुशलता पूर्वक अपने भक्तों की महिमा को प्रकाशित करके स्वयं को लाभान्वित मानते हैं।

अनुभाष्य

८२। भङ्गी,—चित्र, कौशल, उदाहरण।

जगद्गुरु गौर द्वारा प्रदत्त लोक शिक्षा का रहस्य—

आर एक 'स्वभाव' गौरेर शुन, भक्तगण।
गूढ़ ऐश्वर्य-स्वभाव करे प्रकटन॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—हे भक्तों! श्रीगौरसुन्दर के अन्य एक स्वभाव के विषय में श्रवण करो—वे अत्यन्त गूढ़ (अन्तर्निहित) ऐश्वर्य-स्वभाव (ईश्वरीय शक्ति) को प्रकटित करते हैं।

अनुभाष्य

८३। गूढ़,—अन्तर्निहित, अप्रकाशित; ऐश्वर्य-स्वभाव,—ईश्वरीय शक्ति, ऐश्वरिक बल।

प्राकृत वर्णाश्रम और पाण्डित्य आदि—सत्यधर्म के विषय में निर्णय करने योग्य नहीं —

सन्यासी, पण्डितगणेर करिते गर्व-नाश।
नीच-शूद्र-द्वारा करेन धर्मेर प्रकाश॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु केवल मात्र वेश धारण करने वाले सन्यासियों तथा वृथा ही जड़ विद्या का अभ्यास करने वाले विद्वानों के गर्व को नष्ट करने के उद्देश्य से ही बाहरी रूप से नीच वर्ण में जन्म ग्रहण करने वाले शूद्र वर्ण के व्यक्ति के द्वारा धर्म को प्रकाशित करते हैं।

अनुभाष्य

८४। पण्डित,—वेदाधिकार-सम्पन्न ब्राह्मण; सन्यासी,—ब्राह्मणों के चार आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ आश्रम; लौकिक धारणा के अनुसार, शौक्र ब्राह्मणों का ही सावित्र्य में अधिकार है; सावित्र्य जन्म में वेदाधिकार एवं सावित्र्य-विप्रजन्म प्राप्त करके तीन अन्य आश्रमों को लाँघ करके सन्यासी की पदवी उन्नत है। ब्राह्मण—तीनों वर्णों के गुरु हैं एवं सन्यासी—तीनों आश्रमों में अवस्थित ब्राह्मणों के गुरु हैं। उनके इस उपाधि के मद से उत्थित प्राकृत गर्व को नष्ट करने की वासना से श्रीमन्महाप्रभु ने प्राकृत लौकिक-दृष्टि से सबसे निम्नवर्ण 'शूद्र' के नाम से परिचित एवं सबसे निम्न आश्रम 'गृहस्थ' के नाम से परिचित श्रीरामानन्द राय प्रभु द्वारा प्रद्युम्न मिश्र नामक शौक्र-ब्राह्मण को उपदेश प्रदान करवाया एवं सन्यास

ग्रहण करने वाले स्वयं महाप्रभु ने भी श्रीरामानन्द के द्वारा प्रचारित धर्म को अङ्गीकार किया।

श्रीगौरहरि ने आश्रम के सम्बन्ध में शास्त्रों के सार सिद्धान्त को लोगों में प्रकट करने की वासना से प्राकृत-पण्डिताभिमानी और त्यागाभिमानी गणों की भ्रमपूर्ण धारणा के प्रतिकूल में अपने नैसर्गिक ऐश्वर्य प्रभाव का विस्तार किया था। साधारण मूर्ख लोग शास्त्रों के तात्पर्य से अवगत नहीं हैं। वे गौरसुन्दर के आश्रित सेवकों के विशुद्ध सदाचार और योग्यता का दर्शन करके वर्णाश्रम के विषय में शास्त्रों के सत्य तात्पर्य को समझ पाये हैं। हरि-परायण अप्राकृत वैष्णव जिस किसी कुल में उदित एवं जिस किसी आश्रम में अवस्थित होने पर भी चारों वर्णों और आश्रमों के प्राकृत लोगों के प्रति नित्य दया प्रकाश करने वाले गुरुदेव के रूप में सर्वोच्च सत्य-धर्माचार्य हो सकते हैं,—यह बात शास्त्रों में बहुत भली प्रकार से उल्लिखित है। भगवान् गौरहरि ने शास्त्रों के गूढ़ और यथार्थ उद्देश्य को लोगों में बिना किसी विवाद के प्रचारित करके अपने ऐश्वर्य-स्वभाव को प्रकटित किया।

दृष्टान्त—(१) सन्यासी-वेशधारी स्वयं प्रभु और शौक्र विप्र मिश्र—दोनों के ही द्वारा शुश्रूषु (सेवा-अभिलाषी) शिष्य के रूप में गृहस्थ-वेशधारी और अशौक्र विप्र कुल में आविर्भूत कृष्णकथा कीर्त्तन करने वाले श्रीराय को गुरु के रूप में वरण करके लोक शिक्षा—

'भक्ति', 'प्रेम', 'तत्त्व' कहे राये करि' 'वक्ता'।
आपनि प्रद्युम्नमिश्र-सह हय 'श्रोता'॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीप्रद्युम्न मिश्र के साथ श्रोता बनकर तथा श्रीरामानन्द राय को वक्ता बनाकर उनके मुख के माध्यम से स्वयं भक्ति, प्रेम एवं अन्य-अन्य तत्त्वों का वर्णन करते हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

८४-८५। (शाङ्कर) सन्यासी मानते हैं कि वे संसार में ब्राह्मणोचित समस्त-कर्म निर्वाह करके वेदान्त-तत्त्व का अनुशीलन करने के कारण जगत् के 'गुरु' बन गये हैं। (शौक्र) ब्राह्मण-पण्डितगण मानते हैं कि (कर्मकाण्डीय) स्मृति के अनुसार उनके जैसे शौक्र ब्राह्मण ही सभी वर्णों के गुरु हैं; अतएव उनके जैसे शौक्र ब्राह्मण पण्डितों के अलावा परमार्थ तत्त्व की शिक्षा देने का अन्य किसी को अधिकार नहीं है। इन दोनों गर्वों में गर्वित होकर सन्यासी और पण्डित अपने से अनन्त गुणा श्रेष्ठ और उच्चतम, शूद्र-कुल में आविर्भूत शुद्ध भक्तों से धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के अनिच्छुक बनकर बहुत बार अनुन्नत (निम्न) मति वाले हो जाते हैं। वैष्णव धर्म में यही स्वीकृत है कि जिसने प्राकृत और अप्राकृत तत्त्व के भेद को जानकर अप्राकृत कृष्णभक्ति की शिक्षा प्राप्त की है, वही समस्त जीवों के उपदेष्टा हैं,—इसमें जन्मगत वर्ण आदि और संस्कारगत आश्रम आदि की अपेक्षा नहीं है। जगत् का उद्धार करने वाले महाप्रभु ने इसी तत्त्व की शिक्षा प्रदान करने के लिये ही अपने पूर्वाश्रम के ज्ञाति (सम्बन्धी) की सन्तान प्रद्युम्न मिश्र को श्रीरामानन्द के समीप तत्त्व की शिक्षा के लिये भेजा था।

(२) यवन कुल में आविर्भूत ठाकुर हरिदास को जगद्गुरु और नामाचार्य की पदवी प्रदान—

हरिदास-द्वारा नाम-माहात्म्य-प्रकाश। ८६ क।

८६ क। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर के द्वारा नाम के माहात्म्य को प्रकाशित किया।

म्लेच्छों के साथ वास करने पर भी (३) श्रीसनातन—कृष्णभक्ति सिद्धान्त अथवा सम्बन्धज्ञान के आचार्य और (४) श्रीरूप—व्रजप्रेम भक्तिरस अथवा अभिधेय के आचार्य—

सनातन-द्वारा भक्ति सिद्धान्त-विलास॥ ८६ ख॥
श्रीरूप-द्वारा व्रजेर रस-प्रेम-लीला।
के कहिते पारे गम्भीर चैतन्येर खेला?? ८७ ॥

८६ ख-८७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसनातन गोस्वामी के द्वारा भक्ति सिद्धान्त विलास को प्रकाशित किया तथा श्रीरूप गोस्वामी के द्वारा व्रज की रसमयी प्रेम लीलाओं को प्रकाशित किया। श्रीचैतन्य महाप्रभु की गूढ़ लीलाओं का कौन वर्णन कर सकता है?

श्रीचैतन्यलीला सिन्धु के बिन्दु को प्राप्त करने से ही जगत् का उद्धार–

श्रीचैतन्यलीला एइ—अमृतेर सिन्धु।
जगत् भासाइते पारे जार एक बिन्दु॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की लीला अमृत के सागर की भाँति है, उसकी एक बूँद जगत् को प्रेम में निमग्न कर सकती है।

अनुभाष्य

८८। श्रीचैतन्यलीलामृत रूपी सिन्धु की एक बूँद ही जगत् को प्रेम की बाढ़ में निमग्न करने में समर्थ है। श्रीदास गोस्वामी, बाद के समय में श्रीठाकुर नरोत्तम, श्रील श्यामानन्द प्रभु आदि भी श्रीमहाप्रभु की वैसी उदारता के विकास-स्वरूप हैं।

श्रद्धापूर्वक चैतन्यलीला-अमृत के पान के फल से चिद्वृत्ति के उदित होने पर सम्बन्धज्ञान, अभिधेय और प्रयोजन की प्राप्ति–

चैतन्यचरितामृत नित्य कर पान।
जाहा हैते 'प्रेमानन्द', 'भक्तितत्त्व-ज्ञान'॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—हे भक्तों! श्रीचैतन्यचरितामृत का नित्यप्रति पान करो, जिससे आपको प्रेमानन्द की प्राप्ति तथा भक्ति के तत्त्व का ज्ञान प्राप्त होगा।

प्रभु की ऐसी नीलाचल-लीला–

एइमत महाप्रभु भक्तगण लञा।
नीलाचले विहरये भक्ति प्रचारिया॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों को लेकर भक्ति का प्रचार करते हुए नीलाचल में विहार करते हैं।

पूर्वीबङ्गालवासी ब्राह्मणवेशी प्राकृत-कवि का वृत्तान्त–

बङ्गदेशी एक विप्र प्रभुर चरिते।
नाटक करि' लञा आइला शुनाइते॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—बङ्गाल निवासी एक ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु के चरित्र पर आधारित एक नाटक की रचना करके श्रीमन्महाप्रभु को सुनाने के लिये ले आये।

भगवान्-आचार्य-सने तार परिचय।
ताँरे मिलि' ताँर घरे करिल आलय॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०— उस विप्र का श्रीभगवान् आचार्य के साथ परिचय था, वह विप्र जगन्नाथपुरी आकर उनसे मिले तथा उनके घर पर ही रहने लगे।

प्रथमे नाटक तेंहो ताँरे शुनाइल।
ताँर सङ्गे अनेक वैष्णव नाटक शुनिल॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—उस विप्र ने सर्वप्रथम स्वरचित नाटक श्रीभगवान् आचार्य को श्रवण कराया। श्रीभगवान् आचार्य के साथ बैठकर अनेक वैष्णवों ने उस नाटक की विषय वस्तु का श्रवण किया।

सबेइ प्रशंसे नाटक 'परम उत्तम'।
महाप्रभुरे शुनाइते सबार हैल मन॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—सभी वैष्णवों ने 'परम उत्तम' कहकर उस नाटक की प्रशंसा की, सभी के मन में उस नाटक को श्रीमन्महाप्रभु को श्रवण कराने की इच्छा हुई।

स्वरूप दामोदर के द्वारा परीक्षा लेने का नियम–

गीत, श्लोक, ग्रन्थ, कवित्व,—जेइ करि' आने।
प्रथमे शुनाय सेइ स्वरूपेर स्थाने॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—जो कोई भी व्यक्ति गीत, श्लोक, ग्रन्थ अथवा कवित्व आदि की रचना करके लाता, वह उसे पहले श्रीस्वरूप दामोदर को सुनाता।

स्वरूप दामोदर के अनुमोदन (स्वीकृति) अथवा परीक्षा लेने के बाद ही प्रभु की कृपा की प्राप्ति–

स्वरूप-ठाञि उत्तरे यदि, लय ताँर मन।
तबे महाप्रभु-ठाञि कराय श्रवण॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—यदि वह लेख श्रीस्वरूप दामोदर की परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता, तथा उसके श्रवण से उनका मन सन्तुष्ट हो जाता तभी उसे श्रीमन्महाप्रभु को

श्रवण कराया जाता था।

भक्तिसिद्धान्त वाणी का विरोध ही महावदान्य प्रभु के क्रोध का एकमात्र कारण—

'रसाभास' हय यदि 'सिद्धान्त विरोध'।
सहिते ना पारे प्रभु, मने हय क्रोध॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—यदि किसी लेख में भक्ति के सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई बात होती, या फिर रसाभास दोष होता, तब श्रीमन्महाप्रभु उसे सुनकर सहन न कर पाते, उनके मन में क्रोध का सञ्चार हो जाता।

अनुभाष्य

९७। रसाभास,— भ:र:सि:उ:वि: ९म ल:— ''पूर्वमेवानुशिष्टेन विकला रसलक्षणा। रसा एव रसाभासा रसज्ञैरनुकीर्तिता:॥ स्युस्त्रिधोपरसाश्चानुरसाश्चापरसाश्च ते। उत्तमा मध्यमा: प्रोक्ता: कनिष्ठाश्चेत्यमी क्रमात्॥ प्राप्तै: स्थायिविभावानुभावाद्यैस्तु विरूपताम्। शान्तादयो रसा एव द्वादशोपरसा मता:॥ भक्तादिभिर्विभावाद्यै: कृष्ण सम्बन्ध वर्जितै:। रसा हास्यादय: सप्त शान्तश्चानुरसा मता:॥ कृष्ण-तत्प्रतिपक्षश्चेद्विषयाश्रयतां गता:। हासादीनां तदा तेऽत्र प्राज्ञैरपरसा मता:॥ भावा: सर्वे तदाभासा रसाभासाश्च केचन। अमी प्रोक्ता रसाभिज्ञै: सर्वेऽपि रसनाद्रसा:॥'' आपात रस प्रतीत होने पर भी जो पूर्व में कथित रस के लक्षणों के द्वारा अङ्गहीन होता है, रसिक गण उसे 'रसाभास' कहते हैं। 'उपरस', 'अनुरस' और 'अपरस' के भेद से रसाभास भी 'उत्तम', 'मध्यम' और 'कनिष्ठ' के रूप में कथित होता है। विरूपता को प्राप्त स्थायिभाव, विभाव और अनुभाव आदि के द्वारा उपलक्षित शान्त आदि द्वादश रस 'उपरस' के नाम से कथित होते हैं; कृष्ण सम्बन्ध वर्जित भक्त आदि विभाव समूह द्वारा उत्पन्न हास्य आदि सात रस और रुक्ष शान्तरस ही 'अनुरस' कहलाते हैं; परस्पर विरुद्ध भाव युक्त होकर कृष्ण और उनके प्रतिपक्ष असुर यदि हास्य आदि रस के विषयत्व और आश्रयत्व को प्राप्त करते हैं, तब रसतत्त्ववित् पण्डित उसे 'अपरस' कहते हैं। सभी भावों को कुछ व्यक्ति 'तदाभास' अथवा 'रसाभास' कहते हैं; स्वादिष्ट अथवा आनन्द प्रदान करने वाले होने के कारण ही इन सभी को 'रस' कहते हैं। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती पाद कहते हैं,—''परस्पर वैरयोर्यदि योगस्तदा रसाभास: ''अर्थात् दो प्रकार के विरोधी रसों के योग होने पर 'रसाभास' होता है। सिद्धान्त विरोध,— भक्तिमार्गीय सिद्धान्त के साथ विरोध, तत्त्वविरोध।

अतएव प्रभु किछु आगे नाहि शुने।
एइ मर्यादा प्रभु कैराछेन नियमे॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—अतएव श्रीमन्महाप्रभु किसी के भी द्वारा रचित लेख को सर्वप्रथम स्वयं नहीं सुनते थे, स्वयं श्रीमन्महाप्रभु ने यही मर्यादा—यही नियम बनाकर रखा था।

स्वरूप के निकट भगवान् आचार्य द्वारा प्राकृत कवि के काव्य की प्रशंसा करने के उपरान्त निवेदन —

स्वरूपेर ठाञि आचार्य कैला निवेदन।
''एक कवि प्रभुर नाटक कैराछे उत्तम॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—एकदिन श्रीभगवान् आचार्य ने श्रीस्वरूप दामोदर से निवेदन करते हुए कहा—''एक कवि ने श्रीमन्महाप्रभु के चरित्र पर आधारित एक उत्तम नाटक की रचना की है।

आदौ तुमि शुन, यदि तोमार मन माने।
पाछे महाप्रभुरे तबे कराइमु श्रवणे॥'' १०० ॥

१००। प० अनु०—''हे श्रीस्वरूप दामोदर! सर्वप्रथम आप उसका श्रवण कीजिए, यदि आपको सुनकर अच्छा लगेगा, तभी बाद में श्रीमन्महाप्रभु को उसका श्रवण कराऊँगा।''

कृष्णतत्त्व को जानने वालों में श्रेष्ठ अन्तर्यामी आचार्य स्वरूप दामोदर के द्वारा भगवान् आचार्य का तिरस्कार —

स्वरूप कहे,—''तुमि 'गोप' परम-उदार।
जे-से शास्त्र शुनिते इच्छा उपजे तोमार॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''तुम गोप जाति के होने के कारण परम उदार हो, इसी कारण तुममें जिस-किसी शास्त्र को सुनने की इच्छा जागृत हो जाती है।

गौर कृष्ण की अप्रीति के एकमात्र हेतु का निर्देश—

'यद्वा तद्वा' कविर वाक्ये हय 'रसाभास'।
सिद्धान्तविरुद्ध शुनिते ना हय उल्लास॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—''ऐसे-वैसे कवियों के वचनों में रसाभास दोष होता है, सिद्धान्त-विरुद्ध बात सुनने से हृदय में उल्लास नहीं होता।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०२। 'यद्वा तद्वा कवि'—जो कोई भी कवि अर्थात् जो रसतत्त्व एवं वैष्णव सिद्धान्त तत्त्व को भली-भाँति नहीं जानकर ही कविता की रचना करते हैं।

'रस' 'रसाभास' जार नाहिक विचार।
भक्तिसिद्धान्त-सिन्धु नाहि पाय पार॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—''जिसे रस तथा रसाभास आदि का ज्ञान नहीं है, वह भक्तिसिद्धान्त रूपी सिन्धु का पार नहीं पा सकता।

'व्याकरण' नाहि जाने, ना जाने 'अलङ्कार'।
'नाटकालङ्कार'-ज्ञान नाहिक जाहार॥ १०४ ॥
कृष्णलीला वर्णिते ना जाने सेइ छार!
विशेषे दुर्गम एइ चैतन्य-विहार॥ १०५ ॥

१०४-१०५। प० अनु०—''जो व्याकरण तथा अलङ्कार के विषय में नहीं जानता, जिसे नाटक के अलङ्कार आदि का कोई ज्ञान नहीं है। ऐसा व्यर्थ के प्रयास करने वाला व्यक्ति कृष्णलीला का किस प्रकार से वर्णन करना चाहिए, इसे नहीं जानता! उस पर, श्रीचैतन्य महाप्रभु की लीला तो विशेष रूप से दुर्गम है।

गौर में अपने प्राणों को समर्पित करने वाले कृष्ण भक्तों का ही गौरलीला के वर्णन में अधिकार—

कृष्णलीला, गौरलीला से करे वर्णन।
गौर-पादपद्म जाँर हय प्राण-धन॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—''श्रीगौरहरि के चरणकमल जिनके प्राणधन हैं, वही कृष्णलीला, गौरलीला का वर्णन कर सकते हैं।

कृष्णसुखतात्पर्य रहित प्राकृत-कवि का बहिरङ्ग होना, कृष्णसुखतत्पर अप्राकृत कवि का अन्तरङ्ग होना—

ग्राम्य-कविर कवित्य शुनिते हय 'दुःख'।
विदग्ध-आत्मीय-वाक्य शुनिते हय 'सुख'॥ १०७॥

१०७। प० अनु०—''ग्राम्य कवियों के कवित्व को सुनने से दुःख होता है जबकि विदग्ध-आत्मीय व्यक्तियों के द्वारा रचित कवित्व को सुनने से सुख होता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०७। ग्राम्य-कवि,—जो समस्त कवि ग्राम्य-स्त्री-पुरुषों के विषय में कविता की रचना करते हैं; विदग्ध-आत्मीय-वाक्य,—तत्त्वज्ञान-चतुर शुद्धभक्त-सम्प्रदाय में प्रविष्ट आत्मीय (अर्थात् सजातीयाशयस्निग्ध) व्यक्ति की रचना।

अप्राकृत कवि शिरोमणि श्रीरूप का उदाहरण—

रूप जैछे दुइ नाटक कैराछे आरम्भे।
शुनिते आनन्द बाड़े जार मुखबन्धे॥'' १०८ ॥

१०८। प० अनु०—''जैसे रूप ने दो नाटकों को लिखना आरम्भ किया है, उसके मुखबन्ध (भूमिका) तक को सुनते ही आनन्द वर्धित होता है।''

तथापि भगवान् आचार्य का निर्बन्ध (अनुरोध)—

भगवान्-आचार्य कहे,—''शुन एकबार।
तुमि शुनिले भाल-मन्द जानिबे विचार॥'' १०९ ॥

१०९। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य ने कहा,—''हे श्रीस्वरूप दामोदर! आप उसे एकबार सुन लीजिए, उसे सुनने पर आप उसके भले-बुरे के विषय में समझ जायेंगे।''

बन्धु आचार्य के अनुरोध हेतु श्रीस्वरूप की श्रवण की इच्छा—

दुइ-तिन-दिन आचार्य आग्रह करिल।
ताँर आग्रहे स्वरूपेर शुनिते इच्छा हैल॥ ११० ॥

११०। प० अनु०—श्रीभगवान् आचार्य ने दो-तीन दिन तक श्रीस्वरूप दामोदर से आग्रह किया, उनके पुनः पुनः आग्रह करने पर श्रीस्वरूप दामोदर के मन में उसे सुनने की इच्छा जागृत हो गयी।

स्वरूप के निकट कवि के द्वारा नान्दी-श्लोक का पाठ—

सबा लञा स्वरूप-गोसाञि शुनिते बसिला।
तबे सेइ कवि नान्दी-श्लोक पड़िला॥ १११ ॥

१११। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी सभी भक्तों को साथ में लेकर सुनने के लिये बैठ गये, तब उस कवि ने नान्दी श्लोक का उच्चारण किया।

नान्दी श्लोक—(बङ्गाल के विप्र के द्वारा रचित श्लोक)

विकचकमलनेत्रे श्रीजगन्नाथसंज्ञे
कनकरुचिरिहात्मन्यात्मतां यः प्रपन्नः।
प्रकृतिजड़मशेषं चेतयन्नाविरासीत्
स दिशतु तव भव्यं कृष्णचैतन्यदेवः॥ ११२ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

११२। जो स्वर्णकान्ति को स्वयं में न्यस्त अथवा विस्तृत करके विकसित कमल नेत्रस्वरूप श्रीजगन्नाथ में आत्मता को प्राप्त हुए हैं एवं जो जड़-प्रकृति (दारु, काष्ठ) को अशेष चेतना प्रदान पूर्वक आविर्भूत हुए हैं, वही कृष्णचैतन्यदेव तुम्हारा मङ्गल विधान करें।

अनुभाष्य

११२। कनकरुचिः (कनकस्य स्वर्णस्य इव रुचिः कान्तिः यस्यः सः) यः (गौरः) इह (अस्मिन् पुरुषोत्तम-क्षेत्रे) विकचकमलनेत्रे (विकचे प्रफुल्ले कमले इव नेत्रे यस्य तस्मिन्) श्रीजगन्नाथसंज्ञे (श्रीजगन्नाथः इति संज्ञा नामधेयं यस्य तस्मिन्) आत्मनि (शरीरे) आत्मतां (देहित्वं) प्रपन्नः (प्राप्तः सन्) प्रकृति जड़ं (प्रकृत्या जड़ं श्रीजगन्नाथ विग्रहम् अर्च्चये दारुधीत्वात्) अशेषं चेतयन् आविरासीत् (प्रकटो बभूव), सः (श्रीकृष्णचैतन्यदेवः) तव भव्यं (कल्याणं) दिशतु (विदधातु)। (सरस्वती-पक्षे तु,—यः श्रीकृष्णः श्रीजगन्नाथ-संज्ञे मायाधीशे दारुबह्मणि षड़ैश्वर्यपूर्णे परमात्मनि कनकरुचिना गौररूपेण आत्मतां सर्वथा तदभेदतां जगन्नाथरूपतां प्रपन्नः, सः इत्यादिकं स्पष्टम्)।

स्वरूप के अतिरिक्त अन्य सभी के द्वारा प्रशंसा—

श्लोक शुनि'—सर्वलोक ताहारे बाखाने।
स्वरूप कहे,—''एइ श्लोक करह व्याख्याने॥''११३॥

११३। प० अनु०—कवि के मुख से श्लोक सुनकर सभी लोग उसकी प्रशंसा करने लगे, किन्तु श्रीस्वरूप दामोदर ने उस कवि को श्लोक की व्याख्या करने के लिये कहा।

मूर्ख-कवि का शुद्धभक्ति-सिद्धान्तविरुद्ध मायावाद-दोष—

कवि कहे,—''जगन्नाथ—सुन्दर-शरीर।
चैतन्य-गोसाञि—शरीरी महाधीर॥ ११४ ॥

११४। प० अनु०—कवि ने कहा,—''जगन्नाथ देव का सुन्दर शरीर है तथा शरीरी चैतन्य गोसाञि महाधीर हैं।

अनुभाष्य

११४। शरीरी—जिनका शरीर है वह अर्थात् देही।

सहजे जड़जगतेर चेतन कराइते।
नीलाचले महाप्रभु हैला आविर्भूते॥'' ११५ ॥

११५। प० अनु०—''सहज रूप में इस जड़ जगत को चेतन बनाने के उद्देश्य से श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल में आकर उपस्थित हुए हैं।''

सभी के प्रसन्न होने पर भी जगद्गुरु वैष्णवाचार्य श्रीस्वरूप का क्रोध और शास्त्र-सिद्धान्त रूपी तलवार के द्वारा कुमत का छेदन करने रूपी दया—

शुनिया सबार हैल आनन्दित मन।
दुःख पाञा स्वरूप कहे सक्रोध वचन॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०—कवि के द्वारा की गयी श्लोक की व्याख्या को सुनकर सभी का मन आनन्दित हुआ, किन्तु श्रीस्वरूप दामोदर उसे सुनकर दु:खी हुए तथा उन्होंने क्रोध करते हुए कहा,—।

क्रोध के कारण का निर्देश—(१) विष्णु के प्रति जीव बुद्धि—नरकगामी—

''आरे मूर्ख, आपनार कैलि सर्वनाश!
दुइ त' ईश्वरे तोर नाहिक विश्वास!! ११७ ॥

११७। प० अनु०—''अरे मूर्ख! तुमने अपना सर्वनाश कर लिया है! दोनों ईश्वरों के प्रति ही तुम्हारा विश्वास नहीं है!

पूर्णानन्द-चित् स्वरूप जगन्नाथ-राय।
ताँरे कैलि जड़-नश्वर-प्राकृत-काय!! ११८ ॥

११८। प० अनु०—''श्रीजगन्नाथ राय पूर्णानन्द चित् स्वरूप हैं, तुमने उन्हें जड़ीय-नश्वर-प्राकृत शरीर वाला कहकर वर्णन किया!

अनुभाष्य

११८। जगन्नाथ विग्रह को दारुमय (काष्ठमय) प्रतिमा जानकर विनाशशील एवं प्राकृत द्रव्यों से निर्मित जड़ीय वस्तु मात्र मानने से ''अर्च्चये विष्णौ शिलाधी:★★ यस्य वा नारकी स:॥'' इस पद्मपुराण के वचनानुसार वैसे मानने वालों का अपराध होता है; क्योंकि, भगवद्भक्त सच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण के साथ सम्पूर्णत: अभिन्न उनके अर्चा-विग्रह को प्रेम रूपी अञ्जन से छुरित भक्तिमय नेत्रों के द्वारा साक्षात् पूर्ण सच्चिदानन्द विग्रह के स्वरूप में दर्शन करते हैं।

पूर्ण-षड़ैश्वर्य चैतन्य—स्वयं भगवान्।
ताँरे कैलि क्षुद्र-जीव स्फुलिङ्ग-समान!! ११९ ॥

११९। प० अनु०—''छह प्रकार के ऐश्वर्यों से परिपूर्ण श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं, उनकी तुमने स्फुलिङ्ग समान क्षुद्र जीव कहकर व्याख्या की!

अनुभाष्य

११९। ''यथाग्नेर्विस्फुलिङ्गा व्युचरन्ति'' इस श्रुति वचन में जाना जाता है कि जीव बृहत् विष्णु रूप अग्नि के स्फुलिङ्ग (चिंगारी) के समान अर्थात् चित्कण हैं। मायावश जीव की जड़ीय वस्तुओं में बन्धन की योग्यता रहने पर भी सच्चिदानन्दविग्रह समस्त कारणों के कारण परमेश्वर श्रीचैतन्यदेव ने मनुष्य शरीर धारण किया है, क्या इसी कारण उनका जड़ के अधीन क्षुद्र जीव होना प्रमाणित होता है,—ऐसा नहीं; वे—मायाधीश हैं, षट्-ऐश्वर्यपूर्ण स्वयं भगवान् यशोदानन्दन हैं; (भा: १.११.३८)—''एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणै:। न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया॥'' [अर्थात् जीव ईश्वरके अधीन है तथा ईश्वर हैं श्रीकृष्ण। ईश्वर की ईश्वरता यह है कि प्रकृतिस्थ अर्थात् प्राकृत जगत् में प्रवेश करके भी वे प्राकृत गुणों (सुख, दु:ख आदि) के द्वारा लिप्त नहीं होते, क्योंकि वे स्वयं सर्वदा आत्मस्थ अर्थात् अपनी योगमाया द्वारा प्रकटित सच्चिदानन्द स्वरूप में सर्वदा अवस्थित रहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करने वाली जीव-बुद्धि भी उसी प्रकार की होती है (प्राकृत गुणों में रहकर भी प्राकृत गुणों से लिप्त नहीं होती।)]

अक्षजज्ञानी तर्कपन्थी भक्तिसिद्धान्त को नहीं जानने वाले व्यक्ति के द्वारा कृष्ण के वर्णन की चेष्टा दु:साहस—

दुइ-ठाञि अपराधे पाइबि दुर्गति!
अतत्त्वज्ञ 'तत्त्व' वर्णे, तार एइ गति!! १२० ॥

१२०। प० अनु०— ''तुम दोनों के प्रति अपराध करने के कारण दुर्गति को प्राप्त करोगे! अतत्त्वज्ञ व्यक्ति के द्वारा तत्त्व का वर्णन करने पर उसकी ऐसी ही गति होती है!

अनुभाष्य

१२०। 'दुइ-ठाञि',—श्रीजगन्नाथदेव एवं श्रीचैतन्य-देव, दोनों को प्रपञ्च के अन्तर्गत जड़ और जीव के रूप में विचार करने से—एक के प्राकृत देह का चित्कण

अन्य की प्राकृत देह में प्रविष्ट हुआ है, ऐसा मानने से—दोनों के प्रति अपराध होता है। अतत्त्वज्ञ,—जिसे तत्त्व का कोई ज्ञान नहीं है अर्थात् अहंग्रहोपासक मायावादी, फलभोगी कर्मी अथवा स्वेच्छाचारी, सत् और असत् के विवेक से हीन इन्द्रिय परायण व्यक्ति; तत्त्व वर्णे,—तत्त्व अर्थात् भगवान् के विषय में वर्णन करता है।

(२) ईश्वर का देही-देह-भेद-निर्देश-रूप अपराध ही प्रमाद—

आर एक कैराछ परम 'प्रमाद'!
देह-देहि-भेद ईश्वरे कैले 'अपराध'!! १२१ ॥

१२१। प० अनु०—"तुमने अन्य एक बहुत बड़ी भूल की है, वास्तव में ईश्वर में देह और देही का भेद करना अपराध है।

अनुभाष्य

१२१। बद्धजीव की भाँति ईश्वर के देह एवं देही को परस्पर भिन्न वस्तु के रूप में स्वीकार करने से 'अपराध' होता है। प्राकृत जगत् में गुणमाया के द्वारा गठित बद्धजीव की देह की सत्ता एवं जीवमाया अथवा तटस्थ-शक्ति-गठित जीवानुभूति होती है। ईश्वर और बद्धजीव में भेद यह है कि ईश्वर—कर्म फल के दाता एवं कर्म फल के अधीश अर्थात् समस्त कारणों के कारण मायाधीश प्रभु और विभुतत्त्व हैं; जीव—बद्धावस्था में कर्म फल का भोक्ता और कर्मफल के अधीन है एवं मुक्तावस्था में भी अपने स्वरूप में ईश्वर की सेवा में सम्पूर्ण रूप से रत अर्थात् ईश्वर किसी भी काल में माया के वशवर्त्ती नहीं हैं और जीव—मायाधीनता-योग्य है; ईश्वर—अपरिमेय अथवा अखण्ड चेतन हैं, जीव—परिमेय अथवा खण्ड चेतन है। बद्धजीव की नश्वर अनित्य देह—मायिक अथवा जड़ है; मुक्त अथवा शुद्धजीव की अप्राकृत-देह भी नित्य है तथा मायातीत ईश्वर भी नित्य सविशेष-विग्रह हैं। प्रपञ्च में उनके नित्य विग्रह के अचिन्त्य निज शक्ति के बल से उदित होने पर भी वह कभी भी प्रापञ्चिक-धर्म युक्त मायिक अथवा प्राकृत नहीं है; (भा: १.११.३८)—"एतदीश-नमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुण:। न युज्यते सदात्मस्थैर्यथाबुद्धिस्तदाश्रया॥" [अर्थात् जीव ईश्वर के अधीन है तथा ईश्वर हैं श्रीकृष्ण। ईश्वर की ईश्वरता यह है कि प्रकृतिस्थ अर्थात् प्राकृत जगत् में प्रवेश करके भी वे प्राकृत गुणों (सुख, दु:ख आदि) के द्वारा लिप्त नहीं होते, क्योंकि वे स्वयं सर्वदा आत्मस्थ अर्थात् अपनी योगमाया द्वारा प्रकटित सच्चिदानन्द स्वरूप में सर्वदा अवस्थित रहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करने वाली जीव-बुद्धि भी उस प्रकार की होती है (प्राकृत गुणों में रहकर भी प्राकृत गुणों से लिप्त नहीं होती।)] नित्य विग्रह को 'निर्विशेष' करने के छल से देह-देही-भेद-चेष्टा—महा अपराध का कार्य है।

अद्वयज्ञान विष्णु का नाम, विग्रह और स्वरूप—अभिन्न—

ईश्वरेर नाहि कभु देह-देहि-भेद।
स्वरूप, देह,—चिदानन्द, नाहिक विभेद॥ १२२॥

१२२। प० अनु०—"ईश्वर में कदापि देह-देही का भेद नहीं होता। ईश्वर का स्वरूप तथा उनकी देह—दोनों ही चिदानन्द हैं, उनमें कोई विभेद नहीं होता।

अनुभाष्य

१२२। अद्वयज्ञान ही व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण है; "वदन्ति तत्त तत्त्वविद:" श्लोक में तत्त्व स्वरूप के निर्णय में एकमात्र अद्वितीय परमेश्वर में द्वैतवस्तु बुद्धि निरस्त (खण्डित) हुई है। वे—अद्वयज्ञान हैं, अतएव उनका नाम, रूप, गुण और लीला जड़जगत की वस्तुओं की भाँति भिन्न-भिन्न नहीं है, उसे एकान्तिक 'अभिन्न' जानना होगा। ईश्वर में देह-देही-भेद ज्ञान ही उन्हें 'बद्धजीव' मानने के भ्रम का कारण है, क्योंकि बद्धजीव में अद्वय-ज्ञान-प्रतीति का अभाव है।

प्रमाण—लघुभागवतामृत (१.५.३४२) में उद्धृत कूर्मपुराण के वचन—

देह-देहि-विभागोऽयं नेश्वरे विद्यते क्वचित्॥१२३॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१२३। ''ईश्वर में [कदापि] देह-देही का भेद नहीं है।

अनुभाष्य

१२३। ईश्वरे (परमात्मनि सविशेषतत्त्व वस्तुनि भगवति) अयं देहदेहिविभागः (नाम एकं नामी च अन्यः, रूपं एकं रूपी च भिन्नः, गुणः एकः गुणी च भिन्नः, लीला एका लीलामयो भिन्नः,— एवम्भूतमायाकृतः भेदः अद्वयज्ञाने शुद्धसत्त्वमये विष्णौ) क्वचित् (गोलोके परव्योम्नि देवीधाम्नि वा चतुर्दश भुवनान्तर्मध्ये च कुत्रापि) न विद्यते।

श्रीमद्भागवत (३.९.३) में—

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूप
मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन्
भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि॥ १२४ ॥

१२४।अनु०—''[श्रीब्रह्मा ने कहा—] हे परम, आपके इस आनन्दमात्र अविकल्प एवं मायातीत तेजःस्वरूप,—जिस स्वरूप को मैं अब देख रहा हूँ, इससे श्रेष्ठ स्वरूप और कोई नहीं है। हे आत्मन्, विश्वसृजनकारी होने पर भी विश्व से पृथक भूतेन्द्रियात्मक आपका यह जो रूप देख रहा हूँ,—मैं इसी के ही उपाश्रय (शरणागत) हो रहा हूँ।

अनुभाष्य

१२४। मध्य-लीला के पञ्चविंश परिच्छेद की ३६ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (३.९.४) में—

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम्।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं
योऽनादृतो नरक भाग्भिरसत् प्रसङ्गैः॥ १२५ ॥

१२५। अनु०—''हे भुवनमङ्गल, हमारे मङ्गल के लिये हमारी उपासना के योग्य आपका यह स्वरूप,—जिसे आपने ध्यान में दिखलाया है, उसी भगवद्-स्वरूप को—हम नमस्कार करते हैं एवं उसी की परिचर्या करते हैं। असद् प्रसङ्ग से दूषित नरकगामी व्यक्ति इस नित्यमूर्त्ति का आदर नहीं करते।

अनुभाष्य

१२५। मध्य-लीला के २५वें परिच्छेद की ३७ वीं संख्या द्रष्टव्य।

परमेश्वर विष्णु और वश्य जीव में 'भेद'—

काँहा 'पूर्णानन्दैश्वर्य' कृष्ण 'महेश्वर'!
काँहा 'क्षुद्र' जीव 'दुःखी', 'मायार किङ्कर'!! १२६॥

१२६। प० अनु०—''कहाँ तो पूर्णानन्द ऐश्वर्य वाले कृष्ण महेश्वर हैं और कहाँ दुःखी तथा माया का दास क्षुद्र जीव!''

अनुभाष्य

१२६। कहाँ महा-परमेश्वर कृष्ण का पूर्णानन्दमय ऐश्वर्य-विग्रह और कहाँ क्षुद्र बद्धजीव का अत्यन्त क्लेशपूर्ण माया पदवी का दास्य! इन दोनों की समानता की बात तो दूर रहे, तुलना करना भी असम्भव है।

भगवद् सन्दर्भ में उद्धृत सर्वज्ञसूक्त-वाक्य अथवा भाः १.७.६ श्लोक की टीका में श्रीधर स्वामी द्वारा उद्धृत श्रीविष्णु-स्वामि-वाक्य—

ह्लादिन्या संविदाश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः।
स्वाविद्या-संवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः॥१२७॥

१२७। अनु०—''ईश्वर—सदैव सच्चिदानन्द एवं 'ह्लादिनी' और 'सम्वित्'-शक्ति द्वारा आश्लिष्ट (संलग्न) हैं; किन्तु जीव सर्वदा ही अपनी (आरोपित) अविद्या द्वारा संवृत (सम्पूर्ण रूप से घिरा हुआ) है, अतएव सब प्रकार के क्लेशों का उद्गम स्थल है।''

अनुभाष्य

१२७। मध्य-लीला के १८ वें परिच्छेद की ११४ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

सभी का विस्मय–

शुनि' सभासदेर हैल महा-चमत्कार।
''सत्य कहे गोसाञि, दुँहारे कैराछे 'तिरस्कार'॥१२८॥

१२८। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर के विचारों को सुनकर सभी उपस्थित व्यक्ति अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने कहा कि श्रीस्वरूप दामोदर सत्य ही कह रहे हैं कि इस कवि ने श्रीजगन्नाथदेव तथा श्रीमन्महाप्रभु का तिरस्कार अथवा अनादर किया है।

अक्षजज्ञानी, प्राकृत कवि में लज्जा, भय और विस्मय–

शुनिया कविर हैल लज्जा, भय, विस्मय।
हंस-मध्ये बक जेन किछु नाहि कय॥ १२९ ॥

१२९। प० अनु०—यह सब सुनकर कवि में लज्जा, भय तथा विस्मय उत्पन्न हुआ। उसकी स्थिति ऐसी हो गयी मानो वह हंसों के बीच में बगुला हो, वह कुछ भी कह न पाया।

महावदान्य श्रीस्वरूप की अमन्दोदया दया–

तार दुःख देखि' स्वरूप परम-सदय।
उपदेश कैला तारे जैछे 'हित' हय॥ १३० ॥

१३०। प० अनु०—उस कवि के दुःख को देखकर श्रीस्वरूप दामोदर को उस पर बहुत अधिक दया आ गयी, उन्होंने उस कवि को ऐसा उपदेश दिया जिससे उसका हित हो।

इसी के उद्देश्य से समस्त जीवों के प्रति वैष्णवाचार्य अभिन्न-गौर श्रीस्वरूप का चरम हितोपदेश–

''जाह, भागवत पड़ वैष्णवेर स्थाने।
एकान्त आश्रय कर चैतन्य-चरणे॥ १३१ ॥

१३१। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''हे कवि! जाकर वैष्णवों के निकट श्रीमद्भागवत पढ़ो तथा एकान्तिक भाव से श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों का आश्रय करो।

अनुभाष्य

१३१। निर्विशेष-केवलाद्वैत-मत में निष्ठा रखने वाले मायावादी के निकट अथवा भक्तिहीन शब्द-चतुर केवल व्याकरण को जानने वाले वैयाकरण के निकट अथवा धन गृधु (धन पर गिद्ध जैसी दृष्टि रखने वाले) विषयों की सेवा करने वालों के निकट भागवत पढ़ने अथवा सुनने जाने पर उसके फलस्वरूप कृष्णप्रेम तो प्राप्त होगा नहीं, परन्तु कृष्णरस के बदले केवल जड़-रस-भोग वृद्धि प्राप्त करेगा। समस्त प्रकार के विषयों को त्याग देने वाले परमहंस वैष्णवों के निकट ही भागवत पढ़नी चाहिए। श्रीचैतन्यचन्द्र के एकान्तिक चरणाश्रित होकर उनके द्वारा प्रदर्शित भागवत के अर्थ ही वैष्णवों की एकमात्र सम्पत्ति हैं।

चैतन्यभक्त अथवा शुद्धचिद् वृत्ति का अनुशीलन करने वालों के सङ्ग के फल से ही शुद्धभक्ति के सिद्धान्त का ज्ञान-प्राप्त–

चैतन्येर भक्तगणेर नित्य कर 'सङ्ग'।
तबे त' जानिबा सिद्धान्तसमुद्र-तरङ्ग॥ १३२ ॥

१३२। प० अनु०—''तुम नित्य श्रीचैतन्य महाप्रभु के भक्तों का सङ्ग करो। तभी तो तुम सिद्धान्त रूपी समुद्र की तरङ्ग को जान पाओगे।

अनुभाष्य

१३२। श्रीचैतन्यभक्तगण—नित्य-हरिपार्षद और अप्राकृत तत्त्व के एकमात्र ज्ञाता। उनका सम्पूर्ण रूप से निरन्तर सङ्ग करने से जीवों के जागतिक-भोगों से उत्पन्न अज्ञान समूह दूर होंगे तथा उन्हें वास्तविक शुद्धभक्ति के सिद्धान्त की उपलब्धि होगी।

भक्तिसिद्धान्त का ज्ञान ही विद्या और पाण्डित्य का फल–

तबे पाण्डित्य तोमार हइबे सफल।
कृष्णेर स्वरूप-लीला वर्णिबा निर्मल॥ १३३ ॥

१३३। प० अनु०—''तभी तुम्हारी विद्वत्ता सफल होगी, तभी तुम कृष्ण के स्वरूप तथा उनकी लीलाओं का निर्मल वर्णन कर पाओगे।

एइ श्लोक कैराछ पाञा सन्तोष।
तोमार हृदयेर अर्थे दुँहाय लागे 'दोष'॥ १३४ ॥

१३४। प० अनु०—''तुमने सन्तुष्ट होकर इस श्लोक की रचना की है, किन्तु तुम्हारे हृदय में स्फुरित अर्थ के द्वारा ही दोनों ईश्वरों के प्रति तुम्हारा दोष सूचित होता है।

अनुभाष्य

१३४। दुँहाय—श्रीजगन्नाथदेव एवं श्रीगौरहरि में।

मूर्ख अथवा विद्वेषी के द्वारा कृष्ण की निन्दा रूपी उक्ति के कहने पर भी कृष्ण-सेविका भक्ति-सिद्धान्त वाणी-रूपिणी शुद्ध-सरस्वती की गौर-कृष्ण-सेवा—

तुमि जैछे-तैछे कह, ना जानिया रीति।
सरस्वती सेइ-शब्दे कैराछे स्तुति॥ १३५ ॥

१३५। प० अनु०—''तुमने काव्य की रीति को नहीं जानकर जैसे-तैसे इस नान्दी श्लोक की रचना की है, किन्तु सरस्वती देवी ने तुम्हारे द्वारा रचित उन्हीं शब्दों के द्वारा भगवान् की स्तुति कर दी है।

अनुभाष्य

१३५। अज्ञानता वशतः तुम्हें मायावाद और भक्ति के मार्ग के पृथक होने की उपलब्धि नहीं है, इसीलिए तुमने जिस प्रणाली से अपने भावों को व्यक्त किया है, वह ठीक नहीं हुआ, जैसा-तैसा हुआ है; किन्तु सरस्वती ने रचना की अधिष्ठात्री होने के कारण तुम्हारे इन जैसे-तैसे वचनों के द्वारा ही अपने आराध्य गौर-कृष्ण का स्तव किया है।

जैछे इन्द्र, दैत्यादि करे कृष्णेर भर्त्सन।
सेइ-शब्दे सरस्वती करेन स्तवन॥ १३६ ॥

१३६। प० अनु०—''जैसे इन्द्र तथा दैत्य आदि कृष्ण का तिरस्कार करते हैं, किन्तु सरस्वती देवी उन्हीं शब्दों के द्वारा ही कृष्ण की स्तुति कर देती हैं।

(क) श्रीमद्भागवत (१०.२५.५) में—अक्षजज्ञानी इन्द्र की निन्दा रूपी उक्ति का दृष्टान्त—

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम्।
कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम्॥ १३७॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१३७। इन्द्र ने कहा,—इस वाचाल, मूर्ख, स्तब्ध, अज्ञ, पण्डिताभिमानी मरणशील कृष्ण का आश्रय करके गोपों ने मेरा अप्रिय कार्य किया है।

अनुभाष्य

१३७। गोपाः वाचालं (बहुभाषिणं) बालिशं (शिशुं मूर्खं वा) स्तब्धम् (अविनीतम्) अज्ञं (परिणामदर्शनहीनं) पण्डितमानिनं (पण्डितम्मन्यं) मर्त्यं (मरणशीलं मानवम्) कृष्णं उपाश्रित्य (अवलम्ब्य) मे (मम) अप्रियम् (अभिलषित- विरुद्धम् अपमानं) चक्रुः। (निन्दायां योजितायामपीन्द्रस्य वाचा शुद्धा सरस्वती कृष्णं स्तौति)—वाचालं (वाचा हेतुना अलं समर्थं शास्त्र योनिं वेदप्रवर्त्तकं) बालिशं (शिशुवत् निरभिमानं गर्वहीनं) स्तब्धम् (अन्यस्य वन्दयस्य अभावात् अनम्रम्) अज्ञं (नास्तिज्ञः बुद्धिः यस्मात् सर्वज्ञं) पण्डितमानिनं (पण्डितानां ब्रह्मविदां बन्धमोक्षविदां वा बहुसेव्यं बहुमाननीयमित्यर्थः) मर्त्यं (भक्तवात्सल्यान्मनुष्यतया प्रतीयमानं) कृष्णं (सच्चिदानन्दरूपं परं ब्रह्म इत्यादिकं स्फुटम्)।

प्राकृत अहङ्कार से गर्वित इन्द्र—

ऐश्वर्य-मदे मत्त इन्द्र,—जेन मातोयाल।
बुद्धिनाश हैल, केवल नाहिक साम्भाल॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०—''ऐश्वर्य के मद में इन्द्र ऐसे मतवाला हो गया था, जैसे कि कोई मद्यपान करने वाला व्यक्ति हो। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी तथा उसे अपने अधिकार-अनिधकार का भी कोई ध्यान नहीं रहा।

अनुभाष्य

१३८। साम्भाल —(हिन्दी शब्द), काण्डज्ञान अथवा सावधानता; चलती भाषा में 'सामाल'।

इन्द्र के मुख से निकली निन्दा रूपी उक्ति के द्वारा ही शुद्धा-सरस्वती के द्वारा कृष्णस्तुति—

इन्द्र बले,—''मुञि कृष्णेर कैराछि निन्दन।''
तारइ मुखे सरस्वती करेन स्तवन॥ १३९ ॥

१३९। प० अनु०—''इन्द्र ने कहा,—'मैंने कृष्ण की निन्दा की है', किन्तु तब भी सरस्वती देवी ने उसी के मुख से कृष्ण की स्तुति करा दी।

शुद्धा-सरस्वती के द्वारा शब्दों की व्याख्या (१) 'वाचाल' और (२) 'बालिश'—

'वाचाल' कहिये—'वेदप्रवर्त्तक' धन्य।
'बालिश'—तथापि 'शिशु-प्राय' गर्वशून्य॥ १४०॥

१४०। प० अनु०—''सरस्वती देवी ने इन्द्र के द्वारा प्रयुक्त 'वाचाल' शब्द का अर्थ 'वेद का प्रवर्त्तन करने वाले' तथा 'बालिश' शब्द का अर्थ 'बालक जैसे अभिमान रहित' किया।

(३) 'स्तब्ध' और (४) 'अज्ञ'—

वन्दयाभावे 'अनम्र'—'स्तब्ध'-शब्दे कय।
जाहा हैते अन्य 'विज्ञ' नाहि—से 'अज्ञ' हय॥ १४१॥

१४१। प० अनु०—''सरस्वती देवी ने इन्द्र के द्वारा प्रयुक्त 'स्तब्ध' शब्द का अर्थ किया 'अनम्र' अर्थात् सर्वश्रेष्ठ होने के कारण श्रीकृष्ण किसी की वन्दना नहीं करते अर्थात् सभी उन्हीं की वन्दना करते हैं तथा 'अज्ञ' शब्द का अर्थ किया—'जिनसे अधिक विज्ञ कोई नहीं हैं, वही अज्ञ कहलाते हैं'।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४१। वन्दयाभावे 'अनम्र' स्तब्ध-शब्दे कय,—जिनका वन्दनीय अन्य कोई नहीं है, अतएव वे अनम्र,—यह स्तब्ध-शब्द में प्रकाशित है।

(५) 'पण्डिताभिमानी' और (६) 'मर्त्य'—

पण्डितेर मान्य-पात्र—हय 'पण्डितमानी'।
तथापि भक्तवात्सल्ये 'मनुष्य'-अभिमानी॥ १४२ ॥

१४२। प० अनु०—''सरस्वती देवी ने इन्द्र के द्वारा प्रयुक्त 'पण्डित मानिनम्' शब्द का अर्थ किया पण्डितों अर्थात् विद्वानों के भी सम्मान के पात्र तथा 'मर्त्य' शब्द का अर्थ किया कि ऐसा होने पर भी भक्त-वात्सल्य के कारण स्वयं में मनुष्य होने के भाव का पोषण करते हैं।

(ख) विद्वेषी जरासन्ध की निन्दा रूपी उक्ति का दृष्टान्त—

जरासन्ध कहे,—''कृष्ण—'पुरुष-अधम'।
तोर सङ्गे ना जुझिमु, 'जाहि बन्धुहन्'॥ १४३ ॥

१४३। प० अनु०—''जरासन्ध ने भी कृष्ण की निन्दा करते हुए कहा — 'कृष्ण, तुम पुरुषों में अधम हो, तुम अपने बन्धुओं का वध करने वाले हो, इसलिए मैं तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करूँगा।'

अमृतप्रवाह भाष्य

१४३। ना जुझिमु, 'जाहि बन्धुहन्',—हे बन्धुनाशक, तुम जाओ; तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करूँगा।

पञ्चम परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

१४३। जरासन्ध ने कृष्ण को सम्बोधन करके कहा,—''हे पुरुषाधम, हे बन्धुहन्, जाओ, मैं तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करूँगा।'' जरासन्ध के इन वचनों द्वारा शुद्धा सरस्वती कृष्ण का स्तव कर रही हैं—पुरुषाधम शब्द का अर्थ (बहुब्रीहि-समास)—जिनसे समस्त पुरुष अधम हैं वही अर्थात् 'पुरुषोत्तम'। [अविद्या अथवा माया के द्वारा बन्धन प्राप्त होने के कारण] संसार में जो व्यक्ति [जड़ विषयों को संग्रह करके स्वयं की]उन्नति की आशा करता है, वह 'बन्धु' कहलाता है, [वास्तव में जीव का बन्धन करने वाली होने के कारण] माया अथवा अविद्या ही 'बन्धु' है; माया अथवा अविद्या का हनन करने वाला व्यक्ति ही 'बन्धुहा' है; सम्बोधन में उसको ही—'बन्धुहन्' कहा गया है।

शुद्धा- सरस्वती के द्वारा इस प्रकार की निन्दा रूपी उक्ति से भी कृष्ण की स्तुति—(१) 'पुरुषाधम'—

जाहा हैते अन्य पुरुष सकल—'अधम'।
सेइ हय 'पुरुषाधम'—सरस्वतीर मन॥ १४४ ॥

१४४। प० अनु०—''जरासन्ध के द्वारा श्रीकृष्ण के लिये प्रयोग किये गये 'पुरुषाधम' शब्द का सरस्वती देवी ने अर्थ किया—जिनसे अन्य सभी पुरुष अधम हैं, वही 'पुरुषाधम' हैं।

(२) 'बन्धुहन्'—

'बान्धे सबारे'—ताते अविद्या 'बन्धु' हय।
'अविद्या-नाशक'—'बन्धुहन्'-शब्दे कय॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०—''जरासन्ध के द्वारा श्रीकृष्ण के लिये प्रयोग किये गये 'बन्धुहन्' शब्द का सरस्वती देवी ने अर्थ किया—'सभी को बाँधकर रखने वाली होने के कारण अविद्या बन्धु है तथा जो उस अविद्या का नाश करते हैं, उन्हें 'बन्धुहन्' कहते हैं।'

विद्वेषी शिशुपाल की निन्दा रूपी उक्ति का दृष्टान्त—

एइमत शिशुपाल करिल निन्दन।
सेइवाक्ये सरस्वती करेन स्तवन॥ १४६ ॥

१४६। प० अनु०—''इसी प्रकार शिशुपाल ने भी जिन शब्दों के द्वारा श्रीकृष्ण की निन्दा की थी, सरस्वती देवी ने शिशुपाल के उन्हीं शब्दों के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति कर दी।

अनुभाष्य

१४६। शिशुपाल ने जिन वचनों से कृष्ण की निन्दा की थी, उनसे भी इसी प्रकार शुद्धा सरस्वती ने कृष्ण की स्तुति की थी।

पञ्चम परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

स्वरूप के द्वारा प्राकृत कवि के व्यवहृत शब्द समूह के द्वारा कृष्ण की स्तुति की व्याख्या, जगन्नाथ रूपी दारु-ब्रह्म और गौरहरि रूप जङ्गम-ब्रह्म में अभेद-संस्थापन—

तैछे एइ श्लोके तोमार अर्थे 'निन्दा' आइसे।
सरस्वतीर अर्थ शुन, जाते 'स्तुति' भासे॥ १४७ ॥

१४७। प० अनु०—''हे विप्र कवि! उसी प्रकार तुम्हारे द्वारा रचित इस श्लोक में तुम्हारे द्वारा किये गये अर्थों से भगवान् की 'निन्दा' होती है, किन्तु अब तुम सरस्वती देवी द्वारा किये गये अर्थ को श्रवण करो, जिसमें स्तुति प्रकाशित होती है।

जगन्नाथ हय कृष्णेर 'आत्म स्वरूप'।
किन्तु इँहा दारूब्रह्म—'स्थावर-स्वरूप'॥ १४८॥

एक ही विग्रह जगत् के उद्धार के लिये इच्छा शक्ति के प्रभाव से दो रूपों में प्रकटित—

ताँहा-सह आत्मता एक रूप हञा।
कृष्ण एक तत्त्व रूप—दुइरूप हञा॥ १४९ ॥
संसार तारण-हेतु जेइ इच्छा-शक्ति।
ताहार मिलन करि' एकता ऐछे प्राप्ति॥ १५० ॥

१४८-१५०। प० अनु०—यद्यपि श्रीजगन्नाथदेव श्रीकृष्ण के आत्म-स्वरूप' हैं, तथापि यहाँ श्रीजगन्नाथ पुरी में उन्होंने [साधारण दारु अथवा काष्ठ नहीं बल्कि] दारुब्रह्म स्थावर-स्वरूप धारण किया है। वह दारुब्रह्म स्थावर-स्वरूप आत्म-स्वरूप के साथ एक रूप है। दो रूप (स्थावर-स्वरूप और आत्म-स्वरूप) दिखलायी देने पर भी श्रीकृष्ण एक ही तत्त्व हैं। संसार में आसक्त जीवों का उद्धार करने हेतु श्रीकृष्ण की जो इच्छा-शक्ति है, उसी इच्छा-शक्ति के प्रभाव से श्रीजगन्नाथदेव और श्रीगौरसुन्दर में एकता (मूल श्लोक 'विकचनेत्रे' में कथित आत्मता अर्थात् भेदराहित्य) की प्राप्ति होती है।

सकल संसारी-लोकेर करिते उद्धार।
गौर-जङ्गम-रूपे कैला अवतार॥१५१॥

१५१। प० अनु०—''समस्त जगत्-वासियों का उद्धार करने के लिये श्रीकृष्ण जङ्गम (चल) श्रीगौरचन्द्र के रूप में अवतरित हुए हैं।

जगन्नाथ के दर्शन और गौर के प्रचार से जीवों का उद्धार—

जगन्नाथेर दर्शने खण्डाय संसार।
सब-देशेर सब-लोक नारे आसिबार॥ १५२ ॥

१५२। प० अनु०—''श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन से जीव का संसार-चक्र नाश को प्राप्त करता है, किन्तु समस्त देशों के सभी लोग उनके दर्शन हेतु नहीं आ पाते।

श्रीकृष्णचैतन्यप्रभु देशे देशे जाञा।
सब-लोके निस्तारिला जङ्गम-ब्रह्म हञा॥ १५३ ॥

१५३। प० अनु०—''दूसरी ओर, जङ्गम ब्रह्म के रूप में अवतरित श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने देश-देश में जाकर समस्त जगत् वासियों का उद्धार किया।

सरस्वती अर्थ एइ कहिलुँ विवरण।
एहो भाग्य तोमार—ऐछे करिला वर्णन॥ १५४ ॥

१५४। प० अनु०— श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''हे विप्र कवि! इस प्रकार मैंने तुम्हारे द्वारा रचित श्लोक के सरस्वतीकृत अर्थ का विवरण प्रदान किया, यह तुम्हारा सौभाग्य ही है कि तुमने ऐसी रचना की है।

कृष्ण की निन्दा में 'स्तोभ' रूपी नामाभास के उच्चारण से ही मुक्ति—

कृष्णे गालि दिते करे नाम उच्चारण।
सेइ नाम हय तार 'मुक्तिर कारण॥'' १५५ ॥

१५५। प० अनु०—''कोई यदि श्रीकृष्ण को गाली देने के लिये भी उनके नाम का उच्चारण करता है तो वही नाम ही उसकी मुक्ति का कारण बन जाता है।''

कवि का वैष्णवों के चरणों में आत्मसमर्पण—

तबे सेइ कवि सबार चरणे पड़िया।
सबा शरण लैल दन्ते तृण लञा॥ १५६ ॥

१५६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर के वचन सुनकर उस विप्र कवि ने अपने दाँतो के नीचे तिनका दबाकर अर्थात् स्वयं के प्रति तृणभोजी पशु होने की बुद्धि करके अत्यन्त दीनतापूर्वक सभी भक्तों के चरणों में गिरकर उनकी शरण ग्रहण की।

पहले भक्तों की कृपा के कारण महाप्रभु की कृपा की प्राप्ति—

तबे सब भक्त तारे अङ्गीकार कैला।
तार गुण कहि' महाप्रभुरे मिलाइला॥ १५७ ॥

१५७। प० अनु०—विप्र कवि के भाव को देखकर सभी भक्तों ने उसे अङ्गीकार किया। समस्त भक्तों ने श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष उसके गुणों का वर्णन करके उसे उनसे मिलवाया।

कवि के द्वारा सन्यास धर्म स्वीकार करना और पुरी में वास—

सेइ कवि सर्व त्यजि' रहिला नीलाचले।
गौरभक्तगणेर कृपा के कहिते पारे?? १५८ ॥

१५८। प० अनु०—वह विप्र कवि अपना सबकुछ त्याग करके नीलाचल में ही रहने लगे। श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के भक्तों की कृपा का कौन वर्णन कर सकता है?

मिश्र के द्वारा कृष्णकथा के श्रवण की लीला और रामानन्द के माहात्म्य का वर्णन—

एइ त' कहिलुँ प्रद्युम्नमिश्र-विवरण।
प्रभुर आज्ञाय कैल कृष्णकथार श्रवण॥ १५९ ॥

१५९। प० अनु०—इस प्रकार मैंने इस परिच्छेद में पहले श्रीप्रद्युम्न मिश्र का विवरण प्रस्तुत किया, उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के उपदेशानुसार कृष्ण कथा का श्रवण किया।

तार मध्ये कहिलुँ रामानन्देर महिमा।
आपने श्रीमुखे प्रभु वर्णे जाँर सीमा॥ १६० ॥

१६०। प० अनु०—प्रसङ्गवशत: मैंने बीच में उन श्रीरामानन्द राय की महिमा का वर्णन किया जिनकी महिमा की सीमा का वर्णन स्वयं श्रीमन्महाप्रभु अपने मुख से करते हैं।

वैष्णवों में श्रद्धा के कारण अनभिज्ञ कवि को भी प्रभु की कृपा की प्राप्ति—

प्रस्तावे कहिलुँ कविर नाटक-विवरण।
अज्ञ हञा श्रद्धाय पाइल प्रभुर चरण॥ १६१ ॥

१६१। प० अनु०—प्रसङ्गवशत: मैंने विप्र कवि के द्वारा रचित नाटक का भी वर्णन किया, अज्ञ होने पर भी श्रद्धावशत: उसने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों का आश्रय प्राप्त किया।

श्रद्धापूर्वक चैतन्यलीला के श्रवण और कीर्त्तन से सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन की प्राप्ति—

श्रीकृष्णचैतन्य-लीला—अमृतेर सार।
एकलीला-प्रवाहे बहे शत-शत धार॥ १६२ ॥

१६२। प० अनु०—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की लीला अमृत का सार है, उनकी एक लीला के प्रवाह में ही सैंकड़ों-सैंकड़ों धाराएँ प्रवाहित होती हैं।

श्रद्धा करि' एइ लीला जेइ पड़े, शुने।
गौरलीला, भक्ति, भक्त, रस-तत्त्व जाने॥ १६३ ॥

१६३। प० अनु०—जो कोई भी श्रीमन्महाप्रभु की लीलाओं को श्रद्धापूर्वक पढ़ता, सुनता है, वह गौर-लीला, भक्ति, भक्त तथा रस तत्त्व को समझ जाता है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १६४ ॥

१६४। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे प्रद्युम्न-मिश्रोपाख्यानं नाम पञ्चमः परिच्छेदः।

❋ ❋ ❋

षष्ठ परिच्छेद

कथासार—महाप्रभु में कृष्णप्रेम के अत्यधिक प्रबल भावों के उदय होने के समय स्वरूप और रामानन्द उन्हें बहुत सान्त्वना प्रदान करते। इसी समय रघुनाथ दास [भी जगन्नाथ पुरी] आकर पहुँचे। रघुनाथ दास बहुत दिनों से प्रभु के चरणों का आश्रय करने का प्रयत्न कर रहे थे। महाप्रभु वृन्दावन जाने के छल से जिस समय शान्तिपुर गये, तब [रघुनाथ द्वारा] उनके चरणों का आश्रय करने की प्रार्थना करने पर महाप्रभु ने उन्हें युक्त-वैराग्य का आश्रय करने का उपदेश दिया। उन्हीं दिनों किसी म्लेच्छ चौधरी ने हिरण्यदास के प्रति हिंसा करके गौड़ से वजीर को बुलवाया, हिरण्यदास वहाँ से भाग गये। रघुनाथ दास की बुद्धि के बल से हिरण्य दास का वह उत्पात दूर हो गया। रघुनाथ दास ने पाणिहाटी जाकर नित्यानन्द प्रभु की आज्ञा से चिड़वा-दही का महोत्सव किया। उस महोत्सव के अगले दिन नित्यानन्द प्रभु ने कृपा करके रघुनाथ को चैतन्यचरण प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। उसके कुछ दिनों के बाद रात्रि में वासुदेव-दत्त के अनुगृहीत (कृपा-पात्र) एवं अपने गुरु और पुरोहित श्रीयदुनन्दन आचार्य के रघुनाथ के घर पर आने से रघुनाथ उनके साथ कुछ दूरी तक जाकर वहाँ से अकेले भाग गये। गुप्त मार्ग से जाकर बारह दिनों में पुरुषोत्तम (श्रीजगन्नाथपुरी) में पहुँचकर महाप्रभु के चरणों में पतित हुए। महाप्रभु ने उन्हें 'स्वरूपेर रघु अर्थात् स्वरूप गोस्वामी के रघु' यह नाम देकर स्वरूप गोस्वामी के हाथों में समर्पित किया। रघुनाथ ने पाँच दिन तक श्रीगोविन्द द्वारा दिये गये प्रसाद को पाकर बहुत दिनों तक सिंहद्वार पर अयाचक (बिना कुछ माँगे प्राप्त होने वाली वस्तुओं के द्वारा जीवन-यापन करने की) वृत्ति का अवलम्बन (पालन) किया। बाद में छत्र में महाप्रसाद माँगकर खाने लगे। रघुनाथ के पिता ने संवाद पाकर सेवक और अर्थ भेजा, किन्तु रघुनाथ ने उनसे कोई स्थूल अर्थ ग्रहण नहीं किया। महाप्रभु ने रघुनाथ के छत्र में भिक्षा करने की बात को सुनकर उन्हें अपनी गुञ्जामाला और गोवर्धन शिला प्रदान की। बाद में दास गोस्वामी ने मार्ग में फैंके गये बासी-सड़े हुए प्रसाद को धोकर खाना आरम्भ किया, उससे स्वरूप और महाप्रभु ने सन्तुष्ट होकर एकदिन उस प्रसाद को बलपूर्वक आस्वादन करके रघुनाथ पर कृपा की।

(अः प्रः भाः)

रघुनाथ को स्वरूप दामोदर के हाथों में अर्पण करने के बाद आत्मसात् करने वाले गौर को प्रणाम—

कृपागुणैर्यः कुगृहान्धकूपादुद्धृत्य भंग्या रघुनाथदासम्।
न्यस्य स्वरूपे विदधेऽन्तरङ्गं श्रीकृष्णचैतन्यममुं प्रपद्ये॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। जिन्होंने अपने कृपा रूपी गुण से रघुनाथ दास का गृह-अन्धकूप से भङ्गिमापूर्वक उद्धार करके उन्हें स्वरूप के निकट अर्पण करके अपना अन्तरङ्ग भक्त बनाया था, मैं उन्हीं श्रीकृष्णचैतन्य के चरणों में शरणागत होता हूँ।

अनुभाष्य

१। यः (चैतन्यदेवः) कृपागुणैः (अनुकम्पा-वितरणैः) कुगृहान्धकूपात् (कु कुत्सितं पुंस्त्रीपुत्रादिकथा बहुलं गृहमेव अन्धकूपः निर्गमनपथरहितः, तस्मात्) रघुनाथदासं (दास गोस्वामिनं) भंग्या (कौशलेन) उद्धृत्य (उथाप्य) स्वरूपे (दामोदर-स्वरूप-गोस्वामिनि) न्यस्य

(समर्प्य) अन्तरङ्गं (निजजनं) विदधे (चकार), अमुं तं श्रीकृष्णचैतन्यं अहं प्रपद्ये (शरणं व्रजामि)।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी रचित विलापकुसुमाञ्जलि स्तव में—"यो मां दुस्तरनिर्जलमहाकूपादपारक्लमात् सद्यः सान्द्रदयाम्बुधिः प्रकृतितः स्वैरी कृपारज्जुभिः। उद्धृत्यात्म-सरोजनिन्दिचरणप्रान्तं प्रपाद्य स्वयं श्रीदामोदरसाच्चकार तमहं चैतन्यचन्द्रं भजे॥" [अर्थात् स्वभावतः घनीभूत दया के सागर जिन्होंने मुझे अत्यन्त क्लेशपूर्ण, अत्यधिक कठिनाई से छोड़े जा सकने वाले गृह रूपी जल से रहित महाकूप से स्वतन्त्र कृपारूपी रज्जु के द्वारा उद्धार करके कमल की शोभा को भी धिक्कार देने वाले अपने चरण-प्रान्त को प्रदान करके बाद में श्रीस्वरूप-दामोदर प्रभु के हाथों में समर्पित किया था, मैं उन्हीं श्रीचैतन्यचन्द्र का भजन करता हूँ।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैत चन्द्र की जय हो। श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

नीलाचल में गौरलीला—

एइमत गौरचन्द्र भक्तगण-सङ्गे।
नीलाचले नाना लीला करे नाना-रङ्गे॥ ३ ॥

३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र भक्तों के साथ नीलाचल में अनेक प्रकार की आनन्दप्रदायिनी लीलाएँ कर रहे थे।

अपने भक्तों के कष्ट की आशङ्का से अपने कृष्ण-विरह रूपी दुःख का संगोपन करना—

यद्यपि अन्तरे कृष्ण-वियोग बाधये।
बाहिरे ना प्रकाशय भक्त-दुःख भये॥ ४ ॥

४। प० अनु०—यद्यपि कृष्ण-वियोग श्रीमन्महाप्रभु के हृदय को पीड़ित करता था, तब भी वह भक्तों के दुःख के भय से उसे बाहर में प्रकाशित नहीं करते थे।

सुतीव्र कृष्ण-विच्छेद रूपी दुःख में प्रभु की अवर्णनीय व्याकुलता—

उत्कट विरह-दुःख जबे बाहिराय।
तबे जे वैकल्य प्रभुर वर्णन ना जाय॥ ५ ॥

५। प० अनु०—जब श्रीमन्महाप्रभु के हृदय का प्रबल विरह-दुःख बाहर निकलता, उस समय उनमें कैसी व्याकुलता होती, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

विप्रलम्भ दशा में राय के द्वारा किया गया कृष्णकथा का संलाप और स्वरूप का गान ही प्रभु के लिये जीवन-स्वरूप—

रामानन्देर कृष्णकथा, स्वरूपेर गान।
विरह-वेदनाय प्रभुर राखये-पराण॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय प्रभु द्वारा कीर्तित कृष्णकथा तथा श्रीस्वरूप दामोदर का गान ही श्रीमन्महाप्रभु की विरह-वेदना में उनके प्राणों की रक्षा करता था।

बहुत से लोगों के साथ अनेक प्रकार के कृष्ण-प्रसङ्गों में विरह के गुरुत्व का कम होना, रात्रि में निर्जन में कृष्ण-विरह रूपी दुःख की वृद्धि—

दिने प्रभु नाना-सङ्गे हय अन्य मन।
रात्रिकाले बाड़े प्रभुर विरह-वेदन॥ ७ ॥

७। प० अनु०—दिन के समय तो श्रीमन्महाप्रभु का मन अनेकानेक भक्तों के साथ मिलने के कारण अलग प्रकार का रहता, किन्तु रात्रि के समय श्रीमन्महाप्रभु की विरह-वेदना बहुत बढ़ जाती।

स्वरूप और रामराय के द्वारा उनके भाव के उपयोगी वचन और गान के द्वारा प्रभु को आश्वासन—

ताँर सुख-हेतु सङ्गे रहे दुइ जना।
कृष्णरस-श्लोक-गीते करेन सान्त्वना॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की प्रसन्नता हेतु

श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीरामानन्द राय प्रभु—दोनों ही उनके साथ रहते तथा श्रीकृष्णरस से परिपूर्ण श्लोक एवं गीत सुनाकर श्रीमन्महाप्रभु को सान्त्वना प्रदान करते।

कृष्ण के जैसे सुबल सखा हैं, प्रभु के भी वैसे राम-राय—

सुबल जैछे पूर्वे कृष्णसुखेर सहाय।
गौरसुखदान-हेतु तैछे राम-राय॥ ९ ॥

९। प० अनु०—श्रीकृष्ण-लीला के समय जैसे श्रीकृष्ण सखा सुबल उनकी लीलाओं की पुष्टि हेतु सहायता करते थे, उसी प्रकार श्रीरामानन्द राय श्रीगौरसुन्दर को सुख प्रदान किया करते।

श्रीराधा के लिये जैसे ललिता-सखी, प्रभु के लिये भी वैसे स्वरूप-दामोदर—

पूर्वे जैछे राधार ललिता सहाय-प्रधान।
तैछे स्वरूप-गोसाञि राखे प्रभुर प्राण॥ १० ॥

१०। प० अनु०—श्रीकृष्णलीला के समय जैसे श्रीललिता देवी श्रीराधा रानी की प्रधान सहायिका थी, उसी प्रकार श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के प्राणों की रक्षा करते थे।

दोनों ही प्रभु के परमप्रेष्ठ अन्तरङ्गभक्त—

दुइ जनार सौभाग्य कहन ना जाय।
प्रभुर 'अन्तरङ्ग' बलि' जाँरे लोके गाय॥ ११ ॥

११। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय तथा श्रीस्वरूप दामोदर के सौभाग्य का वर्णन नहीं किया जा सकता! सभी व्यक्ति उन्हें श्रीमन्महाप्रभु का अन्तरङ्ग कहकर गान करते थे।

प्रभु के साथ रघुनाथ के मिलन के वृत्तान्त का वर्णन—

एइमत विहरे गौर लञा भक्तगण।
रघुनाथ-मिलन एबे शुन, भक्तगण॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर अपने भक्तों के साथ विहार कर रहे थे, हे भक्तों! अब श्रीमन्महाप्रभु के साथ श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के मिलन के प्रसङ्ग का श्रवण करो!

पूर्वकाल में कानाइ-नाटशाला से पुरी लौटते समय शान्तिपुर में प्रभु के द्वारा रघुनाथ को शिक्षा—

पूर्वे शान्तिपुरे रघुनाथ जबे आइला।
महाप्रभु कृपा करि' ताँरे शिखाइला॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—पहले जब श्रीरघुनाथ दास शान्तिपुर में श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये आये थे, उस समय श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें कृपा करके शिक्षा प्रदान की थी।

प्रभु की शिक्षा के अनुसार रघुनाथ के द्वारा घर में युक्त वैराग्य का आचरण, बाहरी रूप में विषयी की भाँति और हृदय में निर्विषय, निष्किञ्चन और कृष्ण के लिये अखिल चेष्टा से युक्त—

प्रभुर शिक्षाते तेंहो निज-घरे जाय।
मर्कट-वैराग्य छाड़ि' हइला 'विषयि-प्राय'॥ १४॥

१४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की शिक्षानुसार श्रीरघुनाथ दास अपने घर लौट गये थे तथा वे मर्कट वैराग्य को छोड़कर विषयी-प्राय अर्थात् बाहरी रूप से विषयी व्यक्तियों की भाँति व्यवहार करने लगे।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४। मर्कट-वैराग्य,—गृहस्थ व्यक्ति के द्वारा वैरागी के वेष आदि को धारण करके रहने को भी 'मर्कट-वैराग्य' कहते हैं।

अनुभाष्य

१४। लोगों के दृष्टिकोण में 'विषयी' सजकर श्रीरघुनाथ ने भोगासक्त मर्कट वैराग्य के बाह्य प्रदर्शन की रीति का अनुकरण सम्पूर्ण रूप से त्याग किया।

अनुभाष्य

१३-१४। श्रीरघुनाथ को शिक्षा,—मध्य-लीला के षोड़श परिच्छेद की २३८-२४३ वीं संख्या द्रष्टव्य।

भितरे वैराग्य, बाहिरे करे सर्व-कर्म।
देखिया त' माता-पितार आनन्दित मन॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास भीतर में वैराग्य तथा बाहर में विषयी व्यक्तियों की भाँति समस्त कार्य करते थे, उनके ऐसे व्यवहार को देखकर उनके माता-पिता का मन बहुत आनन्दित हुआ।

अनुभाष्य

१५। हृदय में कृष्ण के अलावा अन्य विषयों को लेशमात्र आवाहन नहीं करने पर भी लोकदृष्टि में सब प्रकार के विषय-कार्य करने लगे।

मथुरा से आये प्रभु के सङ्ग को प्राप्त करने के लिये प्रयास—

'मथुरा हैते प्रभु आइला',—वार्त्ता जबे पाइला।
प्रभु-पाश चलिबारे उद्‌योग करिला॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—जब श्रीरघुनाथ दास को संवाद मिला कि श्रीमन्महाप्रभु मथुरा से लौट आये हैं, तब वे श्रीमन्महाप्रभु के पास जाने का प्रयास करने लगे।

सप्तग्राम के मुस्लिम चौधरी नवाब का वजीर की सहायता से सप्तग्राम पर अधिकार—

हेन-काले मुलुकेर एक म्लेच्छ अधिकारी।
सप्तग्राम-मुलुकेर से हय 'चौधुरी'॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—उन्हीं दिनों सप्तग्राम नामक रियासत का चौधरी अथवा अधिकारी एक मुसलमान था।

अनुभाष्य

१७। चौधुरी,—जो प्रजा से अदायी योग्य कर को [एकत्रित करके उसमें से] अपने द्वारा प्राप्य चतुर्थ अंश लाभ को ग्रहण करके [तीन चौथाई धन] भूमि के अधिकारी के पास खजाने में जमा करते हैं।

हिरण्यदास मुलुक निल 'मक्‌ररि' करिया।
तार अधिकार गेल, मरे से देखिया ॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास के ताऊ हिरण्यदास ने कुछ शर्तों पर सम्राट से उस सप्तग्राम नामक रियासत का स्थायीरूप से अधिकार अपने नाम पर लिखवा लिया, जिससे उस मुसलमान चौधरी का अधिकार समाप्त हो गया। ऐसा देखकर वह मुसलमान तो मृतप्राय हो गया।

अमृतप्रवाह भाष्य

१८। मक्‌ररि,—इजारा, (स्थायी रूप से) बन्दोबस्त।

अनुभाष्य

१८। हिरण्यदास ने सप्तग्राम-मुलुक के कर अदायी के कार्य की स्थायी रूप से व्यवस्था कर ली; उससे मुसलमान चौधरी को प्राप्त होने वाला लाभ सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो गया, ऐसा देखकर वह अत्यधिक क्रोधित हुआ।

बार लक्ष देय राजाय, साधे बिश लक्ष।
से 'तुरुक्' किछु ना पाञा हैल प्रतिपक्ष॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—श्रीहिरण्यदास बीस लाख मुद्रा एकत्रित करते थे तथा वे राजस्व के रूप में सम्राट को बारह लाख मुद्रा देते थे, किन्तु बीच में उस मुस्लिम चौधरी को कुछ भी नहीं मिलने के कारण वह श्रीहिरण्यदास को अपना प्रतिद्वन्द्वी मानने लगा।

अनुभाष्य

१९। बीस लाख आदायी करके राजा को चौथा भाग (पाँच लाख) छोड़कर पन्द्रह लाख जमा करने के बदले बारह लाख जमा करने पर वह तुर्क अर्थात् मुसलमान स्वयं को प्राप्त होने वाले लाभ से वञ्चित होकर उनका विरोधी बन गया।

हिरण्य-गोवर्धन का भाग जाना और रघुनाथ का बन्धन—

राज-घरे कैफियत् दिया उजिरे आनिल।
हिरण्यदास पलाइल, रघुनाथेरे बान्धिल॥ २० ॥

२०। प० अनु०— उस मुस्लिम चौधरी ने सम्राट को जाकर श्रीहिरण्यदास की समस्त जानकारी दी तथा वह अपने साथ सम्राट के वजीर (मुख्यमन्त्री) को सप्तग्राम में ले आया। श्रीहिरण्यदास तो भाग खड़े हुए, उस वजीर ने श्रीरघुनाथ दास को पकड़ लिया।

अमृतप्रवाह भाष्य

२०। कैफियत्—विवरण-पत्र।

रघुनाथ के प्रति मुस्लिम-चौधरी द्वारा भय का प्रदर्शन—

प्रतिदिन रघुनाथे करये भर्त्सना।
''बाप-ज्येठारे आन', नहे पाइबा यातना॥'' २१ ॥

२१। प० अनु०—मुस्लिम चौधरी प्रतिदिन श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी का तिरस्कार करता तथा उनसे कहता कि ''अपने पिता और ताऊ के विषय में हमें बताकर उन्हें हमारे हाथों में आने दो, अन्यथा तुम्हें बहुत सी यातनाएँ भोग करनी पड़ेंगी।

रघुनाथ के मुख के दर्शन से स्नेह से आर्द्र चित्त होकर लौटना—

मारिते आसिया यदि देखे रघुनाथे।
मन फिरि' जाय, तबे ना पारे मारिते॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—जब भी वह चौधरी श्रीरघुनाथ दास को मारने की भावना से आता, श्रीरघुनाथ को देखने के साथ-ही-साथ उसका मन परिवर्त्तित हो जाता तथा वह उन्हें मार न पाता।

बाहर में रोष, अन्दर में शङ्का—

विशेषे कायस्थ-बुद्धये अन्तरे करे डर।
मुखे तर्जे गर्जे, मारिते सभय अन्तर॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास के कायस्थ होने के कारण भी वह मुस्लिम चौधरी उनसे भयभीत होता था। वह मुख से बहुत तर्जन-गर्जन करता था, किन्तु मारने के लिये उसके हृदय में भय था।

अमृतप्रवाह भाष्य

२३। श्रीरघुनाथ सम्माननीय और धनी व्यक्ति के पुत्र एवं पण्डित हैं, विशेषत: ब्राह्मणों के अनुगत अत्यधिक प्रधान कायस्थ वर्ण में उत्पन्न हुए हैं—यह जानने के कारण म्लेच्छ वजीर उन्हें मार नहीं पाता था। सत्ययुग से ही यह जाना जाता है कि कायस्थगण—राजकर्मचारी हैं; उनका सम्मान क्षत्रियों के समान ही है; यथा, याज्ञवल्क्ये,—'चाटतस्करदुवृत्तैर्महासाहसिकादिभि:। पीड्यमाना प्रजा रक्षेत् कायस्थैश्च विशेषत:॥'' अर्थात् राजा का धर्म यह है कि दुष्ट लोगों के हाथ से प्रजा की रक्षा करेंगे, पुन:, राजा अपने प्रधान कर्मचारी राजवल्लभ कायस्थों के द्वारा कर्म के कारण प्रजा पर अत्याचार करे तब उसका भी विशेष रूप से विचार करना। कारण; राजा के प्रधान कर्मचारी के द्वारा किसी प्रकार का दौरात्म्य करने से राजा के विशेष मनोयोग के अलावा उससे रक्षा नहीं है।

मधुर-भाषी, सम्मान प्रदान करने वाले रघुनाथ की मुस्लिम चौधरी के प्रति सविनय उक्ति—

तबे रघुनाथ किछु चिन्तिला उपाय।
विनति करिया कहे सेइ म्लेच्छ-पाय॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास ने उस मुस्लिम चौधरी के हाथ से छूटने के उपाय के विषय में सोचा तथा उन्होंने उस म्लेच्छ के चरणों में विनती करते हुए कहा—।

''आमार पिता, ज्येठा हय तोमार दुइ भाइ।
भाई-भाइये तोमरा कलह कर सर्वदाइ॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—''मेरे पिता तथा ताऊ—आपके दो भाई हैं। आप भाई-भाई होने के नाते सदैव झगड़ा करते हो।

कभु कलह, कभु प्रीति—इहार निश्चय नाइ।
कालि पुन: तिन भाइ हइबा एक-ठाञि॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—''कब आप झगड़ा करते हैं, कब आप परस्पर प्रीति करते हैं—यह निश्चित नहीं है। हो सकता है कि कल आप तीनों भाई फिर से एक साथ हो जाओ।

आमि जैछे पितार, तैछे तोमार बालक।
आमि तोमार पाल्य, तुमि आमार पालक॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—''मैं जैसे पिता के लिये बालक

हूँ, उसी प्रकार आपका भी बालक हूँ। मैं आपका पाल्य तथा आप मेरे पालक हैं।

पालक हञा पाल्येर ताड़िते ना जुयाय।
तुमि सर्वशास्त्र जान 'जिन्दापीर'-प्राय॥'' २८ ॥

२८। प० अनु०—''पालक होकर पाल्य को इस प्रकार से दण्डित करना शोभा नहीं देता, उस पर भी, आप तो समस्त शास्त्रों को जानने वाले जिन्दापीर जैसे हैं।''

मुस्लिम चौधरी की रघुनाथ के प्रति स्नेह रूपी आर्द्रता—
एत शुनि' सेइ म्लेच्छेर मन आर्द्र हैल।
दाड़ि वहि' अश्रु पड़े, काँदिते लागिल॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास के इन वचनों को सुनकर उस म्लेच्छ चौधरी का मन नर्म हो गया। वह रोने लगा, उसके नेत्रों से इतने अधिक अश्रु प्रवाहित होने लगे कि उसकी दाढ़ी भीग गयी।

म्लेच्छ बले,—''आजि हैते तुमि—मोर 'पुत्र'।
आजि छाड़ाइमु तोमा' करि' एक सूत्र॥'' ३० ॥

३०। प० अनु०—म्लेच्छ ने कहा,—''आज से तुम मेरे पुत्र हो। मैं आज ही कोई-न-कोई उपाय निकालकर तुम्हें वजीर के हाथों से छुड़ाऊँगा।''

अनुभाष्य

३०। सूत्र—चलती भाषा में 'छूता' (छल)।

वजीर को बतलाकर रघुनाथ का बन्धन-खोलना—
उजिरे कहिया रघुनाथे छाड़ाइल।
प्रीति करि' रघुनाथे कहिते लागिल॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—उस म्लेच्छ चौधरी ने वजीर को कहकर श्रीरघुनाथ दास को छुड़वाया तथा उन्हें बहुत प्यार करके कहने लगा—।

हिरण्यदास की स्वार्थपरायणता और धन के लोभ के कारण लोभी मुस्लिम चौधरी द्वारा तिरस्कार—
''तोमार ज्येठा निर्बुद्धि अष्टलक्ष खाय।
आमि-भागी, आमारे किछु दिवारे जुयाय॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०—''तुम्हारे ताऊ निर्बुद्धि हैं, वह अकेले आठ लाख मुद्राएँ खा जाते हैं। मैं भी तो उसका भागीदार हूँ, कुछ-न-कुछ तो मुझे भी देना चाहिए।

रघुनाथ के प्रति स्नेह-आर्द्रता के कारण दोनों का मिलन सम्पादन—
जाह तुमि, तोमार ज्येठारे मिलाह आमारे।
जे-मते भाल हय करुन, भार दिलुँ तोरे॥'' ३३ ॥

३३। प० अनु०—''तुम अपने घर जाओ तथा मुझे अपने ताऊ से मिलवाओ। जिस प्रकार से अच्छा हो, वैसा करो, मैं सारा दायित्व तुम्हें सौंपता हूँ।''

रघुनाथ आसि' तबे ज्येठारे मिलाइल।
म्लेच्छ-सहित वश कैला—सब शान्त हैल॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास अपने घर लौट आये। उन्होंने अपने ताऊ को मुस्लिम चौधरी से मिलवाया। इस प्रकार श्रीरघुनाथ दास ने म्लेच्छ चौधरी तक जैसे व्यक्ति को भी वशीभूत कर लिया। सब कुछ शान्त हो गया।

इस प्रकार वर्ष के अन्त में पुनः भागने का प्रयास—
एइमत रघुनाथेर वत्सरेक गेल।
द्वितीय वत्सरे पलाइते मन कैल॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—इस प्रकार श्रीरघुनाथ दास का एक वर्ष व्यतीत हो गया। दूसरे वर्ष उनकी वहाँ से भाग खड़े होने की इच्छा हुई।

रात्रि में भागना, मार्ग में पकड़े जाना और घर में लाना—
रात्रे उठि' एकेला चलिला पलाञा।
दूर हैते पिता ताँरे आनिल धरिया॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास रात्रि के समय उठकर अकेले ही निकल पड़े। उनके पिता जी उन्हें

बहुत दूर से पकड़कर ले आये।

पुनः पुनः भागना और पकड़े जाने पर बन्धन दशा को प्राप्त—

एइमते बारे बारे पलाय, धरि' आने।
तबे ताँर माता कहे ताँर पिता-सने॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—इस प्रकार श्रीरघुनाथ दास बार-बार अपने घर से भाग जाते तथा उनके पिता उन्हें पकड़कर ले आते। एक बार श्रीरघुनाथ दास की माता ने उनके पिता से कहा—।

पत्नी के द्वारा पुत्र के बन्धन के लिये अनुरोध करने पर गोवर्धन दास की उक्ति—

''पुत्र 'वातुल' हइल, राखह बान्धिया।''
ताँर पिता कहे तारे निर्विण्ण हञा॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—''हमारा पुत्र पागल हो गया है, आप उसे बाँधकर रखो।'' श्रीरघुनाथ दास के पिता ने दुःखित होकर उनसे कहा—।

अनुभाष्य

३८। निर्विण्ण,—कातर अथवा दुःखित।

''इन्द्रसम ऐश्वर्य, स्त्री अप्सरा-सम।
ए सब बान्धिते नारिलेक जाँर मन॥ ३९ ॥

देह के जनक (पिता) अथवा शौक्र जन्म-दाता पिता जीव के प्रारब्ध-अप्रारब्ध कर्म नाशक नित्यप्रभु अथवा ईश्वर नहीं—

दड़ि बन्धने ताँरे राखिबा केमते?
जन्मदाता पिता नारे 'प्रारब्ध' खण्डाइते॥ ४० ॥

३९-४०। प० अनु०—''इन्द्र के समान ऐश्वर्य तथा अप्सरा के समान स्त्री ही जिसके मन को नहीं बाँध सके, तो फिर उसे रस्सी के बन्धन में बाँधकर कैसे रखोगी? वास्तव में जन्म देने वाला पिता भी पुत्र के प्रारब्ध को नहीं मिटा सकता।

अमृतप्रवाह भाष्य

४०। प्रारब्ध,—पूर्व जन्मों के वह सब कर्म, जो फलोन्मुख हुए हैं।

चैतन्य में आविष्ट सेवक ही मुक्त अथवा अप्राकृत—

चैतन्यचन्द्रेर कृपा हञाछे इँहारे।
चैतन्यप्रभुर 'वातुल' के राखिते पारे??'' ४१ ॥

४१। प० अनु०—''रघुनाथ पर श्रीचैतन्यचन्द्र की कृपा हुई है, श्रीचैतन्य महाप्रभु के पीछे 'पागल' व्यक्ति को कौन रख सकता है?''

नित्यानन्दप्रभु के पाणिहाटि में आने पर रघुनाथ के द्वारा उनके चरण-दर्शन—

तबे रघुनाथ किछु विचारिला मने।
नित्यानन्द-गोसाञि पाश चलिला आर दिने॥ ४२॥

४२। प० अनु०—तब श्रीरघुनाथ दास ने मन-ही-मन कुछ विचार किया तथा अगले दिन वे श्रीनित्यानन्द गोसाञि के दर्शन के लिये चल दिये।

नित्यानन्दप्रभु के साथ बहुत से सेवक और कीर्त्तन का गान करने वाले—

पाणिहाटि-ग्रामे पाइला प्रभुर दरशन।
कीर्त्तनीया सेवक सङ्गे आर बहुजन॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास को पाणिहाटि ग्राम में श्रीनित्यानन्द प्रभु के दर्शन हुए। श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ कीर्त्तन करने वाले तथा अन्यान्य बहुत से सेवक थे।

गङ्गा के तट पर वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर नित्यानन्द प्रभु एवं भूमि पर सङ्गीगणों का बैठना—

गङ्गातीरे वृक्ष-मूले पिण्डार उपरे।
बसियाछेन प्रभु,—जेन सूर्योदय करे॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु गङ्गा के तट पर वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर बैठे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सूर्य उदित हुए हों।

नित्यानन्द के दर्शन से रघुनाथ में विस्मय और दण्डवत् प्रणाम—

तले-उपरे बहुभक्त हञाछे वेष्टित।
देखि' प्रभुर प्रभाव रघुनाथ—विस्मित॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु चबूतरे के ऊपर तथा नीचे बैठे बहुत से भक्तों से घिरे हुए थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रभाव को देखकर श्रीरघुनाथ दास विस्मित हो गये।

दण्डवत् हञा पड़िला कतदूरे।
सेवक कहे,—''रघुनाथ दण्डवत् करे॥'' ४६ ॥

४६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास बहुत दूर से ही दण्डवत् होकर श्रीनित्यानन्द प्रभु को प्रणाम करने लगे। श्रीनित्यानन्द प्रभु के सेवक ने कहा, ''रघुनाथ आपको दण्डवत् प्रणाम कर रहा है।''

अन्तरङ्ग और निजजन मानकर रघुनाथ के प्रति नित्यानन्द प्रभु की कृपा—

शुनि' प्रभु कहे,—''चोरा दिलि दरशन।
आय, आय, आजि तोर करिमु दण्डन॥'' ४७ ॥

४७। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास के आने की बात को सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा,—''हे चोरा (छिपकर रहने वाले), आज तुम आकर मिले हो, आओ, आओ! आज मैं तुम्हें दण्डित करूँगा।''

रघुनाथ के सिर पर अपने चरण-स्थापन करके कृपा—

प्रभु बोलाय, तेंहो निकटे ना करे गमन।
आकर्षिया ताँर माथे धरिला चरण॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीरघुनाथ दास को बुला रहे थे और श्रीरघुनाथ उनके निकट आ ही नहीं रहे थे। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उन्हें अपनी ओर खींचकर उनके सिर पर अपने चरण रख दिये।

नित्यानन्द की अहैतुकी दया—

कौतुकी नित्यानन्द सहजे दयामय।
रघुनाथे कहे किछु हञा सदय॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—कौतुक करने वाले श्रीनित्यानन्द प्रभु स्वभाव से ही दयामय हैं। उन्होंने दया से भरकर श्रीरघुनाथ से कहा—।

अपने भक्तों के भोजन के सम्पादन के लिये रघुनाथ को आदेश रूपी दण्ड प्रदान; अर्थात् दण्ड-महोत्सव लीला के द्वारा धनवान भोगी विषयी का नित्यानन्दगण अर्थात् शुद्धभक्तों की सेवा से ही वित्त शाठ्य रूपी अनर्थ का नाश और नित्यमङ्गल उदय रूपी शिक्षा-प्रदान—

''निकटे ना आइस, चोरा, भाग' दूरे दूरे।
आजि लाग् पाञाछि, दण्डिमु तोमारे॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—''हे चोरा (छिपकर रहने वाले)! तुम निकट भी नहीं आ रहे हो, दूर-दूर भागते रहते हो। किन्तु आज तुम पकड़ में आ गये हो, मैं तुम्हें दण्डित करूँगा।

अनुभाष्य

५०। लाग्—स्पर्श, साक्षात्कार, सन्धान, सङ्ग।

दधि, चिड़ा भक्षण कराह मोर गणे।''
शुनिया आनन्द हैल रघुनाथेर मने॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—''तुम दही और चिड़वा लाकर मेरे भक्तों को खिलाओ।'' श्रीनित्यानन्द प्रभु के वचन सुनकर श्रीरघुनाथ दास के हृदय में बहुत आनन्द हुआ।

अपने गाँव से चिड़ा-महोत्सव के द्रव्य आदि को मँगवाना—

सेइक्षणे निज-लोक पाठाइला-ग्रामे।
भक्ष्य-द्रव्य लोक सब ग्राम हैते आने॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास ने उसी समय अपने सेवकों को खाद्य-सामग्री लाने के लिये गाँव में भेजा। वे लोग अपने साथ समस्त खाद्य-सामग्री ले आये।

चिड़ा, दधि, दुग्ध, सन्देश, आर चिनि, कला।
सब द्रव्य आनाञा चौदिके धरिला॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास ने चिड़वा, दही, दूध, सन्देश, चीनी तथा केला—इन सब सामग्रियों को मगँवाकर चारों ओर रख दिया।

महोत्सव-वर्णन—

'महोत्सव'-नाम शुनि' ब्राह्मण-सज्जन।
आसिते लागिल लोक असंख्य-गणन॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—महोत्सव का नाम सुनकर असंख्य ब्राह्मण एवं सज्जन व्यक्ति वहाँ पर आकर उपस्थित होने लगे।

आर ग्रामान्तर हैते सामग्री आनिल।
शत दुइ-चारि होल्ना आनाइल॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास ने अन्य-अन्य गाँवों से भी सामग्री मँगवाई। उन्होंने दो-चार सौ मिट्टी के बने पात्र भी मँगवाये।

अमृतप्रवाहभाष्य

५५। होल्ना,—मिट्टी के पात्र (माल्सा)।

बड़ बड़ मृत्कुण्डिका आनाइल पाँच-साते।
एक विप्र प्रभु लागि' चिड़ा भिजाय ताते॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास ने पाँच-सात बड़ी-बड़ी मिट्टी की बनी हाण्डियाँ भी मँगवायी तथा एक ब्राह्मण उन पात्रों में श्रीनित्यानन्द प्रभु के लिये चिड़वा भिगोने लगे।

एक-ठाञि तप्त-दुग्धे चिड़ा-भिजाञा।
अर्द्धेक छानिल दधि, चिनि, कला दिया॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—एक ओर गर्म दूध में चिड़वा भिगाया गया तथा दूसरी ओर आधे चिड़वे में दही, चीनी तथा केला मिलाया गया।

आर अर्द्धेक घनावृत-दुग्धेते छानिल।
चाँपाकला, चिनि, घृत, कर्पूर ताते दिल॥ ५८॥

५८। प० अनु०—बचे हुए आधे चिड़वे अर्थात् पहले दूध में भीगे हुए चिड़वे को घने दूध में मिला दिया तथा फिर उसमें चाँपाकला के नाम से प्रसिद्ध विशेष केले, चीनी, घी और कर्पूर को भी मिला दिया।

प्रभु का चबूतरे के ऊपर बैठना—

धुति परि' प्रभु यदि पिण्डाते बसिला।
सात कुण्डी विप्र ताँर आगेते धरिला॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु जब नयी धोती पहनकर चबूतरे पर बैठे, तब ब्राह्मण ने सात हाण्डियाँ उनके समक्ष रख दी।

वटवृक्ष के नीचे चबूतरे के ऊपर प्रभु के सङ्गी भक्तों का बैठना—

चबुतरा-उपरे जत प्रभुर निजगणे।
बड़-बड़ लोक बसिला मण्डली-रचने॥ ६० ॥

नित्यानन्दप्रभु के गणों का बैठना—

रामदास, सुन्दरानन्द, दास-गदाधर।
मुरारि, कमलाकर, सदाशिव, पुरन्दर॥ ६१ ॥
धनञ्जय, जगदीश, परमेश्वर-दास।
महेश, गौरीदास, होड़-कृष्णदास॥ ६२ ॥
उद्धारण दत्त आदि जत निज-जन।
उपरे बसिला सब, के करे गणन?? ६३ ॥

६०-६३। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के उन्नत अवस्था वाले अन्तरङ्ग भक्त क्रमशः श्रीरामदास, श्रीसुन्दरानन्द, श्रीदास गदाधर, श्रीमुरारि, श्रीकमलाकर, श्रीसदाशिव, श्रीपुरन्दर, श्रीधनञ्जय, श्रीजगदीश, श्रीपरमेश्वर दास, श्रीमहेश, श्रीगौरीदास, श्रीहोड़ कृष्णदास तथा श्रीउद्धारण दत्त आदि मण्डली बनाकर चबूतरे पर ही बैठ गये। चबूतरे पर बैठने वाले समस्त भक्तों की कौन गणना कर सकता है?

अनुभाष्य

६०। चबूतरा—चत्वर, चाताल, घर की भूमि के अन्यान्य स्थानों से संलग्न ऊँचा स्थान।

अनुभाष्य

६१। रामदास,—अभिराम ठाकुर (गोपाल), आदि-लीला के दशम परिच्छेद की ११६ वीं और ११८ वीं संख्या एवं आदि-ललिा के एकादश परिच्छेद की १३

वीं और १६ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

सुन्दरानन्द—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की २३ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

दास-गदाधर—आदि-लीला के दशम परिच्छेद की ५३ वीं संख्या का अनुभाष्य और आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की १३-१४; १७ वीं संख्या द्रष्टव्य।

मुरारि—इस स्थान पर मुरारि चैतन्यदास (नित्यानन्द-गण, अतएव 'मुरारि गुप्त' नहीं)—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की २० वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

कमलाकर—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की २४ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

सदाशिव—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की ३८ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

पुरन्दर—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की २८ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

अनुभाष्य

६२। धनञ्जय,—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की ३१ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

जगदीश,—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की ३० वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

परमेश्वर-दास,—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की २९ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

महेश,—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की ३२ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

गौरीदास,—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की २६ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

कृष्णदास होड़,—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की ४७ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

अनुभाष्य

६३। उद्धारण,—आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की ४१ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

वैष्णवों के प्रति जातिबुद्धि रहित ब्राह्मणों द्वारा महाप्रसाद का सम्मान—

शुनि' पण्डित भट्टाचार्य जत विप्र आइला।
मान्य करि' प्रभु सबारे उपरे बसाइला॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—महोत्सव की बात सुनकर विद्वान् भट्टाचार्य आदि जितने ब्राह्मण आये, श्रीनित्यानन्द प्रभु ने उन सबको सम्मानपूर्वक ऊपर चबूतरे पर बैठाया।

दुइ दुइ मृत्कुण्डिका सबार आगे दिल।
एके दुग्ध-चिड़ा, आरे दधि-चिड़ा कैल॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—दो-दो मिट्टी के पात्र सबके आगे रखे गये। एक पात्र में दूध में भिगोया गया चिड़वा तथा दूसरे में दही में भिगोया गया चिड़वा परोसा गया।

आर जत लोक सब चौतरा-तलाने।
मण्डली-बन्ध बसिला, तार ना हय गणने॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—चबूतरे के चारों ओर भूमि पर मण्डली बनाकर जितने लोग बैठे थे, उनकी भी गणना नहीं की जा सकती।

एकेक जनारे दुइ दुइ होल्ना दिल।
दधि-चिड़ा, दुग्ध-चिड़ा, दुइते भिजाइल॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—प्रत्येक व्यक्ति को दो-दो मिट्टी के पात्र दिये गये, जिनमें से एक में दही-चिड़वा तथा दूसरे में दूध-चिड़वा भिगोया गया था।

कोन कोन विप्र उपरे स्थान ना पाञा।
दुइ होल्नाय चिड़ा भिजाय गङ्गातीरे गिया॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—कुछ-कुछ ब्राह्मण चबूतरे के ऊपर स्थान नहीं मिलने पर दोनों मिट्टी के पात्रों को लेकर गङ्गा के तट पर चले गये तथा वहीं चिड़वे को भिगोने लगे।

तीरे स्थान ना पाञा आर कत जन।
जले नामि' दधि-चिड़ा करये भक्षण॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—अनेक व्यक्तियों को गङ्गा के तट पर भी स्थान नहीं मिला, इसलिए वे गङ्गा के जल में

खड़े होकर दही-चिड़वा आदि भक्षण करने लगे।

केह उपरे, केह तले, केह गङ्गातीरे।
बिशजन तिन-ठाञि परिवेशन करे॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—कोई चबूतरे के ऊपर, कोई चबूतरे के नीचे भूमि पर, कोई गङ्गा के तट पर बैठा हुआ था, तीन स्थानों पर बैठे इन सभी व्यक्तियों को बीस जन परिवेशन करने लगे।

प्रसाद के साथ राघव-पण्डित का वहाँ आगमन—
हेनकाले आइला तथा राघव-पण्डित।
हासिते लागिला देखि' हञा विस्मित॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—उसी समय श्रीराघव पण्डित वहाँ पर आ गये तथा वहाँ के दृश्य को देखकर विस्मित होकर मुस्कुराने लगे।

सर्वप्रथम नित्यानन्द को, बाद में भक्तों को प्रसाद-प्रदान—
नि-सक्‌ड़ि नानामत प्रसाद आनिला।
प्रभुरे आगे दिया भक्तगणे बाँटि' दिला॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित अनेक प्रकार का नि-सक्‌ड़ि प्रसाद लेकर आये, उन्होंने अग्रभाग श्रीनित्यानन्द को देने के पश्चात् बचा हुआ अन्य भक्तों में बाँट दिया।

अनुभाष्य

७२। नि-सक्‌ड़ि,—जो सक्‌ड़ि (अन्न के स्पर्श से अपवित्र) नहीं है।

भोजन करने के लिये नित्यानन्द प्रभु से अनुरोध—
प्रभुरे कहे,—''तोमा लागि' भोग लागाइल।
तुमि इँहा उत्सव कर, घरे प्रसाद रहिल॥'' ७३ ॥

७३। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित ने श्रीनित्यानन्द प्रभु से कहा,—''मैंने आपके उद्देश्य से घर पर भोग लगाया है और आप हैं कि यहाँ पर उत्सव कर रहे हैं तथा घर पर प्रसाद रखा हुआ है।''

नित्यानन्द प्रभु का गोप के अभिमान में व्रजलीला का उद्दीपन—
प्रभु कहे,—''ए-द्रव्य दिने करिये भोजन।
रात्र्ये तोमार घरे प्रसाद करिमु भक्षण॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कहा,—''मैं अभी दिन में इन द्रव्यों का भोजन करता हूँ तथा रात्रि के समय तुम्हारे घर पर प्रसाद ग्रहण करूँगा।

सखाओं के साथ यमुना तट पर पुलिन भोजन का आनन्द—
गोप-जाति आमि बहु गोपगण-सङ्गे।
आमि सुख पाइ एइ पुलिन भोजन-रङ्गे॥'' ७५ ॥

७५। प० अनु०—''मैं गोपजाति का हूँ तथा मेरे साथ बहुत से गोप हैं। मुझे नदी के तट पर पुलिन भोजन करने में बहुत अधिक आनन्द की प्राप्ति होती है।''

राघव का भी वहाँ भोजन सम्पादन—
राघवे बसाञा दुइ कुण्डी देओयाइला।
राघव द्विविध चिड़ा ताते भिजाइला॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीराघव पण्डित को बैठाया तथा उन्हें दो मिट्टी के पात्र दिलाये। श्रीराघव पण्डित ने दो प्रकार का चिड़वा उनमें भिगोया।

महाप्रभु को महोत्सव के बीच में ध्यान के माध्यम से लाना—
सकल-लोकेर चिड़ा पूर्ण जबे हइल।
ध्याने तबे प्रभु महाप्रभुरे आनिल॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—जब समस्त भक्तों में चिड़वा वितरित हो गया, तब श्रीनित्यानन्द प्रभु ध्यान में श्रीमन्महाप्रभु को वहाँ पर ले आये।

महाप्रभु के सङ्ग में नित्यानन्द प्रभु का भोग-सन्दर्शन—
महाप्रभु आइला देखि' निताइ उठिला ।
ताँरे लञा सबार चिड़ा देखिते लागिला ॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को आये देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु उठ खड़े हुए तथा उन्हें अपने साथ लेकर वे सभी को दिये गये चिड़वे को देखने लगे।

महाप्रभु के मुख में एक-एक ग्रास-प्रदान—

सकल कुण्डीर, होल्नार चिड़ार एक एक ग्रास ।
महाप्रभुर मुखे देन करि' परिहास ॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु मिट्टी के बने समस्त पात्रों में से एक-एक ग्रास को लेकर परिहास करते हुए श्रीमन्महाप्रभु के मुख में देने लगे।

महाप्रभु के द्वारा भी निताई के मुख में एक ग्रास-प्रदान—

हासि' महाप्रभु आर एक ग्रास लञा।
ताँर मुखे दिया खाओयाय हासिया हासिया॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—मुस्कराते हुए श्रीमन्महाप्रभु भी एक अन्य ग्रास लेकर हँसते-हँसते श्रीनित्यानन्द प्रभु के मुख में देने लगे।

भक्तों के चारों ओर निताई के द्वारा भ्रमण-रङ्ग-दर्शन—

एइमत निताई बुले सकल मण्डले।
दाण्डाइया रङ्ग देखे वैष्णव-सकले॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०— इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रत्येक मण्डली में भ्रमण कर रहे थे तथा समस्त वैष्णव खड़े होकर इस आनन्दोत्सव को देख रहे थे।

दोनों का आनन्द—किसी के लिये अदृश्य, सुकृति सम्पन्न किसी के लिये दृश्य—

कि करिया बेड़ाय,—इहा केह नाहि जाने।
महाप्रभुर दर्शन पाय कोन भाग्यवाने॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु किसलिए भ्रमण कर रहे थे,—इसे कोई भी नहीं जानता था, किसी-किसी सौभाग्यशाली व्यक्ति को ही श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन हो रहे थे।

महाप्रभु के लिये दो पात्रों में दूध-चिड़ा और दो पात्रों में दही-चिड़ा—

तबे हासि' नित्यानन्द बसिला आसने।
चारि कुण्डी आरोया-चिड़ा राखिला डाहिने॥ ८३॥

८३। प० अनु०—तब श्रीनित्यानन्द प्रभु मुस्कुराकर अपने आसन पर बैठ गये, उन्होंने चार हाण्डियों में आरोया-चिड़वा डालकर अपनी दाईं ओर रख दिया।

अमृतप्रवाह भाष्य

८३। आरोया-चिड़ा,—आतप-चिड़ा।

महाप्रभु और नित्यानन्दप्रभु का भोजन—

आसन दिया महाप्रभुरे ताँहा बसाइला।
दुइ भाइ तबे चिड़ा खाइते लागिला॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने वहाँ पर श्रीमन्महाप्रभु को आसन देकर बैठाया, तब दोनों भाई चिड़वा खाने लगे।

निताइ का भावावेश—

देखि' नित्यानन्द प्रभु आनन्दित हैला।
कत कत भावावेश प्रकाश करिला॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को चिड़वा खाते देखकर श्रीनित्यानन्द प्रभु बहुत आनन्दित हुए, उन्होंने अनेक प्रकार के भावावेशों को प्रकाशित किया।

हरिध्वनिपूर्वक भोजन का आदेश—

आज्ञा दिला,—'हरि बलि' करह भोजन'।
'हरि' 'हरि'-ध्वनि उठि' भरिल भुवन॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने सभी को आज्ञा देते हुए कहा,—''हरि-हरि उच्चारण करते हुए भोजन करो।'' सभी 'हरि' 'हरि' ध्वनि करने लगे, जिससे समस्त भुवन गुञ्जायमान हो उठा।

वैष्णवों का भोजन और व्रज के पुलिन के भोजन का उद्दीपन—

'हरि' 'हरि' बलि' वैष्णव करये भोजन।
पुलिन-भोजन सबार हइल स्मरण॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—समस्त वैष्णव 'हरि', 'हरि' बोलते हुए भोजन करने लगे, सभी को श्रीकृष्ण के पुलिन-भोजन का स्मरण हो आया।

रघुनाथ पर दोनों प्रभुओं की कृपा–

नित्यानन्द, महाप्रभु—कृपालु, उदार।
रघुनाथेर भाग्ये एत कैला अङ्गीकार॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु और श्रीमन्महाप्रभु कृपालु तथा उदार हैं, यह तो श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी का सौभाग्य ही था कि उन्होंने उनके द्वारा प्रदत्त चिड़वा आदि अङ्गीकार किया।

नित्यानन्द के प्रेम के वशीभूत महाप्रभु–

नित्यानन्द-प्रभाव-कृपा जानिबे कोन् जन?
महाप्रभु आनि' कराय पुलिन-भोजन॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—उन श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रभाव तथा उनकी कृपा को कौन जान सकता है? जिन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को लाकर पुलिन-भोजन कराया।

अभिराम ठाकुर आदि को गोप भाव से यमुना के तट पर पुलिन भोजन का उद्दीपन–

श्रीरामदासादि गोप प्रेमाविष्ट हैला।
गङ्गातीरे 'यमुना-पुलिन'-ज्ञान कैला॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के पार्षद श्रीरामदास आदि गोप प्रेम में आविष्ट हो गये, उन्होंने गङ्गा के तट को यमुना का पुलिन समझा।

द्रव्य-विक्रयी व्यक्तियों का अपनी वस्तुओं को बेचने के लिये आना, बिक्री के द्वारा अर्थ-लाभ, पुनः बेची गयी वस्तुओं के प्रसाद बनने के बाद उनका भोजन–

महोत्सव शुनि' पसारि नाना-ग्राम हैते।
चिड़ा, दधि, सन्देश, कला आनिल बेचिते॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—महोत्सव की बात सुनकर अनेक गाँवो से पंसारि लोग चिड़वा, दूध, सन्देश तथा केला बेचने के लिये ले आये।

अनुभाष्य

९१। पसारि,—व्यवसायी, दुकानदार।

जत द्रव्य लञा आइसे, सब मूल्य करि' लय।
तार द्रव्य मूल्य दिया ताहारे खाउयाय॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०—पंसारि लोग जितना द्रव्य लेकर आये, श्रीरघुनाथ ने मूल्य स्थिर करके उनसे सबकुछ खरीद लिया तथा बाद में उन्हीं पंसारि लोगों को ही वही वस्तुएँ खिलादी।

आने वाले सभी का ही भोजन–

कौतुक देखिते आइल, जत जत जन।
सेइ चिड़ा, दधि, कला करिल भक्षण॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—जितने लोग कौतुक देखने के लिये आये, उन्होंने भी चिड़वे, दही तथा केले आदि का भोजन किया।

आचमन के अन्त में निताइ के द्वारा रघुनाथ को भुक्तावशेष-प्रदान–

भोजन करि' नित्यानन्द आचमन कैला।
चारि कुण्डीर अवशेष रघुनाथे दिला॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने भोजन करने के पश्चात् आचमन किया, उन्होंने चारों हाण्डियों में बचा हुआ भोजन श्रीरघुनाथ को दे दिया।

भक्तों में प्रसाद का वितरण–

आर तिन कुण्डिकाय अवशेष छिल।
ग्रासे-ग्रासे करि' विप्र सब भक्ते दिल॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—अन्य तीन हाण्डियों में जो अवशेष चिड़वा आदि था, ब्राह्मण ने उसमें से एक-एक ग्रास सभी भक्तों में बाँट दिया।

चन्दन-ताम्बूल के द्वारा प्रभु की सेवा–

पुष्पमाला विप्र आनि' प्रभु-गले दिल।
चन्दन आनिया प्रभुर सर्वाङ्गे लेपिल॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०— ब्राह्मण ने पुष्पमाला लाकर श्रीनित्यानन्द प्रभु के गले में पहनाई तथा चन्दन लाकर श्रीनित्यानन्द प्रभु के समस्त अङ्गों पर लेपन किया।

सेवक ताम्बुल लञा करे समर्पण।
हासिया हासिया प्रभु करये चर्वण॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के एक सेवक ने ताम्बुल लाकर उन्हें समर्पित किया। श्रीनित्यानन्द प्रभु मुस्कुराते हुए उसका चर्वण करने लगे।

सभी भक्तों को उनके अवशेष की प्राप्ति—

माला-चन्दन-ताम्बूल शेष जे आछिल।
श्रीहस्ते प्रभु सबाकारे बाँटि' दिल॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—जितना माला-चन्दन तथा ताम्बुल बचा हुआ था, श्रीनित्यानन्द प्रभु ने स्वयं अपने हाथों से उसे समस्त भक्तों में बाँट दिया।

प्रभु के अवशेष को प्राप्त करने पर रघुनाथ का आनन्द—

आनन्दित रघुनाथ प्रभुर 'शेष' पाञा।
आपनार गण-सह खाइला बाँटिया॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—श्रीरघुनाथ श्रीमन्महाप्रभु के उच्छिष्ट प्रसाद को प्राप्त करके बहुत आनन्दित हुए तथा उन्होंने उसे अपने सङ्गियों-साथियों के साथ मिल-बाँटकर खाया।

इसलिए ही चिड़ा-दधि-महोत्सव नामक संज्ञा—

एइ त' कहिलुँ नित्यानन्देर विहार।
'चिड़ा-दधि-महोत्सव'-नामे ख्याति जार॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीनित्यानन्द प्रभु के विहार का वर्णन किया, जो 'चिड़ा- दधि-महोत्सव' के नाम से भी विख्यात है।

सन्ध्या के समय राघव के मन्दिर में कीर्त्तन—

प्रभु विश्राम कैला, यदि दिन-शेष हैल।
राघव-मन्दिरे तबे कीर्त्तन आरम्भिल॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—चिड़ा-दधि-महोत्सव के समाप्त होने पर श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कुछ समय विश्राम किया। जैसे ही सन्ध्या का समय हुआ, उसी समय श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीराघव पण्डित के घर पर कीर्त्तन आरम्भ किया।

कीर्त्तन में नित्यानन्द प्रभु का नृत्य—

भक्त सब नाचाञा नित्यानन्द-राय।
शेषे नृत्य करे प्रेमे जगत् भासाय॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कीर्त्तन में सर्वप्रथम सभी भक्तों को नृत्य कराया तथा बाद में उन्होंने स्वयं भी नृत्य करके सम्पूर्ण जगत् को प्रेम में निमग्न कर दिया।

महाप्रभु के द्वारा नित्यानन्द के नृत्य का दर्शन—

महाप्रभु ताँर नृत्य करेन दरशन।
सबे नित्यानन्द देखे, ना देखे अन्यजन॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु भी श्रीनित्यानन्द प्रभु के नृत्य का दर्शन करने लगे, श्रीमन्महाप्रभु को एकमात्र श्रीनित्यानन्द प्रभु ही देख पा रहे थे, अन्य कोई भी नहीं।

महाप्रभु के नृत्य की ही नित्यानन्द के अनुपम नृत्य के साथ एकमात्र तुलना—

नित्यानन्देर नृत्य,—जेन ताँहार नर्त्तने।
उपमा दिवार नाहि ए-तिन भुवने॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के नृत्य की तुलना केवलमात्र श्रीमन्महाप्रभु के नृत्य से ही की जा सकती है, उनके नृत्य की तुलना त्रिभुवन में अन्य किसी के नृत्य से नहीं की जा सकती।

महाप्रभु के द्वारा नित्यानन्दप्रभु के नृत्य के माधुर्य का दर्शन—

नृत्येर माधुरी केबा वर्णिवारे पारे।
महाप्रभु आइसे जेइ नृत्य देखिबारे॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के ऐसे नृत्य की मधुरिमा का कौन वर्णन कर सकता है, जिसे देखने के लिये स्वयं श्रीमन्महाप्रभु आते हैं।

नृत्य के कारण विश्राम करने के बाद निताइ का अपने भक्तों सहित राघव के घर में रात्रि-भोजन—

नृत्य करि' प्रभु जबे विश्राम करिला।
भोजनेर लागि' पण्डित निवेदन कैला॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने नृत्य करने के पश्चात् कुछ समय तक विश्राम किया, उसके

पश्चात् श्रीराघव पण्डित ने आकर श्रीनित्यानन्द प्रभु को भोजन करने के लिये निवेदन किया।

निताई के दक्षिण में प्रभु के भोजन करने के लिये आसन–

भोजने बसिला प्रभु निजगण लञा।
महाप्रभुर आसन डाहिने पातिया॥ १०७ ॥

१०७। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने निजजनों के साथ भोजन करने के लिये बैठे, उन्होंने अपनी दाईं ओर श्रीमन्महाप्रभु के लिए आसन बिछाया।

महाप्रभु को उस आसन पर बैठे देखकर राघव में हर्ष–

महाप्रभु आसि' सेइ आसने बसिला।
देखि' राघवेर मने आनन्द बाड़िला॥ १०८ ॥

१०८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु आकर उस आसन पर बैठ गये, उन्हें आये देखकर श्रीराघव पण्डित के मन का आनन्द वर्धित हो गया।

सर्वप्रथम दोनों प्रभु, बाद में भक्तों के द्वारा प्रसाद का सेवन–

दुइ भाइ-आगे प्रसाद आनिया धरिला।
सकल वैष्णवे पिछे परिवेशन कैला॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित ने श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु—इन दोनों भाइयों के समक्ष प्रसाद लाकर परोसा, तत्पश्चात् उन्होंने समस्त वैष्णवों को भी प्रसाद का परिवेशन किया।

राघव के घर में प्रसाद की विचित्रता का वर्णन–

नानाप्रकार पिठा, पायस, दिव्य शाल्य-अन्न।
अमृत निन्दये ऐछे विविध व्यञ्जन॥ ११० ॥

११०। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित के घर पर प्रस्तुत किये गये अनेक प्रकार के पीठे, खीर, दिव्य शाल्य-अन्न (चावल) आदि अनेक प्रकार के व्यञ्जन अमृत को भी तिरस्कृत करने वाले थे।

राघव के घर में बनाये गये नैवेद्य आदि—प्रभु को नित्यप्रिय–

राघव-ठाकुरेर प्रसाद अमृतेर सार।
महाप्रभु जाहा खाइते आइसे बार-बार॥ १११ ॥

१११। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित के द्वारा निवेदित प्रसाद अमृत के सार स्वरूप होता, जिसे खाने के लिये श्रीमन्महाप्रभु बारम्बार उनके घर पर आते थे।

महाप्रभु के उद्देश्य से प्रतिदिन पृथक भोग और प्रभु के द्वारा उसका भोजन–

पाक करि' राघव जबे भोग लागाय।
महाप्रभुर लागि' भोग पृथक् बाड़य॥ ११२ ॥

११२। प० अनु०—रसोई बनाने के बाद जब श्रीराघव पण्डित भोग लगाते, तो वे श्रीमन्महाप्रभु के लिये अलग से भोग लगाते थे।

प्रतिदिन महाप्रभु करेन भोजन।
मध्ये मध्ये कभु ताँरे देन दरशन॥ ११३ ॥

११३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु नित्यप्रति श्रीराघव पण्डित के घर पर भोजन करते तथा कभी-कभी बीच-बीच में श्रीराघव पण्डित को अपने दर्शन देते।

राघव के द्वारा दोनों प्रभुओं के भोजन का सम्पादन–

दुइ भाइरे राघव आनि' परिवेशे।
यत्न करि' खाओयाय, ना रहे अवशेषे॥११४॥

११४। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु—इन दोनों भाइयों को बुलाकर परिवेशन करते तथा बहुत यत्न करके खिलाते, जिससे बनाये गये भोजन में से कुछ भी अवशेष नहीं बचता।

दोनों प्रभुओं के द्वारा बहुत से विचित्र प्रसाद का सम्पूर्ण रूप से सेवन–

कत उपहार आने, हेन नाहि जानि।
राघवेर घरे रान्धे राधा-ठाकुराणी॥ ११५ ॥

११५। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित न जाने कितने प्रकार के व्यञ्जन-पकवान आदि लेकर आते, वास्तव में श्रीराघव पण्डित के घर पर स्वयं श्रीराधा रानी ही रन्धन करती थी।

राघव के घर में स्वयं श्रीराधिका का कृष्ण के उद्देश्य से अमृत को भी निन्दित करने वाले भोजन का रन्धन—

दुर्वासार ठाञि तेंहो पाञाछेन वर।
अमृत हइते पाक ताँर अधिक मधुर॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०—श्रीराधा रानी को दुर्वासा ऋषि से वरदान प्राप्त हुआ था कि उनके द्वारा बनायी गयी भोजन सामग्री अमृत से भी अधिक मधुर होगी।

दोनों प्रभुओं के द्वारा उनके अन्न का भोजन करने में आनन्द—

सुगन्धि सुन्दर प्रसाद—माधुर्येर सार।
दुइ भाइ ताहा खाञा सन्तोष अपार॥ ११७ ॥

११७। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित द्वारा परिवेशन किया गया सुगन्धित सुन्दर प्रसाद माधुर्य का सार था, दोनों भाई उसे पाकर अत्यन्त सन्तुष्ट होते।

सभी भक्तों का बैठना, रघुनाथ को भोजन के लिये अनुरोध, रघुनाथ के द्वारा बाद में बैठना स्वीकार—

भोजने बसिते रघुनाथे कहे सर्वजन।
पण्डित कहे,—''इँह पाछे करिबे भोजन॥'' ११८॥

११८। प० अनु०—जब सभी भक्त बारम्बार श्रीरघुनाथ को भोजन करने हेतु बैठने के लिये कह रहे थे, तब श्रीराघव पण्डित ने उनसे कहा—''रघुनाथ बाद में भोजन करेगा।''

भक्तों का कण्ठपर्यन्त भोजन और आचमन—

भक्तगण आकण्ठ भरिया करिल भोजन।
'हरि' ध्वनि करि' उठि' कैल आचमन॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०—सभी भक्तों ने आकण्ठ (गले तक) भरकर भोजन किया तथा 'हरि' ध्वनि करते हुए उठकर आचमन किया।

आचमन के बाद दोनों प्रभुओं का माला तथा चन्दन परिधान—

भोजन करि' दुइ भाइ कैला आचमन।
राघव आनि' पराइला माल्य-चन्दन॥ १२० ॥

१२०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द-प्रभु—इन दोनों भाइयों ने भी भोजन करके आचमन किया। श्रीराघव पण्डित माला तथा चन्दन लेकर आए तथा उन्होंने दोनों को माला पहनायी और चन्दन लगाया।

दोनों प्रभुओं द्वारा ताम्बुल-भोजन; सभी को अवशेष की प्राप्ति—

बिड़ा खाओयाइला, कैला चरण-वन्दन।
भक्तगणे दिला बिड़ा, माल्य-चन्दन॥ १२१ ॥

१२१। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित ने दोनों भाईयों को ताम्बूल खिलाया तथा उनके चरणों की वन्दना की। श्रीराघव पण्डित ने उपस्थित भक्तों को भी ताम्बूल तथा माला-चन्दन आदि प्रदान किया।

अनुभाष्य

१२१। बिड़ा,—सजाया हुआ ताम्बुल, पान की पुड़िया।

स्नेह कृपामय राघव का रघुनाथ को दोनों प्रभुओं का उच्छिष्ट पात्र प्रदान—

राघवेर कृपा रघुनाथेर उपरे।
दुइ भाइएर अवशिष्ट पात्र दिला ताँरे॥ १२२ ॥

१२२। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित की श्रीरघुनाथ पर बहुत कृपा थी, उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु का अवशिष्ट पात्र श्रीरघुनाथ को दे दिया।

प्रभु के उच्छिष्ट के सेवन से ही रघुनाथ में गृहत्याग करने का सामर्थ्य—

कहिला,—''चैतन्य गोसाञि कैराछेन भोजन।
ताँर शेष पाइले, तोमार खण्डिबे बन्धन॥'' १२३॥

१२३। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित ने श्रीरघुनाथ से कहा,—''श्रीचैतन्य गोसाञि ने भोजन किया है, उनका अवशिष्ट पाने से तुम्हारा संसार का बन्धन कट जायेगा।''

भगवान् के अवस्थान और स्वभाव का निर्णय—

भक्त-चित्ते भक्त-गृहे सदा अवस्थान।
कभु गुप्त, कभु व्यक्त, स्वतन्त्र भगवान्॥ १२४ ॥

१२४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु स्वतन्त्र भगवान् होने के कारण कभी गुप्त रूप में तथा कभी प्रकाशित रूप में भक्त के चित्त में और भक्त के घर में सदैव वास करते हैं।

प्रभु के विभु होने में संशय करने वालों का विनाश—

सर्वत्र 'व्यापक' प्रभुर सदा सर्वत्र वास।
इहाते संशय जार, सेइ जाय नाश॥ १२५ ॥

१२५। प० अनु०—सर्वत्र व्यापक रहने वाले श्रीमन्महाप्रभु का सदैव सभी स्थानों पर वास होता है। इस बात में जिसे संशय होता है, उसका सर्वनाश हो जाता है।

अगले दिन प्रात: स्नान के बाद वृक्ष के नीचे बैठे निताई के निकट रघुनाथ के द्वारा चैतन्य चरण की प्राप्ति के लिये निवेदन—

प्राते नित्यानन्द प्रभु गङ्गास्नान करिया।
सेइ वृक्षमूले बसिला निजगण लञा॥ १२६ ॥

१२६। प० अनु०—अगले दिन श्रीनित्यानन्द प्रभु प्रात:काल गङ्गास्नान करके अपने निजजनों के साथ उसी वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर बैठ गये।

रघुनाथ आसि' कैला चरण-वन्दन।
राघवपण्डित-द्वारा कैला निवेदन॥ १२७ ॥

१२७। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने आकर श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणों की वन्दना की तथा उन्होंने श्रीराघव पण्डित के माध्यम से श्रीनित्यानन्द प्रभु को निवेदन किया—।

''अधम, पामर मुइ हीन जीवाधम !
मोर इच्छा हय,—पाङ चैतन्य-चरण॥ १२८ ॥

१२८। प० अनु०—''मैं अधम हूँ, पापिष्ठ हूँ, हीन हूँ, समस्त जीवों में से निकृष्ट हूँ। तब भी मेरी इच्छा होती है कि मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों को प्राप्त करूँ।

वामन हञा जेन चान्द धरिवारे चाय।
अनेक यत्न कैनु, ताते कभु सिद्ध नय॥ १२९ ॥

१२९। प० अनु०—''जिस प्रकार एक वामन (बौना) चन्द्र को पकड़ने की इच्छा करने पर भी उसे पकड़ नहीं पाता, उसी प्रकार मैंने भी श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को प्राप्त करने के लिये अनेक प्रयत्न किये, किन्तु कभी भी सफल नहीं हो पाया।

जतबार पलाइ आमि गृहादि छाड़िया।
पिता, माता—दुइ मोरे राखये बान्धिया॥ १३० ॥

१३०। प० अनु०—''मैं ने जितनी बार भी घर आदि को त्यागकर भागने का प्रयास किया, उतनी ही बार मेरे माता-पिता—दोनों ने मुझे पकड़कर बाँधकर रख दिया।

नित्यानन्द (गुरु) कृपा के बिना चैतन्यपद-प्राप्ति असम्भव, उनकी कृपा से अयोग्य में भी उनकी प्राप्ति की योग्यता—

तोमार कृपा बिना केह 'चैतन्य' ना पाय।
तुमि कृपा कैले ताँरे अधमेह पाय॥ १३१ ॥

१३१। प० अनु०—''आपकी कृपा के बिना किसी को भी श्रीचैतन्य महाप्रभु की प्राप्ति नहीं होती, आपकी कृपा होने पर अधम व्यक्ति भी श्रीमन्महाप्रभु की कृपा को प्राप्त कर लेता है।

नित्यानन्द (गुरु) के चरणों में चैतन्यचरण प्राप्त करने के लिये कृपा-भिक्षा की कर्त्तव्यता—

अयोग्य मुइ निवेदन करिते करि भय।
मोरे 'चैतन्य' देह' गोसाञि हञा सदय॥ १३२ ॥

१३२। प० अनु०—''मैं अयोग्य होने के कारण आपसे निवेदन करने में भी भय करता हूँ कि हे गोसाञि! आप मेरे प्रति अत्यन्त दयावान् होकर मुझे श्रीचैतन्यदेव प्रदान कीजिए।

मोर माथे पद धरि' करह प्रसाद।
'निर्विघ्ने चैतन्य पाङ'—कर आशीर्वाद॥'' १३३॥

१३३। प० अनु०—''हे श्रीनित्यानन्द प्रभु! मेरे सिर पर अपने चरण रखकर मुझ पर कृपा कीजिए तथा मुझे आशीर्वाद दीजिए कि मैं निर्विघ्न रूप से श्रीचैतन्य महाप्रभु को प्राप्त करूँ।''

रघुनाथ की चैतन्य-चरण प्राप्त करने की व्याकुलता को देखकर उन्हें कृपाशीर्वाद प्रदान करने के लिये नित्यानन्द प्रभु के द्वारा शुद्धभक्तों के निकट आवेदन—

शुनि' हासि' कहे प्रभु सब भक्तगणे।
''इँहार विषयसुख—इन्द्रसुख-समे॥ १३४ ॥
चैतन्य-कृपाते सेह नाहि भाय मने।
सबे आशीर्वाद कर—पाउक चैतन्य-चरणे॥ १३५॥

१३४-१३५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के निवेदन को श्रीराघव पण्डित के मुख से श्रवण करके श्रीनित्यानन्द प्रभु ने हँसते हुए अपने समस्त भक्तों से कहा,—''रघुनाथ के विषय सुख इन्द्र के सुख के समान हैं, किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से इसे वे सब सुख भी अच्छे नहीं लगते। अतएव आप सभी इसे आशीर्वाद दीजिए कि इसे श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों की प्राप्ति हो।

कृष्ण के चरणकमलों की गन्ध की महिमा और आकर्षण-शक्ति—

कृष्णपादपद्म-गन्ध जेइ जन पाय।
ब्रह्मलोक-आदि सुख ताँरे नाहि भाय॥'' १३६ ॥

१३६। प० अनु०—''वास्तव में जिन्हें श्रीकृष्ण के चरणकमलों की सुगन्ध की प्राप्ति होती है, उन्हें ब्रह्मलोक आदि के सुख भी अच्छे नहीं लगते।''

श्रीमद्भागवत (५.१४.४३) में—

यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः।
जहौ युवैव मलवदुत्तमःश्लोक लालसः॥ १३७ ॥

१३७।अनु०—भरत महाराज ने उत्तमः श्लोक कृष्ण को प्राप्त करने की लालसा से युवावस्था में ही हृदय को चुरा लेने वाली पत्नी, पुत्र, सुहृद और राज्य आदि का मल की भाँति परित्याग किया था;—यही जातभाव व्यक्ति की विरक्ति का लक्षण है।

अनुभाष्य

१३७। मध्य-लीला के त्रयोदश परिच्छेद की २४ वीं संख्या द्रष्टव्य।

रघुनाथ के सिर पर चरण स्थापन करके नित्यानन्दप्रभु के द्वारा रघुनाथ की चैतन्य महाप्रभु की कृपा की प्राप्ति का वर्णन—

तबे रघुनाथे प्रभु निकटे बोलाइला।
ताँर माथे पद धरि' कहिते लागिला॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०—तब श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीरघुनाथ को अपने निकट बुलाया तथा उनके सिर पर अपने चरण रखकर उनसे कहने लगे—।

''तुमि जे कराइला एइ पुलिन-भोजन।
तोमाय कृपा करि' गौर कैला आगमन॥ १३९ ॥

१३९। प० अनु०—''तुमने जो यह पुलिन-भोजन कराया, उसमें तुम पर कृपा करके श्रीगौरसुन्दर भी आये थे।

कृपा करि' कैला चिड़ा-दुग्ध भोजन।
नृत्य देखि' रात्र्ये कैला प्रसाद-भक्षण॥ १४० ॥

१४०। प० अनु०—''श्रीगौरसुन्दर ने तुम पर कृपा करके दूध-चिड़वे का भोजन भी किया। रात्रि के समय में भक्तों के द्वारा किये गये नृत्य को देखकर उन्होंने प्रसाद भी ग्रहण किया।

रघुनाथ के प्रति कृपापूर्वक गौर का आविर्भाव और भोजन के फल से रघुनाथ का विघ्न नाश—

तोमा उद्धारिते गौर आइला आपने।
छुटिल तोमार जत विघ्नादि-बन्धने॥ १४१ ॥

१४१। प० अनु०—''तुम्हारा उद्धार करने के लिये स्वयं श्रीगौरसुन्दर आये, इसी के द्वारा तुम्हारे समस्त बन्धन आदि विघ्न दूर हो गये हैं।

नित्यानन्द प्रभु की भविष्यवाणी–

स्वरूपेर स्थाने तोमा करिबे समर्पणे।
'अन्तरङ्ग' भृत्य बलि' राखिबे चरणे॥ १४२ ॥

१४२। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु तुम्हें स्वरूप दामोदर के हाथों में समर्पित करेंगे अर्थात् सौंप देंगे तथा तुम्हें अपना अन्तरङ्ग सेवक कहकर अपने चरणों में स्थान देंगे।

बिना किसी विघ्न के चैतन्य चरण प्राप्ति का आशीर्वाद-प्रदान–

निश्चिन्त हञा जाह आपन-भवन।
अचिरे निर्विघ्ने पाबे चैतन्य-चरण॥'' १४३ ॥

१४३। प० अनु०—''तुम निश्चिन्त होकर अपने घर लौट जाओ। अतिशीघ्र बिना किसी विघ्न के तुम्हें श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों की प्राप्ति होगी।''

भक्तों के द्वारा रघुनाथ को आशीर्वाद दिलवाना; रघुनाथ के द्वारा भक्तों के चरणों की वन्दना–

सब भक्तद्वारे ताँरे आशीर्वाद कराइला।
ताँ-सबार चरण रघुनाथ वन्दिला॥ १४४ ॥

१४४। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु ने समस्त भक्तों के द्वारा भी श्रीरघुनाथ को आशीर्वाद दिलाया, श्रीरघुनाथ ने भी समस्त भक्तों के चरणों की वन्दना की।

राघव के साथ गुप्त स्थान पर परामर्श–

प्रभु-आज्ञा लञा वैष्णवेर आज्ञा लइला।
राघव-सहिते निभृते युक्ति करिला॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने श्रीनित्यानन्द प्रभु से आज्ञा लेने के पश्चात् उपस्थित समस्त वैष्णवों से आज्ञा ली तथा उन्होंने श्रीराघव पण्डित के साथ एकान्त में कुछ परामर्श किया।

प्रभु के भाण्डारी के हाथ में प्रणामी के उद्देश्य से धन-प्रदान–

युक्ति करि' शत मुद्रा, सोणा-तोला-साते।
निभृते दिला प्रभुर भाण्डारीर हाते॥ १४६ ॥

१४६। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित से परामर्श करने के उपरान्त श्रीरघुनाथ ने श्रीनित्यानन्द प्रभु के भण्डारी को एकान्त में एक सौ स्वर्ण की मुद्राएँ तथा सात तोले सोना दिया।

इस बात को प्रभु के निकट गुप्त रखने का अनुरोध–

ताँरे निषेधिला,—''प्रभुरे एबे ना कहिबा।
निज-घरे जाबेन जबे, तबे निवेदिबा॥'' १४७ ॥

१४७। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने श्रीनित्यानन्द प्रभु के भण्डारी से कहा,—''आप अभी यह बात श्रीनित्यानन्द प्रभु को मत बतलाना। जब वह अपने वासस्थान पर पहुँच जायेंगे, तभी उन्हें इस विषय में कुछ बतलाना।''

राघव के द्वारा रघुनाथ को अपने गृह में स्थापित विग्रहों के दर्शन कराके यथोचित सम्मान प्रदान–

तबे राघव-पण्डित ताँरे घरे लञा गेला।
ठाकुर दर्शन कराञा माला चन्दन दिला॥ १४८ ॥
अनेक 'प्रसाद' दिला पथे खाइबारे। १४९ क ।

१४८-१४९क। प० अनु०—तब श्रीराघव पण्डित श्रीरघुनाथ को अपने घर पर ले गये तथा उन्होंने श्रीरघुनाथ को अपने घर पर सेवित श्रीठाकुर जी के दर्शन कराकर माला और चन्दन प्रदान किया। श्रीराघव पण्डित ने श्रीरघुनाथ को मार्ग में खाने के लिये बहुत प्रसाद दिया।

वैष्णव-चरण-पूजा के योग्य आदर्श को दिखलाकर रघुनाथ के द्वारा धनी विषयी को शिक्षा-प्रदान–

तबे पुनः रघुनाथ कहे पण्डितेरे॥ १४९ ख॥

१४९ ख। प० अनु०—तब श्रीरघुनाथ पुनः श्रीराघव पण्डित से कहने लगे–।

''प्रभुर सङ्गे जत महान्त, भृत्य, आश्रित जन।
पूजिते चाहिये आमि सबार चरण॥ १५० ॥

१५०। प० अनु०—''श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ जितने भी महान् भक्त, उनके सेवक तथा आश्रित व्यक्ति हैं, मैं उन सबके भी चरणों की पूजा करना चाहता हूँ।

बिश, पञ्चदश, बार, दश, पञ्च हय।
मुद्रा देह' विचारि' जार जत योग्य हय॥ १५१ ॥

१५१। प० अनु०—''आप उन सबके अधिकार के अनुसार उन्हें बीस, पन्द्रह, बारह, दस तथा पाँच—जितनी मुद्राएँ देना उचित समझें, कृपया उसके विषय में बतला दीजिए।''

सभी के उद्देश्य से अभिनन्दन पत्र अर्थात् उनका महिमा-सूचक पत्र और प्रणामी-प्रदान—

सब लेखा करिया राघव-पाश दिला।
जाँर नामे जत राघव चिठि लेखाइला॥ १५२ ॥

१५२। प० अनु०—सर्वप्रथम श्रीरघुनाथ ने श्रीनित्यानन्द प्रभु के साथ आये समस्त भक्तों की महिमावली लिखकर अभिनन्दन पत्र के रूप में श्रीराघव पण्डित को प्रदान किया तत्पश्चात् श्रीराघव पण्डित ने किस भक्त को कितनी प्रणामी-प्रदान करनी चाहिए, इस विषय में अपना विचार लिखवाया।

एकशत मुद्रा, आर सोणा तोला-द्वय।
पण्डितेर आगे दिला करिया विनय॥ १५३ ॥

१५३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने अत्यन्त विनयपूर्वक उसी के आधार पर श्रीराघव पण्डित के समक्ष एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ तथा दो तोले सोना रख दिया।

निताई की कृपा प्राप्त करके राघव को प्रणाम करने के बाद रघुनाथ का अपने घर पर आगमन—

ताँर पदधूलि लञा स्वगृहे आइला।
नित्यानन्द-कृपा पाञा कृतार्थ मानिला॥ १५४ ॥

१५४। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने श्रीराघव पण्डित के चरणकमलों में प्रणाम करके उनकी चरण धूलि को अपने सिर पर लगाया तथा फिर वे अपने घर पर लौट आये। श्रीरघुनाथ श्रीनित्यानन्द प्रभु की कृपा को प्राप्त करके स्वयं को कृतार्थ मानने लगे।

तब से घर के बाहरी स्थान पर ही रहना—

सेइ हैते अभ्यन्तरे ना करेन गमन।
बाहिरे दुर्गामण्डपे करेन शयन॥ १५५ ॥

१५५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ अपने घर तो लौट आये, किन्तु अब वे अपने घर के अन्तर्महल में प्रवेश नहीं करते थे, बल्कि बाहर बने दुर्गा-मण्डप में ही सो जाते।

अमृतप्रवाह भाष्य

१५५। अभ्यन्तर,—शयन कक्ष।

पहरे देने वाले रक्षक—

ताँहा जागि' रहे सब रक्षकगण।
पलाइते करेन नाना उपाय चिन्तन॥ १५६ ॥

१५६। प० अनु०—दुर्गा-मण्डप के आस-पास सब प्रहरी जागते रहते थे। श्रीरघुनाथ अपने घर से भागने के अनेक उपायों की चिन्ता करते।

प्रभु के दर्शनों के लिये वर्षाकाल में गौड़ीय-भक्तों की पुरी-यात्रा—

हेनकाले गौड़देशेर सब भक्तगण।
प्रभुरे देखिते नीलाचले करिला गमन॥ १५७ ॥

१५७। प० अनु०—उन्हीं दिनों गौड़देश के सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये नीलाचल की ओर चल पड़े।

सबके समक्ष गौड़ीय भक्तों के साथ जाने से पकड़े जाने की आशङ्का से पुरी यात्रा के लिये असमर्थता—

ताँ-सबार सङ्गे रघुनाथ जाइते ना पारे।
प्रसिद्ध प्रकट सङ्ग, तबँहि धरा पड़े॥ १५८ ॥

१५८। प० अनु०—उन सबके साथ तो श्रीरघुनाथ जा नहीं सकते थे, कारण, नीलाचल जाने वाले भक्तों की बात सर्वत्र प्रसिद्ध थी। अतएव उनके साथ जाने से तो श्रीरघुनाथ अनायास ही पकड़े जाते।

अमृतप्रवाह भाष्य

१५८। गौरभक्त जब नीलाचल जाते हैं, तब उनका सङ्ग सब लोगों में प्रसिद्ध और प्रकट हो जाता है। उनके साथ जाने से बाद में पिता पकड़कर ले आयेंगे, इसी भय से उनके साथ नहीं जा सकते थे।

रघुनाथ के प्रभु के साथ मिलन के वृत्तान्त का वर्णन; रघुनाथ के सौभाग्य का दिन—

एइमत चिन्तिते दैवे एकदिने।
बाहिरे देवीमण्डपे कैराछेन शयने॥ १५९ ॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर में गुरु यदुनन्दन के साथ साक्षात्कार—

दण्ड-चारि रात्रि जबे आछे अवशेष।
यदुनन्दन-आचार्य तबे करिला प्रवेश॥ १६० ॥

१५९-१६०। प० अनु०—इस प्रकार श्रीरघुनाथ प्रतिदिन घर से भागने के उपाय की चिन्ता करते। एक दिन जब वे अपने घर के बाहरी भाग में बने दुर्गामण्डप पर सो रहे थे, तथा जब रात्रि चार दण्ड बाकी रह गयी थी, उस समय दैवयोग से श्रीयदुनन्दन आचार्य ने उनके घर में प्रवेश किया।

यदुनन्दन का परिचय—

वासुदेव-दत्तेर तेंह हय 'अनुगृहीत'।
रघुनाथेर 'गुरु' तेंह हय 'पुरोहित'॥ १६१ ॥

१६१। प० अनु०—श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीवासुदेव-दत्त के अनुगृहीत (कृपापात्र) थे तथा श्रीरघुनाथ के गुरु और पुरोहित थे।

अद्वैत-आचार्येर तेंह 'शिष्य अन्तरङ्ग'।
आचार्य-आज्ञाते माने—चैतन्य 'प्राणधन'॥ १६२॥

१६२। प० अनु०—श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के अन्तरङ्ग शिष्य थे तथा वे श्रीअद्वैताचार्य की आज्ञानुसार श्रीचैतन्य महाप्रभु को अपना प्राणधन मानते थे।

अनुभाष्य

१६१-१६२। इस वचन से भी जाना जाता है कि श्रीअद्वैताचार्य की आज्ञा को नहीं मानने वाले, उनके मत के विरोधी पाषण्डियों के द्वारा स्वयं को उनका अनुगत कहकर परिचय देने पर भी वे शुद्धभक्ति के प्रतिकूल भाव के वशीभूत होकर श्रीमन्महाप्रभु को जीवों के नित्य-उपास्य स्वयं भगवान् 'कृष्ण' नहीं मानते थे। श्रीमद् अद्वैत प्रभु के अन्तरङ्ग श्रीयदुनन्दन श्रीचैतन्य में प्राण समर्पित करने वाले शिष्य थे, इसी कारण वे विष्णु और वैष्णवों के प्रति सामान्य जाति बुद्धि के दोष से कभी भी दूषित नहीं थे। वासुदेव-दत्त ठाकुर के अशौक्र-विप्र कुल में उत्पन्न होने पर भी यदुनन्दन आचार्य उन्हें अपने ऊपर कृपा करने वाले 'गुरु' ही मानते थे।

यदुनन्दन को रघुनाथ के द्वारा प्रणाम—

अङ्गने आसिया तेंहो जबे दाण्डाइला।
रघुनाथ आसि' तबे दण्डवत् कैला॥ १६३ ॥

१६३। प० अनु०—जब श्रीयदुनन्दन आचार्य श्रीरघुनाथ के घर के आङ्गन में आकर खड़े हुए, तब श्रीरघुनाथ ने आकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

ताँर एक शिष्य ताँर ठाकुरेर सेवा करे।
सेवा छाड़ियाछे, तारे साधिवार तरे॥ १६४ ॥

विग्रह-अर्चन को छोड़कर जाने वाले शिष्य को प्रातःकालीन की आरती करने के लिये अनुरोध करने हेतु रघुनाथ को साथ में लेना—

रघुनाथे कहे,—"तारे करह साधन।
सेवा जेन करे, आर नाहिक ब्राह्मण॥" १६५ ॥

१६४-१६५। प० अनु०—श्रीयदुनन्दन आचार्य के एक शिष्य उनके ठाकुर जी की सेवा करते थे, किन्तु वे सेवा को छोड़कर चले गये। श्रीयदुनन्दन आचार्य ने उन्हीं को समझाने हेतु श्रीरघुनाथ से कहा,—"हे रघुनाथ! तुम उसे ढूँढ़कर लाओ। उससे कहो कि वह सेवा करे,

क्योंकि मेरे पास ठाकुर जी की सेवा करने के लिये अन्य कोई ब्राह्मण नहीं है।''

रात्रि के अन्त में पहरा देने वालों की गहरी नींद–

एत कहि' रघुनाथे लञा चलिला।
रक्षक सब शेषरात्रे निद्राय पड़िला॥ १६६ ॥

१६६। प० अनु०—श्रीयदुनन्दन आचार्य इतना कहकर श्रीरघुनाथ को अपने साथ लेकर चल दिये। रात्रि का अन्तिम प्रहर होने के कारण सभी प्रहरी गहरी नींद में सोये हुए थे।

रघुनाथ के द्वारा गुरु के पीछे-पीछे जाना; दोनों का आचार्य के घर की ओर जाना–

आचार्येर घर इहार पूर्व दिशाते।
कहिते शुनिते दुँहे चले सेइ पथे॥ १६७ ॥

१६७। प० अनु०—श्रीयदुनन्दन आचार्य का घर श्रीरघुनाथ के घर की पूर्व दिशा में था। श्रीयदुनन्दन आचार्य और श्रीरघुनाथ परस्पर में वार्त्तालाप करते हुए उस मार्ग पर चल पड़े।

मार्ग में बुद्धिमान् रघुनाथ के द्वारा इस सुयोग से गुरु के निकट कृष्ण के भजन के उद्देश्य से विदायी की आज्ञा ग्रहण–

अर्द्धपथे रघुनाथ कहे गुरुर चरणे।
''आमि सेइ विप्रे साधि' पाठाइमु तोमा स्थाने॥ १६८॥

१६८। प० अनु०—आधे रास्ते पहुँचने पर श्रीरघुनाथ ने अपने गुरुदेव के चरणों में निवेदन किया—''मैं उस ब्राह्मण को समझा-बुझाकर आपके स्थान पर भेज दूँगा।

तुमि घरे जाह सुखे,—मोरे आज्ञा हय।''
एइ छले आज्ञा मागि' करिला निश्चय॥ १६९ ॥

१६९। प० अनु०—''आप प्रसन्नता पूर्वक अपने घर लौट जाइये तथा मुझे (जाने की) आज्ञा दीजिए।'' इस बहाने आज्ञा माँगकर श्रीरघुनाथ ने निश्चय किया—।

रघुनाथ का भागने का विचार–

''सेवक रक्षक आर केह नाहि सङ्गे।
पलाइते आमार भाल एइ त' प्रसङ्गे॥'' १७०॥

१७०। प० अनु०—''आज इस समय मेरे साथ में कोई भी सेवक तथा प्रहरी इत्यादि नहीं है, यह समय मेरे यहाँ से भाग खड़े होने के लिये बहुत अच्छा है।''

अत्यधिक तेजी से भागना–

एत चिन्ति' पूर्वमुखे करिला गमन।
उलटिया चाहे पाछे,—नाहि कोन् जन॥ १७१ ॥

१७१। प० अनु०—ऐसा विचार करके श्रीरघुनाथ पूर्व की ओर चल दिये। वे पुनः पुनः मुड़कर पीछे देखते किन्तु कोई भी उनके पीछे नहीं आ रहा था।

पकड़े जाने की आशङ्का से वन-वन में बने मार्ग पर दौड़ना–

श्रीचैतन्य-नित्यानन्द-चरण चिन्तिया।
पथ छाड़ि' उपपथे जायेन धाञा॥ १७२ ॥

१७२। प० अनु०—श्रीरघुनाथ श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणकमलों का स्मरण करके राजपथ को छोड़कर उपपथ पर दौड़ पड़े।

एकान्तिक रूप से चैतन्यचरणों का ध्यान करते हुए पूरे दिन में बहुत से मार्ग को पार करना और सन्ध्या के समय गोप के घर में दूध पीकर थकी हुई देह को कुछ विश्राम–

ग्रामे-ग्रामेर पथ छाड़ि' जाय वने-वने।
काय मनोवाक्ये चिन्ते चैतन्य-चरणे॥ १७३ ॥

१७३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ग्राम-ग्राम के मार्ग को छोड़कर वन-वन से होकर जा रहे थे एवं काय, मन तथा वाक्य से श्रीचैतन्यदेव के चरणों का ही स्मरण कर रहे थे।

पञ्चदश-क्रोश-पथ चलि' गेला एकदिने।
सन्ध्याकाले रहिला एक गोपेर बाखाने॥ १७४ ॥

१७४। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने पन्द्रह कोस का मार्ग एक दिन में ही तय कर लिया तथा सन्ध्या के समय वह एक ग्वाले की गो-शाला में रह गये।

अनुभाष्य

१७४। बाखान,—गोशाला, गोष्ठ।

उपवासी देखि' गोप दुग्ध आनि' दिला।
सेइ दुग्ध पान करि' पड़िया रहिला॥ १७५ ॥

१७५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ को भूखा देखकर ग्वाले ने उन्हें दूध लाकर दिया। श्रीरघुनाथ उसी दूध को पीकर वहीं लेटे रहे।

अगले दिन प्रात:काल रघुनाथ को नहीं देखकर कोलाहल और उन्हें ढूँढ़ने के लिये पिता के द्वारा पुरी के लिये जा रहे यात्रियों के निकट पत्र और लोग भेजना—

एथा ताँर सेवक रक्षक ताँरे ना देखिया।
ताँर गुरुपाशे वार्त्ता पुछिलेन गिया॥ १७६ ॥

१७६। प० अनु०—दूसरी ओर, श्रीरघुनाथ के सेवक तथा प्रहरी श्रीरघुनाथ को घर पर नहीं देखकर उनके गुरु श्रीयदुनन्दन आचार्य के पास जाकर श्रीरघुनाथ के विषय में पूछने लगे।

तेंह कहे,—''आज्ञा मागि' गेला निज-घर।''
'पलाइल रघुनाथ'—उठिल कोलाहल॥ १७७ ॥

१७७। प० अनु०—श्रीयदुनन्दन आचार्य ने कहा,—''रघुनाथ मुझसे आज्ञा लेकर अपने घर चला गया है।'' 'रघुनाथ घर से भाग गया है'—सर्वत्र यह कोलाहल मच गया।

ताँर पिता कहे,—''गौड़ेर भक्तगण।
प्रभु-स्थाने नीलाचले करिला गमन॥ १७८ ॥

१७८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के पिता ने सेवकों तथा प्रहरियों से कहा,—''गौड़देश के भक्त श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान श्रीनीलाचल की ओर गये हैं।

सेइ-सङ्गे रघुनाथ गेल पलाञा।
दश जन जाह, तारे आनह धरिया॥' १७९ ॥

१७९। प० अनु०—''उनके साथ रघुनाथ भी यहाँ से भाग गया है। तुम दस लोग यहाँ से जाकर उसे पकड़कर ले आओ।''

शिवानन्दे पत्री दिल विनय करिया।
'आमार पुत्रेरे तुमि दिबा बाहुड़िया॥' १८० ॥

१८०। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के पिता ने श्रीशिवानन्द सेन के नाम अत्यधिक विनय करते हुए एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा,—''आप मेरे पुत्र को अवश्य ही लौटाकर भेज देना।''

अनुभाष्य

१८०। बाहुड़िया,—लौटा कर; शिवानन्द-सेन गौड़देश से यात्रियों को लेकर नीलाचल जाते थे, इसीलिए उनके साथ रघुनाथ के होने का अनुमान करके, रघुनाथ को लौटा-भेजने के लिये उनके निकट एक अनुरोध पत्र के साथ दस लोगों को भी भेजा।

झाँकरा पर्यन्त गेल सेइ दश जने।
झाँकराते पाइल गिया वैष्णवेर गणे॥ १८१ ॥

१८१। प० अनु०—वे दस लोग जब झाकरा नामक स्थान पर पहुँचे, तब उन्हें वैष्णवों की मण्डली मिल गयी।

भेजे गये लोगों के द्वारा शिवानन्द को पत्र प्रदान और रघुनाथ के संवाद की जिज्ञासा—

पत्री दिया शिवानन्दे वार्त्ता पुछिल।
शिवानन्द कहे,—''तेंह एथा ना आइल॥'' १८२ ॥

१८२। प० अनु०—उन लोगों ने श्रीशिवानन्द सेन को पत्र पकड़ाकर उनसे श्रीरघुनाथ के विषय में पूछा। श्रीशिवानन्द सेन ने कहा—''रघुनाथ हमारे पास तो नहीं आया है।''

शिवानन्द के द्वारा अपनी अनभिज्ञता-ज्ञापन, रघुनाथ को नहीं देखकर पत्र लाने वालों का लौटना—

बाहुड़िया सेइ दश जन आइल घर।
ताँर माता-पिता हइल चिन्तित अन्तर॥ १८३ ॥

१८३। प० अनु०—वे दस लोग लौटकर घर आ गये। श्रीरघुनाथ के माता-पिता मन-ही-मन बहुत चिन्तित हो गये।

प्रभु के प्रेम में विभोर रघुनाथ का प्रभु के चरणों की प्राप्ति हेतु पुरी जाने के मार्ग पर अत्यधिक तीव्र शारीरिक कष्ट को सहन करना—

एथा रघुनाथ-दास प्रभाते उठिया।
पूर्वमुख छाड़ि' चले दक्षिण-मुख हञा॥ १८४ ॥

१८४। प० अनु०—उधर, श्रीरघुनाथ दास प्रातःकाल उठकर पूर्व दिशा की ओर नहीं चलकर दक्षिण-दिशा की ओर चल दिये।

छत्रभोग पार हञा छाड़िया सराण।
कुग्राम-कुग्राम दिया करिल प्रयाण॥ १८५ ॥

१८५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ छत्रभोग को पार करने के पश्चात् प्रशस्त मार्ग को छोड़कर छोटे-छोटे ग्रामों से होते हुए चलने लगे।

अमृतप्रवाह भाष्य

१८५। सामान्य-सामान्य गाँवों से होकर गये।

अनुभाष्य

१८५। सराण,—प्रशस्त मार्ग। छत्रभोग,—वर्त्तमान समय में यह स्थान—चौबीस परगणा जिले के मथुरापुर के अन्तर्गत गङ्गा के 'छाड़-खाड़ि' के नाम से प्रसिद्ध एवं 'जयनगर-मजिलपुर'-नामक प्रसिद्ध दो गाँवों के निकट अवस्थित है। पहले इस स्थान पर गङ्गा प्रवाहित होती थी। जो छत्रभोग को काँसाई-नदी मानते हैं, उनका मत—भ्रान्त है।

भक्षण अपेक्षा नाहि, समस्त-दिवस गमन।
क्षुधा नाहि बाधे, चैतन्यचरण-प्राप्त्ये मन॥ १८६ ॥

१८६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने भोजन आदि की कोई अपेक्षा नहीं की, सारा दिन चलते रहते। श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों को प्राप्त करने की कामना के कारण भूख भी श्रीरघुनाथ को बाध्य नहीं कर पायी।

कभु चर्वण, कभु रन्धन, कभु दुग्ध पान।
जबे जेइ मिले, ताहे राखे निज-प्राण॥ १८७ ॥

१८७। प० अनु०—श्रीरघुनाथ को कभी कुछ चबाने के लिये मिलता तो वे उसे चबा लेते, कभी कोई रन्धन की हुई वस्तु मिलती तो उसे खा लेते तथा कभी दूध मिलने पर उसे पी लेते। इस प्रकार उन्हें जब जो भी मिल जाता, श्रीरघुनाथ उससे ही अपने प्राणों की रक्षा करते।

बारह दिनों में पुरी में आगमन, मार्ग में केवल तीन दिन भोजन-ग्रहण —

बार दिने चलि' गेला श्रीपुरुषोत्तम।
पथे तिनदिन मात्र करिला भोजन॥ १८८ ॥

१८८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ बारह दिनों में श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र पहुँच गये। मार्ग में उन्होंने केवल तीन दिन ही रन्धन किया हुआ भोजन किया।

स्वरूप आदि के साथ बैठे प्रभु के निकट आकर रघुनाथ का दण्डवत् प्रणाम, मुकुन्द के द्वारा उनका परिचय-प्रदान—

स्वरूपादि सह गोसाञि आछेन बसिया।
हेनकाले रघुनाथ मिलिला आसिया॥ १८९ ॥

१८९। प० अनु०—जिस समय श्रीरघुनाथ श्रीचैतन्य महाप्रभु से आकर मिले, उस समय श्रीचैतन्य गोसाञि श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों के साथ बैठे हुए थे।

अङ्गनेते दूरे रहि' करेन प्रणिपात।
मुकुन्द-दत्त कहे—"एइ आइल रघुनाथ॥" १९०॥

१९०। प० अनु०— श्रीरघुनाथ ने आङ्गन में दूर से ही श्रीमन्महाप्रभु के उद्देश्य से प्रणाम किया, उसी समय श्रीमुकुन्द दत्त ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा,—'यह तो, रघुनाथ आया है।'

प्रभु के चरणों की वन्दना, प्रभु के द्वारा आलिङ्गन—

प्रभु कहेन,—'आइस', तेंहो धरिला चरण।
उठि' प्रभु, कृपाय ताँरे करिला आलिङ्गन॥ १९१॥

१९१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—'आओ, आओ।' ऐसा सुनकर श्रीरघुनाथ ने आकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़ लिया। श्रीमन्महाप्रभु ने उठकर कृपा करते हुए श्रीरघुनाथ को आलिङ्गन किया।

स्वरूप आदि भक्तों को प्रणाम, सभी के द्वारा आलिङ्गन—

स्वरूपादि सब भक्तेर चरण वन्दिला।
प्रभु-कृपा देखि' सबे आलिङ्गन कैला॥ १९२ ॥

१९२। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने श्रीस्वरूप आदि समस्त भक्तों के चरणों की वन्दना की। श्रीरघुनाथ के प्रति श्रीमन्महाप्रभु की कृपा को देखकर सभी भक्तों ने भी श्रीरघुनाथ को आलिङ्गन किया।

नित्यसिद्ध रघुनाथ के घर को त्याग करने के उपलक्ष में [श्रीमन्महाप्रभु द्वारा] अनर्थयुक्त भक्तिसाधकों को शिक्षा-प्रदान; प्रभु के द्वारा कृष्ण की कृपा के माहात्म्य का वर्णन—

प्रभु कहे,—"कृष्णकृपा बलिष्ठ सबा हैते।
तोमारे काड़िल विषय-विष्ठा-गर्त्त हैते॥" १९३ ॥

१९३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"हे रघुनाथ! श्रीकृष्ण की कृपा सबसे अधिक बलशाली है, उसने ही तुम्हारा विषय-विष्ठा रूपी गड्ढ़े से उद्धार किया है।"

अनुभाष्य

१९३। प्राक्तन (प्राचीन) कर्म फल आदि की अपेक्षा कृष्ण की कृपा—अत्यधिक सामर्थ्य से युक्त है। कृष्ण की इस कृपा ने ही तुम्हारा विषयरूपी विष्ठा (मल) के गढ्ढ़े से उद्धार किया है। विषय के प्रति अनुरागी होने पर जीव अपने बल से उसे त्याग नहीं कर सकता; विशेष करके शुद्ध कृष्ण दास जीव के लिये विषय—विष्ठा रूपी गढ्ढ़े के समान हैं। श्रील रघुनाथ को निर्विषयी जानने पर भी महाप्रभु ने आर्त्त (दु:खी) विषयी व्यक्तियों को शिक्षा देने के लिये ही रघुनाथ को उपलक्ष्य करके ऐसा कहा।

रघुनाथ की एकान्तिकी गौर-कृष्ण-निष्ठा—

रघुनाथ कहे मने,—"कृष्ण नाहि जानि।
तव कृपा काड़िल आमा,—एइ आमि मानि।"१९४॥

१९४। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने मन-ही-मन कहा,—"मैं श्रीकृष्ण को नहीं जानता हूँ। मैं तो यही मानता हूँ कि आपकी कृपा ने ही मेरा उद्धार किया है।"

प्रभु के द्वारा हिरण्य और गोवर्धन के चरित्र का वर्णन—

प्रभु कहेन,—"तोमार पिता ज्येठा, दुइ जने।
चक्रवर्ती-सम्बन्धे आमि 'आजा' करि' माने॥ १९५॥

१९५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"मैं तुम्हारे पिता श्रीगोवर्धन और ताया श्रीहिरण्य मजुमदार—इन दोनों को श्रीनीलाम्बर चक्रवर्ती के सम्बन्ध से अपना नाना ही मानता हूँ।

अमृतप्रवाह भाष्य

१९५। नीलाम्बर चक्रवर्ती के सम्बन्ध से मैं उन्हें 'आजा' अर्थात् नाना मानता हूँ।

अनुभाष्य

१९५। नीलाम्बर चक्रवर्त्ती रघुनाथ के पिता और उनके बड़े भाई को अपने से आयु में छोटा सम्भ्रान्त कायस्थ जानकर 'भाई' कहकर पुकारते थे एवं दोनों भाई भी नीलाम्बर चक्रवर्त्ती को आयु में बड़े ब्राह्मण जानकर 'बड़े भाई' कहकर सम्बोधित करते थे, श्री महाप्रभु नाना के भाई होने के सम्बन्ध से उन्हें भी अपने 'रहस्य अर्थात् परिहास का पात्र' समझते थे। इस सम्बोधन से अनेक लोगों को ऐसा भ्रम होता है कि रघुनाथ—महाप्रभु की अपेक्षा आयु में बहुत बड़े हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है।

चक्रवर्त्तीर दुँहे हय भ्रातृरूप 'दास'।
अतएव तारे आमि करि परिहास॥ १९६ ॥

१९६। प० अनु०—"तुम्हारे पिता और ताऊ—दोनों

श्रीनीलाम्बर चक्रवर्त्ती के कनिष्ठ भ्राता रूपी दास हैं। अतएव मैं उनके विषय में परिहास कर रहा हूँ।

विषय रूपी विष का सेवन—आत्मसंहारक अर्थात् जीव के स्वरूप अथवा स्वास्थ्य-प्राप्ति का भयानक विघ्न स्वरूप—

तोमार बाप-ज्येठा—विषयविष्ठा-गर्तेर कीड़ा।
सुख करि' माने विषय-विषेर महापीड़ा॥ १९७ ॥

१९७। प० अनु०—''तुम्हारे पिता और ताऊ—दोनों विषय रूपी विष्ठा के गड्ढ़े के कीड़े हैं। वे विषय रूपी विष की अत्यधिक पीड़ा को सुख मानते हैं।

अनुभाष्य

१९७। 'विषय' अपने भोक्ता विषयी को अत्यधिक कष्ट प्रदान करता है, तथापि विषयों में आविष्ट चित्त वाले सांसारिक व्यक्ति उन अत्यधिक कष्ट प्रदान करने वाले विषयों को सुख मानते हैं। जड़ेन्द्रियों के भोग के विषय—त्याग योग्य मल के गहवर (गड़ढ़े) के समान है। विषयों में अभिनिविष्ट जीव—घृणित मल के कीट के समान है अर्थात् पारमार्थिक दृष्टिकोण से जड़ीय वस्तुओं का भोक्ता प्राकृत विषयी—मल के गड्ढ़े के कीड़े के समान है एवं उस कीड़े के रूप में अत्यन्त आनन्दपूर्वक अत्यधिक-घृणित विषय रूपी मल के आस्वादन में प्रमत्त है।

भोक्ता के अभिमान में अथवा देहात्म बुद्धि के कारण अन्याभिलाष, कर्म और ज्ञान-मिश्र, होने पर भी अप्रतिकूल विष्णु-वैष्णवों के आनुगत्य का आभास अथवा लौकिकी श्रद्धा शुद्धभक्ति नहीं, कनिष्ठ-अधिकार मात्र—

यद्यपि ब्रह्मण्य करे ब्राह्मणेर सहाय।
'शुद्धवैष्णव' नहे, 'वैष्णवेर प्राय'॥ १९८ ॥

१९८। प० अनु०—''यद्यपि तुम्हारे पिता और ताऊ—दोनों ब्राह्मणों की सहायता करते हैं, तब भी वे शुद्ध वैष्णव नहीं, बल्कि वैष्णव-प्राय हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

१९८। वैष्णवों की भाँति वेश-भूषा और देव-सेवा आदि के रहने पर भी शुद्ध वैष्णव नहीं हो सकते, कारण, जब तक 'अन्याभिलाषिता-शून्यं' इत्यादि शुद्ध भक्ति के लक्षण नहीं हों, तब तक दीक्षा आदि प्राप्त करने पर भी 'वैष्णवप्राय' ही रहते हैं।

अनुभाष्य

१९८। हिरण्य और गोवर्धन—दोनों भाई ही ब्राह्मणों का सम्मान करने वाले, उनके पालक, पोषक और सहायता करने वाले थे। इसलिए प्राकृत लौकिक-विचार में श्रेष्ठ और 'सज्जन' कहलाकर आदर प्राप्त करने वाले एवं साधारण लोक-समाज में वैष्णव के रूप में परिचित होने पर भी पारमार्थिक शुद्ध भक्तों के विचार से 'शुद्धवैष्णव' नहीं हैं; परन्तु शुद्ध वैष्णव गण उन्हें 'वैष्णवप्राय' अथवा 'वैष्णवाभास' अर्थात् 'कनिष्ठ' अथवा 'बालिश' (विद्वेषी नहीं) अर्थात् अबोध समझते थे।

कृष्ण प्रीति की वाञ्छा को छोड़कर अक्षज-ज्ञान से भोग अथवा त्यागरूपी विषयों के अनुशीलन के फल से थोड़े-बहुत श्रद्धा-बीज का भी स्तब्ध होना और संसार की वृद्धि—

तथापि विषयेर स्वभाव—करे महा-अन्ध।
सेइ कर्म कराय, जाते हय भव-बन्ध॥ १९९ ॥

१९९। प० अनु०—''तब भी विषय का स्वभाव ही ऐसा है कि वह जिसके पास रहता है, उस व्यक्ति को सम्पूर्ण रूप से अन्धा बना देता है तथा उससे वही कार्य कराता है, जिससे भव-बन्धन ही होता है।

अनुभाष्य

१९९। विषयी भोगी शुद्धभक्ति का परित्याग करके कर्मी, ज्ञानी अथवा अन्याभिलाषी होने के कारण अपने-अपने द्वारा अनुष्ठित कर्म-ज्ञान आदि के अनुष्ठान के द्वारा ही अनजाने में विषयों में जड़ीभूत बन जाते हैं।

नित्यसिद्ध रघुनाथ का विषय-भोग नहीं रहने के कारण, अनर्थयुक्त साधक को ही प्रभु का उपदेश—

हेन 'विषय' हैते कृष्ण उद्धारिला तोमा।
कहन ना जाय कृष्ण कृपार महिमा॥'' २०० ॥

२००। प० अनु०—''हे रघुनाथ! श्रीकृष्ण ने ऐसे विषय से तुम्हारा उद्धार किया है। श्रीकृष्ण की कृपा की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।''

प्रभु के द्वारा रघुनाथ का दामोदर स्वरूप के हाथों में समर्पण—

रघुनाथेर क्षीणता-मालिन्य देखिया।
स्वरूपेरे कहेन प्रभु कृपार्द्र चित्त हञा॥ २०१ ॥

२०१। प० अनु०—श्रीरघुनाथ की शारीरिक दुर्बलता तथा उनके वस्त्रों एवं अङ्गों की मलिनता को देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने कृपा से द्रवीभूत चित्त वाले होकर श्रीस्वरूप दामोदर से कहा—।

''एइ रघुनाथे आमि सँपिनु तोमारे।
पुत्र-भृत्य-रूपे तुमि कर अङ्गीकारे॥ २०२ ॥

२०२। प० अनु०—''हे स्वरूप! मैं इस रघुनाथ को तुम्हें सौंपता हूँ, तुम इसे अपने पुत्र और दास के रूप में स्वीकार करो।

वैद्य-रघुनाथ, भट्ट-रघुनाथ और स्वरूपानुग दास-रघुनाथ—

तिन 'रघुनाथ'-नाम हय मोर स्थाने।
'स्वरूपेर रघु'—आजि हैते इहार नामे॥'' २०३ ॥

२०३। प० अनु०—''मेरे तीन भक्तों का नाम 'रघुनाथ' है। आज से इसका नाम 'स्वरूपेर रघु अर्थात् स्वरूप के रघुनाथ' है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

२०३। तिन रघुनाथ—वैद्य-रघुनाथ (आदि-लीला के एकादश परिच्छेद की २२ वीं संख्या द्रष्टव्य), भट्ट-रघुनाथ और दास-रघुनाथ।

एत कहि' रघुनाथेर हस्त धरिला।
स्वरूपेर हस्ते ताँरे समर्पण कैला॥ २०४ ॥

२०४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने इतना कहकर श्रीरघुनाथ का हाथ पकड़कर उनके हाथ को श्रीस्वरूप दामोदर के हाथ में समर्पित कर दिया।

प्रभु के आदेश से स्वरूप के द्वारा रघुनाथ को अङ्गीकार करना—

स्वरूप कहे,—''महाप्रभुर जे आज्ञा हैल।''
एत कहि' रघुनाथे पुनः आलिङ्गिल॥ २०५ ॥

२०५। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''श्रीमन्महाप्रभु की जैसी आज्ञा।'' इतना कहकर उन्होंने पुनः श्रीरघुनाथ को आलिङ्गन किया।

प्रभु का अतुलनीय भक्तवात्सल्य; गोविन्द को रघुनाथ के प्रति आदर (प्रीति) और यत्न करने की आज्ञा-प्रदान—

चैतन्येर भक्तवात्सल्य कहिते ना पारि।
गोविन्देरे कहे रघुनाथे दया करि'॥ २०६ ॥

२०६। प० अनु०—मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु के भक्तवात्सल्य का वर्णन नहीं कर सकता, उन्होंने श्रीरघुनाथ के प्रति दया करके अपने सेवक श्रीगोविन्द से कहा,—।

''पथे इँह कैराछे बहुत लङ्घन।
कतदिन कर इहार भाल सन्तर्पण॥'' २०७ ॥

२०७। प० अनु०—''रघुनाथ ने मार्ग में बहुत दिन भोजन आदि नहीं किया है। तुम कुछ दिनों तक इसकी भली-भाँति सेवा करो।''

अनुभाष्य

२०७। लङ्घन,—उपवास आदि; सन्तर्पण,—सेवा।

रघुनाथ को समुद्र स्नान करके जगन्नाथ के दर्शन के बाद प्रसाद का सम्मान करने का आदेश—

रघुनाथे कहे,—''जाञा, कर सिन्धुस्नान।
जगन्नाथ देखि' आसि' करह भोजन॥'' २०८ ॥

२०८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरघुनाथ को कहा,—''जाकर सर्वप्रथम समुद्र में स्नान करो। फिर भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन करके आकर भोजन करो।''

भक्तों के साथ रघुनाथ का मिलन—

एत बलि' प्रभु मध्याह्न करिते उठिला।
रघुनाथ-दास सब भक्तेरे मिलिला॥ २०९ ॥

२०९। प० अनु०—श्रीरघुनाथ को इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु मध्याह्न-कृत्य करने के लिये उठे, श्रीरघुनाथ दास सब भक्तों से मिले।

रघुनाथ को प्रभु की कृपा प्राप्त करते देख भक्तों के द्वारा उनके सौभाग्य की प्रशंसा—

रघुनाथे प्रभुर कृपा देखि' भक्तगण।
विस्मित हञा करे ताँर भाग्य-प्रशंसन॥ २१० ॥

२१०। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के प्रति श्रीमन्महाप्रभु की कृपा को देखकर भक्त विस्मित हो गये तथा वे श्रीरघुनाथ के सौभाग्य की प्रशंसा करने लगे।

समुद्र स्नान के बाद जगन्नाथ के दर्शन करके रघुनाथ को गोविन्द की कृपा से प्रभु के भुक्त-अवशेष की प्राप्ति—

रघुनाथ-समुद्रे जाञा स्नान करिला।
जगन्नाथ देखि' गोविन्द-पाश आइला॥ २११ ॥

२११। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने समुद्र जाकर स्नान किया तथा श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन करके श्रीगोविन्द के पास आए।

प्रभुर अवशिष्ट पात्र गोविन्द ताँरे दिला।
आनन्दित हञा महाप्रसाद पाइला॥ २१२ ॥

२१२। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने श्रीरघुनाथ को श्रीमन्महाप्रभु का अवशिष्ट प्रसाद दिया। श्रीरघुनाथ ने आनन्दित होकर महाप्रसाद पाया।

पाँच दिन स्वरूप के निकट रहकर प्रभु के प्रसाद की प्राप्ति—

एइमत रहे तेंह स्वरूप-चरणे।
गोविन्द प्रसाद ताँरे देन पञ्च दिने॥ २१३ ॥

२१३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीरघुनाथ श्रीस्वरूप दामोदर के श्रीचरणों में रहने लगे। उनके द्वारा पाँच दिनों तक श्रीगोविन्द के पास आने पर श्रीगोविन्द ने उन्हें प्रतिदिन प्रसाद दिया।

अगले दिन से रघुनाथ के द्वारा रात्रि में सिंहद्वार पर प्रसादार्थी के रूप में प्रतीक्षा—

आर दिन हैते 'पुष्प-अञ्जलि' देखिया।
सिंहद्वारे खाड़ा रहे भिक्षार लागिया॥ २१४ ॥

२१४। प० अनु०—छठे दिन से श्रीरघुनाथ भगवान् श्रीजगन्नाथदेव की रात्रि-काल में होने वाली पुष्पाञ्जलि-सेवा के दर्शन करके भोजन के उद्देश्य से सिंहद्वार पर खड़े रहने लगे।

अनुभाष्य

२१४। पुष्प-अञ्जलि,—रात्रि के समय जगन्नाथ की पुष्पाञ्जलि-सेवा।

घर जाने में उद्यत गृहव्रत जगन्नाथदेव के सेवकों के द्वारा रात्रि में पूजा के अन्त में द्वार पर खड़े प्रसादार्थी वैष्णवों को प्रसाद-दान करने की रीति—

जगन्नाथेर सेवक जत—'विषयीर गण'।
सेवा सारि' रात्र्ये करे गृहेते गमन॥ २१५ ॥
सिंहद्वारे अन्नार्थी वैष्णवे देखिया।
पसारिर ठाञि अन्न देन कृपा त' करिया॥ २१६ ॥

२१५-२१६। प० अनु०—भगवान् श्रीजगन्नाथदेव के सेवक जो कि विषयी अर्थात् गृहव्रत हैं, वे अपनी सेवा को सम्पूर्ण करके रात्रि के समय जब अपने घर पर जाते तब सिंहद्वार पर अन्न भिक्षा के लिये खड़े वैष्णवों को देखकर वे कृपा करके पंसारि को पैसे देकर वैष्णवों को भोजन दिला देते।

पुरुषोत्तम-क्षेत्र में निष्किञ्चन विरक्त भक्तों के व्यवहार का वर्णन—

एइमत सर्वकाल आछे व्यवहार।
निष्किञ्चन भक्त खाड़ा हय सिंहद्वार॥ २१७ ॥

२१७। प० अनु०—श्रीजगन्नाथपुरी में प्राचीन काल से यही प्रथा चली आ रही है कि निष्किञ्चन भक्त सिंहद्वार पर खड़े हो जाते हैं।

सर्वदिन करेन वैष्णव नाम-सङ्कीर्त्तन।
स्वच्छन्दे करेन जगन्नाथ-दरशन॥ २१८ ॥

२१८। प० अनु०—वैष्णव जन सारा दिन तो नाम-सङ्कीर्त्तन करते हैं तथा अपनी इच्छा अनुरूप भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन करते हैं।

केह छत्रे मागि' खाय, जेबा किछु पाय।
केह रात्र्ये भिक्षा लागि' सिंहद्वारे रय॥ २१९ ॥

२१९। प० अनु०—कुछ वैष्णव छत्र में जो कुछ मिलता है, उसे माँगकर खा लेते हैं। तथा कुछ भिक्षा के लिये रात्रि के समय सिंहद्वार पर खड़े हो जाते हैं।

प्रभु के भक्तों का व्यवहार; कृष्ण की प्रीति के उद्देश्य से अपने भोग का त्याग अथवा अखिल चेष्टा—

महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान।
'जाहा देखि' प्रीत हन गौर-भगवान्॥ २२० ॥

२२०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों में वैराग्य प्रधान है, जिसे देखकर भगवान् श्रीगौरसुन्दर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं।

अनुभाष्य

२२०। महाप्रभु के भक्तों को,—अभक्त विषयी और शुद्धभक्त, दोनों ही भली प्रकार से निरपेक्ष रूप में देखने पर समझ सकते हैं कि वे—जागतिक भोग-तात्पर्य-परायण नहीं होकर अर्थात् इन्द्रिय तर्पण और सुख-भोग आदि के लाभ को त्याग करके कृष्ण की सेवा के लिये कृष्ण के अलावा अन्यान्य समस्त विषयों के प्रति उदासीन हैं। उनकी विषयों को त्याग करके अहैतुकी और अप्रतिहता [नैरन्तर्यमयी] अलौकिकी कृष्णसेवा—साधारण लोगों की दृष्टि की समझ के परे है, भगवान् गौर-सुन्दर कृष्ण के अलावा अन्यान्य विषयों से विरक्त व्यक्ति के शुद्ध भजन की चतुरता को देखकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं।

प्रभु को गोविन्द के द्वारा रघुनाथ के सिंहद्वार पर प्रसाद के उद्देश्य से प्रतीक्षा करने के संवाद का ज्ञापन—

प्रभुरे गोविन्द कहे,—''रघुनाथ 'प्रसाद' ना लय।
रात्र्ये सिंहद्वारे खाड़ा हञा मागि' खाय॥'' २२१ ॥

२२१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के सेवक श्रीगोविन्द ने उनसे कहा,—''श्रीरघुनाथ अब आकर मुझसे प्रसाद नहीं लेते, बल्कि रात्रि के समय सिंहद्वार पर खड़े होकर भिक्षा माँगकर खाते हैं।''

रघुनाथ को त्यक्तगृही (गृह त्यागी) अथवा 'वैरागी' की संज्ञा; उनके वैराग्य से प्रभु सन्तुष्ट—

शुनि' तुष्ट हञा प्रभु कहिते लागिल।
''भाल कैल, वैरागीर धर्म आचरिल॥ २२२ ॥

२२२। प० अनु०—श्रीगोविन्द की बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु अत्यधिक सन्तुष्ट होकर कहने लगे,—''रघुनाथ ने अच्छा ही किया, उसने वैरागी व्यक्ति के धर्म का आचरण किया है।

प्रभु के द्वारा वैरागी अथवा गृह-त्यागी व्यक्ति के वैध और अवैध आचार अथवा धर्म का वर्णन—

वैरागी करिबे सदा नाम-सङ्कीर्त्तन।
मागिया खाञा करे जीवन-रक्षण॥ २२३ ॥

२२३। प० अनु०—''वैरागी व्यक्ति सदैव नाम-सङ्कीर्त्तन करेगा तथा माँगकर खा लेगा एवं इसी से ही अपने जीवन की रक्षा करेगा।

वैरागी हञा जेबा करे परापेक्षा।
कार्यसिद्धि नहे, कृष्ण करेन उपेक्षा॥ २२४ ॥

२२४। प० अनु०—''वैरागी बनने के बाद जो किसी अन्य की अपेक्षा रखता है अर्थात् किसी अन्य पर निर्भर रहता है तो उसे अपने द्वारा किये जाने वाले कार्य में अभिलषित सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती तथा श्रीकृष्ण भी उसकी उपेक्षा कर देते हैं।

वैरागी हञा करे जिह्वार लालस।
परमार्थ जाय, आर हय रसेर वश॥ २२५ ॥

२२५। प० अनु०—''वैरागी बनने पर जो जिह्वा के लोभ के लिये कुछ करता है, उसका परमार्थ छूट जाता है

तथा वह जागतिक रस के वशीभूत हो जाता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

२२५। रस,—तीखा, मीठा, खट्टा, नमकीन, कड़वा और कषाय।

वैरागीर कृत्य—सदा नाम-सङ्कीर्तन।
शाक-पत्र-फल-मूले उदर-भरण॥ २२६ ॥

२२६। प० अनु०—"वैरागी व्यक्ति का कार्य सदैव नाम-सङ्कीर्त्तन करना है तथा शाक-पत्र- फल-मूल आदि ग्रहणकर उदरपूर्त्ति करना है।

अनुभाष्य

२२६। ह: भ: वि:—विंश विलास के अन्त में—"कृत्यान्येतानि तु प्रायो गृहिणां धनिनां सताम्। लिखितानि न तु त्यक्तपरिग्रह महात्मनाम्॥ प्रभाते चार्द्धरात्रे च मध्याह्ने दिवसक्षये। कीर्त्तयन्ति हरिं ये वै ते तरन्ति भवार्णवम्॥ एवमेकान्तिनां प्राय: कीर्त्तनं स्मरणं प्रभो:। कुर्वतां परमप्रीत्या कृत्यमन्यन्न रोचते॥" हरिभक्तिविलास में लिखित अनुष्ठानावली—गृहस्थ धनी वैष्णवप्राय व्यक्तियों के लिये है, समस्त वस्तुओं का परित्याग करने वाले वैरागी ऐकान्तिक-नामाश्रित शुद्ध वैष्णवों के लिये नहीं है। प्रात:काल में, मध्य रात्रि में, मध्याह्न (दोपहर) और सन्ध्या में अर्थात् अष्टकाल में ही जो हरि का कीर्त्तन करता है, वही भवसागर से पार होता है। एकान्तिक शुद्धभक्त अत्यन्त प्रीतिपूर्वक प्रभु का कीर्त्तन और स्मरण आदि किया करते हैं, उनका कीर्त्तन आदि के अतिरिक्त अन्य कोई अनुष्ठान नहीं है।

श्रीजीव गोस्वामी प्रभु द्वारा रचित भक्ति सन्दर्भ (२८३ संख्या में)—"यद्यपि श्रीभागवतमते पञ्चरात्रादिवदर्चन-मार्गस्यावश्यकत्वं नास्ति, तद्विनापि शरणा-पत्यादीनामेकतरेणापि पुरुषार्थसिद्धेर- भिहितत्वात्।" [अर्थात् श्रीमद्भागवत के मतानुसार अर्चन के बिना भी शरणागति इत्यादि में से जिस किसी एक के भी द्वारा ही पुरुषार्थ-सिद्धि होती है, ऐसा होने से श्रीमद्भागवत के मतानुसार पञ्चरात्र आदि की भाँति अर्चन-मार्ग की आवश्यकता नहीं है।]

जिह्वार लालसे जेइ इति-उति धाय।
शिश्नोदर-परायण कृष्ण नाहि पाय॥" २२७ ॥

२२७। प० अनु०—"जो जिह्वा के लोभ के कारण इधर-उधर दौड़ लगाता है अर्थात् जो जिह्वा के अधीन बनकर अच्छे खाने-पीने की रुचि रखता है, वह तो शिश्न तथा उदर के लिये सब समय व्यस्त रहने वाला है, ऐसा व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त नहीं कर सकता।"

घर को त्याग करने वाले साधकों के मङ्गल के लिये स्वयं को वैसा मानकर—रघुनाथ के द्वारा स्वरूप से अपने कर्त्तव्य की जिज्ञासा—

आर दिन रघुनाथ स्वरूप-चरणे।
आपनार कृत्य लागि' कैला निवेदने॥ २२८ ॥

२२८। प० अनु०—एक दिन श्रीरघुनाथ ने श्रीस्वरूप दामोदर के श्रीचरणों में अपने कर्त्तव्य हेतु निवेदन करते हुए कहा,—।

"कि लागि' छाड़ाइला घर, ना जानि उद्देश।
कि मोर कर्त्तव्य, प्रभु करुन उपदेश॥" २२९ ॥

२२९। प० अनु०—"हे श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी! श्रीमन्महाप्रभु ने किस उद्देश्य से मुझसे मेरा घर छुड़वाया है, मैं स्वयं इसके उद्देश्य के विषय में नहीं जानता। श्रीमन्महाप्रभु मुझे उपदेश प्रदान करें कि मेरा क्या कर्त्तव्य है?"

स्वयं मौन रहकर रघुनाथ के द्वारा स्वरूप और गोविन्द के माध्यम से प्रभु के साथ वार्त्तालाप—

प्रभुर आगे कथा-मात्र ना कहे रघुनाथ।
स्वरूप-गोविन्द-द्वारा कहाय निज-बात॥ २३० ॥

२३०। प० अनु०—श्रीरघुनाथ श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष कोई बात तक भी नहीं करते थे, वे श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीगोविन्द इत्यादि के द्वारा ही श्रीमन्महाप्रभु से अपने हृदय की बात कहलवाते थे।

एकदिन स्वरूप के द्वारा प्रभु के निकट रघुनाथ के कर्त्तव्य की जिज्ञासा–

प्रभुर आगे स्वरूप निवेदिला आर दिने।
''रघुनाथ निवेदय प्रभुर चरणे॥२३१॥
कि मोर कर्त्तव्य, मुइ ना जानि उद्देश।
आपनि श्रीमुखे मोरे करुन उपदेश॥'' २३२ ॥

२३१-२३२। प० अनु०—एकदिन श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीमन्महाप्रभु से निवेदन करते हुए कहा,—''रघुनाथ श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में निवेदन कर रहा है कि मेरा क्या कर्त्तव्य है, मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता। श्रीमन्महाप्रभु स्वयं मुझे अपने श्रीमुख से इस विषय में उपदेश प्रदान करें।''

प्रभु के द्वारा रघुनाथ को स्वरूप को अपने शिक्षा गुरु के रूप में वरण करने का आदेश–

हासि' महाप्रभु रघुनाथेरे कहिल।
''तोमार उपदेष्टा करि' स्वरूपेरे दिल॥ २३३ ॥

२३३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने मुस्कुराते हुए श्रीरघुनाथ से कहा,—''हे रघुनाथ! मैंने स्वरूप दामोदर को तुम्हारा उपदेष्टा बनाकर ही तुम्हें दिया है।

माध्व-गौड़ीयों के नित्य प्रभु अथवा गुरु श्रीदामोदर स्वरूप ही समस्त साध्य-साधन तत्त्व के आचार्य–

'साध्य'-'साधन'-तत्त्व शिख' इहाँर स्थाने।
आमि तत नाहि जानि, इँहो जत जाने॥ २३४ ॥

२३४। प० अनु०—''तुम इन्हीं से ही साध्य तथा साधन तत्त्व को सीखो। मैं स्वयं उतना नहीं जानता हूँ, जितना यह जानता है।

तथापि आमार आज्ञाय श्रद्धा यदि हय।
आमार एइ वाक्ये तुमि करिह निश्चय॥ २३५ ॥

२३५। प० अनु०—''तब भी यदि तुम्हारी मेरी आज्ञा के प्रति श्रद्धा है तो तुम मेरे इन वचनों को अवश्य ही पालन करना।

प्रभु के द्वारा रागानुगा भक्ति का अनुशीलन करने वाले के आचार का वर्णन–

ग्राम्यकथा ना शुनिबे, ग्राम्यवार्त्ता ना कहिबे।
भाल ना खाइबे, आर भाल ना परिबे॥ २३६ ॥

२३६। प० अनु०—''तुम कभी भी ग्राम्यकथा मत सुनना तथा न ही ग्राम्यवार्त्ता कहना। अच्छा-अच्छा मत खाना तथा न ही अच्छा-अच्छा पहनना।

अमानी मानद हञा कृष्णनाम सदा लबे।
व्रजे राधाकृष्ण-सेवा मानसे करिबे॥ २३७ ॥

२३७। प० अनु०—''तुम दूसरे से सम्मान प्राप्त करने की अभिलाषा से रहित तथा अन्यों को सर्वदा सम्मान देते हुए सदैव कृष्णनाम का उच्चारण करना एवं मन के द्वारा व्रज में राधाकृष्ण की सेवा करना।

अमृतप्रवाह भाष्य

२३६-२३७। स्त्री और पुरुष विवाहित होकर सन्तान आदि उत्पन्न करके जिस संसार का स्थापन करते हैं, उस संसार के सम्बन्ध में जितनी कथा-वार्त्ता है, सबकुछ 'ग्राम्य' कथा-वार्त्ता है; वह कभी भी वैरागी अथवा वैष्णवों के लिये सुनने अथवा बोलने योग्य नहीं है। अच्छा खाना, अच्छा पहनना,—यह भी वैरागी के लिये उचित नहीं है; अन्यों के प्रति सम्मान शील और स्वयं सम्मान प्राप्ति की अभिलाषा से रहित होकर सदैव कृष्णनाम करना एवं मन में व्रज में राधाकृष्ण की सेवा करना,—यही वैरागी का कार्य है।

एइ त' संक्षेपे आमि कैलुँ उपदेश।
स्वरूपेर ठाञि इहार पाबे सविशेष॥ २३८ ॥

२३८। प० अनु०—''इस प्रकार मैंने संक्षेप में तुम्हें उपदेश प्रदान किया है, तुम्हें स्वरूप दामोदर इसे विस्तृत रूप से समझा देंगे।''

(पद्यावली में उद्धृत श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रोक्त शिक्षाष्टक का तृतीय श्लोक)

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥ २३९ ॥

२३९। अनु०—जो अपने आपको तृण की अपेक्षा अधिक छोटा मानते हैं, जो वृक्ष के समान सहिष्णु होते हैं, स्वयं मानशून्य तथा अन्य व्यक्तियों को सम्मान प्रदान करते हैं, वही सदैव श्रीहरिनाम कीर्त्तन के अधिकारी हैं।

अनुभाष्य

२३९। आदि-लीला के सप्तदश परिच्छेद की ३१ वीं संख्या द्रष्टव्य।

रघुनाथ के द्वारा प्रभु के चरणों की वन्दना, प्रभु के द्वारा आलिङ्गन—

एत शुनि' रघुनाथ वन्दिला चरण।
महाप्रभु कैला ताँरे कृपा-आलिङ्गन॥ २४०॥

२४०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मुख से उपरोक्त उपदेश को सुनकर श्रीरघुनाथ ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणकमलों की वन्दना की तथा श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें कृपापूर्वक आलिङ्गन प्रदान किया।

रघुनाथ के द्वारा दामोदर स्वरूप के आनुगत्य में गौरकृष्ण की अन्तरङ्ग-सेवा—

पुनः समर्पिला ताँरे स्वरूपेर स्थाने।
'अन्तरङ्ग-सेवा' करे स्वरूपेर सने॥ २४१॥

२४१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पुनः श्रीरघुनाथ को श्रीस्वरूप दामोदर के हाथों में समर्पित किया तथा श्रीरघुनाथ श्रीस्वरूप दामोदर के साथ अर्थात् उनके आनुगत्य में अन्तरङ्ग सेवा करने लगे।

अमृतप्रवाह भाष्य

२४१। 'अन्तरङ्ग-सेवा',—मन मन में अपनी स्वरूप-देह में जो व्रज सेवा है, वही 'अन्तरङ्ग सेवा' है। स्वरूप गोस्वामी—ललिता देवी; उनके गण में प्रवेश करके श्रीदास गोस्वामी अपनी अन्तरङ्ग व्रज-सेवा करते थे।

प्रतिवर्ष की भाँति रथयात्रा से पहले गौड़ीय भक्तों का पुरी में आगमन—

हेन-काले आइला सब गौड़ेर भक्तगण।
पूर्ववत् प्रभु सबाय करिला मिलन॥ २४२॥

२४२। प० अनु०—इसी समय गौड़देश के समस्त भक्त आकर श्रीजगन्नाथपुरी में उपस्थित हुए, पहले की ही भाँति श्रीमन्महाप्रभु ने सभी से भेंट की।

समस्त भक्तों के साथ गुण्डिचा-मार्जन और बगीचे में महोत्सव—

सबा लञा कैला प्रभु गुण्डिचा-मार्जन।
सबा लञा कैला प्रभु वन्य-भोजन॥ २४३॥

२४३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने समस्त भक्तों के साथ मिलकर श्रीगुण्डिचा मन्दिर का मार्जन किया, उसके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने समस्त भक्तों के साथ बगीचे में बैठकर भोजन किया।

अपने भक्तों सहित प्रभु का रथ के आगे नृत्य; रघुनाथ में विस्मय—

रथयात्राय सबा लञा करिला नर्त्तन।
देखि' रघुनाथेर चमत्कार हैल मन॥ २४४॥

२४४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने समस्त भक्तों के साथ रथयात्रा के समय नृत्य किया, जिसे देखकर श्रीरघुनाथ का मन आश्चर्यचकित हो गया।

रघुनाथ के द्वारा भक्तों के चरणों की वन्दना, अद्वैत की कृपा की प्राप्ति—

रघुनाथ-दास जबे सबारे मिलिला।
अद्वैत-आचार्य ताँरे बहु कृपा कैला॥ २४५॥

२४५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास जब गौड़देश से आये समस्त भक्तों से मिले तो श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने उन पर बहुत कृपा की।

शिवानन्द के द्वारा रघुनाथ के समक्ष गोवर्धन दास के द्वारा उन्हें ढूँढ़ने की चेष्टा का वर्णन—

शिवानन्द-सेन ताँरे कहेन विवरण।
''तोमा लैते तोमार पिता पाठाइल दश जन॥ २४६॥
तोमारे पाठाइते पत्री पाठाइल मोरे।
झाँकरा हइते तोमा ना पाञा गेल घरे॥'' २४७॥

२४६-२४७। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने श्रीरघुनाथ से कहा,—''तुम्हारे पिता ने तुम्हें घर लौटाकर ले जाने के लिये दस लोगों को भेजा था। तुम्हारे पिता ने उनके हाथ मेरे पास तुम्हें घर भेजने के लिये एक पत्र भी लिखा था। वे दस लोग तुम्हारे नहीं मिलने के कारण झाँकरा से लौट गये।''

चातुर्मास्य के अन्त में भक्तों के द्वारा पुरी से गौड़ लौटना—
चारि मास रहि' भक्तगण गौड़े गेला।
शुनि' रघुनाथेर पिता मनुष्य पाठाइला॥ २४८॥

२४८। प० अनु०—चार मास तक श्रीजगन्नाथ पुरी में रहने के पश्चात् गौड़देश से आये भक्त लौट गये। भक्तों के लौट आने की बात को सुनकर श्रीरघुनाथ के पिता श्रीगोवर्धन मजुमदार ने एक व्यक्ति को श्रीशिवानन्द सेन के पास भेजा।

शिवानन्द के निकट गोवर्धन दास के द्वारा लोग भेजकर रघुनाथ के संवाद की जिज्ञासा—
से मनुष्य शिवानन्द-सेनेरे पुछिल।
''महाप्रभुर स्थाने एक 'वैष्णव' देखिल॥ २४९॥
गोवर्द्धनेर पुत्र तेंहो, नाम—'रघुनाथ'।
नीलाचले परिचय आछे तोमार साथ??'' २५०॥

२४९-२५०। प० अनु०—उस व्यक्ति ने आकर श्रीशिवानन्द सेन से पूछा,—''क्या आपकी श्रीजगन्नाथ पुरी में श्रीचैतन्य महाप्रभु के वासस्थन पर श्रीगोवर्धन मजुमदार के पुत्र श्रीरघुनाथ दास नामक किसी वैष्णव से भेंट हुई? क्या आप उन्हें जानते हैं?

शिवानन्द सेन के द्वारा रघुनाथ के तात्कालिक वैराग्य और वैष्णवी-प्रतिष्ठा की प्रशंसा—
शिवानन्द कहे,—''तेंहो हय प्रभुर स्थाने।
परम विख्यात तेंहो, केबा नाहि जाने?? २५१॥

२५१। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने कहा,—''रघुनाथ श्रीमन्महाप्रभु के साथ ही रहता है, वह तो बहुत अधिक विख्यात व्यक्ति है, उसे कौन नहीं जानता?

स्वरूपेर स्थाने तारे कैराछेन समर्पण।
प्रभुर भक्तगणेर तेंहो हय प्राणसम॥ २५२॥

२५२। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु ने रघुनाथ को श्रीस्वरूप दामोदर के हाथों में समर्पित किया है। रघुनाथ श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों का प्राण-स्वरूप है।

रात्रि-दिन करे तेंहो नाम-सङ्कीर्त्तन।
क्षणमात्र नाहि छाड़े प्रभुर चरण॥ २५३॥

२५३। प० अनु०—''रघुनाथ रात-दिन नाम-सङ्कीर्त्तन करता है, वह एक क्षण के लिये भी श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को नहीं छोड़ता।

परम वैराग्य ताँर, नाहि भक्ष्य-परिधान।
जैछे तैछे आहार करि' राखये पराण॥ २५४॥

२५४। प० अनु०—''रघुनाथ बहुत अधिक वैरागी है, उसके पास खाने तथा पहनने के लिये कुछ भी नहीं है। वह जिस किसी प्रकार से कुछ खाकर अपने प्राणों की रक्षा करता है।

दशदण्ड रात्रि गेले 'पुष्पाञ्जलि' देखिया।
सिंहद्वारे खाड़ा हय आहार लागिया॥ २५५॥

२५५। प० अनु०—''दस दण्ड रात्रि अर्थात् सूर्यास्त के पश्चात् चार घंटे के व्यतीत हो जाने पर वह भगवान् श्रीजगन्नाथ की पुष्पाञ्जलि के दर्शन करके आहार के लिये सिंहद्वार पर खड़ा हो जाता है।

केह यदि देय, तबे करये भक्षण।
कभु उपवास, कभु करये चर्वण॥'' २५६॥

२५६। प० अनु०—''कोई यदि रघुनाथ को कुछ दे देता है, तब तो वह उसे खा लेता है अन्यथा कभी-कभी उपवास करता है तथा कभी कुछ चने इत्यादि चबा लेता है।''

गोवर्धन दास के निकट जाकर उस व्यक्ति के द्वारा रघुनाथ के वैराग्य से युक्त भजन के संवाद का ज्ञापन—

एत शुनि' सेइ मनुष्य गोवर्द्धन-स्थाने।
कहिल गिया सब रघुनाथ-विवरणे॥ २५७ ॥

२५७। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन के मुख से ऐसा सुनकर वह व्यक्ति श्रीरघुनाथ के पिता श्रीगोवर्धन मजुमदार के पास लौट गया तथा उनको श्रीरघुनाथ के विषय में सबकुछ बतलाया।

रघुनाथ के द्वारा कृष्ण भजन के उद्देश्य से भोगों के त्याग के विषय में श्रवण करके कृष्ण-भोग्य भक्त को अपना भोग्य पुत्र मानकर पत्नी सहित गोवर्धनदास का दु:ख—

शुनि' ताँर माता पिता दु:खित हइल।
पुत्र-ठाञि द्रव्य-मनुष्य पाठाइल॥ २५८ ॥

२५८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के विषय में सुनकर उनके माता-पिता बहुत दु:खी हुए, वे अपने पुत्र श्रीरघुनाथ के पास वस्तुएँ तथा सेवक भेजने की व्यवस्था करने लगे।

रघुनाथ को देने के लिये शिवानन्द के निकट मुद्रा, सेवक और रसोइये को भेजना—

चारिशत मुद्रा, दुइ भृत्य, एक ब्राह्मण।
शिवानन्देर ठाञि पाठाइल ततक्षण॥ २५९ ॥

२५९। प० अनु०—श्रीगोवर्धन मजुमदार ने उसी समय श्रीरघुनाथ के उद्देश्य से चार सौ मुद्राओं के साथ दो सेवक तथा एक ब्राह्मण को श्रीशिवानन्द सेन के पास भेजा।

शिवानन्द के द्वारा साथ में ले जाने का आश्वासन-प्रदान—

शिवानन्द कहे,—''तुमि सब जाइते नारिबा।
आमि जाइ जबे, आमार सङ्गे जाइबा॥ २६० ॥

२६०। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने उन लोगों से कहा,—''आप सब अपने आपसे जगन्नाथपुरी नहीं जा पाओगे। जब मैं जाऊँगा, तब मेरे साथ ही जाना।

एबे घर जाह, जबे आमि सब चलिमु।
तबे तोमा-सबाकारे सङ्गे लञा जामु॥" २६१ ॥

२६१। प० अनु०—''अभी आप लोग अपने घर लौट जाओ, जब हम सब लोग जगन्नाथपुरी के लिये निकलेंगे तब तुम सबको मैं अपने साथ ले जाऊँगा।''

श्रीकविकर्णपूर के द्वारा स्वरचित नाटक में रघुनाथ के माहात्म्य का वर्णन—

एइ त' प्रस्तावे श्रीकविकर्णपूर।
रघुनाथ-महिमा ग्रन्थे लिखिला प्रचुर॥ २६२ ॥

२६२। प० अनु०—इसी प्रसङ्ग में श्रीकविकर्णपूर ने स्वरचित चैतन्यचन्द्रोदय नाटक में श्रीरघुनाथ की प्रचुर महिमा का वर्णन किया है—।

अनुभाष्य

२६२। ग्रन्थे,—श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक में।

श्रीकृष्णचैतन्य के अत्यधिक कृपापात्र स्वरूपानुग यदुनन्दनाचार्य और रघुनाथ के गुण—(श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक १०.३-४ में साथी यात्रियों के प्रति शिवानन्द की उक्ति)—

आचार्यो यदुनन्दनः सुमधुरः श्रीवासुदेवप्रिय-
स्तच्छिष्यो रघुनाथ इत्यधिगुणः प्राणाधिको मादृशाम्।
श्रीचैतन्यकृपातिरेकसततस्निग्धः स्वरूपप्रियो
वैराग्यैकनिधिर्न कस्य विदितो नीलाचले तिष्ठताम्॥

अमृतप्रवाह भाष्य

२६३। रघुनाथ दास (काञ्चनपल्ली-निवासी) श्रीवासुदेव-दत्त के प्रियपात्र अति सुमधुर-मूर्ति यदुनन्दनाचार्य के शिष्य हैं। उनके गुणों के कारण वे—हम सबको ही प्राणों से अधिक प्रिय हैं एवं वे श्रीचैतन्य की अत्यधिक कृपा के द्वारा सतत-स्निग्ध हैं, वे स्वरूप गोस्वामी के प्रिय और वैराग्य रूपी राज्य की एकमात्र

निधि हैं। नीलाचल में जो वास करते हैं, उनमें से उन्हें कौन नहीं जानता?

अनुभाष्य

२६३। श्रीवासुदेवप्रियः (वासुदेव-दत्त ठकुरस्य प्रियः कृपापात्रं; न तु शिष्यः) सुमधुरः यदुनन्दनः आचार्यः; तच्छिष्यः (तस्य यदुनन्दनस्य शिष्यः इति कृपापात्रं, न तु तेनैव दीक्षितः इत्यर्थः) अधिगुणः (गुणैरधिकः सर्वाधिक गुणान्वितः) मादृशां (गौरप्राणानां) प्राणाधिकः (प्राणतोऽप्यधिकः प्रियः) श्रीचैतन्यकृपातिरेकसतत-स्निग्धः (गौरकृपातिशयेन नित्यप्रेमवान्) स्वरूपप्रियः (दामोदर-स्वरूपानुगः) वैराग्यैकनिधिः (वैराग्यस्य एकनिधिः मुख्याश्रयः सिन्धुर्वा) रघुनाथः (श्रीदास गोस्वामी) नीलाचले (पुरुषोत्तमक्षेत्रे) तिष्ठतां (निवसतां मध्ये) कस्य न विदितः? (सर्वेषामेव परिचितोऽस्तीति-भावः)।

रघुनाथ का अतुलनीय सौभाग्य—

यः सर्वलोकैकमनोभिरुच्या
सौभाग्यभूः काचिदकृष्टपच्या।
यस्यां समारोपणतुल्यकालं
तत्प्रेमशाखी फलवानतुल्यः॥ २६४ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

२६४। जो (श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी) समस्त लोगों की मनोभिरुचि (चित्तरञ्जन) द्वारा कोई एक (अनिर्वचनीय) अकृष्टपच्या (स्वतःप्रकटित) सौभाग्य की भूमि (आधार स्वरूप) बने थे, जिनमें बीज बोने के समय ही (श्रीचैतन्य का) अतुल्य (अनुपम) प्रेम-शाखी (वृक्ष) फलवान् हुआ था।

अनुभाष्य

२६४। यः (दासगोस्वामी) सर्वलोकैक- मनोभिरुच्या (सर्वेषां भक्तानां लोकानाम् एका प्रधाना या मनसः अभिरुचिः प्रीतिः तया) काचित् (अनिर्वचनीया) अकृष्टपच्या (कर्षणव्यतिरेकेण पक्वा अर्थात् साधनेन सिद्धिलाभात् पूर्वमेव साधनव्यतिरेकेण वा सिद्धा) सौभाग्यभूः (सौभाग्यभूमिः), यस्यां (भूमौ) समारोपणतुल्यकालं (बीजवपन समकालमेव) अतुल्यः (अनुपमः) तत्प्रेमशाखी (तत् तस्य श्रीचैतन्यस्य प्रेमा, स एव शाखी वृक्षः) फलवान् ('अभवत्' इति शेषः)।

शिवानन्द जैछे सेइ मनुष्ये कहिला।
कर्णपूर सेइरूपे श्लोक वर्णिला॥ २६५ ॥

२६५। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने श्रीरघुनाथ के विषय में जैसा श्रीगोवर्धन मजुमदार द्वारा भेजे गये व्यक्ति को कहा, श्रीकविकर्णपूर ने उसी के अनुरूप श्लोक की रचना कर दी।

गोवर्धन के द्वारा भेजे गये धन, सेवक और ब्राह्मण का वर्षाकाल में शिवानन्द के साथ पुरी में जाना—

वर्षान्तरे शिवानन्द चले नीलाचले।
रघुनाथेर सेवक, विप्र ताँर सङ्गे चले॥ २६६ ॥

२६६। प० अनु०—एक वर्ष के उपरान्त जब श्रीशिवानन्द सेन नीलाचल के लिये चले तब श्रीरघुनाथ के उद्देश्य से जाने वाले सेवक तथा एक ब्राह्मण भी श्रीशिवानन्द सेन के साथ चल दिये।

सेइ विप्र, भृत्य, चारि शत मुद्रा लञा।
नीलाचले रघुनाथे मिलिला आसिया॥ २६७ ॥

२६७। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के पिता श्रीगोवर्धन मजुमदार द्वारा भेजे गये ब्राह्मण तथा सेवक चार सौ मुद्राएँ लेकर श्रीजगन्नाथ पुरी में पहुँच गये एवं वे श्रीरघुनाथ से जाकर मिले।

रघुनाथ के द्वारा उन सबको अस्वीकार करना—

रघुनाथ-दास अङ्गीकार ना करिल।
द्रव्य लञा दुइजन ताँहाइ रहिल॥ २६८ ॥

२६८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने कुछ भी स्वीकार नहीं किया,वे दोनों व्यक्ति उन मुद्राओं को लेकर वहीं पर रह गये।

रघुनाथ के द्वारा प्रत्येक मास महाप्रभु को दो बार निमन्त्रण—

तबे रघुनाथ करि' अनेक यतन।
मासे दुइ दिन कैला प्रभुर निमन्त्रण॥ २६९ ॥

२६९। प० अनु०—तब श्रीरघुनाथ ने अनेक प्रयत्न करके श्रीमन्महाप्रभु को एक मास में दो दिन निमन्त्रण करना प्रारम्भ किया।

उस के लिये ही रघुनाथ द्वारा गोवर्धन-प्रेरित धन लेना—

दुइ निमन्त्रणे लागे कौड़ि अष्टपण।
ब्राह्मण-भृत्य-ठाञि करेन एतेक ग्रहण॥ २७० ॥

२७०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करके महाप्रसाद देने में एक मास में आठ आने खर्च होते थे, इसलिए श्रीरघुनाथ उनके पिता के द्वारा भेजे गये ब्राह्मण तथा भृत्य से केवल इतना ही ग्रहण करते थे।

अनुभाष्य

२७०। अष्टपण,—६४० कड़ा कड़ि अर्थात् आठ आना।

दो वर्षों के बाद प्रभु को निमन्त्रण करने के कार्य का परित्याग—

एइमत निमन्त्रण वर्ष दुइ कैला।
पाछे रघुनाथ निमन्त्रण छाड़ि' दिला॥ २७१ ॥

२७१। प० अनु०—इस प्रकार श्रीरघुनाथ ने श्रीमन्महाप्रभु को दो वर्ष तक निमन्त्रण किया, किन्तु बाद में श्रीरघुनाथ ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण देना बन्द कर दिया।

महाप्रभु के द्वारा स्वरूप से रघुनाथ द्वारा निमन्त्रण-छोड़ने के कारण की जिज्ञासा—

मास-दुइ जबे रघुनाथ ना करे निमन्त्रण।
स्वरूपे पुछिला तबे शचीर नन्दन॥ २७२ ॥

२७२। प० अनु०—जब दो मास तक श्रीरघुनाथ ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण नहीं दिया, तब श्रीशचीनन्दन गौरहरि ने श्रीस्वरूप दामोदर से पूछा—।

''रघु केने आमाय निमन्त्रण छाडि' दिल?''
स्वरूप कहे,—''मने किछु विचार करिल॥ २७३॥

स्वरूप के द्वारा महाप्रभु को रघुनाथ के चित्त के भाव के विषय में बतलाकर प्राकृत-विषयी को शिक्षा-प्रदान; भोक्ता-अभिमानी विषयी के भोग्य जड़ीय द्रव्य कभी भी चिन्मय विष्णु के भोग्य नहीं—

विषयीर द्रव्य लञा करि निमन्त्रण।
प्रसन्न ना हय इहाय, जानि प्रभुर मन॥ २७४ ॥

२७३-२७४। प० अनु०—''हे स्वरूप! रघु ने मुझे निमन्त्रण देना क्यों बन्द कर दिया है?'' श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''रघुनाथ ने अपने मन में विचार किया—'मैं विषयी व्यक्ति के धन से श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करता हूँ, मैं अब श्रीमन्महाप्रभु के मन की बात को समझ पा रहा हूँ कि वे इससे प्रसन्न नहीं है।

अहङ्कार-विमूढ़ व्यक्ति के भोग्य-जड़-वस्तु के द्वारा चिन्मयी विष्णु-सेवा को करने के परिमाण की चेष्टा—अनर्थ को वर्धित करने वाली और चित्-जड़ का समन्वय करने वाली जड़ीय-प्रतिष्ठा मात्र—

मोर द्रव्य लइते चित्त ना हय निर्मल।
एइ निमन्त्रणे देखि,—'प्रतिष्ठा' मात्र फल॥ २७५॥

२७५। प० अनु०—'अपने पिता के द्वारा भेजे गये द्रव्यों को ग्रहण करके उन्हें श्रीमन्महाप्रभु की सेवा में लगाने से जब मेरा चित्त ही निर्मल नहीं हो रहा, तब तो यही प्रमाणित होता है कि ऐसे निमन्त्रण का फल केवल प्रतिष्ठा ही है।

अनुभाष्य

२७५। 'अहं मम'-अभिमानयुक्त जड़ीय भोक्ता, के द्वारा प्राकृत-विषयी के भोग्य अर्थ जड़ातीत सच्चिदानन्द वस्तु हरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा करने की चेष्टा करने पर केवल प्रतिष्ठा रूपी फल को ही प्राप्त करता है, उससे वास्तविक अप्राकृत हरि-गुरु-वैष्णवों की सेवा नहीं होती। एकान्त शरणागत होकर अर्थात् सम्पूर्ण

आत्मनिवेदन करके नित्य मङ्गल की इच्छा रखने वाले जीव के लिये स्वयं द्वारा अर्जित समस्त धन के द्वारा एवं काय-मन- वाक्य-प्राण से अप्राकृत हरि-गुरु-वैष्णव की सेवा करना कर्त्तव्य है।

बालिश (अबोध) के नित्य मङ्गल के लिये ईश्वर की अमन्दोदय-दया—

उपरोधे प्रभु मोर मानेन निमन्त्रण।
ना मानिले दु:खी हइबेक मूर्ख जन॥ २७६ ॥

२७६। प० अनु०—'मेरे अनुरोध के कारण श्रीमन्महाप्रभु मेरे द्वारा दिये गये निमन्त्रण को स्वीकार करते हैं, क्योकि वे भली-भाँति जानते हैं अन्यथा मेरे जैसा मूर्ख व्यक्ति दु:खी होगा।'

अनुभाष्य

२७६। जन्म-ऐश्वर्य-श्रुत-श्री के अभिमान में मत्त विषयी श्रीमूर्ति की तथाकथित सेवा करवा के (तथाकथित भोग में दी गयी वस्तुओं को) उनका प्रसाद मानकर वैष्णवों को प्रदान करते हैं। मूर्खता वशत: वे यह नहीं जानते कि उनकी अभक्तिमय मनोवृत्ति के द्वारा प्रदत्त कोई भी वस्तु अधोक्षज अजित (भगवान् श्रीकृष्ण) ग्रहण नहीं करते। अतएव अनेक स्थानों पर वैसे जड़भोक्ता रूपी विषयी की जड़ीय अभिमान की गन्ध से मिश्रित सहायता को ग्रहण करके उनकी दासता कृष्णभजन परायण निरपेक्ष अर्थात् जड़भोग विरक्त वैष्णव स्वीकार नहीं करते। इससे जागतिक धनी विषयी व्यक्ति अपनी देह आदि में अहं बुद्धि से उत्पन्न मूर्खतावशत: वैष्णवों के प्रति विरोध का पोषण करते हैं एवं वैष्णवों के वैसे व्यवहार के प्रति दु:खित होते हैं।

महाप्रभु का सन्तुष्ट होना—

एत विचारिया निमन्त्रण छाड़ि' दिला।''
शुनि' महाप्रभु हासि' बलिते लागिला॥ २७७ ॥

२७७। प० अनु०—''ऐसा विचार करके रघुनाथ ने आपको निमन्त्रण देना छोड़ दिया।'' श्रीस्वरूप दामोदर के मुख से ऐसा सुनकर श्रीमन्महाप्रभु हँसते हुए कहने लगे,—।

प्रभु के द्वारा साधक और आचार्यों के सङ्ग अथवा व्यवहार की विधि अथवा कर्त्तव्य का उपदेश—

''विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन।
मलिन मन हैले, नहे कृष्णेर स्मरण॥ २७८ ॥

२७८। प० अनु०—''विषयी व्यक्ति के द्वारा प्रदत्त अन्न खाने से मन मलिन हो जाता है तथा मन के मलिन होने पर कृष्ण का स्मरण नहीं हो पाता।

अनुभाष्य

२७८। अवैष्णव अथवा प्राकृत सहजियागण—विषयी हैं। उनके अभक्ति पूर्वक प्रदान किये गये भोजन को ग्रहण करने अथवा खाने से साधक वैष्णव का सङ्गदोष होता है, एवं उसके फलस्वरूप, साधक उनके जैसे स्वभाव को प्राप्त करता है। 'अवैष्णव' और 'वैष्णव' नामधारी प्राकृत सहजियाओं के साथ लेशमात्र प्रच्छन्न प्रीति के साथ भी यदि कोई छह प्रकार के सङ्ग (दान, प्रतिग्रह, भोजन और भोजन में प्रवर्त्तन, गूढ़ बात का वर्णन और जिज्ञासा) करता है, तब अप्राकृत शुद्धकृष्ण भक्ति के स्थान पर जड़ीय इन्द्रियों के तर्पण मूलक प्राकृत भोग आकर साधक को कृष्ण भक्ति से च्युत कर देते हैं। अतएव आत्मेन्द्रिय तर्पणपर विषयों से मलिन अशुद्ध चित्त वाले व्यक्तियों के लिये अप्राकृत कृष्ण-स्मरण आदि का सेवन कभी भी सम्भवपर नहीं है।

गृहव्रत अथवा केवल ग्राम्य-व्यवहार को जानने वाले ही 'विषयी', उनका सङ्ग ही 'राजस'—

विषयीर अन्न हय 'राजस' निमन्त्रण।
दाता, भोक्ता—दुँहार मलिन हय मन॥ २७९ ॥

२७९। प० अनु०— ''विषयी व्यक्ति के अन्न को ग्रहण करने हेतु दिया जाने वाला निमन्त्रण राजसिक निमन्त्रण के अन्तर्गत आता है, इससे देने वाले तथा ग्रहण करने वाले—दोनों का ही मन मलिन हो जाता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

२७९। 'राजस' निमन्त्रण,—निमन्त्रण तीन प्रकार के होते हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक; विशुद्ध वैष्णवों का निमन्त्रण—सात्त्विक, विषयी पुण्यवान् व्यक्ति का अन्न—राजस एवं पापिष्ठ व्यक्ति का अन्न—तामस होता है।

ईश्वर की अमन्दोदया दया के फल से सद्बुद्धि के उदित होने पर साधक के द्वारा कर्ममिश्रा-भक्ति का त्याग और शुद्ध सेवा की प्रवृत्ति—

इँहार सङ्कोचे आमि एत दिन निल।
भाल हैल,—जानिया से आपनि छाड़िल॥'' २८०॥

२८०। प० अनु०—''मैंने भी रघुनाथ के सङ्कोचवशतः ही इतने दिनों तक उसके निमन्त्रण को स्वीकार किया। अच्छा ही हुआ कि मेरे मन की बात को जानकर उसने स्वयं ही निमन्त्रण करना छोड़ दिया।''

रघुनाथ के द्वारा सिंहद्वार की भिक्षा का त्याग और छत्र में भोजन ग्रहण—

कत दिने रघुनाथ सिंहद्वार छाड़िला।
छत्रे जाइ' मागिया खाइते आरम्भ करिला॥ २८१॥

२८१। प० अनु०—कुछ समय के पश्चात् श्रीरघुनाथ ने सिंहद्वार पर खड़े होकर भिक्षा माँगना छोड़ दिया तथा छत्र में जाकर माँगकर खाना आरम्भ किया।

प्रभु के द्वारा स्वरूप से रघुनाथ के सिंहद्वार को त्याग करने के कारण की जिज्ञासा—

गोविन्द-पाश शुनि' प्रभु पुछेन स्वरूपेरे।
''रघु भिक्षा लागि' ठाड़ केने नहे सिंहद्वारे??''२८२॥

२८२। प० अनु०—अपने सेवक श्रीगोविन्द के मुख से श्रीरघुनाथ की वार्त्ता सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर से पूछा,—''आजकल रघुनाथ भिक्षा के लिये सिंहद्वार पर खड़ा क्यों नहीं होता?''

अनुभाष्य

२८२। ठाड़,—(हिन्दी-शब्द) खड़ा।

स्वरूप के द्वारा रघुनाथ की गृहत्यागी विरक्त व्यक्तियों के आचार-आदर्शरूपी माधुकरी-भिक्षा को स्वीकार करने का वर्णन—

स्वरूप कहे,—''सिंहद्वारे दुःख अनुभविया।
छत्रे मागि' खाय मध्याह्नकाले गिया॥'' २८३॥

२८३। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''रघुनाथ सिंहद्वार पर दुःख का अनुभव करने के कारण आजकल मध्याह्नकाल में छत्र से माँगकर खा लेता है।''

दूसरों की इच्छानुसार उनसे प्राप्त होने वाले अन्न की प्रतीक्षा—निरपेक्ष वैराग्य धर्म के प्रतिकूल—

प्रभु कहे,—''भाल कैल, छाड़िल सिंहद्वार।
सिंहद्वारे भिक्षा-वृत्ति—वेश्यार आचार॥ २८४॥

२८४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''रघुनाथ ने सिंहद्वार पर खड़े होने को छोड़कर बहुत अच्छा किया। सिंहद्वार पर खड़े होकर भिक्षा करने की प्रवृत्ति वास्तव में वेश्या के आचरण के समान है।

लोगों को देखने मात्र से भिक्षा की प्राप्ति अथवा अप्राप्ति की आशा अथवा उसकी सम्भावना की कल्पना—

(श्रीकृष्णचैतन्यदेव-वाक्य)

अयमागच्छति, अयं दास्यति,
अनेन दत्तमयमपरः।
समेत्ययं दास्यति, अनेनापि न दत्तमन्यः समेष्यति,
स दास्यति॥२८५॥

अमृतप्रवाह भाष्य

२८५। 'ये आ रहे हैं, ये ही देंगे; इन्होंने दिया है; अन्य एक व्यक्ति आ रहे हैं, ये देंगे, ये जो व्यक्ति चले गये, इन्होंने दिया नहीं; अन्य एक व्यक्ति आकर देंगे;—अयाचक वैरागी-वेषधारी (निरपेक्षता परित्याग करके वेश्या की भाँति) ऐसी आशा किया करते हैं।

अनुभाष्य

२८५। (वर्त्मचारिणं कञ्चित अवलोक्य अर्थार्थी,

अन्नार्थी वा स्वगतं वदति—) अयं (पथिकः) आगच्छति, अयं (वदान्यः) मां दास्यति (अर्थ-भोजनादिकं प्रदास्यति), अनेन (दात्रा पूर्वस्मिन् प्रदोषे अर्थ-भोजनादिकं) दत्तम्, अयम् अपरः (जनः समागतः); अयं समेत्य (समागत्य) दास्यति; अनेन अपि न (किञ्चित्) दत्तम्; अन्यः (दाता) समेष्यति (समागमिष्यति) स (एव) मह्यं दास्यति।

माधुकरी भिक्षा ही घर का त्याग करने वाले विरक्त के हरि भजन के अनुकूल—

छत्रे गिया यथा-लाभ उदर-भरण।
अन्य कथा नाहि, सुखे कृष्ण सङ्कीर्त्तन॥'' २८६ ॥

२८६। प० अनु०—''छत्र में जाकर जो कुछ भी मिल गया, उसी से अपना उदर भर लेने से अन्य किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी पड़ती तथा अत्यधिक आनन्दपूर्वक कृष्ण सङ्कीर्त्तन किया जा सकता है।''

समस्त ब्रह्मज्ञों के गुरु रघुनाथ को परमश्रेष्ठ मानकर अपने गिरिधारी-विग्रह और गान्धर्वा-रूपिणी माला प्रदान—

एत बलि' ताँरे पुनः प्रसाद करिला।
'गोवर्द्धनेर शिला', 'गुञ्जा-माला' ताँरे दिला॥२८७॥

२८७। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरघुनाथ पर पुनः अन्य एक कृपा करते हुए उन्हें श्रीगोवर्धन जी की शिला तथा गुञ्जा-माला प्रदान की।

अनुभाष्य

२८७। गोवर्धन-शिला,—श्रीगिरिधारी विग्रह; गुञ्जामाला,—कुँच की माला।

विग्रह और मालिका प्राप्ति के आदि-वृत्तान्त का वर्णन—

शङ्करानन्द-सरस्वती वृन्दावन हैते आइला।
तेंह सेइ शिला-गुञ्जामाला लञा गेला॥ २८८ ॥

२८८। प० अनु०—श्रीशङ्करानन्द सरस्वती एक बार श्रीवृन्दावन में गये थे तथा वहाँ से श्रीजगन्नाथपुरी के लिये जाते समय वे श्रीगोवर्धन की शिला तथा गुञ्जामाला को अपने साथ ले गये थे।

पाश्वें गाँथा गुञ्जामाला, गोवर्द्धन-शिला।
दुइ वस्तु महाप्रभुर आगे आनि' दिला॥ २८९ ॥

२८९। प० अनु०—श्रीजगन्नाथपुरी पहुँचने पर श्रीशङ्करानन्द सरस्वती ने सूत्र में गुँथी हुई गुञ्जा की माला तथा गोवर्धन शिला—इन दोनों को लाकर श्रीमन्महाप्रभु के आगे रख दिया।

कृष्ण स्मरण के समय साक्षात् गान्धर्वा-गिरिधारी मानकर प्रभु के द्वारा उस माला और विग्रह का समादर—

दुइ अपूर्व-वस्तु पाञा प्रभु तुष्ट हैला।
स्मरणेर काले गले परेन गुञ्जामाला॥ २९० ॥

२९०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु इन दो अपूर्व वस्तुओं को प्राप्त करके अत्यन्त सन्तुष्ट हुए तथा स्मरण के समय वे उस गुञ्जामाला को अपने गले में पहन लेते।

गोवर्द्धन-शिला प्रभु हृदये-नेत्रे धरे।
कभु नासाय घ्राण लय, कभु शिरे करे॥ २९१ ॥

२९१। प० अनु०—गोवर्धन की शिला को श्रीमन्महाप्रभु कभी अपने हृदय तथा नेत्रों पर रखते, कभी अपने नाक के द्वारा उसका घ्राण लेते तथा कभी उसे अपने सिर पर रखते।

नेत्रजले सेइ शिला भिजे निरन्तर।
शिलारे कहेन प्रभु,—'कृष्णकलेवर'॥ २९२ ॥

२९२। प० अनु०—वह शिला श्रीमन्महाप्रभु के नेत्रों से प्रवाहित होने वाले अश्रुओं के द्वारा निरन्तर भीगती, श्रीमन्महाप्रभु उस शिला को कृष्ण का कलेवर कहकर पुकारते।

तीन वर्ष तक सेवा करने के बाद रघुनाथ को प्रदान—

एइमत तिन वत्सर शिला-माला धरिला।
तुष्ट हञा शिला-माला रघुनाथे दिला॥ २९३ ॥

२९३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने इस प्रकार तीन वर्ष तक श्रीगोवर्धन शिला तथा गुञ्जामाला को अपने

पास रखने के पश्चात् श्रीरघुनाथ के प्रति सन्तुष्ट होने के कारण उन्हें प्रदान कर दी।

अर्चा विष्णु विग्रह में शिला-बुद्धि और वैष्णवों में जाति-बुद्धि करने वाले पाषण्डी लोगों को शिक्षा प्रदान करने के लिये प्रभु का उपदेश—

प्रभु कहे,—"एइ शिला कृष्णेर विग्रह।
इँहार सेवा कर तुमि करिया आग्रह॥ २९४ ॥

२९४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी से कहा,—"हे रघुनाथ! यह गोवर्धन शिला श्रीकृष्ण का विग्रह है, तुम आग्रहपूर्वक इसकी सेवा करो।

अनुभाष्य

२९३-२९४। गोवर्धन-शिला,—साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन; महाप्रभु ने उस शिला को 'साक्षात् अप्राकृत कृष्ण-कलेवर' जानकर तीन वर्ष तक अङ्गीकार किया, बाद में रघुनाथ के हृदय में स्फूर्त्ति कराके निजप्रियतम-प्रिय के ज्ञान से उन्हें सेवाधिकार प्रदान किया। अदैव-वर्णाश्रम में पालित और पुष्ट दास-स्थानीय कुछेक प्राकृत-बुद्धियुक्त अक्षजज्ञान के मद में मत्त अवैष्णव बाहर से वैष्णवों की भाँति चिह्न धारण करके भी वैष्णवों से विद्वेष करते हुए प्राकृत घृणित अपने-अपने प्रच्छन्न इन्द्रिय-तर्पण को चरितार्थ करने की वासना से अपने अक्षज ज्ञान अथवा मनोधर्म को सम्बल बनाकर विष्णु के अप्राकृत अर्च्चा-विग्रह में धातु अथवा शिला-बुद्धि, कृष्ण के प्रकाश विग्रह सेवक-भगवान् चिद्विलास श्रीगुरुदेव में मर्त्यबुद्धि, वर्णाश्रमियों के गुरु परमहंस-वैष्णवों में जाति बुद्धि करते हुए यह कल्पना व्यक्त करते हैं कि "श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी तो शौक्र-ब्राह्मण नहीं थे अथवा उन्होंने सावित्र्य-संस्कार ग्रहण नहीं करने के कारण दैक्ष-ब्राह्मणता को भी प्राप्त नहीं किया।" इस श्रेणी के मात्सर्य से पीड़ित लोग कल्पना के द्वारा अनुमान करते हैं कि—शौक्र ब्राह्मण कुल में आविर्भूत व्यक्ति के अलावा अन्य किसी शुद्धभक्त का ही विष्णु के विग्रह के स्पर्श अथवा पूजन में अधिकार नहीं होने के कारण महाप्रभु ने प्राकृत अदैव समाज की ओर दृष्टि करके ही कुशलतापूर्वक ऐसी लीला दिखायी है। इसी अपराध के कारण वैसी कल्पना करने वाले अनन्त अपराध रूपी विषय विष्ठा के गड्ढ़े में पतित होते हैं एवं वैष्णव-अपराध-वशतः उनका लौकिक और पारलौकिक सर्वनाश होता है। कनिष्ठ अथवा मध्यम वैष्णवों के लिये ऐसे अपराधी व्यक्तियों के दल के साथ संग किसी भी प्रकार से विधेय नहीं है, क्योंकि स्त्री-सङ्गी के सङ्ग का पोषण करने वाली शौक्र-ब्राह्मणता के अतिरिक्त अप्राकृत ब्राह्मण्य का शुद्ध चिन्मय आदर्श अन्यत्र नहीं हो सकता,—उनका ऐसा नरक को प्राप्त कराने वाला विश्वास उन्हें नित्यकाल के लिये महा-रौरव में आबद्ध रखकर उनका विनाश करेगा ही करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

महाभागवत की शुद्ध सात्त्विक पूजा अथवा भाव-सेवा प्राकृत कनिष्ठाधिकारगत अर्चन नहीं, वही भाव ही प्रेम रूप—

एइ शिलार कर तुमि सात्त्विक-पूजन।
अचिरात् पाबे तुमि कृष्णप्रेमधन॥ २९५ ॥

२९५। प० अनु०—"तुम इस गोवर्धन-शिला का सात्त्विक पूजन करो, तुम्हें अतिशीघ्र कृष्णप्रेम रूपी धन की प्राप्ति होगी।

शुद्ध सात्त्विक-सेवा की प्रणाली—

एक कुँजा जल आर तुलसी-मञ्जरी।
सात्त्विक-सेवा एइ—शुद्धभावे करि॥ २९६ ॥
दुइदिके दुइपत्र-मध्ये कोमल मञ्जरी।
एइमत अष्टमञ्जरी दिबे श्रद्धा करि'॥" २९७ ॥

२९६-२९७। प० अनु०—"तुम एक कुञ्जा जल तथा आठ ऐसी कोमल तुलसी मञ्जरियाँ, जिसके दोनों ओर दो पत्ते हों, —इन्हें श्रद्धापूर्वक गोवर्धन शिला को समर्पित करके शुद्धभाव से सात्त्विक सेवा करना।"

समस्त ब्रह्मज्ञ कुल के गुरु प्रभुप्रेष्ठ महाभागवत रघुनाथ के द्वारा शुद्ध-सात्त्विक-भाव-सेवा—

श्रीहस्ते शिला दिया एइ आज्ञा दिला।
आनन्दे रघुनाथ सेवा करिते लागिला॥ २९८ ॥

२९८। श्रीमन्महाप्रभु ने अपने श्रीहस्त कमल से श्रीगोवर्धन शिला तथा गुञ्जामाला को श्रीरघुनाथ को देते समय उपरोक्त आज्ञा दी। श्रीरघुनाथ आनन्दपूर्वक सेवा करने लगे।

एक-वितस्ति दुइवस्त्र, पिंड़ा एकखानि।
स्वरूप दिलेन कुँजा आनिवारे पानि॥ २९९ ॥

२९९। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीरघुनाथ को आधे हाथ परिमाण के दो वस्त्र, एक सिंहासन तथा जल लाने के लिये एक कुञ्जा प्रदान किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

२९९। वितस्ति,—आधे हाथ परिमाण का।

अर्च्य-विष्णु में शिला और वैष्णव में जाति बुद्धि करने वाले पाषण्डियों की कल्पना को धिक्कार प्रदान कर रघुनाथ के द्वारा गिरिधारी को साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन मानना—

एइमत रघुनाथ करेन पूजन।
पूजा-काले देखे शिलाय 'व्रजेन्द्रनन्दन'॥ ३०० ॥

३००। प० अनु०—श्रीरघुनाथ इस प्रकार श्रीगोवर्धन शिला की पूजा करने लगे तथा वे पूजा करते समय उस शिला में श्रीव्रजेन्द्रनन्दन के दर्शन करते।

रघुनाथ का अपूर्व प्रभु प्रेम—

''प्रभुर स्वहस्त-दत्त गोवर्धन-शिला।''
एइ चिन्ति' रघुनाथ प्रेमे भासि' गेला॥ ३०१ ॥

३०१। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु के निज हस्त कमलों द्वारा प्रदत्त श्रीगोवर्धन-शिला'—ऐसी भावना से ही श्रीरघुनाथ प्रेम में सराबोर हो जाते।

जल-तुलसीर सेवाय जत सुखोदय।
षोड़शोपचार-पूजाय तत सुख नय॥ ३०२ ॥

३०२। प० अनु०—जल तथा तुलसी के द्वारा की जाने वाली सेवा से जितने अधिक सुख का उदय होता, सोलह प्रकार के उपचारों के द्वारा पूजा करने से भी वैसे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

एकदिन स्वरूप के अनुरोध से विग्रह को गोविन्द द्वारा प्रदान किये गये सन्देश नामक मिष्ठान्न का समर्पण—

एइमत कतदिन करेन पूजन।
तबे स्वरूप-गोसाञि ताँरे कहिला वचन॥ ३०३ ॥

३०३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ को जब इस प्रकार पूजा करते-करते अनेक दिन बीत गये, तब श्रीस्वरूप दामोदर ने उनसे कहा—।

''अष्ट-कौड़ि खाजा-सन्देश कर समर्पण।
श्रद्धा करि' दिले, सेइ अमृतेर सम॥'' ३०४ ॥

३०४। प० अनु०—''हे रघुनाथ! तुम गोवर्धन को आठ कौड़ी का खाजा और सन्देश नामक मिष्ठान्न समर्पित करो। श्रद्धापूर्वक निवेदन करने से वह गोवर्धन शिला को अमृत जैसा लगेगा।''

तबे अष्ट-कौड़ि खाजा करे समर्पण।
स्वरूप-आज्ञाय गोविन्द करे समाधान॥ ३०५ ॥

३०५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ उस दिन से श्रीगोवर्धन शिला को आठ कौड़ी का खाजा-सन्देश समर्पित करने लगे। श्रीस्वरूप दामोदर की आज्ञा से आठ कौड़ी की व्यवस्था श्रीगोविन्द करते थे।

रघुनाथ के द्वारा प्रभु की कृपा के तात्पर्य का अनुधावन—

रघुनाथ सेइ शिला-माला जबे पाइला।
गोसाञिर अभिप्राय एइ भावना करिला॥ ३०६ ॥

३०६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ को जब श्रीमन्महाप्रभु के हस्तकमलों से श्रीगोवर्धन शिला तथा गुञ्जामाला प्राप्त हुई, तब से श्रीरघुनाथ ने श्रीमन्महाप्रभु के अभिप्राय की इस प्रकार भावना की—।

माला और शिला प्रदान करके प्रभु के द्वारा रघुनाथ को गान्धर्वा-गिरिधारी की रागमयी अन्तरङ्गा-सेवा-प्रदान—

''शिला दिया गोसाञि समर्पिला 'गोवर्धने'।
गुञ्जामाला दिया दिला 'राधिका-चरणे'॥''३०७॥

३०७। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु ने मुझे श्रीगोवर्धन शिला प्रदान करके श्रीगोवर्धन के चरणों में तथा गुञ्जामाला प्रदान करके श्रीराधिका के चरणों में समर्पित किया है।''

प्रेम में आत्म-विस्मृत रघुनाथ के द्वारा गौर-सेवा—

आनन्दे रघुनाथेर बाह्य विस्मरण।
कायमने सेविलेन गौराङ्ग-चरण॥ ३०८ ॥

३०८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ को आनन्द वशतः जागतिक समस्त वस्तुओं का सम्पूर्ण रूप से विस्मरण हो गया, उन्होंने अपनी देह एवं मन से श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के चरणों की सेवा की।

गोस्वामी रघुनाथ के कृष्णेन्द्रिय-प्रीति के उद्देश्य से किये गये अद्वितीय अद्‌भुत अचञ्चल वैराग्य युक्त भजन के आदर्श का वर्णन—

अनन्त गुण रघुनाथेर के करिबे लेखा?
रघुनाथेर नियम,—जेन पाषाणेर रेखा॥ ३०९ ॥

३०९। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के अनन्त गुण हैं, कौन उनका लिखकर वर्णन कर सकता है? श्रीरघुनाथ के द्वारा ग्रहण किये गये नियम पाषाण पर पड़ी रेखा की भाँति थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

३०९। रघुनाथेर नियम जेन पाषाणेर रेखा,—श्रील रघुनाथ के वैराग्य की विधि पाषाण के ऊपर रेखा की भाँति अत्यन्त दृढ़ थी।

सर्वक्षण कृष्णभजन—

साड़े सात प्रहर जाय कीर्त्तन-स्मरणे।
सबे चारि-दण्ड आहार-निद्रा कोन दिने॥ ३१० ॥

३१०। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के लगभग साड़े सात प्रहर (साढ़े बाइस घंटे)कीर्त्तन और स्मरण में ही व्यतीत हो जाते, कभी-कभी कुल मिलाकर प्रायः केवल मात्र चार दण्ड (९६ मिनट)ही आहार तथा निद्रा के लिये मिलते।

अनुभाष्य

३१०। पाठान्तर,—''सार्द्ध सप्त प्रहर जाय स्मरण-कीर्त्तने। आहार-निद्रा—चारिदण्ड सेह नहे कोन दिने॥''

छहों वेगों पर विजय प्राप्त करने वाले गोस्वामी रघुनाथ—

वैराग्येर कथा ताँर अद्‌भुत-कथन।
आजन्म ना दिला जिह्वाय रसेर स्पर्शन॥ ३११ ॥

३११। प० अनु०—श्रीरघुनाथ के वैराग्य की कथा तो एक अद्‌भुत कथन है, उन्होंने आजन्म अर्थात् सम्पूर्ण जीवन अपनी जिह्वा को जड़ रस का स्पर्श तक नहीं होने दिया।

छिण्डा-कानि काँथा बिना ना परेन वसन।
सावधाने प्रभुर कैला आज्ञार पालन॥ ३१२ ॥

३१२। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने फटे-पुराने वस्त्रों के अलावा अन्य किसी भी प्रकार के वस्त्र को धारण नहीं किया तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा का अत्यधिक सावधानी पूर्वक पालन किया।

केवल शरीर के निर्वाह के लिये आवश्यक वस्तु को स्वीकार करना—

प्राण-रक्षा लागि' जेबा करेन भक्षण।
ताहा खाञा आपनार करे निर्वेदन॥ ३१३ ॥

३१३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ अपने प्राणों की रक्षा के लिये थोड़ा-बहुत जो कुछ भक्षण करते, उसके लिये भी स्वयं को धिक्कार देते।

अनुभाष्य

३१३। निर्वेदन,—गर्हण (आत्मनिन्दा), धिक्कार।

दिव्यसम्बन्धज्ञान के उदित होने से देहात्मबुद्धि का ह्रास—श्रीमद्भागवत (७.१५.४०) में—

आत्मानं चेद्विजानीयात् परं ज्ञानधूताशयः।
किमिच्छन् कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः॥३१४॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३१४। ज्ञान के द्वारा भली-भाँति धुले हुए चित्त वाले व्यक्ति आत्मतत्त्व को जान लेने पर जब सबकुछ प्राप्त करते हैं, तब वैसा नहीं करके लम्पट लोग किस अभिप्राय से, किस कारण से केवल शरीर की पुष्टि के लिये प्रयत्न किया करते हैं?

अनुभाष्य

३१४। 'किस विधि का अनुसरण करने से गृहस्थ सहज में मोक्ष प्राप्त करते हैं?'—धर्मराज युधिष्ठिर के इस प्रश्न के उत्तर में देवर्षि नारद मोक्षलक्षण सर्ववर्णाश्रम-साधनसार-वर्णन प्रसङ्ग में चारों आश्रमों की कथा बतलाकर अन्त में कह रहे हैं —

चेद् (यदि) आत्मनं परं ('ब्रह्म कृष्णं') विजानीयात्, तदा ज्ञानधूताशयः (ज्ञानेन सम्बन्ध-ज्ञानेन धूतः निरस्तः आशयः विषयकामः यस्य सः) लम्पटः (जिह्वोपस्थ-परिचालनपरः सन्) किम् इच्छन् (किमर्थं) कस्य वा हेतोः देहं पुष्णाति (अनुसंचरेत्? ज्ञानिनः लौल्यमेव न सम्भवतीत्यर्थः। तथा च श्रुतिः—"आत्मानं चेद्-विजानीयादयमस्मीति पुरुषः। किमिच्छन् कस्य कामाय शरीर-मनु-सञ्चरेत्?" इति)।

प्रसाद बिक्री करने वाले दुकानदारों के द्वारा नहीं बिकने वाले सड़े हुए कीचड़ से सने अन्न को धोकर कृष्ण के उच्छिष्ट को चित् वस्तु मानकर उसका सम्मान—

प्रसादान्न पसारिर जत ना बिकाय।
दुइ-तिन दिन हैले, भात सड़ि' जाय॥ ३१५ ॥

३१५। प० अनु०—श्रीजगन्नाथ मन्दिर में स्थित आनन्द बाजार के पंसारियों का जितना महाप्रसादी चावल नहीं बिकता, बच जाता, वह दो-तीन दिन के बाद सड़ जाता।

अमृतप्रवाह भाष्य

३१५। सड़ि',—सड़ जाना।

सिंहद्वारे गाभी-आगे सेइ भात डारे।
सड़ा-गन्धे तैलङ्गी-गाइ खाइते ना पारे॥ ३१६ ॥

३१६। प० अनु०—पंसारि लोग उस चावल को सिंहद्वार के निकट घूमने वाली गैयाओं के आगे खाने के लिये डाल देते, किन्तु चावलों के सड़े होने की दुर्गन्ध के कारण तैलङ्गी गैयाएँ उसे खा न पाती।

अमृतप्रवाह भाष्य

३१६। तैलङ्गी गाइ,—तैलङ्ग देश की गाय।

अनुभाष्य

३१६। डारे,—फैंक देते।

सेइ भात रघुनाथ रात्रे घरे आनि'।
भात धुञा फेले घरे दिया बहु पानि॥ ३१७ ॥

३१७। प० अनु०—श्रीरघुनाथ रात्रि के समय उसी चावल को अपने घर ले जाते तथा बहुत अधिक पानी के द्वारा उन चावलों को धो डालते।

भितरेते दड़-भात माजि' जेइ पाय।
लवण दिया रघुनाथ सेइ अन्न खाय॥ ३१८ ॥

३१८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ को चावलों को धोने के बाद उसका जो सख्त भीतरी भाग मिलता, वे उसी में नमक मिलाकर खा लेते।

अनुभाष्य

३१८। भितरेते दड़भात माजि',—असिद्ध चावल के कठोर बीच वाले भाग को धोकर अर्थात् साफ करके।

एकदिन स्वरूप का आनन्दपूर्वक चित् वस्तु समझकर उस कृष्ण के उच्छिष्ट अंश को ग्रहण करना—

एकदिन स्वरूप ताहा करिते देखिला।
हासिया ताहार किछु मागिया खाइला॥ ३१९ ॥

३१९। प० अनु०— एकदिन श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीरघुनाथ को उन चावलों को खाते देखा, उन्होंने हँसते हुए श्रीरघुनाथ से कुछ चावल माँगकर खा लिये।

गौरकृष्ण के परमप्रेष्ठ रघुनाथ के द्वारा गृहीत प्रसाद ही चिन्मय कृष्ण भुक्तामृत—

स्वरूप कहे,—''ऐछे अमृत खाओ निति-निति।
आमा-सबाय नाहि देह,—कि तोमार प्रकृति??''

३२०। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीरघुनाथ से कहा,—''तुम प्रतिदिन ऐसा अमृत खाते हो, और हम सबको नहीं देते हो, यह तुम्हारा कैसा स्वभाव है?''

गोविन्द के निकट श्रवणपूर्वक स्वयं प्रभु का भी उस कृष्ण के उच्छिष्ट अंश को ग्रहण करना—

गोविन्देर मुखे प्रभु से वार्त्ता शुनिला।
आर दिन आसि' प्रभु कहिते लागिला॥ ३२१ ॥

३२१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अपने सेवक श्रीगोविन्द के मुख से उपरोक्त वार्त्ता को सुना तथा वे अन्य दिन आकर श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरघुनाथ से कहने लगे—।

''खासा वस्तु खाओ सबे, मोरे ना देह' केने?''
एत बलि एक ग्रास करिला भक्षणे॥ ३२२ ॥

३२२। प० अनु०—''तुम सब स्वयं उत्तम-उत्तम वस्तुएँ खाते हो, मुझे क्यों नहीं देते हो?'' इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने भी उन चावलों का एक ग्रास खा लिया।

अनुभाष्य

३२२। खासा,—उत्तम।

साधक का स्वयं कृष्ण की प्रीति के लिये वैराग्य-आचरण का अभ्यास रहने पर भी निखिल ऐश्वर्यशाली हरि-गुरु-वैष्णव को एकमात्र प्रभु मानकर सर्वोत्कृष्ट चित्-उपकरण के द्वारा पूजा की कर्त्तव्यता की शिक्षा का दान—

आर ग्रास लैते स्वरूप हातेते धरिला।
''तव योग्य नहे'' बलि 'बले' काडि' निला॥ ३२३॥

३२३। प० अनु०—जब श्रीमन्महाप्रभु ने अन्य एक ग्रास खाने हेतु चावल लिये, तब श्रीस्वरूप दामोदर ने उनका हाथ पकड़ लिया तथा यह कहकर कि—'यह चावल आपके खाने योग्य नहीं हैं'—बलपूर्वक उनके हाथ से चावल छीन लिये।

प्रभु के द्वारा अपने प्रेष्ठ रघुनाथ के द्वारा गृहीत-प्रसाद की प्रशंसा—

प्रभु बले,—''निति-निति नाना प्रसाद खाइ।
ऐछे स्वाद आर कोन प्रसादे ना पाइ॥'' ३२४ ॥

३२४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैं नित्यप्रति अनेक प्रकार का महाप्रसाद खाता हूँ, किन्तु मुझे ऐसा स्वाद कभी किसी भी प्रसाद को खाने से नहीं मिला।''

रघुनाथ के कृष्णेन्द्रिय-प्रीति वाञ्छामय वैराग्य-दर्शन से प्रभु का आनन्द—

एइमत महाप्रभु नाना लीला करे।
रघुनाथेर वैराग्य देखि' सन्तोष अन्तरे॥ ३२५ ॥

३२५। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु अनेक प्रकार की लीलाएँ करते, श्रीरघुनाथ के वैराग्य को देखकर उनके हृदय में अत्यन्त सन्तुष्टि थी।

रघुनाथ के द्वारा स्वरचित स्तव में प्रभु की करुणा का वर्णन—

आपन उद्धार एइ रघुनाथदास।
'चैतन्यस्तवकल्पवृक्षे' कैराछेन प्रकाश॥ ३२६ ॥

३२६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ ने अपने उद्धार की बात को स्वरचित 'चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष' में प्रकाशित किया है।

गौर कृपा से रघुनाथ का दामोदर-आनुगत्य और गान्धर्वा-गिरिधारी की सेवा की प्राप्ति—(स्तवावली में चैतन्यस्तव-कल्पवृक्ष-स्तव में ११ वाँ श्लोक)

महासम्पद्दारादपि पतितमुद्धृत्य कृपया
स्वरूपे यः स्वीये कुजनमपि मां न्यस्य मुदितः।
उरोगुञ्जाहारं प्रियमपि च गोवर्द्धनशिलां
ददौ मे गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥ ३२७ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३२७। मेरे अत्यधिक कु-जन होने पर भी कृपापूर्वक

जिन्होंने मुझे पतित देखकर मेरे सम्पत्ति और पत्नी (पाठान्तर में विषय रूपी दावाग्नि) से उद्धार किया था तथा मुझे श्रीस्वरूप को अर्पण करके आनन्दित हुए थे, जिन्होंने मुझे अपने वक्ष की गुञ्जा-माला और गोवर्धन शिला प्रदान की थी, वे गौराङ्ग मेरे हृदय में उदित होकर मुझे मत्त कर रहे हैं।

षष्ठ परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

३२७। यः (महाप्रभुः) कृपया कुजनम् अपि मां (स्वानुकम्पया) महासम्पद्वारात् (महासम्पदश्च दाराश्च तेषां समाहार, हिरण्ययोषित् संसर्गात् 'महासम्पद्दावात्' इतिपाठे महासम्पदेव दावः तस्मात् सकाशात्) उद्धृत्य स्वीये (निजजने) स्वरूपे (श्रीदामोदर-स्वरूपे) न्यस्य (समर्प्य) मुदितः (हृष्टः सन्) प्रियं अपि उरोगुञ्जाहारं (वक्षसः गुञ्जामालां) गोवर्धनशिलां च (गिरिधरविग्रहं) मे (मह्यं) ददौ, सः (गौराङ्गः गौरहरिः) मे (मम) हृदये उदयन् (प्रकटयन्) मां मदयति (हर्षयति)।

षष्ठ परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

प्रभु और रघुनाथ के मिलन के श्रवण से चैतन्यचरण की प्राप्ति—

एइ त' कहिलुँ रघुनाथेर मिलन।
इहा जेइ शुने, पाय चैतन्यचरण॥ ३२८ ॥

३२८। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु के साथ श्रीरघुनाथ के मिलन के प्रसङ्ग का वर्णन किया है, इसे जो कोई भी श्रवण करता है, उसे श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों की प्राप्ति होती है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ ३२९ ॥

३२९। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्य खण्डे श्रीरघुनाथ दास मिलनं नाम षष्ठः परिच्छेदः।

❋ ❋ ❋

सप्तम परिच्छेद

कथासार — इस परिच्छेद में वल्लभ-भट्ट का [श्रीपुरुषोत्तम धाम में] आगमन एवं उनके प्रति अनेक प्रकार का परिहास, उनके सिद्धान्तों का संशोधन, उनका निमन्त्रण-ग्रहण एवं भट्ट द्वारा श्रीगदाधर पण्डित के प्रति विशेष आनुगत्य को देखकर पण्डित के प्रति महाप्रभु की छलना पूर्ण उदासीनता,—यह समस्त वर्णित हुआ है। वल्लभ भट्ट के अत्यन्त अनुगत होने पर तब श्रीमन्महाप्रभु ने उनका निमन्त्रण स्वीकार किया तथा श्रीगदाधर पण्डित से मन्त्रार्थ आदि की शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा दी एवं गदाधर पण्डित के प्रति स्नेह प्रकाश किया।

(अ: प्र: भा:)

स्पर्शमणि गौरभक्तों की वन्दना—

चैतन्यचरणाम्भोजमकरन्दलिहो भजे।
येषां प्रसादमात्रेण पामरोऽप्यमरो भवेत्॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। जिनकी कृपा मात्र से पामर व्यक्ति भी अमर हो जाता है, [मैं] उन्हीं श्रीचैतन्य चरणकमल के मधु के लोभी भक्तों का भजन करता हूँ।

अनुभाष्य

१। येषां (गौरपदाश्रित-भक्तानां) प्रसाद मात्रेण (कृपालवेन) पामर: (भक्ति रहित: पाषाण्ड:) अपि अमर: (अप्राकृत देहवान्) भवेत्, (तान्) चैतन्य-चरणाम्भोजमकरन्दलिह: (चैतन्यस्य भगवत: गौरस्य चरणौ एव अम्भोजे तयो: मकरन्दान् लिहन्ति ये तान् गौरभक्तान् अहं) भजे।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैत चन्द्र की जय हो। श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

रथयात्रा से पहले गौड़ीय भक्तों का आगमन—

वर्षान्तरे जत गौड़ेर भक्तगण आइला।
पूर्ववत् महाप्रभु सबारे मिलिला॥ ३ ॥

३। प० अनु०—एक वर्ष के पश्चात् श्रीगौड़देश से जितने भक्त आए, श्रीमन्महाप्रभु पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति ही उनसे मिले।

वल्लभ भट्ट का आगमन—

एइमत विलास प्रभुर भक्तगण लञा।
हेनकाले वल्लभ-भट्ट मिलिल आसिया॥ ४ ॥

४। प० अनु०—इस प्रकार जब श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तों के साथ विलास कर रहे थे, उसी समय उनसे श्रीवल्लभ भट्ट आकर मिले।

अनुभाष्य

४। वल्लभ-भट्ट,—मध्य-लीला के उनविंश परिच्छेद की ६१वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य।

भट्ट के द्वारा प्रभु के चरणों की वन्दना, उन्हें वैष्णव मानकर प्रभु के द्वारा उनका आलिङ्गन—

आसिया वन्दिल भट्ट प्रभुर चरणे।
प्रभु 'भागवतबुद्धये' कैला आलिङ्गने॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट ने आकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना की, श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें भक्त मानकर उनका आलिङ्गन किया।

भट्ट की सविनयपूर्वक उक्ति—जगन्नाथ के द्वारा प्रभु के दर्शन की आकांक्षा की पूर्त्ति—

मान्य करि' प्रभु तारे निकटे बसाइला।
विनय करिया भट्ट कहिते लागिला॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवल्लभ भट्ट को सम्मान देकर अपने निकट बैठाया। वल्लभ भट्ट दीनता करते हुए कहने लगे—।

''बहुदिन मनोरथ तोमा देखिबारे।
जगन्नाथ पूर्ण कैला, देखिलुँ तोमारे॥ ७ ॥

७। प० अनु०—''बहुत दिनों से आपके दर्शन करने की अभिलाषा थी, भगवान् श्रीजगन्नाथ ने आपके दर्शन कराके उसे पूर्ण कर दिया।

वल्लभ की प्रभु के प्रति भगवान् के समान भावना और गौरव-स्तुति, किन्तु शरणागति का अभाव—

तोमार दर्शन जे पाय, सेइ भाग्यवान्।
तोमाके देखिये,—जेन साक्षात् भगवान्॥ ८ ॥

८। प० अनु०—''जिसे आपके दर्शनों की प्राप्ति होती है, वही सौभाग्यशाली है। आपको देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो आप साक्षात् भगवान् हो।

प्रभु के दर्शन की बात तो दूर, स्मरण से ही पवित्रता—

तोमारे जे स्मरण करे, से हय पवित्र।
दर्शने पवित्र हबे,—इथे कि विचित्र?? ९ ॥

९। प० अनु०—''जो व्यक्ति आपका स्मरण करता है, वह पवित्र हो जाता है। कोई फिर आपके दर्शन करके पवित्र हो जायेगा,—इसमें कौन से आश्चर्य की बात है?

शुद्धभक्तों की साक्षात् सेवा की बात दूर रहे, आसाक्षात् में स्मरण के प्रभाव से भी शुद्धि—श्रीमद्भागवत (१.१९.३३) में—

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्धयन्ति वै गृहाः।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः॥ १० ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१०। ''जिनके स्मरण मात्र से मनुष्यों के घर पवित्र होते हैं, उनके दर्शन, स्पर्श, चरण-अभिषेक और आसन आदि प्रदान करने के द्वारा कितना लाभ होता है, इसे कहा नहीं जा सकता।

अनुभाष्य

१०। प्रायोपवेशन में रत राजा परीक्षित के द्वारा एकत्रित ब्रह्मज्ञ ऋषियों के निकट मुमूर्षु व्यक्ति के एकमात्र कर्त्तव्य के विषय में जिज्ञासा करने पर, ब्रह्मज्ञकुल-तिलक श्रीशुकदेव के वहाँ आगमन पर परीक्षित अत्यधिक दीनतापूर्वक सभी को अभिनन्दनपूर्वक कह रहे हैं—

येषां (सज्जनानां) संस्मरणात् (सम्यग् मनोविषयी करणात् एव) पुंसां (मानवानां) गृहाः (प्राकृतभोगायतनाः अपि) सद्यः (तत्क्षणात्) शुद्धयन्ति वै (पवित्रा भवन्ति एव), तेषां दर्शन- स्पर्शन-पादशौचासनादिभिः किं पुनः?

कृष्ण की स्वरूप-शक्ति ही नाम सङ्कीर्त्तन करने वाले आचार्य को प्रकाशित करने वाली—

कलिकालेर धर्म—कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन।
कृष्ण-शक्ति बिना नहे तार प्रवर्त्तन॥ ११ ॥

११। प० अनु०—''कलियुग का धर्म कृष्णनाम सङ्कीर्त्तन है तथा भगवान् श्रीकृष्ण की शक्ति के बिना उसका प्रवर्त्तन (वितरण, प्रचार अथवा स्थापन) नहीं किया जा सकता।

अनुभाष्य

११। श्रीमध्व के द्वारा उद्धृत श्रीनारायण- संहिता-वचन—''द्वापरीयैर्जनैर्विष्णुः पञ्चरात्रैस्तु केवलैः। कलौ तु नाममात्रेण पूज्यते भगवान् हरिः॥'' [अर्थात् द्वापर युग के मनुष्यों के द्वारा श्रीविष्णु केवल पञ्चरात्र के द्वारा ही पूजित होते हैं, किन्तु कलियुग में भगवान् श्रीहरि केवलमात्र श्रीनाम के द्वारा ही पूजित होते हैं।] कृष्ण की साक्षात् इच्छा अथवा कृपाशक्ति के बिना कोई भी मनुष्य प्राकृत-मनोधर्म के बल पर जगद्गुरु आचार्य के रूप में अप्राकृत वैकुण्ठ अधोक्षज श्रीकृष्णाभिन्न शुद्ध

कृष्ण नाम कीर्त्तन पूर्वक जगत् में कृष्ण के प्राकट्य को संस्थापित करके बद्धजीवों के चित्त रूपी दर्पण का मार्जन, भव महादावाग्नि-निर्वापण और श्रेय:कैरव चन्द्रिका के वितरण में समर्थ नहीं है। कृष्ण से अभिन्न उनके प्रकाश-विग्रह शुद्धनामैककीर्त्तननिष्ठ आचार्य—साक्षात् कृष्ण शक्ति के अवतार कृष्णलिङ्गित विग्रह हैं; वे—चारों वर्णाश्रमियों के गुरुदेव महाभागवत परमहंसठाकुर हैं।

कृष्णनाम के प्रवर्त्तन-हेतु प्रभु को स्वरूप-शक्तिमान् समझना—

ताहा प्रवर्त्ताइला तुमि,—एइ त' 'प्रमाण'।
कृष्णशक्ति धर तुमि,—इथे नाहि आन॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—"आपने उसी कृष्णनाम सङ्कीर्त्तन का प्रवर्त्तन किया है, इसी से ही प्रमाणित होता है कि आप श्रीकृष्ण की शक्ति को धारण करने वाले हैं, इस बात में कोई दूसरी राय नहीं हो सकती।

सेवोन्मुख व्यक्ति को कृष्णनाम प्रदान करने वाले गौर के दर्शन से कृष्ण प्रेम का उदय—

जगते करिला तुमि कृष्णनाम प्रकाशे।
जेइ तोमा देखे, सेइ कृष्णप्रेमे भासे॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—"आपने इस जगत् में कृष्णनाम को प्रकाशित किया है; जो भी व्यक्ति आपका दर्शन करता है, वही कृष्णप्रेम में सराबोर हो जाता है।

स्वरूप-शक्ति के प्रभाव से कृष्ण के द्वारा ही कृष्णप्रेम-प्रकटित करने का सामर्थ्य—

प्रेम-परकाश नहे कृष्णशक्ति बिने।
'कृष्ण'—एक प्रेमदाता, शास्त्र-प्रमाणे॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—"श्रीकृष्ण की शक्ति के बिना प्रेम को प्रकाशित नहीं किया जा सकता। शास्त्रीय प्रमाणानुसार एकमात्र कृष्ण ही प्रेमदाता हैं।

लघुभागवतामृत (१.५.३७) में बिल्वमङ्गल-वचन—

सन्त्ववतारा बहवः पङ्कजनाभस्य सर्वतोभद्राः।
कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवति॥"१५॥

१५। अनु०—"भगवान् पंकजनाभ (कमलनाभ) के अनेक मङ्गलमय अवतार क्यों न हों, किन्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त लताओं अर्थात् आश्रितजनों को प्रेम देने वाला अन्य कौन है?"

अनुभाष्य

१५। आदि-लीला के तृतीय परिच्छेद का २७ वाँ श्लोक द्रष्टव्य।

भगवान् की दीनता और छलना की चेष्टा—

महाप्रभु कहे—"शुन, भट्ट महामति।
मायावादी सन्यासी आमि, ना जानि कृष्णभक्ति॥१६॥

१६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"हे महामति वल्लभभट्ट, सुनो! मैं मायावादी सन्यासी हूँ तथा कृष्णभक्ति के विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ।

भगवान् के द्वारा भक्त के गुणों का वर्णन;—(१) महाविष्णु अद्वैताचार्य की गुणावली—

अद्वैताचार्य-गोसाञि—'साक्षात् ईश्वर'।
ताँर सङ्गे आमार मन हइल निर्मल॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—"श्रीअद्वैताचार्य गोस्वामी साक्षात् ईश्वर हैं, उनके सङ्ग से ही मेरा मन निर्मल हुआ है।

'अद्वितीय भक्तिशास्त्राचार्य' नाम की सार्थकता—

सर्वशास्त्रे कृष्णभक्तये नाहि जाँर सम।
अतएव 'अद्वैत-आचार्य' ताँर नाम॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—"उनका समस्त शास्त्रों का ज्ञान तथा श्रीकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति अद्वितीय है, इसी कारण उनका नाम अद्वैत-आचार्य है।

स्वयं महाविष्णु होकर आचार्य—परम-कृपालु और परम-वैष्णव—

जाँहार कृपाते म्लेच्छेर हय कृष्णभक्ति।
के कहिते पारे ताँर वैष्णवता-शक्ति?? १९ ॥

१९। प० अनु०—"जिनकी कृपा से म्लेच्छ भी कृष्णभक्ति करने लगता है, उनकी वैष्णवता की शक्ति

का कौन वर्णन कर सकता है?

(२) नित्यानन्द-गुणावली; कृष्ण के स्वरूप-प्रकाश होने पर भी कृष्णप्रेम सिन्धु सेवक-विग्रह—

नित्यानन्द-अवधूत—'साक्षात् ईश्वर'।
भावोन्मादे मत्त कृष्णप्रेमेर सागर॥ २० ॥

२०। प० अनु०—''अवधूत श्रीनित्यानन्द साक्षात् ईश्वर हैं, वे भाव के उन्माद में मत्त रहते हैं तथा कृष्णप्रेम के सागर स्वरूप हैं।

(३) वासुदेव-सार्वभौम की गुणावली—

षड्दर्शन-वेत्ता भट्टाचार्य-सार्वभौम।
षड्दर्शने जगद्गुरु भागवतोत्तम॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—''श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य छह प्रकार के दर्शनों को जानने वाले हैं, वे षड्दर्शन में जगद्गुरु तथा भागवतों में उत्तम हैं।

तेंह देखाइला मोरे भक्तियोग-पार।
ताँर प्रसादे जानिलुँ 'कृष्णभक्तियोग' सार॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—''उन्होंने ही मुझे भक्तियोग की चरम सीमा का दर्शन कराया है, उन्हीं की कृपा से मैंने कृष्णभक्तियोग के सार को जाना है।

(४) श्रीराम-राय की गुणावली; रसिक भक्तों में मुकुटमणि और (क) 'सम्बन्ध' तत्त्व-वेत्ता—

रामानन्द-राय—कृष्ण-रसेर 'निधान'।
तेंह जानाइला, कृष्ण—स्वयं भगवान्॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—''रामानन्द राय कृष्णरस की खान (भण्डारी) हैं, उन्होंने ही मुझे बतलाया है कि श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं।

(ख) 'प्रयोजन'-तत्त्व-वेत्ता, (ग) 'अभिधेय'-तत्त्व-वेत्ता—

ताते प्रेमभक्ति—'पुरुषार्थ-शिरोमणि'।
रागमार्गे प्रेमभक्ति 'सर्वाधिक' जानि॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—''उन से ही मुझे ज्ञात हुआ है कि श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति ही पुरुषार्थ-शिरोमणि है तथा रागमार्ग का अवलम्बन करके प्रेम-भक्ति का अनुशीलन करना ही सर्वोत्तम है।

अनुभाष्य

२४। 'पुरुषार्थ' कहने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष,—इन चारों को समझा जाता है; इन चारों पुरुषार्थों की अपेक्षा प्रेमभक्ति—सर्वश्रेष्ठ परम पुरुषार्थ अथवा पुरुषार्थ-शिरोमणि है। विधिमार्ग से कृष्ण की पूजा की अपेक्षा रागानुग मार्ग के द्वारा की गयी भक्ति अथवा सेवा—श्रेष्ठ है।

(घ) 'रस' तत्त्व-वेत्ता; कृष्ण प्रेम की अधिकता के कारण मधुर रस की सर्वश्रेष्ठता—

दास्य, सख्य, वात्सल्य, आर जे शृङ्गार।
दास, सखा, गुरु, कान्ता,—'आश्रय' जाहार॥ २५॥

२५। प० अनु०—''रामानन्द राय ने ही मुझे बताया कि दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा शृङ्गार रस के आश्रय क्रमशः दास, सखा, माता-पिता आदि गुरुजन एवं कान्ताएँ हैं।

मधुर रस में दो प्रकार की वृत्ति,—(क) पुर में 'ऐश्वर्यमिश्रा', (ख) व्रज में 'केवला'; यशोदानन्दन व्रज की पारकीया केवला वृत्ति के द्वारा ही प्राप्य, स्वकीया 'ऐश्वर्यमिश्रा' से नहीं—

'ऐश्वर्यज्ञान युक्त', 'केवल'-भाव आर।
ऐश्वर्य-ज्ञाने ना पाइ व्रजेन्द्रकुमार॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—''रामानन्द राय से ही मुझे ज्ञात हुआ कि मधुर रस भी ऐश्वर्यज्ञान से युक्त तथा केवल-भाव के भेद से दो प्रकार की वृत्तियों को धारण करता है एवं ऐश्वर्य ज्ञान से व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

अनुभाष्य

२६। 'ऐश्वर्यज्ञान युक्त' और 'केवल' अथवा 'शुद्ध' के भेद से भाव—दो प्रकार का है। ऐश्वर्यज्ञानयुक्त-भाव से व्रजेन्द्रनन्दन की परम महिमा को जाना नहीं जा सकता।

मध्य-लीला के उनविंश परिच्छेद की १९२ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भागवत (१०.९.२१) में—

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥ २७ ॥

२७।अनु०—यशोदा के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण भक्ति करने वाले देहधारियों के लिये जिस प्रकार सुलभ हैं, आत्मभूत ज्ञानियों के लिये वैसे नहीं।

अनुभाष्य

२७। मध्य-लीला के अष्टम परिच्छेद की २२६ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

श्लोक का शब्दार्थ; रासक्रीड़ा में लक्ष्मी का अनधिकार—

'आत्मभूत'-शब्दे कहे 'पारिषदगण'।
ऐश्वर्यज्ञाने लक्ष्मी ना पाइला व्रजेन्द्रनन्दन॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—''उपरोक्त श्लोक में प्रयुक्त आत्मभूत शब्द का अर्थ 'पार्षद' है। इससे ज्ञात होता है कि लक्ष्मी जैसे पार्षद भी ऐश्वर्यज्ञान से व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण को प्राप्त नहीं कर पाते।

अनुभाष्य

२८। लक्ष्मी ऐश्वर्यज्ञानमयी होने पर भी व्रजेन्द्रकुमार की सेवा को प्राप्त नहीं कर पायी। लक्ष्मी देवी एवं आत्मभूत पार्षदों के कृष्ण के साथ अभिन्न-शक्ति होने पर भी, ऐश्वर्य-भावमयत्व-प्रयुक्त लक्ष्मीदेवी को व्रजेन्द्रनन्दन की मधुर-सेवा का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ।

शास्त्र-प्रमाण—श्रीमद्भागवत (१०.४७.६०) में—

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः
स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीत कण्ठ-
लब्धाशिषां य उद्गाद्व्रजसुन्दरीणाम्॥ २९ ॥

२९।अनु०—श्रीवृन्दावन में रासोत्सव के समय श्रीकृष्ण के भुजदण्ड द्वारा गृहीत-कण्ठ व्रजसुन्दरियों के प्रति जो कृपा उदित हुई थी, वह वक्षः स्थल पर स्थित लक्ष्मी आदि परव्योम की अत्यधिक अनुगत शक्तियों को भी प्राप्त नहीं हुई, कमल की गन्ध के प्रभाव वाली स्वर्ग की रमणियों को भी उस प्रकार की कृपा की प्राप्ति नहीं हुई, तब अन्य स्त्रियों के विषय में तो क्या कहुँ?

अनुभाष्य

२९। मध्य-लीला के अष्टम परिच्छेद की ८० वीं संख्या द्रष्टव्य।

व्रजवासियों के सख्य और वात्सल्य रस में केवला अथवा शुद्धा रागात्मिका भक्ति—

शुद्धभावे सखा करे स्कन्धे-आरोहण।
शुद्धभावे व्रजेश्वरी करेन बन्धन॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—''श्रीकृष्ण के सखा शुद्ध अर्थात् ऐश्वर्यज्ञान हीन भाव से उनके स्कन्ध पर चढ़ते हैं तथा शुद्धभाव से ही व्रजेश्वरी श्रीयशोदा श्रीकृष्ण को बाँधती है।

अनुभाष्य

३०। शुद्ध भावे,—ऐश्वर्यज्ञान से मुग्ध अथवा बाध्य नहीं होकर निर्मल अथवा केवला रति की वशवर्त्तिता के क्रम से।

'मोर सखा', 'मोर पुत्र',—एइ 'शुद्ध' मन।
अतएव शुक-व्यास करे प्रशंसन॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—'कृष्ण मेरे सखा हैं', 'कृष्ण मेरे पुत्र हैं'—यही शुद्ध अर्थात् ऐश्वर्यज्ञानहीन मन का लक्षण है। इसी कारण श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा श्रीवेदव्यास इन भक्तों की प्रशंसा करते हैं।

शास्त्र प्रमाण—श्रीमद्भागवत (१०.१२.११) में—

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण।
सार्धं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः॥ ३२ ॥

३२।अनु०— श्रीभागवत में कहा गया है,—जो ज्ञान मार्ग में ब्रह्मसुखानुभूति स्वरूप में, दास्यरस के भक्तों के निकट परदेवता के रूप में एवं मायाश्रित व्यक्तियों के निकट नरबालक के रूप में प्रकाशित होते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण के साथ व्रज के गोपबालकों ने बहुत सुकृति के फलस्वरूप सख्य रस में विहार किया था।

अनुभाष्य

३२। मध्य-लीला के अष्टम परिच्छेद की ७५ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (१०.८.४५) में—

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः।
उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम्॥ ३३ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३३।अनु०— तीनों वेदों, उपनिषत्, सांख्य योग और भक्तिशास्त्रों के द्वारा जिनके माहात्म्य का गान किया जाता है, उन कृष्ण को यशोदा अपना 'पुत्र' समझती थी।

अनुभाष्य

३३। मध्य-लीला के उनविंश परिच्छेद की २०४ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (१०.८.४६) में—

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।
यशोदा वा महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः॥ ३४॥

३४।अनु०— श्रीमद्भागवत में कहा गया है, हे ब्रह्मन, नन्द ने ऐसी क्या सुकृति की थी कि, कृष्ण उनके पुत्र के रूप में आविर्भूत हुए थे? यशोदा ने ही ऐसी क्या सुकृति की थी, कि साक्षात् परब्रह्म कृष्ण ने उनको 'माँ' कहकर उनका स्तनपान किया था?

अनुभाष्य

३४। मध्य-लीला के अष्टम परिच्छेद की ७७ वीं संख्या द्रष्टव्य।

व्रज के 'केवल'-भाव में ऐश्वर्य ज्ञान का अभाव, अतएव 'केवल'-भाव का सर्वश्रेष्ठ होना—

ऐश्वर्य देखिलेह 'शुद्धेर' ऐश्वर्य नहे ज्ञान।
अतएव ऐश्वर्य हइते 'केवल'-भाव प्रधान॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—''ऐश्वर्य को देखने पर भी 'शुद्ध' केवला भाव वाले भक्तों को ऐश्वर्य का ज्ञान नहीं होता, इसी कारण केवला भाव ऐश्वर्य से श्रेष्ठ है।

प्रभु के द्वारा राय का अपने शिक्षा गुरु के रूप में प्रचार—

ए-सब शिखाइला मोरे राय-रामानन्द।
से-सब शुनिते हय परम आनन्द॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—''राय रामानन्द ने ही मुझे उपरोक्त सब कुछ सिखलाया है। इन सब विचारों को सुनने से परम आनन्द की प्राप्ति होती है।

अनुभाष्य

३६। यहाँ पर किसी-किसी पाठ में, ''अनर्गल रसवेत्ता प्रेम सुखानन्द'' [अर्थात् रामानन्द राय रसतत्त्व के सम्पूर्ण रूप से ज्ञाता तथा प्रेमसुखानन्द हैं।] दिखलायी पड़ता है।

रामानन्द के गुण—

कहन ना जाय रामानन्देर प्रभाव।
राय-प्रसादे जानिलुँ व्रजेर 'शुद्ध' भाव॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—''राय रामानन्द के प्रभाव का वर्णन नहीं किया जा सकता, मैंने राय रामानन्द की कृपा से ही ब्रज के शुद्धभाव अर्थात् ऐश्वर्यज्ञान हीन केवला भाव को जाना है।

(५) दामोदर-स्वरूप की गुणावली; प्रेमरसविग्रह और गोपी-तत्त्व के माहात्म्य को जानने वाले अथवा व्रज-माधुर्य-रस-तत्त्वाचार्य—

दामोदर-स्वरूप—'प्रेमरस' मूर्त्तिमान्।
जाँर सङ्गे हैल व्रज-मधुर-रस-ज्ञान॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—''स्वरूप दामोदर मूर्तिमान् प्रेमरस हैं। उन्हीं के सङ्ग से मुझे व्रज के मधुर रस का ज्ञान हुआ है।

कृष्ण की इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने वाली गोपियों का माहात्म्य–

'शुद्धप्रेम' व्रजदेवीर—कामगन्धहीन।
'कृष्णसुखतात्पर्य',—एइ तार चिह्न॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—''व्रजदेवियों का शुद्धप्रेम काम की गन्ध से रहित है। श्रीकृष्ण सुख तात्पर्य ही उस शुद्धप्रेम का लक्षण है।

शास्त्र प्रमाण–श्रीमद्भागवत (१०.३१.१९) में–

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥ ४० ॥

४०। अनु०—[गोपियाँ कहती हैं–] हे प्रिय, हम तुम्हारे सुकोमल चरणकमलों को अपने कठोर स्तनों पर भी धीरे से धारण करती हैं, और तुम हो कि इन्हीं चरणों के द्वारा तुम जब वन में भ्रमण कर रहे हो, तुम्हारे चरण सूक्ष्म पाषाणादि के द्वारा घायल होने के कारण अवश्य व्यथित हो रहे होंगे। अतः हमारे जीवन-स्वरूप! तुम्हारे लिये हमारा चित्त अस्थिर हो रहा है।

अनुभाष्य

४०। आदि-लीला के चतुर्थ परिच्छेद की १७३ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (१०.३१.१६) में–

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवान्
अतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव
योषितः कस्त्यजेन्निशि॥ ४१ ॥

४१। अनु०—[गोपियाँ कहती हैं–] हे कृष्ण, हमने अपने पति, पुत्र, अन्वय (अन्यान्य सभी सम्बन्धियों), भाई और बन्धुओं, सभी का अतिक्रम करके तुम्हारे निकट आगमन किया है; हमारे आने का कारण तुम जानते हो,—तुम्हारे गीत से मोहित होकर हम आयी हैं। हे धूर्त्त, रात्रि के समय स्त्रियों को कौन इस प्रकार परित्याग करता है?

अनुभाष्य

४१। मध्य-लीला के उनविंश परिच्छेद की २०९ वीं संख्या द्रष्टव्य; पाठान्तर में,–''गोपीगणेर शुद्धप्रेम—ऐश्वर्यज्ञानहीन। प्रेमेते भर्त्सना करे एइ तार चिह्न॥''

गोपी-प्रेम के निकट कृष्ण का ऋण–

'सर्वोत्तम भजन एइ सर्वभक्ति जिनि'।
अतएव कृष्ण कहे,—'आमि तोमार ऋणी'॥ ४२॥

४२। प० अनु०—''गोपियों के द्वारा मधुर भाव से किया जाने वाला भजन ही अन्यान्य समस्त प्रकार के भावों से श्रेष्ठ हैं, इसी कारण श्रीकृष्ण गोपियों से कहते हैं-'मैं तुम्हारा ऋणी हूँ'।

श्रीमद्भागवत (१०.३२.२२) में–

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माऽभजन् दुर्जयगेहशृंखलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना॥ ४३ ॥

४३।अनु०— हे गोपीगण, मेरे साथ तुम सबका संयोग निर्मल है, अनेक जन्मों में भी मैं निज-सत्कार के द्वारा तुम सबके प्रति कर्त्तव्य का अनुष्ठान नहीं कर पाऊँगा; क्योंकि, तुम सबने अति कठिन संसार शृंखला का सम्पूर्ण रूप से छेदन करके मेरा अन्वेषण किया है। मैं तुम सबका ऋण चुकाने में असमर्थ हूँ। अतएव तुम सब निज कार्यों के द्वारा ही परितुष्ट हो।

अनुभाष्य

४३। आदि-लीला के चतुर्थ परिच्छेद की १८० वीं संख्या द्रष्टव्य हैं।

व्रज के शुद्ध केवल-भाव की श्रेष्ठता, उसके विषय में उद्धव की प्रार्थना ही प्रमाण–

ऐश्वर्य-ज्ञान हैते केवला-भाव-प्रधान।
पृथिवीते भक्त नाहि उद्धव-समान॥ ४४ ॥
तेंह जाँर पदधूलि करेन प्रार्थन।
स्वरूपेर सङ्गे पाइलुँ ए सब शिक्षण॥ ४५ ॥

४४-४५। प० अनु०—''ऐश्वर्य ज्ञान से केवला भाव श्रेष्ठ है। पृथ्वी पर उद्धव के समान कोई भक्त नहीं है, किन्तु वे भी उन व्रजगोपियों के चरणों की धूलि की प्रार्थना करते हैं। स्वरूप दामोदर के सङ्ग से ही मुझे यह सब सीखने को मिला है।

अनुभाष्य

४५। इस स्थान पर पाठान्तर में—(भा: १०.४७.६१)—''आसामहो चरणरेणु-जुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्। या दुस्त्यजं स्वजनमार्य-पथञ्च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥'' श्लोक उद्धृत हुआ देखा जाता है।

कृष्ण के द्वारा प्रेरित उद्धव व्रज में आये, वे वहाँ पर कुछेक मास तक रहे, यद्यपि उन्होंने कृष्ण की कथा के कीर्त्तन के द्वारा व्रजवासियों का हर्ष उत्पन्न किया, तथापि कृष्ण के विरह में तप्त गोपियों के कृष्ण के द्वारा अधिकृत चित्त की विकलता का दर्शन करके उनके ऐश्वर्यज्ञानहीन गाढ़तम कृष्ण-प्रेम को आदर्श मानकर उसका बहुमानन करते हुए इस श्लोक में उनके चिरदास्य की प्रार्थना कर रहे हैं,—

या: (गोप्य: कृष्णभजनाय) स्वजनं (पतिपुत्रादीन् आत्मीयान्) दुस्त्यजं (दुष्परिहरं) आर्यपथं (आर्याणां मार्गं धर्मं पातिव्रत्यमिति यावत्) च हित्वा (परित्यज्य) श्रुतिभि: (वेदै:) विमृग्याम् (अन्वेष्टव्याम् उपास्यां) मुकुन्द-पदवीं (कृष्ण-सरणीं) भेजु: (अन्वगच्छन्), अहो (भाग्यवर्णने) वृन्दावने (अस्मिन् व्रजे) आसां (तासां) चरण रेणु जुषां (पदरेणुभाजां) गुल्मलतौषधीनां (गुल्मादीनां मध्ये यत्) किमपि अहं स्यां (भवेयमित्याशंसा)।

जिन्होंने अत्यधिक कठिनाई से त्यागे जाने वाले पति-पुत्र आदि निजजन और आर्यपथ का परित्याग करके वेदों के अन्वेषणीय मुकुन्द पादपद्म का भजन किया है, इस वृन्दावन में स्थित जो समस्त गुल्म, लता और औषधियाँ हैं, वे गोपियों की चरण-रेणु की सेवा में नियुक्त हैं, अहो! मैं (अत्यधिक सौभाग्यशाली बनकर) उनमें से कोई एक बन पाऊँ।

(६) महाभागवत आचार्य ठाकुर-हरिदास की गुणावली—

हरिदास-ठाकुर—महाभागवत-प्रधान।
प्रतिदिन लय तेंह तिनलक्ष-नाम॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—''हरिदास ठाकुर महाभागवतों में सर्वोत्तम हैं, वे प्रतिदिन तीन लाख नाम ग्रहण करते हैं।

नामेर महिमा आमि ताँर ठाञि शिखिलुँ।
ताँर प्रसादे नामेर महिमा जानिलुँ॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—''मैंने हरिदास ठाकुर से ही नाम की महिमा को सीखा है तथा उन की कृपा से ही मैंने नाम की महिमा को जाना है।

अन्यान्य नाम-प्रेम-प्रचारक गौरभक्तगण—

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, पण्डित-गदाधर।
जगदानन्द, दामोदर, शङ्कर, वक्रेश्वर॥४८॥
काशीश्वर, मुकुन्द, वासुदेव, मुरारि।
आर जत भक्तगण गौड़े अवतरि'॥ ४९ ॥

शुद्धभक्ति का आचार और प्रचार करने वाले साधुओं के सङ्ग से ही जीव को कृष्णभक्ति की प्राप्ति—

कृष्ण-नाम-प्रेम कैला जगते प्रचार।
इँहा सबार सङ्गे कृष्णभक्ति जे आमार॥'' ५० ॥

४८-५०। प० अनु०—''आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, गदाधर पण्डित, जगदानन्द पण्डित, दामोदर पण्डित, शङ्कर पण्डित, वक्रेश्वर पण्डित, काशीश्वर पण्डित, मुकुन्द दत्त, वासुदेव दत्त तथा मुरारि गुप्त आदि जो सब भक्त गौड़देश में अवतरित हुए हैं, उन्होंने ही जगत् में कृष्ण नाम तथा कृष्ण प्रेम का प्रचार किया है एवं मुझमें इन सभी के सङ्ग से ही कृष्णभक्ति उत्पन्न हुई है।''

वल्लभ के गर्व का हरण करने के लिये प्रभु के द्वारा वल्लभ की अपेक्षा अधिक गुण-सम्पन्न भक्तों के गुणों का वर्णन—

भट्टेर हृदये दृढ़ अभिमान जानि'।
भङ्गी करि' महाप्रभु कहे एत वाणी॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट के हृदय में दृढ़ अभिमान के विषय में जानकर श्रीमन्महाप्रभु ने भङ्गीपूर्वक इतना सब कहा।

अधोक्षज-विषय में अक्षज ज्ञानी वल्लभ की लौकिक अहङ्कार पूर्ण चेष्टा; भागवत के आनुगत्य को त्याग करके वल्लभ के द्वारा भागवत की टीका की रचना—

''आमि से 'वैष्णव',—भक्तिसिद्धान्त सब जानि।
आमि से भागवत-अर्थ उत्तम बाखानि॥'' ५२ ॥

प्रभु की कृपा से वल्लभ के अहङ्कार का चूर्ण होना—

भट्टेर मनेते एइ छिल दीर्घ गर्व।
प्रभुर वचन शुनि' से हइल खर्व॥ ५३ ॥

५२-५३। प० अनु०—''मैं ही वैष्णव हूँ, मैं ही भक्ति के समस्त सिद्धान्तों को जानता हूँ, मैं ही श्रीमद्भागवत के अर्थों की भली-भाँति व्याख्या करता हूँ।'' श्रीवल्लभ भट्ट के मन में यह बहुत बड़ा गर्व था, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु के उपरोक्त वचनों को सुनकर वह चूर्ण हो गया।

अनुभाष्य

५३। दीर्घ गर्व,-अत्यधिक पुष्ट, अत्यधिक उच्च अभिमान।

प्रभु के मुख से सुने गौरभक्त वैष्णवों के दर्शन की इच्छा—

प्रभुर मुखे वैष्णवता शुनिया सबार।
भट्टेर इच्छा हैल ताँ-सबारे देखिबार॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मुख से सब भक्तों की वैष्णवता के विषय में सुनकर श्रीवल्लभ भट्ट के मन में उन सबके दर्शन की इच्छा जागृत हुई।

भट्ट कहे,—''ए सब वैष्णव रहे कोन् स्थाने?
कोन् प्रकारे पाइलु इँहा-सबार दर्शने??'' ५५ ॥

५५। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीमन्महाप्रभु से पूछा,—''ये सब वैष्णव किस स्थान पर रहते हैं? मुझे इन सबके दर्शन कैसे प्राप्त होंगे?''

प्रभु के द्वारा उनके अवस्थान का वर्णन—

प्रभु कहे,—''केह गौड़े, केह देशान्तरे।
सब आसियाछे रथयात्रा देखिबारे॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''कुछ तो गौड़देश में और कुछ अन्य स्थानों पर रहते हैं, किन्तु अभी सभी रथयात्रा के दर्शन के लिये श्रीजगन्नाथ पुरी में आये हुए हैं।

भट्ट को भक्तों के दर्शन के लिये प्रतीक्षा करने हेतु आश्वासन-प्रदान—

इँहाइ रहेन सबे, वासा—नाना-स्थाने।
इँहाइ पाइबा तुमि सबार दर्शने॥'' ५७ ॥

५७। प० अनु०—''सभी भक्त यहाँ पर ही रह रहे हैं, सबका अस्थायी वासस्थान यहीं भिन्न-भिन्न स्थानों पर है। आपको यहीं पर सभी भक्तों के दर्शन होंगे।''

भट्ट के द्वारा प्रभु को निमन्त्रण—

तबे भट्ट कहे बहु विनय वचन।
बहु यत्न करि' प्रभुरे कैल निमन्त्रण॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—तब श्रीवल्लभभट्ट ने बहुत दैन्यपूर्ण वचन कहे तथा उन्होंने बहुत प्रयत्न पूर्वक श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रित किया।

प्रभु के निकट भक्तों का आगमन और भट्ट के साथ मिलन—

आर दिन सब वैष्णव प्रभु-स्थाने आइला।
सबा-सने महाप्रभु भट्टे मिलाइला॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—अन्य किसी दिन जब सब भक्त श्रीमन्महाप्रभु के स्थान पर आये, तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवल्लभ भट्ट को उन सबसे मिलवाया।

भास्वर (प्रखर) सूर्य के समक्ष निस्तेज जुगनु की भाँति

गौरभक्तों के समक्ष वल्लभ भट्ट—

'वैष्णवे'र तेज देखि' भट्टेर चमत्कार।
ताँ-सबार आगे भट्ट—खद्योत-आकार॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट वैष्णवों के तेज को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उन सबके समक्ष श्रीवल्लभ भट्ट जुगनू की भाँति प्रतीत होने लगे।

भट्ट के द्वारा सपरिकर प्रभु को भिक्षा-प्रदान—

तबे भट्ट बहु महाप्रसाद आनाइल।
गण-सह महाप्रभुरे भोजन कराइल॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—तब श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीजगन्नाथ मन्दिर से बहुत-सा महाप्रसाद मँगवाया तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को उनके भक्तों सहित भोजन कराया।

परमानन्द पुरी के सङ्ग में सन्यासी-भक्तों का एक पंक्ति में बैठना—

परमानन्द-पुरी-सङ्गे सन्यासीर गण।
एकदिके बैसे सब करिते भोजन॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—एक ओर श्रीपरमानन्दपुरी के साथ बहुत से संन्यासी भोजन करने के लिये बैठे।

महाप्रभु के दोनों ओर दो प्रभु—

अद्वैत, नित्यानन्द-राय—पार्श्वे दुइजन।
मध्ये महाप्रभु बसिला, आगे-पाछे भक्तगण॥ ६३॥

६३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की एक ओर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु तथा दूसरी ओर श्रीनित्यानन्द प्रभु बैठे। इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु उन दोनों के बीच में तथा उनके आगे-पीछे अन्यान्य समस्त भक्त बैठ गये।

गौड़ीय भक्तों का श्रेणीबद्ध रूप में बैठना—

गौड़ेर भक्त जत कहिते ना पारि।
अङ्गने बसिला सब हञा सारि-सारि॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीगौड़देश के भक्तों की संख्या के विषय में नहीं कहा जा सकता, वे सभी आङ्गन में पंक्ति बनाकर बैठ गये।

गौरभक्तों को देखकर भट्ट के द्वारा प्रणाम—

प्रभुर भक्तगण देखि' भट्टेर चमत्कार।
प्रत्यक्षे सबार पदे कैल नमस्कार॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों को देखकर श्रीवल्लभ भट्ट आश्चर्यचकित रह गये, उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से सभी के चरणों में नमस्कार किया।

छह भक्तों के द्वारा प्रसाद वितरण—

स्वरूप, जगदानन्द, काशीश्वर, शङ्कर।
परिवेशन करे, आर राघव, दामोदर॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीकाशीश्वर पण्डित, श्रीशङ्कर पण्डित, श्रीराघव पण्डित और श्रीदामोदर पण्डित — ये छह भक्त परिवेशन कर रहे थे।

वल्लभ-भट्ट के द्वारा भक्तों सहित प्रभु को प्रसाद के द्वारा सन्तुष्ट करना—

महाप्रसाद वल्लभ-भट्ट बहु आनाइल।
प्रभु-सह सन्यासिगण भोजने बसिल॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट ने बहुत अधिक महाप्रसाद मँगवाया था, जिससे श्रीमन्महाप्रभु के साथ समस्त सन्यासियों के बैठकर भोजन करने के उपरान्त भी वह समाप्त नहीं हुआ।

सभी के द्वारा एकसाथ हरिध्वनि—

प्रसाद पाय वैष्णवगण, बले 'हरि' 'हरि'।
हरिध्वनि उठिल सब ब्रह्माण्ड भरि'॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—सभी वैष्णव प्रसाद ग्रहण करते समय 'हरि', 'हरि' की ध्वनि कर रहे थे, उन सबके मुख से निकली हरिध्वनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में छा गयी।

आचमन के बाद सभी को अभिनन्दन—

माला, चन्दन, गुवाक, पान अनेक आनिल।
सबा' पूजा करि' भट्ट आनन्दित हैल॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट बहुत-सी माला,

चन्दन, गुवाक (सुपारी, मुखशुद्धि) तथा पान लेकर आये उन सब सामग्रियों के द्वारा सभी भक्तों की पूजा करके श्रीवल्लभ भट्ट बहुत आनन्दित हुए।

रथयात्रा के समय सात सम्प्रदायों का कीर्त्तन-वर्णन—

रथयात्रा-दिने प्रभु कीर्त्तन आरम्भिला।
पूर्ववत् सात-सम्प्रदाय पृथक् करिला॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—रथयात्रा के दिन श्रीमन्महाप्रभु ने कीर्त्तन आरम्भ किया, उन्होंने पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति सात पृथक-पृथक मण्डलियाँ बनायीं।

सात सम्प्रदाय में सात कीर्त्तन करने वाले—

अद्वैत, नित्यानन्द, हरिदास, वक्रेश्वर।
श्रीवास, राघव, पण्डित-गदाधर॥७१॥

अलातचक्र की भाँति प्रभु के द्वारा कीर्त्तन में भ्रमण—

सात जन सात-ठाञि करेन नर्त्तन।
'हरिबोल' बलि' प्रभु करेन भ्रमण॥ ७२ ॥

७१-७२। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीहरिदास ठाकुर, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीवास पण्डित, श्रीराघव पण्डित तथा श्रीगदाधर पण्डित—इन सात भक्तों में से एक-एक भक्त भिन्न-भिन्न मण्डलियों में नृत्य करने लगे तथा श्रीमन्महाप्रभु 'हरिबोल' 'हरिबोल' करते हुए इन सात मण्डलियों में भ्रमण करने लगे।

चौदह मृदङ्ग—

चौद्द मादल बाजे उच्च सङ्कीर्त्तन।
एक एक नर्त्तकेर प्रेमे भासिल भुवन॥७३॥

७३। प० अनु०—चौदह मृदङ्ग बज रहे थे, उच्च स्वर में हरिनाम सङ्कीर्त्तन हो रहा था, एक-एक नर्त्तक के प्रेम से सम्पूर्ण भुवन आप्लावित हो गया।

वल्लभ का विस्मय और अत्यधिक आनन्द—

देखि' वल्लभ-भट्टेर हैल चमत्कार।
आनन्दे विह्वल नाहि आपन-साम्भाल॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के परिकरों के नृत्य को देखकर श्रीवल्लभ भट्ट अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए। वे आनन्द में विह्वल होने के कारण स्वयं को सम्भाल भी नहीं पा रहे थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

७४। साम्भाल,—सम्भालना।

नृत्य-कीर्त्तन के बाद प्रभु के प्रेम रूपी वैभव को देखकर वल्लभ में विस्मय—

तबे महाप्रभु सबार नृत्य राखिल।
प्रभुर चरित्रे भट्टेर चमत्कार हैल॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—बाद में श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों को नृत्य को विराम देने के लिये कहा, श्रीमन्महाप्रभु के चरित्र को देखकर श्रीवल्लभ भट्ट चमत्कृत हो उठे।

प्रभु के निकट वल्लभ का निवेदन—

यात्रान्तरे भट्ट जाइ' महाप्रभु-स्थाने।
प्रभुर चरणे किछु कैल निवेदने॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—श्रीरथयात्रा के समाप्त होने के पश्चात् अन्य किसी दिन श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान पर गये तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में कुछ निवेदन करते हुए कहा,—

अमृतप्रभाव भाष्य

७६। यात्रान्तरे,—अन्य यात्रा में, अन्य दिन।

अपने द्वारा पूर्वलिखित टीका के श्रवण के लिये प्रभु से प्रार्थना—

''भागवतेर टीका किछु कैराछि लिखन।
आपने महाप्रभु यदि करेन श्रवण॥'' ७७ ॥

७७। प० अनु०—''मैंने श्रीमद्भागवत की टीका की रचना की है। हे श्रीमन्महाप्रभु! आप यदि उसे श्रवण करें तो आपकी बहुत कृपा होगी।''

स्वयं को अनधिकारी मानकर प्रभु का दैन्य और छलना पूर्ण

उक्ति; कृष्ण-कार्षण (भक्त) के सुख-तात्पर्य के अलावा जड़ विद्या और पाण्डित्य से भागवत के अर्थ दुर्बोध्य—

प्रभु कहे,—''भागवतार्थ बुझिते ना पारि।
भागवतार्थ शुनिते आमि नहि अधिकारी॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैं भागवत के अर्थों को समझ नहीं पाता। मैं भागवत के अर्थ को सुनने का अधिकारी भी नहीं हूँ।

अविश्रान्त निरन्तर शुद्ध कृष्णनाम ग्रहण करने में निष्ठा और रूचि से भागवत के पाठ को श्रवण करने की सफलता, इन्द्रिय-तर्पण परायण जड़ीय विद्या और पाण्डित्य को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से श्रवण-पठन आदि वृथा समय व्यय मात्र—

बसि' कृष्णनाम मात्र करिये ग्रहणे।
संख्या-नाम पूर्ण मोर नहे रात्रि-दिने॥'' ७९ ॥

७९। प० अनु०—''मैं तो बैठ कर केवल कृष्ण के नाम को ग्रहण करता हूँ, रात्रि-दिन नाम ग्रहण करने पर भी मेरी नाम की संख्या पूर्ण नहीं होती।''

वल्लभभट्ट के द्वारा स्वरचित श्रीकृष्णनाम की व्याख्या के श्रवण हेतु प्रभु से अनुरोध—

भट्ट कहे,—''कृष्णनामेर अर्थ-व्याख्याने।
विस्तार कैराछि, ताहा करह श्रवणे॥'' ८० ॥

८०। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट ने कहा,—''मैंने कृष्ण के नाम के अर्थ की व्याख्या करते समय उसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, तब आप उसको ही श्रवण कर लीजिए।''

अभिन्न-चिद्विलासी वाचक कृष्णनाम और वाच्य गोकुलपति कृष्ण-विग्रह—

प्रभु कहे,—''कृष्णनामेर बहु अर्थ ना मानि।
'श्यामसुन्दर','यशोदानन्दन',—एइमात्र जानि॥८१॥

८१। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैं कृष्ण-नाम के बहुत से अर्थों को नहीं मानता, मैं तो कृष्ण-नाम का अर्थ श्यामसुन्दर और यशोदानन्दन मात्र ही जानता हूँ।

कृष्णनाम का 'रूढ़ि' अर्थ—(कृष्णसन्दर्भ में उद्धृत श्रीलक्ष्मीधर-कृत नाम कौमुदी-श्लोक)

तमालश्यामलत्विषि श्रीयशोदास्तनन्धये।
कृष्णनाम्नो रूढ़िरिति सर्वशास्त्र-विनिर्णयः॥ ८२॥

अमृतप्रवाह भाष्य

८२। तमाल-श्यामलवर्ण और यशोदा- स्तनपायी,—इन दो कृष्णनामों में समस्त शास्त्रों में विनिर्णीत रूढ़ि अर्थात् मुख्य अर्थ विद्यमान है।

अनुभाष्य

८२। तमाल-श्यामल-त्विषि (तमालवृक्षवत् श्यामला त्विट् कान्तिः यस्य तस्मिन्) श्रीयशोदास्तनन्धये (श्रीयशोदायाः स्तनन्धये स्तनपायिनि शिशुस्वरूपे) कृष्णनाम्नः (कृष्णेति नाम, तस्य) रूढ़िः (मुख्या, प्रसिद्धा वृत्तिः) इति सर्वशास्त्र विनिर्णयः (सर्वेषां शास्त्राणां विशेषेण निर्णयः सकल शास्त्रसिद्धान्तः इत्यर्थः)। रूढ़िः—प्रकृति के प्रत्यय के अर्थ की अपेक्षा नहीं करके समुदाय के अर्थ का बोध कराने वाली शब्द-शक्ति।

'रूढ़ि' अर्थ ही सिद्ध और स्वीकार्य; अन्य अर्थ अस्वीकार्य—

एइ अर्थ आमि मात्र जानिये निर्द्धार।
आर सर्व-अर्थे मोर नाहि अधिकार॥'' ८३ ॥

८३। प० अनु०—''मैं कृष्ण-नाम का केवल यही अर्थ ही निर्धारित (स्वीकार) करता हूँ, अन्य किसी भी अर्थ में मेरा अधिकार नहीं है।''

स्व-सुखपर जड़-विद्या, बुद्धि अथवा मेधा की सहायता से कृष्ण-नाम और कृष्ण-अभिन्न भागवत-व्याख्या आदि में कृष्ण सुख के अभाव को जानकर प्रभु की घृणा—

फल्गुप्राय भट्टेर नामादि सब-व्याख्या।
सर्वज्ञ प्रभु जानि' तारे करेन उपेक्षा॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट के द्वारा की गयी कृष्ण-नाम आदि की समस्त व्याख्याएँ तुच्छ एवं निरर्थक हैं। सर्वज्ञ होने के कारण श्रीमन्महाप्रभु इसे जानकर ही श्रीवल्लभ भट्ट की उपेक्षा कर रहे थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

८४। फल्गुप्राय,—तुच्छप्राय।

अनुभाष्य

८४। पाठान्तर में,—'फल्गु वल्गुप्राय' एवं 'फल्गु वल्गनप्राय'; फल्गु,—तुच्छ; वल्गन अथवा वल्गु,—वाक्-आडम्बर।

दु:खितचित्त से भट्ट का प्रस्थान और गर्व के नष्ट होने के कारण प्रभु के प्रति भक्ति की कमी—

विमना हञा भट्ट गेला निज-घर।
प्रभु-विषये भक्ति किछु हइल अन्तर॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट दु:खित चित्त से अपने घर लौट गये, उनकी श्रीमन्महाप्रभु के प्रति पहले जो भक्ति थी, उसमे कुछ अन्तर आ गया।

अमृतप्रवाह भाष्य

८५। प्रभु के विषय में उनकी जो भक्ति थी, वह कुछ दूर अर्थात् कम हो गयी।

अनुभाष्य

८५। श्रीमहाप्रभु के चरण कमलों के प्रति उनकी प्रगाढ़ भक्ति कम हो गयी।

श्रीगदाधर की खुशामद (चापलूसी) आरम्भ—

तबे भट्ट गेला पण्डित-गोसाञि ठाञि।
नाना मते प्रीति करि' करे आसा-जाइ॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—तब श्रीवल्लभभट्ट श्रीगदाधर पण्डित के निकट गये तथा तब से वे अनेक प्रकार से प्रीति करके उनके पास आते-जाते।

अनुभाष्य

८६। पण्डित-गोसाञि—श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामी।

प्रभु के द्वारा उपेक्षा करने के कारण भक्तों की उनके द्वारा की गयी व्याख्या के प्रति घृणा—

प्रभुर उपेक्षाय सब नीलाचलेर जन।
भट्टेर व्याख्यान किछु ना करे श्रवण॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा श्रीवल्लभ भट्ट की उपेक्षा करने के कारण नीलाचल का कोई भी व्यक्ति श्रीवल्लभ भट्ट के द्वारा की जाने वाली किसी भी व्याख्या को श्रवण नहीं करता था।

भट्ट का लज्जित होना और गदाधर की चापलूसी—

लज्जित हैल भट्ट, हैल अपमाने।
दु:खित हञा गेल पण्डितेर स्थाने॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट अपने अपमानित होने के कारण बहुत लज्जित हुए, एकदिन वे दु:खित होकर श्रीगदाधर पण्डित के पास गये।

दैन्य करि' कहे,—''निलुँ तोमार शरण।
तुमि कृपा करि' राख आमार जीवन॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट दैन्य करके श्रीगदाधर पण्डित से कहने लगे,—''मैंने आपकी शरण ग्रहण की है, आप कृपा करके मेरे जीवन की रक्षा कीजिए।

अनुभाष्य

८९। निलुँ,—पाठान्तर में 'लैलूँ'।

गदाधर को स्वरचित कृष्णनाम की व्याख्या के श्रवण के लिये प्रार्थना करना—

कृष्णनाम-व्याख्या यदि करह श्रवण।
तबे मोर लज्जा-पङ्क हय प्रक्षालन॥'' ९० ॥

९०। प० अनु०—''यदि आप मेरे द्वारा की गयी कृष्णनाम की व्याख्या का श्रवण करेंगे, तभी मुझ पर लगा लज्जा रूपी कीचड़ धुलेगा।''

गदाधर का धर्म-सङ्कट—

सङ्कटे पड़िला पण्डित, करये संशय।
कि करिबेन,—इहा करिते नारेन निश्चय॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित धर्म सङ्कट में पड़ गये, उन्हें संशय होने लगा कि मैं क्या करूँ, क्या नहीं करूँ। वह कुछ भी निश्चित नहीं कर पा रहे थे।

अनुभाष्य

९१। श्रीमहाप्रभु ने वल्लभभट्ट की उपेक्षा की है, फिर यदि मैं उसके द्वारा की गयी नाम की व्याख्या-मूलक रचना आदि श्रवण करूँ, तब फिर महाप्रभु के मन में कष्ट होगा, इन दोनों में से किस एक पक्ष की रक्षा करें, यही चिन्ता करके पण्डित-गोस्वामी धर्म सङ्कट में पड़ गये।

गदाधर के द्वारा सर्वप्रथम तो वल्लभ रचित व्याख्या का श्रवण करने में असम्मति; तथापि भट्ट का अनुरोध—

यद्यपि पण्डित आर ना कैला अङ्गीकार।
भट्ट जाइ' तबु पड़े करि' बलात्कार॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०—यद्यपि श्रीगदाधर पण्डित ने श्रीवल्लभ भट्ट के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, तब भी श्रीवल्लभ भट्ट स्वयं जोर-जबरदस्ती करके उनके समक्ष स्वरचित कृष्णनाम की व्याख्या को पढ़ कर सुनाने लगे।

अनुभाष्य

९२। पण्डित गोस्वामी के द्वारा प्रकट रूप से वल्लभ की रचना को श्रवण करने की इच्छा प्रकाशित नहीं करने पर भी वल्लभ ने उनके साथ प्रणयसूत्र की कल्पना करके उनके नहीं मानने पर भी उनके समक्ष पाठ करना प्रारम्भ कर दिया।

मानद (सबको सम्मान देने वाले) और उद्वेग देने में अनिच्छुक गदाधर के द्वारा धर्म-सङ्कट के समय कृष्ण की कृपा की याचना—

आभिजात्ये पण्डित करिते नारे निषेधन।
''ए सङ्कटे, कृष्ण, राख, लइलाङ शरण॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित विद्वत् समाज में श्रीवल्लभ भट्ट के सम्मान के कारण उन्हें ऐसा करने से मना नहीं कर पाये, इसलिए वे भगवान् श्रीकृष्ण से ही प्रार्थना करते हुए कहने लगे,—''हे कृष्ण! इस सङ्कट में आप ही मेरी रक्षा करो, मैं आपकी ही शरण ग्रहण करता हूँ।

अमृतप्रवाह भाष्य

९३। आभिजात्ये,—कौलीन्य (कुलीनता) के कारण अर्थात् पण्डित समाज में वल्लभ भट्ट का सम्मान होने के कारण।

अनुभाष्य

९३। आभिजात्ये, — (१) लज्जा के कारण, (२) अत्यन्त भक्तिविरोधी पाण्डित्य नहीं होने के कारण और (३) सामाजिक-सम्मान के कारण।

हृदय में अनिच्छुक होने पर भी भट्ट की मर्यादा को देखते हुए प्रभु के द्वारा उपेक्षित व्याख्या के श्रवण-हेतु अन्तर्यामी प्रभु के विचार में पण्डित का विश्वास, किन्तु प्रभु के भक्तों से आशङ्का—

अन्तर्यामी प्रभु जानिबेन मोर मन।
ताँरे भय नाहि किछु, 'विषम' ताँर गण॥'' ९४ ॥

९४। प० अनु०— ''अन्तर्यामी होने के कारण श्रीमन्महाप्रभु अवश्य ही मेरे मन की स्थिति को समझ लेंगे, मुझे उनसे कोई भय नहीं है, किन्तु उनके पार्षद 'विषम' हैं अर्थात् उन्हें अपने मन की बात समझाना कठिन होगा।''

अनुभाष्य

९४। स्वयं भगवान् श्रीमहाप्रभु ही सभी के हृदय के भावों को जानने वाले हैं; गदाधरपण्डित गोस्वामी किस प्रकार की अवस्था में वल्लभ के साथ किस प्रकार का व्यवहार करने के लिये बाध्य हुए हैं, वह भगवान् गौरसुन्दर के लिये अविदित (अनजाना) नहीं है। इस लिये महाप्रभु के विराग के पात्र होने के विषय में उन्हें कोई आशङ्का नहीं थी; परन्तु महाप्रभु के आश्रित वैष्णवों में से कुछेक भीतर की इन सब बातों को नहीं समझकर बाद में 'वल्लभ का सङ्ग करने वाले' कहकर पण्डित

गोस्वामी के प्रतिकूल कहीं कोई अभिप्राय प्रकाशित करें, —यही आशङ्का का विषय है।

वल्लभ के द्वारा रचित व्याख्या के श्रवण में अन्याय नहीं होने पर भी पण्डित के साथ प्रभु के भक्तों का प्रणय-कलह (प्रेममय झगड़ा)—

यद्यपि विचारे पण्डितेर नाहि दोष।
तथापि प्रभुर गण करे प्रणय-रोष॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—यद्यपि श्रीगदाधर पण्डित के द्वारा श्रीवल्लभ भट्ट की व्याख्या के श्रवण में किसी प्रकार का कोई दोष नहीं था, तब भी श्रीमन्महाप्रभु के भक्त उनके प्रति प्रणय-रोष करने लगे।

आचार्य आदि के साथ वल्लभभट्ट का कुतर्क—

प्रत्यह वल्लभ-भट्ट आइसे प्रभु-स्थाने।
'उद्ग्राहादि' प्राय करे आचार्यादि-सने॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान पर आते तथा श्रीअद्वैताचार्य आदि पर तर्क-वितर्क रूपी आक्रमण करते।

अमृतप्रवाह भाष्य

९६। उद्ग्राहादि—वितर्कादि।

अनुभाष्य

९६। उद्ग्राहादिप्राय,—आक्रमण जैसे अर्थात् विद्याविचार-जैसे तर्कों का प्रदर्शन। आचार्यादि,—अद्वैताचार्य अथवा आचार्य दामोदर स्वरूप आदि के साथ।

अद्वैताचार्य के द्वारा वल्लभ के समस्त अभक्तिपूर्ण सिद्धान्तों का खण्डन—

जेइ किछु करे भट्ट 'सिद्धान्त' स्थापन।
शुनितेइ आचार्य ताहा करेन खण्डन॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०— किन्तु श्रीवल्लभ भट्ट जिस किसी भी सिद्धान्त को स्थापित करते, श्रीअद्वैताचार्य उसे सुनते ही उसका खण्डन कर देते।

गौरभक्तों में भट्ट जैसे हंसों में बगुला—

आचार्यादि-आगे भट्ट—जबे जबे जाय।
राजहंस-मध्ये जेन रहे बकप्राय॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट जब-जब श्रीअद्वैताचार्य आदि के समक्ष जाते, वे वहाँ ऐसे प्रतीत होते मानो राजहंसों के बीच में बगुले हों।

प्रकृति रूपी जीव के लिये उनके नित्य पति कृष्ण के नामों के उच्चारण करने के अधिकार में वल्लभ के द्वारा आपत्ति-ज्ञापन—

एकदिन भट्ट पुछिल आचार्येरे।
''जीव-'प्रकृति' 'पति' करि' मानये कृष्णेरे॥ ९९॥
पतिव्रता हञा पतिर नाम नाहि लय।
तोमरा कृष्णनाम-लह,—कोन् धर्म हय??'' १००॥

९९-१००। प० अनु०—एकदिन श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीअद्वैताचार्य प्रभु से पूछा—''जीव प्रकृति अर्थात् स्त्री है तथा श्रीकृष्ण को पति कहा जाता है। पतिव्रता होने के कारण पत्नी अपने पति के नाम का उच्चारण नहीं करती, किन्तु आप लोग तो कृष्ण के नाम का उच्चारण करते हैं—यह क्या कोई धर्म है?''

मीमांसा के लिये अद्वैताचार्य के द्वारा साक्षात् धर्म के विग्रह प्रभु की ओर इङ्गित करना —

आचार्य कहे,—''आगे तोमार 'धर्म' मूर्त्तिमान्।
इँहारे पुछह, इँह करिबेन समाधान॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु की ओर इङ्गित करते हुए कहा,—''हे वल्लभ भट्ट! आपके समक्ष मूर्तिमान धर्म विराजमान हैं। आप इन्हीं से पूछिए, यही आपकी शंका का समाधान करेंगे।''

वल्लभ के प्रति कृपा और नित्य मङ्गल का प्रदर्शन करने के उद्देश्य से ही प्रभु के द्वारा अत्यधिक कठोर किन्तु सत्य-उत्तर प्रदान; पति रूपी कृष्ण के उद्देश्य से ही प्रकृति रूपी जीव के लिये सदैव कृष्णनाम को ग्रहण करने की विधि—

प्रभु कहेन,—''तुमि ना जानह 'धर्माधर्म'।
स्वामी-आज्ञा पाले,—एइ पतिव्रता-धर्म॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे वल्लभभट्ट! तुम धर्म-अधर्म के विषय में नहीं जानते हो। पतिव्रता का धर्म अपने पति की आज्ञा का पालन करना होता है।

पतिर आज्ञा,—निरन्तर ताँर नाम लइते।
पतिर आज्ञा पतिव्रता ना पारे लङ्घिते॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—''पति का निरन्तर नाम ग्रहण करना ही यदि पति की आज्ञा होती है, तो पतिव्रता स्त्री अपने पति की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती।

पति रूपी-कृष्ण नाम उच्चारण के फल से कृष्ण के चरणों में प्रेम का उदय—

अतएव नाम लय, नामेर 'फल' पाय।
नामेर फले कृष्णपदे 'प्रेम' उपजाय॥'' १०४ ॥

१०४। प० अनु०—''अतएव पतिव्रता स्त्री पति के नाम को ग्रहण करके नाम के फल को प्राप्त करती है तथा नाम के फलस्वरूप उसका कृष्ण के चरणों में प्रेम उत्पन्न होता है।''

प्रतिष्ठा के क्षय होने पर वल्लभ-भट्ट—अवाक् और चिन्ता से व्याकुल—

शुनिया वल्लभ-भट्ट हैल निर्वचन।
घरे जाइ' मने दुःखे करेन चिन्तन॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर श्रीवल्लभ भट्ट अवाक् हो गये तथा घर जाकर मन में दुःखपूर्वक चिन्तन करने लगे—।

भविष्य में जय की आशा की कल्पना से प्रतिष्ठाशा-प्रिय वल्लभ का प्रसन्न-स्वप्न—

''नित्य आमार एइ सभाय हय कक्षा-पात।
एकदिन उपरे यदि हय मोर बात्॥ १०६ ॥
तबे सुख हय, आर सब लज्जा जाय।
स्व-वचन स्थापिते आमि कि करि उपाय??''१०७॥

१०६-१०७। प० अनु०—''प्रतिदिन इस सभा में मेरी पराजय होती है, एकदिन भी यदि मेरी बात ऊपर हो जाये, तभी मुझे प्रसन्नता हो तथा मेरी समस्त लज्जा दूर हो। मैं अपने वचनों को स्थापित करने के लिये क्या करूँ?

अमृतप्रवाह भाष्य

१०६। कक्षा-पात,—पराजय।

अनुभाष्य

१०६। कक्षापात,—कक्षा (प्रतियोगिता)+पात (नाश), पराजय; उपरे हय,—सभी की उक्ति का खण्डन करके स्थापित करना हो।

एक दिन सभा में सगण-प्रभु के समक्ष वल्लभ के द्वारा श्रीधरस्वामी की निन्दा—

आर दिन आसि' बसिला प्रभुरे नमस्करि'।
सभाते कहेन किछु मने गर्व करि'॥ १०८ ॥

१०८। प० अनु०—अगले दिन आकर श्रीवल्लभ भट्ट श्रीमन्महाप्रभु को प्रणाम करके बैठ गये तथा वे अपने मन-ही-मन कुछ गर्व करते हुए प्रकट रूप में कहने लगे—।

''भागवते स्वामीर व्याख्यान कैराछि खण्डन।
लइते ना पारि ताँर व्याख्यान-वचन॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—''मैंने स्वरचित भागवत की टीका में श्रीधरस्वामी कृत भागवत की व्याख्या का खण्डन किया है, मैं उनके द्वारा की गयी व्याख्या को स्वीकार नहीं कर पाता।

श्रीस्वामि-पाद की पहले और बाद वाली उक्ति में सामञ्जस्य अथवा समन्वय के अभाव का वर्णन करके उसका परीवाद (सम्पूर्ण रूप से खण्डन)—

सेइ व्याख्या करेन जाँहा जेइ पड़े आनि'।
एकवाक्यता नाहि, ताते 'स्वामी' नाहि मानि॥''११०॥

११०। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

११०। जहाँ जिस प्रकार की बात आयी, श्रीधरस्वामी ने उस प्रकार से मानकर व्याख्या की। अतएव सर्वत्र उनकी एकवाक्यता (आगे और पीछे की बात में सामञ्जस्य) नहीं रहता, अतएव मैं श्रीधर-स्वामी को नहीं मानता।

प्रभु के द्वारा 'भक्तों के रक्षक' श्रीधरस्वामिपाद की भक्ति के अनुकूल व्याख्या का समर्थन; श्रीधर का ही चित्त-समन्वय रूप चिदेक-विष्णु-स्वामित्व, श्रीधर के विरोधी की ही चित्-जड़-समन्वय पोषण रूपी स्वैरता—

प्रभु हासि' कहे,—''स्वामी ना माने जेइ जन।
वेश्यार भितरे तारे करिये गणन॥'' १११ ॥

१११। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु ने उपहास करते हुए कहा,—''जो (श्रीधर) स्वामी को स्वीकार नहीं करता, मैं उनकी गणना वेश्याओं के अन्तर्गत करता हूँ।''

प्रभु के वचन सुनकर सभी भक्तों में आनन्द—

एत कहि' महाप्रभु मौन धरिला।
शुनिया सबार मने सन्तोष हइला॥ ११२ ॥

११२। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने मौन धारण कर लिया, श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर समस्त उपस्थित भक्तों के मन में सन्तुष्टि हुई।

अविद्या-नाश करने वाले भुवनमङ्गल परमदयालु अवतारी अन्तर्यामी श्रीगौरसुन्दर—

जगतेर हित लागि' गौर-अवतार।
अन्तरेर अभिमान जानेन ताहार॥ ११३ ॥

११३। प० अनु०—जगत् के हित के लिये ही श्रीगौर-अवतार हुआ है, श्रीमन्महाप्रभु वल्लभ भट्ट के हृदय में विराजमान गर्व को जानते थे।

अधोक्षज प्रभु के द्वारा उपेक्षा के द्वारा ही अक्षज ज्ञानी अहङ्कारी भक्तों के रक्षक के विरोधी की अविद्या-हरण रूपी कृपा का वर्णन—

नाना अवज्ञाने भट्टे शोधेन भगवान्।
कृष्ण जैछे खण्डिलेन इन्द्रेर अभिमान॥ ११४ ॥

११४। प० अनु०—भगवान् श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवल्लभ भट्ट की अनेक प्रकार से अवज्ञा करके उनका उसी प्रकार शोधन किया, जैसे श्रीकृष्ण ने इन्द्र के अभिमान को चूर्ण-विचूर्ण किया था।

अनुभाष्य

११४। श्रीकृष्ण द्वारा कृष्ण-विमुख इन्द्र की पूजा के स्थान पर व्रज में गिरिराज गोवर्धन की पूजा प्रवर्तित हुयी, [जिसके फलस्वरूप] प्राकृत विमूढ़ आत्मा कुपित इन्द्र के द्वारा वर्षा करायी गयी एवं कृष्ण ने गोवर्धन धारण करके वर्षा प्लावित गोकुल की रक्षा की थी; जिससे इन्द्र का जड़ीय अभिमान खण्डित और चूर्ण-विचूर्ण हुआ था।

अविद्या-ग्रस्त अक्षज ज्ञानी के द्वारा प्रेय को ही श्रेय मानना एवं मनोधर्म के प्रतिकूल निःश्रेयस-कारण भगवान् की कृपा को अमङ्गल और दुःख मानना—

अज्ञ जीव निज-'हिते' 'अहित' करि' माने।
गर्व चूर्ण हैले, पाछे उघाड़े नयने॥ ११५ ॥

११५। प० अनु०—अज्ञ (अबोध) जीव अपने हित को अहित मानता है, किन्तु गर्व के चूर्ण-विचूर्ण होने पर वह अपने नेत्रों को खोलता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

११५। उघाड़े नयने,—नेत्र खोलता है।

रात्रि में भट्ट के द्वारा प्रभु की पूर्व कृपा के इतिहास का स्मरण—

घरे आसि' रात्रे भट्ट चिन्तिते लागिल।
''पूर्वे प्रयागे मोरे महा-कृपा कैल॥११६ ॥

११६। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट अपने घर आकर रात्रि के समय में विचार करने लगे,—''श्रीमन्महाप्रभु ने

पहले प्रयाग में तो मुझ पर बहुत कृपा की थी।

स्वगण-सहिते मोर मानिला निमन्त्रण।
एबे केने प्रभुर मोते फिरि' गेल मन?? ११७ ॥

११७। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु ने अपने परिकरों सहित मेरे निमन्त्रण को भी स्वीकार किया था, किन्तु अब श्रीमन्महाप्रभु का मन मुझसे उठ क्यों गया है?

समस्त जीवों के नित्य कल्याण का सम्पादन करना ही ईश्वर का स्वभाव—

'आमि जिति',—एइ गर्व-शून्य हउक इँहार चित्त।
ईश्वर-स्वभाव,—करेन सबाकार हित॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—''मैं अत्यधिक अभिमानी होने के कारण सोचता हूँ कि मैं विजयी हो जाऊँ'',—किन्तु श्रीमन्महाप्रभु विचार करते हैं कि वल्लभ भट्ट का चित्त इस अभिमान से रहित हो जाये, क्योंकि ईश्वर का स्वभाव ही होता है कि वे सभी का हित करते हैं।

उपेक्षा और अपमान आदि इन्द्रियों को असुख (दु:ख) प्रदान करने वाले अनुष्ठान के द्वारा ही वैषम्य-दर्शन हीन अधोक्षज के द्वारा उनके विमुख अक्षज-ज्ञानी के मद-मात्सर्य का हरण—

आपना जानाइते आमि करि अभिमान।
से-गर्व खण्डाइते मोर, करेन अपमान॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०—''मुझमें अपनी विद्वत्ता को प्रकाशित करने का अभिमान है तथा श्रीमन्महाप्रभु मेरे उसी अभिमान को खण्ड-खण्ड करने हेतु ही मेरा अपमान करते हैं।

आपात दु:खद, परिणाम में मङ्गलमय कर्म-विपाक को भगवान् की कृपा मानने में ही बुद्धिमता—

आमार 'हित' करेन,—इहो आमि मानि 'दु:ख'।
कृष्णेर उपरे कैल जेन इन्द्र महामूर्ख॥'' १२० ॥

१२०। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु मेरा हित करते हैं और मैं हूँ कि उसमें दु:खी होता हूँ। मेरी स्थिति ठीक वैसी है जैसी इन्द्र की थी अर्थात् महामूर्ख इन्द्र ने भी उनके हित करने वाले कृष्ण के प्रति अपना रोष ही प्रदर्शित किया था।''

अगले दिन प्रात:काल वल्लभ के द्वारा प्रभु के चरणों में शरण-ग्रहण—

एत चिन्ति' प्राते आसि' प्रभुर चरणे।
दैन्य करि' स्तुति करि' लइल शरणे॥ १२१ ॥

१२१। प० अनु०—ऐसा विचार करके श्रीवल्लभ भट्ट अगले दिन प्रात:काल श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में उपस्थित हुए तथा उन्होंने अत्यधिक दीनता पूर्वक श्रीमन्महाप्रभु की स्तुति की एवं उनकी शरण ग्रहण की।

वल्लभ की आर्ति, दैन्य और अनुताप पूर्ण उक्ति—

''आमि अज्ञ जीव,—अज्ञोचित कर्म कैलुँ।
तोमार आगे मूर्ख आमि पाण्डित्य प्रकाशिलुँ॥ १२२॥

१२२। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! मैं अबोध जीव हूँ, मैंने अज्ञोचित कार्य ही किया है। मैंने मूर्ख होने पर भी आपके समक्ष अपने पाण्डित्य को प्रकाशित किया है।

अनुभाष्य

१२२। दो भिन्न पाठान्तर—''तोमार आगे आमि मूर्ख पाण्डित्य प्रकाशिलुँ'' एवं ''तोमार आगे मूर्ख हञा पाण्डित्य प्रकाशिलुँ।'' मूर्ख-पाण्डित्य—मूर्ख की चतुरता।

भक्तयैकरक्षक-श्रीस्वामी के विरोधी के प्रति अवज्ञा और उपेक्षा के द्वारा ही प्रभु की अत्यधिक कृपा का प्रदर्शन—

तुमि—ईश्वर, निजोचित कृपा कैला।
अपमान करि' सर्व गर्व खण्डाइला॥ १२३ ॥

१२३। प० अनु०—''किन्तु आप ईश्वर हैं। आपने मेरा अपमान करके मेरे सम्पूर्ण गर्व को चूर्ण-विचूर्ण करके अपने गुणानुरूप मुझ पर कृपा ही की है।

इन्द्र की मूर्खता का दृष्टान्त; आपात दु:ख प्रतीत होने वाली, किन्तु वास्तव में नित्य मङ्गल के कारण-स्वरूप भगवान् की कृपा में उनका अनिष्ट-भ्रम—

आमि—अज्ञ, 'हित'-स्थाने मानि 'अपमाने'।
इन्द्र जेन कृष्णेर निन्दा करिल अज्ञाने॥ १२४ ॥

१२४। प० अनु०—''मैं मूर्ख हूँ, आप तो मेरे हित के लिये ऐसा कर रहे थे किन्तु मैं उसे अपना अपमान समझ रहा था, ठीक वैसे ही जैसे इन्द्र ने अज्ञानतावश कृष्ण की निन्दा की थी।

भगवान् की कृपा के अञ्जन से अहङ्कार-तमोऽन्धता-नाश—

तोमार कृपा-अञ्जने गर्व-आन्ध्य गेल।
तुमि एत कृपा कैला,—एबे 'ज्ञान' हैल॥ १२५ ॥

१२५। प० अनु०—''आपके द्वारा प्रदत्त कृपा रूपी अञ्जन (काजल) से मेरा अहङ्कार रूपी अन्धापन दूर हो गया है। मुझे अब जाकर समझ आया है कि आपने मुझ पर कितनी कृपा की है।

प्रभु के चरणों में वल्लभ के द्वारा शरण-ग्रहण और क्षमा-भिक्षा—

अपराध कैनु, क्षम, लइनु शरण।
कृपा करि' मोर माथे धरह चरण॥'' १२६ ॥

१२६। प० अनु०—''मैंने आपके चरणों में अपराध किया है, आप मुझे क्षमा कीजिए, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। आप कृपा करके अपने चरण मेरे सिर पर रख दीजिए।''

मानद प्रभु के द्वारा भट्ट की स्तुति करके उन्हें सान्त्वना प्रदान—

प्रभु कहे,—''तुमि 'पण्डित' 'महाभागवत'।
दुइगुण जाँहा, ताँहा नाहि गर्व-पर्वत॥ १२७ ॥

१२७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे वल्लभ भट्ट! आप पण्डित हैं, महाभागवत हैं, जहाँ पर यह दो गुण विराजमान रहते हैं, वहाँ अहङ्कार रूपी पर्वत नहीं रह सकता।

प्रभु के द्वारा वल्लभ का 'भक्तयैकरक्षक' सर्वजगद्गुरु श्रीधर स्वामी के विरोध के कारण तिरस्कार—

श्रीधर स्वामी निन्दि' निज-टीका कर!
श्रीधर स्वामी नाहि मान',—एत 'गर्व' धर!! १२८॥

१२८। प० अनु०—''आपने श्रीधर स्वामी की टीका की निन्दा करके स्वरचित टीका की रचना की है! आपमें इतना अधिक अभिमान है कि आप श्रीधर स्वामी तक को नहीं मानते!

प्रभु के द्वारा श्रीधर की यथोचित मर्यादा का प्रचार—

श्रीधर स्वामी प्रसादे 'भागवत' जानि।
जगद्गुरु श्रीधरस्वामी 'गुरु' करि' मानि॥ १२९ ॥

१२९। प० अनु०—''वास्तव में मैं श्रीधर स्वामी की कृपा से ही भागवत को जानता हूँ तथा जगद्गुरु श्रीधर स्वामी को अपना गुरु मानता हूँ।

'भक्तयैकरक्षक' श्रीधर की अवमानना के फल से लोगों के द्वारा निन्दित भागवत के अर्थ का विपर्यय—

श्रीधर-उपरे गर्वे जे किछु लिखिबे।
'अर्थव्यस्त' लिखन सेइ, लोके ना मानिबे॥ १३०॥

१३०। प० अनु०—''आप यह बात गाँठ बाँधकर रख लो कि आप गर्व करके श्रीधर स्वामी के विचार के ऊपर जो कुछ भी लिखोगे, वह वास्तविक अर्थ के विपरीत ही होगा तथा लोग उसे स्वीकार नहीं करेंगे।

अमृतप्रवाह भाष्य

१३०। अर्थव्यस्त,—विपरीत अर्थ।

चिद्वस्तु विष्णु-स्वामी [सम्प्रदाय में निष्णात] श्रीधर के आनुगत्य में शुद्धाद्वैतपर अद्वय-ज्ञानानुकूल भक्ति-व्याख्या ही सर्वमान्य—

श्रीधरेर अनुगत जे करे लिखन।
सब लोक मान्य करि' करिबे ग्रहण॥ १३१ ॥

१३१। प० अनु०—''जो कोई भी व्यक्ति श्रीधर स्वामी के अनुगत होकर भागवत की व्याख्या करेगा,

उसे सभी लोग प्रामाणिक मानकर ग्रहण करेंगे।

एकमात्र कृष्ण-सेवा में तत्पर श्रीधर के आनुगत्य में ही भागवत की व्याख्या की कर्त्तव्यता—

श्रीधरानुगत कर भागवत-व्याख्यान।
अभिमान छाड़ि' भज कृष्ण भगवान्॥ १३२ ॥

१३२। प० अनु०—"आप श्रीधर स्वामी के अनुगत होकर भागवत की व्याख्या करो तथा अभिमान को त्यागकर भगवान् कृष्ण का भजन करो।

दस प्रकार के नामापराध से रहित कृष्ण कीर्त्तन के फल से कृष्ण पद की प्राप्ति—

अपराध छाड़ि' कर कृष्ण सङ्कीर्त्तन।
अचिरात् पाबे तबे कृष्णेर चरण॥" १३३ ॥

१३३। प० अनु०—"आप दस प्रकार के नामापराधों को त्याग करके श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तन करो, तभी आपको अतिशीघ्र श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति होगी।"

भट्ट के द्वारा प्रभु को निमन्त्रण—

भट्ट कहे,—"यदि मोरे हइला प्रसन्न।
एकदिन पुनः मोर मान' निमन्त्रण॥" १३४ ॥

१३४। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट ने कहा,—"हे श्रीमन्महाप्रभु! यदि आप मेरे प्रति प्रसन्न हो ही गये हैं, तब पुनः एकदिन मेरे निमन्त्रण को स्वीकार कीजिए।"

जीव के प्रति भुवन-पावन प्रभु की अहैतुकी कृपा का उदाहरण—

प्रभु अवतीर्ण हैला जगत् तारिते।
मानिलेन निमन्त्रण, तारे सुख दिते॥ १३५ ॥

१३५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु जगत्वासियों का उद्धार करने के लिये ही अवतीर्ण हुए हैं, इसलिए उन्होनें श्रीवल्लभ भट्ट की प्रसन्नता हेतु उनके निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया।

अक्षजज्ञानी अभिमानी का दण्ड-प्रदान के द्वारा उद्धार करना—

जगतेर हित' हउक,—एइ प्रभुर मन।
दण्ड करि' करे तार हृदय शोधन॥ १३६ ॥

१३६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मन की अभिलाषा थी कि समस्त जगत्वासियों का हित हो, वास्तव में श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवल्लभ भट्ट को दण्ड प्रदान करके उनके हृदय का शोधन किया।

परिकरों सहित प्रभु के द्वारा वल्लभ के घर में भिक्षा-स्वीकार—

स्वगण-सहित प्रभुर निमन्त्रण कैला।
महाप्रभु तारे तबे प्रसन्न हइला॥ १३७ ॥

१३७। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीमन्महाप्रभु को उनके परिकरों सहित निमन्त्रित किया तथा तब श्रीमन्महाप्रभु उनके प्रति प्रसन्न हो गये।

सत्यभामा के अवतार जगदानन्द के वृत्तान्त का वर्णन; उनका वाम्य-स्वभाव और शुद्ध गाढ़ गौरप्रेम—

जगदानन्द-पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव।
सत्यभामा-प्राय प्रेम 'वाम्य-स्वभाव'॥ १३८ ॥

जगदानन्द का प्रभु के साथ प्रणय-कलह—

बार-बार प्रणय कलह करे प्रभु सने।
अन्योऽन्ये खट्मटि चले दुइजने॥ १३९ ॥

१३८-१३९। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित का श्रीमन्महाप्रभु के प्रति शुद्ध प्रगाढ़ प्रेम था। उनका प्रेम प्रायः श्रीसत्यभामा की भाँति तथा उनके प्रेम का स्वभाव वाम्य था। श्रीजगदानन्द पण्डित बार-बार श्रीमन्महाप्रभु के साथ प्रेम-कलह करते थे। श्रीमन्महाप्रभु और श्रीजगदानन्द पण्डित में खट-पट चलती ही रहती थी।

अनुभाष्य

१३८। बृहद्भागवतामृत पूः खः सप्तम अध्याय में, श्रीसनातनप्रभु—"अतोऽन्याभिश्च देवीभिरेत-देवानुमोदितम्। सात्राजिती परं मानगेहं तदसहाविशत्॥ [अर्थात् तदुपरान्त अन्य महिषियों ने भी श्रीरुक्मिणीदेवी के विचारों का अनुमोदन किया, किन्तु सत्राजित की

पुत्री श्रीसत्यभामादेवी उसको सहन न कर पायी और मान-गृह में प्रवेश कर गयी। ८५] श्रीमद्गोपीजन प्राणनाथः सक्रोधमादिशत्। सा समानीयतामत्र मूर्खराजसुताद्रुतम्॥ [अर्थात् श्रीपरीक्षित महाराज ने कहा, श्रीउद्धव की बात सुनकर श्रीमद्गोपियों के प्राणनाथ श्रीकृष्ण ने क्रोधपूर्वक आदेश दिया कि उस महामूढ़ सत्राजित की पुत्री सत्यभामा को शीघ्र ही यहाँ ले आओ। ८६] स्तम्भेऽन्तर्धाप्य देहं स्वं स्थिता लज्जा भयान्विता। [अर्थात् असमय में मान करने के कारण लज्जित और भगवान् के क्रोध से भयभीत होकर श्रीसत्याभामादेवी स्तम्भ के पीछे ही अपने को छुपाकर खड़ी रहीं। ८९ क] अरे सात्राजिति क्षीणचित्ते मानो यथा त्वया॥★★ अवरे किं न जानासि मां त्वदिच्छानुसारिणम्। [अर्थात् श्रीभगवान् ने कहा —अरी संकीर्णचित्तवाली सात्राजिति (सत्राजित की कन्या)! तुमने पहले रुक्मिणी के पारिजात प्राप्त करने के समय जिस प्रकार मान किया था, आज भी व्रजवासियों के प्रति मेरे चरम प्रेम को देखकर उसी प्रकार मान किया है? अरी बुद्धिहीने! मैं तो व्रजवासियों की इच्छा के वशीभूत हूँ, क्या तुम इसको नहीं जानती हो?। ९०-९१] तासामभावे पूर्वं मे वसतो मथुरापुरे। विवाहकरणे काचिदिच्छाप्यासीन्न मानिनि॥'' [अर्थात् हे मानिनि! गोपियों से विच्छेद होने पर जब मैं मथुरा में वास कर रहा था, उस समय भी मेरी विवाह करने की बिल्कुल इच्छा नहीं थी। १००]

रुक्मिणी के अवतार गदाधर का दक्षिण-स्वभाव और शुद्ध गाढ़ गौर प्रेम—

गदाधर-पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव।
रुक्मिणी-देवीर जैछे 'दक्षिण-स्वभाव'॥ १४० ॥

१४०। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित का भी श्रीमन्महाप्रभु के प्रति शुद्ध गाढ़ भाव था। उनका श्रीरुक्मिणी देवी की भाँति दक्षिण स्वभाव था।

गदाधर में प्रभु के प्रति स्वाभाविक ऐश्वर्य-भाव-मिश्रित प्रेम-स्निग्ध नम्रता-वशतः क्रोध का अभाव—

ताँर प्रणय-रोष देखिते प्रभुर इच्छा हय।
ऐश्वर्य-ज्ञाने ताँर रोष नाहि उपजय॥ १४१ ॥

१४१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मन में श्रीगदाधर पण्डित के प्रेम युक्त रोष को देखने की इच्छा होती, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु के प्रति ऐश्वर्य-ज्ञान होने के कारण श्रीगदाधर पण्डित में रोष उत्पन्न नहीं होता था।

अनुभाष्य

१४०-१४१। बृहद्भागवतामृत के पूः खः सप्तम अध्याय के ११९ श्लोक में श्रीसनातन प्रभु—''सर्वा महिष्यः सह सत्यभामया भैष्म्यादयो द्रागभिसृत्य मूर्द्धभिः। पादौ गृहीत्वा रुदितार्द्रकाकुभिः संस्तुत्य भर्त्तारमशीश-मच्छनैः॥'' [अर्थात् (श्रीउद्धव द्वारा) संकेत के अनुसार श्रीरुक्मिणी आदि महिषियों ने श्रीसत्यभामा सहित प्रभु श्रीकृष्ण के सम्मुख जाकर अपने-अपने मस्तक को उनके श्रीचरणकमलों पर रख दिया तथा क्रन्दन करते हुए विनयपूर्वक वचनों के द्वारा उन्हें धीरे-धीरे शान्त किया।] द्वारका में एक बार श्रीकृष्ण ने श्रीरुक्मिणी को श्लेष (मजाक) करते हुए अन्य किसी गुणवान् पति को धारण करने का उपदेश दिया, जिसके फलस्वरूप रुक्मिणी भयभीत होकर दक्षिण-स्वभाववशतः चरणों में पड़ गयीं। गौर-लीला में जगदानन्द पण्डित-गोस्वामी—वाम्य-स्वभावशाली प्रणयकलहशील सत्यभामा के भाव में आविष्ट एवं गदाधर पण्डित-गोस्वामी—दक्षिण-स्वभावशाली रुक्मिणी की भाँति प्रणय-कलह के स्थान पर आशङ्कित होकर सदैव प्रभु के अनुगामी थे।

वल्लभ के प्रति प्रीति के उपलक्ष्य में बाहर से कृत्रिम क्रोध दिखलाकर गदाधर के प्रेम की परीक्षा; गदाधर का भय—

एइ लक्ष्य पाञा प्रभु कैला रोषाभास।
शुनि' पण्डितेर चित्ते उपजिल त्रास॥ १४२ ॥

१४२। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित के द्वारा श्रीवल्लभ भट्ट के प्रति प्रीति करने की बात को उपलक्ष्य करके श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगदाधर पण्डित के प्रति रोष का आभास प्रदर्शित किया। श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर

श्रीगदाधर पण्डित के चित्त में भय का सञ्चार हुआ।

द्वापरयुग में कृष्ण और रुक्मिणी का दृष्टान्त—

पूर्वे जेन कृष्ण यदि उपहास कैल।
शुनि' रुक्मिणीर मने त्रास उपजिल॥ १४३ ॥

१४३। प० अनु०—द्वापरयुग में जब श्रीकृष्ण ने श्रीरुक्मिणी के साथ उपहास किया था तो श्रीरुक्मिणी के मन में भी भय उत्पन्न हो गया था।

वल्लभ भट्ट का पहले वात्सल्य-रस में भजन—

वल्लभ-भट्टेर हय वात्सल्य-उपासन।
बालगोपाल-मन्त्रे तेंहो करेन सेवन॥ १४४ ॥

१४४। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट की उपासना वात्सल्य रस की थी। वे श्रीकृष्ण की बालगोपाल मन्त्र से सेवा करते थे।

गदाधर के सङ्ग से मधुर रस में भजन करने की प्रवृत्ति—

पण्डितेर सने तार मन फिरि' गेल।
किशोर गोपाल-उपासनाय मन दिल॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित के सङ्ग से श्रीवल्लभ भट्ट का मन परिवर्तित हो गया। उन्होंने अब अपने मन को किशोर गोपाल-उपासना मे लगा दिया।

गदाधर के निकट मन्त्र प्राप्ति की अभिलाषा, गदाधर के द्वारा अस्वीकार करना—

पण्डितेर ठाञि चाहे मन्त्रादि शिखिते।
पण्डित कहे,—''एइ कर्म नहे आमा हैते॥ १४६ ॥

१४६। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट श्रीगदाधर पण्डित से किशोर गोपाल की उपासना के मन्त्र आदि को सीखना चाहते थे अर्थात् उनसे दीक्षा लेना चाहते थे। किन्तु श्रीगदाधर पण्डित ने श्रीवल्लभ भट्ट से कहा, — ''यह कार्य मुझसे नहीं होगा।

अनुभाष्य

१४६। मन्त्रादि शिखिते,—दीक्षा ग्रहण करने।

गौराङ्ग को ही अपनी एकमात्र गति मानने वाले गदाधर की गौर-वश्यता—

आमि—परतन्त्र, आमार प्रभु—गौरचन्द्र।
ताँर आज्ञा बिना आमि ना हइ 'स्वतन्त्र'॥ १४७ ॥

१४७। प० अनु०—''मैं परतन्त्र हुँ, मेरे प्रभु श्रीगौरचन्द्र हैं, उनकी आज्ञा के बिना मैं स्वतन्त्र रूप से कुछ नहीं कर सकता हूँ।

वल्लभ को मन्त्र प्रदान के विरुद्ध में युक्ति दिखलाना—

तुमि जे आमार ठाञि कर आगमन।
ताहातेइ प्रभु मोरे देन उलाहन॥'' १४८ ॥

१४८। प० अनु०—''हे वल्लभ भट्ट ! आप जो मेरे पास आना-जाना करते हो, उसी में ही श्रीमन्महाप्रभु मुझे उलाहना देते हैं।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१४८। उलाहन,—वाक्यदण्ड।

वल्लभ को प्रभु की कृपा की प्राप्ति—

एइमत भट्टेर कथेक दिन गेल।
शेषे यदि प्रभु तारे सुप्रसन्न हैल॥ १४९ ॥

१४९। प० अनु०—इस प्रकार श्रीवल्लभ भट्ट के कुछेक दिन व्यतीत हो गये। अन्त मे श्रीमन्महाप्रभु श्रीवल्लभ भट्ट के प्रति अत्यधिक प्रसन्न हुए।

भिक्षा के दिन प्रभु के कृत्रिम क्रोध से दुःखी गदाधर को प्रभु के द्वारा स्नेह से प्रेमपूर्वक बुलाना—

निमन्त्रणेर दिने पण्डिते बोलाइला।
स्वरूप, जगदानन्द, गोविन्दे पाठाइला॥ १५० ॥

१५०। प० अनु०—श्रीवल्लभ भट्ट के निमन्त्रण के दिन श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द पण्डित और श्रीगोविन्द को भेजकर श्रीगदाधर पण्डित को बुलवाया।

पण्डित को स्वरूप के द्वारा सान्त्वना प्रदान और सब प्रकार के वृत्तान्तों का बतलाना—

पथे पण्डितेरे स्वरूप कहेन वचन।
''परीक्षिते प्रभु तोमारे कैला उपेक्षण॥ १५१ ॥

स्वरूप के द्वारा गदाधर की प्रतिवाद करने की उत्तेजना-चेष्टा द्वारा परीक्षा—

तुमि केने आसि' ताँरे ना दिला उलाहन?
भीतप्राय हञा केने करिला सहन??'' १५२ ॥

१५१-१५२। प० अनु०—मार्ग में श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीगदाधर पण्डित से कहा — ''हे गदाधर पण्डित! श्रीमन्महाप्रभु ने तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये ही तुम्हारी उपेक्षा की थी। किन्तु बाद में तुमने आकर श्रीमन्महाप्रभु को उलाहना क्यो नहीं दिया? भयभीत होकर तुमने उनके द्वारा कही गयी बात अथवा उनके व्यवहार को चुपचाप सहन क्यों कर लिया? ''

प्रभु के प्रेम में स्निग्ध पण्डित की ऐश्वर्य-ज्ञान-मयी वश्यता—

पण्डित कहेन,—''प्रभु सर्वज्ञ-शिरोमणि।
ताँर सने 'हठ' करि,—भाल नाहि मानि॥ १५३ ॥

पण्डित की अपने प्रियतम प्रभु के सब प्रकार के स्नेह रूपी अत्याचार को सहन करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति—

जेइ कहे, सेइ सहि निज-शिरे धरि'।
आपने करिबेन कृपा गुण-दोष विचारि'॥'' १५४॥

१५३-१५४। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित ने कहा, —''श्रीमन्महाप्रभु तो सबकुछ जानने वालों के शिरोमाणि हैं। मैं उनके साथ किसी भी प्रकार के हठ करने को अच्छा नहीं समझता। श्रीमन्महाप्रभु जो कुछ भी कहते हैं, मैं उसे नतमस्तक होकर सहन करता हूँ। वे स्वयं मेरे गुण तथा दोषों का विचार करके मुझ पर कृपा करेंगें।''

पण्डित का प्रभु के निकट आगमन और क्रन्दन—

एत बलि' पण्डित प्रभुर स्थाने आइला।
रोदन करिया प्रभुर चरणे पड़िला॥ १५५ ॥

१५५। प० अनु०—मार्ग में इस प्रकार बातचीत करते हुए श्रीगदाधर पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के स्थान पर आकर उपस्थित हुए। वे क्रन्दन करते हुए श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में प्रणत हो गये।

पण्डित के प्रेम के वशीभूत प्रभु के द्वारा स्नेह-प्रेम पूर्वक गदाधर का आलिङ्गन और आश्वासन—

ईषत् हासिया प्रभु कैला आलिङ्गन।
सबारे शुनाञा कहेन मधुर वचन॥ १५६ ॥

स्वयं प्रभु के द्वारा गदाधर के अतुलनीय स्निग्ध सुदृढ़ गौर-प्रेम का वर्णन—

''आमि चालाइलुँ तोमा, तुमि ना चलिला।
क्रोधे किछु ना कहिला, सकल सहिला॥ १५७ ॥
आमार भङ्गीते तोमार मन ना चलिला।
सुदृढ़ सरलभावे आमारे किनिला॥'' १५८ ॥

१५६-१५८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए श्रीगदाधर पण्डित का आलिङ्गन किया तथा उन्होंने सभी को सुनाते हुए निम्नोक्त मधुर वचन कहे — ''हे गदाधर! मैंने तुम्हारे प्रति अत्यधिक रोष पूर्ण व्यवहार किया, किन्तु तुमने बिल्कुल भी रोष नहीं किया। तुमने क्रोध में कुछ भी नहीं कहा बल्कि सबकुछ सहन कर लिया। मेरे द्वारा भाव-भङ्गी करने पर भी तुम्हारा मन चञ्चल नहीं हुआ, तुमने अपने इसी सुदृढ़ सरल भाव से मुझे खरीद लिया है।''

अनुभाष्य

१५७। चालाइलुँ,—रोषपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित किया।

प्रभु का ''गदाधर-प्राणनाथ'' नाम—

पण्डितेर भाव-मुद्रा कहन ना जाय।
'गदाधर-प्राणनाथ' नाम हैल जाय॥ १५९ ॥

१५९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर श्रीगदाधर पण्डित की जो भावपूर्ण मुद्रा प्रकटित हुयी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। तब से श्रीमन्महाप्रभु का नाम 'गदाधर-प्राणनाथ' पड़ गया।

भक्तों के द्वारा नित्य 'गदाइ-गौराङ्ग' नाम का गान—

पण्डिते प्रभुर प्रसाद कहन ना जाय।
'गदाइ-गौराङ्ग' बलि' जाँरे लोके गाय॥ १६० ॥

१६०। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित के प्रति उन श्रीमन्महाप्रभु की कृपा का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिन्हें लोग 'गदाइ-गौराङ्ग' अर्थात् 'गदाधर के गौराङ्ग' कहकर पुकारते हैं।

अचिन्त्य चैतन्यलीला के सिन्धु की प्रत्येक-तरङ्ग में बहुत से उद्देश्यों का सम्पादन—

चैतन्य प्रभुर लीला के बुझिते पारे?
एकलीलाय बहे गङ्गार शत शत धारे॥ १६१ ॥

१६१। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की लीला को कौन समझ सकता है? उनकी एक-एक लीला में गङ्गा की भाँति सैकड़ों-सैकड़ों धाराएँ बहती हैं।

प्रभु के द्वारा—(१) पण्डित के गौर प्रेम का प्रचार, (२) वल्लभ का गर्वनाश और उद्धार, (३) अक्षजज्ञानी जीव की बाहरी रूप से उपेक्षा ही उसके प्रति अधोक्षज-कृपा एवं (४) वैसे दुःख रूपी दण्ड को भगवान् की कृपा मानने में ही जीव के नित्यमङ्गल और बुद्धिमत्ता का प्रचार—

पण्डितेर सौजन्य, ब्रह्मण्यता-गुण।
दृढ़ प्रेममुद्रा लोके करिला ख्यापन॥ १६२ ॥

१६२। प० अनु०—उपरोक्त लीला के माध्यम से श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगदाधर पण्डित की सौजन्यता (सज्जनता), उनके ब्राह्मणोचित गुणों तथा गाढ़ प्रेम मुद्रा को जगत् में स्थापित किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

१६२। लोके करिला ख्यापन,—समस्त भक्तों के निकट प्रभु ने विस्तार किया।

सप्तम परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अभिमान-पङ्क धुञा भट्टेरे शोधिला।
सेइ द्वारा आर सब लोके शिखाइला॥ १६३ ॥

१६३। प० अनु०—इसी लीला के माध्यम से श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीवल्लभ भट्ट के अभिमान रूपी कीचड़ को धोकर उन्हें पवित्र किया। उन्हीं को उपलक्ष्य करके अन्य सब लोगों को शिक्षा प्रदान की।

बाहरी रूप से देखने वाले, बाहरी अर्थ को मानने वाले का ही अधःपतन—

अन्तरे 'अनुग्रह', बाह्ये 'उपेक्षार प्राय'।
बाह्यार्थ जेइ लय, सेइ नाश जाय॥ १६४ ॥

१६४। प० अनु०—वास्तव में श्रीमन्महाप्रभु के अन्तर में तो श्रीवल्लभ भट्ट एवं श्रीगदाधर पण्डित के प्रति अनुग्रह (कृपा) था, किन्तु उन्होंने बाहर में उनके प्रति कुछ उपेक्षा जैसा भाव प्रदर्शित किया। जो केवल मात्र श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा बाहर से श्रीवल्लभ भट्ट एवं श्रीगदाधर पण्डित के प्रति प्रदर्शित उपेक्षा ही समझ पाता है, वास्तविक तथ्य में प्रवेश नहीं कर पाता, उसकी पारमार्थिक दृष्टिकोण से हानि होती है।

अनुभाष्य

१६४। वल्लभ भट्ट के मङ्गलाकाङ्क्षी बनकर परमदयालु पतित पावन प्रभु ने बाहरी रूप से उनकी उपेक्षा करके उनके पण्डित-वैष्णव-अभिमान का शोधन किया; गदाधर पण्डित के द्वारा वल्लभ का सम्पूर्ण रूप से त्याग नहीं करने से, महाप्रभु ने कुछेक दिनों के लिये गदाधर के प्रति भी उपेक्षा प्रदर्शित की; वास्तविक रूप में महाप्रभु कभी भी अपने स्वरूप-शक्ति विग्रह श्रील गदाधर के प्रति अप्रसन्न-चित्त नहीं हुए, न ही हो सकते हैं। जो इस लीला के निगूढ़ भाव को समझने में असमर्थ होंगे, वे बाहरी बातों को लेकर व्यस्त रहने के कारण, वास्तविक अर्थ को नहीं समझकर श्रीगदाधर के चरणों में श्रद्धाहीन होकर नरकगामी होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सप्तम परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

चैतन्य के प्रति अचल भक्ति ही चैतन्य लीला के तत्त्व को जानने का कारण—

निगूढ़ चैतन्यलीला बुझिते कार शक्ति?
सेइ बुझे, गौरचन्द्रे जाँर दृढ़ भक्ति॥ १६५ ॥

१६५। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की निगूढ़ लीला को समझने की शक्ति किसमें है? उनकी निगूढ़ लीलाओं को तो केवल वही समझ सकता है, जिनकी श्रीगौरचन्द्र के प्रति दृढ़ भक्ति है।

गदाधर के द्वारा सपरिकर प्रभु को भिक्षा-प्रदान—

दिनान्तरे पण्डित कैल प्रभुर निमन्त्रण।
प्रभु ताँहा भिक्षा कैल लञा भक्तगण॥ १६६ ॥

१६६। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित ने भी एक दिन के अन्तर पर श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण किया तथा श्रीमन्महाप्रभु ने अपने परिकरों सहित श्रीगदाधर पण्डित के वासस्थान पर भिक्षा (भोजन) स्वीकार की।

वहीं पर गदाधर के निकट वल्लभ के द्वारा मधुर रस में किशोर-गोपाल-मन्त्र में दीक्षा-प्राप्त—

ताँहाइ वल्लभ-भट्ट प्रभुर आज्ञा लैल।
पण्डित-ठाञि पूर्व-प्रार्थित सब सिद्धि हैल॥ १६७॥

१६७। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित के वासस्थान पर ही श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीमन्महाप्रभु से श्रीगदाधर पण्डित से मन्त्र आदि प्राप्ति हेतु आज्ञा ली। श्रीवल्लभ भट्ट ने श्रीगदाधर पण्डित से पहले जो सब प्रार्थना की थी, अब उनकी प्रार्थना स्वीकृत हुयी।

गदाधर-वल्लभ के मिलन से गौर-प्रीति की प्राप्ति—

एइ त' कहिलुँ वल्लभ-भट्टेर मिलन।
जाहार श्रवणे पाय गौर प्रेम धन॥ १६८ ॥

१६८। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीगदाधर पण्डित और श्रीवल्लभ भट्ट के उस मिलन का वर्णन किया, जिसके श्रवण से गौर प्रेम रूपी धन की प्रप्ति होती है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १६९ ॥

१६९। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे वल्लभभट्टमिलनं नाम सप्तमः परिच्छेदः।

❋❋❋

अष्टम परिच्छेद

कथासार—इस परिच्छेद में रामचन्द्रपुरी का इतिहास वर्णित हुआ है। यद्यपि वे माधवेन्द्र पुरी के शिष्य थे, तथापि उन्होंने शुष्कज्ञानियों के सम्प्रदाय के सङ्ग से दूषित सिद्धान्त को ग्रहण करके माधवेन्द्र पुरी के समक्ष अधर्म का उपदेश दिया था। उसी के कारण पुरी-गोसाञि ने उन्हें 'अपराधी' कहकर उनका त्याग किया; तब से दूसरों की निन्दा, दूसरों के दोषों का अनुसन्धान, शुष्क ज्ञान का उपदेश,—इन समस्त कार्यों को करने के कारण वे वैष्णवों के द्वारा उपेक्षित हुए। इसके उपरान्त महाप्रभु के भोजन आदि के प्रति भी निन्दा करने के कारण महाप्रभु ने उन्हें गुरु-सम्बन्ध-बुद्धि-वशतः कुछ भी नहीं कहकर मौन रूप से केवल मात्र (अपने भोजन) प्रसाद-अन्न को कम कर दिया। रामचन्द्रपुरी के पुरुषोत्तम से चले जाने पर प्रभु का सङ्कोच दूर हो गया। (अः प्रः भाः)

रामचन्द्रपुरी के भय से आाहार में सङ्कोच करने वाले प्रभु की वन्दना—

तं वन्दे कृष्णचैतन्यं रामचन्द्रपुरीभयात्।
लौकिकाहारतः स्वं यो भिक्षान्नं समकोचयत्॥ १॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। जिन्होंने रामचन्द्रपुरी के भय से प्रतिदिन ग्रहण करने वाले लौकिक (साधारण जीवों के दृष्टिकोण के अनुसार किये जाने वाले अर्थात्) आहार परिमित अपने भोजन को कम कर दिया था, उन श्रीकृष्णचैतन्य की मैं वन्दना करता हूँ।

अनुभाष्य

१। यः (कृष्णचैतन्यदेवः) रामचन्द्रपुरीभयात् (रामचन्द्रपुरीत्याख्य-हरिगुरुवैष्णवनिन्दकवाक्य-जन्यलौकिकाशङ्काप्रदर्शनात्) लौकिकाहारतः (लोकदर्शन-परिमित-भोज्यान्नात्) स्वं (निजं) भिक्षान्नं (भोजन-परिमाणं युक्ताहार्यम् अपि) समकोचयत् (खर्वीचकार) तं कृष्णचैतन्यम् (अहं) वन्दे।

जय जय श्रीचैतन्य करुणासिन्धु-अवतार।
ब्रह्मा-शिवादिक भजे चरण जाँहार॥ २॥

२। प० अनु०—करुणा रूपी सिन्धु के अवतार उन श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो, जिनके चरणों का श्रीब्रह्मा तथा श्रीशिव आदि भी भजन करते हैं।

जय जय श्रीवासादि जत भक्तगण।
श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु—जाँर प्राणधन॥ ३॥

३। प० अनु०—श्रीवास पण्डित आदि उन समस्त भक्तों की जय हो, जय हो, जिनके प्राणधन श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु हैं।

अनुभाष्य

३। यहाँ पर पाठान्तर में,—'जय जय अवधूत चन्द्र नित्यानन्द। जगत् बाँधिल जेंहो दिया प्रेमफाँद॥ जय जय श्रीअद्वैत ईश्वर-अवतार। कृष्ण अवतारि' कैला जगत् निस्तार॥''

[अर्थात् अवधूतचन्द्र उन श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो, जय हो, जिन्होंने प्रेमरूपी डोरी के द्वारा समस्त जगत्वासियों को बाँध दिया। ईश्वर के अवतार उन श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो, जय हो, जिन्होंने श्रीकृष्ण को अवतरित कराके जगत् का उद्धार करा दिया।]

नीलाचल में भक्तों के साथ गौर की लीला—

एइमत गौरचन्द्र निजभक्त-सङ्गे।
नीलाचले क्रीड़ा करे कृष्णप्रेमतरङ्गे॥ ४ ॥

४। प० अनु०—इस प्रकार श्रीगौरचन्द्र अपने भक्तों के साथ कृष्णप्रेम की तरङ्गों में नीलाचल में लीलाएँ कर रहे थे।

रामचन्द्रपुरी का आगमन—

हेनकाले रामचन्द्रपुरी-गोसाञि आइला।
परमानन्द-पुरीरे आर प्रभुरे मिलिला॥ ५ ॥

५। प० अनु०—उसी समय श्रीरामचन्द्र पुरी गोसाञि श्रीजगन्नाथपुरी में आये तथा वे श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीमन्महाप्रभु से मिले।

अमृतप्रवाह भाष्य

५। रामचन्द्र पुरी,—श्रीमाधवेन्द्र पुरी के शिष्य होने के कारण महाप्रभु एवं परमानन्दपुरी ने इनका सम्मान किया था।

परमानन्दपुरी और प्रभु के द्वारा रामचन्द्र पुरी को यथोचित पद मर्यादा-प्रदान—

परमानन्द-पुरी कैल चरण वन्दन।
पुरी-गोसाञि कैल ताँरे दृढ़ आलिङ्गन॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीपरमानन्द पुरी ने श्रीरामचन्द्रपुरी के चरणों की वन्दना की तथा श्रीरामचन्द्र पुरी गोसाञि ने उन्हें दृढ़ आलिङ्गन किया।

अनुभाष्य

५-६। रामचन्द्र पुरी के स्वभाव से ईष्यालु और हरि-गुरु-वैष्णव विरोधी होने पर भी वे बाहरी दृष्टिकोण से त्यागी अथवा सन्यासी के वेष में होने के कारण ही लोक समाज में उस समय 'गोसाञि' (गोस्वामी) नाम से जाने जाते थे। वर्तमान समय में समाज में प्रचलित विकृत प्रथा की भाँति जाति, कुल अथवा वंश परम्परा में त्यागी व्यक्तियों की यह उपाधि (गृहस्थियों द्वारा) व्यवहृत नहीं होती थी, उसका प्रमाण यहाँ पर मिलता है।

वैष्णव-सन्यासियों का साम्प्रदायिक व्यवहार—

महाप्रभु कैल ताँरे दण्डवत् नति।
आलिङ्गन करि' तेंहो कैल कृष्णस्मृति॥ ७ ॥

७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरामचन्द्र पुरी को दण्डवत् प्रणाम किया तथा श्रीरामचन्द्र पुरी ने भी 'ऊँ नमो भगवते नारायणाय' कहकर श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए उन्हें आलिङ्गन किया।

अनुभाष्य

७। महाप्रभु को ईश्वरपुरी का अनुगत जानकर आलिङ्गन करके वैष्णव-सन्यासी मात्र के ही योग्य-सम्भाषण 'कृष्ण' को स्मरण किया। किसी के द्वारा सन्यासियों का अभिवादन करने पर सन्यासी 'ॐ नमो भगवते नारायणाय' कहकर कृष्ण का स्मरण करते हैं। सन्यासियों के लिये जीव को आशीर्वाद और नमस्कार करने की विधि नहीं है; स्मृति कहती हैं,—'सन्यासी—निराशीर्निर्नमष्क्रिय:'।

जगदानन्द के द्वारा भिक्षा-प्रदान—

तिनजने इष्टगोष्ठी कैला कतक्षण।
जगदानन्द-पण्डित ताँरे कैला निमन्त्रण॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी श्रीपरमानन्दपुरी तथा श्रीमन्महाप्रभु—इन तीनों ने कुछ समय तक इष्ट गोष्टी की एवं श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीरामचन्द्र पुरी को भोजन हेतु निमन्त्रण किया।

स्वयं अत्यधिक भोजन करने के बाद भिक्षा कराने वाले अथवा परिवेशन करने वाले की निन्दा—

जगन्नाथेर प्रसाद आनिला भिक्षार लागिया।
यथेष्ठ भिक्षा करिला तेंहो निन्दार लागिया॥ ९ ॥

९। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित रामचन्द्र पुरी को भोजन कराने के लिये श्रीजगन्नाथ देव का प्रसाद लेकर आये, श्रीरामचन्द्र पुरी ने निन्दा करने के उद्देश्य से बहुत भोजन किया।

स्वयं जगदानन्द को प्रचुर भोजन कराके 'अत्याहारी' जानकर गौरभक्तों की निन्दा–

भिक्षा करि' कहे पुरी,—''शुन, जगदानन्द।
अवशेष प्रसाद तुमि करह भक्षण॥'' १० ॥

१०। प० अनु०—भोजन करने के पश्चात् श्रीरामचन्द्र पुरी ने कहा,—''हे जगदानन्द, सुनो! तुम अवशिष्ट (बचे हुए) प्रसाद को पा लो।''

आग्रह करिया ताँरे बसि' खाओयाइल।
आपने आग्रह करि' परिवेशन कैल॥ ११ ॥

११। प० अनु०— श्रीरामचन्द्र पुरी ने आग्रह करके श्रीजगदानन्द पण्डित को भोजन के लिये बैठाया तथा स्वयं ही बहुत आधिक आग्रहपूर्वक परिवेशन भी किया।

आग्रह करिया पुनः पुनः खाओयाइल।
आचमन कैले निन्दा करिते लागिल॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी ने पुनः पुनः अनुरोध करके श्रीजगदानन्द पण्डित को बहुत खिलाया तथा जैसे ही श्रीजगदानन्द पण्डित ने आचमन किया, श्रीरामचन्द्र पुरी उनकी निन्दा करने लगे।

वास्तविक शुद्धवैराग्यवान् गौरभक्तों को वैराग्यहीन समझकर उनकी निन्दा–

''शुनि, चैतन्यगण करे बहुत भक्षण।
'सत्य' सेई वाक्य,—साक्षात् देखिलुँ एखन॥ १३॥

१३। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी ने कहा,—''मैंने सुना था कि चैतन्य महाप्रभु के भक्त बहुत अधिक खाते हैं, वह वचन सत्य ही है, आज मैंने साक्षात् रूप से देख लिया।

सन्यासीरे एत खाओयाञा करे धर्म नाश।
वैरागी हञा एत खाय, वैराग्येर नाहि 'भास'॥''१४॥

१४। प० अनु०—''चैतन्य महाप्रभु के भक्त [स्वयं तो खाते-ही हैं, साथ ही अन्य]सन्यासियों को भी इतना अधिक खिलाकर उनके धर्म को नष्ट करवाते हैं। वे स्वयं वैरागी होकर इतना अधिक खाते हैं, उनमें तो वैराग्य का आभास तक भी नहीं है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१४। भास,—आभासमात्र भी।

रामचन्द्रपुरी का स्वभाव–

एइ त' स्वभाव ताँर आग्रह करिया।
पिछे निन्दा करे, आगे बहुत खाओयाञा॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी का स्वभाव ही ऐसा था कि वे पहले तो बहुत अधिक आग्रह करके खिलाते तथा बाद में निन्दा करते।

गुरु के द्वारा त्यक्त रामचन्द्रपुरी के पूर्व वृत्तान्त का वर्णन; गुरुदेव श्रीमाधवेन्द्र पुरी के अप्रकट के समय रामचन्द्र का आगमन–

पूर्वे जबे माधवेन्द्रपुरी करेन अन्तर्द्धान।
रामचन्द्रपुरी तबे आइला ताँर स्थान॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—पूर्वकाल में जब श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद अन्तर्ध्यान-लीला कर रहे थे, तब श्रीरामचन्द्र पुरी उनकी भजनस्थली पर आये थे।

श्रीमाधवेन्द्रपुरी का अप्राकृत विप्रलम्भरस में कृष्ण-कीर्त्तन–

पुरी-गोसाञि करेन कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन।
'मथुरा ना पाइनु' बलि' करेन क्रन्दन॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—उस समय श्रीमाधवेन्द्र पुरी गोसाञि कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन करते हुए 'मैं मथुरा को प्राप्त नहीं कर पाया' कहकर क्रन्दन कर रहे थे।

शुष्कज्ञानी रामचन्द्र के द्वारा मर्त्य बुद्धि से गुरु की मर्यादा का लङ्घन–

रामचन्द्रपुरी तबे उपदेशे ताँरे।
शिष्य हञा गुरुके कहे, भय नाहि करे॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—उस समय श्रीरामचन्द्र पुरी श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद को उपदेश देने लगे, उन्हें शिष्य होकर गुरु को उपदेश देने में भी कोई भय नहीं हुआ।

रामचन्द्र के द्वारा चित्-विलास का विरोध—

''तुमि—पूर्ण ब्रह्मानन्द, करह स्मरण।
ब्रह्मवित् हञा केने करह रोदन??'' १९ ॥

१९। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी ने श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद से कहा,—''आप पूर्ण ब्रह्मानन्द का स्मरण कीजिए, आप ब्रह्म-विद् होने पर भी रो क्यों रहे हैं?''

गुरु माधवेन्द्र पुरी के द्वारा रामचन्द्र को अपराधी मानकर क्रोध से भरकर उसकी उपेक्षा और तिरस्कार—

शुनि' माधवेन्द्र-मने क्रोध उपजिल।
''दूर, दूर, पापिष्ठ'' बलि' भर्त्सना करिल॥ २०॥

२०। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी की बात सुनकर श्रीमाधवेन्द्र पुरी के मन में बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने श्रीरामचन्द्र पुरी का— 'दूर हो जा, पापिष्ठ, दूर हो जा' —कहकर तिरस्कार किया।

अनुभाष्य

२०। रामचन्द्रपुरी ने अपने गुरु श्रीमाधवेन्द्र को श्रीकृष्ण-विरह में कातर देखा किन्तु वे उनकी अप्राकृत विप्रलम्भ स्फूर्त्ति को समझने में असमर्थ हुए तथा लौकिक-विचारानुसार माधवेन्द्र पुरी को साधारण मरणशील व्यक्ति मानकर उन्हें प्राकृत-अभाव के लिये शोक से कातर समझा एवं उन्हें निर्विशेष-ब्रह्म की अनुभूति कराने के लिये व्यस्त हो गये। उनके ऐसा करने से श्रीमाधवेन्द्र पुरी अपने शिष्य की मूर्खता और गुरु-अवज्ञा को समझकर उसके मङ्गल की आकाङ्क्षा से रहित हो गये एवं उसे त्याग कर निकाल दिया।

''कृष्ण-कृपा ना पाइनु, ना पाइनु 'मथुरा'।
आपन-दुःखे मरों,—एइ दिते आइल ज्वाला॥ २१॥

२१। प० अनु०—''मैं श्रीकृष्ण की कृपा को प्राप्त नहीं कर पाया, मैं मथुरा को प्राप्त नहीं कर पाया। एक तो मैं अपने ही दुःख से मर रहा हूँ, उस पर तू मुझे जलाने के लिये आ गया है।

मोरे मुख ना देखाबि तुइ, जाउ यथि-तथि।
तोरे देखि' मैले, मोर हबे असद्गति॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—''हे रामचन्द्र पुरी! तेरी जहाँ इच्छा हो, तू वहाँ चला जा, किन्तु मुझे अपना मुख मत दिखला। तुझे देखकर मरने से मुझे असद्गति की प्राप्ति होगी।

कृष्ण ना पाइनु, मरों आपनार दुःखे।
मोरे 'ब्रह्म' उपदेशे एइ छार मूर्खे॥'' २३ ॥

२३। प० अनु०—''मैं श्रीकृष्ण को प्राप्त नहीं कर पाने रूपी अपने दुःख के कारण मर रहा हूँ और यह दुष्ट मूर्ख मुझे ब्रह्म का उपदेश दे रहा है।''

गुरु-अवज्ञा रूपी अपराध के कारण विषयभोग अथवा संसार-वासना—

एइ जे श्रीमाधवेन्द्रपाद उपेक्षा करिल।
सेइ अपराधे इँहार 'वासना' जन्मिल॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद ने श्रीरामचन्द्र पुरी की जो उपेक्षा की, उसी के फलस्वरूप रामचन्द्र पुरी में संसार-वासना उत्पन्न हुई।

अमृतप्रवाह भाष्य

२४। वासना,—शुष्क ज्ञान-वासना, उसके कारण भक्तों की निन्दा।

अनुभाष्य

२४। इस विषय में भक्ति सन्दर्भ (१११ संख्या) में 'वासनाभाष्य' धृत भगवान् के परिशिष्ट वचन—''जीवन्मुक्ता अपि पुनर्यान्ति संसारवासनाम्। यद्यचिन्त्य-महाशक्तौ भगवत्यपराधिनः॥''[अर्थात् अचिन्त्य महाशक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् के निकट अपराध होने पर जीवन्मुक्त व्यक्ति भी पुनः संसार वासना-प्राप्त होते हैं (पाठान्तर में—कर्म के द्वारा पुनः बन्धन-प्राप्त होते हैं)।] अथवा भाः १०.२.३२ श्लोक की श्रीजीवगोस्वामिकृत लघुतोषणी टीका में इस वासना भाष्य-धृत भगवत्-परिशिष्ट का ही पाठान्तर,—''जीवन्मुक्ता अपि पुनर्बन्धनं यान्ति कर्मभिः। यद्यचिन्त्य-महाशक्तौ भगवत्यपराधिनः॥'' एवं रथ-यात्रा

प्रसङ्ग में श्रीविष्णुभक्तिचन्द्रोदय में उद्धृत पुराणान्तर-वचन—''जीवन्मुक्ताः प्रपद्यन्ते क्वचित् संसारवासनाम्। योगिनो न विलिप्यन्ते कर्मभिर्भगवत्पराः॥'' [अर्थात् जीवन्मुक्त भी कभी- कभी संसार-वासना को प्राप्त होते हैं, किन्तु भगवत्-परायण एकान्तिक योगी कभी भी कर्मवासना में विलिप्त नहीं होते।] इत्यादि शास्त्र-वचन द्रष्टव्य हैं।

कृष्ण-कृष्णभक्त अथवा स्वरूप-तत्-रूपवैभव आदि चिद्-विलास-दर्शन विहीन विष्णु-निन्दा आरम्भ—

शुष्क-ब्रह्मज्ञानी, नाहि कृष्णेर 'सम्बन्ध'।
सर्वलोकेर निन्दा करे, निन्दाते निर्बन्ध॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी शुष्क ब्रह्मज्ञानी बन गये, उनका श्रीकृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वे सभी लोगों की नियमित रूप से आसक्ति पूर्वक अर्थात् रुचि सहित निन्दा करते थे।

अनुभाष्य

२५। निर्बन्ध,—निष्ठा के साथ परनिन्दा में आसक्ति। निर्विशेष मायावादी सम्बन्ध ज्ञान में अपटु (अप्रवीण) हाने के कारण कृष्ण-सम्बन्ध ग्रहण नहीं कर पाते; जड़ीय-वितर्क के बल पर ब्रह्म के विषय में जड़ीय तर्क प्रयोग करते हैं एवं कृष्ण-भक्ति को मोक्ष-साधक के फलभोग-पिपासा-मूलक कर्मकाण्ड के अन्तर्गत अन्य एक कार्य समझते हैं तथा भगवत्-भक्त को और उनके अप्राकृत-भक्त्यानुशीलन को चतुर्वर्ग-प्रापक कर्मसाधनमात्र जानकर उनकी निन्दा करते हैं। अधोक्षज गुरु अथवा भक्तों के चरणों में अपराध होने पर ही जीव ऐसे भयानक अज्ञान में पतित होते हैं।

श्रील ईश्वरपुरी की एकान्तिकी गुरुभक्ति—

ईश्वरपुरी करेन श्रीपाद-सेवन।
स्वहस्ते करेन मलमूत्रादि मार्जन॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीईश्वरपुरी श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद की सेवा करते थे, वे अपने हाथों से श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद के मल-मूत्र आदि को परिष्कार कर देते थे।

अनुभाष्य

२६। श्रीपाद-सेवन,—श्रीमाधवेन्द्रपुरी-पाद की सेवा।

आदर्श गुरु-सेवा का उदाहरण—

निरन्तर कृष्णनाम कराय स्मरण।
कृष्णनाम, कृष्णलीला शुनाय अनुक्षण॥२७॥

२७। प० अनु०—श्रीईश्वरपुरी पाद श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद को निरन्तर कृष्णनाम का स्मरण कराते तथा उन्हें अनुक्षण कृष्णनाम तथा कृष्णलीला श्रवण कराते थे।

श्रीईश्वरपुरी को गुरुप्रसाद की प्राप्ति—

तुष्ट-हञा पुरी ताँरे कैला आलिङ्गन।
वर दिला,—''कृष्णे तोमार हउक प्रेमधन॥'' २८॥

२८। प० अनु०—श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद ने सन्तुष्ट होकर श्रीईश्वरपुरी पाद को आलिङ्गन किया तथा उन्हें वरदान देते हुए कहा,—''तुम्हें श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम रूपी धन की प्राप्ति हो।''

गुरु के निकट एक के कृपा रूपी लाभ के फल, दूसरे के वञ्चना प्राप्ति के फल में तारतम्य—

सेइ हैते ईश्वरपुरी—'प्रेमेर सागर'।
रामचन्द्रपुरी हैल सर्वनिन्दाकर॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—तभी से श्रीईश्वरपुरी पाद प्रेम के सागर स्वरूप बन गये तथा श्रीरामचन्द्रपुरी सबकी निन्दा करने वाले बन गये।

हरि-गुरु-वैष्णव की कृपा और दण्ड प्राप्ति के दो दृष्टान्तों के द्वारा लोगों को शिक्षा—

महदनुग्रह-निग्रहेर 'साक्षी' दुइजने।
एइ दुइद्वारे शिखाइला जगजने॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—महान् व्यक्ति के कृपापात्र और दण्ड के भागीदार के साक्षी क्रमशः उपरोक्त दोनों व्यक्ति

हैं। श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद ने इन दोनों के माध्यम से जगत्वासियों को शिक्षा प्रदान की।

अनुभाष्य

३०। महात्मा श्रील माधवेन्द्र पुरी से ईश्वर पुरी ने प्रचुर अनुग्रह (कृपा) प्राप्त किया अर्थात् हृदय में स्थान प्राप्त किया और रामचन्द्र पुरी को केवल मात्र निग्रह प्राप्त हुआ अर्थात् वे उनके हृदय में लेशमात्र भी स्थान प्राप्त नहीं कर पाये।

अप्राकृत विप्रलम्भ-अवस्था में माधवेन्द्र गोस्वामी का अप्राकट्य—

जगद्गुरु माधवेन्द्र करि' प्रेम दान।
एइ श्लोक पड़ि' तेंहो करिला अन्तर्ध्यान॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—जगद्गुरु श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद ने श्रीईश्वर पुरी पाद को प्रेम का दान करने के कुछ समय पश्चात् निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुए अन्तर्ध्यान लीला प्रकाशित की।

(पद्यावली ३३० अङ्क में उद्धृत माधवेन्द्रपुरीवचन)

अयि दीनदयार्द्रनाथ हे
मथुरा नाथ कदावलोक्यसे।
हृदयं त्वदलोककातरं
दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥ ३२ ॥

३२। अनु०—ओहे दीनदयार्द्रनाथ! ओहे मथुरानाथ! कब तुम्हारे दर्शन करूँगी! तुम्हारे दर्शन के अभाव में मेरा कातर हृदय अस्थिर हो गया है। हे दयित! अब मैं क्या करूँ?

अनुभाष्य

३२। मध्य-लीला के चतुर्थ परिच्छेद की १९७ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्लोक का मर्मार्थ अथवा तात्पर्य-व्याख्या—

एइ श्लोके कृष्णप्रेम करे उपदेश।
कृष्णेर विरहे, भक्तेर भावविशेष॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०— उपरोक्त श्लोक के माध्यम से श्रीमाधवेन्द्रपुरी ने अपने आचरण के द्वारा कृष्ण-प्रेम ही परम-पुरुषार्थ है एवं श्रीकृष्ण के विरह में भक्तों के चित्त में जिन विशेष भावों का उदय होता है, उसका उपदेश प्रदान किया।

अनुभाष्य

३३। भाव-विशेष,—विप्रलम्भ-भावस्फूर्त्ति; प्राकृत-सहजिया-सम्प्रदाय में सम्भोग के नाम पर साधकों में अनेक प्रकार का दौरात्म्य आकर विप्रलम्भ के स्वरूप की अनुभूति में बाधा उत्पन्न करता है।

माधवेन्द्र—कृष्णप्रेमकल्पवृक्ष के अंकुर, श्रीचैतन्य स्वयं अंकुर से प्रस्फुटित परिवर्धित मूल-वृक्ष—

पृथिवीते रोपण करि' गेला प्रेमांकुर।
सेइ प्रेमांकुरेर वृक्ष—चैतन्यठाकुर॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद पृथ्वी पर प्रेम के अंकुर को रोपित कर गये, उसी प्रेम के अंकुर से ही श्रीचैतन्य महाप्रभु रूपी वृक्ष प्रकाशित हुआ।

माधवेन्द्र के अन्तर्ध्यान के श्रवण से जीव को कृष्ण के विरह में उत्पन्न सेवा की शिक्षा—

प्रस्तावे कहिलुँ पुरी-गोसाञिर निर्याण।
जेइ इहा शुने, सेइ बड़ भाग्यवान्॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—मैंने प्रसङ्ग पाकर श्रीमाधवेन्द्र पुरी गोस्वामी के निर्याण का वर्णन किया है, जो कोई भी इसका श्रवण करता है वह बहुत सौभाग्यशाली है।

अमृतप्रवाह भाष्य

३५। निर्याण,—अप्रकट।

रामचन्द्रपुरी का शुष्क-वैराग्य—

रामचन्द्रपुरी ऐछे रहिला नीलाचले।
विरक्त स्वभाव, कभु रहे कोन स्थले॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी इस प्रकार श्रीनीलाचल में रहने लगे। श्रीरामचन्द्र पुरी स्वभावतः

वैरागी थे, वे कभी तो किसी एक स्थान पर तो कभी अन्य किसी स्थान पर रहते।

दूसरों के दोषों को ढूँढ़ने वाले रामचन्द्रपुरी–

अनिमन्त्रण भिक्षा करे, नाहिक निर्णय।
अन्येर भिक्षार स्थितिर लयेन निश्चय॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी बिना किसी निमन्त्रण के ही भोजन करते, उनके भोजन के विषय में कुछ भी निर्धारित नहीं था। किन्तु अन्यान्य भक्त लोग कब कहाँ पर भोजन करेंगे, वे उसकी अवश्य ही जानकारी रखते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

३७। अन्येर भिक्षार स्थिति (अन्य व्यक्तियों की भिक्षा की स्थिति),—अन्य लोग जो भिक्षा (भोजन) करते, उसके नियम को समझ लेते।

अनुभाष्य

३७। 'अन्यान्य सन्यासी कहाँ किस परिमाण में भोजन करते हैं, कहाँ वास करते हैं इत्यादि अन्यों की चर्चा अथवा जानकारी लेकर रामचन्द्रपुरी दिन-यापन करते।' निश्चय,—हिसाब।

प्रभु की दैनिक भिक्षा का विवरण—प्रभु के साथ श्रीईश्वरपुरी के शिष्य गोविन्द और काशीश्वर की एक साथ भिक्षा–

प्रभुर निमन्त्रणे लागे कौड़ि चारि पण।
कभु काशीश्वर, गोविन्द खान तिन जन॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—उन दिनों श्रीमन्महाप्रभु के निमन्त्रण में चार पण कौड़ी (चार आने) लगते थे, कभी-कभी तो उसी में ही श्रीमन्महाप्रभु, श्रीकाशीश्वर पण्डित तथा श्रीगोविन्द—ये तीनों प्रसाद पाते थे।

प्रत्यह प्रभुर भिक्षा इति-उति हय।
केह यदि मूल्य आने, चारिपण-निर्णय॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का भोजन नित्यप्रति इधर-उधर अर्थात् कहीं-न-कहीं होता था, कोई यदि श्रीमन्महाप्रभु के प्रसाद के उद्देश्य से उसका मूल्य चुकाना चाहता तो वह मूल्य चार पण कौड़ी ही निर्धारित था।

स्वयं प्रभु को भी मर्त्य समझकर उनके दोष को ढूँढ़ना–

प्रभुर स्थिति, रीति, भिक्षा, शयन, प्रयाण।
रामचन्द्रपुरी करे सर्वानुसन्धान॥ ४० ॥

४०। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान, उनकी रीति, उनके भोजन, शयन तथा एक-स्थान से दूसरे स्थान पर जाने इत्यादि के विषय में समस्त सूचनाएँ एकत्रित करते रहते।

अधोक्षज स्वयं भगवान् पूर्ण और निर्दोष–

प्रभुर जतेक गुण स्पर्शिते नारिल।
छिद्र चाहि' बुले, काँहा छिद्र ना पाइल॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी श्रीमन्महाप्रभु के अपार गुणों का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर पाये, वह सब समय श्रीमन्महाप्रभु के किसी दोष को ढूँढ़ने का अथाह प्रयास करने पर भी उनका कोई दोष न ढूँढ़ पाये।

सन्यासी के लिये विधि और निषेध–

''सन्यासी हञा करे मिष्टान्न-भक्षण।
एइ भोगे हय कैछे इन्द्रिय-वारण??'' ४२ ॥

४२। प० अनु०—श्रीरामचन्द्र पुरी कहने लगे—''कृष्णचैतन्य संन्यासी होकर भी मिष्ठान्न खाता है, इस प्रकार के भोगों को ग्रहण करने से किस प्रकार से इन्द्रियों के विकारों को रोका जा सकता है?''

सर्वत्र प्रभु की निन्दा, दूसरी ओर प्रतिदिन प्रभु का दर्शन–

एइ निन्दा करि' कहे सर्वलोक-स्थाने।
प्रभुरे देखितेह अवश्य आइसे प्रतिदिने॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—रामचन्द्र पुरी उपरोक्त प्रकार से श्रीमन्महाप्रभु की सभी के समक्ष निन्दा करते तथा साथ ही प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने भी अवश्य ही आते।

प्रभु के द्वारा मर्यादा प्रदान, रामचन्द्र के द्वारा निन्दा रूपी विष उगलना—

प्रभु गुरुबुद्धये करेन सम्भ्रम, सम्मान।
तेंहो छिद्र चाहि' बुले,—एइ तार काम॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु रामचन्द्र पुरी में गुरुबुद्धि रखकर उनके प्रति गौरव तथा सम्मान प्रकाशित करते, दूसरी ओर, रामचन्द्र पुरी श्रीमन्महाप्रभु के दोषों को ही ढूँढ़ने में लगे रहते, यही उनका काम था।

अपनी निन्दा को श्रवण करने पर भी प्रभु के द्वारा पुरी की पदोचित सम्मान-प्रदान-पूर्वक वञ्चना—

जत निन्दा करे, ताहा प्रभु सब जाने।
तथापि आदर करे बड़इ सम्भ्रमे॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—रामचन्द्र पुरी श्रीमन्महाप्रभु की जो सब निन्दा करते थे, श्रीमन्महाप्रभु उसे सम्पूर्ण रूप से जानते थे। किन्तु तब भी श्रीमन्महाप्रभु उन्हें गौरव प्रदान करते हुए उनका बहुत आदर करते।

एक बार प्रातः प्रभु के घर में चींटियों की श्रेणी को देखकर स्वयं-भगवान् प्रभु के वैराग्य की निन्दा करके वहाँ से प्रस्थान—

एकदिन प्रातःकाले आइला प्रभुर घर।
पिपीलिका देखि' किछु कहेन उत्तर॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—एकदिन प्रातःकाल श्रीरामचन्द्र पुरी श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान पर आये तथा वहाँ पर चींटियों को देखकर इस प्रकार कहने लगे—।

(रामचन्द्रपुरी के वचन—)

''रात्रावत्र ऐक्षवमासीत्,
तेन पिपीलिकाः सञ्चरन्ति। अहो!
विरक्तानां सन्यासिनामियमिन्द्रियलालसेति
ब्रुवन्नुत्थाय गतः॥ ४७ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

४७। ''रात्रि के समय इस स्थान पर गन्ने से बना गुड़ था, इसी कारण यहाँ पर बहुत-सी चीटियाँ घूम रही हैं। अहो, विरक्त सन्यासियों की ऐसी इन्द्रिय-लालसा!''—ऐसा कहकर वह उठ खड़े हुए।

अनुभाष्य

४७। लौकिक-घृणित आदि गुणों से अतीत पूर्ण निर्दोष-विग्रह स्वयं भगवान् महाप्रभु के किसी-न-किसी छिद्र (कमी, दोष) को पाने की आशा से रामचन्द्र अनेक प्रयत्न करने पर भी जब सफल नहीं हो पाये एवं प्रभु के घर में किसी भी प्रकार की मिठाई को नहीं देखने पर भी बहुत सी चींटियों को घूमते देखकर उन्होंने अनुमान लगाया कि रात्रि के समय यहाँ पर गुड़ था; [रामचन्द्र पुरी का] उद्देश्य,—किसी कमी का उल्लेख करके अपने माहात्म्य को वर्धित करना था।

प्रभु के द्वारा अपने कानों से पुरी के द्वारा की गयी असत्य (मिथ्या)-निन्दा-श्रवण—

प्रभु परम्पराय निन्दा कैराछेन श्रवण।
एबे साक्षात् शुनिलेन 'कल्पित' निन्दन॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अभी तक तो अन्यों के मुख से रामचन्द्र पुरी के द्वारा की जाने वाली अपनी निन्दा के विषय में सुना था, किन्तु आज उन्होंने साक्षात् रूप में अपने कानों से रामचन्द्र पुरी द्वारा की जाने वाली कल्पित निन्दा को श्रवण किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

४८। कल्पित निन्दन,—झूठी आरोपित निन्दा।

विवर्तबुद्धि के कारण ही भगवान् के प्रति दोषारोपण—

सहजेइ पिपीलिका सर्वत्र बेड़ाय।
ताहाते तर्क उठाञा दोष लागाय॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—चींटियाँ तो सामान्यतया सभी स्थानों पर घूमती रहती हैं, किन्तु रामचन्द्र पुरी उन्हीं को देखकर तर्क उठाकर श्रीमन्महाप्रभु पर दोष लगाने लगे।

अपनी निन्दा को श्रवण करके जगद्गुरु आचार्यरूपी प्रभु का भय और लज्जा—

शुनि' ताहा प्रभुर सङ्कोच-भय मने।
गोविन्दे बोलाञा किछु कहेन वचने॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—रामचन्द्र पुरी के वचन सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के मन में सङ्कोच तथा भय उत्पन्न हुआ, उन्होंने अपने सेवक श्रीगोविन्द को बुलाकर उस से कहा—।

अपनी दैनिक भिक्षा को कम करना और गोविन्द के निकट उसके परिमाण को निर्धारित करना—

''आजि हैते भिक्षा आमार एइ त' नियम।
पिण्डाभोगेर एक चौठि, पाँचगण्डार व्यञ्जन॥ ५१॥

५१। प० अनु०—''आज से मेरी भिक्षा (भोजन) का नियम होगा कि मैं श्रीजगन्नाथ देव के गरुड़ स्तम्भ के पीछे हाण्डी में लगने वाले पिण्डा भोग का जो परिमाण तुम लाते हो, उसका एक चौथाई भाग तथा पाँच गण्डे (एक पैसे) की साग-सब्जी को ही ग्रहण करूँगा।

अनुभाष्य

५१। जगन्नाथ देव का प्रसाद मिट्टी की हाण्डी में मिलता है। 'प्रमाण' हाण्डी अर्थात् छोटी वाली हाण्डी के चौथे भाग को 'एक चौठि' (एक चौथाई) कहते हैं।

परिमाण से अधिक लाने पर स्थान को छोड़कर जाने रूपी भय का प्रदर्शन—

इहा वइ अधिक आर किछु ना लइबा।
अधिक आनिले आमा एथा ना देखिबा॥'' ५२ ॥

५२। प० अनु०—''गोविन्द, इससे अधिक अन्य कुछ भी मत लाना। यदि इससे अधिक कुछ भी लाओगे, तब तुम मुझे यहाँ पर नहीं देखोगे।''

सभी भक्तों को प्रभु के कठोर उपदेश के विषय में बतलाना, समस्त भक्तों को अत्यन्त दु:ख—

सकल वैष्णवे गोविन्द कहे एइ बात।
शुनि' सबार माथे जैछे हैल व्रजाघात॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने सभी वैष्णवों को श्रीमन्महाप्रभु की इस आज्ञा के विषय में बतलाया। यह बात सुनकर सभी भक्तों को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनके सिर पर बज्र गिर पड़ा हो।

दुरात्मा रामचन्द्रपुरी को प्राणों से भी अधिक प्रिय प्रभु का विरोधी जानकर भक्तों के द्वारा उसकी निन्दा—

रामचन्द्रपुरीके सबाय देय तिरस्कार।
''एइ पापिष्ठ आसि' प्राण लइल सबार॥'' ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के समस्त भक्त रामचन्द्रपुरी का तिरस्कार करते हुए कहने लगे,—''इस पापिष्ठ ने आकर हम सबके प्राण ले लिये हैं।''

एक विप्र के द्वारा प्रभु को निमन्त्रण—

सेइदिन एक विप्र कैल निमन्त्रण।
एक-चौठि भात, पाँच-गण्डार व्यञ्जन॥ ५५ ॥

प्रभु के लिये गोविन्द के द्वारा यथा निर्दिष्ट-परिमाण में प्रसाद ग्रहण करना, प्रभु के द्वारा बहुत कम आहार ग्रहण करने से ब्राह्मण को दु:ख—

एइ मात्र गोविन्द कैल अङ्गीकार।
माथाय घा मारे विप्र, करे हाहाकार॥ ५६ ॥

५५-५६। प० अनु०—उस दिन एक ब्राह्मण ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया, श्रीमन्महाप्रभु के निर्देशानुसार श्रीगोविन्द ने उन ब्राह्मण के द्वारा लाये गये जगन्नाथदेव के प्रसाद का एक चौथाई चावल तथा पाँच गण्डे का ही व्यञ्जन ग्रहण किया, जिसे देखकर वह ब्राह्मण हा-हाकार करते हुए अपने मस्तक पर आघात करने लगा।

प्रभु के द्वारा आधा भोजन स्वीकार, गोविन्द को उनके आधे अवशिष्ट की प्राप्ति, भक्तों के द्वारा अन्न और जल का त्याग—

सेइ भात-व्यञ्जन प्रभु अर्द्धेक खाइल।
जे किछु रहिल, ताहा गोविन्द पाइल॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द द्वारा

लाये गये चावल तथा व्यञ्जनों में से आधा ग्रहण किया एवं जो महाप्रसाद बच गया, उसे श्रीगोविन्द ने पा लिया।

अर्द्धाशन करेन प्रभु, गोविन्द अर्द्धाशन।
सब भक्तगण तबे छाड़िल भोजन॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०-जब सब भक्तों ने देखा कि श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीगोविन्द प्रभु ने अपने भोजन का आधा अंश लेना प्रारम्भ कर दिया है, तब समस्त भक्तों ने भी सम्पूर्ण भोजन करना छोड़ दिया।

गोविन्द और काशीश्वर को अन्यत्र भिक्षा-ग्रहण करने का आदेश—

गोविन्द-काशीश्वरे प्रभु कैला आज्ञापन।
''दुँहे अन्यत्र मागि' कर उदर भरण॥'' ५९ ॥

५९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द और श्रीकाशीश्वर पण्डित को आज्ञा प्रदान करते हुए कहा,—''आप दोनों किसी अन्य स्थान पर भिक्षा माँगकर अपने उदर का भरण कर लिया करो।''

प्रभु के द्वारा भोजन को कम कर देने के फलस्वरूप भक्तों के दु:ख को सुनकर रामचन्द्र का प्रभु के निकट आगमन—

एइरूप महादु:खे दिन कत गेल।
शुनि' रामचन्द्रपुरी प्रभु-पाश आइल॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—इस प्रकार सभी भक्तों के कुछ दिन अत्यन्त दु:ख में व्यतीत हुए, इस बात को सुनकर रामचन्द्र पुरी श्रीमन्महाप्रभु के पास आये।

मानद आचार्यरूपी प्रभु के द्वारा सदैव रामचन्द्र को सम्मान-प्रदान—

प्रणाम करि' प्रभु कैला चरण-वन्दन।
प्रभुरे कहये किछु हासिया वचन॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी को प्रणाम करके उनके चरणों की वन्दना की। रामचन्द्र पुरी ने मुस्कराते हुए श्रीमन्महाप्रभु से कहा,—।

प्रभु को यति धर्म की शिक्षा प्रदान—

''सन्यासीर धर्म नहे 'इन्द्रिय-तर्पण'।
जैछे तैछे करे मात्र उदर भरण॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—''सन्यासी का धर्म इन्द्रिय-तर्पण करना नहीं है, वह तो जिस किसी प्रकार से केवल मात्र अपने उदर का भरण करता है।

शुष्क वैराग्य को सन्यास अर्थात् भक्ति के विरुद्ध बतलाकर केवल मुख से ही प्रचार—

तोमारे क्षीण देखि, शुनि,—कर अर्द्धाशन।
एइ 'शुष्क-वैराग्य' नहे सन्यासीर 'धर्म'॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—''मैं तुम्हें बहुत दुबला-पतला देख रहा हूँ तथा मैंने सुना है कि तुम आजकल आधा भोजन ग्रहण करते हो। सन्यासी का धर्म ऐसा शुष्क-वैराग्य करना तो नहीं है।

सभी अवस्थाओं में युक्तवैराग्य से ही सिद्धि की प्राप्ति—

यथायोग्य उदर भरे, ना करे 'विषय' भोग।
सन्यासीर तबे सिद्ध हय ज्ञान योग॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—''जितनी आवश्यकता हो, उतना ग्रहण करके उदर को भरने तथा विषयों का भोग नहीं करने से ही सन्यासी का ज्ञानयोग सिद्ध होता है।

सर्वत्र युक्तवैराग्य से युक्त भक्तियोग से ही अनर्थों का नाश—भगवद्-गीता (६.१६-१७) में—

नात्यश्नतोऽपि योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥ ६५ ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु:खहा॥'' ६६॥

अमृतप्रवाह भाष्य

६५-६६। ''हे अर्जुन, अधिक भोजन करने से 'योग' नहीं होता; बिल्कुल भोजन नहीं करने से भी 'योग' नहीं होता एवं अधिक नींद अथवा बिल्कुल नींद नहीं करने पर भी 'योग' नहीं होता। आहार-विहार आदि समस्त

कर्मों में चेष्टा, नींद, जागरण आदि के उपयुक्त रूप में नियमित होने पर दु:खनाशक 'योग' होता है।''

अनुभाष्य

६५। हे अर्जुन, अत्यश्नत: (अत्यधिक-भोजन-शीलस्य) तु योग: न अस्ति, न च एकान्तम् अनश्नत: (स्वल्पाहारनिरतस्य निराहारिण:), न च अतिस्वप्न-शीलस्य (अधिकनिद्राशीलस्य) न च जाग्रत: (अनिद्रस्य) एव योग: (अस्ति)।

अनुभाष्य

६६। युक्ताहारविहारस्य (परिमित भोजन-शयनादिपरस्य) कर्मसु (साधनानुष्ठानादिषु) युक्तचेष्टस्य (परिमितारम्भपरस्य) युक्तस्वप्नावबोधस्य (परिमितनिद्रा-जागरणनिष्ठस्य) दु:खहा (सर्वदु:ख-निवृत्तिहेतु:) योग: भवति।

अमानी-धर्म के आदर्श प्रभु की दैन्य-उक्ति—

प्रभु कहे,—''अज्ञ बालक मुइ, 'शिष्य' तोमार।
मोरे शिक्षा देह',—एइ भाग्य आमार॥'' ६७ ॥

६७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैं अबोध बालक हूँ, आपका शिष्य हूँ। यह मेरा सौभाग्य ही है कि आप मुझे शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।''

प्रभु के भक्तों के द्वारा आधे भोजन को ग्रहण करने के विषय में सुनना—

एत शुनि' रामचन्द्रपुरी उठि' गेला।
भक्तगण अर्द्धाशन करे,—गोसाञि शुनिला॥ ६८॥

६८। प० अनु०—इतना सुनकर रामचन्द्रपुरी उठ खड़े हुए तथा उन्होंने सुना कि भक्तगण भी अपने भोजन का आधा अंश ही ग्रहण कर रहे हैं।

एकदिन परमानन्दपुरी को प्रमुख बनाकर आये भक्तों के द्वारा प्रभु को परिमित भोजन को ग्रहण करने का अनुरोध और उनके निकट रामचन्द्रपुरी के स्वभाव और व्यवहार की निन्दा—

आर दिन भक्तगण-सह परमानन्दपुरी।
प्रभु-पाशे निवेदिला दैन्य-विनय करि'॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—अन्य एकदिन श्रीपरमानन्द पुरी भक्तों के साथ श्रीमन्महाप्रभु के पास आये तथा दैन्य-विनय करके उनसे निवेदन करने लगे—।

''रामचन्द्रपुरी हय निन्दुक-स्वभाव।
तार बोले अन्न छाड़ि' किबा हबे लाभ ?? ७० ॥

७०। प० अनु०—''रामचन्द्र पुरी निन्दुक-स्वभाव वाले व्यक्ति हैं उनके कहने पर भोजन को छोड़ने से क्या लाभ होगा?

पुरीर स्वभाव,—यथेष्ठ आहार कराञा।
जे ना खाय, तारे खाओयाय यतन करिया॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—''रामचन्द्र पुरी का स्वभाव है कि वे भक्तों को यथेष्ट भोजन कराते हैं तथा जो नहीं भी खाना चाहता, उसे बहुत बलपूर्वक खिलाते हैं।

खाओयाञा पुन: तारे करये निन्दन।
'एत अन्न खाओ,—तोमार कत आछे धन?? ७२॥

७२। प० अनु०—''खिलाने के बाद पुन: उनकी निन्दा करते हुए उनसे कहते हैं—'तुम इतना भोजन करते हो, तुम्हारे पास कितना धन है?

सन्यासीके एत खाओयाञा कर धर्म नाश!
अतएव जानिनु,—तोमार किछु नाहि 'भास'॥ ७३॥

७३। प० अनु०—''तुम सन्यासियों को इतना खिला करके उनके धर्म को नष्ट करते हो! अतएव मैं जान गया हूँ कि तुम्हें धर्म-अधर्म का आभास तक भी नहीं है।

के कैछे व्यवहारे, केबा कैछे खाय।
एइ अनुसन्धान तेंहो करय सदाय॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—''कौन किस प्रकार का व्यवहार करता है तथा कौन क्या खाता है, रामचन्द्र पुरी सदैव इसी का अनुसन्धान करने में ही व्यस्त रहते हैं।

हिंसा के कारण दूसरों की कमियों को ढूँढ़ना—शास्त्र-विरुद्ध और निषिद्ध—

शास्त्रे जेइ दुइ धर्म कैराछे वर्जन।
सेइ कर्म निरन्तर इँहार करण॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—''शास्त्रों में जिन दो प्रकार के कर्मों को करने हेतु निषेध किया गया है, रामचन्द्र पुरी का कार्य निरन्तर उन्हीं दोनों कर्मों को करना है।

श्रीमद्भागवत (११.२८.१) में—

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च॥ ७६ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

७६। ''प्रकृति और पुरुष के मिलन में विश्व को एक-स्वरूप देखकर अन्यों के स्वभाव और कर्म की कभी भी प्रशंसा अथवा निन्दा मत करना।

अनुभाष्य

७६। श्रीउद्धव के समक्ष श्रीभगवान् शुद्ध ज्ञानी के आचरण की विधि का वर्णन कर रहे हैं,—प्रकृत्या पुरुषेण च सह एकात्मकं विश्वं पश्यन् परस्वभावकर्माणि (परेषां हिंसार्थं स्वभावान् कर्माणि गुणकृत-नैसर्गिकवृत्याद्य-नुष्ठानानि) न प्रंशसेत्, न गर्हयेत् (न निन्देत्)

पहले बतलायी गयी प्रशंसा की विधि की अपेक्षा बाद में बतलायी गयी निन्दा-निषेध रूपी विधि ही शास्त्र का उद्देश्य—

तार मध्ये पूर्वविधि 'प्रशंसा' छाड़िया।
परविधि 'निन्दा' करे 'बलिष्ठ' जानिया॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—''उन दोनों निषिद्ध कार्यों में से पूर्वविधि अर्थात् पहले बतलायी गयी विधि 'प्रशंसा' को छोड़कर परविधि अर्थात् बाद में बतलायी गयी विधि 'निन्दा' को ही बलवान् जानकर उसी में लिप्त रहते हैं।

अनुभाष्य

७७। 'परस्वभाव' श्लोक में पहले बतलायी गयी विधि ''प्रशंसा मत करना'' एवं बाद में बतलायी गयी विधि ''निन्दा मत करना'' है। पहले बतलायी गयी विधि की अपेक्षा बाद में बतलायी गयी विधि के बलवान् होने पर यही समझा जाता है कि लोगों की प्रशंसा करना उतना दोषपूर्ण नहीं है; परन्तु निन्दा निश्चित रूप से नहीं करनी चाहिए। किन्तु यहाँ रामचन्द्र ने पहले बतलायी गयी विधि ''अन्यों की प्रशंसा निषेध'' का पालन किया है; बाद में बतलायी गयी विधि ''अन्यों की निन्दा निषेध'' का पालन नहीं किया। अतएव रामचन्द्र ने बाद में बतलायी गयी विधि के अनुसार कार्य नहीं किया। इस श्लोक का अर्थ श्लेष-उक्ति परक कहकर व्याख्यात हो सकता है।

बाद में बतलायी गयी विधि का ही अधिक गुरुत्व—(न्याय-वचन)—

पूर्वपरयोर्मध्ये परविधिर्बलवान्॥ ७८ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

७८। ''पूर्व और पर विधि में से परविधि ही बलवान् है।

अनुभाष्य

७८। पूर्वपरयोः (प्राक्-परयोर्विधयोः) मध्ये परविधिः (उत्तर-निर्देशः) बलवान्—पूर्वविधिं त्यक्त्वा परविधिः ग्राह्यः इत्यर्थः।

रामचन्द्रपुरी की मक्षिका (मक्खी) जैसी वृत्ति—

जाँहा गुण शत आछे, ताहा ना करे ग्रहण।
गुणमध्ये छले करे दोष-आरोपण॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—''जहाँ पर एक सौ गुण हैं, वे उन्हें ग्रहण नहीं करते, बल्कि गुणों में भी छलपूर्वक दोष का आरोप करते हैं।

रामचन्द्र के व्यवहार और स्वभाव से भक्तों को अत्यन्त दुःख—

इँहार स्वभाव इँहा कहिते ना जुयाय।
तथापि कहिये किछु मर्म-दुःख पाय॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—''रामचन्द्र पुरी का स्वभाव ही ऐसा है, उनके स्वभाव के विषय में कुछ भी कहना

अच्छा नहीं लगता, तब भी मैं हृदय में कुछ दु:ख पाने के कारण ही यह सब कह रहा हूँ।

अनुभाष्य

८०। पाय,—पाकर।

अष्टम परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

रामचन्द्र के वचनों को तुच्छ मानकर प्रभु को भोजन ग्रहण करने का अनुरोध—

इँहार वचने केने अन्न त्याग कर?
पूर्ववत् निमन्त्रण मान',—सबार बोल धर॥''८१॥

८१। प० अनु०—''आप रामचन्द्रपुरी के वचनों पर ध्यान देकर भोजन को क्यों त्याग रहे हैं? आप हम सबकी बात मानकर पहले की ही भाँति निमन्त्रण स्वीकार कीजिए।''

जगद्गुरु लोकशिक्षक प्रभु के द्वारा सन्यासी के धर्म की विधि का निर्णय; विधि के अतीत ईश्वर और अधीन बद्धजीव में समान बुद्धि करने वाला ही 'प्राकृत सहजिया'; पुन: स्वयं ईश्वर होने पर भी स्वयं को वैराग्य-बाध्य जीव मानकर सन्यासी वेषी आचार्य को निरपेक्षता की शिक्षा-प्रदान—

प्रभु कहे,—''सबे केने पुरीरे कर रोष?
'सहज' धर्म कहे तेंहो, ताँर किबा दोष?? ८२॥

८२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''आप सभी रामचन्द्र पुरी के प्रति रोष क्यों कर रहे हैं? वे तो सहज धर्म के विषय में ही बतलाते हैं, इसमें उनका क्या दोष है?

यति हञा जिह्वा-लाम्पट्य,—अत्यन्त अन्याय।
यतिर धर्म,—प्राण राखिते आहार मात्र खाय॥''८३॥

८३। प० अनु०—''सन्यासी होकर जिह्वा के लिये इधर-उधर दौड़ना तो अत्यन्त अन्याय पूर्ण कार्य है। वास्तव में सन्यासी तो केवल प्राण धारण करने के उद्देश्य से ही आहार करता है।''

भक्तों के आग्रह से प्रभु के द्वारा अर्ध भोजन ग्रहण करना स्वीकार—

तबे सबे मेलि' प्रभुरे बहु यत्न कैला।
सबार आग्रहे प्रभु अर्द्धेक राखिला॥ ८४॥

८४। प० अनु०— तब सभी भक्तों ने मिलकर श्रीमन्महाप्रभु को भोजन हेतु बहुत अधिक प्रार्थना की, सभी भक्तों के आग्रह पर श्रीमन्महाप्रभु ने एक चौथाई के स्थान पर आधा भोजन करना स्वीकार किया।

दुइपण कौड़ि लागे प्रभुर निमन्त्रणे।
कभु दुइजन भोक्ता, कभु तिनजने॥ ८५॥

८५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करने पर दौ पण कौड़ी लगती थी। कभी दो भक्त तो कभी तीन भक्त मिलकर उस प्रसाद का सेवन करते थे।

अभक्त वर्ण ब्राह्मण और पंक्ति-ब्राह्मण के घर में प्रभु के भिक्षा को ग्रहण करने की रीति का वैशिष्ट्य—

अभोज्यान्न विप्र यदि करेन निमन्त्रण।
प्रसाद-मूल्य लइते लागे कौड़ि दुइपण॥ ८६॥

८६। प० अनु०—यदि ऐसा कोई ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करता जिसके हाथ का बना हुआ भोजन स्वीकार नहीं किया जा सकता, तो उसको श्रीमन्महाप्रभु के लिये जगन्नाथ देव का प्रसाद लाने में दो पण कौड़ी लगती थी।

अमृतप्रवाह भाष्य

८६। अभोज्यान्न विप्र,—जिस ब्राह्मण के घर में अन्न-भोजन नहीं खाया जाता।

भोज्यान्न विप्र यदि निमन्त्रण करे।
किछु 'प्रसाद' आने, किछु पाक करे घरे॥ ८७॥

८७। प० अनु०—यदि ऐसा कोई ब्राह्मण श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करता जिसके हाथ का बना भोजन स्वीकार किया जा सकता है, तो वह श्रीमन्महाप्रभु के लिये कुछ तो जगन्नाथदेव का प्रसाद ले आता तथा

कुछ स्वयं अपने घर पर पका करके देता।

गदाधर, भगवान् और सार्वभौम के घर में भक्ताधीन भगवान् का भोजन—

पण्डित-गोसाञि, भगवान्-आचार्य, सार्वभौम।
निमन्त्रणेर दिने यदि करे निमन्त्रण॥ ८८ ॥
ताँ-सबार इच्छाय प्रभु करेन भोजन।
ताँहा प्रभुर स्वातन्त्र्य नाइ, जैछे ताँर मन॥ ८९ ॥

८८-८९। प० अनु०—श्रीगदाधर पण्डित, श्रीभगवान् आचार्य तथा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य—यदि इन तीनों में से कोई भी श्रीमन्महाप्रभु को अपने वास स्थान पर निमन्त्रण करने के दिन निमन्त्रण देते, तो श्रीमन्महाप्रभु इन सब भक्तों की इच्छानुसार ही भोजन करते। श्रीमन्महाप्रभु वैसा ही करते, जैसा इन भक्तों का मन होता, उसमें उनकी अपनी कोई भी स्वतन्त्रता नहीं थी।

प्रभु के अवतार का उद्देश्य और व्यवहार रीति—

भक्तगणे सुख दिते प्रभुर 'अवतार'।
जाँहा जैछे योग्य, ताँहा करेन व्यवहार॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का अवतार भक्तों को सुख देने के लिये ही हुआ है, जो भक्त जिस प्रकार के व्यवहार के योग्य है, श्रीमन्महाप्रभु उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते।

प्रभु के द्वारा कभी तो प्राकृत-जीव की भाँति आचरण द्वारा वञ्चना, कभी परमेश्वर के रूप में पूर्ण कृपा—

कभु लौकिक रीति,—जेन 'इतर' जन।
कभु स्वतन्त्र, करेन 'ऐश्वर्य' प्रकटन॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु कभी तो साधारण लोगों की भाँति लौकिक रीति का पालन करते तथा कभी स्वतन्त्र परमेश्वर की भाँति अपना ऐश्वर्य प्रकट करते थे।

कभी तो रामचन्द्रपुरी को लौकिकी मर्यादा-प्रदान, कभी तृण की भाँति उपेक्षा—

कभु रामचन्द्र पुरीर हय भृत्य प्राय।
कभु तारे नाहि माने, देखे तृण-प्राय॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु कभी तो रामचन्द्रपुरी के दास जैसा व्यवहार करते तथा कभी उन्हें लेशमात्र भी स्वीकार नहीं करते, साथ ही उन्हें तिनके के समान मानते।

अचिन्त्य ईश्वर के समस्त आचरण ही नित्य, मङ्गलमय और सुन्दर—

ईश्वर-चरित्र प्रभुर—बुद्धिर अगोचर।
जबे जेइ करेन, सेइ सब—मनोहर॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—भगवान् श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा प्रकटित चरित्र बुद्धि के अगोचर है, वे जब जो करते हैं, वह सब मनोहर होता है।

भगवान् के आश्रय को परित्याग करके रामचन्द्र की तीर्थ-यात्रा—

एइमत रामचन्द्रपुरी नीलाचले।
दिन कत रहि' गेला 'तीर्थ' करिबारे॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—इस प्रकार रामचन्द्र पुरी कुछ दिनों तक नीलाचल में रहने के पश्चात् तीर्थ करने के लिये चले गये।

उससे भक्तों के हृदय का भार कम और बन्द हुई साँस का खुलना —

तेंहो गेले प्रभुर गण हैल हरषित।
शिरेर पाथर जेन पड़िल आचम्बित॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—रामचन्द्र पुरी के जगन्नाथ पुरी से चले जाने पर श्रीमन्महाप्रभु के समस्त भक्त परम प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनके सिर पर रखा कोई भारी पत्थर अचानक नीचे गिर पड़ा हो।

अमृतप्रवाह भाष्य

९५। शिरेर पाथर,—सिर पर जो पत्थर का बोझा था, उसके अचानक गिर जाने से जिस प्रकार सिर हल्का

हो जाता है, वैसा हुआ।

अष्टम परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

लौकिक शुष्क वैराग्य की विधि को त्याग करके गौरगतप्राण भक्तों के द्वारा अपनी समस्त वस्तुओं के साथ प्रभु को सन्तुष्ट करना—

स्वच्छन्दे निमन्त्रण, प्रभुर कीर्त्तन-नर्त्तन।
स्वच्छन्दे करेन सबे प्रसाद-भोजन॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—अब भक्त श्रीमन्महाप्रभु को स्वच्छन्द रूप से निमन्त्रण करते, श्रीमन्महाप्रभु स्वच्छन्द रूप से कीर्त्तन तथा नृत्य करते एवं समस्त भक्त स्वच्छन्द रूप से प्रसाद ग्रहण करते।

गुरु की अवज्ञा के कारण गुरु के द्वारा उपेक्षा के फलस्वरूप जीवों का विष्णु-विरोध अथवा पाषण्डी बनना—

गुरु उपेक्षा कैले, ऐछे फल हय।
क्रमे ईश्वर-पर्यन्त अपराधे ठेकय॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—गुरु के द्वारा उपेक्षा किये जाने पर ऐसा ही फल हुआ करता है, क्रमशः वही अपराध ईश्वर पर्यन्त पहुँच जाता है।

अपराधी रामचन्द्र के व्यवहार के द्वारा प्रभु की लोकशिक्षा—

यद्यपि गुरु बुद्धये प्रभु तार दोष ना लइल।
तार फल द्वारा लोके शिक्षा कराइल॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु ने रामचन्द्र पुरी के प्रति गुरु बुद्धि रखने के कारण उनका कोई दोष नहीं लिया, किन्तु उन्होंने रामचन्द्र पुरी को प्राप्त फल के द्वारा लोगों को शिक्षा प्रदान की।

श्रवणपुट (कानों) के द्वारा चैतन्यचरितामृत के पान के फल से हृदय-कर्ण को रसायन की प्राप्ति—

चैतन्यचरित्र—जेन अमृतेर पूर।
शुनिते श्रवणे मने लागये मधुर॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०— श्रीचैतन्य महाप्रभु का चरित्र अमृत के सार के समान है, उसका श्रवण करने से वह कानों तथा मन को अत्यन्त मधुर लगता है।

चैतन्य चरित्र के श्रवण से ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

चैतन्यचरित्र लिखि, शुन एकमने।
अनायासे पाबे प्रेम श्रीकृष्ण चरणे॥ १०० ॥

१००। प० अनु०— मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु के जिन चरित्रों को लिख रहा हूँ, आप एकाग्रचित्त से उसका श्रवण करो, आपको अनायास ही श्रीकृष्ण के चरणों के प्रति प्रेम की प्राप्ति होगी।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे भिक्षा सङ्कोचो नाम अष्टमः परिच्छेदः।

❋❋❋

नवम परिच्छेद

कथासार—इस परिच्छेद में भवानन्द राय के पुत्र गोपीनाथ पट्टनायक के द्वारा राजा के धन को नष्ट करने के फल से (राजा के बड़े पुत्र, युवराज) बड़-जाना की अकृपा तथा उस कारण उन्हें पहले चाङ्ग (मृत्यु दण्ड देने की प्रक्रिया के लिये व्यवहार किये जाने वाला मञ्च,-जिसके नीचे वाले भाग में तीखी धार वाली तलवारें रखी जाती हैं। दण्डित व्यक्ति को मञ्च के ऊपर से तलवारों के ऊपर फैंककर उसके प्राणों का नाश किया जाता है। उस) पर चढ़ाना तथा बाद में प्रभु के द्वारा गुप्त रूप से की गयी कृपा से उनके उद्धार और उन्नति का विषय वर्णित हुआ है। (अ: प्र: भा:)

गौरभक्तों की कृपा से अधम विषयी व्यक्तियों को भी कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

अगण्यधन्यचैतन्यगणानां प्रेमवन्यया।
निन्येऽधन्यजनस्वान्तमरुं शश्वदनूपताम्॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। असंख्य धन्य चैतन्य भक्तों की प्रेम रूपी बाढ़ के द्वारा अधन्य व्यक्तियों के अन्त:करण रूपी रेगिस्तान भी जलमय हो गये थे।

अनुभाष्य

१। अगण्यधन्य-चैतन्यगणानां (अगण्या: गणयितुम-शक्या: असंख्या: धन्या: लब्धसिद्धयश्च ये चैतन्यगणा: चैतन्यपादाश्रिता: भक्ता: तेषां) प्रेमवन्यया (प्रेमरूपनदी-गर्भातिरिक्तजलप्रवाहेण) अधन्यजनस्वान्तमरुम् (अधन्यानाम् अधमानां जनानां भक्तिरहितानां स्वान्तं अन्त:करणरूपं मरुं निर्जल प्रदेशं) शश्वत् (निरन्तरं) अनूपतां (जलप्रायतां) निन्ये (प्रापित:)।

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य दयामय।
जय जय नित्यानन्द करुण-हृदय॥ २ ॥

२। प० अनु०—दयामय श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। करुणा से परिपूर्ण हृदय वाले श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो, जय हो।

जयाद्वैताचार्य जय जय दयामय।
जय गौरभक्तगण सब रसमय॥ ३ ॥

३। प० अनु०—दयामय श्रीअद्वैताचार्य प्रभु की जय हो, जय हो। आनन्द से परिपूर्ण समस्त गौरभक्तों की जय हो।

भक्तों के साथ प्रभु की नीलाचल-लीला—

एइमत महाप्रभु भक्तगण सङ्गे।
नीलाचले वास करेन कृष्णप्रेमरङ्गे॥ ४ ॥

४। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु भक्तों के साथ नीलाचल में कृष्णप्रेम की तरङ्गों में डूबे रहते थे।

प्रभु के अन्तर और बाहर कृष्ण-विरह-प्रेम—

अन्तरे-बाहिरे कृष्णविरह-तरङ्ग।
नाना-भावे व्याकुल प्रभुर मन आर अङ्ग॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के भीतर एवं बाहर कृष्ण-विरह की तरङ्गें उठती रहती थीं, जिसके कारण श्रीमन्महाप्रभु का मन तथा उनके अङ्ग-अङ्ग अनेक प्रकार के भावों में व्याकुल रहते थे।

दिन के समय नृत्य, कीर्त्तन और दर्शन, रात्रि के समय स्वरूप और राय के साथ रसास्वादन—

दिने नृत्य-कीर्त्तन, जगन्नाथ-दरशन।
रात्र्ये राय-स्वरूप सने रस-आस्वादन॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु दिन के समय तो नृत्य, कीर्त्तन और भगवान् श्रीजगन्नाथ का दर्शन करते थे तथा रात्रि के समय वे श्रीरामानन्द राय और श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी के साथ रस का आस्वादन करते थे।

प्रभु के दर्शक मात्र का ही उद्धार और कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

त्रिजगतेर लोक आसि' करेन दरशन।
जेइ देखे, सेइ पाय कृष्णप्रेम-धन॥ ७ ॥

७। प० अनु०—त्रिभुवन के लोग आकर श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करते तथा जो कोई भी उनके दर्शन करता, उसी को कृष्णप्रेमधन की प्राप्ति हो जाती।

मनुष्य के वेष में अनन्त ब्रह्माण्डवासियों के द्वारा प्रभु का दर्शन—

मनुष्येर वेशे देव-गन्धर्व-किन्नर।
सप्तपातालेर जत दैत्य विषधर॥ ८ ॥

८। प० अनु०—उच्च लोकों से देवता-गन्धर्व- किन्नर तथा पाताल आदि सात निम्न लोकों के समस्त दैत्य तथा नागलोक के नाग इत्यादि मनुष्य के वेश में आकर श्रीमन्महाप्रभु का दर्शन करते।

अनुभाष्य

८। विषधर,—नागलोक।

सप्तद्वीपे नवखण्डे वैसे जत जन।
नाना-वेशे आसि' करे प्रभुर दरशन॥ ९ ॥

९। प० अनु०—सात द्वीपों तथा नौ खण्डों में जितने भी लोग रहते हैं, वे भी अनेकानेक वेश धारण करके श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने आते।

अनुभाष्य

९। अन्त्य-लीला के द्वितीय परिच्छेद की १० वीं संख्या द्रष्टव्य।

वैष्णवों के द्वारा प्रभु का दर्शन—

प्रह्लाद, बलि, व्यास, शुक आदि मुनिगण।
आसि' प्रभु देखि' प्रेमे हय अचेतन॥ १० ॥

१०। प० अनु०—श्रीप्रह्लाद महाराज, श्रीबलि महाराज, श्रीव्यासदेव, श्रीशुकदेव गोस्वामी आदि मुनिगण आकर श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करते तथा प्रेम में मूर्च्छित होकर गिर पड़ते।

अनुभाष्य

१०। प्रह्लाद,—किसी-किसी ऐतिहासिक-मत के अनुसार ये त्रेतायुग में पंजाब प्रदेश की राजधानी मुलतान में कश्यप-वंशीय राजा हिरण्यकशिपु के वैष्णव-पुत्र के रूप में आविर्भूत हुए थे। पिता हिरण्यकशिपु के विष्णु-विद्वेष के फल से पुत्र प्रह्लाद को अनेक प्रकार के कष्ट सहन करने पड़े थे, बाद में भगवान् नृसिंहदेव ने आविर्भूत होकर वैष्णव-विद्वेषी असुर सम्राट् का वध किया था।

बलि,—प्रह्लाद के पुत्र विरोचन के पुत्र ही बलि हैं; भगवान् ने वामन के रूप में अवतीर्ण होकर तीन पग भूमि की प्रार्थना के छल से आत्मसमर्पण करने वाले बलि पर कृपा की थी। इनके सौ पुत्रों में से बाण—सबसे ज्येष्ठ (बड़े) थे।

व्यास,—पराशर के पुत्र, सात्यवतेय अथवा कृष्ण-द्वैपायन बादरायण-मुनि; ये वेदों का विभाग करके वेद व्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए एवं इन्होंने अठारह महापुराण एवं बह्मसूत्र और उसके भाष्य श्रीमद्भागवत ग्रन्थ का प्रणयन किया; ये बह्म-सम्प्रदाय के अन्तर्गत श्रीनारद ऋषि के शिष्य थे।

शुक,—व्यास के पुत्र, आकुमार ब्रह्मज्ञानी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी की लीला करके इन्होंने एकान्तिक रूप से कृष्ण की 'कीर्त्तनाख्या' भक्ति का आश्रय किया।

घर के अन्दर बैठे प्रभु के दर्शनों के लिये बाहर खड़े लोगों का कोलाहल, प्रभु के द्वारा दर्शन प्रदान, सभी को कृष्ण-कीर्त्तन करने का आदेश—

बाहिरे फुकारे लोक, दर्शन ना पाञा।
''कृष्ण कह'' बलेन प्रभु बाहिरे आसिया॥ ११ ॥

११। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने के

लिये आये भक्त उनके दर्शन नहीं पाकर बाहर से उन्हें पुकारते तथा श्रीमन्महाप्रभु बाहर आकर उन्हें कहते कि कृष्णनाम का उच्चारण करो।

प्रभु के दर्शनों से सभी में कृष्णप्रेम–

प्रभुर दर्शने सब लोक प्रेमे भासे।
एइमत जाय प्रभुर रात्रि-दिवसे॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करके समस्त लोग प्रेम में निमग्न हो जाते। श्रीमन्महाप्रभु के रात-दिन इसी प्रकार व्यतीत होते।

प्रभु को प्रतापरुद्र के पुत्र के द्वारा भवानन्द के पुत्र गोपीनाथ को मृत्यु-दण्ड प्रदान करने के संवाद के विषय में बतलाना–

एकदिन लोक आसि' प्रभुरे निवेदिल।
''गोपीनाथेरे 'बड़ जाना' चाङ्गे चड़ाइल॥ १३ ॥

प्रभु की कृपा के बिना रक्षा प्राप्त करने के उपाय का अभाव–

तले खड़ग पाति' तारे उपरे डारिबे।
प्रभु रक्षा करेन जबे, तबे निस्तारिबे॥ १४ ॥

१३-१४। प० अनु०—एकदिन कुछ लोगों ने आकर श्रीमन्महाप्रभु को बतलाया– ''महाराज प्रतापरुद्र के बड़े पुत्र ने गोपीनाथ पट्टनायक को चाङ्ग अर्थात् एक मञ्च पर चढ़ा दिया है तथा उसने नीचे खड्गों (तलवारों) को बिछा दिया है। वह युवराज गोपीनाथ को तलवारों के ऊपर डाल देगा। हे श्रीमन्महाप्रभु! आप यदि गोपीनाथ की रक्षा करें, तभी वह बच सकता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१३। बड़ जाना,—उड़ीसा के महाराज के बड़े पुत्र अर्थात् युवराज। चाङ्ग,—हत्या करने की प्रक्रिया के लिये व्यवहार किये जाने वाला मञ्च,—जिसके नीचे वाले भाग में तीखी धार वाली तलवारें रखी जाती हैं। दण्डित व्यक्ति को मञ्च के ऊपर से तलवारों के ऊपर फैंककर उसके प्राणों का नाश किया जाता है।

अनुभाष्य

१४। डारिबे,—फैंक देंगे।

सेवक की रक्षा के लिये प्रभु की कृपा की याचना–

सवंशे तोमार सेवक—भवानन्द-राय।
ताँर पुत्र—तोमार सेवके राखिते जुयाय॥'' १५ ॥

१५। प० अनु०—''श्रीभवानन्द राय तो अपने सम्पूर्ण वंश सहित आपके सेवक हैं। श्रीगोपीनाथ उन्हीं श्रीभवानन्द राय के पुत्र हैं। आपके लिये अपने भक्त की रक्षा करना ही उपयुक्त है।''

प्रभु के प्रश्न के उत्तर में संवाद दाता के द्वारा गोपीनाथ के मृत्यु-दण्ड के वृत्तान्त का वर्णन–

प्रभु कहे,—''राजा केने करये ताड़न?''
तबे सेइ लोक कहे सब विवरण॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा,—''राजा गोपीनाथ को दण्ड क्यों दे रहा है?'' तब वे व्यक्ति सब वृत्तान्त सुनाने लगे—।

''गोपीनाथ-पट्टनायक—रामानन्द-भाइ।
सर्वकाल हय सेइ 'राजविषयी' ताइ॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक श्रीरामानन्द राय के भाई हैं, इसी कारण वे सब समय राजा की सम्पत्ति की रक्षा करने वाले राज कर्मचारी का कार्य करते हैं।

अनुभाष्य

१७। राजविषयी,—राजा की सम्पत्ति के रक्षक।

'मालजाठ्या-दण्डपाटे' तार अधिकार।
साधि' पाड़ि' आनि' द्रव्य दिल राजद्वार॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—''राजा के द्वारा गोपीनाथ पट्टनायक को मालजाठ्या-दण्डपाट नामक स्थान पर अधिकार प्राप्त है, वे वहीं से राजस्व एकत्रित करके राजा के निकट जमा कराते हैं।

दुइलक्ष काहन तार ठाञि बाकी हइल।
दुइलक्ष काहन कौड़ि राजा त' मागिल॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक के द्वारा दो लाख काहन कौड़ी देना बाकी रह गया। राजा ने गोपीनाथ पट्टनायक से वही दो लाख काहन कौड़ी माँगी।

अमृतप्रवाह भाष्य

१८-१९। मालजाठ्या दण्डपाट,—मालजाठ्या नामक राज्य के तहसीलदार गोपीनाथ पट्टनायक ने जितना पैसा राजा को दिया था, उसमें दो लाख काहन कौड़ी बाकी रह गयी।

तेंह कहे,—'स्थूलद्रव्य नाहि जे दिब।
क्रमे-क्रमे बेचि' किनि' द्रव्य भरिब॥ २० ॥

२०। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक ने राजा से कहा,—'अभी मेरे पास आपको देने के लिये नकद राशि तो है नहीं। मैं क्रमशः क्रय-विक्रय इत्यादि के द्वारा धन एकत्रित करके आपका पैसा चुका दूँगा।'

अनुभाष्य

२०। स्थूलद्रव्य,—मूल्यवान द्रव्य अथवा मोटा पैसा अर्थात् जो एक बार में देने से ही सब चुक जाता है, ऐसा द्रव्य; द्रव्य भरिब,—राजा के द्वारा प्राप्य द्रविण अर्थात् पैसा चुकाऊँगा।

घोड़ा दश-बार हय, लह' मूल्य करि'।'
एत बलि' घोड़ा आने राजद्वारे धरि'॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—''गोपीनाथ ने राजा से यह भी कहा, 'यदि नहीं तो फिर मेरे पास दस-बारह घोड़े हैं, आप उनका मूल्य लगाकर उन्हें खरीद लीजिए।' इतना कहने के पश्चात् गोपीनाथ पट्टनायक घोड़ों को ले आये तथा उन्हें राज द्वार पर बाँध दिया।

एक राजपुत्र घोड़ार मूल्य भाल जाने।
तारे पाठाइल राजा पात्र-मित्र-सने॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—''राजा का एक पुत्र घोड़ों के मूल्य आदि को भली-भाँति जानता था, इसलिए राजा ने अपने उसी पुत्र को अपने मंत्रियों तथा मित्रों के साथ घोड़ों का मूल्य करने के लिये भेजा।

सेइ राजपुत्र मूल्य करे घाटाञा।
गोपीनाथेर क्रोध हैल मूल्य शुनिया॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—''राजा के पुत्र ने घोड़ों का बहुत कम मूल्य बताया, उसके मुख से ऐसी बात सुनकर गोपीनाथ पट्टनायक को बहुत क्रोध आया।

अनुभाष्य

२३। घाटाञा,—कम करके।

सेइ राजपुत्रेर स्वभाव,—ग्रीवा फिराय।
ऊर्द्धमुखे बार-बार इति-उति चाय॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—''राजा के उस पुत्र का अपने कंठ को घुमाने का स्वभाव था, वह अपने मुख को ऊपर करके बारम्बार इधर-उधर देखता था।

तारे निन्दा करि' कहे सगर्व वचने।
राजा कृपा करे तारे, भय नाहि माने॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—राजा गोपीनाथ पट्टनायक पर बहुत अधिक कृपा करते थे इसलिए गोपीनाथ किसी प्रकार का कोई भय नहीं करते थे, इसी कारण गोपीनाथ पट्टनायक ने उस राजपुत्र से व्यङ्ग करते हुए अत्यधिक गर्व पूर्वक कहा—।

'आमार घोड़ा ग्रीवा उठाय, ऊर्द्धे नाहि चाय।
ताते घोड़ार मूल्य घाटि करिते ना जुयाय॥' २६ ॥

२६। प० अनु०— 'यह बात तो ठीक है कि मेरे घोड़े अपनी गर्दन को ऊपर उठाते हैं, किन्तु वे ऊपर की ओर नहीं देखते। इसलिए घोड़ों का मूल्य घटाना उचित प्रतीत नहीं होता।'

अमृतप्रवाह भाष्य

२६। जो राजपुत्र घोड़े के मूल्य को स्थिर कर रहा था, उसका गले को ऊपर उठाकर ऊपर देखने का स्वभाव था। उस विषय में परिहास (मजाक) करने के लिये गोपीनाथ ने कहा,—'यद्यपि मेरे घोड़े गर्दन तो उठाते हैं, किन्तु ऊपर की ओर नहीं देखते; अतएव इनका मूल्य कम नहीं हो सकता।' परिहास करने का तात्पर्य यह है, — 'तुम्हारी अपेक्षा मेरे घोड़ों का मूल्य कम नहीं है।'

शुनि' राजपुत्र-मने क्रोध उपजिल।
राजार ठाञि जाइ' बहु लागानि करिल॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक की बात सुनकर राजा के पुत्र के मन में बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने राजा के पास जाकर गोपीनाथ पट्टनायक के प्रति झूठ-मूठ में दोषारोपण करते हुए कहा—।

अनुभाष्य

२७। लागानि,—झूठ-मूठ का दोषारोपण अथवा अभियोग (शिकायत)।

'कौड़ि नाहि दिबे एइ, बेड़ाय छद्म करि'।
आज्ञा कर,—'चाङ्गे चड़ाञा लइ कौड़ि'॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक हमें कौड़ी नहीं देगा, उसके पास कौड़ी है तो सही, किन्तु वह हमें धोखा दे रहा है। आप यदि मुझे आज्ञा दें तो मैं उसे चाङ्ग पर चढ़ाकर कौड़ी निकलवा लूँ।'' [महाराज प्रतापरुद्र ने अपने पुत्र द्वारा कही गयी बात का यह अर्थ ग्रहण किया कि गोपीनाथ पट्टनायक हमें आसानी से कौड़ी नहीं देगा, उसके पास कौड़ी है तो सही, किन्तु वह हमें धोखा दे रहा है। आप यदि मुझे आज्ञा दें तो मैं उसे चाङ्ग पर चढ़ाकर भय दिखला कर उससे कौड़ी निकलवा लूँ।]

राजा बले,—'जेइ भाल, कर सेइ जाय।
जे उपाये कौड़ि पाइ, कर से उपाय॥' २९ ॥

२९। प० अनु०—''राजा ने अपने पुत्र से कहा,—'जो अच्छा हो, तुम जाकर वही करो। जिस उपाय से हमें उससे धन की प्राप्ति हो, तुम वही उपाय करो।'

अमृतप्रवाह भाष्य

२९। जाय,—जाकर।

राजपुत्र आसि' तारे चाङ्गे चड़ाइल।
खड्ग-उपरे फेलाइते तले खड्ग पातिल॥'' ३० ॥

३०। प० अनु०—''राजा के पुत्र ने आकर गोपीनाथ पट्टनायक को चाङ्ग पर चढ़ा दिया है तथा उन्हें तलवारों के ऊपर फैंकने के लिये उसने मञ्च के नीचे तलवारें भी बिछा दी हैं।''

प्रभु के द्वारा निरपेक्षता का प्रदर्शन और गोपीनाथ का तिरस्कार—

शुनि' प्रभु कहे किछु करि' प्रणय-रोष।
''राज-कौड़ि दिते नारे, राजार किबा दोष?? ३१॥

३१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने उनकी बात सुनकर कुछ प्रणय-रोष करते हुए कहा—''गोपीनाथ राजा का धन नहीं लौटा पा रहा है, इसमें राजा का क्या दोष है?

अनुभाष्य

३१। दिते नारे,—दे नहीं सकता।

राज-विलात् साधि' खाय, नाहि राज-भय।
दारी-नाटुयारे दिया करे नाना व्यय॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०—''गोपीनाथ लोगों से राजकर लेकर उसे स्वयं उपभोग करता है, उसे राजा का कोई भय नहीं है तथा वह वेश्याओं और नर्त्तकियों पर धन को लुटाकर अत्यधिक व्यय करता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

३२। राज-विलात्,—बाहर से राजा को प्राप्त होने वाला कर (राजा का भण्डार अथवा सम्पत्ति); दारी-नाटुयाके—वेश्या और नृत्य करने वाली स्त्रियों को। इन सब लोगों को देकर धन व्यय करता है, राजा को भी पैसे देने पड़ेंगे,—इस प्रकार का भय नहीं करता।

जेइ चतुर, सेइ करुक राज-विषय।
राज-द्रव्य शोधि' पाय, तार करुक व्यय॥'' ३३॥

३३। प० अनु०—''जो चतुर है, उसे ही राजकर संग्रह आदि कार्य करने चाहिए तथा राजा के धन को उन्हें देने के पश्चात् उसे जो कुछ प्राप्त होता है, उसे उसी को व्यय करना चाहिए।''

उस समय प्रभु को सगोष्ठी (परिवार सहित) भवानन्द आदि के बन्धन के संवाद की प्राप्ति—

हेन-काले आर लोक आइल धाञा।
''वाणीनाथादि सवंशे लञा गेल बान्धिया॥'' ३४॥

३४। प० अनु०—इतनी देर में अन्य कुछ व्यक्ति दौड़कर श्रीमन्महाप्रभु के निकट आकर कहने लगे,—''राजा के कर्मचारी गोपीनाथ के भाई वाणीनाथ आदि को भी वंशसहित बाँधकर ले गये हैं।''

सन्यास धर्म के आदर्श रूप में प्रभु के द्वारा लौकिक विषय वार्त्ता में उदासीनता अथवा निरपेक्षता का प्रदर्शन—

प्रभु कहे,—''राजा आपने लेखार द्रव्य लइब।
आमि—विरक्त सन्यासी, ताहे कि करिब??'' ३५॥

३५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''राजा का जो बनता होगा, वे उसे तो गोपीनाथ से अवश्य ही लेंगे। मैं तो विरक्त सन्यासी हूँ, इसमें मैं क्या कर सकता हूँ?''

अनुभाष्य

३५। लेखार द्रव्य—हिसाब का पैसा।

स्वरूप दामोदर आदि भक्तों के द्वारा प्रभु को उदासीनता छोड़कर रामानन्द के स्वजनों की रक्षा हेतु प्रार्थना—

तबे स्वरूपादि गोसाञिर भक्तगण।
प्रभुर चरणे सबे कैला निवेदन॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख से ऐसा सुनकर उनके भक्त श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी आदि ने उनके श्रीचरणों में निवेदन करते हुए कहा—।

''रामानन्द-रायेर गोष्ठी, सब—तोमार 'दास'।
तोमार उचित नहे ऐछन उदास॥'' ३७ ॥

३७। प० अनु०—''रामानन्द राय का सम्पूर्ण परिवार ही आपका दास है, उनके प्रति ऐसा निष्पक्ष विचार आपके लिये उचित नहीं है।''

प्रभु के द्वारा क्रोध और तिरस्कार—

शुनि' महाप्रभु कहे सक्रोध वचने।
''मोरे आज्ञा देह' सबे, जाऊ राजस्थाने!! ३८ ॥

३८। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर आदि के वचन सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने क्रोधपूर्वक कहा,—''तब फिर तुम सभी मुझे राज-दरबार में जाने का आदेश प्रदान करो!

तोमा-सबार एइ मत—राज-ठाञि जाञा।
कौड़ि मागि' लइ आँचल पातिया॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—''तुम सभी का यही मत है कि मैं राजा के पास जाकर आँचल फैलाकर उससे कौड़ियों के लिये याचना करूँ ।

सन्यासी की विषय रूपी कथा में अयोग्यता—

पाँचगण्डार पात्र हय सन्यासी ब्राह्मण।
मागिले वा केने दिबे दुइलक्ष काहन??'' ४० ॥

४०। प० अनु०—''वैसे भी सन्यासी ब्राह्मण तो केवल पाँच गण्डे के ही योग्य होता है, तब फिर उसके माँगने पर राजा दो लाख काहन क्यों देगा?''

अनुभाष्य

४०। सन्यासी ब्राह्मण,—धनहीन, विषयों को त्याग करने वाला भिक्षुवृत्ति जीवी।

प्रभु को गोपीनाथ के निधन के प्रयत्न के संवाद की प्राप्ति—

हेनकाले आर लोक आइल धाञा।
खड्गेर उपरे गोपीनाथे दितेछे डारिया॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—उसी समय अन्य कुछ व्यक्ति

दौड़ते हुए आये तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को बतलाया – ''राज-कर्मचारी गोपीनाथ को तलवारों के ऊपर डालने ही वाले हैं।''

भक्तों के द्वारा गोपीनाथ की रक्षा के लिये प्रभु से प्रार्थना, तथापि लोगों की शिक्षा के लिये प्रभु की कठोर निरपेक्षता–

शुनि' प्रभुर गण प्रभुरे करे अनुनय।
प्रभु कहे,—''आमि भिक्षुक, आमा हैते किछु नय॥

४२। प० अनु०—उपरोक्त बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों ने पुनः उन से अनुनय-विनय किया। श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैं तो भिक्षुक हूँ, मेरे द्वारा कुछ भी नहीं होगा।

उसके लिये जगन्नाथ के चरणों में प्रार्थना करने के लिये सभी को उपदेश–

तारे रक्षा करिते यदि हय सबार मने।
सबे मेलि' जाह जगन्नाथेर चरणे॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—''यदि तुम सबके मन में उसकी रक्षा करने की इच्छा है तो तुम सभी मिलकर भगवान् जगन्नाथ के चरणों में शरण लो।

जगन्नाथ देव–स्वयं ईश्वर और सभी के प्रभु–

ईश्वर जगन्नाथ,—जाँर हाते सर्व 'अर्थ'।
कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा करिते समर्थ॥'' ४४ ॥

४४। प० अनु०—''जगन्नाथ ईश्वर हैं, उन्हीं के हाथों में सम्पूर्ण अर्थ है। वे कुछ करने, कुछ नहीं करने अथवा अन्य कुछ करने में समर्थ हैं।''

अमृतप्रवाह भाष्य

४४। कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकरिते समर्थ–कुछ करने, कुछ नहीं करने अथवा कुछ अन्य करने में उन्हीं का सामर्थ्य है।

प्रतापरुद्र के निकट हरिचन्दन-महापात्र के द्वारा गोपीनाथ के प्राणों की भिक्षा हेतु याचना–

इँहा यदि महाप्रभु एतेक कहिला।
हरिचन्दन-पात्र जाइ' राजारे कहिला॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—यहाँ जब श्रीमन्महाप्रभु ने अपने मुख से उपरोक्त वचन कहे, तब दूसरी ओर, उसी क्षण राजा के मंत्री हरिचन्दन महापात्र ने जाकर राजा से कहा–।

हत्या अथवा प्राणदण्ड की विधि की अनावश्यकता–

''गोपीनाथ-पट्टनायक—सेवक तोमार।
सेवकेर प्राणदण्ड नहे व्यवहार॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—''हे महाराज! गोपीनाथ पट्टनायक तो आपके सेवक हैं, सेवक को प्राणदण्ड देना उचित व्यवहार नहीं है।

अनुभाष्य

४६। व्यवहार,–विधिसङ्गत, उचित।

विशेष ताहार ठाञि कौड़ि बाकी हय।
प्राण निले किबा लाभ? निज धन-क्षय॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—''विशेष करके आपको तो उससे बहुत धन लेना बाकी है, यदि आप गोपीनाथ के प्राण ही ले लेंगे तो क्या लाभ होगा? बल्कि अपने धन की ही हानि होगी।

यथार्थ मूल्ये घोड़ा लह, जेबा बाकी हय।
क्रमे क्रमे दिबे, व्यर्थ प्राण केने लय॥'' ४८ ॥

४८। प० अनु०—''आप ठीक-ठीक मूल्य पर उसके घोड़े खरीद लीजिए तथा जो बाकी धन रह जायेगा, उसे वह धीरे-धीरे चुका देगा, व्यर्थ में उसके प्राण क्यों लेते हैं?''

गोपीनाथ के प्राण-दण्ड के विषय में राजा के द्वारा अपनी सम्पूर्ण अनभिज्ञता के विषय में बतलाना–

राजा कहे,—''एइ बात आमि नाहि जानि।
प्राण केने लइब, तार द्रव्य चाहि आमि॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—राजा ने कहा,—''मैं गोपीनाथ को

प्राण-दण्ड देने की बात को तो जानता नहीं हूँ। तुम ठीक ही कह रहे हो कि हम उसके प्राण क्यों लेंगे, हम तो केवल उससे धन ही प्राप्त करना चाहते हैं।

तत्क्षणात् गोपीनाथ की रक्षा के लिये आदेश-प्रदान—

तुमि जाइ' कर ताँहा सर्व समाधान।
द्रव्य जैछे आइसे, आर रहे तार प्राण॥'' ५० ॥

५०। प० अनु०—''तुम स्वयं जाकर सब समाधान करो। ऐसा उपाय करो, जिससे हमारा धन भी मिल जाये तथा उसके प्राण भी बच जायें।''

युवराज को कहकर गोपीनाथ के प्राणों की रक्षा—

तबे हरिचन्दन आसि' जानारे कहिल।
चाङ्गे हैते गोपीनाथे शीघ्र नामाइल॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—तब हरिचन्दन ने आकर राजा के बड़े पुत्र को राजा की बात से अवगत कराया तथा उन्होंने शीघ्र ही गोपीनाथ पट्टनायक को चाङ्ग से नीचे उतारा।

राजा के धन को लौटाने के उपाय की जिज्ञासा, गोपीनाथ का उत्तर—

'द्रव्य देह' राजा मागे,—उपाय पुछिल।
''यथार्थ-मूल्ये घोड़ा लह'', तेंह त' कहिल॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—श्रीहरिचन्दन ने श्रीगोपीनाथ पट्टनायक से कहा,—''राजा तुमसे धन माँग रहे हैं, मुझे बताओ कि तुम्हारे पास उसके लिये क्या उपाय है।'' श्रीगोपीनाथ पट्टनायक ने कहा,—''आप लोग ठीक मूल्य देकर मेरे घोड़े खरीद लो।

''क्रमे क्रमे दिमु, आर जत किछु पारि।
अविचारे प्राण लह,—कि बलिते पारि??'' ५३ ॥

५३। प० अनु०—''मैं धीरे-धीरे करके जितना हो सकेगा, बाकी धन भी लौटा दूँगा। किन्तु युवराज तो बिना कोई विचार किये मेरे प्राण लेना चाहता है, इस पर मैं क्या कह सकता हूँ?''

यथार्थ मूल्य करि' तबे घोड़ा सब लइल।
आर द्रव्येर मुद्दती करि' घरे पाठाइल॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीहरिचन्दन ने ठीक मूल्य पर श्रीगोपीनाथ पट्टनायक के सब घोड़ों को खरीद लिया तथा बकाया राशि के लिये निश्चित समय स्थिर करके उन्हें घर भेज दिया।

अमृतप्रवाह भाष्य

५४। मुद्दती करि'—पैसे देने के समय (मियाद) को स्वीकार कराके।

संवाद लाने वाले से प्रभु के द्वारा वाणीनाथ के संवाद की जिज्ञासा—

एथा प्रभु सेइ मनुष्येरे प्रश्न कैल।
''वाणीनाथ कि करे, जबे बान्धिया आनिल??''

५५। प० अनु०—दूसरी ओर, श्रीमन्महाप्रभु ने संवाद लाने वाले व्यक्तियों से प्रश्न किया—''जब राज-कर्मचारी वाणीनाथ को बाँधकर ला रहे थे, तब वे क्या कर रहे थे?''

वाणीनाथ के द्वारा हाथ पर संख्या-नाम-ग्रहण—

से कहे,—''वाणीनाथ निर्भये लय कृष्णनाम।
'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' कहे अविश्राम॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—संवाददाताओं में से किसी एक ने कहा,—''श्रीवाणीनाथ निर्भय होकर कृष्णनाम उच्चारण कर रहे थे, वे निरन्तर 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' ही कह रहे थे।

संख्या लागि' दुइ-हाते अंगुलीते लेखा।
सहस्रादि पूर्ण हैले, अङ्के काटे रेखा॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—''श्रीवाणीनाथ संख्यापूर्वक नाम करने के उद्देश्य से अपने एक हाथ पर तो नाम की संख्या जानने के उद्देश्य से गिनती कर रहे थे तथा दूसरे हाथ पर कुल कितना नाम हो गया, उसका हिसाब रख रहे थे। जब उनका एक हजार नाम करना पूर्ण हो जाता,

तब वे अपने शरीर पर एक चिह्न बना लेते।''

अनुभाष्य

५६-५७। संख्या-ग्रहण करने में निर्बन्ध (नियम) रक्षा करके ''हरे कृष्ण''-महामन्त्र (सोलह नाम बत्तीस अक्षर) कीर्त्तन करने की विधि—एकान्तिक नामाश्रित प्रत्येक साधक के लिये ही सुख में, दु:ख में, सम्पद में, विपत्ति में, समस्त अवस्थाओं में सदैव पालनीय है, जाना जा रहा है।

उसके श्रवण से प्रभु में आनन्द—

शुनि' महाप्रभु हइला परम आनन्द।
के बुझिते पारे गौरेर कृपा-छद्मबन्ध?? ५८ ॥

५८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीवाणीनाथ के विषय में श्रवण करके अत्यन्त आनन्दित हुए। श्रीगौरसुन्दर की दैव-संघटन के छल से गुप्त रूप में की गयी कृपा को भला कौन समझ सकता है?

अनुभाष्य

५८। कृपा-छद्म-बन्ध,—दैव-संघटन के छल से अनुग्रह।

काशीमिश्र का आगमन; उन्हें अपनी आलालनाथ की यात्रा के विषय में बतलाना—

हेनकाले काशीमिश्र आइला प्रभु-स्थाने।
प्रभु ताँरे कहे किछु सोद्वेग-वचने॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—उसी समय श्रीमन्महाप्रभु के पास श्रीकाशीमिश्र आये, उन्हें देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने ऐसे वचन कहे, जिससे प्रतीत हुआ कि उन्हें बहुत उद्वेग प्राप्त हुआ है।

''इँहा रहिते नारि, जामु आलालनाथ।
नाना उपद्रव इँहा, ना पाइ सोयाथ॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीकाशीमिश्र से कहा,—''मैं यहाँ रह नहीं पा रहा हूँ, मैं आलालनाथ चला जाऊँगा। यहाँ जगन्नाथपुरी में अनेक प्रकार के उपद्रव हैं, मुझे यहाँ शान्ति नहीं मिलती।

भवानन्द राय के वंश के व्यक्तियों के विषय में शिकायत—

भवानन्द-रायेर गोष्ठी करे राजविषय।
नाना-प्रकारे करे तारा राजद्रव्य-व्यय॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—''भवानन्द राय के वंशज राजकार्य करते हैं एवं वे अनेक प्रकार से राजा के धन का व्यय करते हैं।

राजार कि दोष? राजा निज-द्रव्य चाय।
दिते नारे द्रव्य, दण्ड आमारे जानाय॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—''राजा का क्या दोष है? राजा तो अपना धन चाहता है। भवानन्द राय के पुत्र राजा को उचित मात्रा में धन नहीं दे पाते तथा जब राजा उन्हें दण्ड देता है तो वे मुझे दण्ड की बात कहलवा भेजते हैं।

राजा गोपीनाथे यदि चाङ्गे चड़ाइल।
चारिबारे लोके आसि' मोरे जानाइल॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—''जब राजा ने गोपीनाथ को चाङ्ग पर चढ़ाया, तब चार बार लोगों ने आकर मुझे सूचना दी।

प्रभु के द्वारा विषय-कथा के प्रति घृणा के विषय में बतलाना—

भिक्षुक सन्यासी आमि निर्जनवासी।
आमाय दु:ख देय, निज-दु:ख कहि' आसि'॥ ६४॥

६४। प० अनु०—''मैं भिक्षा माँगकर जीविका निर्वाह करने वाला सन्यासी हूँ तथा मैं निर्जन में वास करता हूँ, अर्थात् विषय कथा से बहतु दूर रहता हूँ किन्तु लोग अपने दु:ख के विषय में बतलाकर मुझे दु:ख प्रदान करते हैं।

आजि तारे जगन्नाथ करिला रक्षण।
कालि के राखिबे, यदि ना दिबे राजधन?? ६५ ॥

६५। प० अनु०—''आज भगवान् श्रीजगन्नाथ ने

गोपीनाथ की रक्षा की है। किन्तु यदि वह फिर से राजधन नहीं अदा करेगा, तो कल कौन उसकी रक्षा करेगा?

विषयीर वार्त्ता शुनि' क्षुब्ध हय मन।
ताते इँहा रहि' मोर नाहि प्रयोजन॥'' ६६ ॥

६६। प० अनु०—''विषयी व्यक्तियों की बात सुनने से मन क्षुब्ध (दु:खी) हो जाता है, इसी कारण मुझे यहाँ पर रहने की कोई आवश्यकता नहीं है।''

काशीमिश्र के द्वारा प्रभु को आश्वासन और उनकी स्तुति—

काशीमिश्र कहे प्रभुर धरिया चरणे।
''तुमि केने एइ बाते क्षोभ कर मने?? ६७ ॥

६७। प० अनु०—श्रीकाशीमिश्र ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण करके कहा,—''आप किस कारण से इस बात के लिये मन में दु:खी हो रहे हैं?

विष्णुप्रीति की कामना के अलावा अपनी जड़ीय इन्द्रियों के तर्पण के उद्देश्य से विष्णु के निकट फल की कामना—मूर्खता और व्यवसाय मात्र—

विरक्त सन्यासी तोमार का-सने सम्बन्ध?
व्यवहार लागि' तोमा भजे, सेइ ज्ञान-अन्ध॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—''आप तो विरक्त-सन्यासी हैं, आपका किसी के साथ क्या सम्बन्ध है? जो किसी व्यवहारिक वस्तु अर्थात् अनित्य भोगों के लिये आपकी सेवा करता है, वह तो ज्ञान होने पर भी अन्धा अर्थात् अज्ञानी ही है।

अनुभाष्य

६८। व्यवहार,—जीविका अथवा प्राकृत भोग; विषयी व्यक्ति अपने-अपने विषय लाभ के लिये फल-भोग कामनामयी चित्तवृत्ति से विष्णु अथवा वैष्णवों द्वारा सहायता-प्राप्ति के लिये प्रार्थी बनते हैं। सप्तशती-ग्रन्थ में देवी की उपासना के उद्देश्य से वैसे भक्तिहीन चित्त से युक्त मनुष्यों के लिये अनेक प्रकार की व्यवहारिक कामसिद्धि ही फल के रूप में कही जाती है। ये समस्त सकाम चेष्टाएँ—ज्ञान चक्षु रहित निर्बोध व्यक्ति का प्रयास मात्र है। विषयी व्यक्तियों द्वारा ईश्वर की निर्मल उपासना किये जाने पर भी वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी अपने प्राकृत-स्वार्थ के द्वारा चलायमान होकर ब्रह्मज्ञान से प्राप्त होने वाली 'मुक्ति', स्वर्ग आदि भोग अथवा व्यवहारिक अद्वन्द्व (शान्ति) की आशा करके कृष्ण और कृष्णभक्तों की शुद्ध सेवा से विमुख हो जाते हैं।

तोमार भजन-फले तोमाते 'प्रेमधन'।
विषय लागि' तोमा भजे, सेइ मूर्ख जन॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—''आपका भजन करने के फलस्वरूप आपसे प्रेम होने रूपी धन प्राप्त होता है। जो विषय प्राप्ति हेतु आपका भजन करता है, वह मूर्ख व्यक्ति है।

अनुभाष्य

६९। आजकल स्त्री-पुत्रों के पालन, अपने पेट को भरने तथा अपने स्त्री-पुत्रों के वस्त्र-आभूषण आदि को संग्रह करने के लिये मन्त्र का व्यवसाय करने वाले तथा धार्मिक के वेश में जीवन यापन करने वाले विषयी व्यक्तियों ने नाम के प्रचार की छलना का आश्रय किया है। वे श्रीवृन्दावन और नवद्वीप में वास, ग्रन्थों के विक्रय के द्वारा अपने भोजन और वस्त्र तथा स्त्री-पुत्रों के प्रतिपालन, शास्त्र-पाठ, कथा, वक्तृता, श्रीविग्रह-सेवा, दीक्षा-प्रदान, भिक्षाकरण, आत्मीय लोगों के रोग को दूर करना, वैष्णव-वेश धारण करना, दरिद्र-पूजा, सामाजिक उन्नति साधन आदि अनेक प्रकार के छल-कार्यों का विस्तार करके भक्तितत्त्व ज्ञान-हीन-मूर्ख लोगों को ठगकर अर्थादि के अर्जन द्वारा विषयों का ही भजन कर रहे हैं, किन्तु आपके शुद्ध निर्हेतुक अकैतव भजन के फल से ही आपके प्रति ब्रह्मादि के लिये भी दुर्लभ प्रेमधन की प्राप्ति होती है—इसे समझ नहीं पाते।

अनुभाष्य

६८-६९। भा: ७.१०.४ द्रष्टव्य।

प्रभु की प्रीति की कामना करने वाले निष्किञ्चन शुद्धभक्तगण–

तोमा लागि' रामानन्द राज्य त्याग कैला।
तोमा लागि' सनातन 'विषय' छाड़िला॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—''आपकी प्रसन्नता के लिये श्रीरामानन्द राय ने राजकार्य का त्याग किया है तथा आपके लिये श्रीसनातन ने समस्त विषयों को छोड़ दिया है।

तोमा लागि' रघुनाथ सकल छाड़िल।
हेथाय ताहार पिता विषय पाठाइल॥७१॥
तोमार चरण-कृपा हञाछे ताहारे।
छत्रे मागि' खाय, 'विषय' स्पर्श नाहि करे॥ ७२ ॥

७१-७२। प० अनु०—''आपके लिये श्रीरघुनाथ ने सब छोड़ दिया। यद्यपि श्रीरघुनाथ के पिता ने यहाँ उनके लिये धन-सम्पत्ति इत्यादि भेजी, किन्तु उन पर आपके चरणों की कृपा होने के कारण वह उस धन को स्पर्श तक भी नहीं करते, छत्र में माँगकर खाते हैं।

रामानन्द के अनुज गोपीनाथ सकाम व्यवसायी नहीं–

रामानन्देर भाइ गोपीनाथ-महाशय।
तोमा हैते विषय-वाञ्छा, तार इच्छा नय॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—''श्रीरामानन्द राय के भाई श्रीगोपीनाथ पट्टनायक की आपसे किसी प्रकार की विषय-वाञ्छा को पूर्ण कराने की इच्छा नहीं है।

प्रभु के एकान्त शरणागत गोपीनाथ के निधन के प्रयत्न को देखकर उनके हितैषी लोगों के द्वारा प्रभु की कृपा की याचना–

तार दुःख देखि' तार सेवकादिगण।
तोमारे जानाइल,—जाते 'अनन्यशरण'॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक के दुःख को देखकर उनके सेवकों ने आपको आकर सूचित किया, कारण, आप 'अनन्य शरण' हैं अर्थात् गोपीनाथ पट्टनायक ने उन्हें नहीं भेजा, बल्कि आपको गोपीनाथ के एकमात्र रक्षक मानकर वे सेवक स्वयं ही आये थे।

शुद्धभक्तों की परिभाषा–

सेइ 'शुद्धभक्त', जे तोमा भजे तोमा लागि'।
आपनार सुख-दुखे हय भोग-भागी॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—''शुद्ध-भक्त वही है जो आपका भजन आपकी प्रसन्नता, आपकी सेवा के उद्देश्य से करता है, तथा अपने सुख और दुःख को वह अपने ही द्वारा किये गये कर्मों का फल मानकर स्वयं ही उन भोगों का भागीदार बनता है अर्थात् उसके लिये भगवान् से कोइ प्रार्थना नहीं करता।

शुद्धभक्तों का आचार-व्यवहार–

तोमार अनुकम्पा चाहे, भजे अनुक्षण।
अचिरात् मिले ताँरे तोमार चरण॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—''वह आपकी कृपा को प्राप्त करने के उद्देश्य से निरन्तर आपका भजन करता है, उसे अतिशीघ्र ही आपके चरणों की प्राप्ति होती है।

श्रीमद्भागवत (१०.१४.८) में–

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत
यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥ ७७ ॥

७७।अनु०—अतएव जो अनासक्त भाव से अपने किये हुए कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख का निर्विकार मन से भोग करते हुए, क्षण-क्षण आपकी करुणा की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता है, तथा पुलकित शरीर, प्रेमपूर्ण हृदय और गद्गद वाणी से आपके चरणों में प्रणत होकर जीवन धारण करता है, वह व्यक्ति मुक्ति-पद का दायभागी अर्थात् आपके चरणों की सेवा का वैसे ही अधिकारी हो जाता है, जैसे पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी हो जाता है।

अनुभाष्य

७७। मध्य-लीला के षष्ठ परिच्छेद की २६१ वीं संख्या द्रष्टव्य।

काशीमिश्र के द्वारा प्रभु को नीलाचल में रहने के लिये ही प्रार्थना—

एथा तुमि बसि' रह, केने जाबे आलालनाथ?
केह तोमा ना शुनाबे विषयीर बात्॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—''आप यहीं श्रीजगन्नाथ पुरी में ही वास कीजिए, आप आलालनाथ क्यों जायेंगे? आपको कोई भी विषय की बात नहीं सुनायेगा।

प्रभु की कृपा से ही भविष्यत् काल में गोपीनाथ के द्वारा अपनी रक्षा की निश्चयता—

यदि तोमार तारे राखिते हय मन।
आजि जे राखिल, सेइ करिबे रक्षण॥'' ७९ ॥

७९। प० अनु०—''यदि आपकी गोपीनाथ पट्टनायक की रक्षा करने की इच्छा है तो आज जिसने उसकी रक्षा की है, वही आगे भी उसकी रक्षा करेगा।''

प्रतापरुद्र का अपने गुरु मिश्र के घर में आगमन—

एत बलि' काशी मिश्र गेला स्व-मन्दिरे।
मध्याह्ने प्रतापरुद्र आइला ताँर घरे॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—इतना कहकर श्रीकाशी मिश्र अपने शयन कक्ष में चले गये, मध्याह्न के समय महाराज प्रतापरुद्र उनके घर पर आये।

राजा के द्वारा की जाने वाली गुरुसेवा का नियम—

प्रतापरुद्रेर एक आछये नियमे।
जत दिन रहे तेंह श्रीपुरुषोत्तमे॥ ८१ ॥
नित्य आसि' करे मिश्रेर पाद-सम्वाहन।
जगन्नाथ-सेवार करे भियान श्रवण॥ ८२ ॥

८१-८२। प० अनु०—महाराज प्रतापरुद्र का एक नियम था कि जब तक वे श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में रहते, तब तक वे नित्यप्रति श्रीकाशीमिश्र के वासस्थान पर आकर उनके चरणों का सम्वाहन करते थे तथा उसी समय श्रीकाशीमिश्र के मुख से भगवान् श्रीजगन्नाथ की सेवा से सम्बन्धित परिपाटी के विषय में श्रवण करते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

८२। भियान,—सेवा की परिपाटी अथवा उत्कर्षता के विषय में श्रवण ।

राजा मिश्रेर चरण जबे चापिते लागिला।
तबे मिश्र ताँरे किछु भङ्गीते कहिला॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—जब महाराज प्रतापरुद्र श्रीकाशी मिश्र के चरणों का सम्वाहन करने लगे, तब श्रीकाशीमिश्र ने भङ्गी करते हुए उनसे कहा— ।

मिश्र के द्वारा राजा को प्रभु के पुरी-त्याग के संवाद के विषय में बतलाना—

''देव, शुन आर एक अपरूप बात!
महाप्रभु क्षेत्र छाड़ि' जाबेन आलालनाथ!!'' ८४ ॥

८४। प० अनु०—''हे राजन्! आप एक अजीब बात श्रवण कीजिए! श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथपुरी को छोड़कर आलालनाथ चले जायेंगे!''

राजा का दुःख और उसके कारण की जिज्ञासा, उत्तर में मिश्र के द्वारा गोपीनाथ के वृत्तान्त का वर्णन—

शुनि' राजा दुःखी हैला, पुछिलेन कारण।
तबे मिश्र कहे ताँरे सब विवरण॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीकाशी मिश्र के श्रीमुख से इस बात को सुनकर राजा प्रतापरुद्र बहुत दुःखी हुए तथा उन्होंने श्रीकाशीमिश्र से इसका कारण पूछा। तब श्रीकाशीमिश्र महाराज प्रतापरुद्र को समस्त विवरण देने लगे— ।

''गोपीनाथ-पट्टनायके चाङ्गे चड़ाइला।
तार सेवक आसि' प्रभुरे कहिला॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—''जब गोपीनाथ पट्टनायक को

चाङ्ग पर चढ़ाया गया, तब उनके सेवकों ने आकर श्रीमन्महाप्रभु को सब बतलाया।

राज-सम्पत्ति का अपहरण करने वाले गोपीनाथ का धर्मविग्रह और धर्म के रक्षक प्रभु के द्वारा तीव्र तिरस्कार; लौकिक, राजनैतिक और अर्थनैतिक अथवा शुक्ल वित्त को अर्जित करने की विधि का वर्णन—

शुनिया क्षोभित हैल महाप्रभुर मन।
क्रोधे गोपीनाथे कैला बहुत भर्त्सन॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—''वह बात सुनकर श्रीमन्महाप्रभु का मन बहुत दु:खी हुआ तथा उन्होंने क्रोध में गोपीनाथ पट्टनायक का बहुत तिरस्कार करते हुए कहा—

'अजितेन्द्रिय हञा करे राजविषय।
नाना असत्पथे करे राजद्रव्य व्यय॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक अजितेन्द्रिय होने पर भी राजसम्पत्ति का रक्षक बनता है तथा अनेक असत् कार्यों में राजधन का व्यय करता है।

ब्रह्मस्व-अधिक एइ हय राजधन।
ताहा हरि' भोग करे महापापी जन॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—''राजधन का हरण ब्राह्मण के धन को हरण करने से भी अधिक दोषपूर्ण है। जो महापापी होते हैं वही राजधन का हरण करके उसका भोग करते हैं।

राजार वर्त्तन खाय, आर चुरि करे।
राजदण्ड्य हय सेइ शास्त्रेर विचारे॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—''जो व्यक्ति राजा से वेतन लेकर अपनी जीविका यापन करता है तथा उसके बावजूद चोरी भी करता है, शास्त्रों के विचारानुसार ऐसा व्यक्ति राजदण्ड का अधिकारी होता है।

निज-कौड़ि मागे, राजा नाहि करे दण्ड।
राजा—महाधार्मिक, एइ हय पापी भण्ड!! ९१ ॥

९१। प० अनु०—''राजा केवल अपना प्राप्य धन ही माँग रहा है, वह तो हरण करने हेतु अलग से कोई दण्ड तक भी नहीं दे रहा है। अतएव इससे स्पष्ट होता है कि राजा—महाधार्मिक है किन्तु यह गोपीनाथ धोखेबाज पापी है!

राज-कड़ि ना देय, आमारे फुकारे।
एइ महादु:ख इँहा के सहिते पारे?? ९२ ॥

९२। प० अनु०—''गोपीनाथ स्वयं तो राजधन देता नहीं और रक्षा हेतु मुझे पुकारता है। मेरे लिये यही अत्यन्त दु:ख की बात है, इसे कौन सहन कर सकता है?

अनुभाष्य

९२। फुकारे,—उच्च स्वर से रोदन करता है।

निर्जन वास की इच्छा अर्थात् विषय की बातों से गुञ्जायमान स्थान रूपी दु:संग का त्याग—

आलालनाथ जाइ' ताँहा निश्चिन्ते रहिमु।
विषयीर भाल मन्द वार्त्ता ना शुनिमु॥'' ९३ ॥

९३। प० अनु०—''मैं आलालनाथ जाकर वहाँ निश्चिन्त होकर रहूँगा तथा विषयी व्यक्तियों की अच्छी-बुरी किसी भी बात को नहीं सुनूँगा।''

पुरी में प्रभु के अवस्थान के लिये राजा के द्वारा सर्वस्व त्याग करने की प्रतिज्ञा—

एत शुनि' कहे राजा पात्रा मने व्यथा।
''सब द्रव्य छाड़ों, यदि प्रभु रहेन एथा॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—श्रीकाशीमिश्र के मुख से इस बात को सुनकर राजा मन-ही-मन अत्यन्त व्यथित हुए तथा कहने लगे,—''मैं गोपीनाथ से प्राप्य अपनी सम्पूर्ण धन राशि को छोड़ दूँगा, बशर्ते श्रीमन्महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में ही रहें।

क्षणकाल प्रभु का दर्शन भी परम लोभनीय—

एकक्षण प्रभुर यदि पाइये दरशन।
कोटि चिन्तामणि-लाभ नहे तार सम॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—''यदि मुझे एक क्षण के लिये भी श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन प्राप्त होते हैं तो उसकी तुलना करोड़ों-करोड़ों चिन्तामणियों की प्राप्ति से भी नहीं की जा सकती।

कोन् छार पदार्थ एइ दुइलक्ष काहन?
प्राण-राज्य करों प्रभुपदे निर्मञ्छन॥'' ९६ ॥

९६। प० अनु०—''तब फिर दो लाख काहन जैसी तुच्छ राशि का तो कहना क्या? मैं श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में अपने प्राण तथा राज्य दोनों ही न्यौछावर करता हूँ।''

अमृतप्रवाह भाष्य

९६। निर्मञ्छन,—(आरती अथवा पूजा के समय) अर्घ्य प्रदान, अर्पण करना।

भक्त के दु:ख से प्रभु का दु:ख—

मिश्र कहे,—''कौड़ि छाड़िबा,—नहे प्रभुर मन।
तारा दु:ख पाय,—एइ ना जाय सहन॥'' ९७ ॥

९७। प० अनु०—श्रीकाशीमिश्र ने कहा,—''श्रीमन्महाप्रभु ऐसा नहीं चाहते कि आप राजधन छोड़ दें, किन्तु गोपीनाथ पट्टनायक आदि दु:खी हो रहे हैं, यही उनसे सहन नहीं हो रहा।''

राजा के द्वारा गोपीनाथ को सजा-प्राप्ति के विषय में अपनी अनभिज्ञता के विषय में बतलाना—

राजा कहे,—''तारे आमि दु:ख नाहि दिये।
चाङ्गे चड़ा, खड्गे डारा,—आमि ना जानिये॥ ९८॥

९८। प० अनु०—महाराज प्रतापरुद्र ने कहा,—''मैंने गोपीनाथ पट्टनायक को दु:ख नहीं दिया। मैं गोपीनाथ पट्टनायक को प्राण-दण्ड हेतु चाङ्ग पर चढ़ाने तथा तलवारों पर गिराने के विषय में कुछ भी नहीं जानता था।

पुरुषोत्तम-जानारे तेंह कैल परिहास।
सेइ 'जाना' तारे देखाइल मिथ्या त्रास॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक ने मेरे बड़े पुत्र पुरुषोत्तम जाना के साथ परिहास किया था इसलिए मेरे पुत्र ने गोपीनाथ को झूठ-मूठ में भय दिखलाया था।

राजा द्वारा मिश्र को प्रभु को सन्तुष्ट करने के लिये और भवानन्द के वंश के व्यक्तियों के प्रति अपनी स्वाभाविक प्रीति के विषय में बतलाने के लिये अनुरोध—

तुमि जाह, प्रभुरे राखह यत्न करि'।
एइ मुइ ताहारे छाड़िनु सब कौड़ि॥'' १०० ॥

१००। प० अनु०—''हे श्रीकाशीमिश्र! आप जाकर श्रीमन्महाप्रभु को यत्नपूर्वक यहीं पर रोकिए, मैं गोपीनाथ पट्टनायक से प्राप्य समस्त राशि को छोड़ रहा हूँ।''

मिश्र कहे,—''कौड़ि छाड़िबा, नहे प्रभुर मने।
कौड़ि छाड़िले प्रभु कदाचित् दु:ख माने॥'' १०१॥

१०१। प० अनु०—श्रीकाशीमिश्र ने कहा,—''श्रीमन्महाप्रभु की यह इच्छा नहीं है कि आप राजधन छोड़ दें। हो सकता है कि आपके ऐसा करने पर श्रीमन्महाप्रभु कदाचित् दु:खी हो जायें।''

राजा कहे, —''कौड़ि छाड़िमु,—इहा ना कहिबा।
सहजे मोर प्रिय ता'रा,—इहा जानाइबा॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—राजा प्रतापरुद्र ने कहा,—''आप श्रीमन्महाप्रभु से ऐसा मत कहना कि मैंने धन छोड़ दिया है। किन्तु आप उन्हें यह अवश्य ही बता देना कि गोपीनाथ पट्टनायक आदि तो स्वभावत: मेरे प्रिय हैं।

भवानन्द-राय—आमार पूज्य-गर्वित।
ताँर पुत्रगणे आमार सहजेइ प्रीत॥'' १०३ ॥

१०३। प० अनु०—''श्रीभवानन्द राय मेरे पूज्य तथा गौरव के पात्र हैं, इसलिए उनके पुत्रों के प्रति तो मेरी प्रीति होना स्वाभाविक है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१०३। पूज्य-गर्वित,—पूज्य और सम्मान के पात्र।

गोपीनाथ को युवराज के अनुग्रह का प्रदर्शन और विदायी प्रदान–

एत बलि' मिश्रे नमस्करि' घरे गेला।
गोपीनाथे 'बड़ जाना' डाकिया आनिला॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—श्रीप्रतापरुद्र महाराज श्री काशी मिश्र को इतना कहकर तथा उन्हें प्रणाम करके अपने घर लौट गये। महाराज प्रतापरुद्र ने अपने बड़े पुत्र के माध्यम से श्रीगोपीनाथ पट्टनायक को बुलवाया।

राजा कहे,—''सब कौड़ि तोमारे छाड़िलुँ।
सेइ मालजाठ्या-दण्डपाट तोमारे त' दिलुँ॥ १०५॥

१०५। प० अनु०—महाराज प्रतापरुद्र ने श्रीगोपीनाथ पट्टनायक से कहा,—''तुमने जो धन चुकाना था, मैं तुम्हें उससे मुक्त करता हूँ तथा साथ-ही तुम्हें मालजाठ्या-दण्डपाट नामक स्थान का अधिकार भी देता हूँ।

आर बार ऐछे ना खाइह राजधन।
आजि हैते दिलुँ तोमाय द्विगुण वर्त्तन॥'' १०६ ॥

१०६। प० अनु०—''अब तुम आगे से इस प्रकार राजधन को खा मत जाना। आज से मैं तुम्हें दोगुणा वेतन प्रदान करूँगा।''

एत बलि' 'नेतधटी' तारे पराइल।
''प्रभु-आज्ञा लञा जाह, विदाय तोमा दिल॥''१०७॥

१०७। प० अनु०—महाराज प्रतापरुद्र ने श्रीगोपीनाथ पट्टनायक को ऐसा कहकर उनके अङ्ग पर स्वयं अपने हाथों से पट्टवस्त्र पहनाया और कहा—' हे गोपीनाथ! अब तुम अपना कार्य प्रारम्भ करने से पहले श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा लेकर जाओ। मैं तुम्हें विदायी देता हूँ।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१०७। नेतधटी,—पट्टवस्त्र।

गोपीनाथ की सजा के वर्णन के प्रसङ्ग में प्रभु की कृपा के फल से व्यवहारिक और पारमार्थिक उन्नति अथवा श्रेय के वैशिष्ट्य का वर्णन–

परमार्थे प्रभुर कृपा, सेह रहु दूरे।
अनन्त ताहार फल, के बलिते पारे?? १०८ ॥

१०८। प० अनु०—परमार्थिक विषय में श्रीमन्महाप्रभु की कृपा की बात तो बहुत दूर की है उस कृपा का अनन्त फल है, उसके विषय में कौन वर्णन कर सकता है?

'राज्य-विषय'-फल एइ—कृपार 'आभासे'!
ताहार गणना कारो, मने नाहि आइसे!! १०९ ॥

१०९। प० अनु०—'राज सम्पत्ति की रक्षा करने का पुनः दायित्व प्राप्त करना' रूपी फल तो श्रीमन्महाप्रभु की कृपा के आभास से ही प्राप्त हो गया! श्रीमन्महाप्रभु की ऐसी कृपा की गणना कौन कर सकता है, मुझे तो यह समझ ही नहीं आता!

काँहा चाङ्गे चड़ाञा लय धन-प्राण!
काँहा सब छाड़ि' सेइ राज्यादि-प्रदान!! ११० ॥

११०। प० अनु०—कहाँ तो श्रीगोपीनाथ पट्टनायक को चाङ्ग पर चढ़ाकर उनके धन-प्राण लेने की बात! और कहाँ श्रीगोपीनाथ पट्टनायक के सम्पूर्ण ऋण को क्षमा करके उन्हें पुनः राज्य आदि प्रदान!

काँहा सर्वस्व बेचि' लय, देया ना जाय कौड़ि!
काँहा द्विगुण वर्त्तन, पराय नेतधटी!! १११ ॥

१११। प० अनु०— कहाँ तो श्रीगोपीनाथ पट्टनायक का सबकुछ बेचकर राजधन लेने की इच्छा तथा तब भी धन सम्पूर्ण रूप से चुक नही रहा था, और कहाँ अब स्वयं राजा के द्वारा दो गुणा वेतन तथा उन्हीं के हाथ से श्रीजगन्नाथदेव द्वारा पहने गये पट्टवस्त्र की प्राप्ति!

प्रभुर इच्छा नाहि, तारे कौड़ि छाड़ाइबे।
द्विगुण वर्त्तन करि' पुनः 'विषय' दिबे॥ ११२ ॥

११२। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु की ऐसी इच्छा नहीं थी कि राजा राजधन छोड़ दें, श्रीगोपीनाथ पट्टनायक का वेतन दोगुणा कर दें और उन्हें पुन: मालजाठ्या-दण्डपाट का दायित्व सौंप दें।

तथापि तार सेवक आसि' कैल निवेदन।
ताते क्षुब्ध हैल जबे महाप्रभुर मन॥ ११३ ॥
विषय-सुख दिते प्रभुर नाहि मनोबल।
निवेदन-प्रभावेह तबु फले एत फल॥ ११४ ॥

११३-११४। प० अनु०—तथापि जब श्रीगोपीनाथ पट्टनायक के सेवकों ने आकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में निवेदन किया, तथा उसी से ही जब श्रीमन्महाप्रभु का मन दु:खी हुआ, तब श्रीमन्महाप्रभु में विषय रूपी सुखों को प्रदान करने की इच्छा के नहीं होने पर भी उनके श्रीचरणों में निवेदन करने के प्रभाव के फलस्वरूप ही श्रीगोपीनाथ पट्टनायक को इतने अधिक फल की प्राप्ति हो गयी।

प्रभु का अद्‌भुत ऐश्वर्यमय स्वभाव—

के कहिते पारे गौरेर आश्चर्य स्वभाव?
ब्रह्मा-शिव-आदि जार ना पाय अन्तर्भाव॥ ११५॥

११५। प० अनु०—श्रीगौरसुन्दर के आश्चर्यचकित कर देने वाले उस स्वभाव का कौन वर्णन कर सकता है? जिसका मर्म तो ब्रह्मा-शिव आदि भी नहीं जान पाते।

प्रभु और काशीमिश्र का गोपीनाथ के प्रति राजव्यवहार के विषय में कथोपकथन—

एथा काशीमिश्र आसि' प्रभुर चरणे।
राजार चरित्र सब कैला निवेदने॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०— दूसरी ओर, श्रीकाशीमिश्र ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में उपस्थित होकर राजा के चरित्र के विषय में सबकुछ बतलाया।

प्रभु कहे,—"काशीमिश्र, कि तुमि करिला?
राज-प्रतिग्रह तुमि आमा' कराइला??" ११७ ॥

११७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"हे काशीमिश्र! यह आपने क्या किया? आपने मुझे राजा से दान ग्रहण करवा दिया?"

अनुभाष्य

११७। काशीमिश्र की बात सुनकर राजा ने प्रभु की खातिर गोपीनाथ के द्वारा दिये जाने वाले अपने को प्राप्त होने वाले अर्थ को छोड़ दिया, प्रभु के मतानुसार,— इसी से प्रभु के द्वारा राज-अर्थ रूपी दान ग्रहण करना साधित हुआ।

मिश्र कहे,—"शुन, प्रभु, राजार वचने।
अकपटे राजा एइ कैला निवेदने॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—श्रीकाशीमिश्र ने कहा,—"हे श्रीमन्महाप्रभु! आप महाराज प्रतापरुद्र के वचन सुनिए। राजा ने निष्कपट होकर यह निवेदन किया है—।

'प्रभु जेन नाहि जानेन,—राजा आमार लागिया।
दुइलक्ष काहन कौड़ि दिलेक छाड़िया॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०—"श्रीमन्महाप्रभु को किसी भी स्थिति में यह नहीं ज्ञात हो कि मैंने उनके कारण दो लाख काहन राशि छोड़ दी है।

अमृप्रवाह भाष्य

११९। मैंने महाप्रभु के लिये अर्थ छोड़ दिया है, वे ऐसा न समझें, उन्होंने ऐसा ही कहा।

भवानन्देर पुत्र सब—मोर प्रियतम।
इँहा-सबाकारे आमि देखि आत्मसम॥ १२० ॥

१२०। प० अनु०—"वास्तव में श्रीभवानन्द राय के सभी पुत्र मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, मैं उन सभी को अपने समान ही मानता हूँ।

अतएव जाँहा ताँहा देइ अधिकार।
खाय, पिये, लुटे, बिलाय, ना करों विचार॥ १२१॥

१२१। प० अनु०—''इसी कारण मैं उन्हें यत्र-तत्र-सर्वत्र राज्य इत्यादि का अधिकार प्रदान करता हूँ तथा वे खायें, पियें, लूटें, या फिर वितरित करें—मैं इस सबका कोई विचार नहीं करता।

पहले प्रतापरुद्र के अनुग्रह से राजमहेन्द्री के भूमि-अधिकारी के रूप में राम-राय को लगाना—

राजमहीन्द्रे 'राजा' कैनु राम-राये।
जे खाइल, जेबा दिल, नाहि लेखा-दाये॥ १२२ ॥

१२२। प० अनु०—''मैंने रामानन्द राय को राजमहेन्द्री नामक स्थान का राजा बनाया, उसने जो खाया, जो दिया, मैंने हिसाब-किताब की कभी कोई परवाह तक नहीं की।

अनुभाष्य

१२२। वर्तमान राजमहेन्द्री-नगर—गोदावरी के उत्तरी-तट पर अवस्थित है। रामानन्दराय के समय की राजधानी 'विद्यानगर'—गोदावरी के दक्षिण-तट पर थी। विद्यानगर अथवा विद्यापुर गोदावरी नदी के सागर-सङ्गम में अर्थात् कोटदेश में था। वह प्रदेश उस समय राजमहेन्द्री के नाम से प्रसिद्ध था। कलिङ्ग देश का उत्तर-अंश ही उत्कलिङ्ग अथवा उत्कल देश था। उत्कलिङ्ग-राज्य के दक्षिण-प्रदेश की राजधानी ही 'राजमहेन्द्री' थी। वर्त्तमान समय में 'राजमहेन्द्री'- नगर का स्थान परिवर्त्तन हो गया है।

गोपीनाथ एइमत 'विषय' करिया।
दुइचारि-लक्ष काहन रहे त' खाञा॥ १२३ ॥

१२३। प० अनु०—''गोपीनाथ पट्टनायक ने भी इसी प्रकार राजधन को संग्रह करके उसमें से दो-चार लाख काहन राशि ही तो खायी है।

किछु देय, किछु ना देय, ना करि विचार।
'जाना'-सहित अप्रीत्ये दुःख पाइल एइबार॥ १२४॥

१२४। प० अनु०— ''गोपीनाथ पट्टनायक भी कुछ देता है, कुछ नहीं देता है, किन्तु मैं इस सबका कोई विचार नहीं करता। इस बार उसने दुःख तो केवल मेरे बड़े पुत्र के साथ उपहास करने हेतु पाया है।

'जाना' एत कैला,—इहा मुइ नाहि जानों।
भवानन्देर पुत्र-सबे आत्मसम मानों॥ १२५ ॥

१२५। प० अनु०— ''मेरे पुत्र ने गोपीनाथ पट्टनायक से रुष्ट होकर उसे भयभीत करने के लिये इतना अधिक किया है, मैं इसके विषय में नहीं जानता था। मैं तो श्रीभवानन्द राय के समस्त पुत्रों को अपने समान ही मानता हूँ।

ताँहा लागि' द्रव्य छाड़ि'—इहा मात् माने।
सहजेइ मोर प्रीति हय ताहा-सने॥'' १२६ ॥

१२६। प० अनु०—''आप श्रीमन्महाप्रभु से कहना कि वे यह नहीं मानें कि मैंने उनके कारण राजधन छोड़ दिया बल्कि मेरी गोपीनाथ पट्टनायक आदि के प्रति तो सहज में ही प्रीति है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१२६। मात्,—(हिन्दी का शब्द) मत अर्थात् नहीं।

राजा के दैन्य के विषय में सुनकर प्रभु की प्रसन्नता, सपुत्र राय भवानन्द का आगमन, सदैन्य प्रभु की कृपा के माहात्म्य के विषय में बतलाना—

शुनिया राजार विनय प्रभुर आनन्द।
हेनकाले आइला तथा राय-भवानन्द॥ १२७ ॥

१२७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीकाशीमिश्र के मुख से महाराज प्रतापरुद्र के विनय को सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए, उसी समय वहाँ पर श्रीभवानन्द राय आकर उपस्थित हुए।

पञ्चपुत्र-सहिते आसि' पड़िला चरणे।
उठाञा प्रभु ताँरे कैला आलिङ्गने॥ १२८ ॥

१२८। प० अनु०—श्रीभवानन्द राय अपने पाँचों

पुत्रों सहित आकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में प्रणत हो गये, श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें उठाकर उनका आलिङ्गन किया।

रामानन्द-राय आदि सबाइ मिलिला।
भवानन्द-राय तबे बलिते लागिला॥ १२९ ॥

१२९। प० अनु०—श्रीरायरामानन्द आदि सभी भाई श्रीमन्महाप्रभु से मिले। श्रीभवानन्द राय ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा—।

वंश सहित भवानन्द की प्रभु के चरणों में अपने आपको बेच देने वाली उक्ति—

''तोमार किङ्कर एइ सब मोर कुल।
ए विपदे राखि' प्रभु, पुनः निला मूल॥ १३० ॥

१३०। प० अनु०—''हे प्रभु! मेरा यह सम्पूर्ण कुल ही आपका दास है, ऐसी विपत्ति में आपने हमारी रक्षा करके हमें पुनः मूल्य देकर खरीद लिया है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१३०। निला मूल,—पुनः मूल्य देकर खरीद लिया।

पाँचों पाण्डवों के विपत्ति से उद्धार की उपमा देकर प्रभु के भक्तवात्सल्य का वर्णन—

भक्तवात्सल्य एबे प्रकट करिला।
पूर्वे जेन पञ्चपाण्डवे विपदे तारिला॥'' १३१ ॥

१३१। प० अनु०—''आपने हमारे प्रति ठीक वैसे ही भक्त-वात्सल्य प्रकटित किया है, जैसे आपने पूर्वकाल में पाँचो पाण्डवों का विपत्ति से उद्धार करके प्रकटित किया था।''

गोपीनाथ के उद्धार-हेतु कृतज्ञता-ज्ञापन, प्रभु की महिमा का गान—

'नेतधटी'-माथे गोपीनाथ चरणे पड़िला।
राजार कृपा-वृतान्त सकल कहिला॥ १३२ ॥

१३२। प० अनु०—पट्टवस्त्र को सिर पर धारण किये गोपीनाथ पट्टनायक भी श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में पड़ गये, उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को स्वयं पर महाराज प्रतापरुद्र द्वारा की गयी कृपा के वृत्तान्त को सम्पूर्ण रूप से कह सुनाया—।

''बाकी-कौड़ि बाद, आर द्विगुण वर्त्तन कैला।
पुनः 'विषय'-दिया 'नेतधटी' पराइला॥ १३३ ॥

१३३। प० अनु०—''महाराज प्रतापरुद्र ने मुझे बकाया राजधन से मुक्त कर दिया है तथा उन्होंने मेरा वेतन भी दो गुणा कर दिया है, उन्होंने मुझे पुनः मालजाठ्या दण्डपाट का दायित्व प्रदान करके मुझे अपने हाथों से पट्टवस्त्र ओंढ़ाया।

काँहा चाङ्गेर उपर सेइ मरण-प्रमाद!
काँहा 'नेतधटी' पुनः,—ए सब प्रसाद!! १३४ ॥

१३४। प० अनु०—''कहाँ तो चाङ्ग के ऊपर मरने का भय! और कहाँ पुनः पट्टवस्त्र प्राप्ति रूपी ऐसी कृपा!

चाङ्गेर उपरे तोमार चरण ध्यान कैलुँ।
चरण-स्मरण-प्रभावे एइ फल पाइलुँ॥ १३५ ॥

१३५। प० अनु०—''मैंने चाङ्ग पर चढ़े-चढ़े ही आपके चरणों का ध्यान किया था तथा मुझे आपके चरणों के स्मरण के प्रभाव से ही यह फल प्राप्त हुआ।

लोके चमत्कार मोर ए सब देखिया।
प्रशंसे तोमार कृपा-महिमा गाञा॥ १३६ ॥

१३६। प० अनु०—''मेरे साथ राजा के व्यवहार को देखकर लोग चमत्कृत हो गये हैं तथा वे आपकी कृपा रूपी महिमा को गाकर आपकी प्रशंसा कर रहे हैं।

गौर-स्मरण का मुख्य फल—गौर प्रीति, गौणफल—विषय-सुख—

किन्तु तोमार स्मरणेर नहे एइ 'मुख्यफल'।
'फलाभास' एइ,—जाते 'विषय' चञ्चल॥ १३७॥

१३७। प० अनु०—''किन्तु यह आपके स्मरण का मुख्य फल नहीं है, यह तो आपके स्मरण के फल का

आभास मात्र है क्योंकि विषय तो चञ्चल अर्थात् अनित्य हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

१३७। आपके चरणकमलों को स्मरण करने का मुख्य फल—आपके प्रति प्रीति उत्पन्न होना है। जीवन, सम्मान और धन की रक्षा—उस सत् कर्म (आपके चरणकमलों की सेवा) का फलाभास-मात्र है; कारण, जड़ीय विषय—स्वयं ही चञ्चल हैं, अतएव उनसे सम्बन्धित फल 'मुख्य' नहीं है।

अनुभाष्य

१३७। श्रीमहाप्रभु के स्मरण से सर्वसिद्धि हो सकती है। त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ, काम एवं अपवर्ग—मोक्ष आदि गौण फल ही चञ्चल विषय-पिपासु (प्यासे) व्यक्तियों के प्राप्य 'फलाभास हैं', वे—परिपूर्ण नित्य सिद्ध फल कृष्ण प्रेम की प्राप्ति की तुलना में अत्यन्त हेय और बहुत कम लाभ ही हैं।

गौर-कृपा के फल से रामानन्द और वाणीनाथ की निष्किञ्चनता—

राम-राये, वाणीनाथे कैला 'निर्विषय'।
सेइ कृपा आमाते नाहि, जाते ऐछे हय!! १३८ ॥

१३८। प० अनु०—"आपने अपनी कृपा से रामानन्द राय तथा वाणीनाथ को राजकार्य से मुक्त करा दिया है किन्तु आपकी वैसी वाली कृपा मुझ पर नहीं है, इसी कारण से मुझे महाराज प्रतापरुद्र ने पुनः राजकार्य प्रदान किया है।

विषय की वृद्धि के दर्शन से प्रभु की सेवा के सौभाग्य के अभाव की आशङ्का हेतु प्रभु के चरणों में गोपीनाथ के द्वारा वास्तविक-कृपा और विषय भोगों से युक्त बुद्धि से मुक्ति की प्रार्थना—

शुद्ध कृपा कर, गोसाञि, घुचाह 'विषय'।
निर्विण्ण हइनु, मोते 'विषय' ना हय॥" १३९ ॥

१३९। प० अनु०—"हे श्रीचैतन्य गौसाञि! आप मुझ पर अपनी शुद्ध कृपा करके मेरे विषयों को भी छुड़ाइए। मुझमें विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो आया है, अब मुझसे विषय कार्य नहीं होते।"

बाह्य सन्यास-वेश के प्रति प्रभु का अनादर, गोपीनाथ को गृहस्थ आश्रम के अधिकारी जानकर उसी में रहकर ही हरिभजन करने का आदेश—

प्रभु कहे,—"सन्यासी जबे हइबा पञ्चजन।
कुटुम्ब-बाहुल्य तोमार के करे भरण?? १४० ॥

१४०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"जब तुम पाँचों भाई ही सन्यासी बन जाओगे, तब फिर तुम लोगों के इतने बड़े परिवार का भरण-पोषण कौन करेगा?

सिद्ध गौरदासों को गृहस्थ और सन्यास-वेश से निरपेक्ष रहकर सभी अवस्थाओं में कृष्णभजन की शिक्षा प्रदान—

महाविषय कर, किबा विरक्त उदास।
जन्मे जन्मे तुमि पञ्च—मोर 'निजदास'॥ १४१ ॥

१४१। प० अनु०—"तुम पाँचो भाई अत्यन्त विषय कार्यों में नियुक्त रहो अथवा वैरागी बनकर विषयों से सम्पूर्ण रूप में उदासीन हो जाओ किन्तु तब भी तुम पाँचों भाई जन्म-जन्मान्तर में मेरे 'निजदास' हो।

अनुभाष्य

१४१। 'मैं—भगवान् का नित्य-निजदास हूँ' ऐसा शुद्ध अभिमान होने पर—बाहरी रूप से सन्यास-ग्रहण अथवा बाहरी रूप से बृहत् विषयों की सेवा,—कुछ भी जीव का बाहरी अमङ्गल तक भी नहीं कर पाते [आन्तरिक अमङ्गल का तो फिर कहना ही क्या]; कारण, कृष्ण के सुख को भूलकर लौकिक निज-भोग-परायण होने पर ही जीवों का बन्धन होता है एवं कृष्ण सेवा परायण अप्राकृत होने पर घर में रहने पर भी महासन्यास होता है; महासन्यास की अवस्था में सब समय कृष्ण में आविष्ट होने के कारण लोक-भयङ्कर महा-महाविषय भी कोई असुविधा उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होते, सभी अवस्थाओं में ही वह—समभाव से कृष्णसेवक हैं।"

गोपीनाथ को राजा के प्रति अपनी कर्त्तव्यता और शुक्ल अर्थ अर्जन करके व्यय आदि के लिये नैतिक धर्मोपदेश–

किन्तु मोर करिह एक 'आज्ञा'-पालन।
''व्यय ना करिह किछु राजार मूलधन॥'' १४२ ॥

१४२। प० अनु०—''किन्तु तुम लोग मेरी एक आज्ञा का पालन करना, 'तुम राजा के मूलधन को बिल्कुल भी व्यय मत करना।'

अनुभाष्य

१४२। अप्राकृत भगवत् दास के अभिमान को भूलकर जागतिक-विषय-भोगी बनने पर ही जीव धर्म और नीति के विरुद्ध पापों में प्रवृत्त होता है; उसी का निषेध कर रहे हैं।

राजार मूलधन दिया जे किछु लभ्य हय।
सेइ धन करिह नाना धर्मे-कर्मे व्यय॥ १४३ ॥

१४३। प० अनु०— ''राजा को मूलधन देने के पश्चात् आपको जो कुछ मिले, उसी धन को ही विभिन्न धर्म-कर्म में व्यय करना।

असद्व्यय ना करिह,—जाते दुइलोक जाय।''
एत बलि' सबाकारे दिलेन विदाय॥ १४४ ॥

१४४। प० अनु०—''धन का असत् व्यय मत करना—इससे इहलोक और परलोक—दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं।'' इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने सभी को विदायी दी।

अनुभाष्य

१४४। जीव के पाप में प्रवृत्त होने पर, उसे लौकिक मङ्गल एवं अप्राकृत अनुभव—इन दोनों वस्तुओं को प्राप्त करने में ही असुविधा होती है।

विषयों के वर्धित होने के साथ प्रभु की अमन्दोदया-दया ही कृपा-विवर्त्त; उसमें प्रभु की भक्तवश्यता के विषय में बतलाना–

रायेर घरे प्रभुर 'कृपा-विवर्त्त' कहिल।
भक्त वात्सल्य-गुण जाते व्यक्त हैल॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०— इस प्रसङ्ग में श्रीभवानन्द राय के परिवार पर हुई श्रीमन्महाप्रभु की कृपा के विवर्त्त के विषय में वर्णन किया गया है, जिसमें श्रीमन्महाप्रभु का भक्त-वात्सल्य रूपी गुण व्यक्त हुआ है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४५। कृपा-विवर्त्त,—विषय-मङ्गल (उन्नति) रूपी कृपा वास्तविक कृपा नहीं है, किन्तु विषय-बुद्धि से वह एक वस्तु में अन्य वस्तु का प्रतीति रूपी 'विवर्त्त' प्रतीत हुआ।

नवम परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

भक्तों को प्रभु के द्वारा विदायी प्रदान–

सबाय आलिङ्गिया विदाय जबे दिला।
हरिध्वनि करि' सब भक्त उठि' गेला॥ १४६ ॥

१४६। प० अनु०—जब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीभवानन्द राय एवं उनके पाँचो पुत्रों को आलिङ्गन करके विदायी दी तब सब भक्त हरिध्वनि करते हुए उठ खड़े हुए।

प्रभु के व्यवहार को नहीं समझ पाने के कारण सभी को विस्मय–

प्रभुर कृपा देखि' सबार हैल चमत्कार।
ताहारा बुझिते नारे प्रभुर व्यवहार॥ १४७ ॥

गोपीनाथ के उद्धार की लीला में प्रभु के गूढ़-आचरण के रहस्य और तात्पर्य का वर्णन–(१) सर्वप्रथम गोपीनाथ के उद्धार में असम्मति, (२) गोपीनाथ के उद्धार के बाद उनका अशुक्ल (काले) धन के अर्जन हेतु तिरस्कार, (३) वैरागी सन्यासी वैष्णव के आदर्श-स्वरूप विषयकथा रूपी निर्जनता अथवा दु:सङ्ग के त्याग की इच्छा, (४) गोपीनाथ के विषय का वर्धन, (५) विषय भोगों से भयभीत गोपीनाथ को घर में रहने अथवा घर को त्याग करने, सभी अवस्थाओं में ही कृष्णभजन की योग्यता की शिक्षा-प्रदान–

तारा सबे यदि कृपा करिते साधिल।
'आमा' हैते किछु नहे—प्रभु तबे कहिल॥ १४८ ॥

१४७-१४८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की श्रीभवानन्द राय के परिवार पर की गयी कृपा को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये, वे श्रीमन्महाप्रभु के व्यवहार को ठीक से समझ नहीं पाये, कारण, जब उन सभी ने आकर श्रीमन्महाप्रभु से गोपीनाथ पट्टनायक पर कृपा करने हेतु प्रार्थना की थी, तब श्रीमन्महाप्रभु ने कहा था कि 'मेरे द्वारा कुछ भी करना सम्भवपर नहीं है।'

अनुभाष्य

१४८। जीव होने के कारण गोपीनाथ यदि विषयों की सेवा करेगा, तो उससे उसका अमङ्गल अनिवार्य है। लौकिक-मङ्गल-साधन को भगवान् की गौण कृपा ही समझना होगा।

श्रीगौरसुन्दर स्वयं विरक्त भक्त के रूप में [लीला कर रहे हैं।] यदि प्रभु विषयी का उपकार करते हैं, तब फिर उनके वैसे चरित्र के अनुसरण के फल से विरक्त वैष्णव का आदर्श खर्व (कम) तथा घृणित हो जाता [इसलिये उन्होंने बाहरी रूप से कुछ भी प्रयास नहीं किया।]; अतएव निरपेक्ष त्यागी वेष को धारण करने वाले भागवत व्यक्ति कभी भी विषयी के कार्य में व्रती (नियुक्त) नहीं होंगे।

नवम परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

गोपीनाथेर निन्दा, आर आपन-निर्वेद।
एइमात्र कहिल, इहार ना बुझिबे भेद॥ १४९ ॥

१४९। प० अनु०—उस समय श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोपीनाथ पट्टनायक की निन्दा कर दी थी तथा स्वयं की विरक्त सन्यासी कहकर उदासीनता दिखलायी थी। उस समय तो श्रीमन्महाप्रभु ने केवलमात्र इतना ही कहा था तथा अब तो सबकुछ सम्पूर्ण रूप से उसके विपरीत दिखलायी दे रहा है। किन्तु आप इसे उनका व्यवहार-भेद मत समझना।

काशीमिश्रे ना साधिल, राजारे ना साधिल।
उद्योग बिना एत सब फल दिल॥ १५० ॥

१५०। प० अनु०—श्रीगोपीनाथ पट्टनायक की रक्षा न तो श्रीकाशीमिश्र ने और न ही महाराज प्रतापरुद्र ने की, बल्कि श्रीमन्महाप्रभु ने ही बिना किसी उद्यम के श्रीगोपीनाथ पट्टनायक को उपरोक्त समस्त फल प्रदान किये।

कामभोग में अचञ्चल चैतन्य के प्रति आकृष्ट व्यक्ति की ही चैतन्यचरित के मर्मार्थ को अनुभव करने की योग्यता—

चैतन्यचरित्र एइ परम गम्भीर।
सेइ बुझे, ताँर पदे जाँर मन 'धीर'॥ १५१ ॥

१५१। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु का चरित्र अत्यधिक गम्भीर है। इन्हें केवल वही व्यक्ति समझ सकता है जिसका मन श्रीमन्महाप्रभु के चरणकमलों में स्थिर हो।

भगवान् के भक्तवात्सल्य के वृतान्त को श्रवण करने से अनर्थ की निवृत्ति और भगवान् के प्रति प्रेम का उदय—

जेइ इँहा शुने प्रभुर वात्सल्य-प्रकाश।
प्रेमभक्ति पाय, ताँर विपद जाय नाश॥ १५२ ॥

१५२। प० अनु०—जो श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा श्रीगोपीनाथ पट्टनायक के प्रति उनके वात्सल्य को प्रकाशित करने वाले चरित्र का श्रवण करता है, उसे प्रेमभक्ति की प्राप्ति होती है तथा उसकी समस्त विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १५३ ॥

१४३। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे गोपीनाथपट्टनायकोद्धारो नाम नवमः परिच्छेदः।

❋ ❋ ❋

दशम परिच्छेद

कथासार—रथयात्रा के उद्देश्य से गौड़देश के भक्तों ने पुरुषोत्तम की यात्रा की। राघव पण्डित अपनी बहन दमयन्ती के द्वारा दिये गये झोलों में बहुत प्रकार की खाद्य-साम्रगियों को लेकर चल दिये। पाणिहाटी-निवासी मकरध्वजकर राघव की झालि के 'मुन्सिब' (मुनीम, प्रधान रक्षक) बनकर चले। भक्तगण जिस दिन पुरुषोत्तम पहुँचे, उस दिन नरेन्द्र सरोवर के जल में क्रीड़ा करने के लिये श्रीगोविन्द देव जी नौका में चढ़े थे। महाप्रभु ने अपने भक्तों के साथ जलक्रीड़ा की। पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति गुण्डिचा-मार्जन आदि हुआ। श्रीमन्दिर में जगमोहन-परिमुण्डा-[के नाम से प्रसिद्ध] कीर्त्तन हुआ था। कीर्त्तन के बाद प्रसाद-सेवा करके महाप्रभु ने गम्भीरा के द्वार पर शयन किया, गोविन्द ने जिस किसी प्रकार से निकट जाकर उनके चरणों का सम्वाहन किया; बाहर नहीं आ पाने के कारण उनकी उस दिन प्रसाद-सेवा नहीं हुई। गोविन्द के इस चरित्र के द्वारा—'सेवा के लिये अपराध स्वीकार करना उचित है, किन्तु अपने भोग के लिये अपराध के आभास तक का भी परित्याग करना उचित है'—यह शुद्धवैष्णव-सिद्धान्त स्थापित हुआ। गौड़ीय भक्तों ने महाप्रभु की सेवा करने के लिये जो-जो दिया था, गोविन्द ने प्रभु को सब खिलाया। वैष्णवों ने घर-घर में प्रभु को निमन्त्रण देकर खिलाया। शिवानन्द के पुत्र चैतन्यदास ने निमन्त्रण में स्नेहपूर्वक दही-भात बनाया था। (अ: प्र: भा:)

भक्तों के द्रव्यों से सन्तुष्ट भक्तगणसंयुक्त गौर की वन्दना—

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यं भक्तानुग्रहकारकम्।
येन केनापि सन्तुष्टं भक्तदत्तेन श्रद्धया॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। भक्त के द्वारा श्रद्धापूर्वक प्रदत्त जिस किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट, भक्तों पर कृपा करने वाले श्रीकृष्णचैतन्य की वन्दना करता हूँ।

अनुभाष्य

१। श्रद्धया भक्तदत्तेन (भक्तेन दत्तेन अर्पितेन) येन केन अपि (सामान्येन) सन्तुष्टं (तं) भक्तानुग्रहकारकं (भक्तेषु अनुग्रहविधायकं) श्रीकृष्णचैतन्यम् अहं वन्दे।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो, श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्रीगौरसुन्दर के समस्त भक्तों की जय हो।

गौड़ीय भक्तों के द्वारा प्रभु के दर्शनों के लिये रथयात्रा के उपलक्ष्य में पुरी-यात्रा—

वर्षान्तरे सब भक्त प्रभुरे देखिते।
परम-आनन्दे सबे नीलाचल जाइते॥ ३ ॥

३। प० अनु०—एक वर्ष के उपरान्त समस्त भक्त श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये परम आनन्द पूर्वक नीलाचल के लिये चल दिये।

अद्वैतप्रमुख गौड़ीय-भक्तगण—

अद्वैत आचार्य-गोसाञि—सर्व-अग्रगण्य।
आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, श्रीवास आदि धन्य॥ ४॥

४। प० अनु०—श्रीजगन्नाथपुरी जाने वाले भक्तों में श्रीअद्वैताचार्य प्रभु सबसे श्रेष्ठ थे। उनके साथ परम

सौभाग्यशाली आचार्यरत्न, आचार्यनिधि तथा श्रीवास आदि भक्त थे।

अनुभाष्य

४। आचार्यरत्न,—चन्द्रशेखर; आचार्यनिधि,—विद्यानिधि, प्रेमनिधि पुण्डरीक।

गौर के द्वारा निषेध करने पर भी प्रभु के प्रेमिक नित्यानन्द की यात्रा—

यद्यपि प्रभुर आज्ञा गौड़े रहिते।
तथापि नित्यानन्द प्रेमे चलिला देखिते॥ ५ ॥

५। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को गौड़ देश में ही रहने की आज्ञा दी थी तथापि श्रीनित्यानन्द प्रभु भी श्रीमन्महाप्रभु के प्रति अत्यधिक प्रेमयुक्त होने के कारण श्रीजगन्नाथ पुरी के लिये चल पड़े।

नित्यानन्द के द्वारा गौर की आज्ञा के उल्लङ्घन का विचार, उनके अनुराग का लक्षण—

अनुरागेर लक्षण एइ,—'विधि' नाहि माने।
ताँर आज्ञा भाङ्गे ताँर सङ्गेर कारणे॥ ६ ॥

६। प० अनु०—अनुराग का लक्षण ही होता है—विधि को नहीं मानना। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु के सङ्ग के लिये ही उनकी आज्ञा का उल्लङ्घन किया।

दृष्टान्त (उदाहरण); रास में गोपियों के द्वारा कृष्ण की सेवा—

रासे जैछे घर जाइते गोपीरे आज्ञा दिला।
ताँर आज्ञा भाङ्गि' ताँर सङ्गे से रहिला॥ ७ ॥

७। प० अनु०—व्रज में रास के समय जैसे श्रीकृष्ण के द्वारा गोपियों को घर लौट जाने की आज्ञा देने पर भी गोपियों ने श्रीकृष्ण की आज्ञा का उल्लङ्घन कर दिया था तथा वे उनके साथ में ही रही।

अनुभाष्य

७। भा: १०.२९.१८-२७ श्लोक द्रष्टव्य।

विधि और अनुराग मार्ग में विष्णु और कृष्ण को सन्तुष्ट करने में विचित्रता—

आज्ञा-पालने कृष्णेर जैछे परितोष।
प्रेमे आज्ञा भाङ्गिले हय कोटि-सुख-पोष॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करने से कृष्ण को जैसी सन्तुष्टि की प्राप्ति होती है; उससे करोड़ों गुणा अधिक सुख की प्राप्ति उन्हें भक्त के द्वारा प्रेम के कारण उनकी आज्ञा की अवहेलना करने से होती है।

अनुभाष्य

८। कोटिसुखपोष,—करोड़ों गुणा अधिक सुख की पुष्टि।

पुरीयात्री गौड़ीय-भक्तगण—

वासुदेव-दत्त, मुरारि-गुप्त, गङ्गादास।
श्रीमान्-सेन, श्रीमान्-पण्डित, अकिञ्चन कृष्णदास॥
मुरारि, गरुड़-पण्डित, बुद्धिमन्त-खाँन।
सञ्जय, पुरुषोत्तम, पण्डित-भगवान्॥ १० ॥
शुक्लाम्बर, नृसिंहानन्द, आर जत जन।
सबाइ चलिला, नाम ना जाय लिखन॥ ११ ॥

९-११। प० अनु०—श्रीअद्वैत, श्रीनित्यानन्द प्रभु आदि के साथ श्रीवासुदेव दत्त, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीगङ्गादास, श्रीमान् सेन, श्रीमान् पण्डित, श्रीअकिञ्चन कृष्णदास, श्रीमुरारि, श्रीगरुड़ पण्डित, श्रीबुद्धिमन्त खाँन, श्रीसञ्जय, श्रीपुरुषोत्तम, श्रीपण्डित भगवान्, श्रीशुक्लाम्बर, श्रीनृसिंहानन्द आदि अनेक भक्त,—जिन सबके नामों को लिखना सम्भवपर नहीं है—चल दिये।

कुलीनग्राम, खण्ड, कुमारहट्ट (काञ्चनपल्ली) से भक्तों की यात्रा—

कुलीनग्रामी, खण्डवासी मिलिला आसिया।
शिवानन्द-सेन आइला सबारे लञा॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—मार्ग में उपरोक्त भक्तों के साथ कुलीनग्राम वासी तथा खण्डवासी भक्त भी आकर मिल

गये। श्रीशिवानन्द सेन समस्त भक्तों को श्रीजगन्नाथ पुरी लेकर चल दिये।

दमयन्ती के द्वारा प्रस्तुत प्रभु को प्रिय लगने वाले द्रव्यों से परिपूर्ण झालि (झोलों) के साथ राघव की यात्रा—

राघव-पण्डित चले झालि साजाइया।
दमयन्ती जत द्रव्य दियाछे करिया॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित अपनी बहन श्रीदमयन्ती द्वारा बनाकर दी गयी अनेक वस्तुओं को भिन्न-भिन्न झोलों में भली-भाँति सजाकर रखकर ले आये।

अनुभाष्य

१३-३९। इसके द्वारा ग्रन्थकार के विचित्र कृष्ण-नैवेद्य (भोग) को प्रस्तुत करने की निपुणता प्रकाशित हो रही है; मध्य-लीला के चतुर्दश परिच्छेद की २६-३४ एवं, मध्य-लीला के पञ्चदश परिच्छेद की ६८-९१, २०७-२१८ तक की संख्या द्रष्टव्य।

राघव की झालि (झोलों) का विवरण—

नाना अपूर्व भक्ष्यद्रव्य प्रभुर योग्य भोग।
वत्सरेक प्रभु जाहा करेन उपयोग॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित के विभिन्न झोलों में अपूर्व भक्षण योग्य द्रव्य होते, जो वास्तव में श्रीमन्महाप्रभु के योग्य भोग ही होता। श्रीमन्महाप्रभु सम्पूर्ण वर्ष उन वस्तुओं को ग्रहण करते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४। उपयोग,—व्यवहार, ग्रहण।

आम्र-काशन्दि, आदा-झाल-काशन्दि-नाम।
नेम्बु-आदा-आम्रकलि विविध विधान॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—उन भोज्य-सामग्रियों में पिसे हुए सरसों के दानों से बनी काशौन्दि में छिले हुए कच्चे आम को डालकर बनी आम्रकाशौन्दि, उसी प्रकार काशौन्दि में अदरक को डालकर बनी आदा-काशौन्दि, काशौन्दि में मिर्ची डालकर बनी झाल-काशौन्दि थी। उसमें नीबूँ, अदरक तथा आम की कलि आदि से बनी विभिन्न भोजन सामग्रियाँ थी।

आम्सि, आम्रखण्ड, तैलाम्र, आमसत्ता।
यत्न करि' गुण्डा करि' पुराण सुक्ता॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—उन भोजन-सामग्रियों में आमसि (सूखे हुए आम के टुकड़े), आम्रखण्ड (आम का खट्टा-मीठा आचार), तैलाम्र (तेल में बना आम का आचार) तथा आमसता (आम पापड़)था। श्रीदमयन्ती ने अत्यधिक प्रयत्न करके पुराण सुक्ता (सूखे हुए कड़वे पाटशाक) को पीस करके भेजा।

अमृतप्रवाह भाष्य

१६। पुराण सुक्ता,—सूखा कड़वा पाट का साग।

अनुभाष्य

१६। तैलाम्र,—सरसों में बनाया आम का आचार; गुण्डा—पिसा हुआ चूर्ण।

'सुक्ता' बलि' अवज्ञा ना करिह चित्ते।
सुक्ताय जे सुख हय, नहे पञ्चामृते॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—उपरोक्त सुक्ता नाम सुनकर अपने चित्त में श्रीदमयन्ती के प्रति किसी प्रकार की अवज्ञा मत करना कि यह भी कोई भेजने की वस्तु है। वास्तव में सुक्ता को खाने से जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह पञ्चामृत खाने से भी प्राप्त नहीं होती।

अप्राकृत भावग्राही भगवान्—

भावग्राही महाप्रभु स्नेहमात्र लय।
सुक्तापाता-काशन्दिते महासुख हय॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—भाव को ही ग्रहण करने वाले श्रीमन्महाप्रभु भक्त के स्नेह मात्र को ही ग्रहण करते हैं, उन्हें भक्त के द्वारा स्नेहपूर्वक अर्पित किये गये सुक्ता-पत्ता तथा काशौन्दि को खाने से ही अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है।

अनुभाष्य

१८। भाव,—अप्राकृत अहैतुकी-कृष्णेन्द्रिय- तोषण-परायण शुद्धसत्त्वमयी हृदय की वृत्ति; प्राकृत सहजियाओं की स्वसुख परायण घृणित चित्तवृत्ति नहीं।

दमयन्ती की शुद्ध स्वारसिकी अत्यधिक गाढ़ी गौर-प्रीति का उदाहरण—

'मनुष्य'-बुद्धि दमयन्ती करे प्रभुर पाय।
''गुरु'-भोजने उदरे कभु 'आम' हञा जाय॥ १९ ॥
सुक्ता खाइले सेइ हइबेक नाश।''
सेइ स्नेह मने भावि' प्रभुर उल्लास॥ २० ॥

१९-२०। प० अनु०—श्रीदमयन्ती श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में अत्यधिक गाढ़ प्रीति के कारण उनके प्रति साधारण मनुष्य-बुद्धि रखती थी। वे मन में विचार करती थी, ''कभी-कभी यदि गरिष्ट (भारी) भोजन करने से श्रीमन्महाप्रभु के उदर में आंव हो जायेगा तो वह सुकता चूर्ण खाने से दूर हो जायेगा।'' श्रीमन्महाप्रभु श्रीदमयन्ती के उस स्नेह का विचार करने से ही उल्लसित हो उठते थे।

अनुभाष्य

१९। मनुष्य-बुद्धि,—गौड़-व्रजवासियों का शुद्ध सत्त्वमय ऐश्वर्यज्ञानहीन चित्त में मनुष्य शरीर धारी गौर-कृष्ण को अपने शुद्ध केवल प्रेम के वशीभूत समझना; आम,—जठराग्नि के मन्द होने के कारण अजीर्णता-वशतः अम्लपित्त-व्याधि।

प्रेम के द्वारा अर्पित वस्तु ही अत्यन्त गुणों से युक्त, प्रेम के द्वारा प्रदान की गयी वस्तु के बाहरी दोष और गुणों का विचार नहीं—भारवी-कृत किरात-अर्जुनीय (८.२०) में

प्रियेण संग्रथ्य विपक्ष-सन्निधा-
वुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने।
स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां
वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि॥ २१ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

२१। किसी प्रियतम ने अपने हाथों से माला को गूँथकर अपनी दो पत्नियों में से उन्नत स्तन वाली पत्नी को उसकी सौतन के समक्ष पहनायी । [बाद में] उस स्त्री ने माला के ऊपर [नदी अथवा सरोवर के] कीचड़ को लगा देखकर भी उसका परित्याग नहीं किया, कारण, गुण वस्तु में नहीं बल्कि प्रेम में रहते हैं।

अनुभाष्य

२१। काचित् (कान्ता) प्रियेण (प्रेमपात्रेण वल्लभेन) संग्रथ्य (स्वयमेव रचयित्वा) विपक्षसन्निधौ (सपत्नी जन-समीपे) पीवरस्तने (समुन्नतपयोधरे) वक्षसि (उरसि) उपाहिताम् (अर्पितां योजितां) जलाविलां (कर्दमादियुक्तामपि) स्रजं (मालां) न विजहौ (न त्यक्तवती); हि (यस्मात्) गुणाः प्रेम्णि वसन्ति, न वस्तुनि (प्रेमार्पितमेव वस्तु गुणवत्, अन्यत् तु गुणवदपि गुणहीनं दोषयुक्तमेव, प्रेम तु वस्तु परीक्षां नापेक्षते इति भावः)।

धनिया-मोहरीर तण्डुल गुण्डा करिया।
नाडु बान्धियाछे चिनि-पाक करिया॥ २२ ॥
शुन्ठीखण्ड नाडु, आर आमपित्तहर।
पृथक् पृथक् बान्धि वस्त्रेर कुथली-भितर॥ २३ ॥

२२-२३। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने साबुत धनिया और सौंफ की ऊपरी परत को उतारकार असका चूर्ण बनाकर चीनी की चासनी से उनके लड्डु बना दिये। श्रीदमयन्ती ने आँव और पित्त का हरण करने वाले सौंठ के लड्डु भी बनाए। तत्पश्चात् दोनों प्रकार के लड्डुओं को पृथक्-पृथक् बाँधकर उन्हें एक ही झोली में रख दिया।

अमृतप्रवाह भाष्य

२३। कुथली,—छोटी-छोटी थैलियाँ।

कोलिशुन्ठि कोलिचूर्ण, कोलिखण्ड आर।
कत नाम लइब, आर शतप्रकार 'आचार'॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने सूखे बेर, बेरों का चूर्ण, गुड़ में पकाये बेर तथा सैंकड़ों प्रकार के आचार बनाये, मैं कितनों का नाम गिनाऊँ।

अमृतप्रवाह भाष्य

२४। कोलशुन्ठि,—सूखे बेर।

नारिकेल-खण्ड, आर नाड्डु गङ्गाजलि।
चिरस्थायी खण्डविकार करिला सकलि॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने नारियल के छोटे-छोटे टुकडों की मिठाई तथा ऐसे लड्डु बनाये, जो देखने में गङ्गा के जल की भाँति श्वेत थे। श्रीदमयन्ती ने ऐसे-ऐसे लड्डु बनाये, जो बहुत दिनों तक उपयोग किये जा सकते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

२५। नाड्डु-गङ्गाजलि,—सफेद लड्डु।

अनुभाष्य

२५। चिरस्थायी खण्ड विकार—कद्मा, काटाफेणी, उला, मठ, तिल में भाजा, दम्दम् मिश्री, रेशमी मिठाई इत्यादि।

चिरस्थायी क्षीरसार, मण्डादि-विकार।
अमृत-कर्पूर आदि अनेक प्रकार॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने बहुत दिनों तक रहने वाले खोये तथा चावल की माण्ड आदि के अनेक पकवान बनाये। अमृत-कर्पूर आदि अनेक प्रकार के पीठे भी बनाये।

शालिकाचटि-धान्येर 'आतप' चिड़ा करि'।
नूतन-वस्त्रेर बड़ कुथली सब भरि'॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने शालिकाचटि धान का आतप चिड़वा बनाकर उसे नये वस्त्र से बनी बड़ी-बड़ी झोलियों में भर दिया।

अमृतप्रवाह भाष्य

२७। शालिकाचटि धान्येर—(एक प्रकार के) सूखे धान का।

कतेक चिड़ा हुड्डुम करि' घृतेते भाजिया।
चिनि-पाके नाड्डु कैला कर्पूरादि दिया॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने कुछ चिड़वे और मुड़ि को घी में भूनकर तथा उसमें कर्पूर आदि मिलाकर चीनी की चासनी वाले लड्डु बनाये।

अनुभाष्य

२८। हुड्डुम,—(पूर्वीबङ्गाल में प्रसिद्ध) मुड़ि, (पश्चिम बङ्गाल में 'हुड्डुम-चावल' नाम का एक प्रकार का अलग चावल मिलता है)।

शालि-धान्येर तण्डुल-भाजा चूर्ण करिया।
घृतसिक्त चूर्ण कैला चिनि-पाक दिया॥ २९ ॥
कर्पूर, मरिच, लवङ्ग, एलाचि, रसवास।
चूर्ण दिया नाड्डु कैला परम सुवास॥ ३० ॥

२९-३०। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने शालि धान के तण्डुल को भूनकर उसका चूर्ण बनाया तथा पुनः उसे घी से मिलाकर चीनी की चासनी में डाल दिया, फिर उसमें कर्पूर, काली मिर्च, लौंग, इलायची तथा रस वास (कबाब चीनी) इत्यादि का चूर्ण बनाकर परम सुगन्धित लड्डु बना दिये।

शालि-धान्येर खई पुनः घृतेते भाजिया।
चिनि-पाक उख्ड़ा कैला कर्पूरादि दिया॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने शालिधान की बनी खील को घी में भूनकर उसमें कर्पूर आदि मिलाकर चीनी की चासनी में देकर मुड़कि (मुरुण्डा) बनाया।

अमृतप्रवाह भाष्य

३१। उख्ड़ा—मुड्कि।

फुट्कलाई चूर्ण करि' घृते भाजाइल।
चिनि-पाके कर्पूर दिया नाड्डु कैल॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने तले हुए मटरों का

चूर्ण बनाकर उसे घी में भूना तथा फिर उसे कर्पूर मिश्रित चीनी की चासनी में मिलाकर लड्डु बनाये।

अनुभाष्य

३२। फुट्कलाई,—तले हुए मटर।

सुस्वादिष्ट खाद्य को बनाने में परम निपुण होने पर भी ग्रन्थकार का दैन्य—

कहिते ना जानि नाम ए-जन्मे जाहार।
ऐछे नाना भक्ष्यद्रव्य सहस्र प्रकार॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने ऐसी सैंकड़ों भोज्य वस्तुएँ बनायी जिनका मैंने इस जन्म में नाम तक भी नहीं सुना, तो फिर उसे कहुँ कैसे?

राघव और दमयन्ती की प्रभु के प्रति गाढ़ प्रीति—

राघवेर आज्ञा, आर करेन दमयन्ती।
दुँहार प्रभुते स्नेह परम-भकति॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित की आज्ञानुसार श्रीदमयन्ती समस्त वस्तुओं को बनाती। श्रीराघव पण्डित और उनकी बहन श्रीदमयन्ती का श्रीमन्महाप्रभु के प्रति अत्यधिक स्नेह तथा परम-भक्ति थी।

गङ्गा-मृत्तिका आनि' वस्त्रेते छानिया।
पाँच कुड़ि करिया दिला गन्धद्रव्य दिया॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने गङ्गा की मिट्टी को लाकर उसे वस्त्र के द्वारा छाना तथा उन्होंने उसके पाँच भाग किये एवं उनमें भिन्न-भिन्न सुगन्धित द्रव्य देकर पाँच पोटलियाँ बाँध दी।

अनुभाष्य

३५। पाँचकुड़ि,—पाठन्तर में 'पाकौड़ि', पाठान्तर में, 'पाँपड़ि' अर्थात् दल अथवा 'पर्पटी'।

पातल मृत्पात्रे चन्दनादि भरि'।
आर सब वस्तु भरे वस्त्रेर कुथली॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने मिट्टी के बने हल्के पात्रों में चन्दन आदि को भर दिया तथा अन्य समस्त वस्तुओं को वस्त्रों से बनी झोलियों में भर दिया।

अनुभाष्य

३६। पातल,—पतला, हलका, छोटा; किसी- किसी के मतानुसार पत्थर।

सामान्य झालि हैते द्विगुण झालि कैला।
परिपाटि करि' सब झालि भराइला॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने सामान्य झोली से दो गुनी आकार की झोलियाँ बनायी, तथा अत्यन्त सुन्दर परिपाटी से सभी छोटी-छोटी झोलियों को बड़ी झोलियों में भर दिया।

झालि बान्धि' मोहर दिला आग्रह करिया।
तिन बोझारि झालि बहे क्रम करिया॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—श्रीदमयन्ती ने झोलों को बाँधकर उन पर अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक लेई से बनी मोहर (सील) लगायी तथा तीन भारवाहक उन झोलों को क्रमशः (बारी-बारी) उठा रहे थे।

अनुभाष्य

३८। मोहर दिल,—अन्य लोग जिससे खोल न पायें, इस प्रकार से सील मोहर लगा दी; बोझारि,—बोझार + अरि अर्थात् भार को कम करने वाले—भारवाही 'मुटिया' अथवा बुझिया।

इसलिए ही 'राघव की झालि' नाम—

संक्षेपे कहिलुँ एइ झालिर विचार।
'राघवेर झालि' बलि' विख्याति जाहार॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—मैंने संक्षेप में 'राघवेर झालि' अर्थात् श्रीराघव पण्डित के नाम से विख्यात झालि का वर्णन किया है।

मकरध्वज के द्वारा यत्नपूर्वक झालि की रक्षा—

झालिर उपर 'मुन्सिब' मकरध्वज-कर।
प्राणरूपे झालि राखे हञा तत्पर॥ ४० ॥

४०। प० अनु०—झालि की देख-भाल करने हेतु मकरध्वजकर नामक भक्त 'मुन्सिब' (परिचालक) की भाँति नियुक्त किये गये थे तथा वे सर्वदा तत्पर रहकर झालि की अपने प्राणों की भाँति देखभाल करते थे।

अनुभाष्य

४०। मुन्सिब,—(अरबी भाषा) 'मनसिफ', परिदर्शक, परिचालक; मकरध्वजकर—पाणिहाटी ग्रामवासी, राघव पण्डित के अनुगत गौरभक्त; अब भी पाणिहाटी में उनके घर की नींव दिखलायी पड़ती है।

गौड़ीय भक्तों के पुरी में आने के दिन नरेन्द्र सरोवर में श्रीगोविन्द देव के जलक्रीड़ा-उत्सव का होना—

एइमते वैष्णव सब नीलाचले आइला।
दैवे जगन्नाथेर से दिन जल-लीला॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—इस प्रकार समस्त वैष्णव श्रीजगन्नाथ पुरी पहुँच गये, सौभाग्य से उसी दिन भगवान् श्रीजगन्नाथ की जल-लीला (नौका-विहार) था।

नरेन्द्रेर जले 'गोविन्द' नौकाते चड़िया।
जलक्रीड़ा करे सब भक्तगण लञा॥ ४२ ॥

४२। प० अनु०—भगवान् श्रीगोविन्द देव ने सब भक्तों के साथ नौका पर चढ़कर नरेन्द्र सरोवर के जल में जल-क्रीड़ा की।

उस समय प्रभु का भी पुरी वासी भक्तों के साथ कृष्ण की जल-केलि का दर्शन—

सेइकाले महाप्रभु भक्तगण-सङ्गे।
नरेन्द्रे आइला देखिते जलकेलि-रङ्गे॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—उसी समय श्रीमन्महाप्रभु आनन्दित होकर भक्तों के साथ भगवान् की जलक्रीड़ा को देखने के लिये नरेन्द्र सरोवर पर आये।

उस समय ही प्रभु के साथ गौड़ीय-भक्तों का मिलन—

सेइकाले सब गौड़ेर भक्तगण।
नरेन्द्रेते प्रभु-सङ्गे हइल मिलन॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—उसी समय गौड़ देश से आये समस्त भक्तों का नरेन्द्र सरोवर पर श्रीमन्महाप्रभु के साथ मिलन हुआ।

भक्तों के द्वारा प्रणाम, प्रभु के द्वारा आलिङ्गन—

भक्तगण पड़े आसि' प्रभुर चरणे।
उठाञा प्रभु सबारे कैला आलिङ्गने॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—सभी गौड़ीय भक्त आकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में पड़ गये। श्रीमन्महाप्रभु ने उन सबको उठाकर उनका आलिङ्गन किया।

गौड़ीय भक्तों का कीर्त्तन-गान, भक्तों के द्वारा क्रन्दन—

गौड़ीय-सम्प्रदाय सब करेन कीर्त्तन।
प्रभुर मिलने उठे प्रेमेर क्रन्दन॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—पुरी में वास करने वाले गौड़ीय-सम्प्रदाय के समस्त भक्त कीर्त्तन कर रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु के साथ गौड़देश से आये भक्तों का मिलन होने पर प्रेम क्रन्दन प्रारम्भ हुआ।

भक्तों के साथ गोविन्द देव की जलक्रीड़ा—

जलक्रीड़ा, वाद्य, गीत, नर्तन, कीर्त्तन।
महाकोलाहल तीरे, सलिले खेलन॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—श्रीगोविन्द देव की जलक्रीड़ा के उपलक्ष्य में सब और वाद्य-यन्त्र बज रहे थे, गान-नृत्य तथा कीर्त्तन इत्यादि हो रहा था। इस प्रकार नरेन्द्र सरोवर के तट पर बहुत अधिक कोलाहल था। साथ ही, कुछ भक्त लोग नरेन्द्र सरोवर के जल में क्रीड़ा भी कर रहे थे।

कीर्त्तन और क्रन्दन ध्वनि का एकसाथ मिलकर महाध्वनि होना—

गौड़ीया-सङ्कीर्त्तने आर रोदन मिलिया।
महाकोलाहल-शब्द हैल ब्रह्माण्ड भरिया॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—पुरी में वास करने वाले गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्तों द्वारा किये जा रहे सङ्कीर्त्तन में गौड़देश से आये भक्तों के क्रन्दन के मिल जाने पर वहाँ इतना

अधिक कोलाहल हुआ कि उससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गूँज उठा।

भक्तों के साथ प्रभु की जल-क्रीड़ा—

सब भक्त लञा प्रभु नामिलेन जले।
सबा लञा जलक्रीड़ा करेन कुतूहले॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु भी अपने समस्त भक्तों को साथ में लेकर नरेन्द्र सरोवर के जल में उतरे तथा उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक सभी भक्तों के साथ जल-क्रीड़ा की।

चैतन्यभागवत में प्रभु की जलक्रीड़ा वर्णित—

प्रभुर एइ जलक्रीड़ा दास-वृन्दावन।
'चैतन्यमङ्गले' विस्तारि' कैराछेन वर्णन॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की इस जल-क्रीड़ा का श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने स्वरचित चैतन्यमङ्गल (श्रीचैतन्यभागवत) में विस्तार से वर्णन किया है।

अमृतप्रवाह भाष्य

५०। चैतन्यमङ्गल में,—चैतन्यभागवत में अन्त्य-लीला का नवम अध्याय द्रष्टव्य।

ग्रन्थ के बड़े होने के भय से पुनरुक्ति नहीं—

पुनः इँहा वर्णिले पुनरुक्ति हय।
व्यर्थ लिखन हय, मोर ग्रन्थ बाड़य॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—पुनः इसी प्रसङ्ग का वर्णन करने से पुनरुक्ति होगी, लिखना वास्तव में व्यर्थ होगा तथा मेरे द्वारा रचित ग्रन्थ का आकार भी बढ़ जायेगा।

अपने-अपने भक्तों के साथ गोविन्द-देव और प्रभु का अपने-अपने स्थान पर जाना—

जललीला करि' गोविन्द चलिला आलय।
निजगण लञा प्रभु गेला देवालय॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—जल-क्रीड़ा करने के उपरान्त भगवान् श्रीगोविन्द अपने मन्दिर की ओर चल दिये। श्रीमन्महाप्रभु भी अपने भक्तों सहित जगन्नाथ मन्दिर चले गये।

अनुभाष्य

५२। जगन्नाथ मन्दिर में विजय विग्रह श्रीगोविन्द देव के विग्रह हैं; वही नरेन्द्र सरोवर में जलक्रीड़ा करने जाते हैं।

जगन्नाथ दर्शन के पश्चात् भक्तों को भोजन कराने के बाद अपने स्थान पर भेजना—

जगन्नाथ देखि' पुनः निज-घर आइला।
प्रसाद आनाञा भक्तगणे खाओयाइला॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन करके पुनः अपने वासस्थान पर लौट आये। उन्होंने मन्दिर से प्रसाद मँगवाकर भक्तों को खिलाया।

इष्टगोष्ठी सबा लञा कतक्षण कैला।
निज-निज-पूर्व-वासाय सबाय पाठाइला॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कुछ समय तक अपने समस्त भक्तों के साथ इष्टगोष्ठी की तथा उन्होंने सभी भक्तों को उनके पूर्व-पूर्व वर्षों वाले अपने-अपने वासस्थान पर भेज दिया।

राघव के द्वारा गोविन्द के निकट अपनी झालि रखना—

गोविन्द-ठाञि राघव झालि समर्पिला।
भोजन-गृहेर कोणे झालि राखिला॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—श्रीराघव पण्डित ने श्रीगोविन्द के निकट झालि को समर्पित कर दिया तथा श्रीगोविन्द ने उस झालि को भोजन-गृह के एक कोने में रख दिया।

पूर्व-वत्सरेर झालि आजाड़ करिया।
द्रव्य भरिवारे राखे अन्य गृहे लञा॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने पिछले वर्ष की झालि को भली-भाँति खाली तथा साफ करके किसी अन्य वस्तु आदि को भरने के लिये अन्य कमरे में रख दिया।

अनुभाष्य

५६। आजाड़,—खाली, शून्य।

एकदिन प्रातः प्रभु का भक्तों के साथ जगन्नाथ दर्शन—

आर दिन महाप्रभु निजगण लञा।
जगन्नाथ देखिलेन शय्योत्थाने जाञा॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—एकदिन श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्तों को साथ ले जाकर भगवान् श्रीजगन्नाथ को शय्या से उठते हुए देखा।

सात-सम्प्रदायों में बेड़ा-सङ्कीर्त्तन-वर्णन—

बेड़ा-सङ्कीर्त्तन ताँहा आरम्भ करिला।
सात-सम्प्रदाय तबे गाइते लागिला॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने वहाँ बेड़ा अर्थात् घूम-घूमकर किया जाने वाला-सङ्कीर्त्तन प्रारम्भ किया तथा उस समय सात-मण्डलियों में कीर्त्तन होने लगा।

अनुभाष्य

५८। बेड़ा कीर्त्तन,—मध्य-लीला के एकादश परिच्छेद की २१५-२३८ तक की संख्या द्रष्टव्य।

सात-सम्प्रदाये नृत्य करे सात-जन।
अद्वैत-आचार्य, आर प्रभु-नित्यानन्द॥ ५९ ॥
वक्रेश्वर, अच्युतानन्द, पण्डित-श्रीवास।
सत्यराज-खाँन, आर नरहरिदास॥ ६० ॥

प्रभु के द्वारा महत्-ऐश्वर्य का प्रकाश—

सात-सम्प्रदाये प्रभु करेन भ्रमण।
'मोर सम्प्रदाये प्रभु'—ऐछे सबार मन॥ ६१ ॥

५९-६१। प० अनु०—सात मण्डलियों में क्रमशः सात भक्त नृत्य कर रहे थे, यथा— श्रीअद्वैत आचार्य, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीवक्रेश्वर पण्डित, श्रीअच्युतानन्द, श्रीवास पण्डित, श्रीसत्यराज खाँन तथा श्रीनरहरिदास। यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु सातों मण्डलियों में भ्रमण कर रहे थे, तब भी सभी मण्डलियों के भक्तों को ऐसा प्रतीत हो रहा था, "श्रीमन्महाप्रभु हमारी ही मण्डली में हैं।"

महासङ्कीर्त्तन-ध्वनि—

सङ्कीर्त्तन-कोलाहले आकाश भेदिल।
सब जगन्नाथवासी देखिते आइल॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—सङ्कीर्त्तन की उच्च ध्वनि ने आकाश को भी भेद दिया, समस्त जगन्नाथपुरी वासी सङ्कीर्त्तन करने वाले भक्तों के दर्शन करने के लिये आये।

महिषियों के साथ राजा के द्वारा सङ्कीर्त्तन का दर्शन—

राजा आसि' दूरे देखे निजगण लञा।
राजपत्नी सब देखे अट्टाली चड़िया॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—महाराज प्रतापरुद्र ने भी अपने गणों के साथ आकर दूर से सङ्कीर्त्तन करने वाले भक्तों का दर्शन किया। महाराज प्रतापरुद्र की पटरानियों ने अट्टालिका पर चढ़कर सङ्कीर्त्तन करने वाले भक्तों के दर्शन किये।

महासङ्कीर्त्तन का वेग—

कीर्त्तन-आवेशे पृथिवी करे टलमल।
'हरिध्वनि' करे लोक, हैल कोलाहल॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—भक्तों के द्वारा किये गये कीर्त्तन के आवेश से पृथ्वी भी टलमल करने लगी। सभी लोग 'हरि, हरि', शब्द की ध्वनि करने लगे जिससे बहुत उच्च स्वर होने लगा।

अनुभाष्य

६४। कीर्त्तनावेशे (कीर्त्तन के आवेश में)— पाठान्तर में 'कीर्त्तनाटोपे'—कीर्त्तन का वेग अथवा संरम्भ-वशतः॥

प्रभु की नृत्य करने की अभिलाषा—

एइमत कतक्षण कराइला कीर्त्तन।
आपने नाचिते तबे प्रभुर हैल मन॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने इस प्रकार बहुत समय तक कीर्त्तन कराया, तब स्वयं श्रीमन्महाप्रभु की

नृत्य करने की इच्छा हुई।

सात सम्प्रदायों में प्रभु का नृत्य—

सात-दिके सात-सम्प्रदाय गाय, बाजाय।
मध्ये महाप्रेमावेशे नाचे गौर-राय॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—सातों दिशाओं में सात मण्डलियाँ गाने तथा बजाने लगीं एवं बीच में श्रीगौर राय अत्यधिक प्रेम के आवेश में नृत्य करने लगे।

स्वरूप को उड़िया-गान का पद गाने की आज्ञा—

उड़िया-पद महाप्रभुर मने स्मृति हैल।
स्वरूपेरे सेइ पद गाइते आज्ञा दिल॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—उस समय श्रीमन्महाप्रभु के मन में एक उड़िया-पद स्मरण हो आया, उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदर को उस पद का गान करने की आज्ञा दी।

यथा पद—

''जगमोहन-परिमुण्डा जाङ्॥'' ६८ ॥

६८। प० अनु०—जगमोहन नामक भगवान् श्रीजगन्नाथ के नाट्य मन्दिर के प्रति मेरा मस्तक समर्पित हो।

अमृतप्रवाह भाष्य

६८। जगन्नाथ मन्दिर में एक बहुत बड़े स्थान को 'जगमोहन' (नाट्य-मन्दिर) कहते हैं। उसमें एक 'गरुड़ स्तम्भ' है। उस जगमोहन के जिस स्थान पर भक्त नृत्य करते हैं, उसे 'परिमण्डल' कहते हैं; परिमण्डल का ही उड़ीसा भाषा में अपभ्रंश 'परिमुण्डा' है; उड़िया पद को इस स्थान पर सम्पूर्ण रूप में नहीं देने से अच्छा अर्थ नहीं निकलता। ऐसा पद आजकल उड़िया भाषा में प्रसिद्ध नहीं हैं,—किन्तु अवश्य ही किसी विशेष भाव का ही सूचकमात्र है।

अनुभाष्य

६८। जगमोहन,—जगमोहन - नामक श्रीजगन्नाथ देव का नाट्यमन्दिर ; परि,—प्रति; मुण्डा,—मस्तक; जाङ्,—अर्पित हो, प्रेरित हो।

प्रेम के आवेश में प्रभु के द्वारा किये जाने वाले नृत्य को देखकर सभी आनन्दित—

एइ पदे नृत्य करेन आपन-आवेशे।
सबलोक चौदिके प्रभुर प्रेमे भासे॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उपरोक्त पद को श्रवण करके अपने आवेश में नृत्य करने लगे। चारों ओर खड़े समस्त लोग श्रीमन्महाप्रभु के प्रेम को देखकर उसमें निमग्न हो गये।

प्रभु के मुख से केवल हरिबोल की ध्वनि—

'बोल' 'बोल' बलेन प्रभु श्रीबाहु तुलिया।
हरिध्वनि करे लोक आनन्दे भासिया॥ ७० ॥

७०। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु अपनी श्रीभुजाओं को उठाकर कहने लगे—'बोलो', 'बोलो'। समस्त लोग उनके मुख से ऐसा सुनकर आनन्द में निमग्न होकर हरिध्वनि करने लगे।

प्रभु के सात्त्विक विकार समूह—

प्रभु पड़ि' मूर्च्छा जाय, श्वास नाहि आर।
आचम्बिते उठे प्रभु करिया हुङ्कार॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०— कभी तो श्रीमन्महाप्रभु मूर्च्छित होकर गिर पड़ते तथा ऐसा प्रतीत होता कि उनका श्वास-प्रश्वास बन्द हो गया है एवं कभी वे अचानक हुङ्कार भरते हुए उठकर खड़े हो जाते।

सघन पुलक,—जेन शिमुलेर तरु।
कभु प्रफुल्लित अङ्ग, कभु हय सरु॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के दिव्य कलेवर पर ऐसा घना पुलक होता मानो उनकी देह काँटे वाले शिमुल का वृक्ष हो। कभी तो श्रीमन्महाप्रभु के समस्त अङ्ग प्रफुल्लित हो उठते तथा कभी वह सब संकुचित हो जाते।

प्रति रोमे हय प्रस्वेद, रक्तोद्गम्।
'जज' '' गग' 'परि' 'मुमु'—गद्गद वचन॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के प्रत्येक रोम-रोम से पसीना बहने लगता, कभी उनमें से रक्त प्रवाहित होने लगता। श्रीमन्महाप्रभु की इच्छा 'जगमोहन परिमुण्डा जाङ्' उच्चारण करने की होने पर भी उनके कंठ के अवरुद्ध होने के कारण उनके मुख से 'जज' 'गग' 'परि' 'मुमु' आदि जैसे आधे-अधूरे गद्‌गद वचन उच्चारित होने लगते।

दाँतो का हिलना –

एक एक दन्त सब पृथक् पृथक् नड़े।
ऐछे नड़े दन्त,—जेन भूमे खसि' पड़े॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का एक-एक दाँत अलग-अलग होकर हिलने लगता। उनके दाँत ऐसे हिलते, मानो वे भूमि पर गिर पड़ेगें।

आनन्द रूपी समुद्र का वर्धित होना—

क्षणे क्षणे बाड़े प्रभुर आनन्द-आवेश।
तृतीय प्रहर हइल, नृत्य नहे शेष॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के आनन्द का आवेश क्षण-क्षण में वर्धित होता जा रहा था। तृतीय प्रहर हो गया किन्तु श्रीमन्महाप्रभु का नृत्य समाप्त नहीं हुआ।

सभी को ही देह अथवा बाहरी जगत् की विस्मृति—

सब लोकेर उथलिल आनन्द-सागर।
सब लोक पासरिल देह-आत्म-घर॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—सभी दर्शकों में आनन्द रूपी सागर उमड़ पड़ा तथा सभी लोग अपने देह, मन तथा घर की सुध-बुध खो बैठे।

नित्यानन्द प्रभु के द्वारा कीर्त्तन को भङ्ग करने का उपाय निकालना—

तबे नित्यानन्द प्रभु सृजिला उपाय।
क्रमे-क्रमे कीर्त्तनीया राखिल सबाय॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—बहुत अधिक देर तक सङ्कीर्त्तन के होने के पश्चात् श्रीनित्यानन्द प्रभु ने कीर्त्तन को विराम देने का एक उपाय निकाला। उन्होंने एक-एक करके सभी कीर्त्तन करने वाले भक्तों को कीर्त्तन समाप्त करने के लिये कहा।

स्वरूप आदि का मृदुस्वर में गान—

प्रधान प्रधान जेबा हय सम्प्रदाय।
स्वरूपेर सङ्गे सेइ मन्दस्वर गाय॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—सातों मण्डलियों के प्रधान-प्रधान कीर्त्तन करने वाले भक्त श्रीस्वरूप दामोदर के साथ मन्द-मन्द स्वर में गान करने लगे।

प्रभु का अर्ध-बाह्य-दशा में आगमन—

कोलाहल नाहि, प्रभुर किछु बाह्य हैल।
तबे नित्यानन्द सबार श्रम जानाइल॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—कीर्त्तन के शब्द को नहीं सुनने के कारण श्रीमन्महाप्रभु की कुछ बाह्य दशा प्रकाशित हुई, तब श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु को समस्त भक्तों के परिश्रम के विषय में बतलाया।

नित्यानन्द की बात से भक्तों के परिश्रम को जानकर कीर्त्तन समाप्ति और सभी के द्वारा समुद्र स्नान—

भक्तश्रम जानि' कैला कीर्त्तन समापन।
सबा लञा आसि' कैला समुद्रे स्नपन॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु के मुख से भक्तों के परिश्रम के विषय में सुनकर कीर्त्तन को विश्राम दिया, तत्पश्चात् सभी भक्तों को साथ में ले आकर समुद्र में स्नान किया।

सभी के द्वारा प्रसाद का सम्मान—

सब लञा प्रभु कैला प्रसाद-भोजन।
सबारे विदाय दिला करिते शयन॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने समस्त भक्तों को अपने साथ लेकर प्रसाद ग्रहण किया, तत्पश्चात् उन्होंने

सभी भक्तों को शयन करने के लिये विदायी दी।

प्रभु का शयन, गोविन्द के द्वारा चरण दबाना—

गम्भीरार द्वारे करेन आपने शयन।
गोविन्द आसिया करे पाद-सम्वाहन॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु स्वयं गम्भीरा के द्वार पर शयन करने लगे, श्रीगोविन्द उनका पाद-सम्वाहन करने के लिये आये।

अनुभाष्य

८२। गम्भीरा,—घर के भीतर वाली कोठरी।

प्रतिदिन धीरे-धीरे चरण दबाने के फलस्वरूप प्रभु के नींद आ जाने पर गोविन्द के द्वारा प्रभु के उच्छिष्ट को प्राप्त करने की रीति—

सर्वकाल आछे एइ सुदृढ़ 'नियम'।
'प्रभु यदि प्रसाद पाञा करेन शयन॥ ८३ ॥
गोविन्द आसिया करे पाद-सम्वाहन।
तबे जाइ' प्रभुर 'शेष' करेन भोजन॥' ८४ ॥

८३-८४। प० अनु०—श्रीगोविन्द का सर्वदा का यह सुदृढ़ (अत्यन्त पक्का) नियम था कि जब श्रीमन्महाप्रभु प्रसाद पाकर शयन करते तब श्रीगोविन्द आकर उनके चरणों का सम्वाहन करते तथा यह सेवा करने के बाद ही जाकर श्रीमन्महाप्रभु के अवशिष्ट प्रसाद का भोजन करते।

थके हुए प्रभु के द्वारा सम्पूर्ण द्वार को घेरकर शयन—

सब द्वार जुड़ि' प्रभु कैराछेन शयन।
भितरे जाइते नारे, गोविन्द करे निवेदन॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु पूरे द्वार को घेरकर लेटे हुए थे। श्रीगोविन्द भीतर नहीं जा पा रहे थे। इसलिए उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु से निवेदन किया—।

चरण को दबाने के लिये गोविन्द के द्वारा प्रभु को पासा-पलटने की प्रार्थना, प्रभु के द्वारा अपने अङ्ग को इधर-उधर हिलाने में असमर्थता प्रकाशित करना—

''एकपाश हओ, मोरे देह' भितरे जाइते।''
प्रभु कहे,—''शक्ति नाहि अङ्ग चलाइते॥'' ८६ ॥

८६। प० अनु०— ''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप कृपया एक ओर हो जाइये। मुझे भीतर जाने दीजिए।'' श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मुझमें अपने शरीर को हिलाने-डुलाने तक की भी शक्ति नहीं है।''

गोविन्द के द्वारा पुनः पुनः प्रार्थना करने पर भी प्रभु का एक ही उत्तर—

बार बार गोविन्द कहे एकदिक् हइते।
प्रभु कहे,—''अङ्ग आमि नारि चालाइते॥'' ८७ ॥

८७। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने श्रीमन्महाप्रभु को बारम्बार एक ओर हो जाने के लिये कहा और श्रीमन्महाप्रभु ने भी पुनः पुनः यही उत्तर दिया, ''मैं अपने शरीर को हिला तक भी नहीं पा रहा हूँ।''

गोविन्द के द्वारा चरण दबाने रूपी सेवा की इच्छा, थकावट के कारण प्रभु की उदासीनता—

गोविन्द कहे,—''करिते चाहि पाद-सम्वाहन।''
प्रभु कहे,—''कर वा ना कर, जेइ तोमार मन॥''

८८। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने कहा,—''मैं आपके चरणों का सम्वाहन करना चाहता हूँ।'' श्रीमन्महाप्रभु ने उत्तर दिया,—''तुम करो या फिर नहीं करो, जैसे तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो।''

प्रभु की देह के ऊपर गोविन्द के द्वारा अपने बहिर्वास को रखकर उनका उल्लङ्घन—

तबे गोविन्द बहिर्वास ताँर उपरे दिया।
भितर-घरे गेला गोविन्द प्रभुरे लङ्घिया॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—तब श्रीगोविन्द ने अपने बहिर्वास (उत्तरीय वस्त्र) को श्रीमन्महाप्रभु के ऊपर डाल दिया तथा श्रीमन्महाप्रभु को लाँघकर गम्भीरा के भीतर चले गये।

गोविन्द के द्वारा किये गये मृदु-मधुर सम्मर्दन (मालिश) से

प्रभु की थकावट का दूर होना—

पाद-सम्वाहन कैल, कटि-पृष्ठ चापिल।
मधुर-मर्द्दने प्रभुर परिश्रम गेल॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की सेवा की तथा कमर और पीठ को दबाया। श्रीगोविन्द की मीठी-मीठी मालिश से श्रीमन्महाप्रभु का सारा परिश्रम दूर हो गया।

प्रभु की प्राय एक घण्टे तक नींद—

सुखे निद्रा हैल प्रभुर, गोविन्द चापे अङ्ग।
दण्ड-दुइ वइ प्रभुर हैला निद्रा-भङ्ग॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को बहुत अच्छी नींद आ गयी, श्रीगोविन्द तब भी धीरे-धीरे उनके अङ्गों की सेवा करते रहे। दो दण्ड (48 मिनट) के बाद श्रीमन्महाप्रभु की निद्रा-भङ्ग हो गयी।

नींद टूटने के बाद भी भूखे बैठे गोविन्द को प्रतीक्षा करते देख प्रभु के द्वारा तिरस्कार—

गोविन्दे देखिया प्रभु बले क्रुद्ध हञा।
''आजि केने एतक्षण आछिस् बसिया?? ९२ ॥

९२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द को अभी तक भी वहीं बैठे देखकर क्रोधित होकर कहा—''तुम आज अब तक भी यहाँ क्यों बैठे हुए हो?

प्रभु के द्वारा गोविन्द की शुद्धसेवा की प्रवृत्ति की परीक्षा; प्रभु के सोये होने पर भी गोविन्द के द्वारा प्रसाद के सम्मान के लिये नहीं जाने के कारण की जिज्ञासा—

मोर निद्रा हैले केने ना गेला प्रसाद लैते?''
गोविन्द कहे, —''द्वारे शुइला, जाइते नाहि पथे॥''

९३। प० अनु०—''मुझे नींद आ जाने पर तुम प्रसाद पाने के लिये क्यों नहीं गये?'' श्रीगोविन्द ने उत्तर दिया—''आप तो दहलीज पर ही सो गये, जाने के लिये मार्ग ही नहीं है।''

जाने के समय आने के समय वाले उपाय को नहीं अपनाने के कारण की जिज्ञासा—

प्रभु कहे,—''भितरे तबे आइला केमने?
तैछे केने प्रसाद लैते ना कैला गमने??'' ९४ ॥

९४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूछा,—''हे गोविन्द, फिर तुम भीतर किस प्रकार आये? और फिर उसी प्रकार से प्रसाद पाने के लिये गये क्यों नहीं?''

सब प्रकार से शुद्ध अनुरागी गौर-कृष्ण के सेवक के ही सर्वोत्तम सेवा के आदर्श का वर्णन; गौर-कृष्ण की इन्द्रियों के तर्पण की इच्छा ही सेवक का एकमात्र लक्ष्य करने योग्य विषय—

गोविन्द कहे,—''आमार 'सेवा' से 'नियम'।
अपराध हउक, किबा नरके गमन॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने मन-ही-मन कहा,—मेरा तो सेवा करने का ही नियम है, भले ही उसमें मेरा अपराध हो या फिर नरक में गमन।

गौर-कृष्ण की इन्द्रियों के तर्पण में लेशमात्र आत्मेन्द्रिय तर्पण की इच्छा के प्रति भी शुद्धभक्त की घृणा और अपराध की आशङ्का—

'सेवा लागि' कोटि 'अपराध' नाहि गणि।
स्व-निमित्त अपराधाभासे' भय मानि॥'' ९६ ॥

९६। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९६। मैं प्रभु की सेवा के लिये करोड़ों-करोड़ों अपराधों की भी गिनती नहीं करता; किन्तु अपने भोगों के लिये अपराध के आभास मात्र से भी भय करता हूँ।

अनुभाष्य

९६। आदि-लीला के चतुर्थ परिच्छेद की २०१ वीं संख्या द्रष्टव्य—''निजप्रेमानन्दे कृष्ण सेवानन्द बाधे। से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे।'' [अर्थात् अपने प्रेमानन्द के कारण यदि कृष्ण-सेवानन्द में बाधा आती है, तो उस आनन्द के प्रति भक्त महाक्रोधित होते हैं।]

महाप्रसाद के प्रति साक्षात् ब्रह्म-वस्तु और तदीय-वस्तु की भावना रहने पर भी व्यक्तिगत निजसम्बन्ध के कारण आत्मेन्द्रिय प्रीति वाञ्छा की आशङ्का से गोविन्द के द्वारा प्रभु की नींद टूटने तक प्रतीक्षा—

एत सब मने करि' गोविन्द रहिला।
प्रभु जे पुछिला, तार उत्तर ना दिला॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—श्रीगोविन्द इन समस्त विचारों को मन-ही-मन सोचने लगे। जो बात श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे पूछी, उन्होंने उसका कोई भी उत्तर नहीं दिया।

अन्य दिनों में प्रभु के सो जाने पर गोविन्द के द्वारा प्रसाद के सम्मान के लिये जाना—

प्रत्यह प्रभुर निद्राय जान प्रसाद लइते।
से दिवसेर श्रम देखि' लागिला चापिते॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—श्रीगोविन्द प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभु को नींद आ जाने के बाद प्रसाद ग्रहण करते थे किन्तु उस दिन श्रीमन्महाप्रभु के अधिक परिश्रम को देखकर वे बहुत समय तक उनकी सेवा करते रहे।

उस दिन प्रसाद के सम्मान के लिये जाने में असुविधा का कारण—

जाइतेह पथ नाहि, जाइबेन केमने?
महा-अपराध हय प्रभुर लङ्घने॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—बाहर जाने का मार्ग भी नहीं था, जाते तो जाते कैसे? श्रीमन्महाप्रभु को लाँघने से तो बहुत बड़ा अपराध होता।

चैतन्य के कृपा-पात्र को ही शुद्ध भक्ति के रहस्य का ज्ञान—

एइ सब हय भक्ति शास्त्र-सूक्ष्म मर्म।
चैतन्येर कृपाय जाने एइ सब धर्म॥ १०० ॥

१००। प० अनु०— यह सब भक्ति से सम्बन्धित शास्त्रों के सूक्ष्म मर्म हैं, श्रीगोविन्द श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा से इन सब विचारों को भली-भाँति जानते थे।

अनुभाष्य

१००। कर्मी लोग भक्तिशास्त्रों के सूक्ष्म मर्म को नहीं समझ पाने के कारण अनुष्ठान—मात्र को ही भक्ति के समान मानते हैं; किन्तु जिससे भगवान् की सेवा साधित होती है, उसका नाम—'भक्ति' एवं जिससे अपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि प्राकृत-फल की प्राप्ति होती है, वही 'कर्म' है। प्राकृत-सहजिया कर्मी लोग विश्रम्भ-सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव की सेवा-मर्यादा को नहीं समझ पाने के कारण श्रीचैतन्य की कृपा को प्राप्त करने से वञ्चित होते हैं।

अपने भक्तों की शुद्ध भक्ति के माहात्म्य को प्रकाशित करने वाले प्रभु—

भक्त-गुण प्रकाशिते प्रभु बड़ रङ्गी।
एइ सब प्रकाशिते कैला एत भङ्गी॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु भक्तों के गुणों को प्रकाशित करने में बहुत आनन्दित होते हैं। उन्होंने अपने सेवक श्रीगोविन्द की महिमा को प्रकाशित करने के उद्देश्य से ही इतनी भङ्गिमा की।

गौर भक्तों के द्वारा नित्य गान किये जाने वाले प्रभु का मण्डली बद्ध-नृत्य—

संक्षेपे कहिलुँ एइ परिमुण्डा-नृत्य।
अद्यापिह गाय जाहा चैतन्येर भृत्य॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०— मैंने संक्षेप में ही मण्डली बनाकर किये गये उस नृत्य का वर्णन किया, जिसका गान श्रीचैतन्य महाप्रभु के दास आज तक भी करते हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०२। परिमुण्डा-नृत्य,—परिमण्डल (मण्डली बनाकर किया गया) नृत्य।

भक्तों के साथ गुण्डिचा-मार्जन—

एइमत महाप्रभु लञा निजगण।
गुण्डिचा-गृहेर कैला क्षालन, मार्जन॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—इस प्रकार करते-करते रथयात्रा का समय हो आया। रथ-यात्रा से एक दिन पहले श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्तों को साथ में लेकर गुण्डिचा

मन्दिर का मार्जन किया तथा उसे जल आदि के द्वारा धोया।

आइटोटा में प्रसाद-सेवन—

पूर्ववत् कैला प्रभु कीर्त्तन, नर्त्तन।
पूर्ववत् टोटाय कैला वन्य-भोजन॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति ही कीर्त्तन तथा नृत्य किया एवं पहले की ही भाँति बगीचे में वन-भोजन किया।

रथ के आगे नृत्य और हेरा-पञ्चमी-दर्शन—

पूर्ववत् रथ-आगे करिला नर्त्तन।
हेरापञ्चमी-यात्रा कैला दरशन॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूर्व वर्षों की भाँति ही भगवान् श्रीजगन्नाथदेव के रथ के समक्ष नृत्य किया तथा श्रीलक्ष्मी जी की हेरा पञ्चमी-यात्रा का भी दर्शन किया।

चातुर्मास्य तक गौड़ीय भक्तों का पुरी में रहना—

चारिमास वर्षाय रहिला सब भक्तगण।
जन्माष्टमी-आदि यात्रा कैला दरशन॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—गौड़देश से आये समस्त भक्त श्रीजगन्नाथ पुरी में वर्षा के चार मास तक रहे, उन्होंने वहीं श्रीकृष्ण जन्माष्टमी आदि महोत्सवों का दर्शन किया।

गौड़ से भक्तों के द्वारा संगृहीत नैवेद्य—

पूर्वे यदि गौड़ हइते भक्तगण आइल।
प्रभुरे किछु खाओयाइते सबार इच्छा हैल॥ १०७॥

१०७। प० अनु०—जब गौड़देश से भक्तगण आये थे तब सभी की श्रीमन्महाप्रभु को कुछ-न-कुछ खिलाने की इच्छा हुई थी।

प्रभु की सेवा के लिये गोविन्द को उनके द्वारा सब वस्तुएँ देना—

केह कोन प्रसाद आनि' देय गोविन्द-ठाञि।
''इहा जेन अवश्य भक्षण करेन गोसाञि॥'' १०८॥

१०८। प० अनु०—जब कोई भक्त श्रीगोविन्द को श्रीमन्महाप्रभु के उद्देश्य से कोई प्रसाद लाकर देता तो वह श्रीगोविन्द से कहता—''कृपया ध्यान रखना कि श्रीमन्महाप्रभु हमारे द्वारा दी गयी इस-वस्तु का अवश्य ही भक्षण करें।''

नैवेद्यों की विचित्रता—

केह पेड़ा, केह नाड़ु, केह पिठा पाना।
बहुमूल्य उत्तम-प्रसाद, प्रकार जार नाना॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—किसी भक्त ने पेड़ा, किसी ने लड्डु तथा किसी अन्य ने पीठा-पाना आदि लाकर दिया। इस प्रकार सभी भक्तों ने अनेक प्रकार के उत्तम गुणों वाला प्रसाद लाकर श्रीगोविन्द को दिया।

अनुभाष्य

१०९। पाठान्तर में,—'पैड़', 'बहुमूल्य प्रसाद सब पद्मचिनि छाना'।

प्रभु के नहीं खाने के कारण बहुत से नैवेद्यों का एकत्रित होना—

''अमुक् एइ दियाछे'' गोविन्द करे निवेदन।
''धरि' राख'', बलि' प्रभु ना करे भक्षण॥ ११०॥

११०। प० अनु०—श्रीगोविन्द प्रतिदिन प्रसाद के समय श्रीमन्महाप्रभु को निवेदन करते—''अमुक् व्यक्ति अमुक् वस्तु लेकर आया है।'' श्रीमन्महाप्रभु श्रीगोविन्द से—''सम्भाल कर रख लो''—कहकर भक्षण नहीं करते थे।

धरिते धरिते घरेर भरिल एक कोण।
शत-जनेर भक्ष्य जत हैल सञ्चयन॥ १११ ॥

१११। प० अनु०—भक्तों के द्वारा लाये गये प्रसाद को रखते-रखते घर का एक कोना भर गया तथा सौ लोगों के भक्षण करने योग्य प्रसाद एकत्रित हो गया।

अपने-अपने द्वारा दिये गये नैवेद्य के सेवन के विषय में भक्तों के द्वारा गोविन्द से पूछना—

गोविन्देरे सबे पुछे करिया यतन।
''आमा-दत्त प्रसाद प्रभुरे कि कराइला भक्षण??''

११२। प० अनु०—सभी भक्त श्रीगोविन्द से बहुत आग्रह सहित जिज्ञासा करते—''हे गोविन्द प्रभु! क्या आपने मेरे द्वारा दी गयी वस्तु श्रीमन्महाप्रभु को भक्षण करायी है?''

गोविन्द के द्वारा छलपूर्ण वचनों से देने वाले को सान्त्वना प्रदान—

काँहा किछु कहि' गोविन्द करेन वञ्चन।
आर दिन प्रभुरे कहे निर्वेद-वचन॥ ११३ ॥

११३। प० अनु०—श्रीगोविन्द किसी को कुछ तो अन्य किसी को और कुछ कहकर भक्तों की वञ्चना करते। एकदिन श्रीगोविन्द ने कुछ दु:खित होते हुए श्रीमन्महाप्रभु से कहा—।

प्रभु से गोविन्द का निवेदन—

''आचार्यादि महाशय करिया यतने।
तोमारे खाओयाइते वस्तु देन मोर स्थाने॥ ११४ ॥

११४। प० अनु०—''श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्त बहुत आग्रह पूर्वक आपको खिलाने के लिये मुझे अनेक वस्तुएँ देकर जाते हैं।

तुमि से ना खाओ, ताँरा पुछे बार बार।
कत वञ्चना करिमु, केमने आमार निस्तार॥''११५॥

११५। प० अनु०—''आप उन वस्तुओं को खाते नहीं तथा वे मुझसे बार-बार इस विषय में पूछते हैं। मैं उन सबकी कितनी वञ्चना करूँ, मेरा इससे कैसे छुटकारा हो?''

प्रभु के द्वारा भक्तों के दु:ख के कारण की जिज्ञासा—

प्रभु कहे,—''आदिवस्या, दु:ख काँहे माने?
केबा कि दियाछे, ताहा आनह एखाने॥'' ११६ ॥

११६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''आदिवस्या (जो मेरे साथ में बहुत समय से वास करने के कारण मुझे भली-भाँती जानते हैं, वे) दु:ख क्यों करते हैं? किसने क्या दिया है, तुम उसे यहाँ लेकर आओ।''

अमृतप्रवाह भाष्य

११६। आदिवस्या,—पहले से ही जिनका वास, उन्हें 'आदिवस्या' कहते हैं। प्रभु ने कहा,—जो 'आदिवस्या' हैं अर्थात् मेरे साथ इकठ्ठे पहले से ही रहते हैं, उनका इसमें कोई दु:ख नहीं है; कारण, आपातत: जो गौड़ से [अर्थात् मुझे भली-भाँति जानने वाले]आये हैं, वही तो इन सब सुस्वादिष्ट खाद्य वस्तुओं को लाये हैं।

अनुभाष्य

११६। आदिवस्या,—किसी-किसी के मतानुसार 'भाग्यहीन' अथवा अबोध अथवा निर्बोध, चञ्चलमति वाले अथवा आ-देखला(अत्यधिक व्यग्र, 'काङ्गला') आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।

प्रभु का भोजन के लिये बैठना, गोविन्द के द्वारा प्रत्येक नैवेद्य देने वाले गौड़ीय-भक्त के नाम का उल्लेख करके नैवेद्य-परोसना—

एत बलि' महाप्रभु बसिला भोजने।
नाम धरि' गोविन्द करे निवेदने॥ ११७ ॥

११७। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु भोजन करने के लिये बैठ गये तथा श्रीगोविन्द भिन्न-भिन्न भक्तों के नाम ले-लेकर निवेदन करने लगे—।

''आचार्येर एइ पैड़, नाना-रस-पूपी।
एइ अमृत-गुटिका, मण्डा, कर्पूर-कूपी॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—''श्रीअद्वैताचार्य प्रभु यह नारियल, अनेक प्रकार के रसयुक्त पूर देकर बनाये गये मिष्ठान्न तथा अमृत-गुटिका, मण्डा और कर्पूर-कूपी लेकर आये हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

११८। पैड़,—(उड़िया भाषा में) नारियल।

अनुभाष्य

११८। पूपी—पिष्टक (पीठा) ; कूपी,—कर्पूर रखने का पात्र विशेष।

श्रीवास-पण्डितेर एइ अनेक प्रकार।
पिठा, पाना, अमृतमण्डा, पद्म-चिनि-आर॥ ११९॥

११९। प० अनु०—''श्रीवास पण्डित पिठा, पाना, अमृतमण्डा तथा पद्मचीनी आदि अनेक प्रकार के द्रव्य लाये हैं।

आचार्यरत्नेर एइ सब उपहार।
आचार्यनिधिर एइ, अनेक प्रकार॥ १२० ॥

१२०। प० अनु०—''श्रीआचार्यरत्न प्रभु यह समस्त उपहार लाये हैं तथा श्रीआचार्यनिधि भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ लाये हैं।

वासुदेव-दत्तेर, मुरारि गुप्तेर आर।
बुद्धिमन्त-खाँनेर एइ विविध प्रकार॥ १२१ ॥

१२१। प० अनु०—''श्रीवासुदेव दत्त, श्रीमुरारि गुप्त और श्रीबुद्धिमन्त खाँन इन विविध प्रकार की वस्तुओं को लाये हैं।

श्रीमान्-सेन, श्रीमान्-पण्डित, आचार्यनन्दन।
ताँ-सबार दत्त एइ करह भोजन॥ १२२ ॥

१२२। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! श्रीमान् सेन, श्रीमान् पण्डित, श्रीआचार्य नन्दन द्वारा प्रदत्त इन वस्तुओं का भोजन कीजिए।

कुलीनग्रामेर एइ आगे देख जत।
खण्डवासी लोकेर एइ देख तत॥'' १२३ ॥

१२३। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप अपने समक्ष रखे कुलीनग्राम वासियों द्वारा लाये गये इन द्रव्यों को देखिये तथा लगभग उतने ही परिमाण वाले खण्डवासी भक्तों द्वारा लाये गये द्रव्यों को भी देखिए।''

प्रभु के द्वारा सभी के द्वारा प्रदान किये गये नैवेद्यों का भोजन—

ऐछे सबार नाम लञा प्रभुर आगे धरे।
सन्तुष्ट हञा प्रभु सब भोजन करे॥ १२४ ॥

१२४। प० अनु०—श्रीगोविन्द इस प्रकार समस्त भक्तों का नाम ले-लेकर उनके द्वारा प्रदत्त वस्तुओं को श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष रखते गये तथा श्रीमन्महाप्रभु सन्तुष्ट होकर सब वस्तुओं का भोजन करने लगे।

बहुत दिन पहले बनाया गया होने पर भी ताजे बनाये गये प्रसाद की भाँति स्वादिष्ट और सुगन्धित—

यद्यपि मासेकेर बासि मुकुता नारिकेल।
अमृत-गुटिकादि, पानादि सकल॥ १२५ ॥
तथापि नूतनप्राय सब द्रव्येर स्वाद।
'बासि' 'विस्वाद' नहे, सेइ प्रभुर प्रसाद॥ १२६ ॥

१२५-१२६। प० अनु०—यद्यपि मुखछोला नारियल, अमृत-गुटिका आदि तथा पान आदि से बने लड्डु एक मास पुराने थे तथापि सभी द्रव्यों का स्वाद बिल्कुल ताजा था। श्रीमन्महाप्रभु के लिये लाये गये द्रव्य बासी या फिर बेस्वाद नहीं थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

१२५। मुकुता,—मुखछोला।

दशम परिच्छेद का अमृतप्रवाहभाष्य समाप्त।

शत-जनेर भक्ष्य प्रभु दण्डेके खाइला।
''आर किछु आछे?'' बलि' गोविन्दे पुछिला॥१२७॥

१२७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने सौ व्यक्तियों के द्वारा भक्ष्य द्रव्य को एक दण्ड (24 मिनट) में ही खा लिया। फिर उन्होंने श्रीगोविन्द से पूछा-''अन्य कुछ है?''

सब प्रकार के नैवेद्यों के भोजन के अन्त में राघव की झालि का बाकी रह जाना—

गोविन्द बले,—''राघवेर झालि मात्र आछे।''
प्रभु कहे,—''आजि रहु, ताहा देखिमु पाछे॥''१२८॥

१२८। प० अनु०—श्रीगोविन्द ने कहा,—''अब केवल श्रीराघव पण्डित की झालि ही बची है।'' श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''उसे आज रहने दो, उसे मैं बाद में देखूँगा।''

अन्यदिन प्रभु के द्वारा अकेले भोजन करते समय राघव की झालि में रखे उत्तम नैवेद्यों का भोजन और उसकी प्रशंसा—

आर दिन प्रभु यदि निभृते भोजन कैला।
राघवेर झालि खुलि' सकल देखिला॥ १२९ ॥

१२९। प० अनु०—अन्य किसी दिन जब श्रीमन्महाप्रभु ने एकान्त में भोजन किया, तब उन्होंने श्रीराघव पण्डित की झालि को खोलकर उसमें रखी समस्त सामग्रियों को देखा।

सब द्रव्येर किछु किछु उपयोग कैला।
स्वादु, सुगन्धि देखि' बहु प्रशंसिला॥ १३० ॥

१३०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने उन समस्त द्रव्यों में से कुछ-कुछ ग्रहण किया। श्रीमन्महाप्रभु ने वस्तुओं के स्वाद तथा उनकी सुगन्धि की बहुत प्रशंसा की।

अनुभाष्य

१३०। उपयोग,—स्वीकार, ग्रहण।

एक वर्ष के बाद भी राघव की झालि के विकार-रहित नैवेद्यों का भोजन—

वत्सरेक तरे आर राखिला धरिया।
भोजन-काले स्वरूप परिवेशे खसाञा॥ १३१ ॥

१३१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूरे वर्ष के लिये वस्तुओं को संभालकर रख लिया। श्रीमन्महाप्रभु के भोजन के समय श्रीस्वरूप दामोदर झोलियों को खोल करके उन्हें वह वस्तुएँ परोसते थे।

भक्तों के द्वारा श्रद्धापूर्वक प्रदान किये गये नैवेद्यों को स्वीकार करना—

कभु रात्रिकाले किछु कराय उपयोग।
भक्तेर श्रद्धार द्रव्य अवश्य करेन उपभोग॥ १३२॥

१३२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु कभी-कभी रात्रि के समय में श्रीराघव पण्डित की झालि में से कुछ-कुछ ग्रहण करते थे, कारण श्रीमन्महाप्रभु भक्तों के द्वारा श्रद्धापूर्वक प्रदान किये गये द्रव्यों का अवश्य ही उपभोग करते हैं।

अपने भक्तों के साथ प्रभु के द्वारा कृष्ण की कथा में चातुर्मास्य व्यतीत करना—

एइमत महाप्रभु भक्तगण-सङ्गे।
चातुर्मास्य गोङाइला कृष्णकथा-रङ्गे॥ १३३ ॥

१३३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्तों के साथ चातुर्मास्य को कृष्ण कथा रूपी आनन्द में व्यतीत किया।

अपने-अपने घर में अद्वैताचार्य आदि द्वारा निमन्त्रण—

मध्ये मध्ये आचार्यादि करेन निमन्त्रण।
घरे भात रान्धे आर विविध व्यञ्जन॥ १३४ ॥

१३४। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तगण श्रीमन्महाप्रभु को बीच-बीच में निमन्त्रण करते थे तथा वह अपने घर पर ही चावल और विविध व्यञ्जनों का रन्धन करते थे।

प्रभु को प्रिय लगने वाले विचित्र नैवेद्यों का वर्णन—

मरिचेर झाल, आर मधुराम्ल आर।
आदा, लवण, लेम्बु, दुग्ध, दधि, खण्डसार॥१३५॥
शाक दुइ-चारि, आर सुकतार झोल।
निम्ब-वार्त्ताकी, आर भृष्ट-पटोल॥ १३६ ॥
भृष्ट फुलबड़ी, आर मुद्‌ग-डालि-सूप।
विविध व्यञ्जन रान्धे प्रभुर अनुरूप॥ १३७ ॥

१३५-१३७। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य प्रभु

श्रीमन्महाप्रभु की पसन्द के अनुसार मिर्च डालकर बनाये गये तीखे, कुछ खट्टे-मीठे व्यञ्जन एवं अदरक, नमक, नीबूँ, दूध, दही तथा खण्डसार का उपयोग करके अन्य कुछ व्यञ्जन बना लेते। वे दो-चार प्रकार के साग, सूखे कड़वे पाट साग को पीसकर बनाया गया सुकता का झोल, नीम-बैगुन, भरे हुए परमल, भरी हुई फूलवड़ी, पतली मूँग की दाल आदि विविध व्यञ्जनों को प्रस्तुत करते थे।

अनुभाष्य

१३५-१३७। यहाँ पर ग्रन्थकार के रन्धन की निपुणता प्रकाशित हुई है।

प्रभु के प्रसाद के साथ नैवेद्य-भोजन—

जगन्नाथेर प्रसाद आने करिते मिश्रित।
काँहा एका जायेन, काँहा गणेर सहित॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य प्रभु उपरोक्त समस्त साम्रगियों को तो प्रस्तुत करते-ही-करते, साथ में भगवान् श्रीजगन्नाथ का प्रसाद भी ले आते तथा घर पर बनाये पदार्थों के साथ जगन्नाथ मन्दिर से लाये प्रसाद को भी श्रीमन्महाप्रभु को खिलाते। श्रीमन्महाप्रभु कहीं-कहीं पर तो अकेले ही जाते थे तथा कहीं-कहीं पर अपने भक्तों के साथ में जाते थे।

अन्यान्य निमन्त्रण करने वाले गौड़ीय भक्तगण—

आचार्यरत्न, आचार्यनिधि, नन्दन, राघव।
श्रीवास-आदि जत भक्त, विप्र सब॥ १३९ ॥
एइमत निमन्त्रण करेन यत्न करि'। १४० क ।

१३९-१४० क। प० अनु०—श्रीआचार्य रत्न, श्रीआचार्य निधि, श्रीनन्दन, श्रीराघव पण्डित, श्रीवास पण्डित आदि जितने सब ब्राह्मण भक्त थे, वे निमन्त्रण करके इसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु को अत्यधिक आग्रह पूर्वक भोजन कराते थे।

वासुदेव, गदाधर, गुप्त-मुरारि॥ १४० ख ॥
कुलीनग्रामी, खण्डवासी, आर जत जन।
जगन्नाथेर प्रसाद आनि' करेन निमन्त्रण॥ १४१ ॥

१४० ख - १४१। प० अनु०—श्रीवासुदेव दत्त, श्रीगदाधर दास, श्रीमुरारि गुप्त, कुलीन ग्राम के भक्त, खण्डवासी तथा अन्य जितने समस्त भक्त जन थे, वे सभी श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करके श्रीजगन्नाथ देव के प्रसाद को लाकर उन्हें भोजन कराते थे।

अनुभाष्य

१४१। कुलीनग्रामी,—सत्यराज-खाँन, रामानन्द वसु आदि; खण्डवासी,—मुकुन्ददास, नरहरि-दास, रघुनन्दनादि।

शिवानन्द के पुत्र चैतन्यदास के वृत्तान्त का वर्णन—

शिवानन्द-सेनेर शुन निमन्त्रणाख्यान।
शिवानन्देर बड़-पुत्रेर 'चैतन्यदास'-नाम॥ १४२ ॥

१४२। प० अनु०—हे भक्तों! श्रीशिवानन्द सेन के निमन्त्रण के उपाख्यान का श्रवण करो। श्रीशिवानन्द सेन के बड़े पुत्र का नाम चैतन्यदास था।

अनुभाष्य

१४२। चैतन्यदास,—कृष्णकर्णामृत की संस्कृत-टीका इन्हीं के द्वारा रचित है; कोई-कोई कहते हैं कि चैतन्यचरितामृत महाकाव्य के भी यही रचियता हैं।

प्रभुरे मिलाइते ताँरे सङ्केइ आनिला।
मिलाइले, प्रभु ताँर नाम त' पुछिला॥ १४३ ॥

१४३। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन अपने पुत्र श्रीचैतन्यदास को श्रीमन्महाप्रभु से मिलाने के लिये अपने साथ लेकर आये। जब शिवानन्द सेन ने श्रीमन्महाप्रभु से अपने पुत्र को मिलाया, तब श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे उनके पुत्र का नाम पूछा।

अपने दास्यसूचक नाम को श्रवण करके प्रभु के द्वारा आत्म-गोपन और अज्ञता का भान—

'चैतन्यदास' नाम शुनि' कहे गौरराय।
''कि नाम धराञाछे, बुझन ना जाय॥'' १४४ ॥

१४४। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन के मुख से उनके पुत्र का चैतन्यदास नाम सुनकर श्रीगौर राय ने कहा—''मुझे समझ नहीं आता कि आपने अपने पुत्र का ऐसा नाम क्यों रखा।''

शिवानन्द का उत्तर और प्रभु को निमन्त्रण—
सेन कहे,—''जे जानिलुँ, सेइ नाम धरिल।''
एत बलि' महाप्रभुरे निमन्त्रण कैल॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने उत्तर दिया—''मुझे जो समझ में आया, मैंने उस के अनुसार नाम रखा है।'' इतना कहकर श्रीशिवानन्द सेन ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण दिया।

जगन्नाथेर बहुमूल्य प्रसाद आनाइला।
भक्तगणे लञा प्रभु भोजने बसिला॥१४६॥

१४६। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने श्रीजगन्नाथदेव का बहुमूल्य प्रसाद मँगवाया तथा श्रीमन्महाप्रभु भक्तों को अपने साथ लेकर भोजन के लिये बैठे।

प्रभु के द्वारा बहुत अधिक भोजन के कारण अप्रसन्नता—
शिवानन्देर गौरवे प्रभु करिला भोजन।
अतिगुरु-भोजने प्रसन्न नहे मन॥१४७॥

१४७। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीशिवानन्द सेन के सम्मान हेतु भोजन तो किया तथापि अत्यन्त गरिष्ठ भोजन के कारण उनका मन प्रसन्न नहीं था।

प्रभु के अभिप्राय को समझकर शिवानन्द के पुत्र चैतन्यदास के द्वारा कम जठराग्नि के नाशक द्रव्य द्वारा 'स्वारसिकी' सेवा—
आर दिन चैतन्यदास कैला निमन्त्रण।
प्रभुर 'अभीष्ट' बुझि' आनिला व्यञ्जन॥१४८॥

१४८। प० अनु०—अन्य एक दिन श्रीशिवानन्द सेन के पुत्र श्रीचैतन्यदास ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण किया तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के अभीष्ट को समझकर व्यञ्जन मँगवाये।

दधि, लेम्बु, आदा, आर फुलबड़ा, लवण।
सामग्री देखि' प्रभुर प्रसन्न हैल मन॥१४९॥

१४९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु दही, नींबू, अदरक, फूल-बड़ी तथा नमक आदि सामग्री को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अन्तर्यामी प्रभु को चैतन्यदास की वास्तविक शुद्ध सेवा-प्रवृत्ति देखकर आनन्द—
प्रभु कहे,—''ए बालक आमार मत जाने।
सन्तुष्ट हइलाङ आमि इहार निमन्त्रणे॥''१५०॥

१५०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''यह बालक मेरे मत को जानता है, मैं इसके निमन्त्रण से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ।''

अपने दास को प्रभु के द्वारा अपना उच्छिष्ट प्रदान—
एत बलि' दधि-भात करिला भोजन।
चैतन्यदासेरे दिला उच्छिष्ट-भाजन॥१५१॥

१५१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने इतना कहकर दही-भात का भोजन किया तथा श्रीचैतन्य दास को अपना उच्छिष्ट भिक्षा का पात्र दे दिया।

अनुभाष्य

१५१। भाजन,—भिक्षा का पात्र।

चार मास तक भक्तों के द्वारा प्रभु को निमन्त्रण—
चारिमास एइमत निमन्त्रणे जाय।
कोन कोन वैष्णव 'दिवस' नाहि पाय॥१५२॥

१५२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के चारों मास इसी प्रकार निमन्त्रण में व्यतीत हो जाते, किसी-किसी वैष्णव को तो निमन्त्रण करने के लिये खाली दिन ही नहीं मिलता।

गदाधर और सार्वभौम का प्रभु को निमन्त्रण करने का निर्दिष्ट नियम—

गदाधर पण्डित, भट्टाचार्य-सार्वभौम।
इँहा-सबार आछे भिक्षार दिवस-नियम॥१५३॥

१५३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के लिये श्रीगदाधर पण्डित, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य आदि समस्त भक्तों का निर्दिष्ट दिन में निमन्त्रण करने का नियम था।

बीच-बीच में निमन्त्रण करने वाले भक्त—

गोपीनाथाचार्य, जगदानन्द, काशीश्वर।
भगवान्, रामभद्राचार्य, शङ्कर, वक्रेश्वर॥ १५४ ॥
मध्ये मध्ये घर-भाते करे निमन्त्रण।
अन्येर निमन्त्रणे प्रसादे कौड़ि दुइपण॥ १५५ ॥

१५४-१५५। प० अनु०—श्रीगोपीनाथ आचार्य, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीकाशीश्वर पण्डित, श्रीभगवान् आचार्य, श्रीरामभद्राचार्य, श्रीशङ्कर तथा श्रीवक्रेश्वर पण्डित बीच-बीच में अपने घर पर अन्न-व्यञ्जन आदि बनाकर श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करते तथा अन्य भक्त श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करके दो पण कौड़ी (२ आने) का प्रसाद मँगवाते थे।

अनुभाष्य

१५५। शौक्र-ब्राह्मणों के घर में बना भोजन अथवा ऐसे शौक्र-ब्राह्मण जिनके घर का बना भोजन नहीं खाया जा सकता अथवा अन्यान्य व्यक्तियों के निमन्त्रण में दो पण अथवा चार पण कौड़ी के मूल्य का महाप्रसाद स्वीकार करते थे।

रामचन्द्रपुरी के भय से अर्ध-भोजन—

प्रथमे आछिल 'निर्बन्ध' कौड़ि चारिपण।
रामचन्द्रपुरी-भये घाटाइला निमन्त्रण॥ १५६ ॥

१५६। प० अनु०—पहले श्रीमन्महाप्रभु के प्रसाद के लिये चार पण कौड़ी खर्च करने तक का नियम था, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने रामचन्द्रपुरी के भय से उसे घटाकर दो पण कौड़ी कर दिया।

अनुभाष्य

१५६। घाटाइला,—कम कर दिया।

दशम परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

गौड़ीयभक्तों का गौड़ में जाना, पुरीवासियों का पुरी में अवस्थान—

चारिमास रहि' गौड़ेर भक्ते विदाय दिला।
नीलाचलेर सङ्गी भक्त सङ्गेइ रहिला॥ १५७ ॥

१५७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने गौड़देश से आये भक्तों को चार मास तक रहने के पश्चात् विदायी दी तथा श्रीमन्महाप्रभु के साथ श्रीजगन्नाथ पुरी में रहने वाले भक्त वहीं पर उन्हीं के साथ रहे।

प्रभु की भिक्षा की रीति, भक्तों के द्वारा प्रदान किये गये द्रव्य और परिमुण्डा-नृत्यादि वर्णित—

एइ त' कहिलुँ प्रभुर भिक्षा-निमन्त्रण।
भक्त-दत्त वस्तु जैछे कैला आस्वादन॥ १५८ ॥

१५८। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु के भोजन के निमन्त्रण के विषय में बतलाया, जिसमें उन्होंने भक्तों के द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का आस्वादन किया।

तार मध्ये राघवेर झालि-विवरण।
तार मध्ये परिमुण्डा-नृत्य-कथन॥ १५९ ॥

१५९। प० अनु०—मैंने उपरोक्त प्रसङ्ग के अन्तर्गत ही श्रीराघव पण्डित की झालि का विवरण तथा श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा अपने भक्तों सहित किये गये मण्डलीबद्ध नृत्य का वर्णन किया है।

कृष्णचैतन्य-कथा-श्रवण से गौर-कृष्ण के चरणों में प्रेम का उदय—

श्रद्धा करि' शुने जेइ चैतन्येर कथा।
चैतन्यचरणे प्रेम पाइबे सर्वथा॥ १६० ॥

१६०। प० अनु०—जो भी व्यक्ति श्रद्धापूर्वक

श्रीचैतन्य महाप्रभु की कथा का श्रवण करता है, उसे अवश्य ही श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों में प्रेम की प्राप्ति होगी।

गौरकथा—जीवों के हृत्कर्णरसायन—

शुनिते अमृत-सम जुड़ाय कर्ण-मन।
सेइ भाग्यवान्, जेइ करे आस्वादन॥ १६१ ॥

१६१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की कथा सुनने में अमृत के समान है एवं वह कर्णों तथा मन को परम तृप्त कर देती है, जो भी व्यक्ति इसका आस्वादन करता है, वही अत्यन्त सौभाग्यशाली है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १६२ ॥

१६२। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे भक्त-दत्तास्वादनं नाम दशमः परिच्छेदः।

❋❋❋

एकादश परिच्छेद

कथासार—इस परिच्छेद में ब्रह्म-हरिदास ठाकुर के द्वारा महाप्रभु की आज्ञा प्राप्त करके देह के त्याग करने पर महाप्रभु ने उन्हें विशेष भक्ति और समारोह के साथ ले जाकर समुद्र के तट पर समाधि प्रदान की। अपने हाथों से बालु देकर चबूतरा बना दिया, बाद में समुद्र स्नान करने के उपरान्त स्वयं भिक्षा करके हरिदास का विजय महोत्सव मनाया। (अः प्रः भाः)

गोद में हरिदास की देह को उठाकर नृत्य करने वाले गौर को प्रणाम—

नमामि हरिदासं तं चैतन्यं तञ्च तत्प्रभुम्।
संस्थितामपि यन्मूर्त्तिं स्वाङ्के कृत्वा ननर्त्त यः॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। मैं हरिदास को नमस्कार करता हूँ एवं उनके प्रभु उन चैतन्यदेव को नमस्कार करता हूँ,—जिन्होंने हरिदास के द्वारा त्यागी गयी देह को गोद में उठाकर नृत्य किया था।

अनुभाष्य

१। यः (चैतन्यदेवः) यन्मूर्त्तिं (यस्य हरिदासस्य मूर्त्तिं) संस्थितां (समाधि प्राप्ताम्) अपि स्वाङ्के (स्वस्य क्रोड़े) कृत्वा ननर्त्त, तं हरिदासं तत्प्रभुं तं चैतन्यं च नमामि।

जय जय श्रीचैतन्य जय दयामय।
जयाद्वैत प्रिय नित्यानन्दप्रिय जय॥ २ ॥

२। प० अनु०—दया से ओत-प्रोत श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीअद्वैताचार्य प्रभु तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु के प्रिय श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो।

जय श्रीनिवासेश्वर हरिदासनाथ।
जय गदाधरप्रिय स्वरूप-प्राणनाथ॥ ३ ॥

३। प० अनु०—श्रीवास पण्डित के ईश्वर तथा श्रीहरिदास ठाकुर के नाथ श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, श्रीगदाधर पण्डित के प्रिय तथा श्रीस्वरूप दामोदर के प्राणनाथ श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो।

जय काशीश्वर-प्रिय जगदानन्द-प्राणेश्वर।
जय रूप-सनातन-रघुनाथेश्वर॥ ४ ॥

४। प० अनु०—श्रीकाशीश्वर पण्डित के प्रिय तथा श्रीजगदानन्द पण्डित के प्राणेश्वर श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो। श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के ईश्वर श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो।

जय गौरदेह कृष्ण स्वयं भगवान्।
कृपा करि' देह', प्रभु, निज-पद-दान॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीगौरदेहधारी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की जय हो, हे श्रीमन्महाप्रभु! कृपा करके अपने श्रीचरणों का दान दीजिए।

अनुभाष्य

५। गौरदेह,—गौर वर्ण की कान्ति वाली देह को धारण करने वाले।

जय नित्यानन्दचन्द्र चैतन्येर प्राण।
तोमार चरणारविन्दे भक्ति देह' दान॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्राण-स्वरूप श्रीनित्यानन्द चन्द्र की जय हो, हे श्रीनित्यानन्द प्रभु!

आप मुझे अपने श्रीचरण-कमलों में भक्ति प्रदान कीजिए।

जय जयाद्वैतचन्द्र चैतन्येर आर्य।
स्वचरणे भक्ति देह' जयाद्वैताचार्य॥ ७ ॥

७। प० अनु०— श्रीचैतन्य महाप्रभु के सम्माननीय श्रीअद्वैत-चन्द्र की जय हो, जय हो। हे श्रीअद्वैताचार्य प्रभु! आप मुझे अपने श्रीचरणों की भक्ति प्रदान कीजिए।

अनुभाष्य

७। चैतन्येर आर्य,—महाप्रभु के द्वारा सम्माननीय।

जय गौरभक्तगण,—गौर जाँर प्राण।
सब भक्त मिलि' मोरे भक्ति देह' दान॥ ८ ॥

८।प० अनु०—श्रीगौर सुन्दर ही जिन भक्तों के प्राण हैं, उन गौरभक्तों की जय हो। हे समस्त भक्तों! आप सभी मुझे भक्ति का दान दीजिए।

जय रूप, सनातन, जीव, रघुनाथ।
रघुनाथ, गोपाल,—छय मोर 'प्राणनाथ'॥ ९ ॥

९। प० अनु०—मेरे प्राणनाथ श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी, श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी—इन छह गोस्वामियों की जय हो।

ग्रन्थकार की दैन्यपूर्ण उक्ति, स्वयं को शोधन करने के लिये चैतन्य गुण-लीला का वर्णन—

ए-सब प्रसादे लिखि चैतन्य-लीला-गुण।
जैछे तैछे लिखि, करि आपन पावन॥ १० ॥

१०। प० अनु०— मैं उपरोक्त वर्णित श्रीचैतन्य महाप्रभु के समस्त भक्तों की कृपा से ही स्वयं को पवित्र करने के लिये जिस किसी प्रकार से श्रीचैतन्य महाप्रभु की लीलाओं तथा उनके गुणों को लिपिबद्ध कर रहा हूँ।

भक्तों के साथ प्रभु का नीलाचल में कीर्त्तन-विलास—

एइमत महाप्रभुर नीलाचले वास।
सङ्गे भक्तगण लञा कीर्त्तन-विलास॥ ११ ॥

११। प० अनु०— इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने भक्तों को साथ में लेकर कीर्त्तन-विलास करते हुए श्रीजगन्नाथ पुरी में वास कर रहे थे।

दिन में नामसंकीर्त्तन और जगन्नाथ दर्शन, रात्रि में स्वरूप-रामानन्द के साथ श्रीराधा के कृष्णप्रेम का रसास्वादन—

दिने नृत्य-कीर्त्तन, ईश्वर-दरशन।
रात्र्ये राय-स्वरूप-सने रस-आस्वादन॥ १२ ॥

१२। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु दिन के समय श्रीजगन्नाथ देव के दर्शन एवं नृत्य-कीर्त्तन में व्यस्त रहते थे तथा रात्रि के समय श्रीरायरामानन्द एवं श्रीस्वरूप दामोदर के साथ रस का आस्वादन करते थे।

कृष्ण के विरह में प्रभु की देह में सात्त्विक भावों का उदय—

एइमत महाप्रभुर सुखे काल जाय।
कृष्णेर विरह-विकार अङ्गे नाना हय॥ १३ ॥

१३। प० अनु०— इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु का समय सुखपूर्वक व्यतीत होता था, उनके दिव्य कलेवर में कृष्ण के विरह में होने वाले अनेक विकार उत्पन्न होते थे।

दिने-दिने बाड़े विकार, रात्र्ये अतिशय।
चिन्ता, उद्वेग, प्रलापादि जत शास्त्रे कय॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु में दिन-प्रतिदिन शास्त्रों में वर्णित चिन्ता, उद्वेग तथा प्रलाप आदि विरह-विकार वर्धित हो रहे थे, विशेष करके रात्रि के समय में वे विकार अत्यन्त वर्धित हो जाते।

अप्राकृत विप्रलम्भ-लीला में प्रभु के दो नित्य सङ्गी—

स्वरूप गोसाञि, आर रामानन्द-राय।
रात्रि-दिने करे दोंहे प्रभुर सहाय॥ १५ ॥

१५। प० अनु०— श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय—ये दोनों रात-दिन श्रीमन्महाप्रभु की सेवा करते।

हरिदास के वृत्तान्त का वर्णन; गोविन्द के द्वारा हरिदास को प्रसाद देने के लिये जाना—

एकदिन गोविन्द महाप्रसाद लञा।
हरिदासे दिते गेला आनन्दित हञा॥ १६ ॥

हरिदास ठाकुर के अप्रकट काल की अवस्था—

देखे,—हरिदास-ठाकुर कैराछेन शयन।
मन्द मन्द करितेछेन संख्या-सङ्कीर्त्तन॥ १७ ॥

१६-१७। प० अनु०—एकदिन श्रीमन्महाप्रभु के सेवक श्रीगोविन्द जब प्रतिदिन की भाँति आनन्दित होकर श्रीहरिदास ठाकुर को महाप्रसाद देने के लिये गये, तब उन्होंने देखा कि श्रीहरिदास ठाकुर लेटे हुए हैं तथा मन्द-मन्द ध्वनि करते हुए संख्यापूर्वक नामसङ्कीर्त्तन कर रहे हैं।

गोविन्द के द्वारा प्रसाद ग्रहण करने के लिये अनुरोध, हरिदास की नहीं लेने की इच्छा—

गोविन्द कहे,—''उठ आसि' करह भोजन।''
हरिदास कहे,—''आजि करिमु लङ्घन॥ १८ ॥

१८।प० अनु०—श्रीगोविन्द ने कहा,—''हे श्रीहरिदास ठाकुर! उठिये, आकर भोजन कीजिए।'' श्रीहरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया,—''आज मैं प्रसाद नहीं खाऊँगा।

हरिदास के द्वारा नामाश्रित साधक के प्रसाद के सम्मान के विषय में आदर्श-व्यवहार का प्रदर्शन—

संख्या-कीर्त्तन पूरे नाहि, केमते खाइमु?
महाप्रसाद आनियाछ, केमते उपेक्षिमु??'' १९ ॥

१९। प० अनु०— ''अभी तक मेरा नाम का संख्यापूर्वक कीर्त्तन पूर्ण नहीं हुआ है, तो फिर मैं कैसे खा सकता हूँ? आप लाये भी महाप्रसाद हो, मैं उसकी उपेक्षा कैसे कर सकता हूँ?''

एत बलि' महाप्रसाद करिला वन्दन।
एक रञ्च लञा तार करिला भक्षण॥ २० ॥

२०। प० अनु०— इतना कहकर श्रीहरिदास ठाकुर ने महाप्रसाद की वन्दना की तथा एक कण लेकर उसे भक्षण किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

२०। रञ्च,—कण।

एकदिन प्रभु का हरिदास के निकट आना और कुशल-जिज्ञासा—

आर दिन महाप्रभु ताँर ठाञि आइला।
''सुस्थ हओ, हरिदास'' —बलि' ताँरे पुछिला॥ २१॥

२१। प० अनु०—अगले दिन जब श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर के स्थान पर आये, तब श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे पूछा—''हे हरिदास! आप स्वस्थ हैं तो!''

हरिदास की दैन्य-उक्ति—

नमस्कार करि' तेंहो कैला निवेदन।
''शरीर सुस्थ हय मोर, असुस्थ बुद्धि-मन॥'' २२॥

२२। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में प्रणाम करके निवेदन किया,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! मेरा शरीर तो स्वस्थ है किन्तु मन और बुद्धि अस्वस्थ हैं।''

प्रभु के प्रश्नोत्तर में संख्यानाम-कीर्त्तन-अभाव से उत्पन्न अपने दु:ख के विषय में बतलाना—

प्रभु कहे,—''कोन व्याधि, कह त' निर्णय?''
तेंहो कहे,—''संख्या-कीर्त्तन ना पूरय॥'' २३ ॥

२३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे हरिदास! ठीक-ठीक बताओ कि आपको क्या व्याधि है?'' श्रीहरिदास ठाकुर ने उत्तर दिया,—''मेरा संख्यापूर्वक नाम कीर्त्तन पूर्ण नहीं हो पाता।''

अनुभाष्य

२३। यहाँ पर भी संख्या-ग्रहणपूर्वक नियमित रूप से ठाकुर हरिदास के आनुगत्य में (सोलह नाम बत्तीस अक्षर) ''हरे कृष्ण''- महामन्त्र की उच्चस्वर में कीर्त्तन

की विधि ही प्रत्येक नामाश्रित साधक के लिये एकमात्र पालनीय है, जाना जा रहा है; अन्त्य-लीला के तृतीय परिच्छेद की ९९, ११३-११५, १२०, १२३-१२४, १२९, १७५, २२३, २२७, २३८-२४२ आदि संख्या द्रष्टव्य है।

प्रभु के द्वारा अप्राकृत सिद्धदेह हरिदास को साधन के अभिनय को कम करने का आदेश—

प्रभु कहे,—''वृद्ध हइला 'संख्या' अल्प कर।
सिद्ध-देह तुमि, साधने आग्रह केने कर?? २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे हरिदास! अब आप वृद्ध हो गये हैं, आप नाम-संख्या को कम कर दीजिए। आप तो सिद्ध-पुरुष हैं, आप साधन में इतना आग्रह क्यों करते हैं?

स्वयं प्रभु के वचन—''नाम के आचार्य और प्रचारक के रूप में हरिदास अवतीर्ण''—

लोक निस्तारिते एइ तोमार 'अवतार'।
नामेर महिमा लोके करिला प्रचार॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—''आपका अवतार लोगों का उद्धार करने के लिये ही हुआ है। आपने लोगों में भगवान् के नाम की महिमा का बहुत प्रचार किया है।

अनुभाष्य

२५। तोमार अवतार (आपका अवतार),—भगवान् के भक्त और पार्षद भगवान् की इच्छा से उनकी सेवा के उद्देश्य से पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं।

एबे अल्प संख्या करि' कर सङ्कीर्त्तन।''
हरिदास कहे,—''शुन मोर निवेदन॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—''अब आप नाम की संख्या को कुछ कम करके, जितना हो सके उतना नाम-सङ्कीर्त्तन कीजिए।'' श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप मेरा निवेदन सुनिए—।

हरिदास के पत्थर को भी पिघला देने वाले दैन्यपूर्ण वचन और प्रभु की महिमा का कीर्त्तन—

हीन-जाति जन्म मोर-निन्द्य-कलेवर।
हीनकर्मे रत मुञि अधम पामर॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—''मेरा जन्म हीन जाति में हुआ है, इसी कारण मेरी यह देह निन्दनीय है। मैं हीन कर्मों में रत रहने के कारण अधम तथा पामर (पापी)हूँ।

अदृश्य, अस्पृश्य मोरे अङ्गीकार कैला।
रौरव हइते मोरे वैकुण्ठे चड़ाइला॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—''आपने मेरे अदृश्य (नहीं देखने योग्य) तथा अस्पृश्य (स्पर्श नहीं करने योग्य) होने पर भी मुझे अङ्गीकार करके रौरव नामक नरक से उठाकर वैकुण्ठ में पहुँचा दिया है।

स्वतन्त्र ईश्वर तुमि हओ इच्छामय।
जगत नाचाओ, जारे जैछे इच्छा हय॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप स्वतन्त्र ईश्वर होने के कारण इच्छामय हैं। आपकी जगत्-वासियों में से जिसके प्रति जैसी इच्छा होती है, उसे वैसे ही नचाते हैं।

अनेक नाचाइला मोरे प्रसाद करिया।
विप्रेर श्राद्धपात्र खाइनु 'म्लेच्छ' हञा॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—''आपने कृपा करके मुझे भी बहुत नृत्य कराया है, मैंने म्लेच्छ होने पर भी विप्र के श्राद्ध-पात्र को खाया है।

अनुभाष्य

३०। श्राद्ध-पात्र,—विष्णु स्मृति में— ''ब्राह्मणापसदा ह्येते कथिताः पङ्क्तिदूषकाः। एतान् विवर्जयेद्यत्नात् श्राद्धकर्मणि पण्डितः॥'' शौक्र-ब्राह्मण का जन्म प्राप्त होने पर भी स्मृति में बतलाये गये पंक्तिदूषक 'अपसदाख्य' ब्राह्मण को श्राद्ध-पात्र मत देना। किन्तु यहाँ पर शुद्धविप्र को प्राप्त होने वाले श्राद्ध का पात्र दीक्षित ब्राह्मण हरिदास को दिया गया। म्लेच्छ-कुल में उत्पन्न होने पर भी 'हरिजन' होने के कारण उनका उसमें अधिकार है।

प्रभु के निकट अपने अभिप्राय के विषय में बतलाना–

एक वाञ्छा हय मोर बहु दिन हैते।
लीला सम्वरिबे तुमि,—लय मोर चित्ते॥ ३१ ॥

प्रभु के अप्रकट होने से पहले ही अपनी लीला को सम्वरण करने की इच्छा–

सेइ लीला प्रभु मोरे कभु ना देखाइबा।
आपनार आगे मोर शरीर पड़िबा॥ ३२ ॥

३१-३२। प० अनु०—''मेरे चित्त में एक बात पुनः पुनः आती है कि आप शीघ्र ही अपनी लीला का संगोपन करेंगे। हे श्रीमन्महाप्रभु! इसी कारण मेरे हृदय में बहुत दिनों से एक अभिलाषा है कि आप मुझे अपनी उस अन्तर्ध्यान लीला का कभी भी दर्शन मत कराना। आप अपने समक्ष ही मेरे इस शरीर को छुड़वा देना।

अमृतप्रवाह भाष्य

३२। सेई लीला (वह लीला)– आपके अन्तर्ध्यान की लीला।

काय-मन-वाक्य से गौर-कृष्ण सेवा सुख परायण अपनी अभिलाषा के साथ अप्रकट होने की इच्छा को व्यक्त करना–

हृदये धरिमु तोमार कमल-चरण।
नयने देखिमु तोमार चाँद-वदन॥ ३३ ॥
जिह्वाय उच्चारिमु तोमार 'कृष्णचैतन्य'-नाम।
एइमत मोर इच्छा,—छाड़िमु पराण॥ ३४ ॥

३३-३४। प० अनु०—''मेरे हृदय में यह भी अभिलाषा होती है कि जब मैं अपने प्राण त्याग करूँ तब मैं अपने हृदय में आपके चरणकमलों को रखूँ, अपने नेत्रों से आपके चन्द्र जैसे मुख का दर्शन करूँ एवं साथ-ही-साथ मैं अपनी जिह्वा से आपके कृष्णचैतन्य नाम का उच्चारण करूँ।

मोर एइ इच्छा यदि तोमार प्रसादे हय।
एइ निवेदन मोर कर, दयामय॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आपकी कृपा से मेरी उपरोक्त अभिलाषा पूर्ण हो सकती है। हे दयामय! आप मेरे इस निवेदन को स्वीकार कीजिए।

एइ नीच देह मोर पड़ुक तव आगे।
एइ वाञ्छा-सिद्धि मोर तोमातेइ लागे॥'' ३६ ॥

३६। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! मेरी यह नीच देह आपके रहते-रहते ही छूट जाये, मेरी इस अभिलाषा की सिद्धि आपके द्वारा ही हो सकती है।''

प्रभु के द्वारा हरिदास की अभिलाषा-पूर्ण–

प्रभु कहे,—''हरिदास, जे तुमि मागिबे।
कृष्ण कृपामय ताहा अवश्य करिबे॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे हरिदास! आप जो कुछ भी माँगोगे, कृष्ण अत्यन्त कृपामय हैं, वह आपकी इच्छा को अवश्य ही पूर्ण करेंगे।

लीला-परिकर के विच्छेद के स्मरण में प्रभु के अत्यधिक मर्मस्पर्शी और करुण वचन–

किन्तु आमार जे किछु सुख, सब तोमा लञा।
तोमार योग्य नहे,—जाबे आमारे छाड़िया॥'' ३८॥

३८। प० अनु०—''हे हरिदास! किन्तु इस जगन्नाथ पुरी में मेरा जो कुछ सुख है, वह सब आपके कारण ही है। आपके लिये मुझे इस प्रकार से छोड़कर जाना उचित नहीं है।''

हरिदास के द्वारा प्रभु की निष्कपट कृपा की याचना–

चरणे धरि' कहे हरिदास,—''ना करिह 'माया'।
अवश्य मो-अधमे, प्रभु, कर एइ 'दया'॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को पकड़कर उनसे कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप अपनी माया का विस्तार मत कीजिए। हे प्रभु! इस अधम पर आप यह दया अवश्य ही कीजिए।

पुनः दैन्यपूर्ण उक्ति—

मोर शिरोमणि कत कत महाशय।
तोमार लीलार सहाय कोटिभक्त हय॥ ४० ॥

४०। प० अनु०—"आपके मुझसे अत्यन्त श्रेष्ठ कितने ही परिकर हैं, आपकी लीला में तो करोड़ों-करोड़ों भक्त योगदान कर रहे हैं।

आमा-हेन यदि एक कीट मरि' गेल।
पिपीलिका मैले पृथिवीर काँहा हानि हैल?? ४१ ॥

४१। प० अनु०—"हे श्रीमन्महाप्रभु! चींटी के मर जाने पर जैसे पृथ्वी को कोई भी हानि नहीं होती उसी प्रकार मेरे जैसे एक कीट के मर जाने पर भी क्या हानि होगी?

भक्तवत्सल-प्रभु के निकट हरिदास के द्वारा स्वयं का उनके दासाभास के रूप में वर्णन और अपने अभीष्ट की सिद्धि के विषय में आशाबन्ध—

'भकतवत्सल' तुमि, मुइ 'भक्ताभास'।
अवश्य पूरिबे, प्रभु, मोर एइ आश॥" ४२ ॥

४२। प० अनु०—"हे श्रीमन्महाप्रभु! यद्यपि आप तो भक्तवत्सल हैं और मैं भक्त का आभास मात्र हूँ तथापि मुझे यह पूर्ण आशा है कि आप मेरी इच्छा को अवश्य पूर्ण करेंगे।"

प्रभु का जाना और अगले दिन प्रभु के द्वारा आने के विषय में आश्वासन—

मध्याह्न करिते प्रभु चलिला आपने।
ईश्वर देखिया कालि दिबेन दरशने॥ ४३ ॥
तबे महाप्रभु ताँरे करि' आलिङ्गन।
मध्याह्न करिते समुद्रे करिला गमन॥ ४४ ॥

४३-४४। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर से कहा कि मैं कल भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करके आपके पास आऊँगा। ऐसा कहकर उन्होंने श्रीहरिदास ठाकुर का आलिङ्गन किया तथा मध्याह्न कृत्य करने के उद्देश्य से समुद्र की ओर गमन किया।

अगले दिन प्रातः भक्तों के साथ जगन्नाथ दर्शन के बाद हरिदास को दर्शन देने के लिये प्रभु का आगमन—

प्रातःकाले ईश्वर देखि' सब भक्त लञा।
हरिदासे देखिते आइला शीघ्र करिया॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अगले दिन सब भक्तों को अपने साथ लेकर प्रातःकाल भगवान् श्रीजगन्नाथ का दर्शन किया तथा फिर वे शीघ्र श्रीहरिदास ठाकुर से मिलने के लिये आ गये।

हरिदास के निर्याण का वर्णन, हरिदास के द्वारा भक्त और भगवान् के चरणों की वन्दना—

हरिदासेर आगे आसि' दिला दरशन।
हरिदास वन्दिला प्रभुर आर वैष्णव-चरण॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर के समक्ष आकर उन्हें अपने दर्शन प्रदान किये। श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीमन्महाप्रभु और उपस्थित समस्त वैष्णवों के चरणों की वन्दना की।

प्रभु के द्वारा हरिदास के कुशल की जिज्ञासा; हरिदास के द्वारा गोलोक-जाने का प्रयास—

प्रभु कहे,—"हरिदास, कह समाचार।"
हरिदास कहे,—"प्रभु, जे-आज्ञा तोमार॥" ४७ ॥

४७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"हे हरिदास! सुनाओ, क्या समाचार है।" श्रीहरिदास ठाकुर ने कहा,—"हे श्रीमन्महाप्रभु! आप जैसी आज्ञा करेंगें।"

हरिदास की कुटीर के समक्ष भक्तों सहित प्रभु के द्वारा महाकीर्त्तन-आरम्भ—

अङ्गने आरम्भिला प्रभु महा-सङ्कीर्त्तन।
वक्रेश्वर-पण्डित ताँहा करेन नर्त्तन॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर की भजनस्थली के आङ्गन में महा-सङ्कीर्त्तन आरम्भ किया। श्रीवक्रेश्वर पण्डित उस सङ्कीर्त्तन को श्रवण करते ही नृत्य करने लगे।

स्वरूप-गोसाञि आदि जत प्रभुर गण।
हरिदासे बेड़ि' करे नाम-सङ्कीर्त्तन॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर आदि श्रीमन्महाप्रभु के समस्त परिकर श्रीहरिदास ठाकुर को चारों ओर से घेरकर नाम-सङ्कीर्त्तन करने लगे।

सभी के समक्ष प्रभु के द्वारा अत्यधिक आनन्दपूर्वक भक्त हरिदास के गुणों का वर्णन—

रामानन्द, सार्वभौम, सबार अग्रेते।
हरिदासेर गुण प्रभु लागिला कहिते॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीरामानन्द राय तथा श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य आदि समस्त भक्तों के समक्ष श्रीहरिदास ठाकुर के गुणों का वर्णन करने लगे।

हरिदासेर गुण कहिते हइला पञ्चमुख।
कहिते कहिते प्रभुर बाड़े महासुख॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर के गुणों का वर्णन करते समय श्रीमन्महाप्रभु मानो पाँच मुख वाले हो गये अर्थात् वे श्रीहरिदास ठाकुर का इतना अधिक गुणगान करने लगे, मानो उनके पाँच मुख हों। श्रीहरिदास ठाकुर के गुणों का गान करते-करते श्रीमन्महाप्रभु की प्रसन्नता अत्यधिक वर्धित हो रही थी।

सभी भक्तों का विस्मय और हरिदास के चरणों की वन्दना—

हरिदासेर गुणे सबार विस्मित हय मन।
सर्वभक्त वन्दे हरिदासेर चरण॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मुख से श्रीहरिदास ठाकुर के गुणों को सुनकर सभी भक्त आश्चर्यचकित रह गये, समस्त भक्त श्रीहरिदास ठाकुर की वन्दना करने लगे।

अपने सामने प्रभु का दर्शन और प्रभु के नाम का कीर्त्तन करते-करते ठाकुर का निर्याण अथवा उत्क्रान्ति (चले जाना)—

हरिदास निजाग्रेते प्रभुरे बसाइला।
निज-नेत्र—दुइ भृङ्ग—मुखपद्मे दिला॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीमन्महाप्रभु को प्रार्थना करके उन्हें अपने समक्ष बैठाया तथा उन्होंने अपने दोनों नेत्रों को, जो कि दो भवरों के समान थे, श्रीमन्महाप्रभु के मुखकमल पर स्थिर कर दिया।

स्व-हृदये आनि' धरि' प्रभुर चरण।
सर्वभक्त-पदरेणु मस्तक-भूषण॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने अपने हृदय में श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण किया एवं समस्त भक्तों की चरण-रज को अपने मस्तक का भूषण बनाया।

'श्रीकृष्णचैतन्यप्रभु' बलेन बार-बार।
प्रभुमुख-माधुरी पिये, नेत्रे जलधार॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर पुनः पुनः 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु' नाम का उच्चारण करने लगे, वे श्रीमन्महाप्रभु के मुख की माधुरी का पान करने लगे, जिसके फलस्वरूप उनके नेत्रों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगी।

'श्रीकृष्णचैतन्य'—शब्द करिते उच्चारण।
नामेर सहित प्राण करिला उत्क्रामण॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर ने श्रीकृष्ण चैतन्य नाम उच्चारण करते हुए नाम के साथ अपने प्राणों को छोड़ दिया।

अमृतप्रवाह भाष्य

५६। उत्क्रामण,—बाहर, निर्गमन (निकलना)।

सभी के द्वारा द्वापर-युग के भीष्म की इच्छा-मृत्यु का स्मरण—

महायोगेश्वर-प्राय स्वच्छन्दे मरण।
'भीष्मेर निर्याण' सबार हइल स्मरण॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर का इस जगत् से निर्याण महा-योगेश्वर की भाँति स्वेच्छामय हुआ, जिससे समस्त भक्तों को श्रीभीष्म पितामह के निर्याण का स्मरण हो आया।

अनुभाष्य

५७। भीष्मेर निर्याण,—भा: १.९.२९-४३ संख्या द्रष्टव्य।

महाकीर्त्तन-कोलाहल, प्रभु की प्रेम-विह्वलता—

'हरि' 'कृष्ण'-शब्दे सबे करे कोलाहल।
प्रेमानन्दे महाप्रभु हइला विह्वल॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—सभी भक्त लोग 'हरि', 'कृष्ण' शब्दों का उच्च स्वर से उच्चारण करने लगे। श्रीमन्महाप्रभु प्रेम रूपी आनन्द से विह्वल हो उठे।

गोद में हरिदास की अप्राकृत देह को लेकर प्रभु के द्वारा नृत्य—

हरिदासेर तनु प्रभु कोले उठाञा।
अङ्गने नाचेन प्रभु प्रेमाविष्ट हञा॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर की देह को अपनी गोद में उठा लिया तथा प्रेमाविष्ट होकर आङ्गन में नृत्य करने लगे।

सभी के द्वारा प्रेमाविष्ट होकर कीर्त्तन और नृत्य—

प्रभुर आवेशे अवश सर्वभक्तगण।
प्रेमावेशे सबे नाचे, करेन कीर्त्तन॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के आवेश के समक्ष समस्त भक्तगण अवश हो गये। सभी भक्त भी कीर्त्तन करने लगे तथा प्रेमावेश में नृत्य करने लगे।

एइमते नृत्य प्रभु कैला कतक्षण।
स्वरूप-गोसाञि प्रभुरे कैला निवेदन॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने इसी प्रकार बहुत देर तक नृत्य किया। श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु को कुछ निवेदन किया।

भक्तों के साथ प्रभु के द्वारा कीर्त्तन के माध्यम से ठाकुर-हरिदास को समुद्र के तट पर लाना—

हरिदास-ठाकुरे तबे विमाने चड़ाञा।
समुद्रे लञा गेला तबे कीर्त्तन करिया॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर को विमान पर चढ़ाकर कीर्त्तन करते हुए समुद्र के तट पर ले गये।

आगे महाप्रभु चलेन नृत्य करिते करिते।
पाछे नृत्य करे वक्रेश्वर भक्तगण-साथे॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर की अन्तिम-यात्रा के समय श्रीमन्महाप्रभु नृत्य करते-करते उनसे आगे चल रहे थे तथा श्रीहरिदास ठाकुर के पीछे श्रीवक्रेश्वर पण्डित भक्तों के साथ नृत्य करते हुए चल रहे थे।

हरिदास को समुद्र में स्नान कराना, उतनी देर तक उनके स्पर्श करने मात्र से समुद्र का 'महातीर्थ' बनना—

हरिदासे समुद्र-जले स्नान कराइला।
प्रभु कहे,—"समुद्र एइ 'महातीर्थ' हइला॥" ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर को समुद्र के जल में स्नान कराया तथा कहा,—"आज यह समुद्र महातीर्थ बन गया है।"

भक्तों के द्वारा हरिदास के अप्राकृत शरीर के चरणों के जल का पान—

हरिदासेर पादोदक पिये भक्तगण।
हरिदासेर अङ्गे दिला प्रसाद-चन्दन॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—समस्त उपस्थित भक्तों ने श्रीहरिदास ठाकुर का चरणामृत पान किया, तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर के अङ्गों पर भगवान् श्रीजगन्नाथदेव का प्रसादी चन्दन लगाया।

कीर्त्तन करते हुए समाधि-प्रदान करने की रीति—

डोर, कड़ार, प्रसाद वस्त्र अङ्गे दिला।
बालुकार गर्त्त करि' ताहे शोयाइला॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर के अङ्गों पर भगवान् श्रीजगन्नाथदेव का प्रसादी पट्ट डोर, प्रसादी चन्दन, प्रसाद तथा वस्त्र आदि प्रदान किया एवं बालु में गड्ढ़ा बनाकर वहीं श्रीहरिदास ठाकुर को सुला दिया।

अनुभाष्य

६६। डोर,—श्रीजगन्नाथ की प्रसादी पट्टडोरी; कड़ार,—प्रसादी चन्दन।

भक्तों के द्वारा कीर्त्तन और नृत्य—

चारिदिके भक्तगण करेन कीर्त्तन।
वक्रेश्वर-पण्डित करेन आनन्दे नर्त्तन॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि के चारों ओर भक्त कीर्त्तन करने लगे तथा श्रीवक्रेश्वर पण्डित आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगे।

प्रभु के द्वारा अपने श्रीकरकमलों से ठाकुर को समाधि देना—

'हरिबोल' 'हरिबोल' बलेन गौरराय।
आपनि श्रीहस्ते बालु दिला ताँर गाय॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—श्रीगौर राय ने हरिबोल, हरिबोल बोलते हुए स्वयं अपने श्रीकरकमलों से श्रीहरिदास ठाकुर के दिव्य कलेवर पर बालु दी।

समाधि-पीठ का निर्माण—

ताँरे बालु दिया उपरे पिण्डा बाँधाइला।
चौदिके-पिण्डेर महा-आवरण कैला॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अन्य-अन्य भक्तों के द्वारा भी श्रीहरिदास ठाकुर की देह पर बालु दिलवाकर उसके ऊपर पिण्डा (बेदी अथवा चबूतरा) बनवा दिया। पुनः उस पिण्डे का चारों ओर से भली-भाँति आवरण कर दिया।

भक्तों के साथ कीर्त्तन-नृत्य के बाद समुद्र-स्नान करने के पश्चात् समाधि-पीठ की परिक्रमा करके मन्दिर में आना—

तबे महाप्रभु कैला कीर्त्तन, नर्त्तन।
हरिध्वनि-कोलाहले भरिल भुवन॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु ने कीर्त्तन और नृत्य करना प्रारम्भ किया। भक्तों के द्वारा की जाने वाली उच्च हरिध्वनि से आकाश-पाताल गुञ्जायमान हो उठा।

तबे महाप्रभु सब भक्तगण-सङ्गे।
समुद्रे करिला स्नान-जलकेलि रङ्गे॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने समस्त भक्तों के साथ समुद्र में आनन्दपूर्वक जलकेलि करते हुए स्नान किया।

हरिदासे प्रदक्षिण करि' आइल सिंहद्वारे।
हरिकीर्त्तन-कोलाहल सकल नगरे॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीहरिदास ठाकुर की परिक्रमा करके सिंहद्वार पर आ गये। सम्पूर्ण श्रीजगन्नाथ पुरी में हरिकीर्त्तन की उच्च ध्वनि होने लगी।

हरिदास के विरह-महोत्सव के उद्देश्य से सिंहद्वार पर दुकानदारों से स्वयं प्रभु के द्वारा प्रसाद की भिक्षा—

सिंहद्वारे आसि' प्रभु पसारिर ठाँइ।
आँचल पातिया प्रसाद मागिला तथाइ॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने सिंहद्वार पर आकर पंसारियों से आँचल फैलाकर प्रसाद की भिक्षा माँगनी प्रारम्भ कर दी।

''हरिदास-ठाकुरेर महोत्सवेर तरे।
प्रसाद मागिये भिक्षा देह त' आमारे॥'' ७४ ॥

७४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पंसारियों से कहा —'' मैं हरिदास ठाकुर के महोत्सव के आयोजन हेतु आप लोगों से प्रसाद की भिक्षा माँग रहा हूँ, आप लोग कृपा करके मुझे भिक्षा प्रदान कीजिए।''

दुकानदारों के द्वारा सम्पूर्ण प्रसाद देने की इच्छा—

शुनिया पसारि सब चाङ्गड़ा उठाञा।
प्रसाद दिते आसे तारा आनन्दित हञा॥ ७५ ॥

९५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मुख के वचन सुनकर पंसारि लोग प्रसाद की हाण्डियों से भरी टोकरी को उठाकर आनन्दपूर्वक देने के लिये आये।

अनुभाष्य

७५। चाङ्गड़ा — बड़ी डोर झुड़ि (टोकरी)।

स्वरूप के द्वारा उन्हें मना करना—

स्वरूप-गोसाञि पसारिके निषेधिल।
चाङ्गड़ा लञा पसारि पसारे बसिल॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने पंसारियों को श्रीमन्महाप्रभु के हाथ में प्रसाद देने के लिये निषेध किया। पंसारि हाण्डियों से भरी टोकरी को लेकर पुनः अपने स्थान पर बैठ गये।

प्रभु को घर भेजकर स्वयं स्वरूप के द्वारा महोत्सव के दायित्व को अपने हाथों में लेना—

स्वरूप-गोसाञि प्रभुरे घर पाठाइला।
चारि-वैष्णव, चारि पिछाड़ा सङ्गे राखिला॥ ७७॥

७७। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु को गम्भीरा में भेज दिया तथा उन्होंने अपने साथ चार वैष्णवों तथा चार प्रसाद को ढ़ोने वाले व्यक्तियों को रख लिया।

अमृतप्रवाह भाष्य

७७। पिछाड़ा,—पीछे चलने वाले लोग (मतान्तर में 'झुड़ि' अथवा 'बोझा',—७९ संख्या द्रष्टव्य)।

स्वरूप-गोसाञि कहिलेन सब पसारिरे।
''एक एक द्रव्येर एक एक पुञ्जा देह' मोरे॥''७८॥

७८। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने समस्त पंसारियों को कहा, ''आप सभी मुझे एक-एक वस्तु में से उसका चौथाई भाग प्रसाद दे दीजिए।''

अमृतप्रवाह भाष्य

७८। पुञ्जा, —चार-चार करके एक भाग।

बहुत मात्रा में प्रसाद का संग्रह—

एइमते नाना-प्रसाद बोझा बान्धाञा।
लञा आइला चारि-जनेर मस्तके चड़ाञा॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—इस प्रकार श्रीस्वरूप दामोदर ने अनेक प्रकार के प्रसाद द्रव्यों को एकत्रित करके बन्धवा लिया तथा उसे चार व्यक्तियों के सिर पर रखवाकर ले आये।

वाणीनाथ और काशीमिश्र के द्वारा प्रसाद का संग्रह—

वाणीनाथ-पट्टनायक प्रसाद आनिला।
काशीमिश्र अनेक प्रसाद पाठाइला॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—श्रीवाणीनाथ पट्टनायक भी प्रसाद लेकर आये तथा श्रीकाशीमिश्र ने भी बहुत-सा प्रसाद भेजा।

विरह-महोत्सव में वैष्णवों को प्रभु के द्वारा अपने श्रीहस्त से प्रचुर प्रसाद का परिवेशन—

सब वैष्णवे प्रभु बसाइला सारि सारि।
आपने परिवेशे प्रभु लञा जना-चारि॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने समस्त वैष्णवों को पंक्ति लगवाकर बैठाया तथा वे स्वयं चार लोगों को अपने साथ लेकर प्रसाद वितरण करने लगे।

महाप्रभुर श्रीहस्ते अल्प ना आइसे।
एक एक पाते पञ्चजनार भक्ष्य परिवेशे॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के हाथ में प्रसाद अल्प मात्रा में नहीं आ रहा था, वे तो एक-एक व्यक्ति के पत्ते में पाँच व्यक्तियों के भक्षण-योग्य प्रसाद दे रहे थे।

प्रभु को निषेध करके स्वरूप का तीन भक्तों के साथ प्रसाद परोसना—

स्वरूप कहे,—''प्रभु, बसि' करह दर्शन।
आमि इँहा-सबा लञा करि परिवेशन॥'' ८३ ॥

८३। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! मैं इन सभी को लेकर प्रसाद वितरण करता हूँ, आप बैठकर देखिये।''

स्वरूप, जगदानन्द, काशीश्वर, शङ्कर।
चारिजन परिवेशन करे निरन्तर॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीकाशीश्वर पण्डित तथा श्रीशङ्कर पण्डित—ये चारों भक्त निरन्तर प्रसाद वितरण करने लगे।

भक्तों के द्वारा प्रभु के भोजन की अपेक्षा, प्रभु को काशीमिश्र द्वारा प्रसाद-भिक्षा-प्रदान—

प्रभु ना खाइले केह ना करे भोजन।
प्रभुरे से दिने काशीमिश्रेर निमन्त्रण॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु के भोजन नहीं करने के कारण अन्य किसी भक्त ने भी भोजन प्रारम्भ नहीं किया। वास्तव में, श्रीमन्महाप्रभु का उस दिन श्रीकाशीमिश्र के घर पर निमन्त्रण था।

आपने काशीमिश्र आइला प्रसाद लञा।
प्रभुरे भिक्षा कराइला आग्रह करिया॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—जब श्रीकाशीमिश्र स्वयं श्रीमन्महाप्रभु के लिये प्रसाद लेकर आये, तब उन्होंने आग्रहपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु को भोजन कराया।

सन्यासियों के साथ प्रभु के द्वारा प्रसाद का सम्मान—

पुरी-भारतीर सङ्गे प्रभु भिक्षा कैला।
सकल वैष्णव तबे भोजन करिला॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीपरमानन्द पुरी तथा श्रीब्रह्मानन्द भारती के साथ बैठकर प्रसाद ग्रहण करना प्रारम्भ किया, तत्पश्चात् समस्त वैष्णवों ने भी भोजन करना प्रारम्भ किया।

सभी भक्तों को कण्ठ पर्यन्त भोजन कराना—

आकण्ठ पूराञा कराइला भोजन।
देह' देह' बलि' प्रभु बलेन वचन॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने प्रसाद-वितरण करने वाले भक्तों को पुनः पुनः कहा कि भक्तों को और प्रसाद दो, और प्रसाद दो। इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने सभी को आकण्ठ पर्यन्त भोजन कराया।

सभी के द्वारा आचमन कर लेने पर प्रभु के द्वारा दी गयी माला और चन्दन पहनना—

भोजन करिया सबे कैला आचमन।
सबारे पराइला प्रभु माल्य-चन्दन॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—प्रसाद-भोजन करने के उपरान्त सभी भक्तों ने आचमन किया तथा श्रीमन्महाप्रभु ने सभी को माला तथा चन्दन धारण कराया।

प्रेम के आवेश में प्रभु के द्वारा भक्तों को वरदान प्रदान—

प्रेमाविष्ट हञा प्रभु करेन वर-दान।
शुनि' भक्तगणेर जुड़ाय मनस्काम॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने प्रेम में आविष्ट होकर भक्तों को वरदान दिया जिसे सुनकर भक्तों के मन की वाञ्छा पूर्ण होने से वे शीतल हो गये।

हरिदास के विरहोत्सव में जिस-किसी भी प्रकार से भाग लेने वाले को कृष्ण प्राप्ति के वर की प्राप्ति—

''हरिदासेर-विजयोत्सव जे कैल दर्शन।
जे इँहा नृत्य कैल, जे कैल कीर्त्तन॥ ९१ ॥
जे ताँरे बालुका दिते करिल गमन।
तार मध्ये महोत्सवे जे कैल भोजन॥ ९२ ॥
अचिरे ता सबाकार हबे 'कृष्णप्राप्ति'।
हरिदास-दरशने हय ऐछे 'शक्ति'॥ ९३ ॥

९१-९३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''जिस किसी ने भी हरिदास ठाकुर के विजयोत्सव का दर्शन किया है, जिसने उस समय नृत्य किया, जिसने

कीर्त्तन किया, जो हरिदास ठाकुर को समाधि प्रदान करने के लिये गये, उनमें से जिन्होंने हरिदास ठाकुर के उद्देश्य से किये गये निर्याण महोत्सव में भोजन किया है, उन सभी को अतिशीघ्र श्रीकृष्ण की प्राप्ति होगी। हरिदास ठाकुर के दर्शन में ऐसी शक्ति है।

अनुभाष्य

९१। विजयोत्सव,—विरह-महोत्सव।

प्रियभक्त के विरह में भगवान् की विलाप-उक्ति—

कृपा करि' कृष्ण मोरे दियाछिल सङ्ग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा,—कैला सङ्ग भङ्ग॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—''भगवान् श्रीकृष्ण ने कृपा करके मुझे हरिदास ठाकुर का सङ्ग प्रदान किया था, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा स्वतन्त्र होने के कारण उन्होंने अब हरिदास ठाकुर से मेरा सङ्ग भङ्ग करा दिया है।

हरिदासेर इच्छा जबे हइल चलिते।
आमार शकति ताँरे नारिल राखिते॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—''जब हरिदास ठाकुर की इस जगत् से जाने की इच्छा हुई, मेरी शक्ति उन्हें रोक नहीं पायी।

इच्छामात्रे कैला निजप्राण निष्क्रामण।
पूर्वे जेन शुनियाछि भीष्मेर मरण॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—''हरिदास ठाकुर ने अपने प्राणों को अपनी इच्छा मात्र से ऐसे छोड़ दिया, जैसे हमने पूर्वकाल में भीष्म पितामह के शरीर त्यागने के विषय में सुना हुआ है।

ठाकुर-हरिदास के गुणों का वर्णन—

हरिदास आछिल पृथिवीर 'शिरोमणि'।
ताहा बिना रत्न-शून्या हइल मेदिनी॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—''हरिदास ठाकुर पृथ्वी के शिरोमणि अर्थात् उस पर विराजित सर्वोत्तम मणि स्वरूप थे, हरिदास ठाकुर के बिना यह पृथ्वी रत्न से शून्य (रहित) हो गयी है।

हरिदास की जयध्वनि और प्रभु के द्वारा नृत्य—

'जय जय हरिदास' बलि' कर हरिध्वनि।''
एत बलि' महाप्रभु नाचेन आपनि॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—''आप सभी 'जय जय हरिदास' का उच्चारण करते हुए हरिध्वनि कीजिए।'' इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु स्वयं नृत्य करने लगे।

हरिदास का जय-गान—

सबे गाय,—''जय जय जय हरिदास।
नामेर महिमा जेंह करिला प्रकाश॥'' ९९ ॥

९९। प० अनु०—सभी भक्त गान करने लगे,—''उन श्रीहरिदास ठाकुर की जय हो, जय हो, जय हो, जिन्होंने भगवान् के नाम की महिमा को जगत् में प्रकाशित किया है।''

भक्तों को विदायी प्रदान एवं भक्त (हरिदास) के विरह और ऐश्वर्य पूर्वक विजय करने को देखकर क्रमशः हर्ष और विषाद के साथ प्रभु का विश्राम—

तबे महाप्रभु सब भक्ते विदाय दिला।
हर्ष-विषादे प्रभु विश्राम करिला॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों को विदायी दी तथा स्वयं उन्होंने हर्ष एवं विषाद करते हुए विश्राम किया।

भक्तश्रेष्ठ नामाचार्य हरिदास के तिरोभाव के वृत्तान्त को सुनने से कृष्णभक्ति की प्राप्ति—

एइ त' कहिलुँ हरिदासेर विजय।
जाहार श्रवणे कृष्णे दृढ़भक्ति हय॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीहरिदास ठाकुर के निर्याण-विजय का वर्णन किया है, जिसके श्रवण से भगवान् श्रीकृष्ण में दृढ़भक्ति उत्पन्न होती है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०१। हरिदासेर विजय,—श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र में टोटा-गोपीनाथ से समुद्र के तट पर जाने से समुद्र के ऊपर ही ठाकुर हरिदास की समाधि अभी भी विद्यमान है। प्रत्येक वर्ष 'अनन्तचतुर्दशी' के दिन ठाकुर हरिदास का विजयोत्सव होता है।

एकादश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

भक्त की वाञ्छा को पूर्ण करने वाले भक्तवत्सल गौर-भगवान्—

चैतन्येर भक्तवात्सल्य इहातेइ जानि।
भक्तवाञ्छा पूर्ण कैला न्यासी-शिरोमणि॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु का भक्त-वात्सल्य इसी से जाना जा सकता है कि सन्यासियों के शिरोमणि श्रीमन्महाप्रभु ने अपने भक्त श्रीहरिदास ठाकुर की इच्छा को पूर्ण किया।

गोलोक में जाने के समय हरिदास को साक्षात् कृपा-प्रदान—

शेषकाले दिला ताँरे दर्शन-स्पर्शन।
ताँरे कोले करि' कैला आपने नर्त्तन॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीहरिदास ठाकुर के अन्तिम समय में भी उन्हें अपना दर्शन तथा स्पर्श प्रदान किया एवं उन्हें अपनी गोद में लेकर नृत्य किया।

आपने श्रीहस्ते कृपाय ताँरे बालु दिला।
आपने प्रसाद मागि' महोत्सव कैला॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कृपा करके अपने हाथों से श्रीहरिदास ठाकुर के दिव्य कलेवर को बालू से ढक दिया तथा उन्होंने स्वयं ही प्रसाद भिक्षा माँगकर श्रीहरिदास ठाकुर का विरह-महोत्सव आयोजित किया।

अनुभाष्य

१०३-१०४। हरिदास ठाकुर की समाधि-स्थली में लगभग एक सौ वर्ष पहले श्रीगौर, नित्यानन्द और अद्वैताचार्य—इन तीनों विग्रहों की सेवा स्थापित हुई है। केन्द्रापाड़ा के 'भ्रमरधर' नामक उड़ीसा वासी भक्त के आनुकूल्य (पैसे) से पुरी के स्वर्गद्वार में [स्थित श्रील हरिदास ठाकुर के समाधि-पीठ पर] स्थायी श्रीमन्दिर बना। यहाँ की सेवा—टोटा-गोपीनाथ के सेवायत गोस्वामियों की देखरेख में थी। किन्तु अब यह सम्पत्ति बिककर अन्यों के हाथ में चली गयी है तथा वही सेवा चला रहे हैं। हरिदास ठाकुर की समाधि स्थली के निकट ही श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर ने अपनी भजन-स्थली 'भक्ति कुटी' का निर्माण किया। बङ्गाब्द १३२९ साल में इस भक्तिकुटी में श्रीपुरुषोत्तम-मठ संस्थापित हुआ है। भक्तिरत्नाकर की तृतीय तरङ्ग में वर्णन आता है—"श्रीनिवास शीघ्र समुद्रेर कुले गेला। हरिदास ठाकुरेर समाधि देखिला॥ भूमिते पड़िया कैला प्रणति विस्तर। भागवतगण श्री समाधि-सन्निधाने। श्रीनिवासे स्थिर कैला सस्नेह-वचने॥ पुनः श्रीनिवास श्रीसमाधि प्रणमिया। जे विलाप कैला, ता शुनिते द्रवे हिया॥" [अर्थात् जब श्रीनिवासाचार्य जगन्नाथ पुरी में आये, तब वे शीघ्र समुद्र के तट पर गये। उन्होंने वहाँ श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि के दर्शन किये। तत्पश्चात् भूमि पर गिरकर बहुत देर तक प्रणाम किया। श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि के निकट जितने भक्त गण थे, उन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्ण वचनों के द्वारा श्रीनिवासाचार्य को शान्त किया। श्रीनिवासाचार्य ने पुनः श्रीहरिदास ठाकुर की समाधि को प्रणाम करके जो विलाप किया, उसे सुनने मात्र से हृदय द्रवीभूत हो जाता है।]

महाभागवत विद्वत् सन्यासी परमहंसवर ठाकुर-हरिदास—

महाभागवत हरिदास—परम-विद्वान्।
ए सौभाग्य लागि' आगे करिला प्रयाण॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—महाभागवत श्रीहरिदास ठाकुर परम विद्वान् थे, श्रीमन्महाप्रभु के भक्त-वात्सल्य को प्रकाशित करने रूपी सौभाग्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष अथवा उनकी इस

जगत् में उपस्थिति में ही देहत्याग दी।

अनुभाष्य

१०५। परम-विद्वान्,—जिसके द्वारा अविद्या रूपी संसार बन्धन से मुक्त होकर अप्राकृत अक्षर वस्तु विष्णु, अच्युत अथवा अधोक्षज-विषयक अभिज्ञता (ज्ञान) प्राप्त हो, वही 'विद्या' है। हरिदास ठाकुर सर्वोत्तम कृष्ण-विद्या में पारदर्शी थे, कारण, वे विद्या-वधू-जीवन श्रीहरिनाम-संकीर्त्तन के आचार्य और प्रचारक के रूप में अवतीर्ण हुए हैं; विशेषतः ''इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। क्रियेत भगवत्यधा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥'' (भा ७.५.२४) भागवत वचन में कृष्ण की नवविध भक्ति में से सर्वश्रेष्ठ अङ्ग कीर्त्तन के अनुशीलन करने वाले को ही 'सर्वशास्त्राधीती अर्थात् समस्त शास्त्रों को जानने वाला' कहा गया है।

एकादश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

चैतन्यचरित सिन्धु का बिन्दु भी हृत्कर्णरसायन—

चैतन्यचरित्र एइ—अमृतेर सिन्धु।
कर्ण-मन तृप्त करे जार एक बिन्दु॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु का चरित्र तो अमृत के समुद्र की भाँति है, उसकी एक बूँद भी कानों तथा मन को तृप्त कर देती है।

माया से पार होकर कृष्ण की सेवा करने के इच्छुक व्यक्ति के लिये चैतन्यचरित को श्रवण करने की कर्त्तव्यता—

भवसिन्धु तरिवारे आछे जार चित्त।
श्रद्धा करि' शुन सेइ चैतन्यचरित॥ १०७ ॥

१०७। प० अनु०—जिनकी भवसागर से उद्धार प्राप्त करने की अभिलाषा है, वे सभी श्रद्धापूर्वक श्रीचैतन्य चरित्र का श्रवण करें।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १०८ ॥

१०८। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे श्रीहरिदास-निर्याण-वर्णनं नाम एकादशः परिच्छेदः।

❋❋❋

द्वादश परिच्छेद

कथासार—महाप्रभु का रात्रि के समय में प्रेमविकार एवं दिन में भी उसी की चर्चा चलने लगी। दूसरी ओर, (भक्तों के साथ) गौड़देश से शिवानन्द-सेन ने अपनी पत्नी और तीनों पुत्रों को साथ लेकर यात्रा आरम्भ की। मार्ग में नित्यानन्दप्रभु को वासस्थान प्राप्त कराने में देरी होने पर उन्होंने शिवानन्द के प्रति प्रेम-कोप (क्रोध) प्रकाशित करके पदाघात किया था। शिवानन्द के उससे कृतार्थ होने पर भी उनका भान्जा (बहन का बेटा) श्रीकान्त-सेन दु:खित होकर पहले ही महाप्रभु के पास चला गया। उस वर्ष परमेश्वरदास (मिष्ठान्न बनाने वाले हलवाई) मोदक सपरिवार महाप्रभु के दर्शनों के लिये गये थे। पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति भक्तों ने महाप्रभु को निमन्त्रण किया। उनकी विदायी के समय महाप्रभु ने अनेक विनयपूर्ण वचन प्रकाशित किये। पिछले वर्ष जगदानन्द-पण्डित को श्रीशचीमाता के लिये प्रसाद-वस्त्र साथ लेकर भेजा गया था। जगदानन्द पण्डित शिवानन्द के घर से 'चन्दन आदि' द्रव्यों से निर्मित सुगन्धित तेल को बना कर उसे एक कलसी (मटकी) में लेकर आये तथा उन्होंने उस तेल को गोविन्द को देकर उन्हें महाप्रभु के सिर पर लगाने की प्रार्थना की। महाप्रभु के द्वारा उस तेल को स्वीकार नहीं करने पर, जगदानन्द ने उस तेल से भरी मटकी को फैंककर तोड़ दिया तथा दो दिन तक उपवास किया। महाप्रभु ने उन्हें शान्त करने के लिए उनके निकट भिक्षा (भोजन) के लिये प्रार्थना की, जगदानन्द पण्डित ने अन्न-व्यञ्जन आदि रन्धन करके महाप्रभु की सेवा करके प्रसादादि ग्रहण किया।

(अ: प्र: भा:)

भक्तों को सदैव चैतन्यचरितामृत के श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण करने का अनुरोध—

श्रुयतां श्रुयतां नित्यं गीयतां गीयतां मुदा।
चिन्त्यतां चिन्त्यतां भक्ताश्चैतन्यचरितामृतम्॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। हे भक्तगण, इस चैतन्यचरितामृत का नित्य श्रवण करो, गान करो एवं आनन्दपूर्वक चिन्तन करो।

अनुभाष्य

१। हे भक्ता:, मुदा (आनन्देन) चैतन्यचरितामृतं नित्यं (पुन: पुन:) श्रुयतां श्रुयतां, (पुन: पुन:) गीयतां गीयतां, (पुन: पुन:) चिन्त्यताम्, चिन्त्यताम्।

जय जय श्रीचैतन्य जय दयामय।
जय जय नित्यानन्द कृपासिन्धु जय॥ २ ॥

२। प० अनु०—दयामय श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो, जय हो। कृपा के सागर श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो, जय हो, जय हो।

जयाद्वैतचन्द्र जय करुणा-सागर।
जय गौरभक्तगण कृपा-पूर्णान्तर॥ ३ ॥

३। प० अनु०—करुणा के सागर श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो, जय हो। हृदय में कृपा से परिपूर्ण श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

प्रभु में कृष्ण-विरह की स्फूर्त्ति—

अत:पर महाप्रभु विषण्ण-अन्तर ।
कृष्णेर वियोग-दशा स्फुरे निरन्तर ॥ ४ ॥

४। प० अनु०—श्रीहरिदास ठाकुर के निर्याण के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु का हृदय अत्यन्त दु:खी रहता। उनके हृदय में निरन्तर कृष्ण से विरह की दशा स्फुरित होती थी।

प्रभु में कृष्ण सङ्ग हेतु - व्याकुलता –

''हाहा कृष्ण प्राणनाथ व्रजेन्द्रनन्दन!
काँहा जाउ, काँहा पाउ, मुरलीवदन!!'' ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु सदैव यही कहते,— ''हा हा कृष्ण! हे प्राणनाथ! हे व्रजेन्द्रनन्दन! हे मुरलीवदन! मैं कहाँ जाऊँ, कहाँ जाने से आप मिलेंगे!''

दिन-रात कृष्ण-विरह की ज्वाला–

रात्रि-दिन एइ दशा, स्वस्ति नाहि मने।
कष्टे रात्रि गोङाय स्वरूप-रामानन्द-सने॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु रात-दिन उपरोक्त अवस्था में रहते, उनके मन को चैन न आता। वे श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीरामानन्द राय के साथ अत्यन्त कष्टपूर्वक रात्रि व्यतीत करते।

अनुभाष्य

६। पाठान्तर में,—'स्वास्थ्य नाहि माने' (अर्थात् उनका स्वास्थ्य भी इसे स्वीकार नहीं कर पाता था)।

प्रत्येक वर्ष की भाँति गौड़ीय भक्तों का प्रभु के दर्शन के लिये पुरी में आने का प्रयास–

एथा गौड़देशे प्रभुर जत भक्तगण।
प्रभु देखिबारे सबे करिला गमन॥ ७ ॥

७। प० अनु०—दूसरी ओर, गौड़देश में श्रीमन्महाप्रभु के जितने भक्त थे, वे सभी श्रीमन्महाप्रभु के दर्शनों के लिये चल पड़े।

सभी भक्तों का नवद्वीप में आगमन–

शिवानन्द-सेन आर आचार्य-गोसाञि।
नवद्वीपे सब भक्त हैला एक ठाञि॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन और श्रीअद्वैताचार्य गोस्वामी आदि समस्त भक्त श्रीनवद्वीप में एकत्रित हुए।

कुलीनग्रामवासी आर जत खण्डवासी।
एकत्र मिलिला सब नवद्वीपे आसि'॥ ९ ॥

९। प० अनु०—कुलीन ग्रामवासी और श्रीखण्डवासी भक्त भी नवद्वीप में आकर एकत्रित हुए।

प्रभु के द्वारा निषेध किये जाने पर भी नित्यानन्द के द्वारा यात्रा–

नित्यानन्द-प्रभुरे यद्यपि आज्ञा नाइ।
तथापि देखिते चलेन चैतन्य-गोसाञि॥ १० ॥

१०। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु को गौड़ से श्रीजगन्नाथपुरी आने हेतु निषेध किया था, तथापि श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीचैतन्य-गोसाञि के दर्शन हेतु श्रीजगन्नाथ पुरी की ओर चल पड़े।

अनुभाष्य

१०। अन्त्य-लीला के दशम परिच्छेद की ५-८ तक संख्या द्रष्टव्य।

सपरिवार गृहस्थ गौरभक्तों के द्वारा यात्रा–

श्रीवासादि चारि भाइ, सङ्गेते मालिनी।
आचार्यरत्नेर सङ्गे ताँहार गृहिणी॥ ११ ॥

११। प० अनु०—श्रीवास पण्डित आदि चार भाई तथा उनके साथ में श्रीवासपण्डित की पत्नी श्रीमालिनी देवी और श्रीआचार्यरत्न के साथ उनकी पत्नी भी चल पड़ी।

शिवानन्द-पत्नी चले तिन-पुत्र लञा।
राघव-पण्डित चले झालि साजाञा॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन की पत्नी भी अपने तीनों पुत्रों को साथ में लेकर चल दी। श्रीराघव पण्डित अपनी झालि को सजाकर चल दिये।

दत्त, गुप्त, विद्यानिधि, आर जत जन।
दुइ-तिन शत भक्त करिला गमन॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—श्रीवासुदेव दत्त, श्रीमुरारि गुप्त, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि एवं अन्य जितने भी भक्त थे, कुल मिलाकर दो-तीन सौ भक्त एक साथ श्रीजगन्नाथपुरी चल दिये।

शची को प्रणाम करके कीर्त्तन करते हुए सभी के द्वारा यात्रा—

शचीमाता देखि' सबे ताँर आज्ञा लञा।
आनन्दे चलिला कृष्णकीर्त्तन करिया॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—सभी भक्त लोग श्रीशची माता के दर्शन करके तथा उनकी आज्ञा लेकर आनन्दपूर्वक कृष्ण-कीर्त्तन करते हुए श्रीजगन्नाथ पुरी की ओर चल दिये।

सम्पन्न (समर्थ) शिवानन्द के द्वारा मार्ग का कर-प्रदान और भक्तों के चलने पर भक्तों की सेवा—

शिवानन्द-सेन करे घाटी-समाधान।
सबारे पालन करि' सुखे लञा जान॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन मार्ग में सब प्रकार के कर आदि का समाधान कर रहे थे एवं वे सुखपूर्वक सभी का पालन करते हुए उन्हें श्रीजगन्नाथपुरी लेकर जा रहे थे।

अनुभाष्य

१५। घाटि-समाधान,—जमींदार के स्थान पर यात्री अथवा पथिकों के आवागमन करने पर ही कर लिया जाता था। पहले जमींदार आदि के द्वारा पथ-कर आदायी नहीं किये जाने पर, मार्ग-घाट के मालिक ही कर प्राप्त करते थे। शिवानन्द-सेन जगन्नाथपुरी की ओर जा रहे यात्रियों के द्वारा प्रदान किये जाने वाले पथ-कर को स्थान-स्थान पर मार्ग-घाट के लोगों को चुका देते थे।

शिवानन्द को उड़ीसा के पथ के विषय में जानकारी—

सबार सब कार्य करेन, देन वासस्थान।
शिवानन्द जाने उड़िया-पथेर सन्धान॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन सभी भक्तों के समस्त कार्य करते थे, उन्हें मार्ग में जहाँ-जहाँ आवश्यकता पड़ती, वासस्थान प्रदान करते। श्रीशिवानन्द सेन उड़ीसा जाने के मार्ग को भली-भाँति जानते थे।

अनुभाष्य

१६। उडिया-पथेर,—उड़ीसा जाने के मार्ग के।

एकदिन सबलोक घाटिते राखिला।
सबा छाड़ाञा शिवानन्द एकेला रहिला॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—एकदिन राज कर्मचारियों ने समस्त भक्तों को घाटी (सीमा) पर रोक लिया किन्तु श्रीशिवानन्द सेन ने उन सबको छुड़ाकर आगे भेज दिया तथा स्वयं अकेले राज कर्मचारियों के पास रह गये।

अनुभाष्य

१७। घाटी पर कर लेने वाले व्यक्ति अत्याचार करके यात्रियों से अधिक कर अदायी करते थे एवं प्राप्त होने वाले कर से अधिक एकत्रित करने के लिये यात्रियों को घाटी पर ही रोक करके रखते थे। शिवानन्द ने सभी यात्रियों के पक्ष से स्वयं 'जामिन' बनकर अर्थात् उनकी जिम्मेदारी अथवा उनका दायित्व लेकर उन्हें छुड़ा दिया।

सबे गिया रहिला ग्राम-भितर वृक्षतले।
शिवानन्द बिना वासस्थान नाहि मिले॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—सभी भक्त-यात्री गाँव के अन्दर जाकर वृक्ष के नीचे बैठ गये, कारण, जब तक श्रीशिवानन्द सेन नहीं आते, तब तक किसी को भी वासस्थान की प्राप्ति कैसे हो सकती है।

नित्यानन्द का अप्राकृत व्रज के गोप बालक के वेश में भूख के मिटने के अभाव में शिवानन्द पर कृत्रिम (झूठ-मूठ के) रोषाभास का प्रदर्शन—

नित्यानन्दप्रभु भोके व्याकुल हञा।
शिवानन्दे गालि पाड़े वासा ना पाञा॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु भूख से व्याकुल हो रहे थे तथा साथ ही रहने के लिये स्थान भी नहीं मिला, इसलिए वे श्रीशिवानन्द सेन को गाली निकालते हुए कहने लगे—।

अमृतप्रवाह भाष्य

१९। भोके, - भूख से।

''तिन पुत्र मरुक शिवार, एखन ना आइल।
भोके मरि' गेनु, मोरे वासा ना देओयाइल॥'' २०॥

२०। प० अनु०—''शिवानन्द अभी तक भी नहीं आया है। एक तो मैं भूख से मर रहा हूँ और दूसरा उसने मुझे अभी तक वासस्थान भी नहीं दिलवाया इसीलिए उस सेन के तीनों पुत्र मर जायें।''

नित्यानन्द के शाप को सुनकर शिवानन्द सेन की पत्नी के द्वारा क्रन्दन और शिवानन्द के सामने शाप के वृत्तान्त का वर्णन—

शुनि' शिवानन्देर पत्नी कान्दिते लागिला।
हेनकाले शिवानन्द घाटि हैते आइला॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—श्रीनित्यानन्द प्रभु के इन वचनों को सुनकर श्रीशिवानन्द सेन की पत्नी क्रन्दन करने लगी, उसी समय श्रीशिवानन्द सेन कर का समाधान करके लौट आये।

शिवानन्देर पत्नी ताँरे कहेन कान्दिया।
''पुत्रे शाप दिछेन गोसाञि वासा ना पाञा॥'' २२॥

२२। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन की पत्नी रोते हुए उनसे कहने लगी,—''श्रीनित्यानन्द गोसाञि ने वासस्थान प्राप्त नहीं हो पाने के कारण हमारे पुत्रों को मरने का श्राप दिया है।''

शिवानन्द के द्वारा पत्नी को आश्वासन—

तेंहो कहे,—''बाउलि, केने मरिस् कान्दिया?
मरुक आमार तिन पुत्र ताँर बालाइ लञा॥'' २३॥

२३। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने कहा,—''पगली, तुमने रो-रोकर अपना हाल क्यों बुरा कर रखा है? मेरे तीनों पुत्र उनकी बालाइ लेकर अर्थात् उनके समस्त दु:खों-कष्टों पर मरते हैं तो मर जायें।''

अनुभाष्य

२३। 'बाउली',—'पगली'; पाठान्तरे, बाउनी,—ब्राह्मणी; शौक्र-ब्राह्मण नहीं होने पर भी उन दिनों भद्र महिलाओं को वैसा कहकर पुकारना ही प्रचलित था।

शिवानन्द को नित्यानन्द के चरण के आघात रूपी सौभग्य की प्राप्ति—

एत बलि' प्रभु-पाशे गेला शिवानन्द।
उठि' ताँरे लाथि माइला प्रभु-नित्यानन्द॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—इतना कहकर श्रीशिवानन्द सेन श्रीनित्यानन्द प्रभु के पास गये, श्रीनित्यानन्द प्रभु उन्हें देखते ही उठ खड़े हुए तथा उन्होंने श्रीशिवानन्द सेन पर पदाघात किया।

आनन्दित हैला शिवाइ पादप्रहार पाञा।
शीघ्र वासा-घर कैला गौड़-घरे गिया॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरण का प्रहार पाकर आनन्दित हुए तथा उन्होंने शीघ्र ही किसी गौड़ (अर्थात् ग्वाले) के घर में जाकर श्रीनित्यानन्द प्रभु के लिये वासस्थान की व्यवस्था की।

अनुभाष्य

२५। गौड़-घरे,—ग्वाले के घर पर।

नित्यानन्द प्रभु के लिये निर्वाचित (चुने गये) घर में उन्हें लाकर उनकी स्तुति—

चरणे धरिया प्रभुरे वासाय लञा गेला।
वासा दिया हृष्ट हञा कहिते लागिला॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—तत्पश्चात् श्रीशिवानन्द सेन ने

आकर श्रीनित्यानन्द प्रभु के चरणों को धारण किया तथा उनसे प्रार्थना करके उन्हें वासस्थान पर ले गये। श्रीशिवानन्द सेन श्रीनित्यानन्द प्रभु को वासस्थान देने के पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—।

निजजन मानकर ही प्रभु के द्वारा सेवक का तिरस्कार—

''आजि मोरे भृत्य करि' अङ्गीकार कैला।
जेमन अपराध भृत्येर, योग्य फल दिला॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—''हे श्रीनित्यानन्द प्रभु! आज आपने मुझे अपना दास मानकर अङ्गीकार किया है, दास के अपराध के अनुरूप आपने उसे उचित फल ही प्रदान किया है।

ईश्वर के द्वारा प्रदान की गयी सजा अथवा दु:ख ही प्रच्छन्न परम कृपा और सुख—

'शास्ति'-छले कृपा कर,—ए तोमार 'करुणा'।
त्रिजगते तोमार चरित्र बुझे कोन् जना?? २८ ॥

२८। प० अनु०—''आप दण्ड के छल से कृपा करते हैं, यह वास्तव में आपकी करुणा ही है। आपके चरित्र को त्रिभुवन में कौन समझ सकता है?

साक्षात् सर्वेश्वरेश्वर नित्यानन्द-पद धूलि को प्राप्त करने पर ही पुरुषार्थ कृष्णभक्ति की प्राप्ति—

ब्रह्मार दुर्लभ तोमार श्रीचरण-रेणु।
हेन चरण-स्पर्श पाइल मोर अधम तनु॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—''आपके श्रीचरणों की रज ब्रह्मा के लिये भी दुर्लभ है और मेरी अधम देह को आपके चरणों की वैसी दुर्लभ रज प्राप्त हुई है।

आजि मोर सफल हैल जन्म, कुल, कर्म।
आजि पाइनु कृष्णभक्ति, अर्थ, काम, धर्म॥'' ३०॥

३०। प० अनु०—''आज ही मेरा जन्म, कुल तथा कर्म (सेवा करना) सफल हुआ है, आज ही मुझे कृष्ण भक्ति, अर्थ, काम तथा धर्म की प्राप्ति हुई है।''

अपनी स्तुति को श्रवण करके प्रभु में आनन्द—

शुनि' नित्यानन्द प्रभुर आनन्दित मन।
उठि' शिवानन्दे कैला प्रेम-आलिङ्गन॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन के मुख से हृद्गत गूढ़ अभिप्राय पूर्ण वचनों को सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु का मन आनन्दित हो उठा तथा उन्होंने उठकर श्रीशिवानन्द सेन को प्रेममय आलिङ्गन प्रदान किया।

आनन्दित शिवानन्द करे समाधान।
आचार्यादि-वैष्णवेरे दिला वासास्थान॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०— आनन्दित श्रीशिवानन्द सेन ने श्रीअद्वैताचार्य प्रभु आदि वैष्णवों को भी वासस्थान प्रदान करके सब समाधान किया।

नित्यानन्द प्रभु (गुरु) का क्रोधाभास ही प्रच्छन्न परम-कृपा और नित्यकल्याण सूचक—

नित्यानन्द प्रभुर सब चरित्र—'विपरीत'।
क्रुद्ध हञा लाथि मारि' करे तार हित॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—वास्तव में श्रीनित्यानन्द प्रभु के समस्त चरित्र ही बाहरी रूप से देखने में विपरीत हैं, श्रीनित्यानन्द प्रभु ने क्रोधपूर्वक पदाघात कर श्रीशिवानन्द सेन का हित ही किया।

श्रीकान्त-सेन के वृत्तान्त का वर्णन—

शिवानन्देर भागिना,—श्रीकान्त-सेन नाम।
मामार अगोचरे कहे करि' अभिमान॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन का भान्जा, जिसका नाम श्रीकान्त सेन था, वह अपने मामा के पीठ-पीछे गर्वपूर्वक कहने लगा,—।

मामा पर नित्यानन्दप्रभु के पदाघात को देखकर दु:खित होकर अकेले पुरी में जाकर प्रभु के दर्शन—

''चैतन्येर पारिषद मोर मातुलेर ख्याति।
'ठाकुराली' करेन गोसाञि, ताँरे मारे लाथि॥'' ३५॥

३५। प० अनु०—''मेरे मामा की श्रीचैतन्य महाप्रभु के पार्षद के रूप में ख्याति है। श्रीनित्यानन्द प्रभु ने अपनी ठाकुराली दिखाने के लिये उन्हें लात मारी है।''

एत बलि' श्रीकान्त-बालक आगे चलि' जान।
सङ्ग छाड़ि' आगे गेला महाप्रभुर स्थान॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—इतना कहकर बालक श्रीकान्त श्रीजगन्नाथ पुरी जाने वाले यात्रियों के सङ्ग को छोड़कर पहले ही श्रीमन्महाप्रभु के पास उनके वासस्थान पर जाकर पहुँच गया।

श्रीकान्त को गोविन्द के द्वारा भगवान् के विग्रह के विषय में मर्यादा-विधि का उपदेश—

पेटाङ्गि-गाय करे दण्डवत्-नमस्कार।
गोविन्द कहे,—''श्रीकान्त, आगे पेटाङ्गि उतार॥''

३७। प० अनु०—श्रीकान्त ने अपने शरीर पर जामा (कुर्त्ता) पहने हुए ही श्रीमन्महाप्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया, उसे ऐसा करते देख श्रीगोविन्द ने कहा—''हे श्रीकान्त! पहले तुम अपना जामा उतारो।''

अमृतप्रवाह भाष्य

३७। पेटाङ्गि,—अङ्गरखा, जामा(कुर्त्ता)।

अनुभाष्य

३७। तन्त्रवाक्य—''वस्त्रेणावृत-देहस्तु यो नरः प्रणमेद्धरिम। शिवत्री भवति मूढ़ात्मा सप्त जन्मनि भाविनि॥'' [अर्थात् हे भाविनि, जो मनुष्य वस्त्र से आवृत देह से युक्त होकर श्रीहरि को प्रणाम करता है, वह मूढ़ व्यक्ति सात जन्मों तक धवलरोगी अर्थात् श्वेत कुष्ठ रोगी होता है।]

अन्तर्यामी प्रभु के द्वारा श्रीकान्त के मन के भाव के विषय में बतलाना—

प्रभु कहे,—''श्रीकान्त आस्याछे पाञा मनोदुःख।
किछु ना बलिह, करुक, जाते इहार सुख॥'' ३८॥

३८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द से कहा,—''यह श्रीकान्त मन में बहुत दुःख प्राप्त करके आया है। तुम इसे कुछ भी मत कहो, इसे जिसमें प्रसन्नता मिले, इसे वैसा ही करने दो।''

प्रभु के द्वारा गौड़ीय भक्तों के संवाद की जिज्ञासा और उत्तर—

वैष्णवेर समाचार गोसाञि पुछिला।
एके एके सबार नाम श्रीकान्त जानाइला॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—श्रीचैतन्य गोसाञि ने श्रीकान्त से वैष्णवों के समाचार के विषय में पूछा तथा श्रीकान्त ने एक-एक करके समस्त वैष्णवों के नाम बतलाये।

'दुःख पाञा आसियाछे,'—एइ प्रभुर वाक्य शुनि'।
जानिला 'सर्वज्ञ प्रभु'—एत अनुमानि'।। ४० ॥

४०। प० अनु०— श्रीकान्त श्रीमन्महाप्रभु के मुख से उच्चारित वचनों—'यह बहुत दुखी होकर आया है'—को सुनकर अनुमान लगा कर जान गया कि श्रीमन्महाप्रभु सर्वज्ञ हैं।

अपने मन के भावों को जानने वाले प्रभु को अन्तर्यामी मानकर पदाघात के संवाद के विषय को गुप्त रखना—

शिवानन्दे लाथि मारिला,—इहा ना कहिला।
एथा सब वैष्णवगण आसिया मिलिला॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—अतएव श्रीकान्तसेन ने श्रीमन्महाप्रभु को श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीशिवानन्द सेन को पदाघात करने के विषय में नहीं बतलाया। दूसरी ओर, सभी वैष्णव आकर श्रीमन्महाप्रभु से मिले।

गौड़ीय भक्तों का आगमन और स्त्रियों द्वारा दूर से ही प्रभु का दर्शन—

पूर्ववत् प्रभु कैला सबार मिलन।
स्त्री-सब दूर हइते कैला प्रभुर दरशन॥ ४२ ॥

४२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति सभी भक्तों से मिले। स्त्रियों ने दूर से ही श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन किये।

सभी को घर आदि प्रदान—

वासा-घर पूर्ववत् सबारे देओयाइला।
महाप्रसाद-भोजने सबारे बोलाइला॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति सभी भक्तों को वासस्थान दिलवाया तथा सभी भक्तों को महाप्रसाद भोजन करने के लिये बुलाया।

पुत्र सहित शिवानन्द पर प्रभु की कृपा—

शिवानन्द तिनपुत्रे गोसाञिरे मिलाइला।
शिवानन्द-सम्बन्धे सबाय बहुकृपा कैला॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने अपने तीनों पुत्रों को श्रीचैतन्य गोसाञि से मिलवाया। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीशिवानन्द सेन के सम्बन्ध से उनके पुत्रों पर बहुत कृपा की।

प्रश्नोत्तर में छोटे पुत्र का परमानन्दपुरी-दास-नाम-श्रवण—

छोट पुत्रे देखि' प्रभु नाम पुछिला।
'परमानन्ददास'-नाम सेन जानाइला॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन के सबसे छोटे पुत्र को देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने उसका नाम पूछा। श्रीशिवानन्द सेन ने उसका परमानन्ददास नाम बतलाया।

परमानन्द-पुरी-दास-नाम के आदि कारण के वृत्तान्त का वर्णन; प्रभु की आज्ञा से नामकरण—

पूर्वे जबे शिवानन्द प्रभुस्थाने आइला।
तबे महाप्रभु ताँरे कहिते लागिला॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—पहले किसी एक वर्ष जब श्रीशिवानन्द सेन श्रीमन्महाप्रभु के पास आये थे, तब श्रीमन्महाप्रभु उनसे कहने लगे,—।

''एबार तोमार जेइ हइबे कुमार।
'पुरीदास' बलि' नाम धरिह ताहार॥'' ४७ ॥

४७। प० अनु०—''हे शिवानन्द सेन! इस बार आपका जो पुत्र होगा, आप उसका नाम [परमानन्द] पुरी दास रखना।''

तबे मायेर गर्भे हय सेइ त' कुमार।
शिवानन्द घरे गेले, जन्म हैल तार॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—उस समय वह बालक अपनी माता के गर्भ में था, जब श्रीशिवानन्द सेन अपने घर लौटकर गये थे, तब उस बालक का जन्म हुआ था।

प्रभु-आज्ञाय धरिला नाम—'परमानन्द-दास'।
'पुरीदास' करि' प्रभु करेन उपहास॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञानुसार उस बालक का नाम श्रीपरमानन्द (पुरी) दास रखा था। श्रीमन्महाप्रभु उस बालक का 'पुरीदास' 'पुरीदास' नाम पुकारकर उपहास करने लगे।

परमानन्द (पुरी) दास के द्वारा प्रभु के चरण के अँगूठे को चूसना—

शिवानन्द जबे सेइ बालके मिलाइला।
महाप्रभु पादांगुष्ठ तार मुखे दिला॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने जब अपने उस बालक को श्रीमन्महाप्रभु से मिलवाया तब श्रीमन्महाप्रभु ने अपने चरण का अगूँठा उस बालक के मुख में दे दिया।

अनुभाष्य

५०। बाद में पिता के साथ पुरी में आगमन एवं प्रभु के द्वारा कृष्ण का नाम उच्चारण करने के लिये बहुत साध्य-साधना के पश्चात् अन्त में उस बालक के द्वारा कृष्ण-लीला के श्लोक की रचना हेतु—अन्त्य-लीला के षोड़श परिच्छद की ६५-७५ वीं संख्या द्रष्टव्य।

शिवानन्द का परम सौभाग्य—

शिवानन्देर भाग्यसिन्धु के पाइबे पार?
जाँर सब गोष्ठीके प्रभु कहे 'आपनार'॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन के भाग्य समुद्र का कौन पार पा सकता है? जिनकी समस्त गोष्ठी को श्रीमन्महाप्रभु 'अपना' कहते थे।

तबे सब भक्त लञा करिला भोजन।
गोविन्देरे आज्ञा दिला करि' आचमन॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—तब श्रीमन्महाप्रभु ने सब भक्तों के साथ भोजन किया तथा उन्होंने आचमन करने के पश्चात् श्रीगोविन्द को आदेश दिया—।

सपरिवार शिवानन्द को प्रभु के द्वारा निजजन मानकर साक्षात् कृपा—

''शिवानन्देर 'प्रकृति', पुत्र—यावत् एथाय।
आमार अवशेष-पात्र तारा जेन पाय॥'' ५३ ॥

५३। प० अनु०— ''शिवानन्द सेन की पत्नी तथा पुत्र जब तक जगन्नाथ पुरी में हैं, ध्यान देना कि उन्हें मेरा अवशेष भोजन अवश्य ही मिले। ''

अमृतप्रवाह भाष्य

५३। शिवानन्देर 'प्रकृति',—शिवानन्द की पत्नी।

श्रीमायापुरवासी परमेश्वर-मोदक का वृत्तान्त—

नदीया-वासी मोदक, तार नाम—'परमेश्वर'।
मोदक बेचे, प्रभुर बाटीर निकट तार घर॥ ५४ ॥

प्रभु की बाल्य-लीला और परमेश्वर—

बालक-काले प्रभु तार घरे बार बार जा'न।
दुग्ध, खण्ड मोदक देय, प्रभु ताहा खा'न॥ ५५ ॥
प्रभु-विषये स्नेह तार बालक-काल हैते।
से वत्सर से आइल प्रभुरे देखिते॥ ५६ ॥

५४-५६। प० अनु०— नदिया जिले के अन्तर्गत श्रीमायापुर में श्रीमन्महाप्रभु के घर के निकट ही रहने वाले मोदक अर्थात् मिष्ठान्न बेचने वाले श्रीपरमेश्वर भी इस वर्ष श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन करने के लिये आये। श्रीमन्महाप्रभु बचपन में बारम्बार उनके घर पर जाते थे तथा वे श्रीमन्महाप्रभु को दूध, गुड़ के लड्डु आदि देते थे और श्रीमन्महाप्रभु उसे खाते थे। श्रीपरमेश्वर का श्रीमन्महाप्रभु के बचपन से ही उनसे स्नेह था।

परमेश्वर के द्वारा अपना परिचय देकर प्रणाम और पत्नी का आगमन-ज्ञापन—

''परमेश्वरया मुञि'', बलि' दण्डवत् कैल।
तारे देखि' प्रभु प्रीते ताहारे पुछिल॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०— श्रीपरमेश्वर ने ''मैं परमेश्वर हूँ''— अपना ऐसा परिचय देकर श्रीमन्महाप्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया। उन्हें देखकर श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे प्रीतिपूर्वक पूछा—।

''परमेश्वर कुशल हओ, भाल हैल, आइला।''
''मुकुन्दार माता आसियाछे,'' प्रभुरे कहिला॥ ५८॥

५८। प० अनु०— ''परमेश्वर! आप कुशल तो हैं ना। बहुत अच्छा हुआ कि आप श्रीजगन्नाथ पुरी में आये।'' श्रीपरमेश्वर ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा— ''मुकुन्द की माता अर्थात् मेरी पत्नी भी आयी है।''

माता के समान वृद्धा होने पर भी स्त्री का नाम श्रवण करने मात्र से जगद्गुरु लोक-शिक्षक सन्यासी की लीला करने वाले प्रभु को संकोच-बोध—

मुकुन्दार मातार नाम शुनि' प्रभु सङ्कोच हैला।
तथापि ताहार प्रीते किछु ना बलिला॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०— श्रीपरमेश्वर के मुख से मुकुन्द की माता का नाम सुनकर श्रीमन्महाप्रभु कुछ संकुचित हुए किन्तु उन्होंने श्रीपरमेश्वर के प्रति अपनी प्रीति के कारण उन्हें कुछ भी नहीं कहा।

सरल स्नेह के कारण बाहरी शिष्टाचार अथवा बाह्य-मर्यादा-ज्ञान के अभाव के कारण दोष होने पर भी भावग्राही प्रभु उसके निष्कपट व्यवहार के गुण से सन्तुष्ट—

प्रश्रय-प्रागल्भ्य शुद्ध-वैदग्धी ना जाने।
अन्तरे सुखी हैला प्रभु तार सेइ गुणे॥ ६० ॥

६०। प० अनु०— श्रीपरमेश्वर स्नेह रूपी प्रगल्भता (मुखरता) के कारण शुद्ध चतुरता नहीं जानते थे, श्रीमन्महाप्रभु उनके इसी गुण के कारण हृदय में बहुत

अधिक प्रसन्न हुए।

अमृतप्रवाह भाष्य

६०। 'मुकुन्द की माता आयी हैं' —यह बात सन्यासी के समक्ष बोलना—केवल पूर्व-प्रश्रय-प्रागल्भ्य (स्नेह के कारण सरलता) मात्र है। प्रश्रय-प्रागल्भ्य कभी भी शुद्ध-वैदग्धी अर्थात् शुद्ध वाक्-चातुर्य को नहीं जानता।

अनुभाष्य

६०। पाठान्तर में,—'प्रश्रय पागल शुद्ध-वैदग्धी ना जाने'[अर्थात् मन के भावों को प्रश्रय देने वाला संयम रहित प्रश्रय-पागल शुद्ध चतुरता को नहीं जानता]; 'प्रश्रय' शब्द का अर्थ स्नेह, स्नेह युक्त सम्मान, विनय, विश्वास, आबदार [प्रिय से कुछ प्राप्त करने हेतु निवेदन] है। 'प्रागल्भ्य'-शब्द का अर्थ प्रगल्भता, उधत्य, तेजस्विता है; 'वैदग्धी'- शब्द का अर्थ चतुरता, रसिकता, शोभा, पटुता, पाण्डित्य, कौशल, भङ्गी है।

गुण्डिचा मार्जन और रथ के आगे नृत्य—

पूर्ववत् सबा लञा गुण्डिचा-मार्जन।
रथ-आगे पूर्ववत् करिला नर्तन॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति सभी भक्तों के साथ गुण्डिचा मन्दिर का मार्जन किया तथा पूर्व-पूर्व वर्षों की भाँति ही रथ के समक्ष नृत्य किया।

ईश्वर की यात्रा (महोत्सव) आदि के दर्शन के अन्त में श्रीवासपत्नी के द्वारा प्रभु को भिक्षा-प्रदान—

चातुर्मास्य सब यात्रा कैला दरशन।
मालिनी प्रभृति प्रभुरे कैला निमन्त्रण॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०— गौड़देश से आये समस्त भक्तों ने चातुर्मास्य के अन्तर्गत आने वाले समस्त महोत्सवों के दर्शन किये तथा श्रीवास पण्डित की पत्नी श्रीमालिनी इत्यादि महिला भक्तों ने अपने पतियों के माध्यम से श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण किया।

प्रभुर प्रिय नाना द्रव्य आनियाछे देश हैते।
सेइ व्यञ्जन करि' भिक्षा देन घर-भाते॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०— सभी महिला भक्त अपने साथ गौड़देश से श्रीमन्महाप्रभु को प्रिय लगने वाले अनेक द्रव्य लायी थी, उन्होंने उन्हीं वस्तुओं के व्यञ्जन बनाकर तथा घर में ही चावल आदि बनाकर श्रीमन्महाप्रभु को प्रसाद पवाया।

दिन में गोष्ठी सहित संकीर्त्तन, रात्रि में निर्जन में कृष्ण-विरह—

दिने नाना क्रीड़ा करे लञा भक्तगण।
रात्र्ये कृष्ण-विच्छेदे प्रभु करेन रोदन॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु दिन के समय भक्तों को साथ में लेकर अनेक प्रकार की लीलाएँ करते थे तथा रात्रि में कृष्ण के विरह में रोते थे।

चातुर्मास्य के अन्त में गौड़-गमन के पहले भक्तों के प्रति प्रभु की उक्ति—

एइमत नाना-लीलाय चातुर्मास्य गेल।
गौड़देशे जाइते तबे भक्ते आज्ञा दिल॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु का इस प्रकार अनेक लीलाएँ करते हुए चातुर्मास्य का समय व्यतीत हो गया, तब उन्होंने भक्तों को गौड़देश लौट जाने की आज्ञा दी।

सब भक्त करेन महाप्रभुर निमन्त्रण।
सर्वभक्ते कहेन प्रभु मधुर वचन॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०— सब भक्तों ने श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण किया। श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों को इस प्रकार के मधुर वचन कहे,—।

भक्त के दुःख में भगवान् का दुःख—

''प्रतिवर्षे आइस सबे आमारे देखिते।
प्रतिवर्षे जाइते दुःख पाओ बहुमते॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०— ''आप सभी प्रतिवर्ष मुझसे मिलने

के लिये आते हैं तथा प्रत्येक वर्ष ही जाते समय बहुत प्रकार से विरह-दु:ख पाते हैं।

भक्तों के दु:ख के कारण प्रभु के द्वारा उनके दर्शनों के लिये आने हेतु निषेध, किन्तु भक्तसङ्ग का लोभ–

तोमा-सबार दु:ख जानि' चाहि निषेधिते।
तोमा-सबार सङ्गसुखे लोभ बाड़े चित्ते॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०— ''यद्यपि आप सभी के दु:ख को जानकर मैं आपको यहाँ आने के लिये मना करना चाहता हूँ किन्तु आप सभी के सङ्ग रूपी सुख से चित्त में आपका अधिक सङ्ग प्राप्त करने का लोभ वर्धित होता है।

भगवान् के द्वारा भक्तों के गुणों का कीर्त्तन–

नित्यानन्दे आज्ञा दिलुँ गौड़ेते रहिते।
आज्ञा लङ्घि' आइला, कि पारि बलिते?? ६९ ॥

६९। प० अनु०— ''यद्यपि मैंने श्रीनित्यानन्द प्रभु को गौड़देश में रहने का अनुरोध किया था तथापि वे मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके आ गये हैं। मैं उन्हें क्या कह सकता हूँ?

आइलेन आचार्य-गोसाञि मोरे कृपा करि'।
प्रेम-ऋणे बद्ध आमि, शुधिते ना पारि॥ ७० ॥

७०। प० अनु०— ''श्रीअद्वैताचार्य गोसाञि मुझ पर कृपा करके श्रीजगन्नाथपुरी आये हैं। मैं आप सभी के प्रेम रूपी ऋण से बंधा हुआ हूँ, मैं आपके ऋण का शोधन नहीं कर सकता।

मोर लागि' स्त्री-पुत्र-गृहादि छाड़िया।
नाना दुर्गम पथ लङ्घि' आइसेन धाञा॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०— ''आप लोग मेरे लिये अपनी पत्नी-पुत्र तथा घर आदि को छोड़कर अनेक दुर्गम पथों को पार करके दौड़कर आ जाते हैं।

भक्तों की प्रभु के प्रति प्रीति की तुलना में अपनी भक्तों के प्रति प्रीति के अभाव रूपी दीनता का ज्ञापन–

आमि एइ नीलाचले रहि जे बसिया।
परिश्रम नाहि मोर सबार लागिया॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०— ''मैं तो इस नीलाचल में ही बैठा रहता हूँ, मैं आप सबके लिये कोई भी परिश्रम नहीं करता।

भक्तों के निकट अपना चुकाया नहीं जा सकने वाला ऋण–

सन्यासी मानुष मोर, नाहि कोन धन।
कि दिया तोमार ऋण करिमु शोधन?? ७३ ॥

७३। प० अनु०— ''मैं सन्यासी हूँ तथा मेरे पास कोई धन भी नहीं है। मैं क्या देकर आप लोगों के ऋण का शोधन करूँगा?

ऋण को चुकाने के उपाय का वर्णन–

देहमात्र धन तोमाय कैलुँ समर्पण।
ताँहा बिकाई, जाँहा बेचिते तोमार मन॥'' ७४ ॥

७४। प० अनु०— ''मैं अपने देह रूपी धन को आपको समर्पित करता हूँ। आप लोग उसे जहाँ बेचना चाहेंगे, मैं वहीं बिक जाऊँगा।''

भगवान् की दैन्य-विलापपूर्ण उक्ति सुनकर भक्तों का क्रन्दन करना–

प्रभुर वचने सबार प्रीत हैल मन।
अझोर-नयने सबे करेन क्रन्दन॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर सभी का मन अत्यन्त द्रवीभूत हुआ, सभी के नेत्रों से अविरल अश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगी, सभी क्रन्दन करने लगे।

भक्तों को भगवान् के द्वारा आलिङ्गन–

प्रभु सबार गला धरि' करेन रोदन।
कान्दिते कान्दिते सबाय कैला आलिङ्गन॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु सभी भक्तों को गले लगाकर रोने लगे, उन्होंने रोते-रोते ही सभी को आलिङ्गन किया।

विरह-दु:ख के भार के कारण सभी के जाने में देरी—

सबाइ रहिल, केह चलिते नारिल।
आर दिन पाँच-सात एइमते गेल॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०— कोई भी भक्त गौड़देश के लिये चल नहीं पाया, सभी श्रीजगन्नाथ पुरी में ही रुक गये। इस प्रकार और पाँच-सात दिन व्यतीत हो गये।

नित्यानन्द-अद्वैत के द्वारा प्रभु के वात्सल्य का वर्णन—

अद्वैत-अवधूत किछु कहे प्रभु-पाय।
''सहजे तोमार गुणे जगत् बिकाय॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०— श्रीअद्वैताचार्य और अवधूत श्रीनित्यानन्द प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में निवेदन करते हुए कहा,—''आपके गुणों से सहज ही जगत् का कोई भी प्राणी विक्रीत हो जाता है।

भगवत् वात्सल्य रूपी प्रेम में भक्त आबद्ध—

आबार ताते बान्ध'—ऐछे कृपा-वाक्य-डोरे।
तोमा छाड़ि' केबा काँहा जाइ बारे पारे??'' ७९ ॥

७९। प० अनु०— ''उस पर भी आप अपने ऐसे कृपासिक्त वचनों की डोर से बाँध रहे हैं। ऐसा करने से आपको छोड़कर कोई कहाँ जा सकता है?''

सभी को सान्त्वना और विदायी-प्रदान—

तबे प्रभु सबाकारे प्रबोध करिया।
सबारे विदाय दिला सुस्थिर हञा॥ ८० ॥

८०। प० अनु०— तब श्रीमन्महाप्रभु ने गौड़देश के समस्त भक्तों को सान्त्वना दी तथा उन्होंने सुस्थिर होकर सभी को विदायी दी।

नित्यानन्द के प्रति आज्ञा—

नित्यानन्दे कहिला—''तुमि ना आसिह बार-बार।
तथाइ आमार सङ्ग हइबे तोमार॥'' ८१ ॥

८१। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीनित्यानन्द प्रभु से कहा,—''आप पुन:-पुन: श्रीजगन्नाथपुरी में मत आइये। आपको गौड़देश में ही मेरा सङ्ग प्राप्त होगा।''

भक्त और भगवान्—परस्पर प्रेम में आबद्ध, दोनों का ही दोनों के विच्छेद में विषाद—

चले सब भक्तगण रोदन करिया।
महाप्रभु रहिला घरे विषण्ण हञा॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०— सभी भक्त लोग रोते-रोते गौड़देश की ओर चल दिये। श्रीमन्महाप्रभु दु:खित हृदय से अपने वासस्थान पर ही रह गये।

भगवान् का भक्तवात्सल्य रूपी ऋण भी भक्तों के द्वारा नहीं चुकाया जा सकने वाला—

निज-कृपागुणे प्रभु बान्धिला सबारे।
महाप्रभुर कृपा-ऋण के शोधिते पारे?? ८३ ॥

८३। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने सभी भक्तों को अपने कृपा रूपी गुण के द्वारा बाँध लिया, श्रीमन्महाप्रभु के कृपा रूपी ऋण का कौन शोधन कर सकता है?

सर्वेश्वरेश्वर प्रभु ही चलाने वाले, भक्त ही चलने वाले—

जारे जैछे नाचाय प्रभु स्वतन्त्र ईश्वर।
ताते ताँरे छाड़ि' लोक जाय देशान्तर॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु स्वतन्त्र ईश्वर हैं तथा वे जिसे जैसे नचाते हैं, वे उसी प्रकार नाचते हैं। इस से ही सम्भवपर हुआ कि भक्त श्रीमन्महाप्रभु को छोड़कर अन्य स्थान की ओर चल दिये।

काष्ठेर पुतली जेन कुहके नाचाय।
ईश्वर-चरित्र किछु बुझन ना जाय॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०— कुहक जैसे लकड़ी की पुतली को नचाता है और कुहक को कोई देख-समझ नहीं पाता, उसी प्रकार ईश्वर का चरित्र भी कोई समझ नहीं पाता।

जगदानन्द का नवद्वीप में शची के निकट आगमन और प्रणाम करने के बाद प्रभु के द्वारा दिये गये द्रव्यों को प्रदान करना—

पूर्ववर्षे जगदानन्द 'आइ' देखिबारे।
प्रभु-आज्ञा लञा आइला नदीया-नगरे॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०— पिछले वर्ष श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा लेकर श्रीशचीमाता के दर्शन करने के लिये नदीया-नगर में आये थे।

आइर-चरण जाइ' करिला वन्दन।
जगन्नाथेर वस्त्र-प्रसाद कैला निवेदन॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीशची माता के चरणों में गिरकर उनकी वन्दना की थी तथा उन्होंने माता को भगवान् श्रीजगन्नाथ का प्रसादी-वस्त्र और उनका प्रसाद प्रदान किया था।

प्रभुर नामे मातारे दण्डवत् कैला।
प्रभुर विनति-स्तुति मातारे कहिला॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित जब श्रीजगन्नाथ पुरी से चले थे तब श्रीमन्महाप्रभु ने उनसे कहा था कि माता को मेरी ओर से प्रणाम करना इसलिए श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीशची माता को श्रीमन्महाप्रभु के नाम का दण्डवत् प्रणाम किया था, उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा की गई विनती-स्तुति भी श्रीशचीमाता के समक्ष कह सुनायी थी।

जगदानन्द के निकट शची के द्वारा पुत्र की कथा-श्रवण—

जगदानन्दे पाञा माता आनन्दित मने।
तेंहो प्रभुर कथा कहे, शुने रात्रि-दिने॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित को आया देख श्रीशची माता का मन आनन्द से भर गया था। श्रीजगदानन्द पण्डित दिन-रात श्रीमन्महाप्रभु की बातें बतलाते तथा श्रीशची माता उन्हें सुनती थीं।

शची के निकट बीच-बीच में प्रभु के द्वारा प्रसन्नतापूर्वक माता के द्वारा बनाये गये भोजन के संवाद के विषय में बताना—

जगदानन्द कहे,—"माता, कोन कोन दिने।
तोमार एथा आसि' प्रभु करेन भोजने॥ ९० ॥

९०। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने कहा,—"हे माता! श्रीमन्महाप्रभु किसी-किसी दिन आपके यहाँ पर आकर भोजन करते हैं।

भोजन करिया कहे आनन्दित हञा।
'माता आजि' खाओयाइला आकण्ठ पूरिया॥ ९१॥

९१। प० अनु०— "श्रीमन्महाप्रभु यहाँ पर भोजन करने के उपरान्त श्रीजगन्नाथ पुरी में आनन्दित होकर कहते हैं—'आज माता ने कण्ठ पर्यन्त भोजन खिलाया है।

वात्सल्य से परिपूर्ण होने के कारण प्रभु के साक्षात् भोजन को शची के द्वारा स्वप्न-मानना—

आमि जाइ' भोजन करि —माता नाहि जाने।
साक्षाते खाइ आमि, तेंहो 'स्वप्न' हेन माने॥" ९२॥

९२। प० अनु०— "मैं जगन्नाथ पुरी से जाकर उनके द्वारा बनाया गया भोजन खाता हूँ, किन्तु माता इस बात को नहीं जानती। मैं साक्षात् रूप में जाकर खाता हूँ और वे इसे स्वप्न मानती हैं।"

शची की परम वात्सल्यपूर्ण उक्ति—

माता कहे,—"कत रान्धि उत्तम व्यञ्जन।
निमाञि इँहा खाय,—इच्छा हय मोर मन॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०— श्रीशची माता ने कहा,—"मैं कितने ही अच्छे-अच्छे व्यञ्जन बनाती हूँ तथा मेरे मन में इच्छा होती है कि निमाई उन्हें खाये।

निमाञि खाञाछे,—ऐछे हय मोर मन।
पाछे ज्ञान हय—मुञि देखिनु 'स्वप्न'॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०— "फिर मेरे मन में ऐसा भी अनुभव होता है कि निमाई ने मेरे द्वारा बनायी गयी सब वस्तुओं को खाया है, किन्तु बाद में मुझे ऐसा लगता है कि मैंने स्वप्न देखा है।"

शची माता और गौड़ीय भक्तों के साथ पण्डित का चैतन्य-कथा में परमसुखपूर्वक दिन व्यतीत करना—

एइमत जगदानन्द शचीमाता-सने।
चैतन्येर सुख-कथा कहे रात्रि-दिने॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०— इस प्रकार श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीशची माता के साथ रात-दिन श्रीचैतन्य महाप्रभु की परम आनन्द प्रदान करने वाली बातों को करते रहते थे।

नदीयार भक्तगणे सबारे मिलिला।
जगदानन्दे पाञा सबे आनन्दित हैला॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित नदीया में रहने वाले अन्य सभी भक्तों से भी मिले थे, श्रीजगदानन्द पण्डित को नवद्वीप में आये देखकर सभी भक्त आनन्दित हुए थे।

आचार्य मिलिते तबे गेला जगदानन्द।
जगदानन्दे पाञा हैला आचार्य आनन्द॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीअद्वैताचार्य प्रभु से मिलने के लिये गये थे, श्रीजगदानन्द पण्डित को देखकर श्रीअद्वैताचार्य प्रभु बहुत आनन्दित हुए थे।

वासुदेव, मुरारि-गुप्त जगदानन्दे पाञा।
आनन्दे राखिला घरे, ना देन छाड़िया॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०— श्रीवासुदेव दत्त तथा श्रीमुरारि गुप्त ने श्रीजगदानन्द पण्डित को आये देखकर उन्हें आनन्दपूर्वक अपने घर में रखा था तथा अन्य किसी स्थान पर नहीं जाने दिया था।

जगदानन्द के मुख से चैतन्य की कथा सुनकर सभी आत्म-विस्मृत—

चैतन्येर मर्मकथा शुने ताँर मुखे।
आपना पासरे सबे चैतन्य-कथा-सुखे॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित के श्रीमुख से श्रीचैतन्य महाप्रभु की मर्म-कथाओं अर्थात् हृदय को गद्‌गद् कर देने वाली कथाओं को श्रवण करके वे श्रीचैतन्य की कथाओं के आनन्द में स्वयं तक की सुध-बुध खो बैठते थे।

जगदानन्द मिलिते जाय जेइ भक्त-घरे।
सेइ सेइ भक्त सुखे आपना पासरे॥ १०० ॥

१००। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित जिस-जिस भक्त के घर पर जाकर उससे मिलते थे, वह-वह भक्त आनन्द से अपनी सुध-बुध खो बैठता था।

जगदानन्द की गुणावली—

चैतन्येर प्रेमपात्र जगदानन्द धन्य।
जारे मिले, सेइ माने,—'पाइलुँ चैतन्य'॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०— श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रेम के पात्र श्रीजगदानन्द पण्डित धन्य हैं, वे जिस किसी भक्त से मिलते, वही मानता था कि उसे 'श्रीचैतन्य महाप्रभु मिल' गये हैं।

काञ्चनपल्ली से चन्दन के तेल का संग्रह एवं पुरी में जाकर प्रभु के व्यवहार के लिये गोविन्द को प्रदान—

शिवानन्दसेन-गृहे जाञा रहिला।
'चन्दनादि' तैल ताँहा एकमात्रा कैला॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित कुछ दिनों तक श्रीशिवानन्द सेन के घर पर भी जाकर रहे थे, उन्होंने वहीं पर सोलह सेर चन्दन आदि के तेल को एकत्रित किया था।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०२। एकमात्रा,—सोलह सेर।

सुगन्धि करिया तैल गागरी भरिया।
नीलाचले लञा आइला यतन करिया॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने उस चन्दन आदि के तेल में किसी सुगन्धित द्रव्य को मिलाकर उसे गागरी (मटकी) में भर लिया तथा अत्यधिक प्रयत्न पूर्वक उसे नीलाचल श्रीजगन्नाथ पुरी में ले आये।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०३। गागरी,—घड़ा।

गोविन्देर ठाञि तैल धरिया राखिला।
''प्रभु-अङ्गे दिह' तैल'' गोविन्दे कहिला॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीजगन्नाथ पुरी में आकर उस तेल को श्रीमन्महाप्रभु के सेवक श्रीगोविन्द के पास रख दिया तथा श्रीगोविन्द से कहा—''इस तेल को श्रीमन्महाप्रभु के श्रीअङ्गों पर लगाना।''

गोविन्द के द्वारा प्रभु को जगदानन्द की इच्छा के विषय में बतलाना—

तबे प्रभु-ठाञि गोविन्द कैल निवेदन।
''जगदानन्द चन्दनादि-तैल आन्याछेन॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०— तब श्रीगोविन्द ने श्रीमन्महाप्रभु के निकट निवेदन किया —''हे प्रभु! श्रीजगदानन्द पण्डित आपके लिये चन्दन आदि का तेल लाये हैं।

जगदानन्द का अप्राकृत नरशरीर धारण करने वाले प्रभु के प्रति अप्राकृत अतुलनीय-प्रेम—

ताँर इच्छा,—प्रभु अल्प मस्तके लागाय।
पित्त-वायु-व्याधि-प्रकोप शान्त हञा जाय॥ १०६॥

१०६। प० अनु०— ''श्रीजगदानन्द पण्डित की इच्छा है—श्रीमन्महाप्रभु इस तेल को अल्प मात्रा में अपने सिर पर लगायें। इस तेल से पित्त-वायु रूपी व्याधि का प्रकोप शान्त हो जाता है।

एक-कलस सुगन्धि तैल गौड़े करिया।
इँहा आन्याछेन बहु यतन करिया॥'' १०७ ॥

१०७। प० अनु०— ''श्रीजगदानन्द पण्डित बहुत प्रयत्न पूर्वक एक मटकी सुगन्धित तेल गौड़देश से यहाँ लाये हैं।''

अनुभाष्य

१०७। गौड़देश में सुगन्धि तेल प्रस्तुत करके श्रीक्षेत्र में लाये।

जगद्गुरु लोकशिक्षक आचार्यरूपी प्रभु के द्वारा आदर्श-आचार का प्रदर्शन—

प्रभु कहे,—''सन्यासीर तैले नाहि अधिकार।
ताहाते सुगन्धि तैल,—परम धिक्कार!! १०८ ॥

१०८। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''सन्यासी का तेल लगाने में अधिकार नहीं है। उस पर भी सुगन्धित तेल को तो अत्यन्त धिक्कार है!

अनुभाष्य

१०८। ''प्रातः स्नाने व्रते श्राद्धे द्वादश्यां ग्रहणे तथा। मद्यलेपसमं तैलं तस्मात्तैलं विवर्जयेत्॥'' [अर्थात् प्रातः स्नान के समय, जिस किसी व्रत में, द्वादशी-तिथि (अथवा द्वादशी-व्रत) में एवं सूर्य-चन्द्र ग्रहण के समय तेल का उपयोग करना मद्य-लेपन के समान है, अतएव उस समय तेल का प्रयोग निषेध है।]

इस श्लोक के 'व्रत' शब्द की कोई-कोई 'यतिव्रत' के रूप में व्याख्या करते हैं। तिथि-तत्त्व में स्मार्त्त भट्टाचार्य रघुनन्दन ने लिखा है,—''घृतञ्च सार्षपं तैलं यत्तैलं पुष्प वासितम्। अदुष्टं पक्वतैलञ्च तैलाभ्यङ्गे च नित्यशः॥'' अर्थात् घी, सरसों का तेल, पुष्प-तेल एवं पके हुए तेल को शरीर पर मलना 'गृहस्थ' के लिये दोषपूर्ण नहीं है।

पण्डित को उपलक्ष्य करके जगद्गुरु प्रभु के द्वारा साधक को सर्वोत्कृष्ट उपकरण के द्वारा एकमात्र भोक्ता ईश्वर के ही स्वारसिकी सेवा रूपी कर्त्तव्य का उपदेश; उससे ही जीव के सेवा-श्रम की सार्थकता—

जगन्नाथे देह' तैल,—दीप जेन ज्वले।
तार परिश्रम हबे परम-सफले॥'' १०९ ॥

१०९। प० अनु०— ''हे गोविन्द! जगदानन्द पण्डित द्वारा लाया गया सुगन्धित तेल जगन्नाथ मन्दिर में दे दो, जिससे वह मन्दिर में दीपक प्रज्ज्वलित करने के काम आयेगा। ऐसा करने से जगदानन्द पण्डित का परिश्रम भी परम-सफल होगा।''

गोविन्द के द्वारा जगदानन्द को प्रभु की आदेश-वाणी के विषय में बतलाना, जगदानन्द का प्रणय रूपी अभिमान के कारण क्रोध—

एइ कथा गोविन्द जगदानन्देरे कहिल।
मौन करि' रहिल पण्डित, किछु ना कहिल॥ ११०॥

११०। प० अनु०— श्रीगोविन्द ने श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कही गयी बात श्रीजगदानन्द पण्डित को बतलायी। श्रीगोविन्द की बात सुनकर श्रीजगदानन्द पण्डित ने कुछ भी नहीं कहा, मौन रह गये।

बाद में गोविन्द के द्वारा पुनः प्रभु के समक्ष जगदानन्द की इच्छा के विषय में बतलाना—

दिन दश गेले गोविन्द जानाइल आरबार।
पण्डितेर इच्छा,—''तैल करुन अङ्गीकार॥ ''१११॥

१११। प० अनु०— दस दिन के बाद श्रीगोविन्द ने श्रीमन्महाप्रभु को पुनः निवेदन किया कि श्रीजगदानन्द पण्डित की इच्छा है, ''आप तेल को स्वीकार करें।''

जगद्गुरु लोकशिक्षक प्रभु के द्वारा साधक अथवा आचार्य को आत्मेन्द्रिय तर्पण के लिये भोग-चेष्टा के अनुचित होने की शिक्षा-प्रदान—

शुनि' प्रभु कहे किछु सक्रोध-वचन।
''मर्दनिया एक राख करिते मर्दन!! ११२ ॥

११२। प० अनु०— श्रीगोविन्द के मुख से ऐसा सुनकर श्रीमन्महाप्रभु ने कुछ क्रोधित होते हुए कहा,—''मालिश करने के लिये एक मर्दनिया को भी रख लो!

अनुभाष्य

११२। सहायता-हीन भिक्षु अर्थात् सन्यासी को अन्य की सहायता ग्रहण नहीं करनी चाहिए। इस स्थान पर विलास-सहचर सुगन्धित-तेल को मलने के लिये विलास परायण भोगी व्यक्तियों की भाँति दास जैसे एक व्यक्ति को नियुक्त करने पर विशेष सुख का विषय होगा,—यह श्लेष उक्ति अर्थात् वन्दना के छल से निन्दा है।

एइ सुख लागि' आमि करिलुँ सन्यास!
आमार 'सर्वनाश'—तोमा-सबार 'परिहास'॥११३॥

११३। प० अनु०— ''मैंने इस प्रकार के सुख के लिये ही सन्यास ग्रहण किया है! इससे मेरा तो सर्वनाश होगा और तुम सब हो कि परिहास कर रहे हो।

अपनी इन्द्रियों के तर्पण रूपी सम्भोग को प्रिय मानने वाले सन्यासियों की निन्दा—

पथे जाइते तैलगन्ध मोर जेइ पाबे।
'दारी सन्यासी' करि' आमारे कहिबे॥'' ११४ ॥

११४। प० अनु०— ''जब मैं मार्ग में चल रहा होऊँगा, तब जिस किसी भी व्यक्ति को तेल की सुगन्ध अनुभव होगी, वे मुझे 'दारी सन्यासी अर्थात् स्त्री के सङ्ग में रहने वाला सन्यासी' कहेंगे।''

अमृतप्रवाह भाष्य

११४। दारी सन्यासी,—स्त्री के साथ रहने वाला सन्यासी।

अनुभाष्य

११४। दारी सन्यासी,—स्त्री-सम्भोगी, मिथ्याचार के कारण भ्रष्ट, तान्त्रिक सन्यासी।

प्रभु के रोष के कारण गोविन्द मौन—

शुनि' प्रभुर वाक्य गोविन्द मौन करिला।
प्रातःकाले जगदानन्द प्रभु-स्थाने आइला॥ ११५॥

११५। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर श्रीगोविन्द ने मौन धारण कर लिया, अगले दिन प्रातःकाल श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान पर आये।

स्वयं समस्त वस्तुओं के भोक्ता होने पर भी जगदानन्द के आगमन से लोक-शिक्षक आचार्य के रूप में प्रभु के द्वारा साधक अथवा आचार्य को इन्द्रिय-सुख-त्याग अथवा आदर्श वैराग्य के आचरण का प्रदर्शन—

प्रभु कहे,—''पण्डित, तैल आनिला गौड़ हइते।
आमि त' सन्यासी, —तैल ना पारि लइते॥ ११६॥

११६। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे जगदानन्द पण्डित! तुम गौड़देश से चन्दन का तेल लाये

हो। मैं तो सन्यासी हूँ, मैं उस तेल को स्वीकार नहीं कर सकता।

पण्डित को उपदेश के छल से समस्त चित् वस्तुओं के भोक्ता भगवान् की सर्वोत्कृष्ट द्रव्यों के द्वारा सेवा से ही जीव द्वारा की गयी सेवा की सफलता की शिक्षा-प्रदान—

जगन्नाथे देह' लञा दीप जेन ज्वले।
तोमार सकल श्रम हइबे सफले॥'' ११७ ॥

११७। प० अनु०— ''तुम उस तेल को ले जाकर जगन्नाथ मन्दिर में दे दो, जिससे वह दीपक जलाने के काम आ जायेगा। ऐसा होने से तुम्हारे द्वारा किया गया समस्त परिश्रम भी सफल हो जायेगा।''

प्रभु के प्रेमी पण्डित के द्वारा प्रभु के प्रति प्रणय-अभिमान रूपी रोष—

पण्डित कहे,—''के तोमारे कहे मिथ्या-वाणी?
आमि गौड़ हैते तैल कभु नाहि आनि॥'' ११८ ॥

११८। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने कहा,—''आपको किसने मिथ्या बात बतलायी? मैं तो गौड़देश से कभी कोई तेल लाया ही नहीं।''

प्रभु के सामने ही तेल के घड़े को तोड़ना—

एत बलि' घर हैते तैल-कलस आनिया।
प्रभुर आगे आङ्गिनाते फेलिला भाङ्गिया॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०— इतना कहकर श्रीजगदानन्द पण्डित घर के भीतर से तेल की मटकी लाये तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के सामने ही उस मटकी को आङ्गन में फैंककर तोड़ डाला।

अपने घर में स्वयं को बन्द करना—

तैल भाङ्गि' सेइ पथे निज-घर गिया।
शुइया रहिला घरे कपाट-खिलिया॥ १२० ॥

१२०। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित तेल की मटकी को फोड़कर उसी आङ्गन से होते हुए अपनी भजन कुटीर में चले गये तथा कुटीर को भीतर से बन्द करके लेट गये।

अनुभाष्य

१२०। जगदानन्द समुद्र के तट पर हरिदास ठाकुर की समाधि-स्थली के निकटवर्ती वर्त्तमानकाल के 'सात-आसन' नामक भजन-कुटीर-समूह में से एक 'गिरिधारी'-आसन में रहते थे,—ऐसा श्रीरघुनाथ वैद्य के द्वारा लिखित ग्रन्थ से जाना जाता है।

भक्त के प्रेम के वशीभूत भगवान् के द्वारा भक्त के मान का भञ्जन अथवा कृपा-प्रार्थना—

तृतीय दिवसे प्रभु ताँर द्वारे जाञा।
''उठह पण्डित''— करि' कहेन डाकिया॥ १२१ ॥

१२१। प० अनु०— तीसरे दिन श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीजगदानन्द पण्डित के द्वार पर जाकर उन्हें पुकारते हुए कहा,—''हे जगदानन्द पण्डित, उठो!

भक्त के घर में भगवान् का स्वयं याचक के रूप में भिक्षा अङ्गीकार करना—

''आजि भिक्षा दिबा आमाय करिया रन्धने।
मध्याह्ने आसिमु, एबे जाइ दरशने॥'' १२२ ॥

१२२। प० अनु०— ''आज तुम स्वयं रन्धन करके मुझे भोजन कराना। मैं दोपहर के समय आऊँगा, अभी भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने जा रहा हूँ।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१२२। जाइ दरशने — श्रीजगन्नाथ के दर्शन करने जा रहा हूँ।

प्रभु के प्रेमिक पण्डित का प्रभु के लिये भोग-बनाना और समर्पण—

एत बलि' प्रभु गेला, पण्डित उठिला।
स्नान करि' नाना व्यञ्जन रन्धन करिला॥ १२३ ॥

१२३। प० अनु०— इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु तो चले गये और उधर श्रीजगदानन्द उठे तथा स्नान करने के पश्चात् उन्होंने अनेक व्यञ्जन बनाये।

मध्याह्न करिया प्रभु आइला भोजने।
पाद प्रक्षालन करि' बसिला आसने॥ १२४ ॥

१२४। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु दोपहर का स्नान करने के पश्चात् भोजन करने के लिये श्रीजगदानन्द पण्डित की भजन कुटीर में आये तथा चरण प्रक्षालन करने के बाद आसन पर बैठ गये।

सघृत शाल्यन्न कलापाते स्तूप कैला।
कलार डोङ्गा भरि' व्यञ्जन चौदिके धरिला॥ १२५॥

१२५। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने केले के पत्ते पर शालि-चावल का स्तूप बनाकर उसके ऊपर घी डाल दिया तथा उसके चारों ओर केले के पेड़ के अशं से बने डोनों को भरकर अनेक व्यञ्जन रख दिये।

अन्न-व्यञ्जनोपरि तुलसी-मञ्जरी।
जगन्नाथेर पिठा-पाना आगे आने धरि'॥ १२६ ॥

१२६। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने चावल के स्तूप एवं अन्य-अन्य समस्त व्यञ्जनों पर तुलसी मञ्जरी रख दी तथा फिर उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष भगवान् श्रीजगन्नाथ का पीठा-पाना आदि प्रसाद भी लाकर रख दिया।

अभिन्न आत्मा प्रणय (प्रीति) के पात्र भक्तों के साथ भक्तप्रेमवशत: भगवान् की एक साथ आहार करने की इच्छा—

प्रभु कहे,—''द्वितीय-पाते बाड़' अन्न-व्यञ्जन।
तोमाय आमाय आजि एकत्र करिमु भोजन॥''१२७॥

१२७। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे जगदानन्द! अब तुम एक दूसरे पत्ते पर भी चावल और व्यञ्जन आदि रखो। आज तुम और मैं एक साथ भोजन करेंगे।''

हस्त तुलि' रहेन प्रभु, ना करेन भोजन।
तबे पण्डित कहेन किछु सप्रेम वचन॥ १२८ ॥

१२८। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु अपने हाथों को ऊपर उठाकर ही बैठे रहे, उन्होंने भोजन करना प्रारम्भ नहीं किया। श्रीमन्महाप्रभु को ऐसे बैठे देखकर श्रीजगदानन्द पण्डित ने कुछ प्रेमयुक्त वचन कहे—।

पण्डित के द्वारा प्रभु के समक्ष प्रीतिपूर्ण उक्ति, बाद में बैठना ही स्वीकार—

''आपने प्रसाद लह, पाछे मुञि लइमु।
तोमार आग्रह आमि केमने खण्डिमु??'' १२९ ॥

१२९। प० अनु०— ''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप कृपया प्रसाद ग्रहण कीजिए, मैं बाद में ग्रहण करूँगा। मैं आपके आग्रह का कैसे उल्लंघन कर पाऊँगा?''

प्रभु के द्वारा पण्डित के प्रेमपूर्वक बनाये गये प्रसाद की स्तुति करके उनके भाग्य की प्रशंसा—

तबे महाप्रभु सुखे भोजने बसिला।
व्यञ्जनेर स्वाद पाञा कहिते लागिला॥ १३० ॥

१३०। प० अनु०— तब श्रीमन्महाप्रभु आनन्दपूर्वक भोजन करने लगे तथा व्यञ्जनों का आस्वादन करते हुए कहने लगे—।

''क्रोधावेशेर पाकेर हय ऐछे स्वाद!
एइ त' जानिये तोमाय कृष्णेर 'प्रसाद'॥ १३१ ॥

१३१। प० अनु०— ''हे जगदानन्द! क्रोध के आवेश में बनाये गये व्यञ्जनों का ऐसा स्वाद! इस से ही पता चलता है कि तुम्हारे प्रति भगवान् श्रीकृष्ण की बहुत कृपा है।

आपने खाइबे कृष्ण, ताहार लागिया।
तोमार हस्ते पाक कराय उत्तम करिया॥ १३२ ॥

१३२। प० अनु०— ''श्रीकृष्ण स्वयं खाना चाहते हैं इसलिए वे तुम्हारे हाथों से स्वयं के लिये उत्तम-उत्तम रन्धन करवाते हैं।

ऐछे अमृत-अन्न कृष्णे कर समर्पण।
तोमार भाग्येर सीमा के करे वर्णन??'' १३३ ॥

१३३। प० अनु०— ''तुम श्रीकृष्ण को ऐसे अमृत

तुल्य चावल तथा व्यञ्जन इत्यादि समर्पित करते हो, तुम्हारे सौभाग्य की सीमा का कौन वर्णन कर सकता है?''

गौर को ही सर्वस्व मानने वाले, गौरगतप्राण पण्डित का प्रभु को ही सब कुछ कराने वाले के रूप में मानना—

पण्डित कहे,—''जे खाइबे, सेइ पाककर्त्ता।
आमि सब—केवलमात्र सामग्री-आहर्त्ता॥'' १३४॥

१३४। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने कहा,—''जो खायेंगे, वही रन्धन करने वाले हैं। मैं तो केवलमात्र सामग्री का संग्रह करने वाला हूँ।

भक्त के अभिमान के भय से भगवान् के द्वारा प्रचुर भोजन करना—

पुनः पुनः पण्डित नाना व्यञ्जन परिवेशे।
भये किछु ना बलेन प्रभु, खायेन हरिषे॥ १३५ ॥

१३५। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित पुनः पुनः बहुत से व्यञ्जन परोसने लगे, श्रीमन्महाप्रभु उनके भय के कारण कुछ भी नहीं बोले, बल्कि प्रसन्नतापूर्वक खाते ही रहे।

आग्रह करिया पण्डित कराइला भोजन।
आर दिन हैते भोजन हैल दशगुण॥ १३६ ॥

१३६। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने बहुत आग्रह करके श्रीमन्महाप्रभु को भोजन कराया। आज श्रीमन्महाप्रभु ने अन्य दिनों की तुलना में दस गुणा अधिक भोजन किया।

बार बार प्रभु उठिते करेन मन।
सेइकाले पण्डित परिवेशे व्यञ्जन॥ १३७ ॥

१३७। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु पुनः पुनः जैसे ही उठने की इच्छा करते, श्रीजगदानन्द पण्डित उसी समय उन्हें अन्य कोई व्यञ्जन दे देते।

किछु बलिते नारेन प्रभु, खायेन तरासे।
ना खाइले जगदानन्द करिबे उपवासे॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगदानन्द पण्डित को कुछ बोल नहीं पा रहे थे, किन्तु भयपूर्वक खा रहे थे। श्रीमन्महाप्रभु को पता था कि यदि मैं नहीं खाऊँगा तो जगदानन्द उपवास करेगा।

प्रभु के द्वारा परिवेशन समाप्त करने के लिये पण्डित को कातरभाव से अनुरोध—

तबे प्रभु कहेन करि' विनय-सम्मान।
''दशगुण खाओयाइला, एबे कर समाधान॥''१३९॥

१३९। प० अनु०— तब श्रीमन्महाप्रभु ने विनय करते हुए सम्मान पूर्वक श्रीजगदानन्द पण्डित से कहा,—''हे जगदानन्द! तुमने मुझे अन्य दिनों की तुलना में दस गुणा भोजन करा दिया है, अब बस करो।''

अनुभाष्य

१३९। समाधान,—निष्पत्ति, समापन, अवसान, शेष।

द्वादश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

आचमन के बाद प्रभु के द्वारा पण्डित को अपने सामने बैठकर भोजन करने के लिये अनुरोध—

तबे महाप्रभु उठि' कैला आचमन।
पण्डित आनिल, मुखवास, माल्य, चन्दन॥ १४०॥

१४०। प० अनु०— तब श्रीमन्महाप्रभु ने उठकर आचमन किया। श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के लिये मुखशुद्धि, माला तथा चन्दन ले आये।

चन्दनादि लञा प्रभु बसिला सेइ स्थाने।
''आमार आगे आजि तुमि करह भोजने॥'' १४१ ॥

१४१। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु चन्दन आदि धारण करके वहीं बैठ गये तथा उन्होंने श्रीजगदानन्द पण्डित से कहा,—''आज तुम मेरे सामने ही भोजन करो।''

वाम्य-स्वभाव वाले पण्डित का ऐश्वर्य-बुद्धि से प्रभु की मर्यादा के संरक्षण हेतु प्रभु को विश्राम के लिये जाने की प्रार्थना—

पण्डित कहे,—''प्रभु जाइ' करुन विश्राम।
मुइ एबे प्रसाद लइमु करि' समाधान॥ १४२ ॥

१४२। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने कहा,— ''हे श्रीमन्महाप्रभु! आप जाकर विश्राम कीजिए, मैं सब निपटाकर प्रसाद पा लूँगा।

गोविन्द के सङ्गी, प्रभु के सेवक रामाइ और रघुनाथभट्ट के द्वारा उस भोग को रन्धन करने के पश्चात् प्रभु के प्रसाद की प्राप्ति—

रसुइर कार्य कैराछे रामाइ, रघुनाथ।
इँहा सबाय दिते चाहि किछु व्यञ्जन-भात॥ ''१४३॥

१४३। प० अनु०— ''रन्धन का कार्य रामाइ तथा रघुनाथ ने किया है, मैं पहले इन्हें कुछ व्यञ्जन तथा चावल आदि देना चाहता हूँ।''

पण्डित के द्वारा किये गये भोजन के संवाद को बतलाने के लिये गोविन्द को आदेश देकर प्रभु का घर जाना—

प्रभु कहेन,—''गोविन्द, तुमि इँहाइ रहिबा।
पण्डित भोजन कैले, आमारे कहिबा॥'' १४४ ॥

१४४। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने अपने सेवक श्रीगोविन्द से कहा,—''तुम यहीं पर रहना। जगदानन्द पण्डित के भोजन करने के पश्चात् मुझे आकर बतलाना।''

प्रभु की प्रसन्नता में निष्ठा रखने वाले पण्डित के द्वारा आत्मेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छा नहीं करके गोविन्द को प्रभु की सेवा के लिये भेजना—

एत कहि' महाप्रभु करिला गमन।
गोविन्देरे पण्डित किछु कहेन वचन॥ १४५ ॥

१४५। प० अनु०— इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु वहाँ से चले गये। श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीगोविन्द से कहा,—।

''तुमि शीघ्र जाह करिते पाद सम्वाहने।
कहिह,—'पण्डित एबे बसिल भोजने'॥ १४६ ॥

१४६। प० अनु०— ''हे गोविन्द! तुम शीघ्र ही श्रीमन्महाप्रभु के चरण-सम्वाहन करने के लिये जाओ। तुम श्रीमन्महाप्रभु के पूछने पर उनसे कहना,— 'जगदानन्द पण्डित अभी-अभी भोजन करने के लिये बैठे हैं।'

प्रभु की निद्रा के पश्चात् प्रभु के उच्छिष्ट के सम्मान के लिये आने का अनुरोध—

तोमार प्रभुर 'शेष' राखिमु धरिया।
प्रभु निद्रा गेले, तुमि खाइह आसिया॥'' १४७ ॥

१४७। प० अनु०— ''मैं तुम्हारे लिये श्रीमन्महाप्रभु का उच्छिष्ट सम्भालकर रख लूँगा, श्रीमन्महाप्रभु के सो जाने पर तुम आकर प्रसाद पा लेना।''

सभी को प्रसाद बाँटने के बाद प्रभु के उच्छिष्ट का सम्मान—

रामाइ, नन्दाइ, आर गोविन्द, रघुनाथ।
सबारे बाँटिया दिला प्रभुर व्यञ्जन-भात॥ १४८॥

१४८। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीरामाई, श्रीनन्दाई, श्रीगोविन्द तथा श्रीरघुनाथ—इन सभी के उद्देश्य से श्रीमन्महाप्रभु के उच्छिष्ट चावल तथा व्यञ्जन आदि को पत्तों में बाँट दिया।

स्वयं प्रभु के उच्छिष्ट को ग्रहण करना—

आपने प्रभुर 'शेष' करिला भोजन।
तबे गोविन्देरे प्रभु पाठाइला पुनः॥ १४९ ॥

१४९। प० अनु०— तत्पश्चात् श्रीजगदानन्द पण्डित ने स्वयं भी श्रीमन्महाप्रभु के बचे हुए उच्छिष्ट प्रसाद को पा लिया। दूसरी ओर, उसी समय श्रीमन्महाप्रभु ने पुनः श्रीगोविन्द को श्रीजगदानन्द के निकट भेजा और कहा,—।

भक्त के प्रति प्रेम वशतः भगवान् के द्वारा भी अपने सुख की चेष्टा छोड़कर भक्त के सन्तुष्ट होने का अनुसन्धान—

''देख,—जगदानन्द प्रसाद पाय कि ना पाय।
शीघ्र आसि' समाचार कहिबे आमाय॥'' १५० ॥

१५०। प० अनु०— ''हे गोविन्द! जाकर देखो कि

जगदानन्द पण्डित प्रसाद पा भी रहा है या नहीं। तुम शीघ्र आकर मुझे समाचार देना।''

पण्डित के भोजन के पश्चात् प्रभु का शयन; भक्त की तृप्ति अथवा सन्तुष्टि में ही प्रभु के द्वारा अपने कार्य के समाधान को समझना और प्रसन्नता—

गोविन्द आसि' देखि' कहिल पण्डितेर भोजन।
तबे महाप्रभु करिला स्वच्छन्दे शयन॥ १५१ ॥

१५१। प० अनु०— जब श्रीगोविन्द ने श्रीजगदानन्द पण्डित के स्थान पर जाकर देखा कि उन्होंने भोजन कर लिया है, तब उन्होंने यह बात आकर श्रीमन्महाप्रभु को बतलायी, जिसे सुनने के पश्चात् ही श्रीमन्महाप्रभु ने स्वच्छन्दतापूर्वक शयन किया।

गौर को वश में करने वाले पण्डित और प्रभु के प्रेम के साथ द्वापर में द्वारका में सत्यभामा और वासुदेव के प्रेम की उपमा—

जगदानन्दे-प्रभुते प्रेम चले एइमते।
सत्यभामा-कृष्णे जैछे शुनि भागवते॥ १५२ ॥

१५२। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित और श्रीमन्महाप्रभु में प्रेम इस प्रकार ही चलता है जैसे कि भागवत में वर्णित सत्यभामा और कृष्ण के विषय में सुना जाता है।

जगदानन्देर सौभाग्येर के कहिबे सीमा?
जगदानन्देर सौभाग्येर तेंह से उपमा॥ १५३ ॥

१५३। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित के सौभाग्य की सीमा के विषय में कौन वर्णन कर सकता है? श्रीजगदानन्द पण्डित के सौभाग्य की उपमा वे स्वयं ही हैं।

पण्डित के 'प्रेम-विवर्त्त' को सुनकर गौर-कृष्ण के प्रति प्रेम का उदय—

जगदानन्देर 'प्रेमविवर्त्त' शुने जेइ जन।
प्रेमेर 'स्वरूप' जाने, पाय प्रेमधन॥ १५४ ॥

१५४। प० अनु०— श्रीजगदानन्द पण्डित के प्रेम-विवर्त्त रूपी व्यवहार के प्रसङ्ग को अथवा उनके द्वारा रचित 'प्रेम विवर्त्त' नामक ग्रन्थ का जो कोई श्रवण करता है, वह प्रेम के स्वरूप को जान पाता है तथा उसे प्रेमधन की प्राप्ति होती है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१५४। 'प्रेमविवर्त्त',—एक अर्थ यह है कि प्रेम के 'विवर्त्त' अर्थात् प्रेम के कार्य में रोष का भ्रम होता है, ऐसा व्यवहार; द्वितीय अर्थ यह है कि जगदानन्द ने महाप्रभु के चरित्र से सम्बन्धित जो स्वरचित 'प्रेम विवर्त्त'-नामक ग्रन्थ लिखा है, वह।

द्वादश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १५५ ॥

१५५। प० अनु०— श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे जगदानन्द-तैल-भञ्जनं नाम द्वादशः परिच्छेदः।

❋❋❋

त्रयोदश परिच्छेद

कथासार—महाप्रभु के द्वारा केले के शरला (केले के पेड़ की छाल) पर शयन करने से उन्हें बड़ा कष्ट होता होगा, ऐसा सोचकर जगदानन्द ने तलाई-तकिया आदि तैयार कराया, किन्तु महाप्रभु ने उसे स्वीकार नहीं किया। स्वरूप-गोस्वामी ने केले के सूखे हुए तने और पत्ते को चीर-चीरकर उसे तलाई-तकिये की भाँति तैयार कर दिया, महाप्रभु ने उसे भी बहुत आपत्ति के साथ स्वीकार किया, जगदानन्द ने महाप्रभु की आज्ञा लेकर वृन्दावन जाकर सनातन के साथ बहुत प्रकार की भक्ति का आस्वादन किया। मुकुन्द सरस्वती के बहिर्वास के प्रसङ्ग में [श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीसनातन गोस्वामी को उपदेश प्रदान करके स्वयं आचरण करने वाले तथा अन्यों को उसी में प्रतिष्ठित करने वाले] आचार्य-अभिमान रूपी परम-उपाय (साधन) का निर्धारण किया था। जगदानन्द के द्वारा सनातन की भेंट को महाप्रभु को देने पर उसमें पिलुफल के भक्षण का रहस्य उठा। देव-दासी के गान को सुनकर महाप्रभु काँटों वाली मेंड़ को तोड़कर, गान करने वाली कोई स्त्री है, इसे नहीं जानकर, उसकी ओर दौड़ रहे थे। गोविन्द के द्वारा रोके जाने पर, उन्होंने 'स्त्री' नाम सुनकर गोविन्द को धन्यवाद दिया। सन्यासी अथवा वैष्णव के लिये परस्त्री के मुख से कृष्णगीत का साक्षात् श्रवण करना अनुचित है,—यह इस आख्यायिका में मिलता है। रघुनाथभट्ट गोस्वामी को काशी से श्रीपुरुषोत्तम में आने के समय कायस्थ रामदास-विश्वास-पण्डित का सङ्ग प्राप्त हुआ था। विश्वास पण्डित के हृदय में विद्या रूपी गर्व के कारण मुक्ति की अभिलाषा थी, इसलिये महाप्रभु ने उस पर विशेष कृपा नहीं की। भट्टगोस्वामी की आंशिक जीवनी इस परिच्छेद के अन्त में संक्षेप में कही गयी है। (अ: प्र: भा:)

कृष्ण के विरह में क्षीण (कमजोर शरीर वाले) किन्तु भाव के कारण प्रफुल्लित प्रभु का आश्रय ग्रहण—

कृष्णविच्छेदजातार्त्त्या क्षीणे चापि मनस्तनू।
दधाते फुल्लतां भावैर्यस्य तं गौरमाश्रये॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। कृष्ण के विच्छेद से उत्पन्न आर्त्ति के कारण मन और शरीर के कमजोर होने पर भी भाव के उदित होने के समय जो प्रफुल्लता को धारण करते थे, मैं उन्हीं गौरचन्द्र का आश्रय ग्रहण करता हूँ।

अनुभाष्य

१। यस्य (चैतन्यदेवस्य) मन: तनू कृष्ण विच्छेद-जातार्त्त्या (कृष्णविरहजनितपीड़या) क्षीणे अपि च भावै: (सात्त्विकादिभि:) क्वचित् फुल्लतां (स्फीततां) दधाते (धारयत:), तं गौरम् (अहम्) आश्रये (शरणं प्रपद्ये)।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैत चन्द्र की जय हो। समस्त गौर भक्तों की जय हो।

हेनमते महाप्रभु जगदानन्द-सङ्गे।
नानामते आस्वादय प्रेमेर तरङ्गे॥ ३ ॥

३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगदानन्द पण्डित के साथ अनेक भावों से प्रेम की तरङ्गों का आस्वादन करते थे।

उक्त श्लोक का अर्थ—

कृष्णविच्छेदे दुःखे क्षीण मन-काय।
भावावेशे प्रभु कभु प्रफुल्लित हय॥ ४ ॥

४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का मन तथा उनकी देह श्रीकृष्ण के विरह रूपी दुःख में क्षीण हो गयी, वे कभी-कभी भाव के आवेश में प्रफुल्लित हो जाते थे।

प्रभु का कठोर वैराग्य—

कलार शरलाते शयन, अति क्षीण काय।
शरलाते हाड़ लागे, व्यथा हय गाय॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु केले के वृक्ष की छाल के ऊपर सोते थे, उनकी देह के अत्यन्त क्षीण होने के कारण उनकी हड्डियाँ उस छाल पर लगती थी, जिसके फलस्वरूप उनके शरीर में व्यथा होती थी।

अमृतप्रवाह भाष्य

५। कलार शरलाते,—केले के पेड़ की छाल पर।

इसे देखकर प्रभु के सुख में तत्पर भक्तों को कष्ट; जगदानन्द के द्वारा प्रभु के सुख-विधान की चेष्टा—

देखि' सब भक्तगण महादुःख पाय।
सहिते नारे जगदानन्द, सृजिला उपाय॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की ऐसी अवस्था को देखकर सभी भक्त अत्यन्त दुःखी होते, श्रीजगदानन्द पण्डित इस बात को सहन नहीं कर पाये इसलिए उन्होंने एक उपाय निकाला।

प्रभु के लिये गेरुएँ रङ्ग की उछाड़ देकर गद्दा और तकिया तैयार—

सूक्ष्म वस्त्र आनि' गेरि दिया राङ्गाइला।
शिमुलीर तुला दिया ताहा पूराइला॥ ७ ॥

७। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने एक सूक्ष्म (महीन, कोमल) वस्त्र लाकर उसे गेरुएँ रङ्ग में रङ्ग दिया तथा फिर उसे शिमुली वृक्ष की रुई से भर दिया।

प्रभु के उपयोग में लगाने के लिये गोविन्द से अनुरोध—

एक तूलि-बालिश गोविन्देर हाते दिला।
'प्रभुरे शोयाइह इहाय'—ताहारे कहिला॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने एक तलाई (पतला गद्दा) तथा एक बालिश (तकिया) श्रीगोविन्द के हाथ में दिया तथा उन्होंने श्रीगोविन्द से कहा—''आप श्रीमन्महाप्रभु को इस पर ही सुलाना।''

अनुभाष्य

८। तूलि,—रुई का गद्दा।

श्रीस्वरूप को भी अनुरोध—

स्वरूप-गोसाञिके कहे जगदानन्द।
''आजि आपने जाञा प्रभुरे कराइह शयन॥'' ९ ॥

९। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी से भी कहा—''आज आप स्वयं जाकर श्रीमन्महाप्रभु को शयन कराना।''

स्वरूप और गोविन्द के द्वारा उस तलाई और तकिये द्वारा शय्या की रचना, उसे देखकर प्रभु का क्रोध—

शयनेर काले स्वरूप ताँहाइ रहिला।
तूलि-बालिश देखि' प्रभु क्रोधाविष्ट हइला॥ १०॥

१०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के शयन के समय श्रीस्वरूप दामोदर वहीं पर रहे, श्रीमन्महाप्रभु तलाई तथा तकिये को देखकर क्रोध में आविष्ट हो गये।

प्रभु के द्वारा उसे बनाने वाले के नाम के विषय में पूछना; पण्डित का नाम श्रवण करके प्रभु का भय—

गोविन्देरे पूछेन,—''इहा कराइल कोन् जन?''
जगदानन्देर नाम शुनि' सङ्कोच हैल मन॥ ११ ॥

११। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द से पूछा,—''इसे किसने बनवाया है?'' जब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द के मुख से श्रीजगदानन्द पण्डित का नाम सुना तो उनके मन में सङ्कोच हुआ।

तत्क्षणात् उस शय्या को दूर हटाना और केले के पत्ते पर शयन—

गोविन्देरे कहि' सेइ तूलि दूर कैला।
कलार शरला-उपर शयन करिला॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द को कहकर उस तलाई को वहाँ से हटवाया तथा फिर केले के वृक्ष की छाल पर ही शयन किया।

स्वरूप के द्वारा जगदानन्द के दु:खी होने के विषय में बतलाना—

स्वरूप कहे,—''तोमार इच्छा, कि कहिते पारि?
शय्या उपेक्षिले पण्डित दु:ख पाबे भारी॥'' १३ ॥

१३। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा,—''वैसे तो आपकी जो इच्छा हो, आप वही कीजिए, मैं उसमें क्या कह सकता हूँ? किन्तु यह निश्चित है कि शय्या की उपेक्षा करने से श्रीजगदानन्द पण्डित अत्यधिक दु:खी होंगे।''

स्वयं को वैरागी सन्यासी मानकर प्रभु के द्वारा झूठ-मूठ का क्रोध दिखलाकर शिकायत—

प्रभु कहेन,-''खाट एक आनह पाड़िते।
जगदानन्द चाहे आमाय विषय भुञ्जाइते॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''उस तलाई को बिछाने के लिये एक खाट भी ले आओ। जगदानन्द तो मुझे विषयों का भोग कराना चाहता है।

सन्यासी-मानुष आमार भूमिते शयन।
आमारे खाट-तूलि-बालिश—मस्तक मुण्डन!!''१५॥

१५। प० अनु०—''मैं सन्यासी हूँ तथा शास्त्र-विधानानुसार मेरे लिये भूमि पर शयन करने की ही व्यवस्था है और मेरे जैसे सन्यासी के लिये खाट-गद्दे-तकिये आदि की व्यवस्था लज्जा की बात है!''

अमृतप्रवाह भाष्य

१५। मस्तक-मुण्डन,—लज्जित करने वाली बात।

स्वरूप के द्वारा जगदानन्द को प्रभु के वचन बतलाना, पण्डित को कष्ट—

स्वरूप-गोसाञि आसि' पण्डिते कहिला।
शुनि' जगदानन्द महादु:ख पाइला॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु द्वारा कही गयी बातें श्रीजगदानन्द पण्डित को बतलायी। सब सुनकर श्रीजगदानन्द पण्डित के मन में अत्यधिक दु:ख हुआ।

सेवा में चतुर श्रीस्वरूप के द्वारा प्रभु की सेवा के लिये शय्या-द्रव्य का निर्माण—

स्वरूप-गोसाञि तबे सृजिला प्रकार।
कदलीर शुष्कपत्र आनिला अपार॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—तब श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने एक अन्य उपाय किया, वे केले के पेड़ के बहुत से सूखे पत्ते ले आये।

नखे चिरि' चिरि' ताहा अति सूक्ष्म कैला।
प्रभुर बहिर्वासेते से-सब भरिला॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने उन सूखे पत्तों को अपने नाखूनों से चीर-चीर कर बहुत बारीक कर दिया तथा फिर उन्हें श्रीमन्महाप्रभु के बहिर्वास में भर लिया।

अत्यधिक कठिनाई से प्रभु के द्वारा उसे ग्रहण करने के लिये सम्मति-प्रदान—

एइमत दुइ कैला ओड़न-पाड़ने।
अङ्गीकार कैला प्रभु अनेक यतने॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—इस प्रकार श्रीस्वरूप दामोदर ने बहिर्वास तथा चीरे गये केले के पत्तों को बहुत बार ऊपर-नीचे किया तथा उसके ठीक हो जाने पर उन्होंने उसे लाकर श्रीमन्महाप्रभु को दिया। श्रीमन्महाप्रभु ने बहुत अधिक कठिनाई से उसे स्वीकार किया।

अनुभाष्य

१९। ओड़न-पाड़न,—ओत-प्रोत; किसी-किसी के मतानुसार,—तकिया और गद्दा।

प्रभु के शयन से सभी सुखी, केवलमात्र जगदानन्द को दु:ख–

ताते शयन करेन प्रभु,—देखि' सबे सुखी।
जगदानन्द—भितर-बाहिरे महादु:खी॥ २० ॥

२०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को श्रीस्वरूप दामोदर द्वारा निर्मित उस गद्दे पर शयन करते देख सब भक्त आनन्दित हुए। एकमात्र श्रीजगदानन्द पण्डित ही भीतर-बाहर से अत्यधिक दु:खी थे।

पण्डित की वृन्दावन जाने की इच्छा; पहले से ही वृन्दावन जाने की इच्छा रहने पर भी प्रभु के आदेश के बिना जाने में असमर्थता–

पूर्वे जगदानन्देर इच्छा वृन्दावन जाइते।
प्रभु आज्ञा ना देन ताँरे, ना पारे चलिते॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित की पहले से ही वृन्दावन जाने की इच्छा थी किन्तु क्योंकि श्रीमन्महाप्रभु उन्हें जाने की अनुमति नहीं देते थे इसलिए वे वृन्दावन के लिये नहीं जा पाये।

अब प्रभु के शयन-कार्य में दु:खी होकर मथुरा जाने के लिये प्रभु की आज्ञा की याचना–

भितरेर दु:ख बाह्ये प्रकाश ना कैला।
मथुरा जाइते प्रभु-स्थाने आज्ञा मागिला॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—अब उपरोक्त घटना के होने पर श्रीजगदानन्द पण्डित ने अपने भीतर का दु:ख बाहर में प्रकाशित नहीं किया तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु से मथुरा जाने हेतु अनुमति माँगी।

प्रभु के द्वारा मधुर वचनों से सान्त्वना–

प्रभु कहे,—"मथुरा जाइबा आमाय क्रोध करि'।
आमाय दोष लागाञा तुमि हइबा भिखारी॥" २३॥

२३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीजगदानन्द पण्डित से कहा,—"तुम मेरे प्रति क्रोध करके मथुरा जाओगे। मुझ पर दोष मढ़कर तुम भिखारी बनोगे।"

वाम्यस्वभाव वाले होने पर भी प्रभु के चरणों में जगदानन्द के द्वारा सम्भ्रमपूर्वक कातर-निवेदन–

जगदानन्द कहे प्रभुर धरिया चरण।
"पूर्व हैते इच्छा मोर जाइते वृन्दावन॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को धारण करके कहने लगे,—"मेरी पहले से ही वृन्दावन जाने की इच्छा थी।

प्रभु-आज्ञा नाहि, ताते ना पारि जाइते।
एबे आज्ञा देह', अवश्य जाइमु निश्चिते॥" २५ ॥

२५। प० अनु०—"मुझे मेरे प्रभु अर्थात्, आपकी अनुमति नहीं मिली, इसी कारण मैं नहीं जा पाया, किन्तु हे प्रभु! अब आप कृपया मुझे अनुमति प्रदान कीजिए, मैंने निश्चय किया है, मैं अवश्य ही जाऊँगा।"

भक्तवत्सल प्रभु के द्वारा निषेध, पण्डित की जिद्–

प्रभु, प्रीते ताँर गमन ना करेन अङ्गीकार।
तेंहो प्रभुर ठाञि आज्ञा मागे बार बार॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीजगदानन्द पण्डित के प्रति प्रीतियुक्त होने के कारण उनकी मथुरा जाने की बात को स्वीकार नहीं किया, किन्तु तब भी श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभु से बारम्बार जाने की अनुमति माँगते रहे।

श्रीस्वरूप से पण्डित का निवेदन, प्रभु की पण्डित के जाने के विषय में असहमति–

स्वरूप-गोसाञिरे पण्डित कैला निवेदन।
"पूर्व हैते वृन्दावन जाइते मोर मन॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी से निवेदन किया—"मेरी बहुत पहले से ही वृन्दावन जाने की इच्छा थी।

प्रभु-आज्ञा बिना ताँहा जाइते ना पारि।
एबे आज्ञा ना देन मोरे, 'क्रोधे जाह' बलि'॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—''किन्तु मैं श्रीमन्महाप्रभु की अनुमति के बिना वृन्दावन नहीं जा सकता। अब श्रीमन्महाप्रभु मुझे यह कहकर अनुमति नहीं दे रहे कि 'तुम क्रोध करके जा रहे हो'।

अनुभाष्य

२८। 'क्रोधे जाह' बलि',—'क्रोध करके जा रहे हो' ऐसा मानकर।

अपने जाने के विषय में प्रभु की सम्मति लेने के लिये स्वरूप से अनुरोध—

सहजेइ मोर ताँहा जाइते मन हय।
प्रभु-आज्ञा लञा देह', करिये विनय॥'' २९ ॥

२९। प० अनु०—''मेरी वृन्दावन जाने की स्वाभाविक प्रबल इच्छा हो रही है। मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप ही मुझे श्रीमन्महाप्रभु से अनुमति लेकर दीजिए।''

स्वरूप के द्वारा उसके लिये प्रभु के चरणों में निवेदन और आज्ञा की प्रार्थना—

तबे स्वरूप-गोसाञि कहे प्रभुर चरणे।
''जगदानन्देर इच्छा बड़ जाइते वृन्दावने॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—तब श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में निवेदन करते हुए कहा,—''श्रीजगदानन्द पण्डित की वृन्दावन जाने की बहुत इच्छा है।

तोमार ठाञि आज्ञा तेंहो मागे बार बार।
आज्ञा देह',—मथुरा देखि' आइसे एकबार॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—''श्रीजगदानन्द पण्डित ने आपसे पुनः पुनः वृन्दावन जाने की अनुमति माँगी है, आप उन्हें एकबार मथुरा को देखकर आने की अनुमति दे दीजिए।

आइरे देखिते जैछे गौड़देशे जाय।
तैछे एकबार वृन्दावन देखि' आय॥'' ३२ ॥

३२। प० अनु०—''श्रीजगदानन्द पण्डित जैसे गौड़देश में आई अर्थात् श्रीशची माता के दर्शन के लिए जाते हैं, उसी प्रकार एक बार वृन्दावन देखकर भी आ जाने दो।''

स्वरूप के अनुरोध से जगदानन्द को बुलाकर वहाँ पर जाकर करने योग्य कर्त्तव्य का उपदेश—

स्वरूप-गोसाञि बोले प्रभु आज्ञा दिला।
जगदानन्दे बोलाञा ताँरे शिखाइला॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी के कहने पर श्रीजगदानन्द पण्डित को वृन्दावन जाने की अनुमति दे दी तथा उन्होंने श्रीजगदानन्द पण्डित को बुलाकर उन्हें समझाते हुए कहा—

मार्ग के विषय में उपदेश-प्रदान—

''वाराणसी पर्यन्त स्वच्छन्दे जाइबा पथे।
आगे सावधाने जाइबा क्षत्रियादि-साथे॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—''हे जगदानन्द! तुम वाराणसी तक मार्ग में स्वच्छन्द चले जाना, किन्तु उसके बाद सावधानी पूर्वक किसी क्षत्रिय आदि के साथ ही आगे जाना।

अनुभाष्य

३४। क्षत्रियादि-साथे,—दस्यु (डाकुओं) के हाथों से रक्षा करने वाले क्षत्रियों के साथ।

केवल गौड़ीया पाइले 'बाट पाड़' करि' बान्धे।
सब लुटि' बाँधि' राखे, जाइते विरोधे॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

अनुभाष्य

३५। गौड़ीया अर्थात् गौड़ अथवा बङ्गदेश के मनुष्य—स्वाभाविक रूप में अस्थूलकाय (पतले) और देखने में दुर्बल होते हैं। अकेले मिलने पर निसहाय दुर्बल व्यक्तियों को बाटपाड़ अर्थात् मार्ग में लूटने वाले दस्यु बाँधकर रख लेते हैं तथा सबकुछ लूट लेते हैं एवं जाने के विषय में विरोध करते हैं अर्थात् जाने नहीं देते।

किसी-किसी के मतानुसार—गौड़ीयों को 'अत्यधिक चतुर' देखकर डाकु का कार्य करवाते हैं एवं उन्हें छोड़ते नहीं।

मथुरा पहुँचने पर कर्त्तव्य का उपदेश; ऐश्वर्य ज्ञानहीन रागमार्ग के भक्तों के साथ सङ्ग करने हेतु सतर्क करना—

मथुरा-गेले सनातन-सङ्गे रहिबा।
मथुरार स्वामी-सबेर चरण वन्दिबा॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—"हे जगदानन्द! तुम मथुरा पहुँचकर सनातन के सङ्ग में रहना। मथुरा के समस्त स्वामियों अर्थात् तीर्थ-पुरोहित चतुर्वेदी ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करना।

अमृतप्रवाह भाष्य

३६। मथुरार स्वामी-सबेर,—मथुरावासी चौबों के।

दूरे रहि' भक्ति करिह सङ्गे ना रहिबा।
ताँ-सबार आचार-चेष्टा लइते नारिबा॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—"तुम उन चतुर्वेदी ब्राह्मणों से दूर रहकर ही उनकी सेवा करना, उनके सङ्ग में मत रहना। तुम उनके आचरण इत्यादि को देखकर उसे स्वीकार नहीं कर पाओगे।

अमृतप्रवाह भाष्य

३७। कृष्ण के प्रति शुद्ध वात्सल्य भाव से वे जो आचरण करते हैं, वह—स्मार्त्तमत के विरुद्ध है; इसे देखकर (ऐश्वर्यभाव में रत) तुम्हारे मन में अश्रद्धा हो सकती है। किन्तु व्रजमण्डल के वासियों के प्रति ऐसी अश्रद्धा नहीं होना ही आवश्यक है; कारण, वे लोग आत्मा के स्वाभाविक राग (प्रीति) के अनुसार भक्ति करते हैं। अतएव (तुम्हारे जैसे ऐश्वर्य-भावप्रिय भक्त का रागमार्गीय उनके साथ में नहीं रहकर) दूर में रहकर ही उनके प्रति भक्ति करना [उचित है]।

सदैव सनातन के सङ्ग में रहने का उपदेश—

सनातन-सङ्गे करिह वन दरशन।
सनातनेर सङ्ग ना छाड़िबा एकक्षण॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—"तुम सनातन के साथ जाकर व्रजमण्डल के द्वादश-वनों का दर्शन करना। तुम सनातन के सङ्ग को एक क्षण के लिये भी मत छोड़ना।

कृष्ण से अभिन्न गोवर्धन पर चढ़ने के लिये निषेध—

शीघ्र आसिह, ताँहा ना रहिह चिरकाल।
गोवर्द्धने ना चड़िह देखिते 'गोपाल'॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—"हे जगदानन्द! तुम वृन्दावन से शीघ्र ही लौटकर आ जाना, वहाँ बहुत समय तक मत रहना तथा श्रीमाधवेन्द्र पुरी पाद द्वारा सेवित विग्रह श्रीगोपाल का दर्शन करने के लिये गोवर्धन के ऊपर मत चढ़ना।

अमृतप्रवाह भाष्य

३९। अधिक दिन तक व्रज में रहने पर व्रजवासियों के दोष आदि देखकर श्रद्धा कम हो जाती है। अतएव जिन्हें रागमार्ग प्राप्त नहीं हुआ, उनका व्रज में वास करना उचित नहीं है, व्रज के दर्शन करके शीघ्र लौटकर आ जाना ही अच्छा है। श्री गोपाल के दर्शन के लिये गोवर्धन पर नहीं चढ़ना; क्योंकि गोवर्धन—साक्षात् भगवान् की मूर्त्ति हैं; उसके ऊपर चढ़ना अच्छा नहीं है। गोपाल जब-जब अन्यान्य स्थानों पर जाते हैं, उस समय उनका दर्शन करना ही अच्छा है।

सनातन को प्रभु के आने के संवाद के विषय में बतलाना और भजन के स्थान का निर्वाचन करने का आदेश—

आमिह आसितेछि,—कहिह सनातने।
आमार तरे एकस्थान करे वृन्दावने॥" ४० ॥

४०। प० अनु०—"तुम सनातन से कहना कि मैं भी वृन्दावन जाऊँगा। वह मेरे लिये वृन्दावन में एक स्थान की व्यवस्था करें।"

अनुभाष्य

४०। प्रभु के पुनः वृन्दावन जाने की बात किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं मिलती; बाद की ७० वीं संख्या में सनातन-प्रभु के द्वारा महाप्रभु के वासस्थान के रूप में

निर्वाचित स्थान के संस्कार के द्वारा अनुमान लगता है कि महाप्रभु बाद में पुनः जा भी सकते हैं।

पण्डित को विदायी-आलिङ्गन, पण्डित के द्वारा प्रभु के चरणों की वन्दना—

एत बलि' जगदानन्दे कैला आलिङ्गन।
जगदानन्द चलिला प्रभुर वन्दिया चरण॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने इतना कहकर श्रीजगदानन्द पण्डित को आलिङ्गन किया, श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना करके चल पड़े।

भक्तों से विदायी लेकर काशी-आगमन—

सब भक्तगण-ठाञि आज्ञा मागिला।
वनपथे चलि' चलि' वाराणसी आइला॥ ४२ ॥

४२। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने सभी भक्तों से भी वृन्दावन जाने की अनुमति ली तथा वन के पथ से चलते-चलते वाराणसी पहुँचे।

तपनमिश्र और वैद्य चन्द्रशेखर के साथ साक्षात्कार और संलाप—

तपनमिश्र, चन्द्रशेखर,—दोंहारे मिलिला।
ताँर ठाञि प्रभुर कथा सकल शुनिला॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीतपन मिश्र तथा श्रीचन्द्रशेखर वैद्य से मिले, उन्होंने उन दोनों से श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा वाराणसी में प्रकाशित समस्त कथाओं का श्रवण किया।

मथुरा में सनातन के साथ मिलन और दोनों का आनन्द—

मथुराते आसि' मिलिला सनातने।
दुइजनेर सङ्गे दुँहे आनन्दित मने॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित मथुरा पहुँचकर श्रीसनातन गोस्वामी से मिले। परस्पर मिलन से दोनों का ही मन आनन्दित हो गया।

सनातन के आनुगत्य में पण्डित का द्वादश वनों का दर्शन—

सनातन कराइला ताँरे द्वादश वन-दरशन।
गोकुले रहिला दुँहे देखि' महावन॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीजगदानन्द पण्डित को द्वादश वनों के दर्शन कराये। महावन के दर्शन करने के पश्चात् दोनों गोकुल में ही रह गये।

दोनों का एक ही साथ में रहना, किन्तु पृथक् अभ्यास होने के कारण पृथक् खाद्य-ग्रहण—

सनातनेर गोफाते दुँहे रहे एकठाञि।
पण्डित पाक करेन देवालये जाइ'॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी की गुफा में श्रीजगदानन्द पण्डित उन्हीं के साथ रहने लगे। श्रीजगदानन्द पण्डित देवालय (मन्दिर) में जाकर रन्धन करते।

सनातन भिक्षा करेन जाइ' महावने।
कभु देवालये, कभु ब्राह्मण-सदने॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी कभी तो महावन में जाकर भिक्षा करते थे तथा कभी किसी देवालय और कभी किसी ब्राह्मण के घर पर प्रसाद पाते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

४६-४७। सनातन ने तब माधुकरी-भिक्षा में प्राप्त रोटियों के टुकड़ों को खाकर जीवन निर्वाह करने का अभ्यास किया था। प्रत्येक दिन चावल नहीं खाने से जगदानन्द पण्डित की तृप्ति नहीं होगी, इसी कारण वे देवालय में जाकर रन्धन करते थे; व्रज के मन्दिरों में चावल-दाल इत्यादि का प्रसाद नहीं मिलता था।

मानद (सम्मान प्रदान करने वाले) सनातन के द्वारा पण्डित की सेवा—

सनातन पण्डितेर करे समाधान।
महावने देन आनि' मागि' अन्न-पान॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी श्रीजगदानन्द पण्डित की समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण कर देते थे। वे महावन से श्रीजगदानन्द पण्डित के लिये चावल तथा जल अथवा मठ्ठा लस्सी आदि भी माँगकर ले आते थे।

अनुभाष्य

४८। समाधान,—सभी कार्यों का सम्पादन अथवा सेवन।

एकदिन पण्डित के द्वारा सनातन को निमन्त्रण और रन्धन—

एकदिन सनातने पण्डित निमन्त्रिला।
नित्यकृत्य करि' तेंह पाक चड़ाइला॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—एकदिन श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीसनातन गोस्वामी को अपने साथ प्रसाद पाने का निमन्त्रण दिया। श्रीजगदानन्द पण्डित ने नित्य-क्रिया करके रन्धन करना प्रारम्भ कर दिया।

मस्तक पर सन्यासी के द्वारा प्रदत्त वस्त्र पहनकर सनातन का पण्डित के घर में आगमन—

'मुकुन्द सरस्वती', नाम सन्यासी महाजने।
एक बहिर्वास तेंहो दिल सनातने॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी को मुकुन्द सरस्वती नामक एक सन्यासी महाजन ने अपना एक बहिर्वास दिया।

सनातन सेइ वस्त्र मस्तके बान्धिया।
जगदानन्देर वासा-द्वारे बसिला आसिया॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी मुकुन्द सरस्वती द्वारा प्रदत्त वस्त्र को सिर पर बाँधकर उस स्थान के द्वार पर आकर बैठ गये जहाँ श्रीजगदानन्द पण्डित रन्धन कर रहे थे।

सनातन के वस्त्र को प्रभु के द्वारा प्रदत्त वस्त्र मानकर पण्डित में प्रेम—

रातुल वस्त्र देखि' पण्डित प्रेमाविष्ट हइला।
''महाप्रभुर प्रसाद'' जानि' ताँहारे पुछिला॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी के सिर पर बँधे गेरुएँ वस्त्र को देखकर श्रीजगदानन्द पण्डित प्रेमाविष्ट हो गये तथा उन्होंने उस वस्त्र को श्रीमन्महाप्रभु का प्रसादी-वस्त्र समझकर श्रीसनातन गोस्वामी से पूछा—।

अमृतप्रवाह भाष्य

५२। रातुल,—गेरुएँ।

सनातन को वस्त्र की प्राप्ति के कारण की जिज्ञासा—

''काँहा पाइला तुमि एइ रातुल वसन?''
''मुकुन्द-सरस्वती दिल'',—कहेन सनातन॥ ५३॥

५३। प० अनु०—''हे सनातन! तुम्हें यह गेरुआँ वस्त्र कहाँ से मिला?'' श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा,—''मुझे यह वस्त्र मुकुन्द सरस्वती ने दिया है।''

प्रभु के अलावा अन्य सन्यासियों के द्वारा प्रदान की गयी वस्तु को ग्रहण करने से पण्डित में क्रोध—

शुनि' पण्डितेर मने क्रोध उपजिल।
भातेर हाण्डि हाते लञा मारिते आइल॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी के मुख से मुकुन्द सरस्वती का नाम सुनकर श्रीजगदानन्द पण्डित के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ। श्रीजगदानन्द पण्डित चावल की हाण्डी को हाथ में उठाकर श्रीसनातन गोस्वामी को मारने के लिये आये।

सनातन को लज्जा—

सनातन ताँरे जानि' लज्जित हइला।
बलिते लागिला पण्डित, हाण्डि चुलाते धरिला॥

५५। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी श्रीजगदानन्द पण्डित को मुकुन्द सरस्वती का नाम बतला कर अथवा उन्हें गौरप्रेम-मय देखकर स्वयं के द्वारा की गयी क्रिया के प्रति लज्जित हुए। श्रीजगदानन्द पण्डित चावल की हाण्डी को चूल्हे पर रखकर श्रीसनातन गोस्वामी से कहने लगे—।

अनुभाष्य

५५। जानि,—बतलाकर अथवा गौरप्रेममय देखकर।

पण्डित के द्वारा सनातन का तिरस्कार—

''तुमि महाप्रभुर हओ पार्षद-प्रधान।
तोमा-सम महाप्रभुर प्रिय नाहि आन॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—''हे सनातन! तुम श्रीमन्महाप्रभु के प्रधान पार्षद हो। श्रीमन्महाप्रभु को तुम्हारे समान अन्य कोई प्रिय नहीं है।

अन्य सन्यासीर वस्त्र तुमि धर शिरे।
कोन् ऐछे हय,—इहा पारे सहिवारे??'' ५७ ॥

५७। प० अनु०—''तुम श्रीमन्महाप्रभु के अलावा अन्य किसी सन्यासी के वस्त्र को अपने सिर पर धारण करते हो, श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों में कौन ऐसा होगा जो तुम्हारे इस आचरण को सहन कर पायेगा?''

अमानी-मानद महाधीर सनातन-गोस्वामी का आत्मदैन्य और पण्डित के गौरप्रेम में निष्ठा की प्रशंसा—

सनातन कहे,—''साधु पण्डित-महाशय।
तोमा-सम चैतन्येर प्रिय केह नय॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने कहा,—''हे श्रीजगदानन्द पण्डित महाशय, आपकी मुझे मारने के उद्देश्य से हाण्डी को उठाने जैसी क्रिया अथवा आपके द्वारा कहे गये वचन प्रशंसनीय हैं। वास्तव में आपके समान श्रीचैतन्य महाप्रभु को अन्य कोई प्रिय नहीं है।

ऐछे चैतन्य निष्ठा योग्य तोमाते।
तुमि ना देखाइले इहा शिखिमु केमते?? ५९ ॥

५९। प० अनु०—''श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रति आपकी ऐसी निष्ठा उचित ही है। यदि आप ऐसी निष्ठा नहीं दिखलायेंगे, तब फिर मैं सीखूँगा कैसे?

पण्डित के प्रेम की परीक्षा और उसका प्रत्यक्ष दर्शन—

जाहा देखिबारे वस्त्र मस्तके बान्धिलुँ।
सेइ अपूर्व प्रेम एइ प्रत्यक्ष देखिलुँ ॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—''मैंने जिसे देखने के लिये इस गेरुएँ वस्त्र को मस्तक पर बाँधा था, मैंने उस अपूर्व प्रेम को प्रत्यक्ष देख लिया।

रागमार्गीय परमहंस के लिये गेरुएँ वस्त्र को पहनने के विषय में निषेध—

रक्तवस्त्र 'वैष्णवेर' परिते ना जुयाय।
कोन प्रवासीरे दिमु, कि काय उहाय??'' ६१ ॥

६१। प० अनु०—वास्तव में वैष्णवों को गेरुएँ वस्त्र पहनना शोभा नहीं देता। मैं यह वस्त्र किसी प्रवासी को दे दूँगा, यह वस्त्र मेरे किस काम का है?

अनुभाष्य

६१। वैष्णवगण,—परमहंस और अकिञ्चन होते हैं; अतएव वैधी भक्ति के पालन करने वाले सन्यासियों के द्वारा पहने जाने वाले गेरुएँ वस्त्रों को पहनकर उन्हें अपने परमहंस आश्रम का निर्देश अथवा प्रदर्शन नहीं करना पड़ता; विशेष करके अद्वितीय परमेश्वर श्रीगौरहरि के द्वारा एकदण्डी के वेश को स्वीकार करने के कारण, उनके चरणों का आश्रय लेने वाले किङ्कर उनके दासाभिमान के कारण अप्राकृत चिद्विलास-भेद बुद्धि से वेषग्रहण के विषय में उनके जैसे व्यवहार को करने के योग्य अथवा वैसे करने की विधि है, ऐसा नहीं मानते। सन्यास ग्रहण करके परमहंस वैष्णव-गुरु के आश्रय में रहकर वैष्णवदासगण स्वयं को वर्णाश्रमातीत परमहंस-वैष्णव के आसन पर अधिष्ठित होने के अयोग्य समझकर बहुत बार दैन्यज्ञापित करने के उद्देश्य से गुरु-वैष्णवों के लिये अनुचित तुर्याश्रमोचित गेरुएँ वस्त्रों को पहनते भी हैं।

प्रभु को भोग समर्पण और दोनों के द्वारा एक साथ बैठकर प्रसाद का सम्मान—

पाक करि' जगदानन्द चैतन्ये समर्पिला।
दुइजन बसि' तबे प्रसाद पाइला॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने रन्धन करने के पश्चात् श्रीचैतन्य महाप्रभु को भोग निवेदन किया तथा फिर श्रीजगदानन्द पण्डित एवं श्रीसनातन गोस्वामी ने बैठकर प्रसाद पाया।

प्रभु के विरह में दोनों का क्रन्दन—

प्रसाद पाइ दुइजने कैला आलिङ्गन।
चैतन्यविरहे दुँहे करिला क्रन्दन॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—प्रसाद पाने के बाद दोनों ने परस्पर आलिङ्गन किया तथा दोनों ने श्रीचैतन्य महाप्रभु के विरह में क्रन्दन किया।

दोनों को गौर-विरह की अनुभूति—

एइमत मास दुइ रहिला वृन्दावने।
चैतन्य विरह-दुःख ना जाय सहने॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित इस प्रकार दो मास तक वृन्दावन में रहे, वे श्रीचैतन्य महाप्रभु से हो रहे विरह रूपी दुःख को सहन नहीं कर पा रहे थे।

प्रभु के भावी आगमन के संवाद के विषय में बतलाना, उसके लिये स्थान का निर्वाचन करने की आज्ञा—

महाप्रभुर सन्देश कहिला सनातने।
''आमिह आसितेछि, रहिते करिह एकस्थाने॥''६५॥

६५। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीसनातन गोस्वामी को बताया कि श्रीमन्महाप्रभु ने उनके लिये सन्देश देते हुए कहा है,—''मैं भी वृन्दावन आ रहा हूँ, मेरे रहने के लिये एक स्थान की व्यवस्था कर देना।''

जगदानन्द के द्वारा विदायी ग्रहण और प्रभु के लिये सनातन द्वारा प्रदत्त द्रव्यों को लेना—

जगदानन्द-पण्डित तबे आज्ञा मागिला।
सनातन प्रभुरे किछु भेटवस्तु दिला॥ ६६ ॥

रासस्थलीर बालु, आर गोवर्द्धनेर शिला।
शुष्क पक्व पीलुफल आर गुञ्जामाला॥ ६७ ॥

६६-६७। प० अनु०—तब श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीसनातन गोस्वामी से श्रीजगन्नाथ पुरी लौट जाने हेतु अनुमति माँगी। श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु को भेंट देने के लिये रासस्थली की रज, गोवर्धन की शिला, सूखे हुए पक्के पीलु के फल और गुञ्जामाला आदि कुछ वस्तुएँ दी।

पण्डित की पुरी-यात्रा; पण्डित को सनातन के द्वारा कष्टपूर्वक विदायी प्रदान—

जगदानन्द-पण्डित चलिला सब लञा।
व्याकुल हैला सनातन ताँरे विदाय दिया॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा दी गयी सब वस्तुओं को लेकर चलने के लिये प्रस्तुत हुए। श्रीसनातन गोस्वामी ने व्याकुल होकर श्रीजगदानन्द पण्डित को विदायी दी।

प्रभु के रहने के लिये द्वादशादित्य-टीला में मठ (स्थान) का निर्वाचन और संस्कार-करवाना—

प्रभुर निमित्त एकस्थान मने विचारिला।
द्वादशादित्य-टिलाय एक 'मठ' पाइला॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान योग्य किसी एक स्थान का मन में विचार कर ही रहे थे कि उन्हें उसी समय द्वादश-आदित्य-टीला पर बने एक देवालय की प्राप्ति हुई।

अमृतप्रवाह भाष्य

६९। द्वादशादित्य-टिला,—श्रीमदनमोहन का पुराना टूटा हुआ मन्दिर, जो ऊँचे टीले के ऊपर स्थित है, उसी को ही 'द्वादशादित्य-टीला' कहते हैं। कृष्णलीला के समय उसी स्थान पर द्वादश (बारह) आदित्य (सूर्य) उदित हुए थे।

अनुभाष्य

६९। मठ,—देवालय (मन्दिर)।

सेइ स्थान राखिला गोसाञि संस्कार करिया।
मठेर आगे राखिला एक चालि बान्धिया॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—श्रीसनातन गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के उद्देश्य से उस स्थान का संस्कार कराया तथा उन्होंने उस देवालय के सामने एक चाली (झोपड़ी) भी बना दी।

पण्डित का पुरी जाना और सगण प्रभु के साथ साक्षात्कार—
शीघ्र चलि' नीलाचले गेला जगदानन्द।
भक्त सह गोसाञि हैला परम आनन्द॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—उधर श्रीजगदानन्द पण्डित शीघ्र चलते हुए श्रीजगन्नाथ पुरी पहुँचे। श्रीजगदानन्द पण्डित को आये देखकर श्रीमन्महाप्रभु तथा उनके भक्तों को परम आनन्द की प्राप्ति हुयी।

प्रभुर चरण वन्दि' सबारे मिलिला।
महाप्रभु ताँरे दृढ़ आलिङ्गन कैला॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना करके सभी भक्तों से मिले। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीजगदानन्द पण्डित को गाढ़ आलिङ्गन किया।

प्रभु को सनातन की ओर से दण्डवत् ज्ञापन और उनके द्वारा प्रदान की गयी वस्तुएँ देना—
सनातनेर नामे पण्डित दण्डवत् कैला।
रासस्थलीर धूलि आदि सब भेट दिला॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीमन्महाप्रभु को श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा प्रेरित दण्डवत् प्रणाम किया तथा उनके द्वारा भेजी गयी रासस्थली की रज आदि भेंट को दिया।

भक्तों के द्वारा पीलु के फल को खाने की लीला—
सब द्रव्य राखिलेन, पीलु दिलेन बाँटिया।
'वृन्दावनेर फल' बलि' खाइला हृष्ट हञा॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अन्य सब वस्तुएँ तो रख ली, किन्तु पीलु के फलों को भक्तों में बाँट दिया तथा स्वयं भी उस फल को 'वृन्दावन का फल' कहकर प्रसन्नतापूर्वक खा लिया।

जे केह जाने, आँटि चुषिते लागिल।
जे ना जाने गौड़ीया, पीलु चाबाञा खाइल॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—जो भक्त पीलु फल को खाना जानते थे वे तो गुठली को चूसने लगे, जो गौड़देश के भक्त इस फल के विषय में नहीं जानते थे वे पीलु को चबाकर खाने लगे।

मुखे तार झाल गेल, जिह्वा करे ज्वाला।
वृन्दावनेर 'पीलु' खाइते एइ एक लीला॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—जिन भक्तों ने पीलु फल की गुठली को चबाया, उनके मुँह को बहुत तीखा लगा, जिह्वा जलने लगी। वृन्दावन के पीलु को खाने की यह भी एक लीला है।

वृन्दावन से जगदानन्द के आने से सभी को प्रसन्नता—
जगदानन्देर आगमने सबार उल्लास।
एइमते नीलाचले प्रभुर विलास॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित के लौट आने से सभी भक्त उल्लसित हुए, इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल में विलास कर रहे थे।

प्रभु और गुर्जरी-रागिनी में गान करने वाली देवदासी के वृत्तान्त का वर्णन; कृष्ण से सम्बन्धित पद को श्रवण करके प्रभु के द्वारा अर्धबाह्य दशा में प्रेम के वशीभूत होकर अप्राकृत कृष्ण सेवा बुद्धि से उनके साथ मिलने के लिये दौड़ना—
एकदिन प्रभु यमेश्वर-टोटा जाइते।
सेइकाले देवदासी लागिला गाइते॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—एकदिन जब श्रीमन्महाप्रभु यमेश्वर-टोटा की ओर जा रहे थे, तभी दूसरी ओर, कोई

एक देवदासी गान करने लगी।

गुर्जरी रागिनी लञा सुमधुर-स्वरे।
'गीत गोविन्द'-पद गाय जगमन हरे॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—वह देवदासी समस्त जगत्वासियों के मन का हरण कर लेने वाले गीत गोविन्द के पद का गुर्जरी रागिनी में अत्यन्त मधुर स्वर से गान कर रही थी।

दूरे गान शुनि' प्रभुर हइल आवेश।
स्त्री, पुरुष, के गाय,—ना जानि' विशेष॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—दूर से ही गान को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु का हृदय उसमें आविष्ट हो गया। वह यह भी नहीं जान पाये कि कोई स्त्री गान कर रही है या फिर कोई पुरुष।

तारे मिलिवारे प्रभु आवेशे धाइला।
पथे 'सिजेर बाड़ी' लय, फुटिया चलिला॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु गान गाने वाले से मिलने के लिये आवेश में ही अत्यन्त तीव्र गति से दौड़ने लगे। मार्ग में काँटों की एक मेड़ थी, श्रीमन्महाप्रभु वहीं से दौड़े चले गये।

अमृतप्रवाह भाष्य

८१। सिजेर बाड़ी,—उड़ीसा में पुष्पों के उद्यान को 'फूलबाड़ी' कहते हैं तथा उसके चारों ओर जो सिज अर्थात् काँटे की झाड़ी अर्थात् मनसा काँटा और काँटे-ही-काँटे वाली झाड़ियाँ रहती हैं; उसी को 'सिजेर बाड़ी' (मेड़) कहते हैं। 'बाड़ी' का अर्थ—बेड़ा (मेंड़, fencing) है।

आत्म-विभोर प्रभु की रक्षा के लिये गोविन्द का उनके पीछे दौड़ना—

अङ्गे काँटा लागिल, किछु ना जानिला।
आस्ते-व्यस्ते गोविन्द ताँर पाछेते धाइला॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु आवेश के कारण यह तक भी अनुभव नहीं कर पाये कि उनके अङ्गों में काँटे चुभे हैं। श्रीमन्महाप्रभु को इस प्रकार दौड़ते देखकर श्रीगोविन्द प्रभु भी अन्य किसी वस्तु की सुध-बुध खोकर उनके पीछे दौड़ने लगे।

गोविन्द के द्वारा प्रभु को सावधान करके बाह्यदशा में लाना—

धाञा जायेन प्रभु, स्त्री आछे अल्प दूरे।
''स्त्री-गान'' बलि' गोविन्द प्रभुरे कैला कोले॥८३॥

८३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु तो दौड़ते चले जा रहे थे, वह स्त्री अभी थोड़ी दूरी पर ही थी कि श्रीगोविन्द ने—'स्त्री गान कर रही है'—कहकर श्रीमन्महाप्रभु को अपनी अङ्क में भर लिया।

आश्रयजातीय-भाव से युक्त प्रभु का जगद्गुरु आचार्य होना; ''गौरनागर''-वाद का खण्डन; प्रभु का लौटना—

स्त्री-नाम शुनि' प्रभुर बाह्य हइला।
पुनरपि सेइ पथे बाहुड़ि' चलिला॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०—श्रीगोविन्द के मुख से 'स्त्री' शब्द को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु को बाह्य दशा की प्राप्ति हुयी। श्रीमन्महाप्रभु उसी पथ से पुनः लौटने लगे।

स्त्री का स्पर्श अथवा सङ्ग—आचार्य अथवा प्रचारक की मृत्यु का कारण, अतएव सब प्रकार से परित्यज्य होने के कारण गोविन्द के समक्ष कृतज्ञता-प्रकाशित करने के छल से शिक्षा-प्रदान—

प्रभु कहे,—''गोविन्द, आजि राखिला जीवन।
स्त्री-परश हैले आमार हइत मरण॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''हे गोविन्द, आज तुमने मेरा जीवन बचा लिया। स्त्री का स्पर्श होने पर तो मेरी मृत्यु ही होती।

गोविन्द के निकट नहीं चुकाया जा सकने वाला ऋण, शरणागत गोविन्द के द्वारा जगन्नाथ को ही रक्षक-मानना—

''ए-ऋण शोधिते आमि नारिमु तोमार।''
गोविन्द कहे,—''जगन्नाथ राखेन मुइ कोन् छार?''

८६। प० अनु०—''हे गोविन्द! मैं तुम्हारे इस ऋण को चुका नहीं पाऊँगा।'' श्रीगोविन्द ने कहा,—''रक्षा करने वाले तो श्रीजगन्नाथ देव हैं, मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति का क्या सामर्थ्य?''

प्रभु के द्वारा गोविन्द को सब समय साथ में रहने के लिये अनुरोध—

प्रभु कहे,—''गोविन्द, मोर सङ्गे रहिबा।
जाँहा ताँहा मोर रक्षाय सावधान हइबा॥'' ८७ ॥

८७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द से कहा,—''हे गोविन्द! तुम निरन्तर मेरे साथ ही रहना। मैं जहाँ कहीं पर भी क्यों न होऊँ, तुम सर्वदा मेरी रक्षा के विषय में सावधान रहना।''

संवाद-श्रवण करके तथा प्रभु की अवस्था का स्मरण करके स्वरूप आदि को आशङ्का—

एत बलि' लेउटि' प्रभु गेला निज-स्थाने।
शुनि' महा-भय पाइला स्वरूपादि-मने॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीगोविन्द को इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु लौटकर अपने वासस्थान पर आ गये। श्रीगोविन्द के मुख से उपरोक्त घटना को सुनकर श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों के मन में अत्यधिक भय उत्पन्न हुआ।

रघुनाथ भट्टगोस्वामी का वृत्तान्त; उनकी आकुमार नैष्ठिक ब्रह्मचारी अथवा बृहद्व्रती-लीला—

एथा तपनमिश्र-पुत्र रघुनाथ-भट्टाचार्य।
प्रभुरे देखिते चलिला छाड़ि' सर्व कार्य॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—दूसरी ओर, श्रीतपन मिश्र के पुत्र श्रीरघुनाथ भट्ट आचार्य अपने समस्त कार्यों को छोड़कर श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के लिये चल पड़े।

सेवक के साथ रघुनाथ की गौड़ से होते हुए पुरी की यात्रा—

काशी हैते चलिला तेंहो गौड़-पथ दिया।
सङ्गे सेवक चले ताँर झालि बहिया॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट काशी से जगन्नाथपुरी के लिये गौड़ से जाने वाले मार्ग से चल पड़े, उनके साथ उनके सेवक उनका समान ढोकर चल पड़े।

मार्ग में पुरी-यात्री रामदास-विश्वास से मिलन—

पथे तारे मिलिला विश्वास-रामदास।
विश्वासखानार कायस्थ तेंहो राजार विश्वास॥ ९१॥

९१। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट को मार्ग में श्रीरामदास विश्वास मिले, श्रीरामदास विश्वास गौड़देश के राजा के विश्वास पात्र होने के कारण विश्वास खाना अर्थात् हिसाब-किताब के कार्यालय में नियुक्त रहने वाले कायस्थ थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

९१। विश्वासखानार कायस्थ,—गौड़ेश्वर के हिसाब-किताब रखने वाले कार्यालय को 'विश्वास खाना' कहा जाता था; कायस्थ लोग ही वहाँ काम करते थे, कारण, वे राज-विश्वासी थे अर्थात् राजा उन पर विश्वास करते थे।

रामदास—रामानन्दीसम्प्रदाय के अन्तर्गत दीक्षित (रामायेत्)—

सर्वशास्त्रे प्रवीण, काव्यप्रकाश-अध्यापक।
परमवैष्णव, रघुनाथ-उपासक॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०— श्रीरामदास विश्वास समस्त शास्त्रों में प्रवीण, काव्य प्रकाश के अध्यापक, परम-वैष्णव के नाम से विख्यात तथा भगवान् श्रीरघुनाथ के उपासक थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

९२। परम वैष्णव,—जो हृदय में 'मुमुक्षु' अर्थात् मोक्ष की कामना रखते हैं, वे शुद्धवैष्णवों के अन्तर्गत नहीं माने जाते। वास्तव में राम के उपासक होने के कारण रामदास को 'वैष्णव प्राय' कहा जा सकता है। किन्तु उन दिनों शुद्ध-वैष्णवों की श्रेणी में भेद करने में अनेक लोग ही आशक्त अर्थात् अयोग्य थे, इसलिए

कायस्थकुल में उत्पन्न श्रीरामदास भी जगत् में 'परम वैष्णव' के रूप में विख्यात थे।

अनुभाष्य

९२। काव्य प्रकाश,—मन्मथभट्ट के द्वारा विरचित अपने नाम से विख्यात अलङ्कार-ग्रन्थ।

अष्टप्रहर रामनाम जपेन रात्रि-दिने।
सर्वत्यजि' चलिला जगन्नाथ-दरशने॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—श्रीरामदास विश्वास रात-दिन आठों प्रहर राम-नाम का जप करते थे, वे भी अपना सब कुछ त्यागकर भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शनों के लिये चल पड़े।

रामदास के द्वारा रघुनाथ भट्ट प्रभु की सेवा—
रघुनाथ-भट्टेर सने पथेते मिलिला।
भट्टेर झालि माथे करि' बहिया चलिला॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—श्रीरामदास विश्वास मार्ग में श्रीरघुनाथ भट्ट से मिले, वे श्रीरघुनाथ भट्ट की पोटली को अपने सिर पर ढोकर चलने लगे।

नाना सेवा करि' करे पाद-सम्वाहन।
ताते रघुनाथेर हय संकुचित मन॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—श्रीरामदास विश्वास श्रीरघुनाथ भट्ट की अनेक सेवाएँ करने के पश्चात् उनके श्रीचरणों का सम्वाहन (मर्दन) भी करते थे। उनके द्वारा ऐसा करने पर श्रीरघुनाथ भट्ट का मन संकुचित होता था।

रघुनाथ की पण्डित के द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवा को ग्रहण करने में आपत्ति—
''तुमि बड़ लोक, पण्डित, महाभागवते।
सेवा ना करिह, सुखे चल मोर साथे॥'' ९६ ॥

९६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट ने श्रीरामदास विश्वास से कहा,—''आप श्रेष्ठ व्यक्ति हैं, विद्वान हैं, महाभागवत हैं। आप मेरी सेवा मत कीजिए, कृपया मेरे साथ केवल प्रसन्नतापूर्वक चलिए।''

रामदास की दैन्यपूर्ण उक्ति और वैष्णव-ब्राह्मण के दास्य में आनन्द—
रामदास कहे,—'आमि शूद्र अधम!
'ब्राह्मणेर सेवा',—एइ मोर निज-धर्म॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—श्रीरामदास विश्वास ने कहा,—''मैं अधम शूद्र हूँ! ब्राह्मणों की सेवा करना ही मेरा निज-धर्म है।

सङ्कोच ना कर तुमि, आमि—तोमार 'दास'।
तोमार सेवा करिले हय हृदये उल्लास॥'' ९८ ॥

९८। प० अनु०—''आप मुझसे किसी सेवा को ग्रहण करने में सङ्कोच मत कीजिए, मैं आपका दास हूँ। आपकी सेवा करने से मेरे हृदय में उल्लास होता है।''

रामदास के द्वारा अनुक्षण रामनाम-जप—
एत बलि' झालि बहेन, करेन सेवने।
रघुनाथेर तारकमन्त्र जपेन रात्रि-दिने॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—श्रीरामदास विश्वास इतना कहकर श्रीरघुनाथ भट्ट की पोटली ढ़ोने लगे तथा उनकी सेवा करने लगे। श्रीरामदास विश्वास रात-दिन भगवान् श्रीरघुनाथ का तारकमन्त्र जप करते रहते।

रघुनाथ का पुरी में आगमन और प्रभु को प्रणाम, प्रभु के द्वारा आलिङ्गन—
एइमते रघुनाथ आइला नीलाचले।
प्रभुर चरणे जाञा मिलिला कुतूहले॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—इस प्रकार श्रीरघुनाथ भट्ट श्रीजगन्नाथ पुरी आ पहुँचे तथा वे श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणों में उपस्थित होकर अत्यधिक आनन्दपूर्वक उनसे मिले।

दण्ड-परणाम करि' भट्ट पड़िला चरणे।
प्रभु 'रघुनाथ' बलि' कैला आलिङ्गने॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट श्रीमन्महाप्रभु के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हुए लेट गये। श्रीमन्महाप्रभु ने—'ओह! रघुनाथ'—कहकर उनका आलिङ्गन किया।

प्रभु के चरणों में तपनमिश्र और चन्द्रशेखर के द्वारा भेजे गये प्रणाम के विषय में बतलाना, भगवान् के द्वारा अपने भक्तों की कुशलता के विषय में जिज्ञासा—

मिश्र आर शेखरेर दण्डवत् जानाइला।
महाप्रभु ताँ-सबार वार्त्ता पुछिला॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट ने श्रीमन्महाप्रभु को श्रीतपन मिश्र और श्रीचन्द्रशेखर द्वारा प्रेरित दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीमन्महाप्रभु ने भी उनके विषय में पूछा तथा कहा—।

अनुभाष्य

१०२। मिश्र आर शेखरेर,—तपन मिश्र और चन्द्रशेखर का।

प्रभु के द्वारा रघुनाथ को जगन्नाथ के दर्शन करने की आज्ञा और भोजन हेतु अपने वासस्थान पर निमन्त्रण—

''भाल हइल आइला, देख 'कमललोचन'।
आजि आमार एथा करिबा प्रसाद भोजन॥'' १०३॥

१०३। प० अनु०—''हे रघुनाथ! अच्छा ही हुआ कि तुम यहाँ पर आये। तुम कमलनयन भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन करो। आज तुम हमारे यहाँ पर ही प्रसाद भोजन करना।''

वासस्थान-प्रदान और स्वरूप आदि भक्तों के साथ मिलन—

गोविन्देरे कहि' एक वासा देओयाइला।
स्वरूपादि भक्तगण-सने मिलाइला॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द को कहकर श्रीरघुनाथ भट्ट के रहने की व्यवस्था करा दी। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरघुनाथ भट्ट को श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों से भी मिलाया।

आठ मास तक प्रभु के साथ में रहना और प्रभु की स्नेहरूपी कृपा की प्राप्ति—

एइमत प्रभु-सङ्गे रहिला अष्टमास।
दिने दिने प्रभुर कृपा बाड़ये उल्लास॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट आठ महीने तक श्रीमन्महाप्रभु के पास रहे। दिन-प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभु की कृपा को प्राप्त करने के कारण श्रीरघुनाथ भट्ट का उल्लास वर्धित होता गया।

रघुनाथ का अपने वासस्थान पर प्रभु को निमन्त्रण—

मध्ये मध्ये महाप्रभुर करेन निमन्त्रण।
घर-भात करेन, आर विविध व्यञ्जन॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट बीच-बीच में श्रीमन्महाप्रभु को निमन्त्रण करते तथा वे स्वयं ही घर पर चावल तथा विविध व्यञ्जन बनाते।

अमृत को भी निन्दित करने वाले नैवेद्य बनाने की विद्या में पारदर्शी रघुनाथ—

रघुनाथ-भट्ट—पाके अति-सुनिपुण।
जेइ रान्धे, सेइ हय अमृतेर सम॥ १०७ ॥

१०७। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट रन्धन कार्य में अत्यन्त सुनिपुण थे। वे जो कुछ भी रन्धन करते थे, वही अमृत के समान बनता था।

भट्ट गोस्वामी को प्रभु के उच्छिष्ट की प्राप्ति—

परम सन्तोषे प्रभु करेन भोजन।
प्रभुर अवशिष्ठ-पात्र भट्टेर भक्षण॥ १०८ ॥

१०८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु अत्यधिक सन्तुष्ट होकर श्रीरघुनाथ भट्ट द्वारा बनाये गये भोजन को पाते थे तथा श्रीमन्महाप्रभु का अवशिष्ट-पात्र अर्थात् छोड़ा हुआ भोजन ही श्रीरघुनाथ भट्ट का भोजन होता था।

रामदास के साथ साक्षात्कार होने पर भी अन्तर्यामी प्रभु की उसके प्रति उदासीनता—

रामदास यदि प्रथम प्रभुरे मिलिला।
महाप्रभु अधिक ताँरे कृपा ना करिला॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—जब श्रीरामदास विश्वास श्रीमन्महाप्रभु से पहली बार मिले, तब श्रीमन्महाप्रभु ने उन पर अधिक कृपा नहीं की।

उदासीनता का कारण—

अन्तरे मुमुक्ष तेंहो, विद्या-गर्ववान्।
सर्वचित्त-ज्ञाता प्रभु—सर्वज्ञ भगवान्॥ ११० ॥

११०। प० अनु०—श्रीरामदास विश्वास हृदय से मुक्तिकामी थे तथा अपनी विद्वता के कारण अभिमान युक्त थे। श्रीमन्महाप्रभु भगवान् होने के कारण सर्वज्ञ थे, इसलिए वे सभी के चित्त को जानते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

११०। मुक्ति-वाञ्छा और विद्या-गर्व—इन दो दोषों ने रामदास को 'शुद्धवैष्णव' बनने नहीं दिया।

त्रयोदश परिच्छेद का अमृतप्रवाहभाष्य समाप्त।

रामदास के द्वारा काव्य-शास्त्र-अध्यापन—

रामदास कैला तबे नीलाचले वास।
पट्टनायक-गोष्ठीके पड़ाय 'काव्यप्रकाश'॥ १११॥

१११। प० अनु०—श्रीरामदास विश्वास जगन्नाथ पुरी में वास करते समय श्रीभवानन्द राय पट्टनायक के पुत्रों को 'काव्य-प्रकाश' पढ़ाते थे।

अनुभाष्य

१११। पट्टनायक गोष्ठीके,—भवानन्द की सन्तानों को।

रघुनाथ को उपलक्ष्य करके प्रभु ने संसार में प्रवेश करने में अनिच्छुक और अभी तक नहीं प्रवेश करने वाले साधकों को उनके अपने स्थान पर रहकर स्त्री सङ्ग के द्वारा इन्द्रियसुख की स्पृहा पर आधारित अत्याहार, प्रयास अथवा लोभ आदि का निषेध—

अष्टमास रहि प्रभु भट्टे विदाय दिला।
''विवाह ना करिह'' बलि' निषेध करिला॥ ११२॥

११२। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट को जब श्रीजगन्नाथ पुरी में रहते हुए आठ मास हो गये, तब श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें विदायी दी तथा तुम-''विवाह मत करना''—ऐसा कहकर उन्हें विवाह के लिये निषेध किया।

अनुभाष्य

११२। श्रीमहाप्रभु ने रघुनाथभट्ट को संसार में अप्रविष्ट अवस्था में ही कृष्ण-परायण होते देखकर उन्हें 'अत्याहार' रूप दार परिग्रह (पत्नी-स्वीकार) करके भोगों के भण्डार मायामय संसार में प्रविष्ट होने से निषेध किया। विषयी स्त्रैण (स्त्री में आसक्त) सांसारिक व्यक्ति गृहव्रत-धर्म का अवलम्बन करके भोक्ता पुरुष के अभिमान और भोग बुद्धिवशतः बहुत बार कृष्ण सेवा से विमुख हो जाते हैं, इसलिए उनकी हरिभक्ति की सम्भावना—बहुत कम होती है।

काशी में जाकर वैष्णवों की सेवा करने का आदेश एवं अनर्थमुक्त कृष्णसुख तात्पर्य-पर भागवत के निकट ही कृष्ण की सेवा के लिये चिन्मय-भागवत अध्ययन करने का आदेश—

''वृद्ध माता-पितार जाइ' करह सेवन।
वैष्णव-पाश भागवत कर अध्ययन॥ ११३ ॥

११३। प० अनु०—''हे रघुनाथ! तुम काशी जाकर अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करो तथा किसी वैष्णव के निकट श्रीमद्भागवत का अध्ययन करो।

अनुभाष्य

११३। इस स्थान पर जगद्गुरु लोकशिक्षक आचार्य श्रीरघुनाथ भट्ट को उपलक्ष्य करके साधक को एकान्तिक परम गौरभक्त वैष्णव पिता-माता को अपनी हरिसेवा के अनुकूल रूप में सेवा करने के लिये ही आदेश दिया है; कृष्ण-भजन करने के लिये आर्त्त प्रत्येक सेवक (भक्त) को ही हरिगुरु-वैष्णव विमुख पिता-माता की सेवा करने का आदेश नहीं दिया। इस प्रसङ्ग में (भाः ५.५.१८)—''गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्। दैवं न तत् स्यात् न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद् यः समुपेतमृत्युम्॥'' [अर्थात् भगवद् सम्बन्ध

ज्ञान के उपदेश के द्वारा जो सामने उपस्थित मृत्यु रूपी संसार से उद्धार नहीं करा पाते, वे—'गुरु' नहीं हैं, वे—'स्वजन' नहीं हैं, वे—'पिता' नहीं हैं, वे—'माता' नहीं हैं, वे—'देवता' नहीं है, वे—'पति' नहीं हैं।] एवं ''लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने। हरिसेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता॥'' [अर्थात् हे मुने! जगत् में लौकिकी अथवा वैदिकी जो समस्त क्रियाएँ की जाती हैं, भक्ति को प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति उन समस्त क्रियाओं का हरिसेवा के अनुकूल ही अनुष्ठान करेंगे।]—दोनों श्लोक आलोच्य हैं।

व्याकरण जानने वाले अवैष्णव के निकट भागवत को पढ़ने पर जड़ीय काव्यग्रन्थ का ही पाठ-श्रवण होता है; कारण, ऐसे समस्त पाठक स्वयं ही भागवत के तात्पर्य को समझने में समर्थ नहीं होने के कारण संसार भोग करते हैं, तब फिर वे अन्यों को किस प्रकार अनर्थ से निर्मुक्त करने में समर्थ होंगे? महाभागवत वैष्णवगण—मुक्त-गृहबन्ध, अर्थात् घर के बन्धनों से मुक्त हैं, अतएव वे ही स्वयं 'भागवत' होने के कारण भागवत के वास्तविक अर्थ को जानने वाले तथा भक्ति के प्रभाव से संसारमुक्त हैं।

पुरी में एक बार आने का आदेश; कण्ठमाला-प्रसाद-प्रदान—

पुनरपि एकबार आसिह नीलाचले।''
एत बलि' कण्ठ-माला दिला ताँर गले॥ ११४ ॥

११४। प० अनु०—''तुम एकबार पुनः नीलाचल में आना।''—ऐसा बोलकर श्रीमन्महाप्रभु ने अपने गले की पुष्प-माला उतारकर उनके गले में डाल दी।

भट्ट को विदायी प्रदान, प्रभु के विरह में भट्ट का क्रन्दन—

आलिङ्गन करि' प्रभु विदाय ताँरे दिला।
प्रेमे गर गर भट्ट कान्दिते लागिला॥ ११५ ॥

११५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरघुनाथ भट्ट को आलिङ्गन करके उन्हें विदायी दी। श्रीरघुनाथ भट्ट प्रेम में आविष्ट होकर गटक-गटक कर रोने लगे।

भक्तों की आज्ञा लेकर रघुनाथ का काशी में आगमन—

स्वरूप-आदि भक्त-ठाञि आज्ञा मागिया।
वाराणसी आइला भट्ट प्रभुर आज्ञा पाञा॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट ने श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों से भी काशी जाने की अनुमति माँगी। श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा से श्रीरघुनाथ भट्ट वाराणसी (काशी) आ गये।

काशी में वैष्णव पण्डित के निकट भागवत का अध्ययन—

चारिवत्सर घरे पिता-मातार सेवा कैला।
वैष्णव-पण्डित-ठाञि भागवत पड़िला॥ ११७ ॥

११७। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट ने चार वर्ष तक वाराणसी में अपने घर पर माता-पिता की सेवा की तथा किसी वैष्णव पण्डित से श्रीमद्भागवत पढ़ी।

पिता-माता की धाम-प्राप्ति के बाद विरक्त (अनासक्त) होकर प्रभु के समक्ष पुरी में आगमन—

पिता-माता काशी पाइले उदासीन हञा।
पुनः प्रभुर ठाञि आइला गृहादि छाड़िया॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट अपने माता-पिता के काशी में देह-त्यागने के पश्चात् उदासीन होकर पुनः अपना घर त्यागकर श्रीमन्महाप्रभु के पास श्रीजगन्नाथ पुरी में लौट आये।

पहले की भाँति रघुनाथ का आठ मास तक रहने के बाद प्रभु के द्वारा व्रज में रूप-सनातन का सङ्गी बनने का आदेश—

पूर्ववत् अष्टमास प्रभु-पाश छिला।
अष्टमास रहि' पुनः प्रभु आज्ञा दिला॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट श्रीमन्महाप्रभु के पास पहले की भाँति आठ मास तक थे, आठ मास के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने पुनः श्रीरघुनाथ भट्ट को आज्ञा देते हुए कहा,—।

''आमार आज्ञाय, रघुनाथ, जाह वृन्दावने।
ताँहा जाञा रह रूप-सनातन-स्थाने॥ १२० ॥

१२०। प० अनु०—''हे रघुनाथ! मेरी आज्ञा से तुम वृन्दावन जाओ। वहाँ जाकर तुम रूप-सनातन के सान्निध्य में रहना।

वृन्दावन में नित्यकृत्य कर्त्तव्य का उपदेश—

भागवत पड़, सदा लह कृष्णनाम।
अचिरे करिबेन कृपा कृष्ण-भगवान्॥'' १२१ ॥

१२१। प० अनु०—''तुम भागवत पढ़ना तथा सदैव कृष्णनाम का उच्चारण करना, श्रीकृष्ण भगवान् शीघ्र ही तुम पर कृपा करेंगे।''

प्रभु के द्वारा कृपा रूपी आलिङ्गन; रघुनाथ की कृष्णप्रेम में मत्तता—

एत बलि' प्रभु ताँरे आलिङ्गन कैला।
प्रभुर कृपाते कृष्णप्रेमे मत्त हैला॥ १२२ ॥

१२२। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरघुनाथ भट्ट को आलिङ्गन किया। श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से श्रीरघुनाथ भट्ट कृष्णप्रेम में मत्त हो गये।

जप के लिये तुलसी-माला आदि प्रदान—

चौद्द-हात जगन्नाथेर तुलसीर माला।
छुटा-पान-बिड़ा महोत्सवे पाञाछिला॥ १२३ ॥

१२३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को भगवान् श्रीजगन्नाथ की चौदह हाथ लम्बी तुलसी की माला तथा मसाले आदि से रहित अलग प्रकार का पान का बीड़ा महोत्सव में मिला था।

अनुभाष्य

१२३। छुटा-पान-बिड़ा,—मसाले आदि उपादानों से रहित अलग प्रकार का ताम्बुल (पान)।

रघुनाथ के द्वारा प्रतिदिन माला की सेवा—

सेइ माला, छुटा-पान प्रभु ताँरे दिला।
'इष्टदेव' करि' माला धरिया राखिला॥ १२४ ॥

१२४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरघुनाथ भट्ट को वह माला तथा पान का बीड़ा प्रदान किया और श्रीरघुनाथ भट्ट ने उस तुलसी की माला को अपना इष्टदेव मानकर रख लिया।

वृन्दावन में आकर रूप-सनातन के साथ में रहना—

प्रभुर ठाञि आज्ञा लञा गेला वृन्दावने।
आश्रय करिला आसि' रूप-सनातने॥ १२५ ॥

१२५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट श्रीमन्महाप्रभु से अनुमति लेकर वृन्दावन चले गये, उन्होंने वृन्दावन पहुँचकर श्रीरूप गोस्वामी तथा श्रीसनातन गोस्वामी का आश्रय ग्रहण किया।

श्रीरूप प्रभु के निकट रूपानुगवर रघुनाथ के द्वारा भागवत-पाठ—

रूप-गोसाञिर सभाय करेन भागवत-पठन।
भागवत पड़िते प्रेमे आउलाय ताँर मन॥ १२६ ॥

१२६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट श्रीरूप गोस्वामी की सभा में श्रीमद्भागवत का पाठ करने लगे। श्रीरघुनाथ भट्ट का मन श्रीमद्भागवत को पढ़ते समय प्रेम में व्याकुल हो जाता।

अनुभाष्य

१२६। आउलाय,—अलग्न, श्लथ, आकुल, अस्थिर, उन्मत्त होना।

रघुनाथ का अष्टसात्त्विक भाव—

अश्रु, कम्प, गद्‌गद प्रभुर कृपाते।
नेत्र रोध करे वाष्प, ना पारेन पड़िते॥ १२७ ॥

१२७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से भागवत का पाठ करते समय श्रीरघुनाथ भट्ट के नेत्रों से अश्रुओं की धारा, उनके दिव्य कलेवर में कम्पन तथा उनके कंठ का गद्‌गद् हो जाना इत्यादि प्रकाशित हो जाता। श्रीरघुनाथ भट्ट के नेत्रों से प्रवाहित होने वाले अश्रु उनके श्रीमद्भागवत के पाठ करने में बाधा उत्पन्न करते, जिससे वे श्रीमद्भागवत को पढ़ नहीं पाते थे।

अत्यधिक मधुर कण्ठ वाले भट्टगोस्वामी—

पिकस्वर-कण्ठ, ताते रागेर विभाग।
एकश्लोक पड़िते फिराय तिन-चारि राग॥ १२८॥

१२८। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी के कंठ का स्वर कोकिल (कोयल) की भाँति मधुर था, उसपर भी वे अनेक प्रकार के रागों का अलाप करते थे। श्रीरघुनाथ भट्ट श्रीमद्भागवत के एक ही श्लोक को पढ़ते समय तीन-चार प्रकार के राग परिवर्तित करते थे।

कृष्ण-स्मरण में आत्मविस्मृत रघुनाथ—

कृष्णेर सौन्दर्य-माधुर्य जबे पड़े, शुने।
प्रेमेते विह्वल तबे, किछुइ ना जाने॥ १२९ ॥

१२९। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट जब भी श्रीकृष्ण के सौन्दर्य तथा माधुर्य के विषय में पढ़ते अथवा सुनते, वे तभी प्रेम में भाव-विभोर हो जाते, उन्हें किसी भी वस्तु की सुध-बुध न रहती।

एकमात्र गोविन्द में ही प्राण समर्पित करने वाले रघुनाथ—

गोविन्द-चरणे कैला आत्मसमर्पण।
गोविन्द-चरणारविन्द—जाँर प्राणधन॥ १३० ॥

१३०। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट ने भगवान् श्रीगोविन्द देव के श्रीचरणों में आत्म समर्पण कर दिया, भगवान् श्रीगोविन्द देव के चरणकमल ही श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी के प्राण-धन थे।

अपने शिष्य के द्वारा गोविन्द-मन्दिर और विग्रह के आभूषण आदि का निर्माण—

निज शिष्ये कहि' गोविन्देर मन्दिर कराइला।
वंशी, मकर, कुण्डलादि 'भूषण' करि' दिला॥१३१॥

१३१। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी ने अपने शिष्य से कहकर भगवान् श्रीगोविन्द देव का मन्दिर बनवाया। उन्होंने श्रीगोविन्द देव के लिये वंशी, मकर कुण्डल तथा अन्यान्य अनेक प्रकार के कुण्डल आदि आभूषणों को भी बनवा दिया।

महाभागवत श्रेष्ठ विरक्तकुलचूड़ामणि श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी—

ग्राम्यवार्त्ता ना शुने, ना कहे जिह्वाय।
कृष्णकथा-पूजादिते अष्टप्रहर जाय॥ १३२ ॥

१३२। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी सांसारिक बातों को न तो सुनते थे और न ही अपनी जिह्वा से ऐसी कोई बात कहते थे। उनके भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा आदि करने में ही आठों प्रहर व्यतीत हो जाते।

रघुनाथ के द्वारा अन्यों की निन्दादि-शून्यता, सर्वत्र कृष्ण-कार्षण (भक्त) दर्शन और अनुभूति—

वैष्णवेर निन्द्य-कर्म नाहि पाड़े काणे।
सबे कृष्ण भजन करे,—एइमात्र जाने॥ १३३ ॥

१३३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी कभी भी अपने कानों में किसी वैष्णव की निन्दा को प्रविष्ट नहीं कराते थे। वे केवल इतना जानते थे कि सभी श्रीकृष्ण का भजन कर रहे हैं।

अनुभाष्य

१३३। वैष्णवेर निन्द्यकर्म,—जिस अनुष्ठान के द्वारा वैष्णवता की हानि होती है अर्थात् कृष्ण-भजन-विमुखता एवं स्त्री-सङ्गरूपी शुद्ध-वैष्णवता के विरुद्ध अथवा वैष्णवों के लिये दूषणीय दो प्रकार के विषय। वैष्णव-आचार्यों का कर्त्तव्य यह है कि जिससे किसी भी प्रकार से ये दोनों कदाचार उनके आश्रित हरिभजन में उन्मुख वैष्णवों अर्थात् कृपापात्रों को भजन से विमुख नहीं करा पायें, उसके लिये उपदेश देकर उनसे रक्षा करने का प्रयास करना। रघुनाथ भट्ट का मध्यम-अधिकारी भागवत की भाँति अश्रद्धालु किसी के भी निन्दनीय चरित्र को शोधित करने का प्रयास नहीं था। वे जानते थे कि सभी कृष्णभजन करते हैं अर्थात् ''केह माने, केह ना माने, सब—ताँर दास। जे ना माने, तार हय सेइ पापे नाश॥'' [कोई माने अथवा नहीं माने, किन्तु सब उनके दास हैं। जो नहीं मानता, उसका अपने इस पाप के कारण ही नाश हो जाता है।]

रघुनाथ की कृष्णस्मरण की प्रक्रिया—

महाप्रभुर दत्त माला मननेर काले।
प्रसाद-कड़ार-सह बान्धि' लेन गले॥ १३४ ॥

१३४। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी श्रीकृष्ण के स्मरण के समय श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा प्रदत्त माला को श्रीजगन्नाथ जी के प्रसाद-कड़ार (चन्दन) आदि के साथ बाँधकर गले में धारण कर लेते थे।

अनुभाष्य

१३४। मननेर काले,—स्मरण के समय।

त्रयोदश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

रघुनाथ का नैरन्तर्यमय कृष्णप्रेम—

महाप्रभुर कृपाय कृष्णप्रेम अनर्गल।
एइ त' कहिलुँ ताते चैतन्य-कृपाफल॥ १३५ ॥

१३५। प० अनु०—श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी में श्रीमन्महाप्रभु की कृपा से निरन्तर कृष्णप्रेम उमड़ता था। इस प्रकार मैंने श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी के प्रति श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा के फल के विषय में वर्णन किया है।

इस परिच्छेद में वर्णित विषयों की संक्षेप में पुनरुक्ति—

जगदानन्देर कहिलुँ वृन्दावन-गमन।
तार मध्ये देवदासीर गान-श्रवण॥ १३६ ॥
महाप्रभुर रघुनाथे कृपा-महाफल।
एक परिच्छेदे तिन कथा कहिलुँ सकल॥ १३७ ॥

१३६-१३७। प० अनु०—मैंने इस परिच्छेद में श्रीजगदानन्द पण्डित के वृन्दावन जाने के विषय में, बीच में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा एक देवदासी के गान को श्रवण करने के प्रसङ्ग तथा श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी पर श्रीमन्महाप्रभु की कृपा के महाफल का वर्णन किया। इस प्रकार मैंने इस एक परिच्छेद में तीन प्रसङ्गों का वर्णन किया है।

गौर और गौरभक्तकथा के श्रवण से गौर की कृपा से कृष्ण प्रेम का उदय—

जे एइ सकल कथा शुने श्रद्धा करि'।
ताँरे कृष्णप्रेमधन देन गौरहरि॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०—जो कोई भी व्यक्ति इन समस्त कथाओं का श्रद्धापूर्वक श्रवण करता है उसे श्रीगौरहरि कृष्णप्रेम रूपी धन प्रदान करते हैं।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १३९ ॥

१३९। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिसकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्य खण्डे जगदानन्द-वृन्दावन-गमनं नाम त्रयोदशः परिच्छेदः ।

❋❋❋

चतुर्दश परिच्छेद

कथासार—कृष्ण-विरह में महाप्रभु का अधिरूढ़-दिव्योन्माद में किया गया प्रलाप वर्णित हो रहा है। जिस समय महाप्रभु गरुड़-स्तम्भ के निकट खड़े होकर जगन्नाथ का दर्शन कर रहे थे, कोई एक वृद्धा उड़िया स्त्री उनके कन्धे पर पैर रखकर अत्यधिक आर्त्ति के साथ जगन्नाथ को देखने लगी, गोविन्द उसे मना करने का प्रयास करने लगे। महाप्रभु उस स्त्री की आर्त्ति की प्रशंसा करके महाप्रेम [अर्थात् प्रेम का एक विशेष विकार] प्रकाशित करने लगे। श्रीमहाप्रभु को प्रेममय अवस्था के समय कृष्ण का दर्शन हो रहा था, किन्तु इस स्त्री के द्वारा ऐसा करने पर महाप्रभु बाह्यदशा में आ जाने के कारण कृष्ण को नहीं देखकर जगन्नाथ, बलदेव और सुभद्रा को देखने लगे। स्वप्न में प्राप्त कृष्ण दर्शन को खो देने पर प्रभु में राग का उदय हुआ; उसके कारण उन्होंने स्वयं को योगी की उपमा दी; और उस योगी के भाव में किस प्रकार उनका वृन्दावन वास हो रहा है, उसका वर्णन किया। प्रसिद्ध दस दशाएँ समय-समय पर महाप्रभु में उपस्थित होने लगी। एकदिन प्रभु तीन दरवाजे बन्द करके रात्रि में भीतर के प्रकोष्ठ में सो रहे थे, कुछ समय के बाद गोविन्द और स्वरूप ने देखा,—दरवाजे सब बन्द हैं, किन्तु प्रभु अदृश्य हो गये हैं! बाद में महाप्रभु स्वरूपादि भक्तों को सिंहद्वार के उत्तर में अस्थियों के जोड़ खुल जाने वाली अत्यधिक दीर्घ आकार तथा अचेतन अवस्था में मिले। कृष्णनाम करते-करते प्रभु के चेतन होने पर भक्त उन्हें पुनः घर पर ले गये। अन्य किसी समय चटक पर्वत में गोवर्धन के भ्रमवशतः अत्यधिक तेज गति से जाते-जाते स्तम्भित होकर कदम्ब की भाँति महाप्रभु के रोमों के प्रकाशित होने इत्यादि की महाभाव-युक्त एक दशा दिखलायी दी; तब भक्त-गण हरिनाम-कीर्त्तन करके उन्हें शीतल करके घर ले आये। (अः प्रः भाः)

प्रभु के विप्रलम्भ रस में अधिरूढ़- महाभाव-वशतः दिव्योन्माद (उद्घूर्णा और चित्रजल्पादि) का वर्णन—

कृष्ण-विच्छेदविभ्रान्त्या मनसा वपुषा धिया।
यद्यद्व्यधत्त गौराङ्गस्तल्लेशः कथ्यतेऽधुना॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। श्रीगौराङ्गचन्द्र ने कृष्ण-विच्छेद-विभ्रम वशतः मन, बुद्धि और शरीर के द्वारा जो-जो कार्य किये थे, अब मैं उनमें से कुछ का वर्णन कर रहा हूँ।

अनुभाष्य

१। गौराङ्गः कृष्णविच्छेदविभ्रान्त्या (कृष्णस्य विच्छेदेन विरहेण या विभ्रान्तिः भ्रममयी चेष्टा तया सङ्कल्पविकल्पात्मकेन) मनसा वपुषा (देहेन) धिया (निश्चयात्मिकया बुद्धया) यत् यत् (अनुष्ठानं) व्यधत्त (चेष्टादिकं चकार), अधुना (साम्प्रतं) तल्लेशः (यत् किञ्चित्) कथ्यते (उच्यते)।

जय जय श्रीचैतन्य स्वयं भगवान्।
जय जय गौरचन्द्र भक्तगण-प्राण॥ २ ॥

२। प० अनु०—स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। भक्तों के प्राण-स्वरूप श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो।

जय जय नित्यानन्द चैतन्य-जीवन।
जयाद्वैताचार्य जय गौरप्रियतम॥ ३ ॥

३। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु के जीवन- स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो, जय हो। श्रीगौरहरि के प्रियतम श्रीअद्वैताचार्य की जय हो, जय हो।

चैतन्यचरित को वर्णन करने के लिये गौरभक्तों के निकट कृपा की याचना—

जय स्वरूप, श्रीवासादि प्रभुभक्तगण।
शक्ति देह',—करि जेन चैतन्य वर्णन॥ ४ ॥

४। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीवास आदि श्रीमन्महाप्रभु के भक्तों की जय हो। आप सभी मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं श्रीचैतन्य महाप्रभु के विषय में वर्णन कर सकुँ।

गौरकृपा के बिना महाविद्वान् व्यक्ति के लिये भी प्रभु के अप्राकृत दिव्योन्माद को समझने में असमर्थता—

प्रभुर विरहोन्माद-भाव—गम्भीर।
बुझिते ना पारे केह, यद्यपि हय 'धीर'॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का विरह-उन्माद रूपी भाव अत्यन्त गम्भीर है, लौकिक दृष्टि से युक्त धीर-स्थिर व्यक्तियों में से भी कोई उसे नहीं समझ सकता।

अनुभाष्य

५।श्रीमहाप्रभु के कृष्ण-विरह से उत्पन्न अप्राकृत अलौकिक गम्भीर उन्माद-भाव को बुद्धिमान् व्यक्ति अपने-अपने अक्षजज्ञान के द्वारा नहीं समझ पायेंगे। वर्त्तमान समय में नये भक्तयाभिमानियों में भक्तिसिद्धान्त-विरुद्ध रङ्गीण (ढ़ोंगी) 'नदीया-नागरी' का भाव और विष्णुप्रिया-देवी की अभिनव कल्पित उपासना उनके गौर-लीला में प्रवेश के अभाव को ही प्रकाशित करती है।

प्रभु की कृपा के बल से प्रभु की अप्राकृत लीला की उपलब्धि—

बुझिते ना पारि जाहा, वर्णिते के पारे?
सेइ बुझे, वर्णे, चैतन्य शक्ति देन जाँरे॥ ६ ॥

६। प० अनु०—जिसे कोई समझ ही नहीं सकता, तो फिर उसका कौन वर्णन कर सकता है? श्रीचैतन्य महाप्रभु जिन्हें शक्ति प्रदान करते हैं, केवल वही उसे समझ भी सकते हैं तथा वर्णन भी कर सकते हैं।

स्वरूप और रघुनाथ—इन दो प्रभुओं का कड़चा (डायरी) ही गौरलीला को वर्णित करने का मूल-ग्रन्थ—

स्वरूप-गोसाञि आर रघुनाथ-दास।
एइ दुइर कड़चाते ए-लीला प्रकाश॥ ७ ॥

७। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी और श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी—इन दोनों के कड़चे में ही श्रीमन्महाप्रभु की विरह-उन्माद रूपी समस्त गम्भीर लीलाओं का प्रकाश हुआ है।

अनुभाष्य

७।श्रीदामोदर-स्वरूप और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी का कड़चा अर्थात् निदर्शन (प्रमाण)- ज्ञापिका टिप्पणी समूह में ही महाप्रभु की इन गम्भीर लीलाओं के उद्देश्य सूचित हुए हैं। जो इन दो गौर-पार्षदों के श्रीचरणों का परित्याग करके अपनी-अपनी इन्द्रियों के सुख की लालसा से मायामय संसार में, गौरभक्ति का नाम लेकर मनोधर्म के द्वारा चालित होकर 'रङ्ग-बेरङ्ग' [जब जैसी इच्छा हो, वैसे वेष को धारण करने वाले ढ़ोंगी] की भाँति घूमते रहते हैं, वे श्रीमहाप्रभु की लीला को समझने में असमर्थ होकर गौर-सेवा से विमुख होते हैं।

स्वरूप और रघुनाथ—दोनों प्रभुओं के प्रमाणिक होने का कारण—

सेकाले ए दुइ रहेन महाप्रभुर पाशे।
आर सब कड़चा-कर्त्ता रहेन दूरदेशे॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की विरह-उन्माद रूपी दशा के समय श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी ही उनके साथ रहते थे, अन्य सभी कड़चा लिखने वाले भक्त अन्यान्य दूर स्थानों पर रहते थे।

अनुभाष्य

८। इस पद्य के द्वारा जाना जाता है, श्रीरघुनाथ एवं अन्यान्य अनेक भक्तों ने महाप्रभु की अन्तिम दिव्योन्माद लीला के सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएँ अपने-अपने द्वारा रचित कड़चा-ग्रन्थों में लिखकर रखी थी; उसके द्वारा जगत् का परम उपकार साधित होता। किन्तु दु:ख का विषय यह है कि वे सब कड़चे आज तक भी लोगों के नेत्रों के अगोचर रहकर जीवों के दुर्भाग्य का ही परिचय प्रदान कर रहे हैं।

क्षणे क्षणे अनुभवि' एइ दुइ जन।
संक्षेपे बाहुल्ये करेन कड़चा-ग्रन्थन॥ ९ ॥

९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा विरह-उन्माद की दशा में की गयी क्षण-क्षण की लीलाओं का अनुभव करके श्रीस्वरूप दामोदर उनका संक्षेप में तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी उनका विस्तृत रूप में वर्णन करके कड़चे को लिखते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

९। संक्षेपे बाहुल्ये,—स्वरूप-गोस्वामी ने संक्षेप में एवं रघुनाथ दास गोस्वामी ने विस्तृत रूप से कड़चे की रचना की है।

अनुभाष्य

९। इन दो गोस्वामियों ने श्रीमन्महाप्रभु की समस्त लीलाओं को सदैव अनुभव करके उनकी थोड़ी-बहुत कड़चे के आकार में रचना की है, परन्तु यथारीति ग्रन्थ की रचना नहीं की।

स्वरूप—'सूत्रकर्त्ता', रघुनाथ—'वृत्तिकार'।
तार बाहुल्य वर्णि—पाँजि-टीका-व्यवहार॥ १० ॥

१०। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर श्रीमन्महाप्रभु की लीलाओं की सूत्र के रूप में रचना करने वाले तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु द्वारा की गयी लीलाओं की वृत्ति की रचना करने वाले अर्थात् श्लोकों के माध्यम से विवरण को संक्षिप्त रूप से संरक्षित करने वाले थे। मैं श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी द्वारा लिखित कड़चों के भावों का ही कुछ विस्तार करके इस ग्रन्थ को उन्हीं के कड़चों की प्रस्तावना-टीका के रूप में लिख रहा हूँ।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०। स्वरूप गोस्वामी ने सूत्र एवं रघुनाथ ने उसकी वृत्ति की रचना की है; मैं उन दोनों के द्वारा वर्णित विषय-वस्तु को ही थोड़ा सा विस्तृत करके पाँजि टीका (प्रस्तावना) की भाँति लिख रहा हूँ। 'पाँजि टीका' अथवा पञ्जिटीका का अर्थ यही है कि वृत्तिकार श्रील रघुनाथ के मूल आकर-ग्रन्थ के विचारों को रुई की भाँति पीटकर कुछ वर्धित [जैसे प्रतीत होने वाले रूप में] करके वर्णन किया गया है।

अनुभाष्य

१०। सूत्र,—''स्वल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्। अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदु:॥'' [अर्थात् सूत्र—बहुत कम अक्षरों से युक्त, सन्देह रहित, सारवान्, सर्वतोगामी, सफल एवं निर्दोष वचनों को ही पण्डितगण 'सूत्र' कहते हैं।] वृत्ति,—वृत्ति का अर्थ कारिका है तथा; ''कारिका यातना- वृत्त्यो:'' इत्यमर: ; [अर्थात् अमरकोष में 'कारिका' का अर्थ नरक-यातना एवं श्लोक कहा गया है।] तट्टीकाय-''संक्षेपेण-श्लोकैर्विवरणं वृत्ति:॥'' [उसकी टीका में कहा गया है,— संक्षेप में श्लोकों के माध्यम से विवरण ही 'वृत्ति' है।]

अप्राकृत श्रद्धा के साथ अप्राकृत विप्रलम्भ भाव के श्रवण, उसके अनुसरण से ही प्रेम की प्राप्ति—

ताते विश्वास करि' शुन भावेर वर्णन।
हइबे भावेर ज्ञान, पाइबा प्रेमधन॥ ११ ॥

११। प० अनु०—अतएव आप सभी विश्वासपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु के विरह-उन्माद रूपी भावों के वर्णन को श्रवण करो। इससे आपको विरह-उन्माद रूपी भाव का ज्ञान होगा तथा आप प्रेम रूपी धन को प्राप्त करेंगे।

अन्तर दशा में प्रभु के हृदय में कृष्ण- विरहणी राधा आदि गोपियों के भावों का उदय, अन्तिम सात परिच्छेदों में ही 'गौरनागरवाद' का खण्डन—

कृष्ण मथुराय गेले, गोपीर जे-दशा हैल।
कृष्ण-विच्छेदे प्रभुर से-दशा उपजिल॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—कृष्ण के मथुरा चले जाने पर, गोपियों की जो सुदीर्घ विप्रलम्भमयी दशा हुई थी, श्रीकृष्ण के विरह में श्रीमन्महाप्रभु की भी वैसी दशा उत्पन्न हुई।

अनुभाष्य

१२। जे दशा हइल,—सुदीर्घ विप्रलम्भ।

उद्धव-दर्शने जैछे राधार विलाप।
क्रमे क्रमे हैल प्रभुर उन्माद-विलाप॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—उद्धव को व्रज में आये देखकर जैसे श्रीराधिका ने विलाप किया था, श्रीमन्महाप्रभु भी क्रमशः उसी प्रकार का उन्माद-विलाप इत्यादि करने लगे।

अनुभाष्य

१३। श्रीराधार विलाप,—भाः भ्रमरगीता का १०.४७.१२-२१ वाँ श्लोक द्रष्टव्य।

कृष्ण-विरहिणी श्रीराधा के भाव में ही विभावित प्रभु, अतएव उनमें कृष्ण से सम्भोग की आङ्काक्षा-वृत्ति का अभाव—

राधिकार भावे प्रभुर सदा 'अभिमान'।
सेइ भावे आपनाके हय 'राधा'-ज्ञान॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु सदैव श्रीराधिका के भाव में ही विभावित रहते, इसलिए उनमें श्रीमती राधिका के भाव का ही अप्राकृत अभिमान था, वे स्वयं को श्रीराधा ही समझते थे।

अनुभाष्य

१४। अभिमान—(उः नीः)—''अभिमानो निज-प्रेमोत्कर्षाख्यानं तु भङ्गितः।''[अर्थात् भङ्गिमापूर्वक अपने प्रेम के उत्कर्ष का विख्यापन ही 'अभिमान' कहलाता है—(उः नीः ९.२७)।] ''सन्तु रम्याणि भूरीणि प्रार्थ्यं स्यादिदमेव सः। इति यो निर्णयो धीरैरभिमानः स उच्यते॥'' [अर्थात् बहुत सी मनोरम वस्तुओं को रहने दो, किन्तु यही मेरा प्रार्थनीय है-ऐसा जो निर्णय होता है, उस को ही पण्डितगण 'अभिमान' कहते हैं—(उः नीः १४.१९)।]

सदा अभिमान,—सदैव अप्राकृत सेवकाभिमान। यद्यपि श्रीगौरसुन्दर—स्वयं कृष्ण हैं, तथापि श्रीमती राधिका-सम्मिलित तनु होने के कारण सदैव श्रीमती के भाव में अभिन्न रूप से निमग्न थे। सम्भोगमय कृष्ण के भाव में अवस्थित होने से उन्हें अपने उद्देश्य की सिद्धि में बाधा होती है। वर्तमान समय में गौर-विद्वेषी अवैष्णव विवर्त्तबुद्धिवशतः उनके द्वारा आचरित और प्रचारित भजन-प्रणाली के विचारों को ठीक उसके विपरीत समझकर, श्रीगौरसुन्दर को स्वकपोलकल्पित (मनगढ़न्त) 'प्राकृत नागर' बनाकर, स्वयं को 'रङ्गेर नदीयानागरी' कहकर कृष्णभक्ति से विच्युत हो रहे हैं। वर्तमान समय में थियसफिस्ट'-सम्प्रदाय के कुछ व्यक्ति ऐसा मानते हैं कि श्रीगौरसुन्दर के द्वारा जीवों के मङ्गल के लिये 'विप्रलम्भ साधन को ही सिद्धि का एकमात्र पथ' कहकर प्रदर्शित करने पर भी, क्योंकि वे स्वयं भगवान् हैं, इसलिए जीवों के लिये दुर्लभ हैं, अतएव जीवमात्र में से जिसकी जो इच्छा है, उन्हें उसी के अनुरूप उपादान से बनाकर तथा सजाकर इन्द्रियतर्पण- परायण अपने-अपने मनःकल्पित उपादान अर्थात् जिस किसी भी प्रकार के उपाय से भजन कर सकते हैं; इसी का निषेध करते हुए गौरसुन्दर ने अप्राकृत-विप्रलम्भ- भाव में कृष्णसेवा की परम चमत्कारिता को प्रदर्शित करके जगत् का मङ्गल विधान किया है।

प्रभु का अधिरूढ़-महाभाव में दिव्योन्माद—

दिव्योन्मादे ऐछे हय, कि इहा विस्मय?
अधिरूढ़-भावे दिव्योन्माद-प्रलाप हय॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—दिव्योन्माद अवस्था में ऐसा ही होता है, इसमें आश्चर्य की क्या बात है? अधिरूढ़ भाव

में दिव्योन्माद-प्रलाप ही होता है।

दिव्योन्माद की संज्ञा और उसके प्रकार का भेद—(उज्ज्वल-नीलमणि स्थायिभाव-प्रकरण का १९० वाँ श्लोक)—

एतस्य मोहनाख्यस्य गतिं कामप्युपेयुषः।
भ्रमाभा कापि वैचित्री दिव्योन्माद इतीर्यते।
उद्घूर्णा-चित्रजल्पाद्यास्तदभेदा बहवो मताः॥ १६॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६। मोहनाख्य-भाव की किसी प्रकार की गति के क्रम में भ्रम की आभा होने से 'वैचित्री' नामक दिव्योन्माद का उदय होता है। उद्घूर्णा और चित्रजल्पादि—दिव्योन्माद के बहुत से भेदों में से हैं।

अनुभाष्य

१६। कामपि (अनिर्वचनीयां) गतिं (अवस्थां) उपेयुषः (प्राप्तस्य) सतः एतस्य मोहनाख्यस्य (मोहनं आख्या यस्य तस्य) भ्रमाभा (भ्रमस्य इव आभा यस्याः सा) कापि (अपूर्वा) वैचित्री (चमत्कारिता-प्रतिपादिका-वृत्तिविशेषरूपा) दिव्योन्मादः इति ईर्यते (कथ्यते); उद्घूर्णाचित्रजल्पाद्याः बहवः तद्भेदाः (दिव्योन्मादभेदाः) मताः (कथिताः)।

श्रीराधा की दासी के अभिमान में प्रभु के दिव्योन्माद (उद्घूर्णा) का दृष्टान्त—

एकदिन महाप्रभु कैराछेन शयन।
कृष्ण रासलीला करे,—देखिला स्वप्न॥ १७॥

१७। प० अनु०—एकदिन जब श्रीमन्महाप्रभु शयन कर रहे थे, उन्होंने स्वप्न में देखा कि श्रीकृष्ण रास-लीला कर रहे हैं।

त्रिभङ्ग-सुन्दर-देह, मुरलीवदन।
पीताम्बर, वनमाला, मदनमोहन॥ १८॥

१८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने देखा कि श्रीकृष्ण की त्रिभङ्ग-सुन्दर देह है, उनके मुख पर मुरली विद्यमान है, उन्होंने पीताम्बर धारण किया हुआ है, उनके गले में वनमाला है तथा वे मदन को भी मोहित करने वाले हैं।

मण्डलीबन्धे गोपीगण करेन नर्त्तन।
मध्ये राधा-सह नाचे व्रजेन्द्रनन्दन॥ १९॥

१९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने और देखा कि गोपियाँ मण्डलाकार में नृत्य कर रही हैं तथा बीच में श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीराधा के साथ नृत्य कर रहे हैं।

देखि' प्रभु सेइ रसे आविष्ट हैला।
'वृन्दावने कृष्ण पाइनु'—एइ ज्ञान कैला॥ २०॥

२०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु इस लीला को देखकर उस रस में आविष्ट हो गये, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ—''मुझे वृन्दावन में कृष्ण प्राप्त हुए हैं''।

अनुभाष्य

२०। रसे आविष्ट हैला,—उस रस में तन्मयता प्राप्त कर ली।

जागृत अवस्था (बाह्यदशा) में प्रभु का कृष्ण-विच्छेद में दुःख—

प्रभुर विलम्ब देखि' गोविन्द जागाइला।
जागिले 'स्वप्न'-ज्ञान हैल, प्रभु दुःखी हैला॥ २१॥

२१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को उठने में देरी करते देखकर श्रीगोविन्द ने उन्हें जगाया। श्रीमन्महाप्रभु जागने पर—'यह जानकर कि वे स्वप्न देख रहे थे'—बहुत दुःखी हुए।

अभ्यासवशतः नित्यकृत्य करना—

देहाभ्यासे नित्यकृत्य करि' समापन।
काले जाइ' कैला जगन्नाथ-दरशन॥ २२॥

२२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अभ्यासवशतः देह से सम्बन्धित नित्य कृत्यों को समाप्त करके समय पर जाकर भगवान् श्रीजगन्नाथ का दर्शन किया।

गरुड़ स्तम्भ से प्रभु के द्वारा जगन्नाथ-दर्शन—

जावत् काल दर्शन करेन गरुड़ेर पाछे।
प्रभुर आगे दर्शन करे लोक लाखे लाखे॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—जिस समय श्रीमन्महाप्रभु गरुड़ स्तम्भ के पीछे खड़े होकर भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन कर रहे थे, उस समय श्रीमन्महाप्रभु के आगे खड़े होकर लाखों-लाखों लोग भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन कर रहे थे।

एक उड़िया स्त्री के द्वारा अनजाने में प्रभु के कन्धे पर पैर रखकर जगन्नाथ-दर्शन—

उड़िया एक स्त्री भीड़े दर्शन ना पाञा।
गरुड़े चड़ि' देखे प्रभुर स्कन्धे पद दिया॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—एक उड़िया स्त्री भीड़ में भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन नहीं कर पाने के कारण श्रीमन्महाप्रभु के कन्धे पर पैर रखकर गरुड़ पर चढ़कर भगवान् के दर्शन करने लगी।

उस स्त्री को ऐसा करते देखकर गोविन्द के द्वारा उस स्त्री को मना करना—

देखिया गोविन्द व्यस्ते सेइ स्त्रीरे वर्जिला।
तारे नामाइते प्रभु गोविन्दे निषेधिला॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—यह देखकर श्रीगोविन्द ने तुरन्त उस स्त्री को ऐसा करने से मना किया। किन्तु श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द को उस स्त्री को नीचे उतारने हेतु मना किया।

अनुभाष्य

२५। गरुड़ के ऊपर चढ़ने से वैष्णव-अपराध एवं प्रभु के कन्धे के ऊपर पैर रखने से भगवान् के चरणों में अपराध-इस आशङ्का से अत्यधिक शीघ्रतापूर्वक गोविन्द ने उस स्त्री को निषेध किया अर्थात् उसे नीचे उतार दिया।

कृष्ण दर्शन के द्वारा कृष्ण के सेवा रूपी सुख का विधान करने हेतु स्त्री-मूर्ति को अप्राकृत कार्ष्ण (कृष्ण-भक्त) मानना—

''आदिवस्या' एइ स्त्रीरे ना कर वर्जन।
करुक यथेष्ठ जगन्नाथ दरशन॥'' २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द से कहा,—''निर्बोध! इस स्त्री को ऐसा करने से मत रोको, उसे जी भरकर भगवान् श्रीजगन्नाथ का दर्शन करने दो।''

अनुभाष्य

२६। आदिवस्या,—अन्त्य-लीला के दशम परिच्छेद की ११६ वीं संख्या द्रष्टव्य।

उस स्त्री का तत्क्षणात् नीचे उतरना और प्रभु को प्रणाम करके अपनी दैन्य रूपी उक्ति का ज्ञापन—

आस्ते-व्यस्ते सेइ नारी भूमेते नामिला।
महाप्रभुरे देखि' ताँर चरण वन्दिला॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—वह स्त्री अत्यधिक शीघ्रतापूर्वक नीचे उतरी तथा उसने श्रीमन्महाप्रभु को देखकर उनके चरणों की वन्दना की।

उसकी प्रेम भरी आर्त्ति को देखकर उसे गुरु मानकर प्रभु के द्वारा दैन्य-आर्त्ति पूर्वक स्तुति—

तार आर्त्ति देखे' प्रभु कहिते लागिला।
''एत आर्त्ति जगन्नाथ मोरे नाहि दिला!! २८ ॥

२८। प० अनु०—उस स्त्री की भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शनों के लिये आर्त्ति-आग्रह देखकर श्रीमन्महाप्रभु कहने लगे,—''मुझे भगवान् जगन्नाथ ने अपने दर्शन हेतु इतना आग्रह प्रदान नहीं किया!

अनुभाष्य

२८। आर्त्ति,—दर्शन का आग्रह; जगन्नाथ के दर्शन के आग्रह के कारण [उस स्त्री ने] हित-अहित की विवेचना से रहित होकर परम-वन्दनीय महाप्रभु के उत्तम अङ्ग पर अनजाने में चरण रखा था।

अक्षजज्ञान के द्वारा कृष्ण के सेवक को 'स्त्री-पुरुष आदि' रूपी बाह्य परिचय से देखने हेतु निषेध रूपी शिक्षा-प्रदान—

जगन्नाथे आविष्ट इहार तनु-मन-प्राणे।
मोर स्कन्धे पद दियाछे, ताहा नाहि जाने॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—''इस स्त्री के देह-मन तथा प्राण भगवान् श्रीजगन्नाथ में इतने आविष्ट हैं कि इसे यह तक भी पता नहीं चला कि इसने मेरे कन्धे पर अपने पैर रखे हैं।

अहो भाग्यवती एइ, वन्दि इहार पाय।
इहार प्रसादे ऐछे आर्त्ति आमार वा हय!! ३० ॥

३०। प० अनु०—''अहो! यह परम सौभाग्यशाली है, मैं इसके चरणों की वन्दना करता हूँ। मुझमें भी इसकी कृपा से ऐसा आग्रह उत्पन्न हो!

पूर्वे आमि जबे कैलुँ जगन्नाथ-दरशन।
जगन्नाथे देखि—साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—''मैंने मन्दिर में आकर जब पहले भगवान् जगन्नाथ के दर्शन किये थे, उस समय मुझे जगन्नाथ साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन दिखलायी दे रहे थे।

कृष्ण में आविष्ट-चित्त गोपीभावमय प्रभु के द्वारा सर्वत्र कृष्ण का दर्शन—

स्वप्नेर दर्शनावेशे तद्रूप हैल मन।
जाँहा ताँहा देखि सर्वत्र मुरली-वदन॥'' ३२ ॥

३२। प० अनु०—''स्वप्न में किये दर्शनों में आविष्ट होने के कारण मेरा मन वैसा ही हो गया, मुझे यहाँ-वहाँ सर्वत्र मुरली-वदन दिखलायी देने लगे।''

प्रभु का बाह्य दशा मे आना—

एबे यदि स्त्रीरे देखि' प्रभुर बाह्य हैल।
जगन्नाथ-सुभद्रा-बलरामेर स्वरूप देखिल॥ ३३॥

३३। प० अनु०—किन्तु अब उस स्त्री को देखकर श्रीमन्महाप्रभु बाह्यदशा में आ गये, अब उन्हें श्रीजगन्नाथ-सुभद्रा-बलराम के स्वरूप दिखलायी देने लगे।

कुरुक्षेत्र में वासुदेव के दर्शन से श्याम-विरहिणी गोपीभावमय प्रभु—

कुरुक्षेत्रे देखि' कृष्णे ऐछे हैल मन।
'काँहा कुरुक्षेत्रे आइलाङ, काँहा वृन्दावन??' ३४॥

३४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मन में आया कि मैं श्रीकृष्ण को कुरुक्षेत्र में देख रहा हूँ। ''कहाँ मैं कुरुक्षेत्र में आ गया हूँ और कहाँ मैं वृन्दावन में था?''

कृष्ण के सङ्ग से वञ्चित गोपी-भाव में कातर प्रभु—

प्राप्तरत्न हाराञा ऐछे व्यग्र हइला।
विषण्ण हञा प्रभु निज-वासा आइला॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ऐसे अस्थिर हो गये, मानो उन्हें प्राप्त हुआ रत्न खो गया हो। श्रीमन्महाप्रभु दु:खित हृदय से अपने वासस्थान पर आ गये।

कृष्ण के विरह मे प्रभु की महाभाव-चेष्टा—

भूमिर उपर बसि' निज-नखे भूमि लिखे।
अश्रु-गङ्गा नेत्रे बहे, किछुइ ना देखे॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु भूमि के ऊपर बैठकर अपने नाखूनों से भूमि पर कुछ लिखने लगे। उनके नेत्रों से अश्रु गङ्गा की धारा की भाँति बहने लगे, उन्हें कुछ भी दिखलायी नहीं दे रहा था।

''पाइनु वृन्दावननाथ, पुनः हाराइनु।
के मोर निलेक कृष्ण? काँहा मुइ आइनु??'' ३७॥

३७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु विलाप करते हुए कहने लगे,—''मैं श्रीवृन्दावन नाथ को प्राप्त करके पुन: उन्हें खो बैठा। मेरे कृष्ण को कौन ले गया है? मैं कहाँ आ गया हूँ?''

अर्धबाह्यदशा के लक्षण—

स्वप्नावेशे प्रेमे प्रभुर गर गर मन।
बाह्य हैलै हय, —जेन हाराइल धन॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—स्वप्न के आवेश में श्रीमन्महाप्रभु

का मन प्रेम में आकुल-व्याकुल (गद्‌गद) हो रहा था, परन्तु जैसे ही श्रीमन्महाप्रभु बाह्य दशा को प्राप्त हुए, तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ—मानो वे अपना समस्त धन खो बैठे हैं।

दिव्योन्माद में ग्रस्त प्रभु का अभ्यासवशत: नित्यकृत्य आदि करना—

उन्मत्तेर प्राय प्रभु करेन गान-नृत्य।
देहेर स्वभावे करेन स्नान-भोजन-कृत्य॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उन्मत्त व्यक्ति की भाँति गान गाने लगे तथा नृत्य करने लगे। उन्होंने देह के स्वभाव वशत: स्नान तथा भोजन आदि कृत्य किये।

रात्रि मे स्वरूप-रामानन्द के निकट विलाप—

रात्रि हैले स्वरूप-रामानन्दे लञा।
आपन मनेर भाव कहे उघाड़िया॥ ४० ॥

४०। प० अनु०—रात्रि होने पर श्रीमन्महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीरामानन्द राय को अपने मन के भाव उघाड़ (खोल) कर बतलाने लगे।

(गोस्वामिपादोक्त श्लोक)

प्राप्तप्रणष्टाच्युतवित्त आत्मा
ययौ विषादोज्झित-देहगेहः।
गृहीतकापालिकधर्मको मे
वृन्दावनं सेन्द्रियशिष्यवृन्दः॥ ४१ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

४१। मेरी आत्मा [अर्थात् मेरे शुद्ध मन] ने कृष्णरूपी सम्पत्ति को एकबार प्राप्त करके पुन: खो देने के कारण विषादवशत: [प्राय:] देह रूपी-गेह (घर) को परित्याग करके कापालिक-योगी का धर्म ग्रहण करके अपने इन्द्रियरूपी शिष्यों के साथ वृन्दावन में गमन किया था। इसमें 'उपमालङ्कार' द्रष्टव्य है।

अनुभाष्य

४१। प्राप्तप्रणष्टाच्युतवित्त: (आदौ प्राप्तं नयन-सरणीलब्धं, पश्चात् प्रणष्टं पुन: नष्टं अदृष्टं च, अच्युतवित्तं अच्युतरूपवित्तं येन स:) विषादोज्झितदेहगेह: (विषादेन कृष्णविरहज-क्लेशेन उज्झित: त्यक्तप्राय: देह एव गेह: येन स:) गृहीत- कापालिक-धर्मक: (गृहीत: अङ्गीकृत: कापालिकस्य योगिविशेषस्य धर्म: नैसर्गिक-स्वभावादिक: येन स:) मे (मम) आत्मा (शुद्धमन:) सेन्द्रियशिष्यवृन्द: (इन्द्रियाण्यैव शिष्यवृन्दानि तै: सह वर्त्तमान:) वृन्दावनं ययौ।

कृष्ण के सङ्ग से वञ्चित प्रभु का दिव्योन्माद (चित्रजल्प)—[यथा राग:]

प्राप्तरत्न हाराञा, तार गुण सङरिया,
महाप्रभु सन्तापे विह्वल।
राय-स्वरूपेर कण्ठ धरि', कहे —''हाहा हरि हरि'',
धैर्य गेल, हइला चपल॥ ४२ ॥

४२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कृष्ण रूपी रत्न को प्राप्त करके उसे खो दिया, इसी कारण, अब उन श्रीकृष्ण के गुणों को स्मरण करके श्रीमन्महाप्रभु सन्ताप से विह्वल हो उठे। तब श्रीमन्महाप्रभु श्रीराय रामानन्द और श्रीस्वरूप दामोदर के गले में अपनी भुजाओं को डालकर 'हा हरि! हा हरि!' कहते हुए चञ्चल हो उठे, धैर्य खो बैठे तथा कहने लगे—

कृष्ण के माधुर्य के आकर्षण की शक्ति के बल से दशम-दशा की प्राप्ति का वर्णन—

''शुन, बान्धव, कृष्णेर माधुरी।
जार लोभे मोर मन, छाड़ि' लोक-वेदधर्म,
योगी हञा हइल भिखारी॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—''हे बान्धव! श्रीकृष्ण की माधुरी के विषय में श्रवण करो, जिस माधुरी के लोभ से मेरा मन लोक तथा वेद-धर्म को छोड़कर योगी बनकर भिखारी हो गया है।

कृष्णलीला-मण्डल, शुद्ध शङ्ख-कुण्डल,
गड़ियाछे शुक कारिकर।

सेइ कुण्डल काणे परि', तृष्णा-लाउ-थाली धरि',
आशा-झुलि कान्धेर उपर॥ ४४ ॥

चिन्ता, मलिनाङ्गता और प्रलाप-दशा—
चिन्ता-कान्था उड़ि' गाय,
धूलि-विभूति-मलिन-काय,
'हा हा कृष्ण' प्रलाप-उत्तर।
उद्वेग द्वादश हाते, लोभेर झुलि निल माथे,
भिक्षाभावे क्षीण कलेवर॥ ४५ ॥

तानव-दशा—
व्यास, शुकादि योगिगण, कृष्ण आत्मा निरञ्जन,
व्रजे ताँर जत लीलागण।
भागवतादि शास्त्रगणे, करियाछे वर्णने,
सेइ तर्ज्जा पड़े अनुक्षण॥ ४६ ॥

उन्माद-दशा—
दशेन्द्रिये शिष्य करि', 'महा-बाउल' नाम धरि',
शिष्य लञा करिल गमन।
मोर देह स्व-सदन, विषय-भोग महाधन,
सब छाड़ि' गेला वृन्दावन॥ ४७ ॥
वृन्दावने प्रजागण, जत स्थावर-जङ्गम,
वृक्ष-लता गृहस्थ-आश्रमे।
तार घरे भिक्षाटन, फल-मूल-पत्राशन,
एइ वृत्ति करे शिष्यसने॥ ४८ ॥
कृष्ण-गुण, रूप, रस, गन्ध, शब्द, परश,
से-सुधा आस्वादे गोपीगण।
ता-सबार ग्रास-शेषे, आनि' पञ्चेन्द्रिय शिष्ये,
से भिक्षाय राखेन जीवन॥ ४९ ॥

जागर-दशा—
शून्यकुञ्जमण्डप-कोणे, योगाभ्यास कृष्णध्याने,
ताँहा रहे लञा शिष्यगण।
कृष्ण आत्मा निरञ्जन, साक्षात् देखिते मन,
ध्याने रात्रि करे जागरण॥ ५० ॥

व्याधि, मोह और मृत्यु (प्रलय)-दशा; चित्रजल्प—
मन कृष्णवियोगी, दुःखे मन हैल योगी,
से वियोगे दश दशा हय।
से दशाय व्याकुल हञा, मन गेल पलाञा,
शून्य मोर शरीर आलय॥ ५१ ॥

४४-५१। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

४३-५१। महाप्रभु ने कहा,—कृष्ण की माधुरी के प्रति लोभ करके वेदधर्म को परित्यागकर मेरा मन योगी बनकर भिखारी हो गया है। योगी जिस प्रकार शङ्ख-कुण्डल धारण करते हैं, उसी प्रकार मेरे मन रूपी योगी ने कृष्णलीला-मण्डल को शुद्ध शङ्ख-मण्डल के रूप में धारण किया है। सामान्य योगियों के शङ्खकुण्डल शङ्खारि (शङ्ख को बनाने वाले कारीगर) ही बनाते हैं, किन्तु मेरे मनरूपी योगी के कृष्ण-लीला-मण्डलरूप भागवत-कुण्डलों को साक्षात् बादरायण श्रीशुकरूपी कारिकर ने गठन किया है। सामान्य योगी जो-जो चाहता है, मेरे मनरूपी योगी ने वह सर्वस्व स्वीकार किया है। जिस प्रकार सामान्य योगी के पास लौकी से बने कमण्डलु और थाली (भिक्षा का पात्र) रहते हैं, उसी प्रकार मेरे मन रूपी योगी ने कृष्ण-तृष्णा-रूपी लौकी की थाली बनायी है,— 'कृष्ण को प्राप्त करूँगा',—इस आशा रूपी झोली को कन्धे के ऊपर झुला रखा है, —और 'किस उपाय से कृष्ण को प्राप्त करूँगा' इस चिन्तारूपी काँथे (कम्बल) को शरीर पर ओढ़ा हुआ है। जिस प्रकार सामान्य योगीगण पांशु (राख की)-विभूति धारण करते हैं, उसी प्रकार मेरा मनरूपी योगी धूलि की विभूति के द्वारा मलिन काय वाला हो गया है, प्रत्येक संवाद में 'हा हा कृष्ण' इस प्रकार के प्रलापमय वचनों से उत्तर देता है। जिस प्रकार सामान्य योगी द्वादश (बारह) वलय (कड़े) हाथ में पहनते हैं, उसी प्रकार मेरे मनरूपी योगी के हाथ में —अष्ट सात्त्विक विकार, मन का वेग, कम्पन, निश्वास, चपलता और चिन्ता,—यह द्वादश वलय शोभा पा रहे हैं;

[मेरे मन रूपी योगी ने] कृष्ण-माधुर्य के प्रति लोभ रूपी झोली को मस्तक पर बाँध रखा है; एवं उस पर भी भिक्षा प्राप्त नहीं कर पाने के कारण दुबला हो गया है। व्यास-शुक आदि जिन समस्त योगियों ने निर्मल आत्मा रूपी कृष्ण की समस्त व्रजलीलाओं का भागवत आदि शास्त्रों में वर्णन किया है, मेरा मन रूपी योगी उनके द्वारा रचित समस्त तरजाओं का निरन्तर पाठ करता रहता है। बाउल योगी जिस प्रकार दस-दस शिष्य बनाते हैं, उसी प्रकार मेरे मन रूपी योगी ने 'महाबाउल' नाम धारण करके दस इन्द्रियों को शिष्य बनाकर मेरे देहरूपी अपने घर में विषय भोग रूपी महाधन का परित्याग करके वृन्दावन गमन किया है।[मेरा मन रूपी योगी इन्द्रियों रूपी] शिष्यों सहित वृन्दावन में स्थावर-जङ्गम रूपी समस्त प्रजावर्ग एवं वृक्ष-लता आदि गृहस्थ-आश्रमियों के घर में भिक्षा माँगकर [उनके द्वारा प्रदत्त] फल-मूल-पत्र आदि के सेवन रूपी वृत्ति का आचरण कर रहा है। व्रजगोपियाँ श्रीकृष्ण के गुण, रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श—इन समस्त अमृत-वस्तुओं का सदैव आस्वादन करती हैं, उनके भोजन के अवशिष्ट को लाकर [मेरे मन रूपी योगी के] ज्ञान-इन्द्रियों रूपी पाँच शिष्य उस प्रसाद को खाकर जीवन की रक्षा करते हैं। सामान्य योगी जिस प्रकार एक कोने में बैठकर ध्यान करते हैं, उसी प्रकार मेरा मन रूपी योगी भी कृष्ण-रहित कुञ्ज मण्डप के कोने में अपने शिष्यों के साथ कृष्ण के ध्यान में योग का अभ्यास करता है। कृष्ण—जो निर्मल आत्मस्वरूप हैं; मेरा मन रूपी योगी उन्हें साक्षात् देखना चाहता है, उन्हें प्राप्त नहीं कर पाने के कारण ध्यान में रात्रि-जागरण करता है। मन कृष्ण-वियोगी बनकर अत्यधिक दु:खपूर्वक इस योगी की दशा को प्राप्त करके उसी कृष्ण-विरह की अवस्था में दशम दशा को प्राप्त करता है, उस दशा में अत्यन्त व्याकुल होकर मन अपने योगी बनने को विफल देखकर भाग गया है; मेरा शरीर शून्य हो गया है। इस शेष अलङ्कार के प्रयोग से प्रलयावस्था तक वर्णित हुआ।

अनुभाष्य

४५। पाठान्तरे,—'लोभेर झुलनी माथे' ; 'झुलनी' शब्द का अर्थ सिर को ढ़कने योग्य वस्त्र है।

४६। तर्ज्ज,—(अरबी भाषा में तर्जा) दो दलों के बीच सङ्गीत में एक-दूसरे के उत्तर का खण्डन; कवि-गान और झुमुर के समजातीय।

५१। कापालिकगण,—एक प्रकार के योगी; वे मनुष्य के कपाल अर्थात् मस्तक की खोपड़ी को लेकर विचरण करते हैं। उनके तान्त्रिक अनुष्ठानों के साथ सादृश्य रखकर यह अंश वर्णित हुआ है। कापालिक—अवैदिक और अस्पृश्य हैं, अतएव अवैष्णव हैं; उनके व्यवहार की ही उपमा मात्र को ग्रहण किया गया है।

कृष्ण के विच्छेद में प्रोषितभर्तृका गोपियों की दस दशाओं से युक्त कृष्ण-विरही प्रभु—

कृष्णेर वियोगे गोपीर दश दशा हय।
सेइ दश दशा हय प्रभुर उदय॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—जैसे श्रीकृष्ण के वियोग में गोपियों की दस दशाएँ उपस्थित होती हैं, उसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु में दसों दशाएँ उदित होती।

दस दशाओं के नाम—
(उज्ज्वलनीलमणि के शृङ्गारभेद प्रकरण का १६७ वाँ श्लोक)

चिन्तात्र जागरोद्वेगौ तानवं मलिनाङ्गता।
प्रलापो व्याधिरुन्मादो मोहो मृत्युर्दशा दश॥ ५३ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

५३। चिन्ता, जागरण, उद्वेग, तनुक्षीणता, मलिनाङ्गता, प्रलाप, व्याधि, उन्माद, मोह और मृत्यु,—ये दस दशाएँ हैं।

अनुभाष्य

५३। (अत्र प्रवासाख्ये विप्रलम्भे दश दशा: कथिता:)—चिन्ता (अभीष्टलाभोपायध्यानं), जागर: (निद्रा राहित्य:), उद्वेग: (मन: कम्प विशेष:), तानवं (कृशता), मलिनाङ्गता (अङ्गमालिन्यं), प्रलाप:

(असम्बद्धवचनं), व्याधिः, उन्मादः (विभ्रम- चेष्टा-सम्पन्नः) मोहः (चित्तविभ्रान्तिः) मृत्युः (स्पन्दनाभावः)।

उदाहरण-माला लिखी जा रही है; उनमें से—

(१) 'चिन्ता'—यथा हंसदूत में—''यदा यातो गोपीहृदयमदनो नन्दसदनान्मुकुन्दो गान्दिन्यास्तनय मनुरुन्धन मधुपुरीम्। तदामाङ्क्षीच्चिन्तासरिति घनघूर्णापरिचयैरगाधायां बाधामय-पयसि राधा विरहिणी॥''

अर्थात्,''अक्रूरेर अनुरोधे नन्दगृह हइते। गोपीहृदानन्द जबे गेल मथुराते॥ तबे विरहिणी राधा उद्घूर्णितमना। तीव्रपीड़ा-जलरूपा उत्कट भावना॥ निजरे विनाश-चिन्ता-व्याकुलता-फले। डुबिल अतलस्पर्श-चिन्तानदी-तले॥ 'आमार सन्धान लागि' प्रियतम कृष्ण। भाविकाले व्रजे आसि' हइया सतृष्ण॥ आमार मरण-कथा जबे लोकमुखे। शुनिबे, हृदये कभु ना पाइबे सुखे॥ दयितेर दुःख-भार विचार करिया। कभु मृत्यु-वाञ्छा नाहि करे मोर हिया॥'

[अर्थात् जबसे गोपियों के हृदय के आनन्द- स्वरूप (श्रीकृष्ण), अक्रूर के अनुरोध से नन्दगृह को छोड़कर मथुरा चले गए, तभी से विरहिणी राधा का चित्त महाभ्रान्ति (उद्घूर्णा)- ग्रस्त हो गया एवं स्वयं को ही विनष्ट करने के विचार से व्याकुल होकर वे (श्रीकृष्ण विरह की) तीव्र-पीड़ा स्वरूप जलयुक्त अगाध (अतल- स्पर्श) चिन्तानदी में निमग्न होकर, इस प्रकार चिन्ता करने लगी—भविष्य में, (मुझसे मिलने की) तृष्णा से युक्त मेरे प्रियतम कृष्ण मुझे ढूँढते हुए जब व्रज में आएँगे, तब व्रजवासियों के मुख से मेरी मृत्यु की बात को सुनकर उनका चित्त कदापि प्रसन्न नहीं होगा अर्थात् अत्यंत दुःखित होगा। अपने अत्यन्त प्रियतम के इस (भावी) दुःख रूपी भार का विचार करके ही मेरा चित्त कभी मृत्यु की कामना नहीं करता।]

(२) 'जागरः'—यथा पद्यावली में—''याः पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ताः सखि योषितः। अस्माकन्तु गते कृष्णे गता निद्रापि वैरिणी॥''

अर्थात्,''प्रियसखी विशाखाके राधा-ठाकुराणी। निजे भाग्यहीना जानि कहिलेन वाणी॥ प्रियतम-दरशन स्वपनेर काले। जे नारीर घटे, तार धन्य लिखे भाले॥ कृष्णेर गमन हले निद्रा-रूपा अरि। छाड़ियाछे मम सङ्ग साधितेछे वैरी॥''

[अर्थात् स्वयं को भाग्यहीन जान कर श्रीराधा-ठाकुराणी (अत्यन्त खेदपूर्वक) अपनी प्रियसखी श्रीविशाखा से कह रही हैं—''जो स्त्रियाँ अपने प्रियतम का स्वप्न में भी दर्शन प्राप्त करती हैं, वे धन्य हैं। श्रीकृष्ण के मथुरा जाने पर निद्रा भी मेरी वैरिणी स्वरूप हो गई है तथा मुझे त्याग कर वह (मेरे प्रति) शत्रुता का ही निर्वाह कर रही है।'']

(३) 'उद्वेगः',—यथा हंसदूत में—''मनो मे हा कष्टं ज्वलति किमहं हन्त करवै न पारं नावारं सुमुखि कलयाम्यस्य जलधेः। इयं वन्दे मूर्धना सपदि तमुपायं कथय मे, परामृश्ये यस्माद् धृति-कणिकयापि क्षणिकया॥''

अर्थात्, ''ललिताके कहे राधा,—सुमुखि ललिते। दहिछे हृदय मम, ना पारि बलिते॥ हाय कि करिबे, देखि,—जलधि अपार। नमि आमि तव पदे करह विचार॥ उपदेश दाओ मोरे—किबा आमि करि। क्षणकेरे तरे किछु धैर्य किसे धरि॥''

[अर्थात् (श्रीकृष्णविरह में परमोद्विग्न) श्रीराधिका, (उनको सान्त्वना देने वाली) श्रीललिता को (दीनता के साथ) कह रही हैं— ''हे सुमुखि ललिते! मेरा हृदय जल रहा है (तथा) मैं कुछ भी कह पाने में असमर्थ हूँ। हाय! मैं क्या करूँ? यह (विरह)-समुद्र तो असीम है। मैं तुम्हारे चरणों में नतमस्तक हूँ। तुम विचार करके मुझे उपदेश दो कि मैं क्या करूँ? जिससे कि क्षणभर के लिए ही मैं धैर्य धारण कर सकूँ।'']

(४) 'तानवं', यथा—''उदञ्चद्वक्त्राम्भोरुह- विकृति-रन्तःकलुषिता। सदाहाराभावग्लपितकुचकोका यदुपते। विशुष्यन्ति राधा तव विरहतापादनुदिनं निदाघे कुल्येव क्रशिम परिपाकं प्रथयति॥''

अर्थात्, ''उद्धव फिरिया जबे कृष्ण-सन्निधाने। राधिका-विशाखा-वार्त्ता कृष्ण तार स्थाने॥ जिज्ञासिल, तदुत्तरे उद्धव कहिल। मथुराय कृष्णचन्द्र साग्रहे शुनिल॥ यदुपते कि बलिब सेइ सब कथा। तोमार विरहे राधा पाय जे जे व्यथा॥ मलिन विवर्ण ताँर वदन-कमल। सुविषाद-दैन्ये ढाका अन्तरेर स्थल॥ आहार-अभावे वक्षश्च-कोरिका द्वय। ग्लानियुक्त देखियाछि, शुन रसमय॥ निदाघे सलिल जेन शुकाइया जाय। तोमार विरहतापे राधा क्षीणकाय॥''

[अर्थात् उद्धव जब व्रज से लौटकर मथुरा में कृष्ण के पास पहुँचे, तब कृष्ण ने उनसे श्रीराधिका, श्रीविशाखा (आदि) के विषय में जिज्ञासा की। उसका उत्तर देते हुए उद्धव इस प्रकार कहने लगे तथा श्रीकृष्ण आग्रहपूर्वक सुनने लगे— ''हे यदुपते! तुम्हारे विरह में श्रीराधा जो पीड़ा अनुभव कर रही हैं उसका मैं (तुम्हारे समक्ष) क्या वर्णन करूँ? उनका मुख-कमल मलिन एवं कान्तिरहित हो गया है तथा अन्त:करण अत्यधिक शोक से उत्पन्न दैन्य के कारण ढक गया है। हे रसमय! (रसिक कृष्ण!) और भी श्रवण करो! आहार के अभाव में उनके दोनों कुचरूप चक्रवाक ग्लानियुक्त हो रहे हैं। ग्रीष्मऋतु में जिस प्रकार नदी का जल सूख जाता है, तुम्हारे विरह में श्रीराधिका की काया उसी प्रकार क्षीण (प्राण-रहित) हो गई है।'']

(५) 'मलिनाङ्गता', यथा— ''हिमविसरवि-शीर्णाम्भोज तुल्याननश्री:, खरमरुदपरज्यद्बन्धु-जीवोपमौष्ठी। अघहर शरदर्कोत्तापितेन्दीवराक्षी तव विरहविपत्तिम्लापितासीद्विशाखा॥''

अर्थात्, ''उद्धव कहेन,—शुन, अघहर मम। खरतर-वायुभरे बन्धुतरु सम॥ विशाखार ओष्ठ शुष्क विरह-कातरा। हिमपुञ्जशीर्ण-पद्मतुल्य-बिम्बाधरा॥ विरह-विपत्ति-वशे विशाखा सुदीना। शारदीय-रवितप्त-कुमुदनयना॥''

[अर्थात् उद्धव ने कहा—''हे अघहर दु:ख- मोचन करने वाले! सुनो! (तुम्हारी विरह-वेदना से विशाखा का अङ्ग कैसा मलिन हो रहा है, मैं वह वर्णन कर रहा हूँ।) तुम्हारे विरह में व्याकुल श्रीविशाखा के होंठ प्रखरतर तापयुक्त वायु के स्पर्श से जले हुए बन्धूक-पुष्प के समान शुष्क हो गए हैं। उनकी मुखकान्ति हिम से क्षीण हुए पद्म पुष्प की भांति (निर्जीव) हो गई है। तुम्हारी विरह-वेदना के फलस्वरूप श्रीविशाखा की अवस्था अत्यन्त दयनीय हो गई है तथा उनके दोनों नयन भी शारदीय सूर्य के ताप से दग्ध कुमुद के समान (मलिन) हो गए हैं।]

(६) 'प्रलाप:',—यथा ललितमाधव में—''क्व नन्दकुलचन्द्रमा: क्व शिखिचन्द्रकालन्कृति:, क्व मन्द-मुरलीरव: क्व नु सुरेन्द्रनीलद्युति:। क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीवरक्षौषधिर्निधिर्मम, सुहृत्तम: क्व तव हन्त हा धिग्विधि:॥''

अर्थात्, ''प्रोषितभर्तृका राधा विलाप-कातर। बले—'सखि, कोथा नन्दकुलशशधर॥ शिखिचन्द्र- अलङ्कार कोथा गेल, बल। गम्भीरमुरली-रवकारी कोथा गेल॥ इन्द्रनीलमणिद्युति पुरुष उत्तम। रासरसताण्डवी वा तव सुहृत्तम॥ मम प्राणरक्षौषधि निधि कोथा, बल। धिग् विधि, भाग्ये लिखेछिले एइ फल??''

[अर्थात् विरहोन्माद अवस्था प्राप्त (प्रोषितभर्तृका) श्रीराधा विलाप करती हुई (श्रीललिता से) कह रही हैं—''हे सखि! वे नन्दकुल के चन्द्रमा कहाँ हैं? बताओ, वे शिखिचन्द्र (मयूर-पुच्छ) के द्वारा अलंकृत कृष्ण कहाँ चले गए हैं? वे मुरली की गम्भीर ध्वनि करने वाले कृष्ण कहाँ गए? इन्द्रनीलमणि की कान्ति वाले उत्तम पुरुष कहाँ हैं? रासरूपी रस (आनंद) में नृत्य करने वाले, तुम्हारे सुहृत्तम (परम मित्र) वे कृष्ण कहाँ हैं? मेरे जीवन-रक्षा की औषधि स्वरूप वह निधि कहाँ है, कृपया बताओ। हाय! विधाता को धिक्कार है! क्या मेरे भाग्य में यही फल लिखा था?'']

(७) 'व्याधि:',—यथा ललितमाधव में— ''उत्तापी पुटपाकतोऽपि गरलग्रामादपि क्षोभणो दम्भोलेरपि दु:सह: कटुरलं हन्मग्नशूल्यादपि। तीव्र: प्रौढ़विसूचिकानि-

चयतोऽप्युच्चैर्ममायं बली मर्माण्यद्य भिनत्ति गोकुल-पतेर्विश्लेषजन्मा ज्वरः॥''

अर्थात्, ''विरहिणी राधा कहे,—शुन गो ललिते। कृष्णेर विरह-ज्वर ना पारि वर्णिते॥ मृण्मय सम्पुटे तप्त जेरूप कनक। गरलादि हइतेओ क्षोभेर जनक॥ वज्र हइते सुदुःसह विद्ध शल्य। जेन यन्त्रणाय तीव्रविसूचिकातुल्य॥ सजनि, आमार मर्म भेदितेछे जेइ। अतिशय पराक्रमबले बली सेइ॥''

[अर्थात् विरह-ग्रस्त श्रीराधा कह रही हैं-'' हे ललिते! सुनो! कृष्ण के विरह-रूपी ज्वर का मैं वर्णन नहीं कर सकती। यह मृण्मय पात्रों में स्थित (गलाये गये) तप्त स्वर्ण के समान ही अत्यन्त तापयुक्त है। विष आदि से भी कहीं अधिक दग्ध करने वाला है। वज्र से भी अत्यधिक दुःसह है एवं (हृदय में) चुभे हुए शूल से भी अधिक कष्टप्रद है। इसकी यन्त्रणा तीव्र विसूचिकादि रोगसमूह से भी अधिक तीक्ष्ण है। हे सजनि! अत्यन्त पराक्रमशाली हो कर अब वह मेरे हृदय का भी भेदन कर रहा है।'']

(८) 'उन्मादः,' यथा—'भ्रमति भवनगर्भे निर्निमित्तं हसन्ती प्रथयति तव वार्त्तां चेतनाचेतनेषु। लुठति च भुवि राधा कम्पिताङ्गी मुरारे विषमविरहखेदोद्गारि-विभ्रान्तचित्ता॥''

अर्थात्, उद्धव कहेन,—''तव विरह-कातरा। हे मुरारे, राधा अकारणे हास्यपरा॥ गृह मध्ये भ्राम्यमाणा प्रश्न जारे तारे। सचेतन-अचेतने किछु ना विचारे॥ विषम-विरह-खेदे विधुरा राधिका। विभ्रान्तेर वशे एबे लुटिछे मृत्तिका॥''

[अर्थात् उद्धव (श्रीकृष्ण से) कह रहे हैं —''हे मुरारि! तुम्हारे विरह में व्याकुल श्रीराधा कभी अकारण ही हँसने लगती हैं, तो कभी घर में घूमते हुए चेतन-अचेतन वस्तुओं से ही (तुम्हारे विषय में), बिना कोई विचार किए ही, प्रश्न करने लगती हैं। विषम-विरह-दुःख से पीड़ित श्रीराधिका विभ्रान्तवश कभी-कभी मिट्टी में भी लोटने लगती हैं।'']

(९) 'मोहः', यथा—''निरुन्धे दैन्याब्धिं हरति गुरुचिन्ता-परिभवं विलुम्पत्युन्मादं स्थगयति बलाद्बाष्पलहरीम्। इदानीं कंसारे कुवलयदृशः केवलमिदं विधत्ते साचिव्यं तव विरहमूर्च्छा सहचरी॥''

अर्थात्, ''ललिता कृष्णेर स्थाने लिखिल पत्रिका। तव सुविच्छेदे मूर्च्छा लभिया राधिका॥ हे कंसारे, साचिव्येर विधाता हइया। दैन्यसिन्धु हरे, चित्त-विकार शमिया॥ बले वाष्प-तरङ्गेर स्तम्भन करिया। राधा आछेन तव गुरुचिन्ता लइया॥ नारीवधरूप महानिधि आशा करि। श्रीराधा-विषये तुमि चिन्ता परिहरि'॥ आजि वा आगामी कल्य लभिबे सन्देश। सुखे अवस्थान कर, आनन्दे विशेष॥''

[अर्थात् श्रीललिता ने कृष्ण को पत्र लिखा— ''हे कंसारे! श्रीराधिका तुम्हारे विरह-दुःख में मूर्च्छित हो गई हैं। उनकी यह अचेतन अवस्था ही उनके लिए विधाता स्वरूप होकर दैन्य-भाव रूपी समद्र को उनसे दूर रख रही है तथा चित्त के विकारों का शमन कर रही है। वह बलपूर्वक वाष्पलहरी (अर्थात् रोदन) को भी स्तम्भित कर रही है। श्रीराधा तुम्हारी अत्यधिक गम्भीर चिन्ता में नारीवध रूपी महानिधि की आशा कर रही हैं। अब तुम राधा के विषय में अपनी समस्त चिन्ताओं का त्याग कर सकते हो। आज अथवा आगामी कल में ही तुम्हें (उनकी मृत्यु का) सन्देश प्राप्त हो जाएगा। तुम मथुरा में विशेष आनन्द-पूर्वक सुख से अवस्थान करो।'']

(१०) 'मृत्युः',—यथा हंसदूत में —''अये रास-क्रीड़ारसिक मम संख्यं नवनवा, पुरा बद्धा येन प्रणयलहरी हन्त गहना। स चेन्मुक्तापेक्षस्त्वमसि धिगिमां तुलशकलं, यदेतस्या नासानिहितमिदमद्यापि चलति॥''

अर्थात्, ''मथुरा-प्रवासी कृष्णे तिरस्कार करि'। हंसद्वारे कहे देवी ललिता-सुन्दरी॥ रासक्रीड़ा रसमय, रसेर कारणे। बेंधेछिले राधिकारे प्रणयबन्धने॥ मम प्रिय-सखी-प्रति निरपेक्ष केन। राधिका एसब कथा सदा स्मरे जेन॥ नासारन्ध्रे तुला-खण्ड परीक्षा करिब। श्वास बहिलेइ धिक् ताहाके जानिब॥''

[अर्थात् (व्रज से) मथुरा जाकर वास करने वाले श्रीकृष्ण का तिरस्कार करते हुए श्रीललिता सुन्दरी हंस

के द्वारा उन्हें सन्देश भेज रही हैं—''हे रासक्रीड़ा रसिक! तुमने अपने आनन्द के लिये राधिका को अपने प्रणय-बंधन में बांधा था। (अब) तुम मेरी प्रिय सखी के प्रति इतने निरपेक्ष (निष्ठुर) क्यों हो गए हो? क्या इसलिए कि राधिका इन समस्त बातों को सदैव स्मरण करे। मैं उनके नासिका-रन्ध्रों के निकट रूई रखकर परीक्षा करूँगी कि उनका श्वास चल रहा है कि नहीं? और श्वास के चलने पर मैं उनको ही धिक्कार प्रदान करूँगी।'']

एइ दश-दशाय प्रभु व्याकुल रात्रि-दिने।
कभु कोन दशा उठे, स्थिर नहे मने॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु इन दस दशाओं में रात-दिन व्याकुल रहते थे, उनका मन स्थिर न रहता, कभी एक दशा होती तो कभी कोई दूसरी दशा।

राय के द्वारा प्रभु के विप्रलम्भ-भाव के उपयोगी-कालोचित श्लोक का पाठ—

एत कहि' महाप्रभु मौन हइला।
रामानन्द-राय श्लोक पड़िते लागिला॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु इतना (पयार संख्या ४३-५१ में व्यक्त अपने भावों को) कहकर मौन हो गये। श्रीरामानन्द राय विप्रलम्भ-भावोपयोगी श्लोक का उच्चारण करने लगे।

स्वरूप के द्वारा उनके भाव के अनुसार गान के द्वारा प्रभु की चेतनता का सम्पादन—

स्वरूप-गोसाञि करे कृष्णलीला-गान।
दुइ जने किछु कैला प्रभुर बाह्य-ज्ञान॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी कृष्णलीला का गान करने लगे, श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय—दोनों के इस प्रकार कुछ कहने पर श्रीमन्महाप्रभु को बाह्य ज्ञान हुआ।

घर में प्रभु का सोना—

एइमत अर्द्धरात्रि कैला निर्यापण।
भितर-प्रकोष्ठे प्रभुरे कराइला शयन॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने इस प्रकार अर्धरात्रि व्यतीत की, बाद में श्रीस्वरूप दामोदर एवं श्रीरामानन्द राय ने श्रीमन्महाप्रभु को भीतर के प्रकोष्ठ में शयन करा दिया।

सभी का निर्दिष्ट स्थान पर शयन—

रामानन्द-राय तबे गेला निज घरे।
स्वरूप-गोविन्द दुँहे शुइलेन द्वारे॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को शयन कराने के पश्चात् श्रीरामानन्द राय अपने वासस्थान पर चले गये तथा श्रीस्वरूप दामोदर एवं श्रीगोविन्द श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान के द्वार पर ही सो गये।

प्रभु के द्वारा सम्पूर्ण रात्रि जागकर कृष्णनाम का कीर्त्तन—

सब रात्रि महाप्रभु करे जागरण।
उच्च करि' कहे कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—लेटने पर भी श्रीमन्महाप्रभु सारी रात जागते रहे तथा उच्च स्वर से कृष्ण-नाम सङ्कीर्त्तन करते रहे।

कीर्त्तन और शब्द के अभाव में प्रभु को सभी के द्वारा ढूँढ़ना और प्रभु का नहीं मिलना—

शब्द ना पाञा स्वरूप कपाट कैला दूरे।
तिनद्वार देओया आछे, प्रभु नाहि घरे!! ६० ॥

६०। प० अनु०—कुछ समय के बाद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा उच्चारित कृष्णनाम का शब्द नहीं सुनकर श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीमन्महाप्रभु के कमरे का दरवाजा खोला, उन्होंने देखा कि श्रीमन्महाप्रभु तो भीतर हैं ही नहीं! फिर उन्होंने घर के अन्यान्य तीन दरवाजों को देखा तो वे भी बन्द ही थे।

चिन्तित हइल सबे प्रभुरे ना देखिया।
प्रभु चाहि' बुले सबे व्याकुल हञा॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को नहीं देख पाने के कारण सभी भक्त चिन्तित हो गये। सभी व्याकुल होकर श्रीमन्महाप्रभु को इधर-उधर ढूँढ़ने लगे।

प्रभु की अचेतन अवस्था में प्राप्ति—
सिंहद्वारेर उत्तर-दिशाय आछे एक ठाञि।
तार मध्ये पड़ि' आछेन चैतन्य-गोसाञि॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—श्रीजगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्धार के उत्तर-दिशा में स्थित एक स्थान पर श्रीचैतन्य गोसाञि अचेतन अवस्था में पड़े हुए थे।

स्वरूपादि भक्तों का हर्ष और विषाद—
देखि' स्वरूप-गोसाञि-आदि आनन्दित हैला।
प्रभुर दशा देखि' पुनः चिन्तिते लागिला॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु को वहाँ पर देखकर उनके मिलने के कारण श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्त बहुत आनन्दित हुए, किन्तु श्रीमन्महाप्रभु की अचेतन दशा को देखकर वे बहुत चिन्तित हुए।

ऐसी अवस्था वाले प्रभु का वर्णन—
प्रभु पड़ि' आछेन दीर्घ हात पाँच-छय।
अचेतन देह, नासाय श्वास नाहि बय॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की देह पाँच-छह हाथ दीर्घ हो गयी। उनकी देह सम्पूर्ण रूप से अचेतन थी, नाक से श्वास-प्रश्वास आदि नहीं आ-जा रहा था।

एक-एक हस्त-पाद—दीर्घ तिन-हात।
अस्थिग्रन्थि भिन्न, चर्म आछे मात्र तात॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का एक-एक हाथ और पाँव तीन-तीन हाथ दीर्घ हो गया। उनकी अस्थियों के जोड़ खुल गये, सर्वत्र केवल मात्र त्वचा ही दिखायी दे रही थी तथा जीवन के अस्तित्व को दिखलाने वाला उष्ण-भाव (देह का गर्म होना) भी था।

अनुभाष्य

६५। तात,—जीवन के अस्तित्व का ज्ञापक उष्ण-भाव।

हस्त, पाद, ग्रीवा, कटि, अस्थि, सन्धि जत।
एक एक वितस्ति भिन्न हञाछे तत॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के हाथ, पाँव, गर्दन, कमर आदि की अस्थियों के जितने जोड़ थे, वे सभी एक-एक पञ्जा (वितस्ति) दूर हो गये।

चर्ममात्र उपरे, सन्धि आछे दीर्घ हञा।
दुःखित हइला सबे प्रभुरे देखिया॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के अङ्गों के जोड़ खुलकर दीर्घ हो गये, उनके जोड़ों पर केवल मात्र त्वचा थी, श्रीमन्महाप्रभु की ऐसी अवस्था को देखकर सभी भक्त अत्यन्त दुःखित हुए।

मुखे लाला-फेन प्रभुर उत्तान-नयन।
देखिया सकल भक्तेर देह छाड़े प्राण॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मुख से फेन युक्त लार निकल रही थी तथा उनके नेत्र ऊपर चढ़ गये थे। उनकी ऐसी अवस्था को देखकर सभी भक्तों की देह प्राण छोड़ने जैसी अवस्था को प्राप्त हो गयी।

अमृतप्रवाह भाष्य

६८। उत्तान-नयन,—नेत्र ऊपर की ओर उठ गये।

स्वरूप के द्वारा उच्चस्वर से प्रभु के कान में कृष्ण के नाम का उच्चारण—
स्वरूप-गोसाञि तबे उच्च करिया।
प्रभुर काणे कृष्णनाम कहे भक्तगण लञा॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—ऐसा देखकर श्रीस्वरूप दामोदर भक्तों के साथ श्रीमन्महाप्रभु के कानों के निकट उच्चस्वर

से कृष्णनाम करने लगे।

प्रभु का बाह्य-दशा में आना—

बहुक्षणे कृष्णनाम हृदये पशिला।
'हरि बोल' बलि' प्रभु गर्जिया उठिला॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—भक्तों के द्वारा बहुत देर तक कृष्णनाम करने के पश्चात् वह श्रीमन्महाप्रभु के हृदय में प्रविष्ट हो गया, तब श्रीमन्महाप्रभु 'हरिबोल' बोलकर गर्जन करते हुए उठे।

चेतन पाइते अस्थि-सन्धि लागिल।
पूर्व प्राय यथावत् शरीर हइल॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु में चेतनता आने पर उनकी अस्थियों के जोड़ जुड़ गये। उनकी देह पहले जैसी हो गयी।

रघुनाथ के द्वारा अपने ग्रन्थ में इस वृत्तान्त का वर्णन—

एइ लीला महाप्रभुर रघुनाथदास।
'चैतन्यस्तवकल्पवृक्षे' कैराछेन प्रकाश॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु द्वारा की गयी उपरोक्त लीला को श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी ने स्वरचित 'चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष' में प्रकाशित किया है।

काशीमिश्र के घर में कृष्ण-विरह से ग्रस्त प्रभु की दशा—
(स्तवावली में चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष स्तव का चतुर्थ श्लोक—)

क्वचिन्मिश्रावासे व्रजपतिसुतस्योरुविरहात्
श्लथच्छ्रीसन्धित्वाद्दधदधिक दैर्घ्यं भुजपदोः।
लुठन् भूमौ काक्वा विकलविकलं गद्गदवचा
रुदन् श्रीगौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥ ७३ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

७३। किसी समय काशीमिश्र के घर में कृष्ण के विरह में प्रभु के समस्त जोड़ खुल गये, जिससे उनके हाथ तथा पैर बहुत लम्बे हो गये। भूमि पर काकुस्वर में विकलभाव से गद्गद वचन बोलते हुए लोट-पोट खाते-खाते रोने वाले वे गौराङ्ग मेरे हृदय में उदित होकर मुझे उन्मत्त कर रहे हैं।

अनुभाष्य

७३। क्वचित् मिश्रावासे (काशीमिश्रगृहे) व्रजपति-सुतस्य (नन्दनन्दनस्य) उरुविरहात् (अत्यन्तविच्छेदात्) श्लथच्छ्रीसन्धित्वात् (श्लथन् निजनिजाश्रयं त्यजन् श्रीः शोभा सन्धिश्च ययोः) भुजपदोः (बाहुचरणयोः) अधिकदैर्घ्यं दधत् (धारयन्) भूमौ लुठन् काक्वा (कातरया वाण्या) गद्गदवचा विकल-विकलम् (अतिशयेन विकलं) रुदन् सः गौराङ्गः मम हृदये उदयन् (प्रकटयन्) सन् मां मदयति (हर्षयति)।

प्रभु के द्वारा अपनी अर्धबाह्यदशा में लोगों के एकत्रित होने के कारण की जिज्ञासा—

सिंहद्वारे देखि' प्रभुर विस्मय हइला।
''क्या कर, किवा''—एइ स्वरूपे पुछिला॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—स्वयं को सिंहद्वार पर देखकर श्रीमन्महाप्रभु को बहुत आश्चर्य हुआ, उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदर से पूछा,—''तुम लोग क्या कर रहे हो? क्यों कर रहे हो?''

अनुभाष्य

७४। क्या कर, किवा,—क्या कर रहे हो, क्यों।

स्वरूप के द्वारा प्रभु को घर मेंलाना और समस्त वृत्तान्त का वर्णन—

स्वरूप कहे,—''उठ, प्रभु, चल निज-घरे।
तथाइ तोमारे सब करिमु गोचरे॥'' ७५ ॥

७५। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! उठिये, अपने वास-स्थान पर चलिये। वहीं पर चलकर आपको सब बताऊँगा।''

एत बलि' प्रभुरे धरि' घरे लञा गेला।
ताँहार अवस्था सब कहिते लागिला॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर श्रीमन्महाप्रभु

को ऐसा कहकर तथा उन्हें पकड़कर उनके निवास स्थान पर ले गये। वहाँ उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को सबकुछ बतलाया।

बाह्यदशा में आकर प्रभु का विस्मय और अपनी अवस्था का वर्णन—

शुनि' महाप्रभु बड़ हैला चमत्कार।
प्रभु कहे,—''किछु स्मृति नाहिक आमार!! ७७ ॥

७७। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर के मुख से विस्तार में सबकुछ सुनकर श्रीमन्महाप्रभु को बहुत आश्चर्य हुआ। श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मुझे तो कुछ स्मरण ही नहीं है।

सबे देखि—हय मोर कृष्ण विद्यमान।
विद्युतप्राय देखा दिया हय अन्तर्द्धान॥'' ७८ ॥

७८। प० अनु०—''मुझे तो केवल इतना ही स्मरण आता है कि मेरे कृष्ण मेरे समक्ष उपस्थित हुए तथा विद्युत (आकाश में कड़कने वाली बिजली) की भाँति दिखलायी देकर पुनः अन्तर्ध्यान हो गये।''

प्रभु के द्वारा जगन्नाथ-दर्शन—

हेनकाले जगन्नाथेर पाणि-शङ्ख बाजिला।
स्नान करि' महाप्रभु दरशने गेला॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—उसी समय भगवान् श्रीजगन्नाथ का पाणि-शङ्ख (हाथ में धारण करने योग्य बजाया जा सकने वाला शङ्ख) बजा। श्रीमन्महाप्रभु स्नान करके श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन करने के लिये चले गये।

अनुभाष्य

७९। पाणिशङ्ख—हाथ में धारण करने योग्य बजाया जा सकने वाला शङ्ख ; अथवा द्वार को खोलने के समय हाथ-ताली का शब्द; पाठान्तर में—'पानी-शङ्ख' (आचमन करने वाला शङ्ख)।

प्रभु का महाभाव-विकार विस्मयजनक—

एइ त' कहिलुँ प्रभुर अद्भुत विकार।
जाहार श्रवणे लोके लागे चमत्कार॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु में प्रकाशित होने वाले अद्भुत विकारों का वर्णन किया, जिन्हें सुनकर लोगों को बहुत आश्चर्य होता है।

प्रभु का अदृष्ट (अनदेखा)-अश्रुत (अनसुना) महाभाव—

लोके नाहि देखे ऐछे, शास्त्रे नाहि शुनि।
हेन भाव व्यक्त करे न्यासि-चूड़ामणि॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०— सन्यासी-चूड़ामणि श्रीमन्महाप्रभु ने ऐसे-ऐसे अद्भुत भावों को प्रकाशित किया, जिन्हें लोगों ने न तो पहले कभी देखा था और न ही शास्त्रों में सुना था।

अप्राकृत अधोक्षज-भावमुद्रा— अक्षज ज्ञानी की समझ से परे—

शास्त्र लोकातीत जेइ जेइ भाव हय।
इतर-लोकेर ताते ना हय निश्चय॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—शास्त्र तथा लोकातीत जो-जो भाव होते हैं, जागतिक लोगों का उनमें विश्वास नहीं होता।

ग्रन्थकार के द्वारा अप्राकृत अनुभूति के आधार पर श्रौत-पन्था में वर्णन—

रघुनाथ-दासेर सदा प्रभुसङ्गे स्थिति।
ताँर मुखे शुनि' लिखि करिया प्रतीति॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी सदैव श्रीमन्महाप्रभु के पास रहते थे, मैंने श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रकाशित इन समस्त लीलाओं को उन्हीं के मुख से श्रवण किया है, मैं उन के वचनों के आधार पर ही प्रतीति (दृढ़ विश्वास) पूर्वक सब लिख रहा हूँ।

प्रभु के द्वारा चटक-पर्वत को गोवर्धन मानकर महाभाव के आवेश में उसकी ओर तेजी से दौड़ना—

एकदिन महाप्रभु समुद्रे जाइते।
'चटक'-पर्वत देखिलेन आचम्बिते॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०—एकदिन जब श्रीमन्महाप्रभु समुद्र की ओर जा रहे थे तब उन्हें अचानक चटक-पर्वत दिखलायी दिया।

अनुभाष्य

८४। चटक-पर्वत,—बालु के पर्वत जैसा ऊँचा स्तूप; बालू का टीला।

गोवर्द्धन-शैल-ज्ञाने आविष्ट हइला।
पर्वत-दिशाते प्रभु धाञा चलिला॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु चटक पर्वत को गिरिराज गोवर्धन मानकर उसमें आविष्ट हो गये तथा श्रीमन्महाप्रभु पर्वत की दिशा की ओर दौड़ पड़े।

श्रीमद्भागवत (१०.२१.१८) में—
हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो
यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सह-गोगणयोस्तयोर्यत्
पानीय-सूयवस-कन्दर-कन्दमूलैः॥ ८६ ॥

८६। अनु०—यह गोवर्धन पर्वत—वैष्णवप्रधान हैं, कारण, ये बलराम-कृष्ण के चरणों के स्पर्श के आनन्द से प्रफुल्लित होकर गैयाओं एवं गोपों के साथ राधाकृष्ण और गोप-गणों को पीने का जल और खाद्यवस्तुएँ—घास-कन्द-मूल आदि प्रदान करके उनका तर्पण कर रहे हैं।

अनुभाष्य

८६। मध्य-लीला के अष्टादश परिच्छेद की ३४ वीं संख्या द्रष्टव्य।

साथी गोविन्द का उनके पीछे दौड़ना—
एइ श्लोक पड़ि' प्रभु चलेन वायुवेगे।
गोविन्द धाइल पाछे, नाहि पाय लागे॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उपरोक्त श्लोक उच्चारण करते हुए वायु के वेग की भाँति दौड़ रहे थे, श्रीगोविन्द भी श्रीमन्महाप्रभु के पीछे दौड़ पड़े किन्तु वे उनके निकट नहीं पहुँच पाये।

शोर मचाते हुए लोगों का पीछे दौड़ना—
फुकार पड़िल, महा-कोलाहल हइल।
जेइ जाँहा छिल, सेइ उठिया धाइल॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—जिस-जिस की दृष्टि श्रीमन्महाप्रभु पर पड़ी, वे सभी उन्हें पुकारने लगे, अत्यधिक कोलाहल-सा मच गया। जो जहाँ पर भी था, वे उठकर श्रीमन्महाप्रभु के पीछे दौड़ पड़ा।

सभी भक्तों का वहाँ पर आगमन—
स्वरूप, जगदानन्द, पण्डित-गदाधर।
रामाइ, नन्दाइ आर पण्डित-शङ्कर॥ ८९ ॥
पुरी-भारती-गोसाञि आइला सिन्धुतीरे।
भगवान्-आचार्य—खञ्ज चलिला धीरे धीरे॥ ९०॥

८९-९०। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीजगदानन्द पण्डित, श्रीगदाधर पण्डित, श्रीरामाइ, श्रीनन्दाइ, श्रीशङ्कर पण्डित, श्रीपरमानन्द पुरी एवं श्रीब्रह्मानन्द भारती गोस्वामी समुद्र के तट पर आ गये। श्रीभगवान् आचार्य खञ्ज (लङ्गड़ा कर चलने वाले) होने के कारण धीरे-धीरे चलने लगे।

मार्ग में स्तम्भ आदि विकार का वर्णन—
प्रथमे चलिला प्रभु,—जेन वायुगति।
स्तम्भभाव पथे हैल, चलिते नाहि शक्ति॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—पहले तो श्रीमन्महाप्रभु वायु की गति की तरह दौड़े चले जा रहे थे, किन्तु मार्ग में उनमें स्तम्भ-भाव उदित हो आया, जिस कारण उनमें चलने की शक्ति तक भी नहीं थी, दौड़ने का तो फिर कहना ही क्या?

प्रति-रोमकूपे मांस — व्रणेर आकार।
तार उपरे रोमोद्गम—कदम्ब प्रकार॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के प्रत्येक रोमकूप का मांस फोड़े के आकार का हो गया तथा उस फोड़े पर रोमाञ्च का होना ऐसा प्रतीत हुआ मानो कदम्ब के पुष्प खिल रहे हों।

प्रति-रोमे प्रस्वेद पड़े रुधिरेर धार।
कण्ठे-घर्घर, नाहि वर्णेर उच्चार॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के प्रत्येक रोमकूप से प्रस्वेद (पसीने) की भाँति रक्त की धारा प्रवाहित हो रही थी, उनका कण्ठ घर्घर शब्द कर रहा था, वे कुछ भी बोल नहीं पा रहे थे।

दुइ नेत्रे भरि' अश्रु बहये अपार।
समुद्रे मिलिला जेन गङ्गा-यमुना-धार॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के दोनों नेत्रों से अपार अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी, ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो गङ्गा और यमुना की धाराएँ समुद्र में मिलने जा रही हों।

वैवर्ण्य शङ्खप्राय, श्वेत हैल अङ्ग।
तबे कम्प उठे,—जेन समुद्रे तरङ्ग॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की अङ्गकान्ति शङ्ख की भाँति सफेद हो गयी, उनके दिव्य कलेवर में समुद्र की तरङ्गों की भाँति कम्पन होने लगा।

प्रभु का गिरना—
काँपिते काँपिते प्रभु भूमेते पड़िला।
तबे त' गोविन्द प्रभुर निकटे आइला॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु काँपते-काँपते भूमि पर गिर पड़े। तब श्रीगोविन्द श्रीमन्महाप्रभु के निकट आये।

गोविन्द के द्वारा जल छिड़कना और पंखा झलकर प्रभु को चेतन करने का प्रयास—
करङ्गेर जले करे सर्वाङ्ग सिञ्चन।
बहिर्वास लञा करे अङ्ग संवीजन॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—श्रीगोविन्द प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु के समस्त अङ्गों पर करङ्ग (करुवा) के जल को छिड़का तथा बहिर्वास से उन्हें पंखा झलने लगे।

प्रभु की अवस्था को देखकर सभी के द्वारा रोना—
स्वरूपादिगण ताँहा आसिया मिलिला।
प्रभुर अवस्था देखि' कान्दिते लागिला॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर आदि भी श्रीमन्महाप्रभु के निकट आ पहुँचे तथा वे श्रीमन्महाप्रभु की अवस्था को देखकर क्रन्दन करने लगे।

प्रभु के अष्ट सात्त्विक विकार को देखकर सभी में विस्मय—
प्रभुर अङ्गे देखे अष्टसात्त्विक विकार।
आश्चर्य सात्त्विक देखि' हैला चमत्कार॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—सभी भक्तों ने श्रीमन्महाप्रभु के अङ्गों पर अष्ट सात्त्विक विकार देखे, सभी अद्‌भुत सात्त्विक विकारों को देखकर चमत्कृत हो उठे।

अनुभाष्य

९९। अष्ट सात्त्विक विकार—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय।

सभी के द्वारा उच्च-सङ्कीर्त्तन और गोविन्द आदि के द्वारा जल छिड़कना—
उच्च सङ्कीर्त्तन करे प्रभुर श्रवणे।
सुशीतल जले करे प्रभुर अङ्ग सम्मार्जने॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु के कान के निकट (उन्हें श्रवण कराने के उद्देश्य से) उच्च-सङ्कीर्त्तन करने लगे तथा सुशीतल जल से श्रीमन्महाप्रभु के दिव्य अङ्गों का सम्मार्जन (सफाई) करने लगे।

अनुभाष्य

१००। श्रवणे,— कान के निकट।

प्रभु का बाह्य दशा में आना—
एइमत बहुबार कीर्त्तन करिते।
'हरिबोल' बलि' प्रभु उठे आचम्बिते॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—इस प्रकार बहुत देर तक कीर्त्तन करने पर श्रीमन्महाप्रभु हठात् 'हरिबोल' बोलते हुए उठ खड़े हुए।

प्रसन्नता से भरकर सभी के द्वारा हरिध्वनि–

सानन्दे सकल वैष्णव बले 'हरि' 'हरि'।
उठिल मङ्गलध्वनि चतुर्दिक भरि'॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—सभी वैष्णव परम आनन्द पूर्वक 'हरि', 'हरि' बोलने लगे, उस मङ्गलमयी 'हरि' ध्वनि से चारों दिशाएँ भर गयी।

प्रभु की अर्ध-बाह्य दशा–

उठि' महाप्रभु विस्मित, इति उति चाय।
जे देखिते चाय, ताहा देखिते ना पाय॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उठकर आश्चर्यचकित होकर इधर-उधर देखने लगे, वे जो देखना चाहते थे, वे उसे नहीं देख पा रहे थे।

'वैष्णव' देखिया प्रभुर अर्धबाह्य हइल।
स्वरूप-गोसाञिरे किछु कहिते लागिल॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—वैष्णवों को अपने चारों ओर देखकर श्रीमन्महाप्रभु की अर्ध-बाह्य दशा उपस्थित हुई, श्रीमन्महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदर की ओर देखकर उन्हें कुछ कहने लगे-।

अनुभाष्य

१०४। अर्धबाह्य,—सम्पूर्ण बाह्य संज्ञा (चेतनता) प्राप्त नहीं करके।

श्रीराधा की दासी के अभिमान में प्रभु के द्वारा अपनी अवस्था का वर्णन–

''गोवर्द्धन हैते मोरे के इँहा आनिल?
पाञा कृष्णेर लीला देखिते ना पाइल॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—''मुझे गोवर्धन से यहाँ पर कौन लाया? मैं श्रीकृष्ण की लीला को प्राप्त करके भी उसे देख न पाया।

इँहा हैते आजि मुइ गेनु गोवर्द्धने।
देखों,—यदि कृष्ण करेन गोधन-चारणे॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—''आज मैं यहाँ से गोवर्धन गया था, मैंने देखा कि श्रीकृष्ण गैयाओं को चरा रहे हैं।

गोवर्द्धने चड़ि' कृष्ण बाजाइला वेणु।
गोवर्द्धनेर चौदिके चरे सब धेनु॥ १०७ ॥

१०७। प० अनु०—''श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर चढ़कर वेणु बजाया। गोवर्धन के चारों ओर सब गैयाएँ चर रही थी।

वेणुनाद शुनि' आइला राधा-ठाकुराणी।
सब सखीगण-सङ्गे करिया साजनि॥ १०८ ॥

१०८। प० अनु०—''वेणु की ध्वनि को सुनकर श्रीराधा ठाकुराणी सब सखियों के साथ मिलकर श्रृङ्गार आदि करके वहाँ आ गयी।

अनुभाष्य

१०८। करिया साजनि,—सजकर।

राधा लञा कृष्ण प्रवेशिला कन्दराते।
सखीगण चाहे केह फुल उठाइते॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—''श्रीकृष्ण श्रीराधा रानी को लेकर गिरिराज गोवर्धन की गुफा में प्रवेश कर गये। किसी एक सखी ने पुष्प चयन करते समय उन्हें गुफा में प्रवेश करते देखा।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०९। कन्दराते,—गुफा में।

हेनकाले तुमि-सब कोलाहल कैला।
ताँहा हैते धरि' मोरे इँहा लञा आइला॥ ११० ॥

११०। प० अनु०—''उसी समय तुम सबने कोलाहल मचा दिया तथा तुम सभी मुझे वहाँ से पकड़कर यहाँ ले आये।

कृष्णसङ्ग से वञ्चित प्रभु का दुःख से भरकर क्रन्दन, भक्तों का भी क्रन्दन–

केने वा आनिला मोरे वृथा दुःख दिते।
पाञा कृष्णेर लीला, ना पाइनु देखिते!!'' १११ ॥

१११। प० अनु०—''आप लोग मुझे वृथा दुःख देने के लिये यहाँ क्यों ले आये। श्रीकृष्ण की लीला को प्राप्त करके भी मैं उसे देख नहीं पाया।''

एत बलि' महाप्रभु करेन क्रन्दन।
ताँर दशा देखि' 'वैष्णव' करेन रोदन॥ ११२ ॥

११२। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु क्रन्दन करने लगे, उनकी ऐसी दशा को देखकर वैष्णव भी क्रन्दन करने लगे।

प्रभु के दर्शन के लिये आये पुरी और भारती के दर्शन से प्रभु का बाह्य दशा में मर्यादा-प्रदर्शन—

हेनकाले आइला पुरी, भारती,—दुइजन।
दुँहे देखि' महाप्रभु हइल सम्भ्रम॥ ११३ ॥

११३। प० अनु०—उसी समय वहाँ पर श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीब्रह्मानन्द भारती का आगमन हुआ। उन दोनों को आये देखकर श्रीमन्महाप्रभु को सम्भ्रम (सङ्कोच) हो आया।

निपट-बाह्य हइले प्रभु दुँहारे वन्दिला।
महाप्रभुरे दुइजन प्रेमालिङ्गन कैला॥ ११४ ॥

११४। प० अनु०—सम्पूर्ण रूप से बाह्य दशा में आने पर श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीब्रह्मानन्द भारती—इन दोनों की वन्दना की तथा उन दोनों ने श्रीमन्महाप्रभु को प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

११४। निपट बाह्य हइले,—सम्पूर्ण बाह्यदशा में आने पर।

प्रभु के द्वारा उनके आगमन के कारण की जिज्ञासा और पुरी के द्वारा उत्तर—

प्रभु कहे,—''दुँहे केने आइला एत दूरे?''
पुरी गोसाञि कहे,—''तोमार नृत्य देखिबारे॥''११५॥

११५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''आप दोनों इतनी दूर चलकर क्यों आये हैं?'' श्रीपरमानन्द पुरी गोस्वामी ने कहा,—''आपका नृत्य देखने के लिये आये हैं।''

प्रभु का लज्जित होना और भक्तों के साथ समुद्र स्नान के पश्चात् प्रसाद का सम्मान—

लज्जित हइला प्रभु पुरीर वचने।
समुद्रघाट आइला सब वैष्णव-सने॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीपरमानन्द पुरी के उपरोक्त वचनों को सुनकर लज्जित हो गये तथा वे सभी वैष्णवों के साथ समुद्र के तट पर आ गये।

स्नान करि' महाप्रभु घरेते आइला।
सबा लञा महाप्रसाद भोजन करिला॥ ११७ ॥

११७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु स्नान करके अपने वासस्थान पर आ गये तथा उन्होंने सभी भक्तों को साथ में लेकर महाप्रसाद भोजन किया।

प्रभु का अप्राकृत दिव्य-उन्माद— ब्रह्मा के भी अगोचर—

एइ त' कहिलुँ प्रभुर दिव्योन्माद-भाव।
ब्रह्माओ कहिते नारे जाहार प्रभाव॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु में प्रकाशित उस दिव्योन्माद-भाव का वर्णन किया, जिस के प्रभाव का ब्रह्मा भी वर्णन नहीं कर सकते।

रघुनाथदास के द्वारा स्वरचित ग्रन्थ में प्रभु की यह लीला वर्णित—

'चटक'-गिरि-गमन-लीला रघुनाथदास।
'चैतन्यस्तवकल्पवृक्षे' कैराछेन प्रकाश॥ ११९ ॥

११९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की चटक-पर्वत की ओर जाने की लीला को श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी ने

स्वरचित 'चैतन्य स्तवकल्पवृक्ष' में प्रकाशित किया है।

स्तावावली में चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष- स्तव का आँठवा श्लोक—

समीपे नीलाद्रेश्चटकगिरिराजस्य कलना-
दये गोष्ठे गोवर्धनगिरिपतिं लोकितुमितः।
व्रजन्नस्मीत्युक्त्वा प्रमद इव धावन्नवधृतो
गणैः स्वैर्गौराङ्गौ हृदय उदयन्मां मदयति॥ १२० ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१२०। नीलाचल के निकट समुद्र की बालु के द्वारा बने पर्वत रूपी चटकपर्वत को देखकर 'व्रज में गोवर्धन गिरिराज का दर्शन करूँगा' ऐसा कहकर महाप्रभु अत्यधिक तेज गति से चलने लगे। वैष्णवों से घिरे वे गौराङ्गदेव मेरे हृदय में उदित होकर मुझे उन्मत्त कर रहे हैं।

चतुर्दश परिच्छेद का अमृतप्रवाहभाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

१२०। नीलाद्रेः (नीलाचलस्य) समीपे (निकटे) चटक-गिरिराजस्य (सैकतस्तूपरूप-पर्वतस्य) कलनात् (ईक्षणात्) अये इतः (क्षेत्रात्) गोष्ठे गोवर्धनगिरिपतिं लोकितुं (द्रष्टुं) व्रजन् अस्मि (व्रजामि) इति उक्त्वा प्रमदः (प्रमत्तः) इव धावन् स्वैः गणैः (स्वरूपादिभिः) अवधृतः (पश्चादनुसृतः), स गौराङ्गः मम हृदये उदयन् मां मदयति (आनन्दयति)

चतुर्दश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

प्रभु की अलौकिक और अप्राकृत महाभाव-लीला-क्रीड़ा—

एबे प्रभु जत कैला अलौकिक-लीला।
के बुझिते पारे सेइ महाप्रभुर खेला ?? १२१ ॥

१२१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने जिन समस्त अलौकिक लीलाओं को प्रकाशित किया, श्रीमन्महाप्रभु की उन लीलाओं को कौन समझ सकता है?

प्रभु के कृष्ण विरह के अनुसरण में ही जीव को कृष्ण-चरणों की प्राप्ति—

संक्षेपे कहिया करि दिक् दरशन।
जेइ इहा शुने, पाय कृष्णेर चरण॥ १२२ ॥

१२२। प० अनु०—मैं श्रीमन्महाप्रभु की लीलाओं को संक्षेप में वर्णन करके केवल दिग्दर्शन ही कर रहा हूँ। जो कोई भी श्रीमन्महाप्रभु की इन लीलाओं का श्रवण करता है, उन्हें श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति होती है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १२३ ॥

१२३। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिनकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहे हैं।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे चटक-गिरि-गमन-रूप-दिव्योन्माद-वर्णनं नाम चतुर्दशः परिच्छेदः।

❋❋❋

पञ्चदश परिच्छेद

कथासार— उपलभोग के बाद महाप्रभु में विलाप उपस्थित हुआ; [जगन्नाथ में] कृष्ण-रूप का भाव उदित हुआ। कृष्ण के अदर्शन से रास की रात्रि में गोपियों ने जिस प्रकार वन-वन में कृष्ण को ढूँढ़ा था, प्रभु में भी वे समस्त भाव उदित होने लगे। स्वरूप गोस्वामी ने गीत-गोविन्द से एक गान किया, जिसे सुनकर महाप्रभु में भावोदय, भावसन्धि, भाव-शाबल्य और अष्टसात्त्विक विकार आदि उदित होकर परम-आस्वादन के विषय बन गये। समुद्र के तट पर स्थित उपवन को देखकर वृन्दावन की स्मृति के उदित हो आने से यह सब भाव प्रबल रूप से प्रकटित होने लगे। (अ: प्र: भा:)

कृष्ण-विरह रूपी महाभावसागर में निमग्न प्रभु—

दुर्गमे कृष्णभावाब्धौ निमग्नोन्मग्नचेतसा।
गौरेण हरिणा प्रेममर्यादा भूरि दर्शिता॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। दुर्गम कृष्णभावसमुद्र में निमग्न होकर उन्मग्नचित्त गौरहरि ने अनेक प्रकार की प्रेम-मर्यादा दिखलायी थी।

अनुभाष्य

१। दुर्गमे (ब्रह्मादीनां सूरीणामपि अक्षजज्ञानवशात् दुर्विगाह्ये) कृष्णभावाब्धौ (कृष्णभावरूपसिन्धौ) निमग्नोन्मग्नचेतसा (निमग्नं उन्मग्नञ्च चेतो यस्य तेन) गौरेण हरिणा (गौर-हरिणा कृष्णचैतन्येन) प्रेममर्यादा (प्रेमण: मर्यादा) भूरि (सुबहुलं) दर्शिता (प्रकटीकृता)।

जय जय श्रीकृष्णचैतन्य अधीश्वर।
जय नित्यानन्द पूर्णानन्द-कलेवर॥ २ ॥

२। प० अनु०—अधीश्वर (महाप्रभु) श्रीकृष्ण चैतन्य की जय हो, जय हो। पूर्ण आनन्द स्वरूप कलेवर से युक्त श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो।

जयाद्वैताचार्य कृष्णचैतन्य-प्रियतम।
जय श्रीवास-आदि प्रभुर भक्तगण॥ ३ ॥

३। प० अनु०—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के अत्यन्त प्रिय श्रीअद्वैताचार्य प्रभु की जय हो, श्रीमन्महाप्रभु के भक्त श्रीवास पण्डित आदि की जय हो।

अप्राकृत कृष्ण-विरह के प्रेमावेश में अचैतन्य—

एइमत महाप्रभु रात्रि-दिवसे।
आत्मस्फूर्त्ति नाहि कृष्णभावावेशे॥ ४ ॥

४। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु को रात-दिन कृष्ण के भाव में आविष्टता के कारण स्वयं की सुध-बुध तक नहीं थी।

अन्तर्दशा, अर्धबाह्यदशा और बाह्यदशा—

कभु भावे मग्न, कभु अर्द्ध-बाह्यस्फूर्त्ति।
कभु बाह्यस्फूर्त्ति,—तिन रीते प्रभुस्थिति॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु तीन प्रकार की अवस्थाओं में रहते थे—कभी तो वे भाव में निमग्न अर्थात् सम्पूर्ण रूप से अन्तर्दशा में, कभी अर्ध बाह्य दशा में तथा कभी सम्पूर्णत: बाह्य दशा में रहते थे,—श्रीमन्महाप्रभु इन तीनों दशाओं में से किसी एक दशा में रहते थे।

स्वभाव और अभ्यासवशत: नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का अनुष्ठान—

स्नान, दर्शन, भोजन देह-स्वभावे हय।
कुमारेर चाक जेन सतत फिरय॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु द्वारा स्नान, दर्शन तथा भोजन आदि कार्य देह के स्वभाव वशतः ठीक वैसे ही अपने आप होते थे, जैसे कुम्हार का चाक अर्थात् लकड़ी का चक्र कुम्हार के हाथ हटा लेने पर भी कुछ समय तक, अपने आप निरन्तर चलता रहता है।

अनुभाष्य

६। कुमारेर चाक,—घड़े आदि के निर्माण के समय जिस प्रकार कुम्हार का चक्र पहले दिये गये बल से अपने आप धूमता रहता है, सर्वदा उसमें हाथ का स्पर्श नहीं करना पड़ता, उसी प्रकार प्रभु की दैहिक समस्त क्रियाएँ बाहरी रूप से चेतनता नहीं रहने पर भी स्वभाववशतः सम्पन्न होती थी। मुक्त, सिद्ध अर्थात् उत्तमाधिकारी महाभागवत के प्रपञ्च में प्रकटित रहते समय उनके दैनिक कृत्यादि की सुन्दर उपमाओं के रूप में ब्रह्मसूत्र और उसके सर्वश्रेष्ठभाष्य भागवत में इस विषय की बहुत सी बातें विद्यमान हैं ।

जगन्नाथ रूपी कृष्ण के प्रति आकृष्ट प्रभु की इन्द्रियों के द्वारा गोविन्द की सेवा—

एकदिन करेन प्रभु जगन्नाथ-दरशन।
जगन्नाथे देखे साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन॥ ७ ॥

७। प० अनु०—एक दिन जब श्रीमन्महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन कर रहे थे, तब उन्हें श्रीजगन्नाथ साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन के रूप में दिखायी देने लगे।

एकबारे स्फुरे प्रभुर कृष्णेर पञ्चगुण।
पञ्चगुणे करे पञ्चेन्द्रिय आकर्षण॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के समक्ष एक ही समय में श्रीकृष्ण के पाँचों गुण स्फुरित हुए, श्रीकृष्ण के पाँचों गुण उनकी पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करने लगे।

एकमन पञ्चदिके पञ्चगुण टाने।
टानाटानि प्रभुर मन हैल अगेयाने॥ ९ ॥

९। प० अनु०—श्रीकृष्ण के पाँच अप्राकृत गुण श्रीमन्महाप्रभु के एक मन को अपनी-अपनी ओर आकर्षित करने लगे, इस प्रकार की खींचातानी से श्रीमन्महाप्रभु का मन अचेतन हो गया।

अमृतप्रवाह भाष्य

८-९। पञ्चगुण,—नेत्रों से रूप, कानों से गीत, नाक से घ्राण, जिह्वा से रस तथा त्वचा से स्पर्श,— कृष्ण के इन पाँच अप्राकृत गुणों ने अप्राकृत पाँच इन्द्रियों में एक ही साथ स्फूर्त्ति प्राप्त की। मन को इन पाँचों विषयों के द्वारा एक ही समय में खींचने पर मन अचेतन हो गया।

भक्तों के द्वारा प्रभु को घर में लाना—

हेनकाले ईश्वरेर उपलभोग सरिल।
भक्तगण महाप्रभुरे घरे लञा आइल॥ १० ॥

१०। प० अनु०—उसी समय भगवान् श्रीजगन्नाथ का उपलभोग सम्पूर्ण हुआ, सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु को पकड़कर उनके वासस्थान पर ले आये।

स्वरूप-रामानन्द,—एइ दुइजन लञा।
विलाप करेन दुँहार कण्ठेते धरिया॥ ११ ॥

११। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीरामानन्द राय के गले में अपने हाथों को डालकर विलाप करने लगे।

कृष्णेर वियोगे राधार उत्कण्ठित मन।
विशाखारे कहे आपन उत्कण्ठा-कारण॥ १२ ॥
सेइ श्लोक पड़ि' आपने करे मनस्ताप।
श्लोकेर अर्थ शुनाय दुँहारे करिया विलाप॥ १३ ॥

१२-१३। प० अनु०—श्रीकृष्ण के वियोग में श्रीराधा जी के मन के उत्कण्ठित होने पर उन्होंने जिन वचनों के द्वारा श्रीविशाखा जी को उपनी उत्कण्ठा का कारण बतलाया था, श्रीमन्महाप्रभु श्रीराधिका के द्वारा उच्चारित उन्हीं वचनों को बोलकर स्वयं मन-मन में पश्चाताप करने लगे तथा विलाप करते हुए उस श्लोक के अर्थ को

श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय से कहने लगे।

कृष्ण के विग्रह के माधुर्य के बल में आकर्षण की क्षमता—(गोविन्दलीलामृत ८.३, विशाखा के प्रति श्रीराधा के वचन)—

सौन्दर्यामृतसिन्धुभङ्गललना-चित्ताद्रिसंप्लावकः
कर्णानन्दिसनर्मरम्यवचनः कोटीन्दुशीताङ्गकः।
सौरभ्यामृतसंप्लवावृतजगत् पीयूषरम्याधरः
श्रीगोपेन्द्रसुतः स कर्षति बलात् पञ्चेन्द्रियाण्यालि मे॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१४। जो सौन्दर्य के अमृत-सिन्धु-प्रवाह में नारियों के चित्त रूपी पर्वत को सम्पूर्ण रूप से डुबो देने वाले हैं, जो कानों को आनन्द प्रदान करने वाले विनर्म रमणीय वचनों से युक्त होकर करोड़ों चन्द्रों की भाँति शीतल हैं, जिन्होंने सौरभ रूपी अमृत सागर के द्वारा जगत् को आच्छादित किया है तथा जो अमृत से पूर्ण अधरों से युक्त हैं, हे सखि, वही गोपेन्द्रनन्दन कृष्ण मेरी पाँचों इन्द्रियों को बलपूर्वक आकर्षित कर रहे हैं।

अनुभाष्य

१४। हे आलि, (सखि),यः सौन्दर्यामृतसिन्धुभङ्ग ललनाचित्ताद्रिसंप्लावकः (सौन्दर्यम् एव अमृतसिन्धुः तस्य सुधार्णवस्य भङ्गैस्तरङ्गरूपैः जलच्छटाभिः ललनानां चित्तरूपाद्रिं सं सम्यक् प्लावयितुं शीलं यस्य यः) कर्णानन्दिसनर्मरम्यवचनः (कर्णम् आनन्दयितुं शीलं यस्य तत्तेन नर्मेण स्मितेन च सह रम्यं वचनं यस्य सः) कोटीन्दुशीताङ्गकः (कोटिचन्द्रात् अपि शीतं सुशीतलम् अङ्गं यस्य सः) सौरभ्यामृतसंप्लवावृतजगत् (सौरभ्यमेव अमृतं तस्य संप्लवः सागरः तेन आवृतम् आच्छादितं जगत् येन् सः) पीयूष-रम्याधरः (पीयूषतः अमृतादपि रम्यः अधरो यस्य सः) श्रीगोपेन्द्रसुतः (व्रजेन्द्रनन्दनः) बलात् (प्रसभेन) मे (मम) पञ्चेन्द्रियाणि (चक्षुकर्ण-नासाजिह्वात्वगादीनि) कर्षति (स्व-रूप-वंशीध्वनि-सौराभ्यास्वाद-स्पर्शादिषु नयति)।

गोपी के द्वारा अप्राकृत पुष्पबाण के माधुर्य के बल का वर्णन—(चित्रजल्प) — [यथा रागः]

''कृष्ण-रूप-शब्द-स्पर्श, सौरभ्य-अधर-रस,
जार माधुर्य कहन ना जाय।
देखि' लोभे पञ्चजन, एक अश्व — मोर मन,
चड़ि' पञ्च पाँचदिके धाय॥ १५ ॥

पुष्पबाण से आकृष्ट गोपियों की इन्द्रियाँ—

सखि हे, शुन, मोर दुःखेर कारण।
मोर पञ्चेन्द्रियगण महा-लम्पट दस्युगण,
सबे कहे,— हर' परधन॥ १६ ॥

गोपियों की कृष्णाधीन अवस्था —

एक अश्व एक क्षणे, पाँच पाँच दिके टाने,
एक मन कोन् दिके धाय?
एककाले सबे टाने, गेल घोड़ार पराणे,
एइ दुःख सहन ना जाय॥ १७॥

कृष्ण के रूप-माधुर्य का बल —

इन्द्रिये ना करि रोष, इँहा-सबार काँहा दोष,
कृष्णरूपादिर महा आकर्षण।
रूपादि पाँच, पाँचे टाने, गेल घोड़ार पराणे,
मोर देहे ना रहे जीवन॥ १८ ॥

कृष्णरूपामृतसिन्धु, ताहार तरङ्ग-बिन्दु,
एकबिन्दु जगत् डुबाय।
त्रिजगते जत नारी, तार चित्त-उच्चगिरि,
ताहा डुबाइ आगे उठि' धाय॥ १९ ॥

कृष्ण के वचनों की मधुरता का बल—

कृष्णेर वचन-माधुरी, नाना-रस-नर्मधारी,
तार अन्याय कथन ना जाय।
जगतेर नारीर काणे, माधुरी गुणे बान्धि' टाने,
टानाटानि काणेर प्राण जाय॥ २० ॥

कृष्ण के अङ्गों के माधुर्य का बल—

कृष्ण-अङ्ग सुशीतल, कि कहिमु तार बल,
छटाय जिने कोटीन्दु-चन्दन।
सशैल नारीर वक्ष, ताहा आकर्षिते दक्ष,
आकर्षये नारीगण-मन॥ २१ ॥

कृष्ण की सुगन्ध के माधुर्य का बल—

कृष्णाङ्ग — सौरभ्य-भर, मृगमद-मनोहर,
नीलोत्पलेर हरे गर्व-धन।
जगत्-नारीर नासा, तार भितर पाते वासा,
नारीगणे करे आकर्षण॥ २२ ॥

कृष्ण के अधरों के स्पर्श के माधुर्य का बल—

कृष्णेर अधरामृत, ताते कर्पूर-मन्दस्मित,
स्व-माधुर्ये हरे नारीर मन।
अन्यत्र छाड़ाय लोभ, ना पाइले मने क्षोभ,
व्रजनारीगणेर मूलधन॥'' २३ ॥

१५-२३।प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१५-२३। कृष्ण के रूप, वचन, मुरलीध्वनि इत्यादि रूप, शब्द, स्पर्श, सौरभ (सुगन्ध) और अधर का रस,—ये पाँचों अत्यधिक माधुर्य से परिपूर्ण हैं; मेरी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ श्रीकृष्ण के उन-उन विषयों को देखकर उनके प्रति लोभित होकर प्रत्येक ही मेरे मन रूपी केवल मात्र एक ही घोड़े के ऊपर चढ़कर एक-ही-साथ पाँचों ओर दौड़ना चाहती हैं; हे सखि, दु:ख की बात क्या बताऊँ? मेरी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—अत्यन्त विषयलम्पट और डाकुओं की भाँति हैं। कृष्ण परपुरुष हैं, ऐसा जानने पर भी उन-उन कृष्ण-विषयों को हरण करने में प्रवृत्त हैं। मेरा मन तो एक ही घोड़ा है; नेत्र आदि प्रत्येक ज्ञान-इन्द्रिय ही उस घोड़े को लेकर (रूपादि) पाँच-पाँच (विषयों) की ओर खींचा-तानी करती है, इस प्रकार एक ही साथ खींचने जाकर लाभ के रूप में केवल घोड़े के ही प्राण चले जाते हैं,—उसे किस प्रकार सहन कर सकती हूँ? यदि कहो, तुम अपनी इन्द्रियों का दमन क्यों नहीं करती? हे सखि, इन्द्रियों को भी भला किस प्रकार से दोष दूँ? कृष्ण-रूपादि पाँच विषय—स्वभाव से ही अत्यन्त आकर्षण से युक्त हैं; रूपादि पाँच वस्तुएँ पाँच इन्द्रियों को अपनी-अपनी ओर खींचती रहती हैं, मन रूपी घोड़े के ऊपर चढ़ी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उस ओर ही आकर्षित होकर दौड़ती हैं; फलस्वरूप, घोड़े के प्राणों के नष्ट होने पर मेरे भी प्राण जाते हैं। तीनों लोको में जितनी भी स्त्रियाँ हैं, उनका चित्त यद्यपि ऊँचे पर्वत के समान है, किन्तु कृष्णरूपामृत सिन्धु की तरङ्ग-बिन्दु उन ऊँचे पर्वतों को भी डुबो रही है। कृष्ण की रसनर्म (परिहास) रूपी वचन-चातुरी स्त्रियों के प्रति ऐसा अन्यायपूर्ण आचरण करती है कि उसके विषय में वर्णन नहीं किया जा सकता; स्त्रियों के कानों में प्रवेश करके वह अपने मधुरता रूपी गुण से उनका बन्धन करके खींचा-तानी करती है, जिससे कानों के प्राण जाते हैं। कृष्ण के अङ्ग अत्यधिक सुशीतल हैं, उनकी शीतल किरणें करोड़ों-करोड़ों चन्द्रों और चन्दनों को पराजित करती है। कृष्ण के अङ्ग—स्त्रियों के शैल रूपी वक्षों (स्तनों) को आकर्षित करने में अत्यन्त दक्ष हैं एवं स्त्रियों के मन को आकर्षित करते हैं। कृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध मन का हरण करने वाली मृगमद और नीलोत्पल के गर्व का भी नाश करती है, वह जगत् की स्त्रियों के नाक में प्रवेश करके वहाँ वासस्थान बनाकर स्त्रियों को आकर्षित करती है। कृष्ण का अधरामृत मन्दहास्यरूपी कर्पूर के साथ मिलकर अपने माधुर्य से स्त्रियों के मन का हरण करता है; वह कृष्ण के अलावा अन्य विषयों में लोभ को छुड़ा देता है, किन्तु स्वयं दुर्लभता वशत: अप्राप्य होकर मन के क्षोभ को उत्पन्न करता है, वही अधरामृत ही व्रज की स्त्रियों का मूल धन है।

अनुभाष्य

१६। कृष्ण के प्रति आकृष्ट मेरी पाँच दस्यु (डाकु) रूपी पाँच इन्द्रियाँ परस्पर सभी युक्ति करती हैं,—'चलो, सभी मिलकर इस पराये धन मनरूपी घोड़े का अपहरण

करें अर्थात् उसकी चोरी की जाये।'

प्रभु के द्वारा कृष्ण-विरह में अपने दो सङ्गी भक्तों के निकट विलाप—

एत कहि' गौरहरि, दुइजनार कण्ठ धरि',
कहे,—''शुन, स्वरूप-रामराय।
काँहा करों, काँहा जाउ, काहाँ गेले कृष्ण पाउ,
दुँहे मोरे कह से उपाय॥'' २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीगौरहरि ने इतना कहकर श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी और श्रीरायरामानन्द प्रभु के गले में अपने हाथ डालकर उनसे कहा,—''हे स्वरूप, हे रामराय! सुनो। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मुझे कहाँ जाने पर कृष्ण मिलेंगे, आप दोनों मुझे उसका उपाय बताओ।''

एइमत गौरप्रभु प्रति दिने-दिने।
विलाप करेन स्वरूप-रामानन्द-सने॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—इस प्रकार श्रीगौरहरि दिन-प्रतिदिन श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय के समक्ष विलाप करते थे।

प्रभु के विरह में स्वरूप और रामराय के द्वारा सान्त्वना—

सेइ दुइजन प्रभुरे करे आश्वासन।
स्वरूप गाय, राय करे श्लोक पठन॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय श्रीमन्महाप्रभु को आश्वासन प्रदान करते। श्रीस्वरूप दामोदर गान करते तथा श्रीरामानन्द राय श्लोक का उच्चारण करते।

प्रभु के भाव के उपयोगी प्रिय ग्रन्थ समूह—

कर्णामृत, विद्यापति, श्रीगीतगोविन्द।
इहार श्लोक-गीते प्रभुर कराय आनन्द॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द श्रीकृष्णकर्णामृत के श्लोकों, श्रीविद्यापति द्वारा रचित गीतों और श्रीगीत-गोविन्द के पदों से श्रीमन्महाप्रभु को आनन्दित करते थे।

गोपियों की दासी के अभिमान में प्रभु को सर्वत्र कृष्णलीला का दर्शन और उसका अन्वेषण—

एकदिन महाप्रभु समुद्र जाइते।
पुष्पेर उद्यान तथा देखेन आचम्भिते॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—एकदिन श्रीमन्महाप्रभु ने समुद्र की ओर जाते समय मार्ग में अकस्मात् एक पुष्पों के उद्यान को देखा।

वृन्दावन-भ्रमे ताँहा पशिला धाञा।
प्रेमावेशे बुले ताँहा कृष्ण अन्वेषिया॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—उस उद्यान में वृन्दावन का भ्रम होने से श्रीमन्महाप्रभु उसकी ओर दौड़कर उसमें प्रविष्ट हो गये तथा प्रेमाविष्ट होने के कारण वहाँ श्रीकृष्ण को ढूँढ़ते हुए भ्रमण करने लगे।

रासे राधा लञा कृष्ण अन्तर्द्धान कैला।
पाछे सखीगण जैछे चाहि' बेड़ाइला॥ ३० ॥
सेइ भावावेशे प्रभु प्रति-तरुलता।
श्लोक पड़ि' पड़ि' चाहि' बुले यथा तथा॥ ३१ ॥

३०-३१। प० अनु०—रासलीला के समय श्रीकृष्ण के द्वारा श्रीराधा जी को लेकर अन्तर्ध्यान हो जाने पर जैसे सखियाँ उन्हें ढूँढ़ते हुए भ्रमण कर रही थी, ठीक उसी भाव के आवेश में श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण को इधर-उधर ढूँढ़ते हुए प्रत्येक वृक्ष-लता के निकट जाकर श्लोक उच्चारण करते हुए कहने लगे—।

कृष्ण-विरहिणी गोपियों के द्वारा सर्वत्र चेतनामय कृष्ण और कृष्णभक्त के प्रति दृढ़ विश्वास वशतः कृष्ण को ढूँढ़ना (उद्घूर्णा); प्रत्येक वृक्ष से कृष्ण के विषय में पूछना—श्रीमद्भागवत (१०.३०.९ और ७-८) में—

चूतप्रियाल-पनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्क बिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः
शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः॥ ३२ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३२। हे चूत, (आम की एक विशेष जाति), प्रियाल, कटहल, आसन, कोविदार, जम्बु, अर्क, बिल्व, बकुल, आम, कदम्ब, नीप (विशेष कदम्ब इत्यादि वृक्ष) एवं हे अन्यान्य यमुना के तट के निवासी परम-मङ्गल चित्त वाले (अन्यों के हित का व्रत धारण करने वाले) वृक्षों, रहित-आत्म-स्वरूप (शून्य मन वाले) हमें, कृष्ण कहाँ पर हैं, बतलाओ।

अनुभाष्य

३२। भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा गोपियों के साथ रासलीला करते-करते अचानक अन्तर्ध्यान होने पर उन्हें नहीं देखकर एकान्तिक कृष्णमय चित्तवाली गोपियाँ उन्हें ढूँढ़ रही हैं—

चूतप्रियालपनसासनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः (समीपवर्त्तिनः फलवृक्षादीन् आहुः—हे चूत, हे प्रियाल, हे कण्टक, हे पीतशाल, हे कोविदार, हे जम्बो, हे अर्क, हे बिल्व, हे बकुल, हे आम्र, हे कदम्ब, हे नीप, यूयं) ये अन्ये (ते च हे वृक्षाः) परार्थभवकाः (परार्थमेव भवः जन्म येषां ते,) यमुनोपकूलाः, (यमुनायाः कालिन्द्याः उपकूले तटभूमौ वर्त्तमानाः तरवः ते भवन्तः) रहितात्मनां (शून्य-मनसां) नः (अस्माकं) कृष्ण-पदवीं (कृष्णमार्गं) शंसन्तु (कथयन्तु)।

श्रीतुलसी से कृष्ण के विषय में जिज्ञासा—

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः॥ ३३॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३३। ओह कल्याणि, गोविन्द-चरण प्रिये तुलसि, तुम—अच्युत को अत्यन्त प्रिय हो; क्या तुमने कृष्ण को भवरों के साथ तुम्हें धारण किये हुए जाते देखा है?

अनुभाष्य

३३। हे कल्याणि, (सौभाग्यशालिनि,) गोविन्द-चरणप्रिये, (गोविन्दस्य चरणप्रिये), तुलसि, अलिकुलैः सह त्वा (त्वां) विभ्रत ते (तव) अतिप्रियः अच्युतः (गोविन्दः) कच्चित् त्वया किं दृष्टः?

पुष्पों के वृक्षों से कृष्ण के विषय में पूछना—

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके।
प्रीतिं वो जनयन् यातः करस्पर्शेन माधवः॥ ३४॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३४। हे मालति, हे मल्लिके, हे जाति, हे यूथिके, क्या तुमने तुम्हें अपने हाथों से स्पर्श करके तुम्हारे आनन्द को उत्पन्न करने वाले कृष्ण को जाते देखा है?

अनुभाष्य

३४। हे मालति, हे मल्लिके, हे जाति, हे यूथिके, करस्पर्शेन वः (युष्माकं) प्रीतिं जनयन् यातः (प्रस्थितः) माधवः वः (युष्माभिः) कच्चित् अदर्शि (दृष्टम्)?

श्लोक का अर्थ; कृष्ण में तन्मयता को प्राप्त करने वाली विरहिणी गोपियों के द्वारा कृष्ण को ढूँढ़ते हुए विलाप—

''आम्र, पनस, पियाल, जम्बु, कोविदार।
तीर्थवासी सबे, कर पर-उपकार॥३५॥
कृष्ण तोमार इँहा आइला, पाइला दरशन?
कृष्णेर उद्देश कहि' राखह जीवन॥'' ३६॥

३५-३६। प० अनु०—[गोपियों के भाव में आविष्ट श्रीगौरहरि श्लोक का अर्थ करते हुए कहने लगे—] ''हे आम्र वृक्ष! हे कटहल वृक्ष! हे पियाल वृक्ष! हे जामुन वृक्ष! हे कोविदार! आप सब तीर्थवासी अर्थात् यमुना तीर्थ के तट पर वास करने वाले होने के कारण सदैव अन्यों का हित ही करते हैं। श्रीकृष्ण आपके यहाँ आये थे, क्या आपने उनके दर्शन किये हैं? हमें श्रीकृष्ण के विषय में बतलाकर हमारे जीवन की रक्षा कीजिए।''

उत्तर ना पाञा पुनः करे अनुमान।
'एइ सब—पुरुष-जाति, कृष्णेर सखार समान॥३७॥

३७। प० अनु०—वृक्षों से कोई भी उत्तर नहीं मिलने पर उन्होंने पुनः अनुमान लगाया कि ''ये सब वृक्ष तो पुरुष जाति के होने के कारण श्रीकृष्ण के सखा के समान हैं।

ए केने कहिबे कृष्णेर उद्देश आमाय?
ए—स्त्रीजाति लता, आमार सखीप्राय॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—''ये वृक्ष हमें श्रीकृष्ण के विषय में किसलिए बतायेंगे? इस वन में जो स्त्री-जाति लताएँ हैं, ये तो हमारी सखियों जैसी हैं।

अवश्य कहिबे,—पाञ्चाछे कृष्णेर दर्शने।'
एत अनुमानि' पुछे तुलस्यादि-गणे॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—''स्त्री-जातीय लताएँ तथा बूटियाँ तो हमें अवश्य ही बतलायेंगी कि इन्होंने श्रीकृष्ण के दर्शन प्राप्त किये हैं।'' ऐसा अनुमान करके उन्होंने तुलसी आदि से पूछा—।

''तुलसि, मालति, यूथि, माधवी, मल्लिके।
तोमार प्रिय कृष्ण आइला तोमार अन्तिके?? ४०॥

४०। प० अनु०— ''हे तुलसि! हे मालति! हे यूथि! हे माधवि! हे मल्लिके! क्या तुम्हारे प्रिय श्रीकृष्ण तुम्हारे अन्तर्महल में आये थे?

तुमि-सब—हओ आमार सखीर समान।
कृष्णोद्देश कहि' सबे राखह पराण॥'' ४१ ॥

४१। प० अनु०—''तुम सब तो मेरी सखियों के समान हो। मुझे कृष्ण के विषय में बतलाकर मेरे प्राणों की रक्षा करो।''

उत्तर ना पाञा पुनः भावेन अन्तरे।
'एह—कृष्णदासी, भये ना कहे आमारे॥' ४२ ॥

४२। प० अनु०—लताओं और बूटियों से भी उत्तर नहीं मिलने पर पुनः मन में विचार करने लगे—''ये सब तो कृष्ण की दासियाँ हैं, ये भय के कारण हमें कुछ भी नहीं बतला रही हैं।''

आगे मृगीगण देखि' कृष्णाङ्ग-गन्ध पाञा।
तार मुख देखि' पुछेन निर्णय करिया॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—थोड़ी आगे चलने पर हिरणी को देखकर तथा कृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध पाकर वे उस हिरणी के मुख को देखकर कुछ निर्णय करते हुए [गोपियों के द्वारा उच्चारित श्लोक के उच्चारण द्वारा] पूछने लगे—।

हरिणी से कृष्ण के विषय में जिज्ञासा—श्रीमद्भागवत (१०.३०.११) में—

अप्येण-पत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रै-
स्तन्वन् दृशां सखी सुनिर्वृत्तिमच्युतो वः।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुंकुम-रञ्जितायाः
कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः॥ ४४ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

४४। कान्ता के अङ्ग-सङ्ग के द्वारा कुचकुंकुम से रञ्जित कुन्द की माला को धारण करने वाले कृष्ण की गन्ध इस ओर से आ रही है। हे मृगि, राधिका के साथ कृष्ण तुम्हारे नेत्रों के आनन्द को वर्धित करके क्या इस पथ से गये हैं?

अनुभाष्य

४४। गोपियों के साथ रासलीला करते-करते अचानक भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्ध्यान होने पर केवलमात्र कृष्ण में ही चित्त को लगाने वाली गोपियाँ विरह में उन्हें ढूँढ़ रही हैं—

हे सखि, एणपत्नि (हरिणि), अच्युतः (कृष्णः) प्रिययया (सह वर्तमानः) गात्रैः (अङ्गसङ्गैः) वः (युष्माकं) दृशां (नयनानां) सुनिर्वृत्तिः (सुखं) तन्वन् (वर्धयन्) इह अपि (किम्) उपगतः? (यतः) कुलपतेः (कृष्णस्य) कान्ताङ्गसङ्गकुच-कुंकुमरञ्जितायाः (कान्ताङ्गसङ्गोत्थ-वक्षःस्थ-कुंकुमरागेण विभूषितायाः) कुन्दस्रजः (कुन्दपुष्पमालायाः) गन्धः इह वाति (प्रवहति)।

श्लोकार्थ—

''कह, मृगि, राधा-सह श्रीकृष्ण सर्वथा।
तोमाय सुख दिते आइला? ना कह अन्यथा॥ ४५॥

४५। प० अनु०—''हे हिरणी! बतलाओ तो कि राधा के साथ कृष्ण तुम्हें सब प्रकार से प्रसन्न करने के लिये यहाँ आये थे ना? हमें ठीक-ठीक बतलाना, वञ्चित मत करना।

राधा-प्रियसखी आमरा, नहि बहिरङ्ग।
दूर हैते जानि तार जैछे अङ्ग-गन्ध॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—''हम श्रीराधा की प्रिय सखियाँ हैं, हम कोई बाहर की नहीं हैं। हम दूर से ही कृष्ण की अङ्ग-गन्ध को पहचान लेती हैं।

राधा-अङ्ग-सङ्गे कुचकुंकुम-भूषित।
कृष्ण-कुन्दमाला-गन्धे वायु—सुवासित॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—''श्रीराधा जी के अङ्ग के सङ्ग से उनके कुचकुंकुम से विभूषित श्रीकृष्ण की कुन्द माला की गन्ध से वायु सुवासित हो रही है।

कृष्ण इँहा छाड़ि' गेला, इँह—विरहिणी।
किबा उत्तर दिबे एइ,—ना शुने काहिनी॥'' ४८ ॥

४८। प० अनु०—[उत्तर प्राप्त नहीं होने पर अनुमान करते हुए कहने लगे—] ''श्रीकृष्ण तो इस बेचारी हिरणी को छोड़ गये हैं, यह तो स्वयं ही विरहिणी है। यह क्या उत्तर देगी, इसके कानों में तो हमारी बात ही नहीं पहुँच रही है।''

वृक्षों से कृष्ण के विषय में पूछना—

आगे वृक्षगण देखे पुष्पफलभरे।
शाखा सब पड़ियाछे पृथिवी-उपरे॥ ४९ ॥
कृष्णे देखि' एइ सब करेन नमस्कार।
कृष्णगमन पुछे तारे करिया निर्द्धार॥ ५० ॥

४९-५०। प० अनु०—आगे उन्हें पुष्पों तथा फलों से सुशोभित ऐसे वृक्ष दिखलायी पड़े, जिनकी सभी शाखाएँ पृथ्वी की ओर झुकी हुई थी। उनके मन में आया कि श्रीकृष्ण को देखकर ही इन सबने झुककर नमस्कार किया होगा, इसलिए इन्होंने अवश्य ही श्रीकृष्ण को देखा है ऐसा सोचकर वे वृक्षों से कृष्ण के जाने के विषय में पूछने लगे—।

शास्त्रीय-दृष्टान्त—श्रीमद्भागवत (१०.३०.१२) में—

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः।
अन्वीयमान इह वस्तुरवः प्रणामं
किंवाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः॥ ५१ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

५१। हे समस्त वृक्षो, बतलाओ, राधिका के कन्धे पर भुजा को रखकर, हाथ में कमल धारण करके, तुलसी के रस के पान रूपी मद से अन्धप्राय होकर पीछे-पीछे गुञ्जार करते हुए भँवरों के द्वारा अनुसरण किये जाने वाले बलराम के अनुज कृष्ण ने चलते-चलते प्रणय (प्रेम) रूपी अवलोकन के द्वारा तुम्हारे प्रणाम को स्वीकार करके क्या अभिनन्दन किया है?

अनुभाष्य

५१। भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा रासलीला करते-करते अचानक अन्तर्ध्यान होने पर उसे देखकर एकान्तिक कृष्णैकप्राणा गोपियाँ उन्हें ढूँढ़ रही हैं—

हे तरवः, (वृक्षाः), प्रियांसे (प्रियायाः स्कन्धे) बाहुं (वामभुजम्) उपधाय (संन्यस्य) गृहीतपद्मः (दक्षिण-भुजधृत लीलाकमलः) मदान्धैः (रसपानमदेन अन्धैः) तुलसिकालिकुलैः (तुलसिकायाः अलिकुलैः) अन्वीयमानः (अनुगम्यमानः) रामानुजः (कृष्णः) इह चरन् प्रणयालोकैः वः (युष्माकं) प्रणामं किम् अभिनन्दति वा?

श्लोकार्थ—

''प्रिया-मुखे भृङ्ग पड़े, ताहा निवारिते।
लीलापद्म चालाइते हैल अन्यचित्ते॥ ५२ ॥
तोमार प्रणामे कि कैराछेन अवधान?
किबा नाहि करेन, कह वचन प्रमाण॥ ५३ ॥

५२-५३। प० अनु०—''श्रीकृष्ण अपनी प्रिया

श्रीराधा के मुख पर गुञ्जार कर रहे भँवरे को भगाने के लिये लीलाकमल को घुमाते हुए अन्यमनस्क हो गये होंगे, क्या उन्होंने तुम्हें प्रणाम करते हुए देखा है या फिर नहीं? हमें ठीक-ठीक बात बतला दो।

कृष्णेर वियोगे एइ सेवक दुःखित।
किबा उत्तर दिबे? इहार नाहिक सम्वित्॥'' ५४ ॥

५४। प० अनु०—[उत्तर नहीं मिलने पर उन्होंने विचार किया—]''श्रीकृष्ण के वियोग में ये सेवक भी तो अत्यन्त दुःखी हैं, यह क्या उत्तर देगें, इनमें तो चेतना ही नहीं है।''

अनुभाष्य

५४। सम्वित्,—ज्ञान, चैतन्य।

कृष्ण-रूप-दर्शन की प्राप्ति—

एत बलि' आगे चले यमुनार कूले।
देखे,—ताँहा कृष्ण हय कदम्बेर तले॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—इतना कहकर वे चलते-चलते यमुना के तट पर पहुँच गये, वहाँ उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण कदम्ब के वृक्ष के नीचे खड़े हुए हैं।

कोटिमन्मथमोहन मुरली-वदन।
अपार सौन्दर्ये हरे जगन्नेत्र-मन॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—श्रीकृष्ण का मुरली से युक्त मुख करोड़ों-करोड़ों मन्मथों को मोहित करने वाला है, उनका अपार सौन्दर्य जगत्-वासियों के नेत्रों तथा मन का हरण करने वाला है।

कृष्ण के दर्शन से प्रभु की मूर्च्छा और भक्तों के द्वारा सचेत करना—

सौन्दर्य देखिया भूमे पड़े मूर्च्छा पाञा।
हेनकाले स्वरूपादि मिलिला आसिया॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—[गोपी-भाव में आविष्ट] श्रीमन्महाप्रभु भी [गोपियों की भाँति] श्रीकृष्ण के सौन्दर्य को देखकर भूमि पर अचेतन होकर गिर पड़े, उस समय श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्त भी वहाँ पर उपस्थित हुए।

पूर्ववत् सर्वाङ्गे सात्त्विकभावसकल।
अन्तरे आनन्द-आस्वाद, बाहिरे विह्वल॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के समस्त अङ्गों में पहले की भाँति समस्त सात्त्विक भाव प्रकाशित हो रहे थे। वे हृदय में तो आनन्द का आस्वादन कर रहे थे किन्तु बाहर में व्याकुल हो रहे थे।

पूर्ववत् सबे मिलि' कराइला चेतन।
उठिया चौदिके प्रभु करेन दर्शन॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—पहले की भाँति सभी भक्तों ने मिलकर श्रीमन्महाप्रभु को चेतन कराया। श्रीमन्महाप्रभु उठकर चारों ओर देखते हुए कहने लगे-।

कृष्ण के दर्शन से वञ्चित प्रभु के द्वारा विलाप—

''काँहा गेला कृष्ण? एखन पाइनु दरशन!
जाँहार सौन्दर्य मोर हरिल नेत्र-मन!! ६० ॥

६०। प० अनु०—''कृष्ण कहाँ चले गये? मुझे अभी-अभी तो उनके दर्शन हुए थे! उनके सौन्दर्य ने मेरे नेत्रों तथा मन का हरण कर लिया है।''

पुनः केने ना देखिये मुरली-वदन!
ताँहार दर्शन-लोभे भ्रमय नयन॥'' ६१ ॥

६१। प० अनु०—''मैं पुनः उन मुरली-वदन को क्यों नहीं देख पा रहा हूँ! उनके दर्शन के लोभ से मेरे नेत्र भ्रमण कर रहे हैं।''

विशाखा के प्रति कृष्ण के दर्शन के लिये तृष्णार्त्त श्रीराधा के वचन—

विशाखारे राधा जैछे श्लोक कहिला।
सेइ श्लोक महाप्रभु पड़िते लागिला॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—श्रीराधा रानी ने विशाखा सखी को जो श्लोक सुनाया था, श्रीमन्महाप्रभु उसी श्लोक का उच्चारण करने लगे—।

चित्रजल्पोक्ति—गोविन्दलीलामृत (८.४) में श्रीराधिका के वचन —

नवाम्बुद-लसद्द्युतिर्नवतड़िन्मनोज्ञाम्बरः
सुचित्रमुरलीस्फुरच्छरदमन्दचन्द्राननः।
मयूरदलभूषितः सुभगतारहार प्रभः
स मे मदनमोहनः सखि तनोति नेत्रस्पृहाम्॥ ६३ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

६३। हे सखि, नवीन मेघों को सुशोभित करने वाली नव-विद्युत की भाँति मनोहर पीताम्बर धारण करने वाले, सुन्दर मुरली को धरण किये हुए, पूर्ण शरत् चन्द्र जैसे मुख से सुशोभित, मयूर के पंख से विभूषित, अत्यधिक उज्ज्वल तारा (मुक्ता) हार की प्रभा से युक्त, वे मदन मोहन मेरे नेत्रों की स्पृहा का विस्तार कर रहे हैं।

अनुभाष्य

६३। हे सखि, नवाम्बुद-लसद्-द्युतिः (नवाम्बुदात् नवमेघादपि लसन्ती शोभमाना द्युतिः कान्तिः यस्य सः) नवतड़िन्मनोज्ञाम्बरः (नवतड़ितः नवीनसौद्यामिन्याः अपि मनोज्ञे रुचिरे अम्बरे वसने यस्य सः) सुचित्रमुरली-स्फुरच्छरदमन्द चन्द्राननः (सुष्ठु चित्रया मनोज्ञया मुरल्या स्फुरत् शोभमानं शरदि अमन्दः पूर्णचन्द्रः इव आननं यस्य सः) मयूरदलभूषितः (शिखिपिच्छशोभितः), सुभग-तारहार प्रभः (सुभगाः सुदीप्ता तारा इव हारस्य प्रभा यस्य सः) सः मदन मोहनः (मदयति सम्भोगरस-पुष्ट्यर्थं विप्रलम्भांशे ग्लापयित्वा सम्भोगपुष्टिं करोति च इति मदनः ताभ्यां स्ववशीकरोति इति मोहनः स चासौ स च इति) मे (मम) नेत्रस्पृहां (नयनदिदृक्षां) तनोति (वर्धयति)।

श्लोक का अर्थ; कृष्ण के रूप का वर्णन (चित्रजल्प)—[यथा रागः]

''नवघनस्निग्धवर्ण, दलिताञ्जन-चिक्कण,
इन्दीवर-निन्दि सुकोमल।
जिनि' उपमार गण, हरे सबार नेत्र-मन,
कृष्णकान्ति परम प्रबल॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०— अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

६४। [श्रीमती राधा के भाव में आविष्ट श्रीगौरहरि उपरोक्त श्लोक का अर्थ करते हुए कहने लगे—] श्रीकृष्णकान्ति,—दलित (मर्दित) अञ्जन की चिक्कणता को पराजित करके नवीन-मेघ की भाँति स्निग्ध वर्ण वाली है, वह इन्दीवर (नीले कमल) की अपेक्षा सुकोमल [सभी के नेत्रों तथा मन को हरण करने वाली, परम प्रबल] एवं समस्त उपमाओं से अतीत है।

कह, सखि, कि करि उपाय?
कृष्णाद्भुत बलाहक, मोर नेत्र-चातक,
ना देखि' पियासे मरि' जाय॥ ६५ ॥

कृष्ण के रूप की उपमा—

सौदामिनी पीताम्बर, स्थिर नहे निरन्तर,
मुक्ताहार बकपाँति भाल।
इन्द्रधनु-शिखिपाखा, उपरे दियाछे देखा,
आर धनु वैजयन्ती-माल॥ ६६ ॥

मुरलीर कलध्वनि, मधुर गर्जन शुनि',
वृन्दावने नाचे मयूरचय।
अकलङ्क पूर्णकल, लावण्य-ज्योत्सना झलमल,
चित्रचन्द्र ताहाते उदय॥ ६७ ॥

कृष्ण-दर्शन रूपी सुख से वञ्चित श्रीराधा के द्वारा अपने दुर्भाग्य का वर्णन—

लीलामृत-वरिषणे, सिञ्चे चौद्द भुवने,
हेन मेघ जबे देखा दिल।
दुर्दैव-झण्झापवने, मेघे निल अन्यस्थाने,
मरे चातक, पिते ना पाइल॥'' ६८ ॥

६५-६८। प० अनु०— अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

६५-६८। हे सखि, श्रीकृष्ण—अद्भुत मेघस्वरूप

हैं, मेरे नेत्र रूपी चातक उस मेघ को नहीं देखकर प्यास से मर रहे हैं। कृष्ण का जो पीताम्बर है, वह उस मेघ में विद्युत-स्वरूप है; किन्तु वह—अस्थिर है। उनके गले में जो मुक्ता का हार है, वह मेघ के (सफेद) निम्नभाग में बक अर्थात् बगुलों की श्रेणी की भाँति शोभायमान है। उनका जो मयूरपंख है, वह—मेघ में स्थित इन्द्रधनुष की भाँति है; उनकी (पाँच वर्णों से युक्त) वैजयन्ती-माला (भी) इन्द्रधनुष के समान है। कृष्ण के मुख से निकली जो मुरली की कल (मधुर) ध्वनि है, वह—कृष्णरूपी मेघ की मधुर गर्जन-स्वरूप है; उसे सुनकर वृन्दावन के मयूर नृत्य कर रहे हैं। कृष्ण के लावण्य की ज्योत्सना अकलङ्क पूर्ण (सोलह) कला युक्त अपूर्व चन्द्र की भाँति उदित हुई है। कृष्ण-मेघ का लीलामृत-वर्षण चौदह भुवन को सिञ्चित कर रहा है। उस कृष्णरूप मेघ ने जब दर्शन दिये, तब मेरे दुर्दैव रूपी बवण्डर ने उस मेघ को एक स्थान से अन्य स्थान पर भेज दिया। अब मेघ को नहीं देखकर मेरा नेत्र रूपी चातक—जल के अभाव में मृत की भाँति है।

अमृतप्रवाह भाष्य

६५। बलाहक,—मेघ।

अमृतप्रवाह भाष्य

६७। अकलङ्क पूर्ण-कल,—कलङ्कहीन एवं परिपूर्ण सोलह कलाओं के साथ उदित विचित्र चन्द्र।

अमृतप्रवाह भाष्य

६८। झाण्झा-बात,—बवण्डर।

अनुभाष्य

६४-६६। मध्य-लीला के एकविंश परिच्छेद की १०९ वीं संख्या द्रष्टव्य।

रामानन्द के द्वारा प्रभु के भाव के उपयोगी श्लोक का पाठ; स्वयं प्रभु के द्वारा उसकी व्याख्या—

पुनः कहे,—''हाय हाय, पड़ पड़ रामराय'',
कहे प्रभु गद्‌गद आख्याने।
रामानन्द पड़े श्लोक, शुनि' प्रभुर हर्ष-शोक,
आपने प्रभु करेन व्याख्याने॥ ६९ ॥

६९। प॰ अनु॰—श्रीमन्महाप्रभु पुनः गद्‌गद वाणी में कहने लगे,—''हाय, हाय! हे रामानन्द राय! बोलो-बोलो।'' श्रीरामानन्द राय ने निम्नलिखित एक श्लोक का उच्चारण किया, जिसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु को हर्ष तथा शोक हुआ। उसे सुनकर श्रीमन्महाप्रभु स्वयं उसकी व्याख्या करने लगे—।

अनुभाष्य

६९। हर्ष-शोक,—कृष्ण के माधुर्य के श्रवण से 'हर्ष', उनके विरह में 'शोक'।

चित्रजल्पोक्ति—श्रीमद्भागवत (१०.२९.३९) में—

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रि-
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयञ्च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणञ्च भवाम दास्यः॥ ७० ॥

७०। अनु॰—[गोपियों ने कहा—] हे कृष्ण, आपका अलकाओं से आवृत मुख, आपके कुण्डलों की शोभा, आपका कपोल-अधर-अमृतयुक्त मन्द हास्य के साथ में देखना, अभय प्रदान करने वाली दो भुजाएँ एवं एकमात्र श्री (श्रीवत्स) द्वारा शोभायमान वक्ष को देखकर ही हम आपकी दासी बनी हैं।

अनुभाष्य

७०। मध्य-लीला के चतुर्विंश परिच्छेद की ४८ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्लोक का अर्थ; गोपियों के प्रति कृष्ण के रूप के माधुर्य के बल के प्रयोग का वर्णन (चित्रजल्प)—

[यथा रागः]

''कृष्ण जिनि' पद्म-चान्द, पातियाछे मुख-फान्द,
ताते अधर मधुस्मित चार।
व्रजनारी आसि' आसि', फान्दे पड़ि' हय दासी,
छाड़ि' लाज-पति-घर-द्वार॥ ७१ ॥

बान्धव कृष्ण करे व्याधेर आचार।
नाहि माने धर्माधर्म, हरे नारी-मृगी-मर्म,
करे नाना उपाय ताहार॥ ७२ ॥
गण्डस्थल झलमल, नाचे मकर-कुण्डल,
जेइ नृत्ये हरे नारीचय।
सस्मित कटाक्ष-बाणे, ता-सबार हृदये हाने,
नारी-वधे नाहि किछु भय॥ ७३ ॥
अति उच्च सुविस्तार, लक्ष्मी-श्रीवत्स-अलङ्कार,
कृष्णेर जे डाकातिया वक्ष।
व्रजदेवी लक्ष लक्ष, ता-सबार मनोवक्ष,
हरिदासी करिबारे दक्ष॥ ७४ ॥
सुललित दीर्घार्गल, कृष्णेर भुजयुगल,
भुज नहे,—कृष्णसर्पकाय।
दुइ शैल-छिद्रे पशे, नारीर हृदये दंशे,
मरे नारी से विषज्वालाय॥ ७५ ॥
कृष्ण-कर-पदतल, कोटिचन्द्र-सुशीतल,
जिनि' कर्पूर-वेणामूल-चन्दन।
एकबार जार स्पर्शे, स्मरज्वाला-विष नाशे,
जार स्पर्शे लुब्ध नारी-मन॥'' ७६ ॥

७१-७६। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

७१-७६। [राधाभाव में आविष्ट श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—] चन्द्र और कमल को अपनी अङ्ग प्रभा से पराजित करके (गोपीरूपी) हिरणी को पकड़ने के लिये कृष्ण ने मुख रूपी फन्दे को बिछाया है; उस फन्दे में मधुर हँसी रूपी चारा अर्थात् (गोपीरूपी) हिरणी को फँसाने के लिये झूठ-मूठ का खाद्य पदार्थ रखा गया है। घर, द्वार, पति और लज्जा का परित्याग करके व्रजस्त्री रूपी हिरणियाँ उस फन्दे में फँसकर दासियाँ बन रही हैं। ओहो, हमारे बान्धव श्रीकृष्ण इस प्रकार व्याध (शिकारी) जैसा आचरण ही करते हैं। वह व्याध धर्म और अधर्म को नहीं मानता,—वह व्रजरमणी रूपी हिरणियों के मर्म (हृदय) का हरण करने के लिये अनेक प्रकार के उपायों की सृष्टि करता है; उसके कपोलों पर मकर-कुण्डल झलमल करते हुए नृत्य करके स्त्रियों के मन का हरण करते हैं; व्रजरमणियों के हृदय में सहास्य कटाक्ष-बाण को बेंधकर वह व्याध नारी-वध से कोई भय नहीं करता। कृष्ण का (दस्यु की भाँति लूटने की इच्छा से युक्त उनका) चौड़ा वक्ष:स्थल, जिस पर लक्ष्मी और श्रीवत्स (दक्षिणावर्त्त रोमावली)—ये दो चिह्न अलङ्कार-स्वरूप हैं, वह लाखों-लाखों व्रजदेवियों एवं उनके मन और वक्ष को बलपूर्वक आकर्षित करके उन हरि की ही दासी बना डालता है। कृष्ण की अत्यधिक सुन्दर अत्यन्त चौड़ी-अर्गल (कुण्डी)-स्वरूप काले सर्प के आकार वाली दो भुजाएँ नारियों के दो पर्वत रूपी स्तनों के बीच में प्रवेश करके उनके हृदय को डसती हैं। (गोपियाँ उस स्पर्शरूपी डसने के विष से काम-ज्वाला में जल उठती हैं); कृष्ण के हाथ और चरण के तलवे कर्पूर, वेणामूल और चन्दन को पराजित करके करोड़ों चन्द्रों के समान सुशीतल हैं। वे एकबार जिन्हें स्पर्श करते हैं, उनका कन्दर्प-ज्वाला रूपी विष नष्ट हो जाता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

७४। डाकातिया वक्ष,—डकैत की भाँति (कृष्ण का) जो वक्ष है, वह समस्त व्रजस्त्रियों को बलपूर्वक खींच लेता है।

अनुभाष्य

७४। लक्ष्मी,—वक्ष:स्थल के वाम भाग में स्वर्ण-रेखा का चिह्न; श्रीवत्स,—वक्ष:स्थल के दक्षिण में श्रीवत्स का चिह्न अथवा दक्षिणावर्त्त रोमावली।

अमृतप्रवाह भाष्य

७५। शैल-छिद्रे,—हृदयस्थ दोनों स्तनों के छिद्र अर्थात् मध्यस्थल में।

अनुभाष्य

७६। वेणामूल,—सुगन्धित खसखस।

कृष्ण-विरही प्रभु के द्वारा श्लोक का पाठ—

एतेक विलाप करि' विषादे श्रीगौरहरि,
एइ अर्थे पड़े एक श्लोक।
एइ श्लोक पाञा राधा, विशाखारे कहे राधा,
उघाड़िया हृदयेर शोक॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—श्रीगौरहरि ने इस प्रकार विलाप करने के पश्चात् दु:ख में भरकर उसी भाव के अनुरूप एक श्लोक का उच्चारण किया, जिस श्लोक के द्वारा श्रीराधिका अपने हृदय के शोक को सम्पूर्ण रूप में खोलकर विस्तृत रूप में श्रीविशाखा सखी को कहती थी—।

श्रीराधा की कृष्ण-दर्शन की तृष्णा—गोविन्द-लीलामृत (८.७) में —

हरिण्मणिकवाटिकाप्रततहारिवक्ष:स्थल:
स्मरार्त्ततरुणीमन:कलुषहारिदोरर्गल:।
सुधांशुहरिचन्दनोत्पलसिताभ्रशीताङ्गक:
स मे मदनमोहन: सखि तनोति वक्ष:स्पृहाम्॥ ७८ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

७८। हे सखि, जिनका वक्ष:स्थल—इन्द्रनीलमणि से निर्मित कवाट की भाँति विस्तृत और मनोहर है, जिनकी दोनों भुजाएँ काम से आतुर स्त्रियों के मन: कलुष (काम ताप) का हरण करती हैं, जिनका वपु सुधांशु (चन्द्र), हरिचन्दन, उत्पल (कमल) और कर्पूर की शीतलता को धारण करता है, वे मदनमोहन मेरे वक्ष की स्पृहा का विस्तार कर रहे हैं।

अनुभाष्य

७८। हे सखि, हरिण्मणिकवाटिका- प्रततहारि-वक्ष:स्थल: (हरिण्मणिभि: इन्द्रनीलमणिभि: रचिताया: कवाटीकाया: प्रतति: विस्तृति: तां हर्त्तुं शीलं यस्य तथाभूतं च वक्ष:स्थलं यस्य स:) स्मरार्त्ततरुणीमन: कलुष-हारिदोरर्गल: (स्मरार्त्तानां मदनपीड़तानां तरुणीनां युवतीनां मन:कलुषं मनस्तापं हर्त्तुं भुजरूपार्गल: यस्य स:) सुधांशु-हरिचन्दनोत्पलसिताभ्रशीताङ्गक: (सुधांशु: शशधर: च हरिचन्दनं च उत्पलं कुवलयं पद्मं कमलं च सिताभ्र: कर्पूर: च एभ्योऽपि शीतलं अङ्गं यस्य स:) मदनमोहन: मे (मम) वक्ष: स्पृहां तनोति।

कृष्ण के दर्शन से वञ्चित प्रभु का विलाप—

प्रभु कहे—"कृष्ण मुइ एखन देखिनु।
आपनार दुर्दैवे पुन: हाराइनु॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"मैंने अभी-अभी श्रीकृष्ण को देखा, किन्तु अपने ही दुर्भाग्य के कारण मैंने उन्हें पुन: खो दिया है।

चञ्चल स्वभाव कृष्णेर, ना रय एकस्थाने।
देखा दिया मन हरि' करे अन्तर्द्धाने॥" ८० ॥

८०। प० अनु०—"श्रीकृष्ण का स्वभाव बहुत चञ्चल है, वे किसी एक स्थान पर नहीं रहते। श्रीकृष्ण एकबार अपने दर्शन देकर मन का हरण कर लेते हैं तथा फिर अन्तर्ध्यान हो जाते हैं।"

गोपीप्रेम को वर्धित करने के लिये कृष्ण का रास से अन्तर्ध्यान होना—

श्रीमद्भागवत (१०.२९.४८) में—

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य माणञ्च केशव:।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥ ८१ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

८१। उनके अर्थात् गोपियों के सौभाग्य-अहङ्कार को देखकर कृष्ण उसे प्रशमित करने के लिये और उनके प्रति कृपा करने के लिये उस स्थान से अन्तर्ध्यान हो गये।

अनुभाष्य

८१। महाभागवत श्रीशुकदेव शुश्रूषु परीक्षित के समक्ष श्रीकृष्ण की रासलीला का वर्णन कर रहे हैं—

केशव: (कश्च ईशश्च तौ वशयतीति तथा स: कृष्ण:) तासां (गोपीनां) तत्-सौभगमदं (तेषां सौभाग्यमूलगर्वं) मानं (गर्वं) च वीक्ष्य, तस्य प्रशमाय प्रसादाय तत्र (रासस्थल्याम्) एव अन्तरधीयत (अन्तर्हित: वभूव)।

स्वरूप को गान गाने की आज्ञा—

स्वरूप-गोसाञिरे कहेन,—''गाओ एक गीत।
जाते आमार हृदयेर हये त' 'सम्वित्'॥'' ८२ ॥

८२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर से कहा,— ''हे स्वरूप! तुम एक गीत गाओ, जिससे मेरे व्याकुल हृदय को स्थिरता की प्राप्ति हो।''

अनुभाष्य

८२। सम्वित्,—व्याकुल-चित्त में स्थिरज्ञान की प्राप्ति।

स्वरूप का गान—

स्वरूप-गोसाञि तबे मधुर करिया।
गीतगोविन्देर पद गाय प्रभुरे शुनाञा॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के वचन सुनकर श्रीस्वरूप दामोदर अत्यन्त मधुर स्वर से श्रीगीत-गोविन्द के पद को गाकर उन्हें सुनाने लगे।

गोपियों के द्वारा रास-रसिक कृष्ण का स्मरण—
गीतगोविन्द (२.३) में —

रासे हरिमिह विहितविलासम्।
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम्॥ ८४ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

८४। इस रास में बहु-विलास-युक्त एवं परिहास करने वाले हरि को मेरा मन स्मरण कर रहा है।

अनुभाष्य

८४। हे सखि, इह रासे (रासक्रीड़ायां) मम मनः विहित-विलासं (विहितः सम्पादितः विलासः येन तं) कृतपरिहासं (कृतः विहितः परिहासः येन तं) हरिं स्मरति।

गान को श्रवण करके प्रभु के द्वारा प्रेमावेश में नृत्य—

स्वरूप-गोसाञि जबे एइ पद गाहिला।
उठि' प्रेमावेशे तबे नाचिते लागिला॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—जब श्रीस्वरूप दामोदर ने उपरोक्त पद का गान किया तब श्रीमन्महाप्रभु उठकर प्रेमाविष्ट अवस्था में नृत्य करने लगे।

अष्टसात्त्विक-विकार और समस्त भावों का एक साथ में उदित होना—

'अष्टसात्त्विक' भाव अङ्गे प्रकट हइल।
हर्षादि 'व्यभिचारी' सब उथलिल॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के दिव्य कलेवर में अष्टसात्त्विक भाव प्रकटित हो गये। हर्ष आदि समस्त व्यभिचारी भाव भी उमड़ पड़े।

भावोदय, भाव-सन्धि, भाव-शाबल्य।
भावे-भावे महायुद्धे सबार-प्राबल्य॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के दिव्य कलेवर में भावों का उदय, भाव-सन्धि तथा भाव-शाबल्य एक साथ प्रकाशित हो उठे। सभी भाव परस्पर महायुद्ध करने लगे क्योंकि सभी अपने आप में बहुत प्रबल थे।

अनुभाष्य

८७। भावोदय,—अष्टसात्त्विक-भाव का उदय; भावसन्धि,—एक समान अथवा पृथक्-पृथक् दो भावों का मिलन; भाव-शाबल्य,—भाव-समूहों का परस्पर संमर्द (मर्दन, घर्षण)।

उस पद का गान, आस्वादन और नर्त्तन—

सेइ पद पुनः पुनः कराय गायन।
पुनः पुनः आस्वादये, करेन नर्त्तन॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर से पुनः पुनः उस एक ही पद का गान कराया तथा स्वयं पुनः पुनः उसका आस्वादन करते हुए नृत्य किया।

स्वरूप के कीर्त्तन का समापन—

एइमत नृत्य यदि हइल बहुक्षण।
स्वरूप-गोसाञि पद कैला समापन॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—इस प्रकार जब श्रीमन्महाप्रभु को नृत्य करते हुए बहुत समय हो गया, तब श्रीस्वरूप दामोदर

ने पद को गाना बन्द कर दिया।

प्रभु की अवस्था को देखकर स्वरूप के द्वारा गान बन्द करना—

'बल' 'बल' बलि' प्रभु कहेन बार बार।
ना गाय स्वरूप-गोसाञि श्रम देखि' ताँर॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु तब भी श्रीस्वरूप दामोदर को बारम्बार 'बोलो, बोलो' ही कहते रहे, किन्तु श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीमन्महाप्रभु के परिश्रम को देखकर गान नहीं किया।

सभी के द्वारा हरिध्वनि—

'बल' 'बल' प्रभु बलेन, भक्तगण शुनि'।
चौदिकेते सबे मेलि' करे हरिध्वनि॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को पुनः पुनः 'बोलो! बोलो!' कहते सुनकर उपस्थित सभी भक्त चारों ओर से हरिध्वनि करने लगे।

राय के द्वारा प्रभु की थकावट को दूर करना—

रामानन्द राय तबे प्रभुरे बसाइला।
व्यजनादि करि' प्रभुर श्रम घुचाइला॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०—तब श्रीरामानन्द राय ने श्रीमन्महाप्रभु को बैठाया तथा पंखा आदि झलकर उनके परिश्रम को दूर किया।

प्रभु का स्नान और भोजन के पश्चात् शयन—

प्रभुरे लञा गेला तबे समुद्रेर तीरे।
स्नान कराञा पुनः ताँरे लञा आइला घरे॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय श्रीमन्महाप्रभु को समुद्र के तट पर ले गये तथा उन्हें समुद्र में स्नान कराके पुनः घर पर ले आये।

भोजन कराञा प्रभुरे कराइला शयन।
रामानन्द-आदि सबे गेला निज-स्थान॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—तब श्रीरामानन्द राय ने श्रीमन्महाप्रभु को भोजन कराके शयन करा दिया, उसके पश्चात् श्रीरामानन्द राय आदि सभी भक्त अपने-अपने स्थान पर लौट गये।

गोपी-दासी के अभिमान में प्रभु के द्वारा वृन्दावन की लीला का उद्दीपन रूप दिव्योन्माद (उद्घूर्णा और चित्रजल्प)—

एइ त' कहिलुँ प्रभुर उद्यान-विहार।
वृन्दावन-भ्रमे जाँहा प्रवेश ताँहार॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु के उस उद्यान-विहार का वर्णन किया, जिसमें श्रीमन्महाप्रभु ने वृन्दावन के भ्रम से प्रवेश किया था।

विलाप-सहित एइ उन्माद-वर्णन।
श्रीरूप-गोसाञि इहा कैराछेन लिखन॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के इस विलाप-सहित उन्माद का श्रीरूप गोस्वामी ने वर्णन किया है—।

वृन्दावन की उद्दीपना से प्रेम के आवेश में कृष्णनाम का उच्चारण करने वाले प्रभु—
(स्तवमाला में प्रथम चैतन्याष्टक का षष्ठ श्लोक)

पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनालीकलनया
मुहुर्वृन्दारण्यस्मरणजनितप्रेमविवशः।
क्वचित् कृष्णावृत्तिप्रचलरसनो भक्तिरसिकः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम्॥ ९७॥

अमृतप्रवाह भाष्य

९७। समुद्र के तट पर सुन्दर उपवन की श्रेणी को देखकर प्रभु मुहुर्मुहु (पुनः पुनः) वृन्दावन के स्मरण के कारण प्रेम में विवश हो जाते थे; प्रचल (चञ्चल) रसना से भक्तिरसिक गौराङ्ग 'कृष्ण' 'कृष्ण' बोल रहे हैं,—ऐसे चैतन्यदेव क्या मेरे दर्शन पथ पर पुनः आविर्भूत होंगे?

पञ्चदश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

९७। क्वचित् यः पयोराशेः (समुद्रस्य) तीरे (तटे बालुकाखण्डे) स्फुरदुपवनालि-कलनया (स्फुरन्तीनां

सुशोभितानां उपवनालीनां उपवनपुञ्जानां कलनया अवलोकनेन) मुहुः (अनुक्षणं) वृन्दारण्यस्मरणजनित-प्रेमविवशः (वृन्दावनचिन्तोदयात् प्रेम्णा कृष्णप्रेमलालसया विवशः) अभूत्, कृष्णावृत्तिप्रचलरसनः (कृष्णेति नाम्नः सदाकीर्त्तनेन प्रचला चञ्चला रसना यस्य सः) भक्तिरसिकः सः चैतन्यः मे (मम) दृशोः (नयनयोः) पदं (मार्गं) पुनरपि किं यास्यति (प्राप्स्यति)?

पञ्चदश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

अनन्त चैतन्यलीला ना जाय लिखन।
दिङ्मात्र देखाञा ताहा करिये सूचन॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०— श्रीचैतन्य महाप्रभु की अनन्त लीलाओं को लिखा नहीं जा सकता, इसलिए मैं केवल उनके द्वारा की गयी लीलाओं का दिग्दर्शन कराके मात्र सूचना दे रहा हूँ।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिनकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहे हैं।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे उद्यानविहारो नाम पञ्चदशः परिच्छेदः।

❋❋❋

षोड़श परिच्छेद

कथासार—गौड़ीय-भक्तगण पुनः श्रीक्षेत्र में आये। उनके साथ रघुनाथदास के ज्ञाति (सम्बन्धयुक्त) चाचा कालिदास आये थे। कालिदास ने गौड़देश के समस्त वैष्णवों का अधरामृत प्राप्त किया था; उन्होंने झड्डुठाकुर तक के अधरामृत को प्राप्त किया था। उसी सुकृति के बल से उन्होंने नीलाचल में महाप्रभु के चरणामृत और प्रसाद को प्राप्त किया। सात वर्ष की आयु में कवि कर्णपूर ने महाप्रभु के निकट आकर हरिनाम महामन्त्र प्राप्त किया एवं उन्होंने उसी समय अपने कवित्व का परिचय भी दिया। वल्लभ-भोग को प्राप्त करके महाप्रभु ने फेलामृत (कृष्ण-उच्छिष्ट रूपी अमृत) के माहात्म्य का वर्णन किया एवं समस्त वैष्णवों को फेलामृत का सेवन कराके स्वयं कृष्ण के अधरामृत के सेवन में निमग्न हो गये। (अः प्रः भाः)

स्वयं आचरण करके भक्ति की शिक्षा प्रदान करने वाले गौर को प्रणाम—

वन्दे श्रीकृष्णचैतन्यं कृष्णभावामृतं हि यः।
आस्वाद्यास्वादयन् भक्तान् प्रेमदीक्षामशिक्षयत्॥ १॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। जिन्होंने कृष्णभावामृत स्वयं आस्वादन करके एवं भक्तों को भी उसका आस्वादन कराके, प्रेम-दीक्षा-विषयक दिव्यज्ञान की शिक्षा दी थी, मैं उन श्रीकृष्णचैतन्य की वन्दना करता हूँ।

अनुभाष्य

१। यः (महाप्रभुः) कृष्णभावामृतं (उन्नतोज्ज्वलरसं) स्वयं आस्वाद्य भक्तान् (निजाश्रितान्) आस्वादयन् प्रेम-दीक्षां (शुद्धप्रीतिमूलां भजनप्रणालीं) च अशिक्षयत् (उपदिदेश), तं श्रीकृष्णचैतन्यम् (अहं) वन्दे।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा समस्त गौर-भक्तों की जय हो।

नीलाचल में भक्तों के साथ प्रभु की लीला—

एइमत महाप्रभु रहेन नीलाचले।
भक्तगण-सङ्गे सदा प्रेम-विह्वले॥ ३॥

३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु सदैव प्रेम में विह्वल होकर अपने समस्त भक्तों के साथ नीलाचल में वास करते थे।

अगले वर्ष रथ-यात्रा के उपलक्ष्य में गौड़ीय-भक्तों का पुरी में आगमन—

वर्षान्तरे आइला सब गौड़ेर भक्तगण।
पूर्ववत् आसि' कैल प्रभुर मिलन॥ ४॥

४। प० अनु०—एक वर्ष के पश्चात् समस्त गौड़ीय भक्तों ने पूर्व वर्षों की भाँति श्रीजगन्नाथपुरी में आकर श्रीमन्महाप्रभु से भेंट की।

गौड़ीय भक्तों के साथ कालिदास का आगमन—

ताँ-सबार सङ्गे आइल कालिदास नाम।
कृष्णनाम बिना तेंहो नाहि जाने आन॥ ५॥

५। प० अनु०—गौड़ीय भक्तों के साथ श्रीकालिदास नामक एक भक्त भी आये। वे श्रीकृष्ण नाम के अलावा

अन्य कुछ नहीं जानते थे।

कालिदास के गुण–

महाभागवत तेंहो, सरल उदार।
कृष्णनाम 'सङ्केते' चालाय व्यवहार॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीकालिदास महाभागवत, सरल तथा उदार थे, वे श्रीकृष्ण नाम के संङ्केत के द्वारा ही अपने सब कार्य करते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

६। 'कृष्णनाम सङ्केते चालाय व्यवहार',— कृष्णनाम के सङ्केत के साथ (अपने) व्यवहारिक-कार्य आदि का निर्वाह करते।

कौतुकेते तेंहो यदि पाशक खेलाय।
'हरेकृष्ण' 'हरेकृष्ण' करि' पाशक चालाय॥ ७ ॥

७। प० अनु०—श्रीकालिदास कौतुक से भी यदि पासे खेलते थे, तो वे पासे भी 'हरे कृष्ण' 'हरे कृष्ण' कहकर ही चलाते थे।

अनुभाष्य

७। कोई अनर्थयुक्त जीव यदि विष्णु-वैष्णव में समर्पितात्म, अनन्यभाक् (अन्य किसी वस्तु की चिन्ता से रहित) और अप्राकृत श्रद्धायुक्त श्रीकालिदास की कृष्णनाम निष्ठा का अनुसरण नहीं करके, केवल अपनी इन्द्रियों के तर्पण के लिये अक्षज बाहरी दर्शन में उनकी वञ्चना-लीला का अनुकरण करके कभी पाशा (जुआ) खेल रूपी व्यर्थ के व्यसन में आसक्त होते हैं, तो फिर (भा: १.१८.३८-४१ श्लोक के अनुसार) उनकी कलि के दासत्व-हेतु पाप अथवा अधर्म-प्रवृत्ति ही वर्धित होगी। [ऐसे अनर्थयुक्त जीव में जुआ इत्यादि खेलने के साथ] बाहर में श्रीकालिदास के नामोच्चारण के अनुकरण और चेष्टाओं के रहने पर भी उस नामोच्चारण के अनुकरण की चेष्टा ही नाम के बल पर पाप में प्रवृत्ति हेतु नामापराध में ही पर्यवसित होगी एवं जगत् के शिक्षित, संयत और सत्-चरित्र व्यक्ति-मात्र में ही धर्म के नाम पर उनकी इस प्रकार की दुर्नीति पर आधारित कपटता की निन्दा होगी।

वैष्णवों के उच्छिष्ट का भोजन करने वाले कालिदास का पूर्व-परिचय–

रघुनाथ-दासेर तेंहो हय ज्ञाति-खुड़ा।
वैष्णवेर उच्छिष्ट खाइते तेंहो हैल बुड़ा॥ ८ ॥

८। प० अनु०—श्रीकालिदास सम्बन्ध में श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के पितृव्य (चाचा) थे, वे वैष्णवों का उच्छिष्ट खाते हुए ही वृद्ध हुए।

महासौभाग्यवान् कालिदास की वैष्णवों के प्रति अद्वितीय सेवा-प्रवृत्ति वशत: महामहाप्रसाद में विश्वास–

गौड़देशे हय जत वैष्णवेर गण।
सबार उच्छिष्ट तेंहो करिल भोजन॥ ९ ॥

९। प० अनु०—गौड़देश में जितने वैष्णव-गण हैं, श्रीकालिदास ने उन सबके उच्छिष्ट का भोजन किया था।

ब्राह्मण-वैष्णव जत—छोट, बड़ हय।
उत्तम-वस्तु भेट लञा ताँर ठाञि जाय॥ १० ॥
ताँर ठाञि शेष-पात्र लयेन मागिया।
काँहा ना पाय, तबे रहे लुकाञा॥ ११ ॥

१०-११। प० अनु०—श्रीकालिदास छोटे-बड़े समस्त ब्राह्मण-वैष्णवों के लिये भेट-स्वरूप अति उत्तम वस्तुएँ लेकर उनके पास जाते। श्रीकालिदास उन वैष्णवों से अवशेष माँगकर ले लेते। यदि उन्हें कहीं पर माँगने पर भी उच्छिष्ट नहीं मिलता तो वे उस वैष्णव के घर के आस-पास छिपकर रह जाते।

अनुभाष्य

१०। ब्राह्मण-वैष्णव,—शौक्र-ब्राह्मण कुल में आविर्भूत वैष्णव।

भोजन करिले पात्र फेलाञा जाय।
लुकाञा सेइ पात्र आनि' चाटि' खाय॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—जब वैष्णव लोग भोजन करने के बाद अपने झूठे पत्तलों को फैंककर जाते तब श्रीकालिदास उन वैष्णवों की अनुपस्थिति में छिपकर उन पत्तलों को उठाकर उन पर लगे भोजन को चाट-चाटकर खा जाते।

कालिदास की वैष्णवों में जातिबुद्धि नहीं—

शूद्र-वैष्णवेर घरे जाय भेट लञा।
एइमत ताँर उच्छिष्ट खाय लुकाञा॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—श्रीकालिदास शूद्र जाति में उत्पन्न वैष्णवों के घर भी कुछ भेंट लेकर जाते तथा उपरोक्त प्रकार से छिपकर उनका भी उच्छिष्ट खाते।

अनुभाष्य

१३। शूद्र-वैष्णव,—शौक्र-शूद्र कुल में आविर्भूत वैष्णव।

कालिदास और झड्डु-ठाकुर का वृत्तान्त—

भुँइमालि-जाति, 'वैष्णव'—'झड्डु' ताँर नाम।
आम्रफल लञा तेंहो गेला ताँर स्थान॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीकालिदास भुँइ माली-जाति के झड्डु नामक एक वैष्णव के घर पर आम के फल लेकर गये।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४। भुँइमाली,—हड्डी ('हाँडि') जैसी जाति-विशेष।

अनुभाष्य

५-१४। कालिदास और झड्डु ठाकुर,—इन दोनों का श्रीपाट (अर्थात् वासस्थान) 'भेदो' अथवा 'भादुया' ग्राम में था। श्रील दास गोस्वामी की प्रकट-भूमि 'कृष्णपुर' ग्राम से प्रायः तीन मील दक्षिण में और इ. आइ. आर. लाइन पर बैण्डल-जंक्शन से प्रायः एक मील पश्चिम में अवस्थित है तथा डाकघर—देवानन्दपुर है। झड्डु ठाकुर द्वारा सेवित श्रीमदनगोपाल-विग्रह इसी स्थान पर श्रीरामप्रसाद दास नामक एक रामायेत ('रामानन्दी' सम्प्रदाय के व्यक्ति) के द्वारा पूजित हो रहे हैं। सुना जाता है, कालिदास के सेवित विग्रह सरस्वती नदी के तटवर्ती शङ्खनगर में अब तक भी जिस किसी प्रकार से सेवित होते हुए आ रहे हैं। आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व त्रिवेणी के अधिवासी मतिलाल चट्टोपाध्याय नामक किसी व्यक्ति ने उन्हें अपने घर पर ले जाकर सेवा प्रारम्भ की है।

आम्र भेट दिया ताँर चरण वन्दिला।
ताँर पत्नीरे तबे नमस्कार कैला॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—श्रीकालिदास ने श्रीझड्डु ठाकुर को आम भेंट देकर उनके चरणों की वन्दना की, तत्पश्चात् श्रीकालिदास ने श्रीझड्डु ठाकुर की पत्नी को भी नमस्कार (प्रणाम) किया।

पत्नी-सहित तेंहो आछेन बसिया।
बहु सम्मान कैला कालिदासेरे देखिया॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—उस समय श्रीझड्डु ठाकुर अपनी पत्नी के साथ बैठे हुए थे, उन्होंने श्रीकालिदास को देखकर उनका बहुत सम्मान किया।

इष्टगोष्ठी कतक्षण करि' ताँर सने।
झड्डु-ठाकुर कहे ताँरे मधुर वचने॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—श्रीझड्डु ठाकुर ने कुछ समय तक श्रीकालिदास के साथ इष्ट-गोष्ठी करने के पश्चात् मधुर वचनों के द्वारा उनसे कहा—।

झड्डु-ठाकुर के द्वारा दीनतावशतः वञ्चना की चेष्टा; अमानी होना और मान प्रदान करना—

''आमि—नीचजाति, तुमि,—अतिथि सर्वोत्तम।
कोन् प्रकारे करिमु तोमार सेवन?? १८ ॥

१८। प० अनु०—''हे श्रीकालिदास! मैं नीच-जाति का व्यक्ति हूँ तथा आप सर्वोत्तम अतिथि हैं। मैं किस प्रकार से आपकी सेवा करूँ?

आज्ञा देह',—ब्राह्मण-घरे अन्न लञा दिये।
ताँहा तुमि प्रसाद पाओ, तबे आमि जीये॥'' १९ ॥

१९। प० अनु०—''आप कृपया मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं किसी ब्राह्मण के घर पर कच्चे चावल आदि जाकर दे दूँ तथा आप वहीं प्रसाद को ग्रहण करें, तभी मैं जीवित रहूँगा अर्थात् अतिथ्योचित सेवा रूपी कर्त्तव्य को पालन करके सन्तुष्ट होऊँगा, अन्यथा सर्वदा आत्म-ग्लानि ही अनुभव करता रहूँगा।''

कालिदास की दैन्य-उक्ति और वैष्णवों के प्रति जातिबुद्धि-हीनता—

कालिदास कहे,—''ठाकुर, कृपा कर मोरे।
तोमार दर्शने आइनु मुइ पतित पामरे॥ २० ॥

२०। प० अनु०—श्रीकालिदास ने कहा,—''हे झड़ु ठाकुर! आप मुझ पर कृपा कीजिए, मैं पतित-पामर आपके दर्शन करने के लिये आया हूँ।

पवित्र हइनु मुइ, पाइनु दरशन।
कृतार्थ हइनु, मोर सफल जीवन॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—''मैं आपके दर्शन करके पवित्र हो गया हूँ, कृतार्थ हो गया हूँ, मेरा जीवन सफल हो गया है।

एक वाञ्छा हय,—यदि कृपा करि' कर।
पादरज देह', पाद मोर माथे धर॥'' २२ ॥

२२। प० अनु०—''हे प्रभु! मेरी एक वाञ्छा है कि आप मेरे सिर पर अपने चरणकमल रखकर मुझे अपने चरणों की रज प्रदान कीजिए। आप कृपा करके मेरी इस वाञ्छा को पूर्ण करें।''

अमानी-मानद झड़ु-ठाकुर की दैन्यपूर्ण उक्ति—

ठाकुर कहे,—''ऐछे बात् कहिते ना जुयाय।
आमि—नीचजाति, तुमि—सुसज्जन राय॥'' २३ ॥

२३। प० अनु०—श्रीझड़ु ठाकुर ने कहा,—''आपके मुख से ऐसी बात शोभा नहीं देती, कारण, मैं नीच जाति का हूँ और आप सुसज्जन धनी व्यक्ति हैं।''

झड़ु ठाकुर के निकट कालिदास के द्वारा वैष्णव-माहात्म्य सूचक श्लोक का पाठ—

तबे कालिदास श्लोक पड़ि' शुनाइल।
शुनि' झड़ु-ठाकुरेर बड़ सुख हइल॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीझड़ु ठाकुर की बात सुनकर श्रीकालिदास ने उन्हें कुछ श्लोक सुनाये, उन्की वैष्णवों के प्रति ऐसी निष्ठापूर्ण बातों को सुनकर श्रीझड़ु ठाकुर को बहुत अधिक प्रसन्नता हुई।

(इतिहास-समुच्चय में भगवद्-वचन)

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥ २५॥

२५।अनु०— चतुर्वेदपाठी अर्थात् चौबे ब्राह्मण होने पर ही 'भक्त' होता है, ऐसा नहीं है। मेरा भक्त चण्डाल होने पर भी मुझे प्रिय है, भक्त ही वास्तव में दान पात्र एवं ग्रहण पात्र है; भक्त मात्र ही मेरे समान पूज्य है।

अनुभाष्य

२५। मध्य-लीला के उन्नीसवें परिच्छेद की ५० वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (७.९.१०) में—

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पित-मनोवचनेहितार्थ-
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥ २६ ॥

२६।अनु०—कृष्ण के चरणकमलों से विमुख द्वादश गुणों से युक्त ब्राह्मण की अपेक्षा भी जिसके कृष्ण में मन, वचन, चेष्टा, अर्थ और प्राण समर्पित हैं, ऐसे चण्डाल को भी मैं श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि वह (चण्डाल कुल में उत्पन्न भक्त) अपने कुल को पवित्र करता है और अत्यधिक सम्मान से युक्त ब्राह्मण वैसा नहीं कर सकता।

अनुभाष्य

२६। मध्य-लीला के विंश परिच्छेद की ५९ वीं संख्या द्रष्टव्य।

श्रीमद्भागवत (३.३३.७) में –

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम् गृणन्ति ये ते॥ २७ ॥

२७।अनु०—हे भगवन्, जिनके मुख में आपका नाम विद्यमान है, वे श्वपच होने पर भी श्रेष्ठ हैं। जो आपका नाम कीर्त्तन करते हैं, उन्होंने सब प्रकार की तपस्या कर ली हैं, समस्त यज्ञ कर लिये हैं, सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है एवं अङ्गों सहित समस्त वेदों का पाठ कर लिया है अतएव आर्यों में परिगणित हैं।

अनुभाष्य

२७। मध्य-लीला के एकादश परिच्छेद की १९२ वीं संख्या द्रष्टव्य।

कृष्णभक्त की पदवी का निर्णय–

शुनि' ठाकुर कहे,—''शास्त्र, एइ सत्य हय।
सेइ नीच नहे,—जाँते कृष्णभक्ति हय॥ २८ ॥

कृष्ण भक्तों का जड़ीय-अभिमान-शून्य अप्राकृत-अभिमानमय अमानी होना तथा सम्मान प्रदान करना–

आमि—नीचजाति, आमार नाहि कृष्णभक्ति।
अन्य ऐछे हय, आमार नाहि ऐछे शक्ति॥'' २९ ॥

२८-२९। प० अनु०—श्रीकालिदास द्वारा उच्चारित श्लोकों को सुनकर श्रीझडु ठाकुर ने कहा,—''शास्त्र में कही गयी यह बातें सत्य ही हैं कि वह व्यक्ति नीच नहीं है, जिसमें कृष्ण भक्ति हो, किन्तु मैं नीच जाति का व्यक्ति हूँ, उस पर भी मुझमें कृष्णभक्ति नहीं है। अन्य निम्न कुलोद्भूत कृष्णभक्तों में उपरोक्त श्लोकों के अनुरूप उत्तम अधिकार है, किन्तु मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है।''

अनुभाष्य

२८-२९। महाभारत के वनपर्व में १८० अः— ''शूद्रे तु यद्भवेल्लक्षं द्विजे तच्च न विद्यते। न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥'' उसी वनपर्व में २११ अः— ''शूद्रयोनौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः। आर्जवे वर्तामानस्य ब्राह्मण्यमभि-जायते॥'' [अर्थात् शूद्रों में यदि विप्र के लक्षण दिखलायी दें एवं यदि ब्राह्मण में वे लक्षण न हों, तब वह शूद्र-कुल में उत्पन्न व्यक्ति शूद्र नहीं है एवं ब्राह्मण वंश में उत्पन्न व्यक्ति भी ब्राह्मण नहीं है। 'शूद्र योनि में जन्म ग्रहण करने पर भी यदि उसमें सद्गुण समूह विद्यमान हो, उन गुणों में से 'सरलता'-नामक गुण के रहने पर उसमें ब्राह्मणता मानी जाती है।] महाभारत के अनुशासन पर्व के १६३ अः—''स्थितो ब्राह्मण धर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति। क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा बह्मभूयः स गच्छति॥ एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैरा-चरितैस्तथा। शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्॥ न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः। कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्॥'' [अर्थात् ब्राह्मण धर्म द्वारा ब्राह्मणता होती है—उस धर्म में स्थित होकर कोई क्षत्रिय अथवा वैश्य भी ब्रह्मत्व प्राप्त करता है। हे देवि! इन समस्त शुभकर्मों के आचरण के द्वारा शूद्र भी ब्राह्मणता प्राप्त करता है एवं वैश्य क्षत्रियत्व प्राप्त करता है। जन्म, संस्कार, वेदाध्ययन और सन्तति, द्विजत्व का कारण नहीं है। वृत्त (स्वभाव) ही एकमात्र कारण है।] भाः ४.२१.१२—''सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक्। अन्यत्र ब्राह्मणकुला- दन्यत्राच्युतगोत्रतः॥'' [अर्थात् सप्तद्वीप वाली पृथ्वी के एकच्छत्र दण्ड-मुण्ड-विधाता सम्राट पृथु महाराज की आज्ञा ऋषिकुल ब्राह्मण और अच्युत गोत्रीय वैष्णवों के अलावा अन्य सर्वत्र ही अप्रतिहत थी।] (भाः ७.११.३५)—''यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्। यदन्यत्रापि दृश्येत् तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥'' [मनुष्यों के वर्ण के अभिव्यञ्जक जो समस्त लक्षण कहे गये हैं, उनमें से जिस-जिस वर्ण के लक्षण जिस-जिस व्यक्ति में दिखायी दें, उन्हें उसी वर्ण

का समझना चाहिए।] पाद्मे—''न शूद्रा भगवद्भक्तास्ते तु भागवता मता:। सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने॥'' ''श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम्। वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम्॥'' ''शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा। वीक्ष्यते जाति-सामान्यात् स याति नरकं ध्रुवम्॥'' [अर्थात् पद्म-पुराण में— 'भगवत्-भक्त 'शूद्र' नहीं हैं, वे 'भागवत' कहलाते हैं। जो भगवान् श्रीजानार्दन के भक्त नहीं है, वही सभी वर्णों में शूद्र हैं।' 'जगत् में जिस प्रकार कुत्ते के माँस को खाने वाले चण्डाल को देखना नहीं चाहिए, उसी प्रकार किसी ब्राह्मण के अवैष्णव होने पर उसका दर्शन करना भी मना है। किन्तु वैष्णव वर्ण के बहिर्भूत होने पर भी त्रिभुवन को पवित्र करते हैं।''जो भगवान् के भक्त को 'शूद्र' अथवा 'निषाद' या 'चण्डाल' इत्यादि रूप में साधारण जाति-बुद्धि के अनुसार दर्शन करता है, वह निश्चित रूप से नरक गामी होता है।'] गारुड़े—''भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्त्तते। स विप्रेन्द्रो मुनिश्रेष्ठ: स ज्ञानी स च पण्डित:॥'' [अर्थात् गरुड-पुराण में —यह आठ प्रकार की भक्ति जिस म्लेच्छकुल में उत्पन्न व्यक्ति में भी विद्यमान रहती है, उसे-ब्राह्मणों में प्रधान, मुनियों में श्रेष्ठ, ज्ञानी एवं पण्डित समझना चाहिए।] तवसागरे—''यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसविधानत:। तथा दीक्षा-विधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥'' [अर्थात् जिस प्रकार 'कांस्य' धातु रसविधान से स्वर्णता को प्राप्त करती है, उसी प्रकार मनुष्यों को दीक्षा-विधान के द्वारा द्विजत्व प्राप्त हुआ करता है।'] — इत्यादि बहुत से शास्त्रीय-वचनों में वैष्णवों में अप्राकृत-ब्राह्मणता नित्य अनुस्यूत है, ऐसा जाना जाता है। अतएव नीचकुल में उत्पन्न व्यक्ति का भी कृष्ण के प्रति भक्तिमान् होने पर, नीच-जातित्व नहीं रह सकता।

'वैष्णव' नहि (मैं वैष्णव नहीं हूँ),—यह झड्डु-ठाकुर की वैष्णवोचित उदारता है एवं उनके अपने निरभिमानी होने का सूचकमात्र है, 'मेरे-अलावा अन्य समस्त कृष्णभक्तों का ही शास्त्रीय-सत्य के अनुसार उत्तम-अधिकार है; और केवलमात्र मैं ही भक्तिहीन हूँ एवं नीच-कुल में उत्पन्न हुआ हूँ; मुझमें उच्च-अधिकार को प्राप्त करने की शक्ति नहीं है',—इत्यादि शुद्धभक्तोचित दैन्य-उक्ति ही वास्तविक देहात्मबुद्धि से मुक्त महाभागवतों का स्वभाव है।

सभी का सम्मान करने वाले झड्डु-ठाकुर के द्वारा कालिदास की अनुव्रज्या अर्थात् कुछ दूरी तक उनके पीछे-पीछे चलते हुए उन्हें छोड़कर, अपने घर पर लौटना—

ताँरे नमस्करि' कालिदास विदाय मागिला।
झड्डु-ठाकुर तबे ताँर अनुव्रजि' आइला॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—श्रीकालिदास ने श्रीझड्डु ठाकुर को नमस्कार करके उनसे विदायी माँगी तथा श्रीझड्डु ठाकुर उनकी अनुव्रज्या अर्थात्-कुछ दूर तक उनके पीछे चल करके अपने स्थान पर लौट आये।

अनुभाष्य

३०। अनुव्रजि',—पीछे -पीछे आकर।

ताँरे विदाय दिया ठाकुर यदि घरे आइल।
ताँर चरण-चिह्न जेइ ठाञि पड़िल॥ ३१ ॥

झड्डु ठाकुर के लौट जाने पर कालिदास के द्वारा अपने समस्त अङ्गों पर उन्हें वैष्णव मानकर उनके चरण की धूलि को लेकर मलना—

सेइ धूलि लञा कालिदास सर्वाङ्गे लेपिला।
ताँर निकट एकस्थाने लुकाञा रहिला॥ ३२ ॥

३१-३२। प० अनु०—श्रीझड्डु ठाकुर श्रीकालिदास को विदायी देने के पश्चात् जब अपने घर लौट गये, तब जहाँ-जहाँ पर श्रीझड्डु ठाकुर के चरणों के चिह्न पड़े थे, श्रीकालिदास ने उन स्थानों की रज को लेकर अपने समस्त अङ्गों पर लगाया तथा फिर वे श्रीझड्डु ठाकुर के घर के निकट ही किसी एक स्थान पर छिप गये।

समस्त ब्राह्मणों के गुरु झड्डु-ठाकुर के द्वारा मनोमयी अर्चा के मानस- पूजन के बाद कृष्ण का उच्छिष्ट मानकर आम का भोजन—

झड्डु-ठाकुर घर जाइ' देखि' आम्रफल।
मानसेइ कृष्णचन्द्रे अर्पिला सकल॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—श्रीझड्डु ठाकुर ने अपने घर जाकर जब आम के फलों को देखा, तब उन्होंने मन-ही-मन श्रीकृष्णचन्द्र को समस्त आम अर्पित किये।

कलार पाटुया-खोला हैते आम्र निकाशिया।
ताँर पत्नी ताँरे देन, खायेन चुषिया॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—श्रीझड्डु ठाकुर की पत्नी ने केले के पेड़ के पत्ते और छाल से बने लिफाफे जैसे बड़े दोने में से आम निकालकर उन्हें दिये तथा श्रीझड्डु ठाकुर ने उन्हें चूसकर खाया।

अनुभाष्य

३४। पाटुया-खोला,—पत्ते और वल्कल; निकाशिया,—बाहर निकाल करके।

वैष्णव-पत्नी के द्वारा वैष्णव- पति के उच्छिष्ट का सम्मान—

चुषि' चुषि' चोषा आँठि फेलिला पाटुयाते।
ताँरे खाओयाञा ताँर पत्नी खाय पश्चाते॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—श्रीझड्डु ठाकुर ने आम की गुठली को भी चूस-चूसकर उसे उसी केले के पेड़ के पत्ते और छाल से बने लिफाफे जैसे बड़े दोने में डाल दिया, श्रीझड्डु ठाकुर को आम खिलाने के बाद उनकी पत्नी ने स्वयं भी आम खाये।

आँठि-चोषा सेइ पाटुया-खोलाते भरिया।
बाहिरे उच्छिष्ट-गर्ते फेलाइला लञा॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—श्रीझड्डु ठाकुर की पत्नी ने भी आम की गुठलियों को उसी बड़े दोने में भरकर उसे अपने घर के बाहर बने उच्छिष्ट (झूठन) फैंकने वाले गड्ढ़े में फैंक दिया।

महासौभाग्यवान् कालिदास के द्वारा अत्यधिक आनन्दपूर्वक अप्राकृत-बुद्धि से वैष्णव-उच्छिष्ट का सम्मान—

सेइ खोला, आँठि, चोकला चुषे कालिदास।
चुषिते चुषिते हय प्रमेते उल्लास॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—श्रीकालिदास उस दोने को उठाकर उसमें फैंकी गयी गुठलियों, आम के छिलकों, और-तो-और उस दोने तक को भी चूसने लगे तथा चूसते-चूसते वे प्रेम में आविष्ट हो गये।

अनुभाष्य

३७। चोकला,— आम के छिलके।

गौड़देश के समस्त वैष्णवों के उच्छिष्ट का सम्मान करने वाले कालिदास—

एइमत जत वैष्णव बैसे गौड़देशे।
कालिदास ऐछे सबार निला अवशेषे॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—जितने भी वैष्णव गौड़देश में रहते थे, श्रीकालिदास ने इसी प्रकार उन सबके उच्छिष्ट को ग्रहण किया।

पुरी में आने पर कालिदास के प्रति प्रभु के द्वारा उन पर निष्कपट महाकृपा—

सेइ कालिदास जबे नीलाचले आइला।
महाप्रभु ताँर उपर महाकृपा कैला॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—वही श्रीकालिदास जब श्रीजगन्नाथपुरी में आये, तब श्रीमन्महाप्रभु ने उन पर अत्यन्त कृपा की।

प्रभु के कमण्डलु के वाहक गोविन्द—

प्रतिदिन प्रभु यदि जान दरशने।
जल-करङ्ग लञा गोविन्द जाय प्रभु-सने॥ ४० ॥

४०। प० अनु०—प्रतिदिन जब श्रीमन्महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन करने के लिये जाते थे, तब श्रीगोविन्द प्रभु जल से भरे करङ्ग (मिट्टी के बने पात्र) को अपने हाथ में लेकर श्रीमन्महाप्रभु के साथ-साथ

चलते थे।

सिंहद्वार के निकट सीढ़ी के नीचे गड्ढ़े में प्रभु के चरणों को धुलवाना—

सिंहद्वारेर उत्तरदिके कपाटेर आड़े।
बाइश 'पहाच'-तले आछे एक निम्न गाड़े॥ ४१ ॥
सेइ गाड़े करेन प्रभु पाद-प्रक्षालने।
तबे करिबारे जाय ईश्वर-दरशने॥ ४२ ॥

४१-४२। प० अनु०—सिंहद्वार की उत्तर दिशा में कपाट (दरवाजे) के पीछे श्रीजगन्नाथ मन्दिर की ओर जाने वाली बाईस सीढ़ियों से पहले भूमि पर एक गड्ढ़ा बना हुआ था। श्रीगोविन्द प्रभु श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को उसी गड्ढ़े में ही प्रक्षालन (धुलाना) कराते थे, उसके पश्चात् ही श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन के लिये मन्दिर में जाते थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

४१। बाइश पहाच,—बाईस 'पाहाच', उड़ीसा के लोग एक-एक सीढ़ी को 'पाहाच' कहते हैं। सिंहद्वार से मन्दिर की ओर जाने के लिये बाईस सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं।

अनुभाष्य

४१। आड़े,—आड़ में, अन्तराल (पीछे) में; वर्तमान समय में यह सब स्थान पतितावस्था में भी नहीं हैं, वहाँ घर आदि बन गये हैं। गाड़े—गड्ढ़े में।

लोक-शिक्षक आचार्यरूपी प्रभु का कठोर नियम—

गोविन्देरे महाप्रभु कैराछे नियम।
''मोर पादजल जेन ना लय कोन जन॥'' ४३ ॥

४३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीगोविन्द को यह कहकर कि—''हे गोविन्द! ध्यान रखना कि कोई भी मेरा चरणजल न ले'', एक नियम बनाया था।

अत्यधिक अन्तरङ्ग भक्त के अलावा अन्य सभी का प्रभु के चरणामृत में अनधिकार—

प्राणिमात्र लइते ना पाय सेइ जल।
अन्तरङ्ग भक्त लय करि' कोन छल॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—कोई भी प्राणी श्रीमन्महाप्रभु के पादधौत जल को नहीं ले सकता था, केवल मात्र अन्तरङ्ग भक्त ही किसी छल से उसे ले लेते थे।

कालिदास के द्वारा प्रभु के चरणामृत को ग्रहण करने के उद्देश्य से उनके निकट हाथ फैलाना—

एकदिन प्रभु ताँहा पाद प्रक्षालिते।
कालिदास आसि' ताँहा पातिलेन हाते॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—एकदिन जब श्रीमन्महाप्रभु अपने श्रीचरणों का प्रक्षालन कर रहे थे, तब श्रीकालिदास ने वहाँ आकर अपना हाथ फैला दिया।

तीन बार अञ्जली से प्रभु के चरणामृत को पान करने के बाद प्रभु के द्वारा निषेध—

एक अञ्जलि, दुइ अञ्जलि, तिन अञ्जलि पिला।
तबे महाप्रभु ताँरे निषेध करिला॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—श्रीकालिदास ने जब श्रीमन्महाप्रभु के चरण-धौत जल की एक अञ्जलि, दूसरी अञ्जलि तथा तीसरी अञ्जलि भरकर पी ली, तब श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीकालिदास को निषेध करते हुए कहा,—

प्रभु के द्वारा अपने चरण-जल को प्रदान करने के बाद पुनः ग्रहण करने हेतु निषेध—

''अतःपर आर ना करिह पुनर्बार।
एतावता वाञ्छा-पूरण करिलुँ तोमार॥'' ४७ ॥

४७। प० अनु०—''हे कालिदास! अब इसके उपरान्त पुनः ऐसा मत करना, मैंने अब तक बिना किसी आपत्ति के तुम्हें तीन बार अपने चरणजल को पीने देकर तुम्हारी अभिलाषा को पूर्ण किया है।''

अनुभाष्य

४७। एतावता,—अब तक।

अन्तर्यामी परमेश्वर गौरसुन्दर—

सर्वज्ञ-शिरोमणि चैतन्य ईश्वर।
वैष्णवे ताँहार विश्वास, जानेन अन्तर॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु ईश्वर होने के कारण सर्वज्ञों के भी शिरोमणि हैं, श्रीकालिदास में वैष्णवों के प्रति दृढ़ विश्वास है, श्रीमन्महाप्रभु उनके अन्तरहृदय की इस बात को जानते हैं।

वैष्णवों में अप्राकृत-श्रद्धा-हेतु कालिदास के लिये ब्रह्मा आदि के लिये भी दुर्लभ कृपा का प्रदर्शन—

सेइ गुण लञा प्रभु ताँरे तुष्ट हइला।
अन्येर दुर्लभ प्रसाद ताँहारे करिला॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—श्रीकालिदास के वैष्णवों के प्रति दृढ़ विश्वास रूपी गुण के कारण श्रीमन्महाप्रभु उनके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट थे, श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीकालिदास के प्रति ऐसी कृपा की जिसे प्राप्त करना अन्यों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है।

प्रभु के द्वारा श्रीनृसिंह-प्रणाम—

बाइश 'पहाच'-पाछे उपर दक्षिण-दिके।
एक नृसिंह-मूर्ति आछेन उठिते वामभागे॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—श्रीजगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार से ऊपर जाने वाले मार्ग पर बाईस सीढ़ियों के बीच में दक्षिण-दिशा की ओर जाने पर वामभाग में श्रीनृसिंह भगवान् का एक विग्रह है।

प्रतिदिन ताँरे प्रभु करेन नमस्कार।
नमस्करि' एइ श्लोक पड़े बारबार॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु प्रतिदिन श्रीनृसिंह भगवान् के उस श्रीविग्रह को नमस्कार (प्रणाम) करते तथा नमस्कार करने के पश्चात् निम्नलिखित श्लोक का बारम्बार उच्चारण करते—।

शुद्धभक्ति के प्रचार करने वाले भक्तों के रक्षक, पाषण्डियों का दमन करने वाले, भक्तप्रिय श्रीनृसिंह को प्रणाम—

(नृसिंह-पुराण के दो वचन)—

नमस्ते नरसिंहाय प्रह्लादाह्लाददायिने।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःशिलाटङ्क-नखालये॥ ५२ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

५२। प्रह्लाद को आह्लाद (आनन्द) प्रदान करने वाले नरसिंह को नमस्कार है; हिरण्यकशिपु की वक्ष रूपी शिला को विदीर्ण करने में समर्थ नखों को धारण करने वाले नृसिंह को नमस्कार है।

अनुभाष्य

५२। हिरण्यकशिपोः (कश्यपतनयस्य प्रह्लादपितुः विष्णु-वैष्णव-विरोधिनः दैत्यराजस्य) वक्षःशिला-टङ्कनखालये (वक्षः एव शिलाः तस्याः टङ्कः पाषाण-विदारकास्त्रविशेषः, सः टङ्कः एव नखानां आलिः श्रेणी यस्य तस्मै) प्रह्लादाह्लाद-दायिने (हिरण्यकशिपोः तनयस्य शुद्धवैष्णवप्रवरस्य आनन्ददात्रे) नरसिंहाय (नृसिंहदेवाय) ते (तुभ्यं) नमः।

शुद्धभक्ति के प्रचारकों के द्वारा सर्वत्र ही अधोक्षज श्रीनृसिंहदेव का अपने रक्षक के रूप में दर्शन—

इतो नृसिंहः परतो नृसिंहो
यतो यतो यामि ततो नृसिंहः।
बहिर्नृसिंहो हृदये नृसिंहो
नृसिंहमादिं शरणं प्रपद्ये॥ ५३ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

५३। इस ओर नृसिंह, उस ओर नृसिंह, जहाँ जहाँ जाता हूँ, उस स्थान पर नृसिंह ही हैं, बाहर भी नृसिंह हैं, और हृदय में नृसिंह हैं,—ऐसे उन आदि-नृसिंह के मैं शरणागत होता हूँ।

अनुभाष्य

५३। इतः (अस्मिन् स्थाने देविधाम्नि) नृसिंहः, परतः (परव्योम्नि) नृसिंहः, यतः यतः (यत्र यत्र प्रति) यामि, ततः (तत्र) नृसिंहः; बहिः (प्रपञ्चे) नृसिंहः; हृदये (अन्तर्जगति) नृसिंहः स्फुरति; अतः आदिम् (आदिदेवं

सर्वमूलं) नृसिंहम् (अहं) शरणं प्रपद्ये (आश्रये इत्यर्थः)।

प्रभु के द्वारा प्रसाद का भोजन—

तबे प्रभु करिला जगन्नाथ दरशन।
घरे आसि' करिला मध्याह्न-भोजन॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीनृसिंहदेव के दर्शन के पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु ने भगवान् श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन किये तथा फिर अपने निवास स्थान पर आकर मध्याह्न भोजन किया।

उच्छिष्ट प्राप्ति की प्रतीक्षा में खड़े कालिदास को प्रभु की इच्छा के अनुसार उनके उच्छिष्ट का दान—

बहिर्द्वारे आछे कालिदास प्रत्याशा करिया।
गोविन्देरे ठारे प्रभु कहेन जानिया॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—श्रीकालिदास श्रीमन्महाप्रभु की वासस्थली के बाहरी द्वार पर मन में कुछ आशा लेकर खड़े थे, श्रीमन्महाप्रभु सर्वज्ञ होने के कारण इस बात को जानते थे इसलिए उन्होंने इङ्गित में श्रीगोविन्द प्रभु से कुछ कहा।

अनुभाष्य

५५। ठारे,—इशारा करके, सङ्केत करके।

प्रभुर इङ्गिते गोविन्द सब जाने।
कालिदासेरे दिल प्रभुर शेषपात्र-दाने॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के इङ्गित को श्रीगोविन्द प्रभु भली-भाँति जानते थे, इसलिए उन्होंने श्रीकालिदास को श्रीमन्महाप्रभु का उच्छिष्ट प्रदान किया।

प्रभु की चरम कृपा को प्राप्त करने का एकमात्र कारण—

वैष्णवेर शेष-भक्षणेर एतेक महिमा।
कालिदासे पाओयाइल प्रभुर कृपा-सीमा॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—वैष्णवों के उच्छिष्ट का भक्षण करने की इतनी महिमा है कि उसी ने श्रीकालिदास को श्रीमन्महाप्रभु की चरम कृपा को प्राप्त कराया।

सभी साधकों को ग्रन्थकार का उपदेश—

ताते 'वैष्णवेर झूटा' खाओ छाड़ि' घृणा-लाज।
जाहा हइते पाइबा वाञ्छित सब काज॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—अतएव हे भक्तों! आप घृणा तथा लज्जा आदि का त्याग करके वैष्णवों का झूठा खाओ, जिसके द्वारा आपके मन की समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जायेंगी।

कृष्ण के उच्छिष्ट और भक्त के उच्छिष्ट की संज्ञा—

कृष्णेर उच्छिष्ट हय 'महाप्रसाद'-नाम।
'भक्तशेष' हैले 'महा-महाप्रसादाख्यान'॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—भगवान् श्रीकृष्ण के उच्छिष्ट का नाम 'महाप्रसाद' होता है तथा वही महाप्रसाद भक्तों का उच्छिष्ट बनने पर महा-महाप्रसाद कहलाता है।

साधक को चित्-बल प्रदान करने वाली तीन अप्राकृत वस्तुएँ—

भक्तपदधूलि आर भक्तपद-जल।
भक्तभुक्त-शेष,—एइ तिन साधनेर बल॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—भक्तों के चरण की धूलि, भक्तों के चरण का जल तथा भक्तों का उच्छिष्ट,—ये तीन साधन के बल हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

६०। तिन साधनेर बल,—भक्त की चरण-धूलि, भक्तों के चरणों का जल एवं भक्तों का अधरामृत ग्रहण करना—ये तीनों ही समस्त साधनों के बलस्वरूप हैं।

उपरोक्त तीन वस्तुओं का सेवन ही परमपुरुषार्थ रूपी प्रयोजन की प्राप्ति का समस्त शास्त्र सम्मत एकमात्र उपाय—

एइ तिन-सेवा हैते कृष्णप्रेमा हय।
पुनः पुनः सर्वशास्त्रे फुकारिया कय॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—उपरोक्त तीन वस्तुओं के सेवन से कृष्णप्रेम की प्राप्ति होती है, सभी शास्त्र पुनः पुनः इसी का उद्घोष करते हैं।

परमपुरुषार्थ प्रेम को प्राप्त करने के इच्छुक समस्त साधकों को ग्रन्थकार के द्वारा अनुरोधपूर्वक उपदेश—

ताते बार बार कहि,—शुन, भक्तगण।
विश्वास करिया कर ए तिन-सेवन॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—इसलिए हे भक्तों, सुनो! मैं बारम्बार कह रहा हूँ कि आप विश्वास करके उपरोक्त तीनों वस्तुओं का सेवन करो।

उक्त तीनों साधन ही कृष्ण- नाम-प्रेम-कृपा को प्राप्त कराने के एकमात्र उपाय—

तिन हैते कृष्णनाम-प्रेमेर उल्लास।
कृष्णेर प्रसाद, ताते 'साक्षी' कालिदास॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—उपरोक्त तीनों वस्तुओं के सेवन से कृष्णनाम-प्रेम की प्राप्ति होती है तथा कृष्ण की कृपा मिलती है, इसके साक्षी श्रीकालिदास हैं।

भक्तों के उच्छिष्ट में विश्वास के कारण ही कालिदास को पुरी में भगवान् की कृपा की प्राप्ति—

नीलाचले महाप्रभु रहे एइमते।
कालिदासे महाकृपा कैला अलक्षिते॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल में इस प्रकार अपने भक्तों पर कृपा करते हुए रह रहे थे, उन्होंने अलक्षित रूप में श्रीकालिदास पर महाकृपा की।

रथ-यात्रा के उपलक्ष्य में शिवानन्द का परमानन्दपुरी दास नामक पुत्र को भी साथ में लेकर पुरी में जाना—

से वत्सर शिवानन्द पत्नी लञा आइला।
'पुरीदास'-छोटपुत्रे सङ्गेते आनिला॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—उस वर्ष श्रीशिवानन्द सेन अपने साथ अपनी पत्नी तथा अपने पुरी दास नामक छोटे पुत्र को भी लाये।

पुरीदास का प्रभु के चरणों में प्रणाम—

पुत्र सङ्गे लञा तेंहो आइला प्रभु-स्थाने।
पुत्रेरे कराइला प्रभुर चरण वन्दने॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन अपने पुत्र को लेकर श्रीमन्महाप्रभु के वासस्थान पर आये। श्रीशिवानन्द सेन ने अपने पुत्र से श्रीमन्महाप्रभु के चरणों की वन्दना करायी।

उस बालक को कृष्ण-नामोच्चारण के लिये आदेश, बालक का मौनभाव—

'कृष्ण कह' बलि' प्रभु बलेन बार-बार।
तबु कृष्णनाम बालक ना करे उच्चार॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु ने उस बालक से बार-बार 'कृष्ण बोलो', 'कृष्ण बोलो' कहा, किन्तु तब भी बालक ने कृष्णनाम का उच्चारण नहीं किया।

उसके लिये शिवानन्द के द्वारा व्यर्थ प्रयत्न—

शिवानन्द बालकेरे बहु यत्न करिला।
तबु सेइ बालक कृष्णनाम ना कहिला॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—श्रीशिवानन्द सेन ने भी अपने बालक के मुख से कृष्ण नाम उच्चारित कराने के लिये बहुत प्रयत्न किया, तब भी उस बालक ने कृष्णनाम का उच्चारण नहीं किया।

ऐसा देखकर स्वयं प्रभु की विस्मय भरी उक्ति—

प्रभु कहे,—''आमि नाम जगते लओयाइलुँ।
स्थावरे-पर्यन्त कृष्णनाम कराइलुँ ॥ ६९ ॥
इहारे नारिलुँ कृष्णनाम कहाइते।''
शुनिया स्वरूप गोसाञि लागिला कहिते॥ ७० ॥

६९-७०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैंने अनेकानेक लोगों से कृष्णनाम का उच्चारण कराया है, मैंने स्थावर जीवों तक से भी कृष्णनाम कराया है, किन्तु मैं इस बालक से कृष्णनाम उच्चारित नहीं करा पाया!'' श्रीमन्महाप्रभु के मुख से इन वचनों को सुनकर श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने कहा,—।

स्वरूप के द्वारा पुरीदास के मौन रहने के तात्पर्य की व्याख्या—

''तुमि कृष्णनाम-मन्त्र कैला उपदेशे।
मन्त्र पाञा कार आगे ना करे प्रकाशे॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आपने इस बालक को कृष्णनाम मन्त्र का उपदेश दिया है। यह बालक आपसे मन्त्र प्राप्त करके किसी के भी समक्ष उसे प्रकाशित नहीं कर रहा है।

अनुभाष्य

७१। श्रीगुरुदेव से प्राप्त मन्त्र को अन्य के निकट प्रकाशित करने से मन्त्र का बल नहीं रहता; श्रीगदाधर पण्डित की आख्यायिका में हमें पहले ही इस विषय में जानकारी मिली है।

मने मने जपे, मुखे ना करे आख्यान।
एइ इहार मनः कथा—करि अनुमान॥'' ७२ ॥

७२। प० अनु०— ''यह बालक मन-मन में कृष्णनाम मन्त्र का जप कर रहा है, केवल मुख से ही उसका उच्चारण नहीं कर रहा। मैं अनुमान लगा रहा हूँ कि यही इसके मन में होगा।''

अन्यदिन प्रभु के आदेश से बालक पुरीदास का मौनभङ्ग और श्लोक-पठन—

आर दिन कहेन प्रभु,—''पड़ पुरीदास।''
एइ श्लोक करि' तेंहो करिला प्रकाश॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—अन्य एक दिन श्रीमन्महाप्रभु ने बालक पुरीदास को कहा,—''कुछ उच्चारण करो।'' तब उस बालक ने निम्नलिखित श्लोक की रचना करके उसे उच्चारित किया।

गोपीहृदय-भूषण कृष्ण की जय—
(कविकर्णपूर-कृत आर्यशतक का प्रथम श्लोक)

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णो रञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति॥ ७४ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

७४। जो—श्रवणयुगल (दोनों कानों) के नीलकमल हैं, नेत्रों के अञ्जन हैं, वक्षःस्थल के महेन्द्र मणिमाला हैं, वृन्दावन की रमणियों के अखिल-भूषण हैं, वे हरि जययुक्त हो रहे हैं।

अनुभाष्य

७४। श्रवसोः (कर्णयोः) कुवलयं (नीलोत्पलं) अक्ष्णोः (चक्षुषोः) अञ्जनं (कज्जलशोभनम्) उरसः (वक्षसः) महेन्द्रमणिदाम (इन्द्रनीलमणिमाला) वृन्दावनरमणीनां (व्रजललनानाम्) अखिलं (सर्वविधं) मण्डनं (अलङ्काररूपः) हरिः जयति।

बालक के द्वारा श्लोक की रचना करने से सभी को विस्मय—

सात-वत्सरेर शिशु, नाहि अध्ययन।
ऐछे श्लोक करे,—लोके चमत्कार मन॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—सात वर्ष का बालक जिसने अभी तक कुछ अध्ययन भी नहीं किया, उसके मुख से उसी के द्वारा रचित ऐसे श्लोक को सुनकर लोगों के मन में बहुत आश्चर्य हुआ।

प्रभु की कृपा के माहात्म्य का वर्णन—

चैतन्यप्रभुर एइ कृपार महिमा।
ब्रह्मादि-देव जार नाहि पाय सीमा॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—यह श्रीचैतन्य महाप्रभु की कृपा की ही महिमा है, ब्रह्मा आदि देवता भी इसका पार नहीं पा सकते।

गौड़ीय भक्तों को गौड़ जाने का आदेश—

भक्तगण प्रभु-सङ्गे रहे चारिमासे।
प्रभु आज्ञा दिला सबे गेला गौड़देशे॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—गौड़देश से आये भक्त श्रीमन्महाप्रभु के साथ चार मास तक रहे, श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा आज्ञा देने पर सभी गौड़देश लौट गये।

गौड़ीय भक्तों के साथ बाह्यदशा में किये गये कृष्णकथा-कीर्त्तन के प्रचार के अतिरिक्त अन्तर्दशा में कृष्ण-विरहिणी गोपी के भाव में उन्माद—

ताँ-सबार सङ्गे प्रभुर छिल बाह्यज्ञान।
ताँरा गेले पुनः हैला उन्माद प्रधान॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—गौड़देश से आये भक्तों के श्रीजगन्नाथपुरी में श्रीमन्महाप्रभु के साथ रहने के कारण उनमें बाह्यज्ञान रहता था, उनके लौट जाने पर श्रीमन्महाप्रभु में पुनः उन्मत्तता ही प्रधान हो गयी।

अनुक्षण कृष्ण-विरह में कृष्ण-सङ्ग की अनुभूति अथवा स्फूर्त्ति—

रात्रि-दिने स्फुरे कृष्णेर रूप-गन्ध-रस।
साक्षादनुभवे,—जेन कृष्ण-उपस्पर्श॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु में रात-दिन श्रीकृष्ण का रूप, उनके अङ्ग की सुगन्ध तथा उनके सङ्ग से उत्पन्न आनन्द की स्फूर्त्ति होती रहती। श्रीमन्महाप्रभु साक्षात् रूप से अनुभव करते मानो श्रीकृष्ण ने उन्हें स्पर्श किया हो।

प्रभु की उद्घूर्ण-उक्ति और जगन्नाथरूपी श्यामसुन्दर का दर्शन—

एकदिन प्रभु गेला जगन्नाथ-दरशने।
सिंहद्वारे दलइ आसि' करिल वन्दने॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—एक दिन जब श्रीमन्महाप्रभु भगवान् श्रीजगन्नाथ का दर्शन करने के लिये जा रहे थे, तब सिंहद्वार के द्वारपाल ने आकर श्रीमन्महाप्रभु की वन्दना की।

अमृतप्रवाह भाष्य

८०। दलइ,—द्वारपाल।

ताँरे बले,—"कोथा कृष्ण, मोर प्राणनाथ?
मोरे कृष्ण देखाओ' बलि' धरे ताँर हात॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने उस द्वारपाल से कहा,—"मेरे प्राणनाथ श्रीकृष्ण कहाँ हैं? मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन कराओ", ऐसा कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने उसका हाथ पकड़ लिया।

सेह कहे,—"इँहा हय व्रजेन्द्रनन्दन।
आइस तुमि मोर सङ्गे, कराङ दरशन॥" ८२ ॥

८२। प० अनु०—द्वारपाल ने कहा,—"श्रीव्रजेन्द्रनन्दन यहीं पर हैं। आप मेरे साथ चलिए, मैं आपको उनके दर्शन कराता हूँ।"

अनुभाष्य

८२। इँहा हय,—यहाँ हैं (हिन्दी)।

"तुमि मोर सखा, देखाह,—काहाँ प्राणनाथ?"
एत बलि' जगमोहन गेला धरि' ताँर हात॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—"तुम मेरे सखा हो, मुझे दिखाओ मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं?" इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु द्वारपाल का हाथ पकड़कर श्रीजगन्नाथ मन्दिर के जगमोहन (नाट्य-मन्दिर) में गये।

सेह बले,—"एइ देख श्रीपुरुषोत्तम।
नेत्र भरिया तुमि करह दरशन॥" ८४ ॥

८४। प० अनु०—द्वारपाल ने श्रीमन्महाप्रभु से कहा,—"देखिये, ये श्रीपुरुषोत्तम हैं। आप नेत्र भरकर अर्थात् आपके नेत्र जितना चाहें, आप उतना दर्शन कीजिए।"

गरुड़ेर पाछे रहि' करेन दरशन।
देखेन,—जगन्नाथ हय मुरलीवदन॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु गरुड़ स्तम्भ के पीछे खड़े होकर दर्शन करने लगे, उन्होंने देखा कि भगवान् जगन्नाथ तो मुरलीवदन हैं।

रघुनाथ के द्वारा स्वरचित ग्रन्थ में प्रभु का जगन्नाथ-दर्शन वर्णित—

एइ लीला निज-ग्रन्थे रघुनाथ-दास।
चैतन्य स्तवकल्पवृक्षे कैराछेन प्रकाश॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी ने उपरोक्त

लीला का स्वरचित चैतन्यस्तव कल्पवृक्ष नामक ग्रन्थ में वर्णन किया है।

(स्तवावली में चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष- स्तव का सप्तम श्लोक)

क्व मे कान्तः कृष्णस्त्वरितमिह तं लोकय सखे।
त्वमेवेति द्वाराधिपमभिवदन्नुन्मद इव।
द्रुतं गच्छ द्रष्टुं प्रियमिति तदुक्तेन धृत-तद्-
भुजान्तर्गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥ ८७ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

८७। 'हे सखे द्वारपाल, मेरे प्राणनाथ कृष्ण कहाँ हैं? तुम उन्हें यहाँ शीघ्र दिखलाओ',—जो द्वारपाल को उन्मत्त की भाँति इस प्रकार कहकर, उसके हाथ को पकड़कर कृष्ण को देखने के लिये तेजी से चले थे, ऐसे गौराङ्ग मेरे हृदय में उदित होकर मुझे उन्मत्त कर रहे हैं।

अनुभाष्य

८७। हे सखे, मे (मम) कान्तः (कृष्णः) क्व (कुत्र)? त्वम् एव इह (अस्मिन् स्थाने समये वा) तं (कान्तं कृष्णं) त्वरितं (शीघ्रं) लोकय (दर्शय) इति (एवम्भूतेन वाक्येन) उन्मदः (उन्मत्तः) इव द्वाराधिपम् अभिवदन् (कथयन्) प्रियं (कृष्णं) द्रष्टुं द्रुतं गच्छ (आगच्छ) तदुक्तेन (द्वाराधिप-वाक्येन) धृततद्भुजान्तः (धृतं तद्भजान्तं तस्य करप्रान्तं येन सः) गौराङ्गः मम हृदये उदयन् मां मदयति (आनन्दयति)।

जगन्नाथ का बाल्य-भोग—

हेनकाले 'गोपाल-वल्लभ'-भोग लागाइल।
शङ्ख-घण्टा-आदि सह आरति बाजिल॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—जिस समय श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथ देव को श्रीमुरलीवदन के रूप में देख रहे थे, उसी समय श्रीजगन्नाथ देव को उनके सेवकों ने 'गोपाल वल्लभ' नामक बालभोग लगाया। शङ्ख, घण्टा आदि की ध्वनि के साथ आरती होने लगी।

अमृतप्रवाह भाष्य

८८। वल्लभभोग,—जिसे इस प्रदेश अर्थात् बङ्गाल में 'बालभोग' कहते हैं।

जगन्नाथ के सेवकों के द्वारा प्रभु को महाप्रसाद-प्रदान—

भोग सरिले जगन्नाथेर सेवकगण।
प्रसाद-लञा प्रभु-ठाञि कैला आगमन॥ ८९ ॥
माला पराञा प्रसाद दिल प्रभुर हाते।
आस्वाद दूरे रहु, जार गन्धे मन माते॥ ९० ॥

८९-९०। प० अनु०—भोग के बाद श्रीजगन्नाथ जी के सेवक प्रसाद लेकर श्रीमन्महाप्रभु के निकट आये। उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु को माला पहनाकर उनके हाथ में श्रीजगन्नाथ का ऐसा प्रसाद दिया, जिसके आस्वादन की बात तो बहुत दूर, उसकी सुगन्ध से ही मन मतवाला हो उठता।

प्रभु को प्रसाद-ग्रहण करने के लिये पाण्डों के द्वारा प्रयत्न—

बहुमूल्य प्रसाद सेइ वस्तु सर्वोत्तम।
तार अल्प खाओयाइते सेवक करिल यतन॥ ९१॥

९१। प० अनु०—गोपाल-वल्लभ नामक प्रसाद बहुमूल्य द्रव्यों से बना हुआ सर्वोत्तम प्रसाद था, इसलिए श्रीजगन्नाथ के सेवकों ने श्रीमन्महाप्रभु को उसमें से थोड़ा-सा अपने समक्ष खिलाने का प्रयत्न किया।

प्रभु के द्वारा किञ्चित् महाप्रसाद-ग्रहण—

तार अल्प लञा प्रभु जिह्वाते यदि दिला।
आर सब गोविन्देर आँचले बान्धिला॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने उस प्रसाद में से थोड़ा-सा लेकर अपनी जिह्वा पर रखा तथा बाकी प्रसाद उन्होंने श्रीगोविन्द के आँचल में बाँध दिया।

महाप्रसाद के आस्वादन से प्रभु में विस्मय और सात्त्विक विकार—

कोटिअमृत-स्वाद पाञा प्रभुर चमत्कार।
सर्वाङ्गे पुलक, नेत्रे बहे अश्रुधार॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उस अल्प प्रसाद में करोड़ों अमृत का आस्वादन प्राप्त करके आश्चर्यचकित

हो उठे। उनके समस्त अङ्गों में पुलक उदित हो गये तथा उनके नेत्रों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित होने लगी।

कृष्ण का अधरामृत जानकर प्रेमावेश; ऐश्वर्याश्रित सेवक के दर्शन से संगोपन—

'एइ द्रव्ये एत स्वाद' काँहा हइते आइल?
कृष्णेर अधरामृत इथे सञ्चारिल॥' ९४ ॥

९४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने मन-ही-मन विचार किया,—''इन द्रव्यों में इतना स्वाद कहाँ से आया? इनमें अवश्य कृष्ण का अधरामृत सञ्चारित हुआ है।''

एइ बुद्धये महाप्रभुर प्रेमावेश हैल।
जगन्नाथेर सेवक देखि' सम्वरण कैल॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के मन में उपरोक्त विचार आने से वे प्रेमाविष्ट हो गये, किन्तु उन्होंने अपने समक्ष श्रीजगन्नाथ के सेवकों को देखकर अपने भावों का सम्वरण कर लिया।

भक्ति-उन्मुखी महासुकृति के फल से महाप्रसाद की प्राप्ति; अज्ञ जगन्नाथ के सेवकों के द्वारा प्रश्न—

''सुकृति-लभ्य फेला-लव'' बलेन बारबार।
ईश्वर-सेवक पुछे,—''कि अर्थ इहार??'' ९६ ॥

९६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु पुनः पुनः कहने लगे,—''सुकृति से प्राप्त होने वाले फेला का लेश मात्र!'' श्रीमन्महाप्रभु के मुख से ऐसा सुनकर श्रीजगन्नाथदेव के सेवक पूछने लगे,—''हे श्रीमन्महाप्रभु! आपके द्वारा उच्चारित वचनों का क्या अर्थ है?''

अनुभाष्य

९६। महाभारत और स्कन्ध पुराण के उत्कल खण्ड में वर्णन आता है—''महाप्रसादे गोविन्दे नाम ब्रह्मणि वैष्णवे स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते॥'' [अर्थात् हे राजन! अल्प सुकृतिवान् व्यक्तिका महाप्रसाद, गोविन्द, भगवन्नाम एवं वैष्णव—इन चार वस्तुओं में विश्वास नहीं होता।]

प्रभु के द्वारा कृष्ण के उच्छिष्ट अथवा महाप्रसाद के माहात्म्य की व्याख्या—

प्रभु कहे,—''एइ जे दिला कृष्णाधरामृत।
ब्रह्मादि-दुर्लभ एइ निन्दये 'अमृत'!! ९७ ॥

९७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''आप लोगों ने मुझे जो श्रीकृष्ण का अधरामृत (उच्छिष्ट प्रसाद) प्रदान किया है, वह ब्रह्मादि के लिये भी दुर्लभ तथा 'अमृत' को भी तुच्छ प्रतीत कराने वाला है।

फेला अथवा महाप्रसाद की संज्ञा—

कृष्णेर जे भुक्त-शेष, तार 'फेला'-नाम।
तार एक 'लव' जे पाय, सेइ भाग्यवान्॥ ९८ ॥

९८। प० अनु०—''श्रीकृष्ण के द्वारा भुक्त भोग के उच्छिष्ट का नाम ही 'फेला' है। जो उसके एक कण को भी प्राप्त करता है, वह भाग्यवान् है।

कर्मोन्मुखी और भक्तयुन्मुखी-सुकृति के फल के वैशिष्ट्य का वर्णन—

सामान्य भाग्य हैते तार प्राप्ति नाहि हय।
कृष्णेर जाँते पूर्ण कृपा, सेइ ताहा पाय॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०— ''सामान्य भाग्य होने पर उस उच्छिष्ट की प्राप्ति नहीं होती, जिन पर श्रीकृष्ण की पूर्ण कृपा होती है, वही इसे प्राप्त करते हैं।

अनुभाष्य

९९। सामान्य भाग्य,—कर्मफल से उत्पन्न सौभाग्य।

(भक्तयुन्मुखी) सुकृति-शब्द का अर्थ—

'सुकृति'-शब्दे कहे 'कृष्णकृपा-हेतु पुण्य'।
सेइ जाँर हय, 'फेला' पाय सेइ धन्य॥'' १०० ॥

१००। प० अनु०—''सुकृति शब्द का अर्थ 'श्रीकृष्ण की कृपा को प्राप्त करने हेतु पुण्य' है, जिसकी ऐसी सुकृति होती है, वह धन्य व्यक्ति ही 'फेला' को प्राप्त करता है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

१००। जिस पवित्र कर्म से कृष्ण की कृपा उत्पन्न होती है, उसे (भक्ति-उन्मुखी) 'सुकृति' कहते हैं।

उपलभोग देखने के बाद प्रभु का अपने निवासस्थान पर आगमन—

एत बलि' प्रभु ता-सबारे विदाय दिला।
उपल-भोग देखिया प्रभु निज-वासा आइला॥१०१॥

१०१। प० अनु०—इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु ने उन सबको विदायी दी, श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथदेव के उपल-भोग को देखने के पश्चात् अपने वासस्थान पर आ गये।

कृष्ण के उच्छिष्ट के माधुर्य की स्मृति—

मध्याह्न करिया कैला भिक्षा निर्वाहण।
कृष्णाधरामृत सदा अन्तरे स्मरण॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने मध्याह्न करने के पश्चात् भोजन ग्रहण किया। उनके अन्तरहृदय में सदैव श्रीकृष्ण के अधरामृत (उच्छिष्ट) की स्मृति होती रही।

प्रेमावेश और कठिनाई से उसका सम्वरण—

बाह्य-कृत्य करेन, प्रेमे गर-गर मन।
कष्टे सम्वरण करेन, आवेश सघन॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु बाहर से तो समस्त कार्य कर रहे थे, किन्तु उनका मन प्रेम में गद्‌गद हो रहा था। श्रीमन्महाप्रभु अपने अत्यधिक प्रबल आवेश को बहुत कठिनाई से सम्वरण कर रहे थे।

सन्ध्या के बाद भक्तों के साथ कृष्ण-कथा का आलाप—

सन्ध्या-कृत्य करि' पुनः निजगण-सङ्गे।
निभृते बसिला नाना कृष्णकथा-रङ्गे॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु अपने सन्ध्या के कृत्यों को करने के पश्चात् एकान्त में बैठकर अपने भक्तों सहित आनन्दपूर्वक कृष्ण की अनेक कथाओं की चर्चा करने लगे।

पुरी, भारती, स्वरूप, राय और भट्टाचार्यादि भक्तगणों को गोविन्द के द्वारा महाप्रसाद प्रदान—

प्रभुर इङ्गिते गोविन्द प्रसाद आनिला।
पुरी-भारतीरे प्रभु किछु पाठाइला॥ १०५ ॥

१०५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के इङ्गित से श्रीगोविन्द प्रभु गोपाल-वल्लभ प्रसाद लेकर आये। श्रीमन्महाप्रभु ने उसमें से कुछ प्रसाद श्रीपरमानन्द पुरी और श्रीब्रह्मानन्द भारती के पास भेजा।

रामानन्द-सार्वभौम-स्वरूपादि-गणे।
सबारे प्रसाद दिल करिया बन्टने॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—जो प्रसाद रह गया उसे श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीरामानन्द राय, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य तथा श्रीस्वरूप दामोदर आदि अपने भक्तों में बाँट दिया।

अलौकिक प्रसाद के आस्वादन से सभी का विस्मय—

प्रसादेर सौरभ्य-माधुर्य करि' आस्वादन।
अलौकिक आस्वादे सबार विस्मय हैल मन॥ १०७॥

१०७। प० अनु०—सभी भक्तों का मन प्रसाद की सुगन्ध तथा उसकी मधुरता का अलौकिक आस्वादन करके आश्चर्यचकित हो गया।

प्रभु के द्वारा बद्धजीव के प्राकृत भोग्य-द्रव्य और कृष्ण के चित्- इन्द्रिय-भोग्य अप्राकृत चित्-उपकरण नैवेद्य में गुण-भेद का वर्णन—

प्रभु कहे,—''एइ सब हय 'प्राकृत' द्रव्य।
ऐक्षव, कर्पूर, मरिच, एलाइच, लवङ्ग, गव्य॥१०८॥

१०८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''गुड़, कर्पूर, काली मिर्च, इलाइची, लौंग, तथा गाय के दूध से बना घी आदि सब द्रव्य तो प्राकृत हैं।

अनुभाष्य

१०८। ऐक्षव,—गन्ने से उत्पन्न गुड़ अथवा चीनी; गव्य-गाय के दूध से बना घी आदि।

रसवास, गुड़त्वक-आदि जत सब।
'प्राकृत' वस्तुर स्वाद सबार अनुभव॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—''हम सबको सुगन्ध और रस से युक्त इलायची और लवङ्ग तथा दाल-चीनी आदि समस्त प्राकृत-वस्तुओं के स्वाद का अनुभव तो है ही।

अनुभाष्य

१०९। रसवास,—सुगन्ध और रसयुक्त इलायची और लवङ्ग; गुड़त्वक,—दारुचिनि (दालचीनी) अथवा जैत्री; प्राकृत,—बद्धजीव के स्व-सुख-विधान की इच्छा पर आधारित जो सब वस्तुएँ, उनकी इन्द्रियों के भोग के लिये हैं,— वे सब खण्ड, सीमा-युक्त, नश्वर अथवा काल के साथ नष्ट होने वाले जड़ीय द्रव्य हैं।

एइ द्रव्ये एत आस्वाद, गन्ध लोकातीत।
आस्वाद करिया देख,—सबार प्रतीत॥ ११० ॥

११०। प० अनु०—''किन्तु इन्हीं द्रव्यों से युक्त श्रीजगन्नाथ देव के उच्छिष्ट प्रसाद का ऐसा अद्‌भुत स्वाद और अलौकिक सुगन्ध है कि आप सब भी उसका आस्वादन करके देखो, अपने आप सब पता चल जायेगा।

कृष्ण के उच्छिष्ट महाप्रसाद का चिद्‌बल—
आस्वाद दूरे रहु, जार गन्धे माते मन।
आपना बिना अन्य माधुर्य कराय विस्मरण॥ १११॥

१११। प० अनु०—''श्रीकृष्ण के उच्छिष्ट के आस्वादन की बात तो बहुत दूर की, उसकी सुगन्ध से ही मन मतवाला हो जाता है। यह उच्छिष्ट प्रसाद अपने अलावा अन्य सब वस्तुओं की मधुरता को सम्पूर्ण रूप में भुला देता है।

कृष्ण के अधर के स्पर्श की महिमा—
ताते एइ द्रव्ये कृष्णाधर-स्पर्श हैल।
अधरेर गुण सब इहाते सञ्चारिल॥ ११२ ॥

११२। प० अनु०—''इसी से प्रमाणित होता है कि इन द्रव्यों से श्रीकृष्ण के अधरों का स्पर्श हुआ है, उसी से श्रीकृष्ण-अधरों के समस्त गुण इस उच्छिष्ट प्रसाद में सञ्चारित हो गये हैं।

कृष्ण के ओष्ठ से स्पृष्ट चित्-उपकरण— भक्तों की चित्-इन्द्रियों के उन्मादक—
अलौकिक-गन्ध-स्वाद, अन्य-विस्मारण।
महा-मादक हय एइ कृष्णाधरेर गुण॥ ११३ ॥

११३। प० अनु०—''इन समस्त वस्तुओं का अलौकिक सुगन्ध और स्वाद से युक्त होना, अन्य वस्तुओं के स्वाद को भुला देने वाले होना तथा अत्यधिक मादकता से युक्त होना वास्तव में श्रीकृष्ण के अधरों का ही गुण है।

सभी को अप्राकृत श्रद्धा के साथ प्रसाद का सम्मान करने का आदेश—
अनेक 'सुकृते' इहा हञाछे सम्प्राप्ति।
सबे एइ आस्वाद कर करि' महाभक्ति॥'' ११४ ॥

११४। प० अनु०—''अनेक सुकृतियों के फल से इस गोपाल-वल्लभ महाप्रसाद की प्राप्ति हुई है। आप सभी अत्यधिक भक्ति-पूर्वक इस महाप्रसाद का आस्वादन करो।''

कृष्ण के अधरामृत के आस्वादन से सभी में प्रेमावेश—
हरिध्वनि करि' सबे कैला आस्वादन।
आस्वादिते प्रेमे मत्त हइल सबार मन॥ ११५ ॥

११५। प० अनु०—सभी उपस्थित भक्तों ने हरिध्वनि करते हुए महाप्रसाद का आस्वादन किया, सभी भक्तों का मन महाप्रसाद का आस्वादन करते ही प्रेम में मत्त हो उठा।

प्रभु की आज्ञा से राय के द्वारा श्लोक का पाठ—
प्रेमावेशे महाप्रभु जबे आज्ञा दिला।
रामानन्द-राय श्लोक पड़िते लागिला॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने प्रेम में आविष्ट होकर जब श्रीरामानन्द राय को आदेश दिया तभी उन्होंने

निम्नलिखित श्लोक उच्चारित करना प्रारम्भ किया—।

गोपियों के द्वारा कृष्ण के अधरामृत की याचना (चित्रजल्प)—श्रीमद्भागवत (१०.३१.१४) में —

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठुचुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥

अमृतप्रवाह भाष्य

११७। हे वीर, तुम्हारे प्रेम को वर्धित करने वाला, जगत् के शोक का नाश करने वाला, स्वरयुक्त वेणु के द्वारा सुन्दर रूप से चुम्बित तथा चित् वस्तुओं के अलावा अन्य वस्तुओं के प्रति राग को भुला देने वाला तुम्हारा जो अधरामृत है, उसे हमें प्रदान करो।

अनुभाष्य

११७। रासलीला के समय कृष्ण के अचानक अन्तर्ध्यान होने से कृष्ण में ही अपने प्राणों को अर्पित करने वाली गोपियाँ कृष्ण के विरह में अत्यन्त कातर होकर रासस्थली से यमुना के तट पर आकर इस प्रकार विलाप कर रही हैं—

हे वीर, (दानवीर) सुरतवर्धनं (सम्भोगेच्छां वर्धयति यत्तत्) शोकनाशनं (अप्राप्तिजन्यदु:ख ध्वंसकं) स्वरितवेणुना (स्वरितेन नादितेन वेणुना) सुष्ठु चुम्बितम् (नादामृत-वासितम्) नृणाम् इतर-राग-विस्मारणम् (इतरेषु कृष्णेतर-विषयसुखेषु य: राग: आसक्ति:, तत् विस्मारयति विलोपयति इति तथा तत्) ते (तव) अधरामृतम् (अधर एव अमृतं) न: (अस्माकं) वितर (देहि)।

स्वयं प्रभु के द्वारा उसी के सूचक श्लोक का पाठ—

श्लोक शुनि' महाप्रभु महातुष्ट हैला।
राधार उत्कण्ठा-श्लोक पड़िते लागिला॥ ११८ ॥

११८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीरामानन्द राय के मुख से श्लोक सुनकर अत्यधिक सन्तुष्ट हुए तथा स्वयं श्रीराधा जी के द्वारा उत्कण्ठा की अवस्था में कथित श्लोक का उच्चारण करने लगे—।

कृष्ण-सेवोन्मुख चित्-जिह्वा के लोभ को वर्धित करने वाला कृष्ण-फेला-लवामृत—गोविन्दलीलामृत (८.८) में विशाखा के प्रति श्रीराधा के वचन—

व्रजातुलकुलाङ्गनेतर-रसालितृष्णाहर-
प्रदीव्यदधरामृत: सुकृतिलभ्य-फेला-लव:।
सुधाजिदहिवल्लिका-सुदलवीटिका-चर्वित:
स मे मदनमोहन: सखि तनोति जिह्वा-स्पृहाम्॥११९॥

अमृतप्रवाह भाष्य

११९। हे सखि, जिनका अधरामृत—व्रज की अतुलनीय कुलाङ्गनाओं के अन्यान्य रस-समूहों में तृष्णा का हरण करने वाला है, जिनका फेलाकण—सुकृति से ही प्राप्त होता है, अमृत को भी पराजित करने वाली पर्णवीटिका (ताम्बुल) का चर्वण करने वाले वे मदनमोहन मेरी जिह्वा की स्पृहा का विस्तार कर रहे हैं।

अनुभाष्य

११९। हे सखि, य: व्रजातुलकुलाङ्गनेतररसालि-तृष्णाहरप्रदीव्यदधरामृत: (ब्रजे या: अतुला: निरुपमा: कुलाङ्गना: व्रजवध्व: तासाम् इतरेषु रसालिषु या तृष्णा तां हर्तुंशीलं यस्य तत् प्रदीव्यत् प्रकृष्ट रूपेण सर्वोपरि शोभमानम् अधरामृतं यस्य स:) सुकृतिलभ्य-फेला-लव: (सुकृतिभि: सौभाग्यवद्भि: लभ्य: प्राप्य: फेलाया: अधरसुधाया: लव: स्वल्पांश: यस्य स:) सुधाजिदहिवल्लिका-सुदलवीटीका-चर्वित: (सुधाजित् अमृतनिन्दितं तथा अहिवल्लिका ताम्बुलवल्ली तस्या: सुदलै: शोभनपत्रै: निर्मिता या: वीटीका: तासां चर्वितं चर्वणं यस्य स:) मदनमोहन: (स्वफेलया) जिह्वा-स्पृहां (सेवोन्मुख-जिह्वालौल्यं) तनोति (वर्धयति)।

प्रभु के द्वारा दोनों श्लोकों की व्याख्या—

एत कहि' गौरप्रभु भावाविष्ट हञा।
दुइ श्लोकेर अर्थ करे प्रलाप करिया॥ १२० ॥

१२०। प० अनु०—इतना कहकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभु भावाविष्ट होकर प्रलाप करते हुए उपरोक्त दोनों श्लोकों का अर्थ करने लगे—।

प्रथम श्लोक की व्याख्या; कृष्णाधरामृत के चिद्बल का वर्णन—ख्यथा रागः,

''तनु-मन कराय क्षोभ; बाड़ाय सुरत-लोभ,
हर्ष-शोकादि-भार विनाशय।
पासराय अन्य रस, जगत् करे आत्मवश,
लज्जा, धर्म, धैर्य करे क्षय॥ १२१ ॥

नागर, शुन तोमार अधर-चरित।
माताय नारीर मन, जिह्वा करे आकर्षण,
विचारिते सब विपरीत॥ १२२ ॥
आछुक नारीर काय, कहिते वासिये लाज,
तोमार अधर बड़ धृष्ट-राय।
पुरुषे करे आकर्षण, आपना पियाइते मन,
अन्यरस सब पासराय॥ १२३ ॥

कृष्ण की वेणु के प्रति श्रीराधा की ईर्ष्या—

सचेतन रहु दूरे, अचेतन सचेतन करे,
तोमार अधर—बड़ बाजिकर!
तोमार वेणु शुष्केन्धन, तार जन्माय इन्द्रिय-मन,
तारे आपना पियाय निरन्तर॥ १२४ ॥
वेणु धृष्ट-पुरुष हञा, पुरुषाधर पिया पिया,
गोपीगणे जानाय निज-पान।
'ओहे, शुन, गोपीगण, बले पिओ तोमार धन,
तोमार यदि थाके अभिमान॥ १२५ ॥
तबे मोरे क्रोध करि', लज्जा, भय, धर्म छाड़ि',
छाड़ि' दिमु, कर आसि' पान।
नहे पिमु निरन्तर, तोमाय मोर नाहिक डर,
अन्ये देखों तृणेर समान॥ १२६ ॥

वेणु और अधरामृत के सम्मिलित बल के प्रयोग का फल—

अधरामृत निज-स्वरे, सञ्चारिया सेइ बले,
आकर्षय त्रिजगत्-जन।
आमरा धर्म भय करि', रहि' यदि धैर्य धरि',
तबे आमाय करे विडम्बन॥ १२७ ॥

नीवि खसाय गुरु-आगे, लज्जा-धर्म कराय त्यागे,
केशे धरि' जेन लञा जाय।
आनि' कराय तोमार दासी, शुनि' लोक करे हासि,
एइ मत नारीरे नाचाय॥ १२८ ॥

श्रीराधा आदि का तूष्णीम्भाव (मौन-भाव)—

शुष्क बाँशेर लाठिखान, एत करे अपमान,
एइ दशा करिल, गोसाञि।
ना सहि' कि करिते पारि, ताते रहि मौन धरि',
चोरार माके डाकि' कान्दिते नाइ॥ १२९ ॥

द्वितीय श्लोक की व्याख्या; कृष्ण के अधरामृत के माहात्म्य का वर्णन—

अधरेर एइ रीति, आर शुन कुनीति,
से अधर-सने जार मेला।
सेइ भक्ष्य-भोज्य-पान, हय अमृत-समान,
नाम तार हय 'कृष्ण-फेला'॥ १३० ॥
से फेलार एक लव, ना पाय देवता सब,
ए दम्भे केबा पातियाय?
बहुजन्म पुण्य करे, तबे 'सुकृति' नाम धरे,
से 'सुकृते' तार लव पाय॥ १३१ ॥

कृष्ण जे खाय ताम्बुल, कहे तार नाहि मूल,
ताहे आर दम्भ परिपाटी।
तार जेबा उद्गार, तारे कय 'अमृत-सार',
गोपीर मुख करे 'आलबाटी'॥ १३२ ॥
एसब—तोमार कुटिनाटि, छाड़ एइ परिपाटी,
वेणुद्वारे काँहे हर प्राण।
आपनार हासि लागि', नह नारीर वधभागी,
देह' निजाधरामृत दान॥'' १३३ ॥

१२१-१३३। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१२१-१३३। हे नागर, तुम्हारे अधर के चरित्र का

वर्णन कर रही हूँ, तुम सुनो। वह लोगों के शरीर और मन को क्षुब्ध करता है, कन्दर्प के लोभ की वृद्धि करता है, हर्ष-शोक आदि के भार का विनाश करता है, अन्य रसों को भुला देता है, जगत् को अपने वश में कर लेता है, लज्जा, धर्म और धैर्य को कम कर देता है, स्त्रियों के मन को मत्त कर देता है और जिह्वा की लालसा को वर्धित कराके उसका आकर्षण करता है, विचार करने पर मैं उसका सबकुछ ही विपरीत देखती हूँ। हे कृष्ण,—तुम पुरुष हो, तुम्हारा अधरामृत स्त्रियों का मन आकर्षित करेगा,—यही नियम है; किन्तु वह [इतना अधिक धृष्ट है कि] पुरुष रूपी वेणु को आकर्षित करके स्वयं को पान कराके समस्त रसों को भुला देता है; सचेतन की तो बात ही दूर रहे, अचेतन को भी चेतन कर देता है, अतएव तुम्हारा अधर—एक बहुत बड़ा बाजीगर है। उसकी ओर भी विपरीत बात देखो,—तुम्हारा जो वेणु है, वह—सूखी लकड़ी मात्र है; तुम्हारा अधरामृत वेणु को निरन्तर स्वयं का पान कराके उसकी इन्द्रियों और मन को प्रस्तुत करके (चेतनवृत्ति युक्त बनाकर) उसे सुख देता है। वह वेणु धृष्ट पुरुष के रूप में स्वयं पुरुषाधर का पुनः पुनः पान करके गोपियों के समक्ष अपने पीने की घोषणा करता है, और यही कहता है,—'अरी गोपियों, तुममें यदि 'स्त्री' होने का अभिमान हो, तो फिर पुरुष के अधरामृत रूपी अपने निज-धन का पान करो।' राधिका कह रही हैं, [अर्थात् श्रीराधिका के भाव में आविष्ट श्रीमन्महाप्रभु कह रहे हैं]—"वह वेणु मेरे प्रति क्रोध करते हुए कहता है, 'तुम लज्जा और भय को छोड़कर इसका पान करो, तभी मैं (तुम्हारे लिये यह अधर) छोड़ दूँगा; और यदि तुम लज्जा और भय को नहीं छोड़ोगी, तब मैं ही निरन्तर पान करूँगा; कृष्ण-अधरामृत में तुम्हारा विशेष अधिकार देखकर मुझे थोड़ा भय होता है; अन्य सभी को तो मैं तृण के समान देखता हूँ।" वह वेणु अपने स्वर में अधरामृत का सञ्चार करके अर्थात् उसके साथ मिलकर (एकसाथ बल लगाकर) इस प्रकार त्रिजगत् को आकर्षित करता है। हम गोपियाँ यदि धर्म का भय करके धैर्य धारण करती हैं, तब फिर हमारी बहुत अधिक विडम्बना करता है; और-तो-और, हमें लज्जा-धर्म छुड़वाकर हमारे गुरुजनों के सामने ही हमारी नीवि अर्थात् हमारे कमर के नाड़े को नीचे गिरा देता है,—ऐसा प्रतीत होता है, मानो हमारे केश पकड़कर ले जाता है,—हमें तुम्हारी दासी बना देता है; लोग इसे सुनकर हास्य किया करते हैं [कि वेणु कैसे गोपियों को अपनी इच्छानुसार चलाता है]। वेणु सूखी हुई बाँस की लकड़ी मात्र होने पर भी (प्रभु के रूप में) हमारा अपमान करके हमारी ऐसी दशा कर देता है। हम इसे सहन नहीं करके और कर भी क्या सकती हैं? चोर को दण्ड देने पर उसकी माँ जिस प्रकार (रक्षा अथवा निरपेक्ष विचार के लिये अन्य व्यक्तियों को) बुलाकर चीत्कार करते हुए रो नहीं सकती (अर्थात् उसके लिये अन्य लोगों को बुलाकर रोना उचित नहीं है कारण, इसमें उसका अपना ही अपमान है) मैं भी उसी प्रकार मौन रहती हूँ। अधर की ऐसी ही रीति है। अधर के साथ जिसका मिलन है, उसकी कुनीति का पुनः श्रवण करो;—उस अधर से स्पर्श हुआ भक्ष्य, भोज्य और पानीय द्रव्य अमृत के समान होने के कारण 'कृष्ण-फेला' नाम धारण करता है। देवता प्रचुर आराधना करके भी उस फेला का एक-लव भी प्राप्त नहीं कर पाते। उस पर, फेला का ऐसा दम्भ है [अर्थात् उसके अमूल्य होने के कारण उसकी अपनी ही दम्भपूर्ण परिपाटी है] कि, उस पर साधारण लोग विश्वास नहीं कर सकते; क्योंकि, बहुत जन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप जो भक्त्युन्मुखी सुकृति प्राप्त होती है, उसी 'सुकृति' के बल से ही व्यक्ति कृष्ण के फेला के लव अथवा कण को प्राप्त करते हैं। कृष्ण के द्वारा चबाये गये ताम्बुल (पान)-प्रसाद के उद्गार को 'अमृतसार' कहते हैं; गोपियों का मुख—उसे रखने की आलवाटी अर्थात् पीकदानी के समान है। अतएव हे श्याम, तुम अपनी इस कुटी-नाटी की परिपाटी (कुशलता) का परित्याग करो; वेणु के द्वारा गोपियों के प्राणों का नाश मत करो; तुम हँसते-हँसते स्त्रियों के वध के भागीदार मत बनो, हमें अपना अधरामृत

दान करो।

अनुभाष्य

१२१। 'भार विनाशय',—पाठान्तर में, 'भावविलाशय' और 'भाव-विनाशय'।

अनुभाष्य

१२३। धृष्ट-राय,—प्रागल्भ अथवा उद्धत- प्रधान।

अनुभाष्य

१२८। नीवि,—कटिबन्ध, वस्त्र को बाँधने वाला नाड़ा; खसाय,—खोल देता है।

अनुभाष्य

१३०। मेला,—मिलन।

अनुभाष्य

१३१। पातियाय,—प्रतीति होती है।

अनुभाष्य

१३२। आलबाटी;—लार की कटोरी, पीकदानी।

अनुभाष्य

१३३। कुटिनाटि,—कपटता; परिपाटी,— कारीगिरि, निपुणता, कुशलता।

अमृतप्रवाह भाष्य

१३३। आपनार हासि लागि',—'प्रथमार्थ' (प्रथम अर्थ) यह है कि स्त्री के वध के भागीदार होने के कारण आपकी ही निन्दा होगी, वैसा नहीं करके अपना अधरामृत दो; दूसरा अर्थ यह है कि अपने कौतुक (खेल) के लिये स्त्री का वध मत करो।

प्रभु की उत्कण्ठा—

कहिते कहिते प्रभुर मन फिरि' गेल।
क्रोध मन शान्त हैल, उत्कण्ठा बाड़िल॥ १३४ ॥

१३४। प० अनु०—इस प्रकार बोलते-बोलते श्रीगौरहरि का मन बदल गया। उनके मन का क्रोध शान्त हो गया तथा उत्कण्ठा बढ़ गयी, श्रीगौरहरि कहने लगे—।

प्रभु के द्वारा कृष्ण के अधरामृत की परम-महिमा का कीर्त्तन—

''परम दुर्लभ एइ कृष्णाधरामृत।
ताहा जेइ पाय, तार सफल जीवित॥ १३५ ॥

१३५। प० अनु०—''जो व्यक्ति परम दुर्लभ श्रीकृष्ण के अधरामृत को प्राप्त करता है, उसी का जन्म सफल है।

योग्य हञा केह करिते ना पाय पान।
तथापि से निर्लज्ज, वृथा धरे प्राण॥ १३६ ॥

१३६। प० अनु०—''योग्य होने पर भी कोई उस अधरामृत को प्राप्त नहीं कर पाता तथा तब भी निर्लज्ज होकर व्यर्थ में ही अपने प्राणों को धारण करता है।

अयोग्य हञा ताहा केह सदा पान करे।
योग्य जन नाहि पाय, लोभे मात्र मरे॥ १३७ ॥

१३७। प० अनु०— ''दूसरी ओर, कोई अयोग्य होने पर भी उस श्रीकृष्ण अधरामृत का सदैव पान करता है। योग्य व्यक्ति उसे नहीं पाकर लालसा मात्र से ही मरता है।

ताते जानि,—कोन तपस्यार आछे बल।
अयोग्येरे देओयाय कृष्णाधरामृत-फल॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०—''इसी से ही पता चलता है कि अयोग्य दिखलायी देने वाले में भी किसी-न-किसी तपस्या का बल है, जो उसके अयोग्य होने पर भी उसे कृष्णधरामृत रूपी फल प्रदान कराता है।

प्रभु के आदेश से राय के द्वारा श्लोक का पाठ—

कह राम-राय, किछु शुनिते हय मन।''
भाव जानि' पड़े राय गोपीर वचन॥ १३९ ॥

१३९। प० अनु०—''हे रामानन्द राय! कुछ श्रवण करने का मन कर रहा है।'' श्रीमन्महाप्रभु के अभिप्राय को समझकर श्रीरामानन्द राय गोपियों के वचनों का उच्चारण करने लगे—।

गोपियों के द्वारा कृष्ण के अधर के स्पर्श से प्रसन्न वेणु की प्रशंसा—श्रीमद्भागवत (१०.२१.९) में—

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु-
र्दामोदराधर सुधामपि गोपिकानाम्।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रादिन्यो
हृष्यत्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्याः॥ १४० ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१४०। [किसी एक गोपी ने अन्य गोपियों से कहा,—] हे गोपीगण, इस वेणु ने क्या सुकृति की थी, कि गोपियों को प्राप्त होने वाले कृष्ण के अधर की सुधा का स्वयं भोग कर रहा है? आर्य व्यक्ति जिस प्रकार [अपने कुल में किसी भगवद्भक्त] श्रेष्ठ सन्तान का [जन्म देखकर उसके लिये आनन्द में अश्रु विसर्जित] करता है, उसी प्रकार यह वेणु जिन [सब नदियों के] जल से पुष्ट हुआ है, [वे सब नदियाँ अपने- अपने ऊपरी भाग में स्थित विकसित पद्मों रूपी रोम समूह के द्वारा प्रसन्न हो रही हैं] एवं जिस वृक्ष से इसका जन्म हुआ है, उसी जाति के समस्त वृक्ष ही आनन्दवशतः मधु-धारा रूपी अश्रु बहा रहे हैं।

अनुभाष्य

१४०। व्रज में शरत्काल के उपस्थित होने पर श्रीकृष्ण के द्वारा वन में गोचारणपूर्वक वंशी की ध्वनि करने पर गोपियाँ कृष्ण के सङ्ग रूपी काम से आतुर होकर कृष्ण की मनोहर गुणावली का गान करके इधर-उधर भ्रमण करते हुए कृष्ण के वेणु के सौभाग्य का वर्णन कर रही हैं—

अन्या अन्या उचुः—हे गोप्यः, अयं वेणुः किं कुशलं (पुण्यम्) आचरत् (अनुष्ठितवान्) स्म, यत् (यस्मात्) गोपिकानाम् (एव भोग्यां सतीमपि) दामोदराधरसुधां (कृष्णाधरामृतं) स्वयं (स्वातन्त्र्येण) अवशिष्टरसं (केवलमवशिष्ट-रसमात्रं यथा भवति, तथा) भुङ्क्ते ; ह्रदिन्यः (यासां पयसा पुष्टः ताः मातृतुल्याः नद्यः) हृष्यत्वचः (जात-रोमहर्षाः विकसितकमलवन-मिषेण रोमाञ्चिताः लक्ष्यन्ते); आर्याः (कुलवृद्धाः) यथा (स्ववंशे भगवत् सेवकं दृष्ट्वा पुलकिताः सन्तः अश्रु मुञ्चयन्ति, तद्वत्) तरवः (येषां वंशे स जातः ते) अश्रु (मधुधारा-मिषेण आनन्दाश्रु) मुमुचुः।

प्रभु के द्वारा भावावेश में प्रलापपूर्ण व्याख्या—

एइ श्लोक शुनि' प्रभु भावाविष्ट हञा।
उत्कण्ठाते अर्थ करे प्रलाप करिया॥ १४१ ॥

१४१। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय के मुख से उपरोक्त श्लोक को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु भाव में आविष्ट हो गये तथा प्रलाप करते हुए उस श्लोक का उत्कण्ठा-पूर्वक अर्थ प्रकाशित करते हुए कहने लगे—।

श्लोक का अर्थ; वेणु द्वारा कृष्ण के अधरामृत के पान के सौभाग्य को देखकर गोपियों में ईर्ष्या, तथापि स्तुतिपूर्ण वचन (चित्रजल्प)—

''अहो व्रजेन्द्रनन्दन, व्रजेर कोन कन्यागण,
अवश्य करिबे परिणय।
से-सम्बन्धे गोपीगण, जारे जाने निजधन,
से सुधा अन्येर लभ्य नय॥ १४२ ॥
गोपीगण, कह सब करिया विचारे।
कोन तीर्थ, कोन तप,
कोन सिद्धमन्त्र जप,
एइ वेणु कैल जन्मान्तरे?? १४३ ॥
हेन कृष्णाधर-सुधा, जे कैल अमृत-मुदा,
जार आशाय गोपी धरे प्राण।
एइ वेणु अयोग्य अति, स्थावर 'पुरुष जाति',
सेइ सुधा सदा करे पान॥ १४४ ॥

जार धन, ना कहे तारे, पान करे बलात्कारे,
पिते तारे डाकिया जानाय।
तार तपस्यार फल, देख इहार भाग्य-बल,
इहार उच्छिष्ट महाजने खाय॥ १४५ ॥
मानस गङ्गा, कालिन्दी, भुवन-पावनी नदी,
कृष्ण यदि ताते करे स्नान।

वेणु-झूठाधर-रस, हञा लोभे परवश,
सेइ काले हर्षे करे पान॥ १४६ ॥
एत नदी रहु दूरे, वृक्ष सब तार तीरे,
तप करे पर-उपकारी।
नदीर शेष-रस पाञा, मूलद्वारे आकर्षिया,
केने पिये, बुझिते ना पारि॥ १४७ ॥
निजांकुरे पुलकित, पुष्पे हास्य विकसित,
मधु-मिषे बहे अश्रुधार।
वेणुरे मानि' निज जाति, आर्येर जेन पुत्र-नाति,
'वैष्णव' हैले आनन्द-विकार॥ १४८ ॥

वेणुर तप जानि जबे, सेइ तप करि तबे,
ए—अयोग्य, आमरा—योग्या नारी।
जा ना पाञा दुःखे मरि, अयोग्य पिये सइते नारि,
ताहा लागि' तपस्या विचारि॥'' १४९ ॥

१४२-१४९। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४२-१४९। कोई गोपी अन्य गोपियों से कह रही है,—''व्रजेन्द्रनन्दन की यह कैसी आश्चर्यमय लीला है; देखो। यह अवश्य ही व्रज की कन्याओं से परिणय (विवाह) करेगा, अतएव गोपियाँ जानती हैं कि कृष्ण का अधरामृत—उन्हीं का निजधन है एवं वह अधरामृत अन्यों का प्राप्य नहीं है। हे गोपीगण, विचार करके देखो कि कृष्ण के इस वेणु ने अपने किसी अन्य जन्म में अवश्य ही किसी तीर्थ में कोई तप अथवा किसी सिद्धमन्त्र का जप किया था, जिसके द्वारा उसने इस प्रकार कृष्ण के अधर की सुधा को,—जिसके लिये गोपियाँ प्राण धारण कर रही हैं, उसे—अपनी 'अमृत मुद्रा' बना लिया है। यह वेणु—अत्यधिक अयोग्य, स्थावर वंश में उत्पन्न हुआ है; उस पर भी 'पुरुष जाति' का होकर कृष्ण के अधर की सुधा का सदैव पान किया करता है। यह गोपियों का अपना धन होने पर भी वेणु उन्हें नहीं बतलाकर उसे जबरदस्ती पान करता है एवं गोपियों को उच्च स्वर में पान करने हेतु आह्वान करता है। पुनः, इस वेणु की तपस्या का फल एवं भाग्य का बल देखो,—इसका उच्छिष्ट महाजन तक खा रहे हैं, कृष्ण जब भुवन-पावनी कलिन्द-नन्दिनी और मानसगङ्गा में स्नान करते हैं, तब वे (यमुना एवं मानस-गङ्गा रूपी महाजन) लोभ के वशीभूत होकर वेणु के उच्छिष्ट अधररस का प्रसन्नताप-ूर्वक पान करती हैं। नदी की बात दूर रहे, उस नदी के तट पर लगे तापस-जैसे परोपकारी वृक्ष भी किसलिए जड़ के द्वारा नदी के उपभुक्त बचे हुए रस को आकर्षित करके पान करते हैं, मैं उसे नहीं समझ पा रही। वे सब वृक्ष अपने-अपने अंकुर से पुलकित एवं पुष्प-विकास के रूप में हास्य से विकसित होकर 'मधुमिषे' अर्थात् मधु के छल से अश्रुधारा को बहाते हैं; ऐसा लगता है, आर्यपुरुषों के पुत्र-पौत्र 'वैष्णव' होने पर वे जिस प्रकार आनन्द-विकार को प्राप्त करते हैं, वृक्षगण अपने-वंशीय वृक्षजाति रूपी वेणु को वैसा मानकर कार्य कर रहे हैं। अब बात यह है कि, वेणु—अत्यन्त अयोग्य है, किन्तु हम—योग्य नारियाँ हैं; वेणु ने ऐसी कौन-सी तपस्या की है, उसे जान पाने पर हम भी वैसी ही तपस्या करेंगी। हमारे मन की बात यह है कि अयोग्य वेणु को कृष्ण-अधरामृत का पान करते देख हम दुःख से मर रही हैं; इसलिए ही वेणु की तपस्या का विचार कर रही हैं।

अनुभाष्य

१४४। 'जे कैल अमृत मुदा',—किसी-किसी के मतानुसार, अमृत का भी जो अपने माधुर्य के बल से आच्छादन (पराजित) करती है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४५। महाजने,—मानस-गङ्गा और यमुना; ये पुण्य-नदियाँ होने के कारण 'महाजन' हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४७। पवित्र-नदी होने पर भी यह—नदी है, अतएव उनके द्वारा यही कार्य (अर्थात् वेणु के उच्छिष्ट कृष्ण के

अधरामृत के रस का पान) सम्भव हो सकता है।

अनुभाष्य

१४८। मधु-मिषे,—मधु-धारा के छल से (श्रीधर स्वामि-टीका द्रष्टव्य)।

षोड़श परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

अमृतप्रवाह भाष्य

१४९। ए अयोग्य,—यह वेणु स्थावर-वस्तु है, अतएव कृष्ण के अधरामृत को प्राप्त करने के अयोग्य है।

षोड़श परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

प्रभु का गोपीभाव में कृष्ण-प्रेमोन्माद—

एतेक विलाप करि', प्रेमावेशे गौरहरि,
सङ्गे लञा स्वरूप-रामराय।
कभु नाचे, कभु गाय, भावावेशे मूर्च्छा जाय,
एइरूपे रात्रि दिन-जाय॥१५०॥

१५०। प० अनु०—श्रीगौरहरि ने श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय को साथ में लेकर प्रेमावेश में इस प्रकार विलाप किया। श्रीमन्महाप्रभु के रात-दिन कभी नृत्य करने में, कभी गीत गाने में, कभी भावावेश में मूर्च्छित होने में व्यतीत होते।

स्वरूप, रूप, सनातन रघुनाथेर श्रीचरण,
शिरे धरि' करि जार आश।
चैतन्यचरितामृत, अमृत हैते परामृत,
गाय दीनहीन कृष्णदास॥१५१॥

१५१। प० अनु०—मैं उन श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के श्रीचरणों को अपने सिरपर धारण करता हूँ, जिनकी मैं अभिलाषा करता हूँ। श्रीचैतन्य चरितामृत रूपी अमृत से भी अत्यधिक श्रेष्ठ अमृत का दीनहीन कृष्णदास गान कर रहा है।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे कालिदासप्रसाद-विरहोन्माद-प्रलापो नाम षोड़शः परिच्छेदः।

❋❋❋

सप्तदश परिच्छेद

कथासार—अनेक प्रकार के प्रेमोन्माद के बीच में रात्रि में द्वार को नहीं खोल करके तीन प्राचीरों (दीवारों) को लाँघकर महाप्रभु तैलङ्गी-गैयाओं के बीच में कछुए के आकार में भूमि पर पतित अचेतन अवस्था में मिले थे, वही इस परिच्छेद में वर्णित हुआ है।

(अ: प्र: भा:)

गुरु के मुख से श्रौतपन्था में गौर की अप्राकृत-लीला का वर्णन—

लिख्यते श्रील-गौरेन्दोरत्यद्भुतमलौकिकम्।
यैर्दृष्टं तन्मुखाच्छ्रुत्वा दिव्योन्माद-विचेष्टितम्॥ १॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। श्रीगौरचन्द्र के अत्यधिक अद्‌भुत अलौकिक दिव्योन्माद की चेष्टा को जिन्होंने (अपने नेत्रों से) देखा है, मैं उनके मुख से श्रवण करके ही लिख रहा हूँ।

अनुभाष्य

१। यै: (सौभाग्यवद्भिर्दामोदर-रघुनाथ-प्रमुखै: अन्तरङ्गै: भक्तै:) श्रीलगौरेन्दो: (गौरचन्द्रस्य) अद्भुतम् (अश्रुतचरं) अलौकिकं (अदृष्टचरं) दिव्योन्माद-विचेष्टितम् (महाभावोन्मत्तेहितं) दृष्टं (प्रत्यक्षी-कृतं) तन्मुखात् (तेषां श्रीगुरूणां कीर्त्तनकारिणां श्रीमुखादेव) तत् श्रुत्वा (मया) लिख्यते।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र प्रभु की जय हो तथा समस्त गौर भक्तों की जय हो।

प्रभु का उन्माद और प्रलाप—

एइमत महाप्रभु रात्रि-दिवसे।
उन्मादेर चेष्टा, प्रलाप करे प्रेमावेशे॥ ३॥

३। प० अनु०—षोड़श परिच्छेद में वर्णित लीलाओं की भाँति श्रीमन्महाप्रभु रात-दिन उन्मत्त की भाँति चेष्टाएँ करते तथा प्रेम के आवेश में प्रलाप करते।

प्रभु के तत्कालीन नित्यसङ्गी—

एकदिन प्रभु स्वरूप-रामानन्द-सङ्गे।
अर्द्धरात्रि गोआइला कृष्णकथा-रङ्गे॥ ४॥

४। प० अनु०—एकदिन श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीरामानन्द राय के साथ कृष्णकथा में आनन्दपूर्वक आधी रात व्यतीत कर दी।

स्वरूप का भाव-उपयोगी गान के द्वारा प्रभु का सेवन—

जबे जेइ भाव प्रभु करये उदय।
भावानुरूप गीत गाय स्वरूप-महाशय॥ ५॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु जब जिस प्रकार का भाव उदित करते, उस समय श्रीस्वरूप दामोदर श्रीमन्महाप्रभु के भाव के अनुरूप गीत गाते।

प्रभु के प्रिय ग्रन्थ से राय के द्वारा श्लोक का पाठ—

विद्यापति, चण्डीदास, श्रीगीतगोविन्द।
भावानुरूप श्लोक पड़ेन राय-रामानन्द॥ ६॥

६। प० अनु०—श्रीरामानन्द राय भी श्रीविद्यापति, श्रीचण्डीदास तथा श्रीगीतगोविन्द के श्लोकों का श्रीमन्महाप्रभु के भावों के अनुरूप उच्चारण करते।

स्वयं प्रभु के द्वारा श्लोक का पाठ और विलापमयी उक्ति—

मध्ये मध्ये आपने प्रभु श्लोक पड़िया।
श्लोकेर अर्थ करेन प्रभु विलाप करिया॥ ७ ॥

७। **प० अनु०**—बीच-बीच में स्वयं श्रीमन्महाप्रभु भी किसी-किसी श्लोक का उच्चारण करते तथा पुन: विलाप करते हुए उसके अर्थ को प्रकाशित करते।

प्रभु के शयन के बाद दोनों का प्रस्थान—

एइमते नाना भावे अर्द्धरात्रि हैल।
गोसाञिरे शयन कराइ' दुँहे घरे गेल॥ ८ ॥

८। **प० अनु०**—इस प्रकार अनेक प्रकार के कृष्ण-कथा-प्रसङ्ग रूपी भावों में आधी रात बीत गयी। श्रीमन्महाप्रभु को शयन कराने के बाद श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय भी अपने-अपने वासस्थान पर चले गये।

प्रभु के द्वारा उच्च नाम-सङ्कीर्त्तन—

गम्भीरार द्वारे गोविन्द करिला शयन।
अर्द्धरात्रिते प्रभु करेन उच्चसङ्कीर्त्तन॥ ९ ॥

९। **प० अनु०**—श्रीगोविन्द प्रभु श्रीमन्महाप्रभु की वासस्थली गम्भीरा के द्वार पर सो गये। आधी रात में श्रीमन्महाप्रभु उच्च स्वर में सङ्कीर्त्तन करने लगे।

प्रभु का दिव्योन्माद—

आचम्बिते शुनेन प्रभु कृष्णवेणु-गान।
भावावेशे प्रभु ताँहा करिला प्रयाण॥ १० ॥

१०। **प० अनु०**—श्रीमन्महाप्रभु ने अकस्मात् श्रीकृष्ण की वेणु का गान सुनकर भावावेश में उस दिशा की ओर गमन किया।

तिनद्वारे कपाट ऐछे आछे त' लागिया।
भावावेशे प्रभु गेला बाहिर हञा॥ ११ ॥

११। **प० अनु०**—वैसे तो गम्भीरा के तीनों प्रवेश-द्वारों का कपाट (दरवाजा) लगा हुआ था किन्तु श्रीमन्महाप्रभु भाव के आवेश में बाहर निकलकर चले गये।

सिंहद्वार-दक्षिणे आछे तैलङ्गी-गाभीगण।
ताँहा जाइ' पड़िला प्रभु हञा अचेतन॥ १२ ॥

१२। **प० अनु०**—श्रीजगन्नाथ मन्दिर के सिंहद्वार के दक्षिण में तैलङ्गी (तेलगु प्रदेश की) गैयाएँ थी, श्रीमन्महाप्रभु भावावेश में अचेतन होकर उन्हीं गैयाओं के बीच में गिर पड़े।

प्रभु के शब्द को नहीं सुनकर सभी के द्वारा प्रभु को ढूँढ़ना और उनकी प्राप्ति—

एथा गोविन्द महाप्रभुर शब्द ना पाञा।
स्वरूपेरे बोलाइल कपाट खुलिया॥ १३ ॥

१३। **प० अनु०**—दूसरी ओर, श्रीगोविन्द प्रभु ने श्रीमन्महाप्रभु का कोई भी शब्द नहीं सुनकर दरवाजा खोला। श्रीमन्महाप्रभु को भीतर नहीं देखकर श्रीगोविन्द प्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर को बुलवाया।

तबे स्वरूप-गोसाञि सङ्गे लञा भक्तगण।
देउटि ज्वालिया करेन प्रभुर अन्वेषण॥ १४ ॥

१४। **प० अनु०**—तब श्रीस्वरूप दामोदर भक्तों को अपने साथ लेकर तथा दीपकाष्ठ (मशाल) जलाकर श्रीमन्महाप्रभु को ढूँढ़ने लगे।

अनुभाष्य

१४। देउटि,—दीपकाष्ठ।

इति-उति अन्वेषिया सिंहद्वारे गेला।
गाभीगण-मध्ये जाइ' प्रभुरे पाइला॥ १५ ॥

१५। **प० अनु०**—सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु को इधर-उधर ढूँढ़ते हुए जब सिंहद्वार पर पहुँचे, तब उन्हें श्रीमन्महाप्रभु गैयाओं के बीच अचेतन अवस्था में मिले।

प्रभु की अवस्था—

पेटेर भितर हस्त-पाद—कूर्मेर आकार।
मुखे फेन, पुलकाङ्ग, नेत्रे अश्रुधार॥ १६ ॥

१६। **प० अनु०**—श्रीमन्महाप्रभु के हाथ तथा पाँव

उनके पेट के भीतर चले गये, जिससे देखने में उनका आकार कछुए जैसा हो गया। श्रीमन्महाप्रभु के मुख से फेन निकल रहा था, उनका अङ्ग-प्रतिअङ्ग पुलकित हो रहा था तथा उनके नेत्रों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी।

अचेतन पड़ियाछेन,—जेन कुष्माण्ड-फल।
बाहिरे जड़िमा, अन्तरे आनन्द-विह्वल॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु अचेतन अवस्था में ऐसे लग रहे थे, मानो कुष्माण्ड (पेठा) हो। यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु बाहर में जड़वत् थे, किन्तु उनका अन्तर हृदय आनन्द से विह्वल हो रहा था।

गाभी-सब चौदिके शुँके प्रभुर श्रीअङ्ग।
दूर कैले नाहि छाड़े प्रभुर श्रीअङ्ग-सङ्ग॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—गैयाएँ श्रीमन्महाप्रभु को चारों ओर से घेरकर उनके श्रीअङ्ग को सूँघ रही थी, दूर भगाने पर भी वे श्रीमन्महाप्रभु के श्रीअङ्ग के सङ्ग को नहीं छोड़ रही थी अर्थात् वहाँ से हट नहीं रही थी।

प्रभु की चेतनता को सम्पादित करने में बहुत प्रयत्न और घर में लाना—

अनेक करिला यत्न, ना हय चेतन।
प्रभुरे उठाञा घरे आनिला भक्तगण॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों ने श्रीमन्महाप्रभु की मूर्च्छा को दूर करने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वैसा हो नहीं पाया। भक्तगण श्रीमन्महाप्रभु को उसी अवस्था में उठाकर गम्भीरा ले आये।

उच्च-सङ्कीर्त्तन से प्रभु की चेतनता और अर्धबाह्यदशा में आना—

उच्च करि' श्रवणे करे नामसङ्कीर्त्तन।
अनेकक्षणे महाप्रभु पाइला चेतन॥ २० ॥

२०। प० अनु०—सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु के कान के निकट उच्च स्वर से नाम-सङ्कीर्त्तन करने लगे, बहुत देर के बाद श्रीमन्महाप्रभु में चेतनता आयी।

चेतन हइले हस्त-पाद बाहिरे आइल।
पूर्ववत् यथायोग्य शरीर हइल॥ २१ ॥

२१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु में चेतनता आने पर उनके हस्त-पाद पेट से बाहर आ गये, उनका दिव्य कलेवर पहले की भाँति प्रकाशित हुआ।

स्वरूप को अपनी अवस्था के विषय में बतलाना—

उठिया बसिलेन प्रभु, चाहेन इति-उति।
स्वरूपे कहेन,—"तुमि आमा आनिला कति??२२॥

२२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उठकर बैठ गये, इधर-उधर देखने लगे। श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीस्वरूप दामोदर से कहा,—"तुम मुझे कहाँ ले आये हो?

वेणु-शब्द शुनि' आमि गेलाङ वृन्दावन।
देखि—गोष्ठे वेणु बाजाय व्रजेन्द्रनन्दन॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—"मैं श्रीकृष्ण की वेणु-ध्वनि को सुनकर वृन्दावन गया था, मैंने देखा कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण गोष्ठ में वेणु बजा रहे हैं।

सङ्केते-वेणु-नादे राधा गेला कुञ्ज-घरे।
कुञ्जेरे चलिला कृष्ण क्रीड़ा करिवारे॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—"वेणु की ध्वनि के द्वारा किये गये सङ्केत के अनुसार श्रीराधा कुञ्ज कुटीर में प्रविष्ट हो गयी तथा श्रीकृष्ण भी लीला करने के उद्देश्य से उस कुञ्ज की ओर चल दिये।

ताँर पाछे पाछे आमि करिनु गमन।
ताँर भूषण-ध्वनिते आमार हरिल श्रवण॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—"मैं भी श्रीकृष्ण के पीछे-पीछे चलने लगा। मेरे कान श्रीकृष्ण के आभूषणों की ध्वनि से मुग्ध हो गये।

गोपीगण-सह विहार, हास, परिहास।
कण्ठध्वनि-उक्ति शुनि' मोर कर्णोल्लास॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—''श्रीकृष्ण के द्वारा गोपियों के साथ विहार, हास्य तथा परिहास करते समय उनके कण्ठ की ध्वनि के मेरे कान में पड़ने पर कान उल्लसित हो उठे।

हेनकाले तुमि सब कोलाहल करि'।
आमा इँहा लञा आइला बलात्कार करि'॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—''उसी समय तुम सब कोलाहल करके मुझे बलपूर्वक यहाँ ले आये।

कृष्ण की ध्वनि का श्रवण करने से वञ्चित प्रभु का विलाप—
शुनिते ना पाइनु सेइ अमृतसम वाणी।
शुनिते ना पाइनु भूषण-मुरलीर ध्वनि॥'' २८ ॥

२८। प० अनु०—''मैं श्रीकृष्ण की उस अमृतमयी वाणी को सुन नहीं पाया। मैं श्रीकृष्ण के आभूषणों तथा उनके द्वारा बजायी जा रही मुरली की ध्वनि को नहीं सुन पाया।''

भावावेशे स्वरूपे कहेन गद्‌गद-वाणी।
''कर्ण-तृष्णाय मरि, पड़ 'रसामृत' शुनि॥'' २९॥

२९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने भाव के आवेश में गद्‌गद वाणी के द्वारा श्रीस्वरूप दामोदर से कहा—''मैं श्रीकृष्ण के गुणों की श्रवण रूपी प्यास में मर रहा हूँ, तुम मुझे रसामृत का पान कराओ, मैं उसे सुनना चाहता हूँ।''

अमृतप्रवाह भाष्य

२९। कर्णतृष्णाय,—कृष्ण के गुणों के श्रवण की पिपासा से।

गौर के आदेश से स्वरूप के द्वारा श्लोक का पाठ—
स्वरूप-गोसाञि प्रभुर भाव जानिया।
भागवतेर श्लोक पड़े मधुर करिया॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु के भाव को जानकर अत्यन्त मधुर रूप में श्रीमद्भागवत के श्लोक का उच्चारण किया—।

कृष्ण के वेणु के माधुर्य से सब प्रकार के सेवक ही मुग्ध और आकृष्ट—श्रीमद्भागवत (१०.२९.४०) में—
कास्त्र्यङ्ग ते कलपदामृतवेणुगीत-
सम्मोहितार्यचरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्य-सौभगमिदञ्च निरीक्ष्य रूपं
यद्‌गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यविभ्रन्॥ ३१ ॥

३१।अनु०—[गोपियों ने कहा—] हे कृष्ण, तुम्हारे कलपदामृत वेणु गीत के द्वारा सम्मोहित होकर त्रिभुवन में कौन-सी स्त्री आर्यचरित (धर्म) से विचलित नहीं होती? त्रिभुवन के सौभाग्य स्वरूप तुम्हारे इस रूप को देखकर गैयाएँ, पक्षी, वृक्ष और मृग (हिरण) भी पुलक-धारण किया करते हैं।

अनुभाष्य

३१। मध्य-लीला के २४ वें परिच्छेद की ५२ वीं संख्या द्रष्टव्य।

गोपीभाव में आविष्ट प्रभु का चित्रजल्प—
शुनि' प्रभु गोपीभावे आविष्ट हइला।
भागवतेर श्लोकार्थ करिते लागिला॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर के मुख से उपरोक्त श्लोक को सुनकर श्रीमन्महाप्रभु गोपीभाव में आविष्ट हो गये तथा भागवत के श्लोक का अर्थ करने लगे—।

कृष्ण के प्रति गोपियों के द्वारा अपने भाव का वर्णन (चित्रजल्प)—ख्यथा रागः,
''हैल गोपी-भावावेश, कैल रासे परवेश,
कृष्णेर शुनि' उपेक्षा-वचन।
कृष्णेर मुख-हास्य-वाणी, त्यागे ताहा सत्य मानि',
रोषे कृष्णे देन उलाहन॥ ३३ ॥

श्लोक के अर्थ का वर्णन-आरम्भ—

''नागर, कह, तुमि करिया निश्चय।
एइ त्रिजगत् भरि', आछे जत योग्या नारी,
तोमार वेणु काँहा ना आकर्षय?? ३४ ॥

वेणु के माधुर्य के बल का वर्णन—

कैला जगते वेणुध्वनि, सिद्धमन्त्रा योगिनी,
दूती हञा मोहे नारी-मन।
महोत्कण्ठा बाड़ाञा, आर्यपथ छाड़ाञा,
आनि' तोमाय करे समर्पण॥ ३५ ॥

अप्राकृत नवीन-मदन अथवा कामदेव अनङ्ग—

धर्म छाड़ाय वेणुद्वारे, हाने कटाक्ष-कामशरे,
लज्जा, भय, सकल छाड़ाय।
एबे आमाय करि' रोष, कहि' 'पतित्यागे दोष',
धार्मिक हञा धर्म शिखाओ!! ३६ ॥
अन्यकथा, अन्यमन, बाहिरे अन्य आचरण,
एइ सब शठ-परिपाटी।
तुमि जान परिहास, हय नारीर सर्वनाश,
छाड़ एइ सब कुटीनाटी॥ ३७ ॥
वेणुनाद अमृत-घोले, अमृत-समान मिठा-बोले,
अमृत-समान भूषण-शिञ्जित।
तिन अमृते हरे काण, हरे मन, हरे प्राण,
केमने नारी धरिबेक चित??''३८॥

३३-३८। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

३३-३८। गोपियों के भाव में आविष्ट होकर रासलीला में प्रवेश करके [श्रीमन्महाप्रभु] कृष्ण के उपेक्षा-वचन अर्थात् उदासीनता पूर्ण वचनों को श्रवण करके 'कृष्ण ने उनका त्याग कर दिया'—इसे सत्य मानकर कृष्ण को रोषपूर्ण वचन कह रहे हैं,—''ओहे नागर, बोलो, इस त्रिजगत् में जितनी योग्य स्त्रियाँ हैं, तुम्हारी वेणु किसे आकर्षित नहीं करती? जगत् में तुम्हारे द्वारा वेणु ध्वनि करने पर, वह मन्त्र-सिद्ध योगिनी के रूप में दूती बनकर स्त्रियों के मन को मोहित (प्रलोभित) करती है एवं उनकी अत्यधिक उत्कण्ठा को बढ़ाकर, (पति तथा गुरुजनों इत्यादि के सेवा रूपी) वेद-विहित पथ का परित्याग कराके (परकीया-कान्ता के भाव में) उन्हें तुम्हारे समक्ष समर्पित करती है। वह वेणु ही कटाक्षरूपी कामबाण के द्वारा हमें विद्ध करके धर्म के पथ और लज्जा-भय से छुड़ाकर तुम्हारे निकट लायी है। किन्तु पति त्याग आदि दोष दिखलाकर और कराकर अब तुम [हम पर रोष व्यक्त कर रहे हो तथा] धार्मिक की भाँति हमें धर्म की शिक्षा प्रदान कर रहे हो! तुम्हारा मन—एक प्रकार का है, बात—दूसरी प्रकार की और आचरण—तीसरी प्रकार का है। यह सब—शठता की परिपाटी (कुशलतामात्र) है; तुम तो परिहास करना जानते हो, किन्तु उससे स्त्रियों का सर्वनाश होता है, अतएव इस सब कपटता को छोड़ो। एक तो वेणु-ध्वनि-रूपी अमृत का घोल, उस पर भी तुम्हारी वाक्य-अमृत-रूपी मीठी-बोली, फिर उस पर भी अमृत के समान तुम्हारे आभूषणों की ध्वनि,—ये तीन प्रकार के अमृत मिलकर हमारे कान, मन और प्राणों का हरण कर रहे हैं। [ऐसे में कोई नारी स्थिर-चित्त कैसे रह सकती है?]

अमृतप्रवाह भाष्य

३८। शिञ्जित,—ध्वनि।

अनुभाष्य

३८। घोले,—साधारण भाषा में 'घोल खिलाती है' अर्थात् आच्छादन अथवा पराजित करती है; पाठान्तर में 'रोले' अर्थात् रव (शोर) से शब्द से; पाठान्तर में 'उगारे' अर्थात् उल्टी करती है।

राधा के भाव में प्रभु के द्वारा कृष्ण के माधुर्य का आस्वादन—

एत कहि' क्रोधावेशे, भावेर तरङ्गे भासे,
उत्कण्ठा-सागरे डुबे मन।
राधार उत्कण्ठा-वाणी, पड़ि' आपने बाखानि,
कृष्णमाधुर्य करे आस्वादन॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—क्रोध के आवेश में इतना कहकर श्रीमन्महाप्रभु भाव की तरङ्गों में निमज्जित हो गये, उनका मन उत्कण्ठा रूपी सागर में डूब गया। श्रीमन्महाप्रभु श्रीराधिका की उत्कण्ठामयी वाणी का उच्चारण करके श्रीकृष्ण के माधुर्य का आस्वादन करते हुए स्वयं उसकी व्याख्या करने लगे।

मधुर-विग्रह मदनमोहन—
गोविन्दलीलामृत (८.५) में—

नदज्जलदनिस्वनः श्रवणकर्षिसच्छिञ्जितः
सनर्मरससूचकाक्षरपदार्थभङ्ग्युक्तिकः।
रमादिक-वराङ्गना-हृदयहारि-वंशीकलः
स मे मदनमोहनः सखि तनोति कर्णस्पृहाम्॥ ४० ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

४०। [श्रीराधा ने कहा-] हे सखि, जिनके कण्ठ का स्वर मेघ के शब्द की भाँति गम्भीर है, जिनके आभूषणों का शब्द कानों को आकर्षित करता है, जिनके नर्म-वचनों में अनेक प्रकार की भङ्गिमा है, जिनकी मुरलीध्वनि लक्ष्मी आदि स्त्रियों के हृदय को आकर्षित करती है, वे मदनमोहन मेरे कानों की स्पृहा को वर्धित कर रहे हैं।

अनुभाष्य

४०। हे सखि, नदज्जलदनिस्वनः (नदतः गर्जन शीलस्य जलदस्य मेघस्य निस्वनः इव गम्भीरकण्ठध्वनिः यस्य सः) श्रवणकर्षिसत् शिञ्जितः (गोपीकर्णस्य कर्षणे शीलं यस्य तत् सच्छिञ्जितः सुमधुरं भूषणानां ध्वनिः यस्य सः) सनर्मरससूचकाक्षर पदार्थभङ्ग्युक्तिकः (नर्मणा सह वर्त्तमानैः रससूचकैः अक्षरैः पदार्थानां भङ्गी परिपाटी यस्यां तथाभूता उक्तिः यस्य सः) रमादिक-वराङ्गणा-हृदय-हारी-वंशीकलः (रमादिकं-वराङ्गणानां लक्ष्म्यादि-श्रेष्ठरमणीनां हृदयहारीहृदयाकर्षी वंश्याः कलः शब्दः यस्य सः) मदनमोहनः मे (मम) कर्णस्पृहां (श्रवणाभिलाषं) तनोति (वर्धयति)।

श्लोकार्थ; कृष्ण की कण्ठध्वनि के माधुर्य का वर्णन—
ख्यथा रागः,

''कण्ठेर गम्भीर ध्वनि, नवघन-ध्वनि जिनि',
जार गाने कोकिल लाज-पाय।
तार एक श्रुति-कणे, डुबाय जगतेर काणे,
पुनः काण बाहुड़ि' ना आय॥ ४१ ॥
कह, सखि, कि करि उपाय?
कृष्णेर से शब्द-गुणे, हरिले आमार काणे,
एबे ना पाय, तृष्णाय मरि' जाय॥ ४२ ॥

कृष्ण की नूपुर की ध्वनि के माधुर्य का वर्णन—
नूपुर-किङ्किणी-ध्वनि, हंस-सारस जिनि',
कङ्कण-ध्वनि चटके लाजाय!
एकबार जेइ शुने, व्यापि' रहे तार काणे,
अन्यशब्द से काणे ना जाय॥ ४३ ॥

कृष्ण के वचन के माधुर्य का वर्णन—
से श्रीमुख-भाषित, अमृत हैते परामृत,
स्मित-कर्पूर ताहाते मिश्रित।
शब्द, अर्थ,—दुइ शक्ति, नाना-रस करे व्यक्ति,
प्रत्यक्षर—नर्म-विभूषित॥ ४४ ॥
से अमृतेर एक कण, कर्ण-चकोर-जीवन,
कर्ण-चकोर जीये सेइ आशे।
भाग्यवशे कभु पाय, अभाग्ये कभु ना पाय,
ना पाइले मरये पियासे॥ ४५ ॥

वेणु की ध्वनि के माधुर्य का वर्णन—
जेबा वेणु-कलध्वनि, एकबार ताहा शुनि',
जगन्नारी-चित्त आउलाय।
नीवि-बन्ध पड़े खसि', बिना-मूले हय दासी,
वाउली हञा कृष्ण-पाशे धाय॥४६॥

लक्ष्मी में भी कृष्ण के माधुर्य के आस्वादन हेतु लोभ, किन्तु असामर्थ्य—
जेबा लक्ष्मी-ठाकुराणी, तेंहो जे काकली शुनि',
कृष्ण-पाश आइसे प्रत्याशाय।

ना पाय कृष्णेर सङ्ग, बाड़े तृष्णा-तरङ्ग,
तप करे, तबु नाहि पाय॥ ४७॥

कृष्ण-सेवा विहीन कानों की निन्दा—

एइ शब्दामृत चारि, जार हय भाग्य भारि,
सेइ कर्णे इहा करे पान।
इहा जेइ नाहि शुने, से काण जन्मिल केने,
काणाकड़ि-सम सेइ काण॥'' ४८॥

४१-४८। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

४१-४८। नवीन मेघ की ध्वनि को पराजित करके जिनके कण्ठ की गम्भीर ध्वनि विराजमान है; जिनके मीठे गान से कोयल भी लज्जाती है,—जिनका सामान्य (थोड़ा सा भी) शब्द कान के अन्दर जाने पर जगत् के (अन्यान्य) काण (शब्द) को ऐसा निमग्न (पराजित) करता है कि वह काण (शब्द) लौटकर नहीं आ पाता; हे सखि, कृष्ण के उसी शब्द-गुण से मेरा कान अपहृत हुआ (चुरा लिया गया) है, अब उसे सुन नहीं पाने के कारण मुझे तृष्णा से मरना पड़ रहा है। उनके नूपुर तथा किङ्किणी की ध्वनि हंस-सारस के स्वर को भी पराजित करती है, उनके कङ्कन की ध्वनि चटक पक्षी को भी लज्जित करती है। जिनके कान में वह एक बार भी प्रवेश करती है, वह [वहीं कान में ही व्याप्त हो जाती है तथा] अन्य किसी शब्द को कान में प्रवेश ही नहीं करने देती। कृष्ण के वचन की माधुरी—अमृत की अपेक्षा और भी परम अमृतमयी है; उस पर भी वह हास्य रूपी कर्पूर से मिश्रित है; वह शब्द की शक्ति, अर्थ की शक्ति और शृङ्गार आदि अनेक रसों की व्यञ्जना करती है एवं उसका प्रत्येक अक्षर—नर्म अर्थात् परिहास से विभूषित है। उस अमृत का एक कण (बिन्दु)—कान रूपी चकोर का जीवन-स्वरूप है; उसकी आशा में ही कर्ण-चकोर जीवित रहता है; कभी तो भाग्यवशतः उसे प्राप्त करता है, कभी अभाग्यवशतः उसे प्राप्त नहीं कर पाता; जब प्राप्त नहीं कर पाता, तब प्यास से वह मरणापन्न हो जाता है। पुनः, उनकी वेणु की मधुरध्वनि एकबार सुनने पर जगत् की नारियों का चित्त शिथिल हो जाता है, नीवि (नाड़े) का बन्धन ढ़ीला पड़ जाता है एवं वे बिना मूल्य की दासी बनकर पागलों की भाँति कृष्ण की ओर दौड़ पड़ती हैं। लक्ष्मी ठाकुराणी उनकी मुरली की ध्वनि श्रवण करके अत्यधिक आशा लेकर कृष्ण के निकट आकर भी कृष्ण के सङ्ग को प्राप्त नहीं कर पाने के कारण और भी अधिक तृष्णातुर हो जाती हैं; उसी की आशा से लक्ष्मी तपस्या करके भी कृष्ण को प्राप्त नहीं कर पाती। ये चार प्रकार के शब्द रूपी अमृत अर्थात् वचन, नूपुर-कङ्कन का शब्द, कण्ठ की ध्वनि और मुरलीध्वनि—भाग्यवान् लोगों के कर्ण में ही प्रवेश करते हैं। जिन कानों में इन चार प्रकार के शब्दों रूपी अमृत ने प्रवेश नहीं किया, उन कानों का जन्म ही व्यर्थ है; कानी-कौड़ी की भाँति वह कान—निरर्थक है।

अमृतप्रवाह भाष्य

४३। चटक,—पक्षी।

अमृतप्रवाह भाष्य

४४। शब्द, अर्थ, दुइ शक्ति'— 'अभिधा' और 'लक्षणा', ये दो शब्द की शक्तियाँ हैं; उनमें अर्थालङ्कार आदि ही अर्थशक्ति है।

प्रभु का भाव-शाबल्य—

करिते ऐछे विलाप, उठिल उद्वेग, भाव,
मने काहो नाहि आलम्बन।
उद्वेग, विषाद, मति, उत्सुक्य, त्रास, धृति, स्मृति,
नाना-भावेर हइल मिलन॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—इस प्रकार विलाप करते-करते श्रीमन्महाप्रभु में उद्वेग तथा भाव उदित हो आए, उनके मन को आश्रय करने योग्य कोई वस्तु नहीं मिल रही थी। उनमें उद्वेग, विषाद, मति, उत्सुक्य, त्रास, धृति तथा स्मृति आदि अनेक भाव एक साथ मिलित होकर उदित हो आये।

कृष्ण-विरहोन्माद—

भावशाबल्ये राधार उक्ति, लीलाशुके हैल स्फूर्त्ति,
सेइ भावे पड़े एक श्लोक।
उन्मादेर सामर्थ्ये, सेइ श्लोकेर करे अर्थे,
जेइ अर्थ नाहि जाने लोक॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—भाव-शाबल्य अर्थात् अनेकानेक भावों के एकसाथ उदित होने पर श्रीराधा के मुख से निकली वाणी लीला शुक श्रीबिल्वमङ्गल ठाकुर में स्फुरित हुयी थी, श्रीमन्महाप्रभु ने भी श्रीराधा के भाव में एक श्लोक का उच्चारण किया। श्रीमन्महाप्रभु उन्माद की अवस्था में उस श्लोक का ऐसा अर्थ करने लगे, जिसे इस जगत् का कोई भी व्यक्ति नहीं जानता था।

अमृतप्रवाह भाष्य

५०। लीलाशुक,—बिल्वमङ्गल-गोस्वामी।

अनुभाष्य

५०। पाठान्तर में,—लीलासुख।

श्रीराधा की उक्ति—बिल्वमङ्गल-कृत कृष्णकर्णामृत में (४२ वाँ श्लोक)—

किमिह कृणुमः कस्य ब्रूमः कृतं कृतमाशया
कथयत कथामन्यां धन्यामहो हृदयेशयः।
मधुर मधुर स्मेराकारे मनोनयनोत्सवे
कृपणकृपणा कृष्णे तृष्णा चिरं वत लम्बते॥ ५१॥

अमृतप्रवाह भाष्य

५१। हाय, मैं क्या करूँ ! किससे कुछ कहुँ! उसकी आशा में मैंने जो किया है, उसे वहीं तक रहने दो, अब अन्य कोई अच्छी बात बतलाओ। (काम के रूप में) वे ही मेरे हृदय में सोये हुए हैं, अतएव उनकी बात करना मैं किस प्रकार छोड़ूँ? उन मधुर-मधुर-हास्य- मूर्त्ति मनो-न यनोत्सव-स्वरूप कृष्ण में मेरी दैन्यभावमयी (दीना) तृष्णा सदैव वृद्धि का अवलम्बन कर रही है अर्थात् बढ़ रही है।

अनुभाष्य

५१। हे सख्यः, (तत्) इह (विप्रलम्भे वैशसे) किं कृणुमः (येन तद्दर्शनं स्यात्?) कस्य ब्रुमः (यूयम् अपि तुल्यावस्थाः एव तस्य) आशया (कृष्णलाभाशया) यत् कृतम् (अनुष्ठितं), तत् कृतम्; अन्यां (कामपि) धन्यां (पुण्यां) कथां कथयत; अहो (कष्टम्)! हृदयेशयः (कामः शत्रुः मम हृदयमध्ये वसतीति न त्याज्यः अतः अयमेव मां मारयतीति किं कुर्मः?) वत (खेदे) मधुरमधुरस्मेराकारे (मधुरादपि मधुरः स्मेरः मदनमदादिभिः उत्फुल्लश्च आकारः आकृतिः यस्य तस्मिन्) मनोनयनोत्सवे (मनोनयनयोः उत्सवः यस्मात् तस्मिन्) कृष्णे कृपणकृपणा (कृपणादपि कृपणा उत्कण्ठया सुकातरा) तृष्णा चिरम् (अनुक्षणं) लम्बते (वर्धते)।

श्लोकार्थ; श्रीमती की कृष्ण के विरह में व्याकुलता का वर्णन—ख्यथा रागः,

''एइ कृष्णेर विरहे, उद्वेगे मन स्थिर नहे,
प्राप्त्युपाय-चिन्तन ना जाय।
जेबा तुमि सखीगण, विषादे बाउल मन,
कारो पुछों, के कहे उपाय?? ५२ ॥

५२। प० अनु०—[राधा भाव में आविष्ट श्रीमन्महाप्रभु ने कहा—]''श्रीकृष्ण के विरह में उद्विग्न होने के कारण मेरा मन स्थिर नहीं है, मैं उनकी प्राप्ति के उपाय का भी चिन्तन नहीं कर पा रही हूँ। हे मेरी सखियों! विषाद (दुःख) के कारण तुम्हारा मन भी पागल जैसा हो गया है, किससे कुछ पूछा जाये, हमें कौन कोई उपाय बता सकता है?

हाहा सखि, कि करि उपाय!
क्या करों, काँहा जाङ, काँहा गेले कृष्ण पाङ,
कृष्ण बिना प्राण मोर जाय॥'' ५३ ॥

५३। प० अनु०— ''हाय-हाय! सखि, क्या उपाय किया जाये! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मुझे कहाँ जाने पर कृष्ण मिलेंगे? श्रीकृष्ण के बिना तो मेरे प्राण ही

निकले जा रहे हैं।''

निराशा की आकाङ्क्षा और आदर–

क्षणे मन स्थिर हय, तबे मने विचारय,
बलिते हइल भावोद्‌गम।
पिङ्गलार वचन-स्मृति, कराइल भाव-मति,
ताते करे अर्थ-निर्द्धारण॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु का मन क्षण भर के लिये स्थिर हो गया, तब उन्होंने मन-ही-मन कुछ विचार किया तथा जब उसे बोलने के लिये गये, तब उनमें भाव उत्पन्न हो आया। श्रीमन्महाप्रभु की भावमय अवस्था ने उन्हें पिङ्गला के वचनों का स्मरण करा दिया, इसी कारण वे पिङ्गला के वचनों का अर्थ-निर्धारण करने लगे—।

अमृतप्रवाह भाष्य

५४। पिङ्गला के वचन की स्मृति,—पिङ्गला वेश्या ने जो कहा था,—''आशा हि परमं दुखं नैराश्यं परमं सुखं'' [अर्थात् आशाएँ ही परम दु:ख का कारण हैं तथा आशाओं के त्याग से ही सर्वोपरि सुख की प्राप्ति होती है।] उस बात को स्मरण करके उससे भाव का उदय कराके अर्थ-निर्धारित करने लगे।

अनुभाष्य

५४। पिङ्गलोपाख्यान; —भा: ११.८.२२-४४ संख्या एवं महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्षधर्मपर्व का १७४ वाँ अध्याय द्रष्टव्य।.

कृष्ण को भुलाने की चेष्टा–

''देखि एइ उपाये, कृष्ण-आशा छाड़ि' दिये,
आशा छाड़िले सुखी हय मन।
छाड़ि' कृष्णकथा अधन्य, कह अन्यकथा धन्य,
जाते हय कृष्ण विस्मरण॥'' ५५ ॥

५५। प० अनु०—''मैं एक उपाय देख रही हूँ—यदि श्रीकृष्ण प्राप्ति की आशा को ही छोड़ दिया जाये तो मन सुखी हो जायेगा। अधन्य कृष्णकथा को छोड़कर कोई अन्य धन्य कथा सुनाओ, जिससे श्रीकृष्ण का विस्मरण हो सके।''

कृष्ण के द्वारा अप्राकृत कामदेव के स्वरूप में हृदय पर अधिकार–

कहितेइ हैल स्मृति, चित्ते हैल कृष्णस्फूर्त्ति,
सखीरे कहे हञा विस्मिते।
''जारे चाहि छाड़िते, से शुञा आछे चित्ते,
कोन रीते ना पारि छाड़िते॥'' ५६ ॥

५६। प० अनु०—ऐसा कहते ही श्रीमन्महाप्रभु को श्रीकृष्ण का स्मरण हो आया, चित्त में श्रीकृष्ण की स्फूर्त्ति हो आयी, वे गोपीभाव में विभावित होकर आश्चर्यचकित होते हुए सखियों से कहने लगे,— ''मैं जिन्हें छोड़ना चाहती हूँ, वह मेरे चित्त में शयन कर रहे हैं, मैं किसी भी प्रकार से उन्हें छोड़ नहीं सकती।''

राधाभावेर स्वभाव आन, कृष्णे कराय 'काम'-ज्ञान,
काम-ज्ञाने त्रास हैल चित्ते।
कहे—''जे जगत् मारे, से पशिल अन्तरे,
एइ वैरी ना देय पासरिते॥'' ५७ ॥

५७। प० अनु०—श्रीराधा रानी के भाव में विभावित श्रीमन्महाप्रभु में राधा रानी के स्वभाव के अनुरूप श्रीकृष्ण के प्रति साक्षात् कामदेव का भाव आते ही उनका चित्त भयभीत हो उठा। वे कहने लगे,—''जो कामदेव समस्त जगत्-वासियों को परास्त करता है, वह मेरे अन्तर हृदय में प्रविष्ट हो गया है, यह वैरी (शत्रु) मुझे श्रीकृष्ण को भूलाने नहीं देता!''

अमृतप्रवाह भाष्य

५७। 'कृष्णे कराय कामज्ञान,'—कृष्ण को कन्दर्प बोध कराता है।

अनुभाष्य

५७। मारे,—'मार' अर्थात् कामदेव के रूप में पराजित करता है।

कृष्ण के लिये उत्सुकता–

उत्सुक्येर प्राधान्य, जिनि' अन्य भाव-सैन्य,
उदय हैल निज-राज्य मने।
मने हइल लालस, ना हय आपन-वश,
दुःखे मने करेन भर्त्सने॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु में उदित अन्यान्य समस्त भावों रूपी सेना में से उत्सुकता ने अन्य समस्त सैनिकों को जीत लिया तथा वह अपने राज्य रूपी मन में उदित हुई। उत्सुकता के कारण श्रीमन्महाप्रभु के मन में श्रीकृष्ण प्राप्ति हेतु ऐसी लालसा उत्पन्न हुई कि वह उनके अपने वश में नहीं रह पा रही थी, इसी कारण श्रीमन्महाप्रभु दुःख प्रकट करते हुए मन की भर्त्सना (तिरस्कार) करने लगे–।

श्रीमती की कृष्ण-परतन्त्रता–

''मन मोर वाम-दीन, जल बिना जेन मीन,
कृष्ण बिना क्षणे मरि' जाय।
मधुर-हास्य-वदने, मन-नेत्र-रसायने,
कृष्णतृष्णा द्विगुण बाड़ाय॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—''मेरा मन वाम्य भाव से युक्त होने के कारण दयनीय है, उसकी स्थिति ऐसी है जैसे जल के बिना मछली की होती है, वह श्रीकृष्ण के बिना एक क्षण में ही मर सकता है। किन्तु दूसरी ओर, मन और नेत्रों के लिये रसायन स्वरूप श्रीकृष्ण का मधुर हास्य से युक्त मुखमण्डल श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की तृष्णा को दोगुना बढ़ा देता है।

अमृतप्रवाह भाष्य

५९। वाम-दीन,—वाम्यभावप्रयुक्त दीन; मन और नेत्र के रसायन स्वरूप [श्रीकृष्ण का] मधुर-हास्य-युक्त मुखमण्डल कृष्ण में दोगुणी तृष्णा को बढ़ाता है।

कृष्ण के विरह में विलाप–

हा हा कृष्ण प्राणधन, हा हा पद्मलोचन,
हा हा दिव्य सद्गुण-सागर!
हा हा श्यामसुन्दर, हा हा पीताम्बरधर,
हा हा रासविलास नागर!! ६० ॥

विरहिणी-राधा के भाव में प्रभु का दौड़ना–

काँहा गेले तोमा पाइ, तुमि कह,—ताँहा जाइ,''
एत कहि' चलिला धाञा।
स्वरूप उठि' कोले करि', प्रभुरे आनिल धरि',
निज स्थाने बसाइला लैञा॥ ६१ ॥

६०-६१। प० अनु०—[राधा-भाव में आविष्ट श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण के विरह में विलाप करते हुए कहने लगे—] ''हा हा प्राणधन कृष्ण! हा हा कमलनयन! हा हा दिव्य सद्गुणों के सागर! हा हा श्यामसुन्दर! हा हा पीताम्बर धारी! हा हा रासविलास नागर! तुम ही बताओ कि कहाँ जाने से तुम मुझे मिलोगे, मैं वहीं चली जाऊँगी'', श्रीमन्महाप्रभु इतना कहकर दौड़ने लगे। श्रीस्वरूप दामोदर ने उठकर श्रीमन्महाप्रभु को जाकर अङ्क में भर लिया तथा उन्हें पकड़कर ले आये एवं उन्हें उनके स्थान पर बिठा दिया।

स्वरूप की चेष्टा से चेतनता की प्राप्ति; स्वरूप के द्वारा भावोपयोगी-गान–

क्षणेके प्रभुर बाह्य हैल, स्वरूपेरे आज्ञा दिल,
''स्वरूप, किछु कर मधुर गान।''
स्वरूप गाय विद्यापति, गीतगोविन्द-गीति,
शुनि' प्रभुर जुड़ाइल काण॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु थोड़ी देर के बाद बाह्य दशा में आ गये। उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदर को आज्ञा देते हुए कहा—''हे स्वरूप! कुछेक मधुर गान सुनाओ।'' श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीविद्यापति द्वारा रचित गीत तथा श्रीगीतगोविन्द की गीति का गान किया। गान सुनकर श्रीमन्महाप्रभु के कान शीतल हो गये।

प्रभु के दिव्य उन्माद आदि महाभाव– मर्त्यबुद्धि के द्वारा उन्हें समझना कठिन–

एइमत महाप्रभु प्रतिरात्रि-दिने।
उन्माद-चेष्टित हय प्रलाप-वचने॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु प्रत्येक रात-दिन प्रलाप करते हुए उन्माद ग्रस्त व्यक्ति की भाँति चेष्टाएँ करने लगते।

एकदिने जत हय भावेर विकार।
सहस्त्र-मुखे वर्णे यदि, नाहि पाय पार॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु में एक ही दिन में जितने भाव-विकार उत्पन्न होते, यदि अनन्तदेव केवल उसी का सैकडों मुखों से वर्णन करें, तब वे भी उसका पार नहीं पा सकते।

जीव दीन कि करिबे, ताहार वर्णन?
शाखा-चन्द्र-न्याय करि' दिग्दरशन॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—तब फिर मेरे जैसा दीन-हीन जीव श्रीमन्महाप्रभु में उत्पन्न भाव-विकारों का क्या वर्णन करेगा? मैं तो केवल शाखाचन्द्र न्याय की भाँति दिग्दर्शन मात्र कर रहा हूँ।

अनुभाष्य

६५। श्रीगौराङ्ग की दिव्य-उन्माद-चेष्टा विषयिणी लीला वर्णन करने में सहस्त्र मुख वाले अनन्त-शक्तिमान् अनन्तदेव भी समर्थ नहीं हैं; मैं—दीन शक्तिहीन, अत्यन्त असमर्थ जीव हूँ, अतएव सम्पूर्ण रूप से गौरलीला का वर्णन करने में समर्थ नहीं हुआ हूँ; तथापि दिशा निरूपित करने के लिये मैंने शाखाचन्द्र-न्याय-मात्र का अवलम्बन किया है।

प्रभु के दिव्य उन्माद के विषय में सुनने से प्रेमतत्त्व के ज्ञान का उदय—

इहा जेइ शुने, तार जुड़ाय मन-काण।
अलौकिक गूढ़प्रेम-चेष्टा हय ज्ञान॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के दिव्य उन्माद के विषय में जो भी श्रवण करता है उसके कान तथा मन शीतलता को प्राप्त करते हैं एवं उसे अलौकिक गूढ़प्रेम की चेष्टाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

श्रीमती के भाव में प्रभु के द्वारा स्वयं कृष्णप्रेम का आस्वादन और जीवों में उसका वितरण—

अद्भुत निगूढ़ प्रेमेर माधुर्य-महिमा।
आपनि आस्वादि' प्रभु देखाइला सीमा॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने अद्भुत निगूढ़ प्रेम के माधुर्य की महिमा का स्वयं आस्वादन करके उसकी सीमा को प्रदर्शित किया है।

महावदान्य और कृष्णप्रेम-प्रदाता—

अद्भुत-दयालु चैतन्य—अद्भुत् वदान्य।
ऐछे दयालु दाता लोके नाहि शुनि अन्य॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु अद्भुत दयालु हैं, अद्भुत वदान्य (दाता) हैं। मैंने आज तक इस जगत् में उनके अलावा अन्य किसी ऐसे दयालु दाता के विषय में नहीं सुना है।

चैतन्य के भजन से ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

सर्वभावे भज, लोक, चैतन्य-चरण।
जाहा हैते पाइबा कृष्णप्रेमामृत-धन॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०—हे जगत्-वासियों! आप लोग श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणकमलों का एकान्तिक रूप से भजन कीजिए, जिससे आपको कृष्णप्रेमामृत रूपी धन की प्राप्ति होगी।

अनुभाष्य

६९। सर्वभावे,—सब प्रकार से, एकान्त भाव से।

प्रभु का दिव्य-उन्माद (उद्घूर्णा और चित्रजल्प) वर्णित—

एइ त' कहिलुँ प्रभुर 'कूर्माकृति'-भाव।
उन्माद-चेष्टित ताते उन्माद-प्रलाप॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—मैंने इस परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु की भावावस्था में प्रकाशित कूर्माकृति का वर्णन किया

है, जिसके अन्तर्गत उनकी उन्माद ग्रस्त चेष्टाओं तथा उन्माद-प्रलाप का भी वर्णन हुआ है।

रघुनाथ के द्वारा स्वरचित ग्रन्थ में प्रभु की यही लीला-वर्णित-

एइ लीला स्वग्रन्थे रघुनाथ-दास।
चैतन्यस्तवकल्पवृक्षे कैराछेन प्रकाश॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०— श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी ने स्वरचित चैतन्यस्तव कल्पवृक्ष में उपरोक्त लीला को प्रकाशित किया है।

(स्तवावली में चैतन्यस्तवकल्पवृक्ष स्तव का पञ्चम श्लोक)

अनुद्घाट्य द्वारत्रयमुरु च भित्तित्रयमहो
विलङ्घ्योच्चैः कालिङ्गिक-सुरभिमध्ये निपतितः।
तनुद्यत्सङ्कोचात् कमठ इव कृष्णोरुविरहाद्-
विराजन् गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥ ७२ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

७२। बन्द तीनों द्वारों को खोला नहीं गया, तथापि उस घर से बाहर निकलकर तीन दीवारों को लाँघकर तैलङ्गी गैयाओं के बीच में पतित, सम्पूर्ण शरीर के सुकड़ जाने से कृष्ण के विरह में कूर्म (कछुए) की आकृति को प्राप्त करके जिन श्रीगौराङ्गदेव ने विराज किया था, वे मेरे हृदय में उदित होकर मुझे उन्मत्त बना रहे हैं।

सप्तदश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

७२। अहो, (काशीमिश्रगृहे) द्वारत्रयम् अनुद्घाट्य (अनुन्मुच्य) उरु (उन्नतं) भित्तित्रयं (प्राचीरत्रयं) च उच्चैः विलङ्घ्य (उल्लङ्घ्य) कालिङ्गिकसुरभिमध्ये (त्रैलङ्गदेशान्तर्गत कलिङ्ग देशोद्भव-गोषु मध्ये) निपतितः कृष्णोरुविरहात् (कृष्णस्य विषमविच्छेदात्) तनुद्यत्सङ्कोचात् (तनौ शरीरे उदयन् यः सङ्कोचः खर्वत्वं तस्मात्) कमठः (कूर्मः) इव विराजन् गौराङ्गः मम हृदये उदयन् मां मदयति (आनन्दयति)।

गोदावरी नदी जिस स्थान पर समुद्र से मिली है, वहाँ पर तैलङ्गदेश की राजधानी 'करिङ्ग' अथवा 'दक्षिण कलिङ्ग' अवस्थित थी। तैलङ्गी गाय को संस्कृत भाषा में 'कालिङ्गिक-सुरभि' कहकर लिखा गया है।

सप्तदश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०— श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिनकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहे हैं।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे कूर्माकारानुभावोन्मादप्रलापो नाम सप्तदशः परिच्छेदः।

❋ ❋ ❋

अष्टादश परिच्छेद

कथासार— शरत् ऋतु की ज्योत्सना रात्रि में किसी एक दिन महाप्रभु आइटोटा से समुद्र के दर्शन करके उसमें यमुना के भ्रमवशत: जल में कूद पड़े;—राधा-कृष्ण की जलकेलि-लीला का आस्वादन ही इस लीला का तात्पर्य है। इस प्रकार बहते-बहते प्रभु कोणार्क की ओर चल दिये। जब किसी मछुवारे ने 'बड़ी मछली' समझकर उन्हें जाल के द्वारा खींचा, तब उसने देखा कि अचेतन अवस्था में प्रभु की आकृति अत्यन्त विकृत हो गयी है। महाप्रभु को स्पर्श करने मात्र से ही मछुवारे में प्रेमावेश हो गया। उसे भय हुआ कि मेरे स्कन्ध (कंधे के) ऊपर एक भूत आकर सवार हो गया है। ऐसा सोचकर वह ओझा के पास जा ही रहा था कि उसी समय महाप्रभु को अनेक स्थानों पर बहुत प्रकार से ढूँढ़ते हुए स्वरूप दामोदर गोस्वामी आदि की तट पर चलते-चलते मछुवारे से भेंट हुई। स्वरूप दामोदर आदि के पूछने पर उस मछुवारे ने अपनी सारी बात बतलायी, स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने देखा कि वह मछुवारा प्रभु को तट पर ले आया है। [स्वरूप दामोदर ने] कृष्णनाम का थप्पड़ लगाकर मछुवारे का भय रूपी भूत छुड़वाया। बाद में महाप्रभु को नाम कीर्त्तन के द्वारा सचेतन करके उठाया तथा उनकी लीला का श्रवण करके उन्हें घर पर ले आये।

(अ: प्र: भा:)

यमुना समझकर समुद्र में बहने वाले कृष्ण-विरही प्रभु की कृपा की याचना—

शरज्ज्योत्स्ना-सिन्धोरवकलनया जातयमुना-
भ्रमाद्धावन् योऽस्मिन् हरिविरहतापार्णव इव ।
निमग्नो मूर्च्छाल: पयसि निवसन् रात्रिमखिलां
प्रभाते प्राप्त: स्वैरवतु स शचीसूनुरिह न:॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। जो शरत् ऋतु की ज्योत्सना (चाँदनी)- रात्रि में समुद्र को देखकर यमुना के भ्रम से हरि-विरह रूपी ताप-समुद्र में निमग्न होकर जल में गिरकर सम्पूर्ण रात्रि मूर्च्छित थे एवं प्रात:काल (स्वरूप आदि अपने अन्तरङ्ग भक्तों को) मिले थे, वह शचीनन्दन अपनी लीला के द्वारा हमारा पालन करें।

अनुभाष्य

१। य: (शचीनन्दन:) शरज्ज्योत्स्ना-सिन्धो: (शरदि शरत्-कालीय-मेघरहिते व्योम्नि या ज्योत्सना तया विभासित: य: सिन्धु: तस्य) अवकलनया (सन्दर्शनेन) जातयमुना-भ्रमात् (जात: य: यमुनाया: भ्रम: तस्मात् हेतो:) धावन् हरिविरहतापार्णवे (कृष्ण-विच्छेद-क्लेश-समुद्रे) इव अस्मिन् (पयसि) मूर्च्छाल: (निमग्न: सन्) अखिलां (समस्तां) रात्रिं निरसन् प्रभाते स्वै: (स्वीयै: अन्तरङ्ग-भक्तै:) प्राप्त:, स: शचीसूनु: (गौर:) इह न: (अस्मान्) अवतु (रक्षतु)।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौर भक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैत चन्द्र की जय हो, समस्त गौर भक्तों की जय हो।

प्रभु का तीव्र कृष्ण-विरह—

एइमते महाप्रभु नीलाचले बैसे।
रात्रि-दिने कृष्णविच्छेदार्णवे भासे॥ ३ ॥

३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभु

नीलाचल में वास करते हुए रात-दिन कृष्ण-विरह रूपी समुद्र में निमज्जित रहते थे।

शारदीय ज्योत्स्ना-रात्रि में रासलीला का उद्दीपन—

शरत् कालेर रात्रि, सब चन्द्रिका उज्ज्वल।
प्रभु निजगण लञा बेड़ान रात्रि-सकल॥ ४ ॥

४। प० अनु०—शरत् ऋतु की समस्त रात्रियों के चन्द्र की किरणों से उज्जवल होने के कारण, श्रीमन्महाप्रभु अपने निजजनों के साथ पूरी-पूरी रात इधर-उधर भ्रमण करते थे।

उद्याने उद्याने भ्रमेण कौतुक देखिते।
रासलीलार गीत-श्लोक पड़िते शुनिते॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु एक उद्यान से अन्य उद्यान में कौतुक देखने के लिये रासलीला के गीत अर्थात् गोपीगीत तथा रासपञ्चाध्यायी के अन्य अध्यायों के श्लोकों का उच्चारण करते हुए तथा सुनते हुए सर्वत्र भ्रमण करते रहते थे।

प्रभु प्रेमावेशे करेन गान, नर्त्तन।
कभु प्रेमावेशे रासलीलानुकरण॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु प्रेम के आवेश में कभी गान करते तो कभी नृत्य तथा कभी प्रेमावेश में ही रास-लीला का अनुकरण करते।

कभु भावोन्मादे प्रभु इति-उति धाय।
भूमे पड़ि' कभु मूर्च्छा, कभु गड़ि' जाय॥ ७ ॥

७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु भाव के कारण होने वाली उन्माद-ग्रस्त अवस्था में इधर-उधर दौड़ने लगते थे, कभी भूमि पर गिर पड़ते, कभी मूर्च्छित हो जाते तथा कभी भूमि पर लोट-पोट खाने लगते।

रासलीलार एक श्लोक जबे पड़े, शुने।
पूर्ववत् तबे अर्थ करेन आपने॥ ८ ॥

८। प० अनु०—जब श्रीमन्महाप्रभु रासलीला के किसी एक श्लोक का उच्चारण करते अथवा सुनते, तब पूर्व-पूर्व अध्यायों में वर्णित रीति-अनुसार वे स्वयं उसका अर्थ भी करते।

सम्पूर्ण रासपञ्चाध्याय के पाठ और व्याख्या में प्रभु का एक ही समय में हर्ष और विषाद—

एइमत रासलीलाय हय जत श्लोक।
सबार अर्थ करे, पाय कभु हर्ष-शोक॥ ९ ॥

९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु इस प्रकार रासलीला के पाँचों अध्यायों में जितने श्लोक हैं, उन सबका अर्थ करते तथा कभी वे प्रसन्न होते तो कभी शोक करने लगते।

अनुभाष्य

९। कृष्ण की सम्भोग-लीला का 'हर्ष' और गोपियों की विप्रलम्भ-लीला में 'विषाद'।

ग्रन्थ के विस्तार के भय से उसके वर्णन से विरति—

से-सब श्लोकेर अर्थ, से-सब 'विकार'।
से-सब वर्णिते ग्रन्थ हय अति विस्तार॥ १० ॥

१०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा वर्णित उन सभी श्लोकों के अर्थ तथा श्रीमन्महाप्रभु में उदित होने वाले समस्त विकारों का वर्णन करने पर ग्रन्थ बहुत विस्तृत हो जायेगा।

द्वादश वत्सरे जे जे लीला क्षणे-क्षणे।
अति बाहुल्य-भये ग्रन्थ ना कैलुँ लिखने॥ ११ ॥

११। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने द्वादश (बारह) वर्ष श्रीजगन्नाथ पुरी में रहकर क्षण-क्षण में जो समस्त लीलाएँ की, मैंने ग्रन्थ के अत्यधिक वर्धित हो जाने के भय से उन्हें नहीं लिखा।

पहले केवल दिग्दर्शन ही निर्दिष्ट—

पूर्वे जेइ देखाञाछि दिग्‌दरशन।
तैछे जानिह 'विकार' 'प्रलाप'-वर्णन॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—मैंने पूर्व-पूर्व परिच्छेदों में जिस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु द्वारा की गयी लीलाओं का दिग्दर्शन कराया है, उसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु में प्रकाशित होने वाले विकार तथा उनके द्वारा किये गये प्रलाप के वर्णन को समझना चाहिए अर्थात् मैने उनका भी दिग्दर्शन ही कराया है।

भगवान् शेष का भी प्रभु की लीला का माप करने में असामर्थ्य—

सहस्र-वदने जबे कहये 'अनन्त'।
एकदिनेर लीलार तबु नाहि पाय अन्त॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—स्वयं अनन्त भी अपने सैंकड़ों मुखों से श्रीमन्महाप्रभु की केवल एक दिन की लीला का भी वर्णन करने में समर्थ नहीं है।

स्वर्ग के श्रेष्ठ लेखक गणेश के लिये भी वह सम्पूर्णतः असम्भव—

कोटियुग पर्यन्त यदि लिखये गणेश।
एकदिनेर लीलार तबु नाहि पाय शेष॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—करोड़ों युगों तक यदि गणेश भी लिखें, तब वे भी श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा केवल एक दिन में की गयी लीलाओं का वर्णन नहीं कर सकते।

गोपियों के प्रेम का दर्शन करके स्वयं कृष्ण का भी विस्मित होना—

भक्तेर प्रेम-विकार देखि' कृष्णेर चमत्कार!
कृष्ण जार ना पाय अन्त, केबा छार आर?? १५ ॥

१५। प० अनु०—भक्तों के प्रेम-विकार को देखकर स्वयं श्रीकृष्ण भी चमत्कृत हो उठते हैं! श्रीकृष्ण भी जिनका अन्त नहीं पा पाते, तब फिर किसी क्षुद्र जीव का तो कहना ही क्या?

गोपीप्रेम को निर्धारित करने और आस्वादन का परिमाण करने के उद्देश्य से कृष्ण के द्वारा गोपीभाव को स्वीकार करना—

भक्त-प्रेमार जे-दशा, जे-गति-प्रकार।
जत दुःख, जत सुख, जतेक विकार॥ १६ ॥
कृष्ण ताहा सम्यक् ना पारे जानिते।
भक्तभाव अङ्गीकारे, ताहा आस्वादिते॥ १७ ॥

१६-१७। प० अनु०—भक्त की प्रेमावस्था में जैसी दशा होती है, जितनी प्रकार की विभिन्न गतियाँ होती हैं, जितने प्रकार के दुःख-सुख तथा विकार होते हैं, श्रीकृष्ण उन्हें सम्पूर्ण रूप से भली-भाँति नहीं जान पाते, इसी कारण वे भक्त के भाव को अङ्गीकार करके उसका आस्वादन करते हैं।

कृष्णप्रेम का अद्भुत विक्रम—

कृष्णेरे नाचाय प्रेमा, भक्तेरे नाचाइ'।
आपने नाचये,—तिने नाचे एकठाञि॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—प्रेम श्रीकृष्ण को नृत्य कराता है, भक्तों को नचाता है तथा स्वयं भी नाचता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण, भक्त तथा प्रेम—तीनों एक साथ नृत्य करते हैं।

कृष्णमाधुर्यास्वादन रूपी प्रेम—स्वयं भगवान् के वर्णन की क्षमता से भी अतीत—

प्रेमार विकार वर्णिते चाहे जेइ जन।
चान्द धरिते चाहे, जेन हञा 'वामन'॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—जो कोई भी व्यक्ति प्रेम के विकारों का वर्णन करना चाहता है, उसकी अवस्था ठीक वैसी है जैसे वामन (बौना) चन्द्र को पकड़ना चाहता हो।

चित् परमाणु-कण जीव का अप्राकृत कृष्णप्रेमसिन्धु के बिन्दुमात्र को ही स्पर्श करने का अधिकार—

वायु जैछे सिन्धु-जलेर हरे एक 'कण'।
कृष्णप्रेम-कण तैछे जीवेर स्पर्शन॥ २० ॥
क्षणे क्षणे उठे प्रेमार तरङ्ग अनन्त।
जीव छार काँहा तार पाइबेक अन्त?? २१ ॥

२०-२१। प० अनु०—वायु जैसे समुद्र के जल में से एक कण को ही ले पाती है, जीव भी वैसे ही कृष्णप्रेम

के एक कण को ही स्पर्श कर पाता है। प्रेम की अनन्त तरङ्गें (लहरें) हैं तथा वह क्षण-क्षण में उठती रहती हैं, क्षुद्र-जीव उसका पार कहाँ पा सकता है?

स्वरूप और रामराय आदि कृष्ण- शक्ति-गणों का ही प्रभु के भावों की अनुभूति में अधिकार—

श्रीकृष्णचैतन्य जाहा करेन आस्वादन।
सबे एक जाने ताहा स्वरूपादि 'गण'॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जिस वस्तु का आस्वादन करते हैं, उसे केवल श्रीस्वरूप दामोदर आदि प्रभु के निजजन ही जानते हैं।

जीव हञा करे जेइ ताहार वर्णन।
आपना शोधिते तार छोंये एक 'कण'॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—जीव होने पर भी यदि कोई उस प्रेम-विकार का वर्णन करता है, तो जानना चाहिए कि वह स्वयं को पवित्र करने के लिये उसके एक कण का स्पर्श कर रहा है।

गोपियों के साथ कृष्ण के जलकेलि के श्लोक का पाठ—

एइमत रासेर श्लोक सकल पड़िला।
शेषे जलकेलिर श्लोक पड़िते लागिला॥ २४ ॥

२४। प० अनु०—इस प्रकार श्रीगौरहरि रासलीला के समस्त श्लोकों का उच्चारण करने के पश्चात् अन्त में श्रीकृष्ण की जलकेलि लीला से सम्बन्धित श्लोक का उच्चारण करने लगे—।

श्रीमद्भागवत (१०.३३.२२) में —

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्ग-
घृष्टस्रजः स कुचकुंकुमरञ्जितायाः।
गन्धर्वपालिभिरणुद्रुत आविशद्वाः
श्रान्तो गजीभिरिभराड़िव भिन्नसेतुः॥ २५ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

२५। हथनियों के साथ गजराज जिस प्रकार जल-क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार लोक-धर्म से अतीत भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रासलीला की तथा फिर थककर गन्धर्वपति की भाँति अलिगणों (गोपियों) के द्वारा अनुगत होकर थकावट को दूर करने की आशा से जल में प्रवेश किया। उस समय गोपियों के कुच-कुंकुम से रञ्जित माला उनके अङ्ग-सङ्ग-द्वारा घृष्ट (मर्दित) हुई थी।

अनुभाष्य

२५। शुद्धचित्त परीक्षित के निकट महाभागवत परमहंसकुल-चूड़ामणि श्रीशुकदेव अप्राकृत गोपियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की अप्राकृत रासलीला का वर्णन कर रहे हैं—

श्रान्तः, सः (श्रीकृष्णः) श्रमं (क्रीड़ा-क्लान्तिम्) अपोहितुम् (अपनेतुम्) अङ्गसङ्गघृष्टस्रजः (अङ्गसङ्गेन घृष्टा सम्मर्दिता स्रक कुन्दमाला तस्याः अतएव) कुच-कुंकुमरञ्जितायाः (कुचकुंकुमेन रञ्जितायाः सम्बन्दिभिः) गन्धर्वपालिभिः (गन्धर्वपाः गन्धर्वपतयः इव गायन्ति ये अलयः तैः) अनुद्रुतः (अनुसृतः सन् ताभिः युतः) भिन्नसेतुः (विदारितवप्रः स्वयं भगवान् कृष्णस्तु अतिक्रान्तलोकमर्यादः) गजीभिः इभराट् (गजेन्द्रः इव) वाः (जलम्) आविशत्।

प्रभु का समुद्र को यमुना समझकर उसमें कूदना और मूर्च्छा—

एइमत महाप्रभु भ्रमिते भ्रमिते।
आइटोटा हैते समुद्र देखेन आचम्बिते॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने इस प्रकार भ्रमण करते-करते अकस्मात् आईटोटा से समुद्र को देखा।

चन्द्रकान्त्ये उछलित तरङ्ग उज्ज्वल।
झलमल करे,—जेन 'यमुनार जल'॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—चन्द्र की कान्ति से समुद्र की उमड़ती हुई लहरें अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत हो रही थी, लहरें ऐसे झलमल कर रही थी, मानो यमुना का जल हो।

यमुनार भ्रमे प्रभु धाञा चलिला।
अलक्षिते जाइ' सिन्धु-जले झाँप दिला॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—श्रीगौरहरि समुद्र को यमुना मानकर उसी ओर दौड़ने लगे, अलक्षित रूप से अर्थात् बिना किसी की उपस्थिति में उन्होंने समुद्र के जल में छलाँग लगा दी।

पड़िते३ हैल मूर्च्छा, किछु३ ना जाने।
कभु डुबाय, कभु भासाय तरङ्गेर गणे॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—श्रीगौरहरि समुद्र के जल में प्रविष्ट होने के साथ ही मूर्च्छित हो गये, उन्हें कुछ भी बाह्य ज्ञान न रहा। समुद्र की लहरें श्रीमन्महाप्रभु को कभी तो डुबो देती तथा कभी उन्हें ऊपर लाकर तैराने लगती।

तरङ्गे बहिया फिरे,—जेन शुष्क काष्ठ।
के बुझिते पारे एइ चैतन्येर नाट?? ३० ॥

३०। प० अनु०—श्रीगौरहरि समुद्र की लहरों के साथ ऐसे बहते जा रहे थे, मानो वे सूखा काष्ठ (लकड़ी) हों। श्रीचैतन्य महाप्रभु की ऐसी लीला को कौन समझ सकता है?

मूर्च्छित अवस्था में बहते-बहते कोणार्क की ओर जाना—
कोणार्केर दिके प्रभुरे तरङ्गे लञा जाय।
कभु डुबाञा राखे, कभु भासाञा लञा जाय॥ ३१॥

३१। प० अनु०—समुद्र की लहरें श्रीमन्महाप्रभु को कोणार्क की ओर ले जा रही थी, कभी तो वे श्रीमन्महाप्रभु को डुबो रही थी और कभी उन्हें ऊपर बहाते हुए ले जा रही थी।

अमृतप्रवाह भाष्य

३१। कोणार्क,—'अर्कतीर्थ', जिसे आजकल 'कोणारक' कहते हैं।

अनुभाष्य

३१। कोणार्क,—उत्तर-अक्षांश १९°५३'२५''; पुरी से उन्नीस मील उत्तर में समुद्रतट पर स्थित। त्रयोदश-शक-शताब्दी के प्रारम्भ में इस स्थान पर स्थापत्य-नैपुण्य के उत्कृष्ट उदाहरण स्वरूप काले पत्थर के सूर्य-मन्दिर निर्माण का प्रयास हुआ।

भाव में निमग्न गोपी-किङ्करी- अभिमानी प्रभु की उद्घूर्णा—
यमुनाते जलकेलि गोपीगण-सङ्गे।
कृष्ण करेन, महाप्रभु मग्न सेइ रङ्गे॥ ३२ ॥

३२। प० अनु०—श्रीकृष्ण गोपियों के साथ यमुना में जलकेलि कर रहे हैं—श्रीमन्महाप्रभु इसी आनन्द में निमग्न थे।

अनुभाष्य

३२। अन्त्य-लीला के अष्टादश परिच्छेद की ८०-८२ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

स्वरूपादि के द्वारा प्रभु को ढूँढ़ना—
इँहा स्वरूपादिगण प्रभु ना देखिया।
''काँहा गेला प्रभु?'' कहे चमकित हञा॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—दूसरी ओर, श्रीस्वरूप दामोदर आदि श्रीगौरहरि को नहीं देखकर चमत्कृत होते हुए कहने लगे,—''श्रीमन्महाप्रभु कहाँ चले गये?''

निरंकुश इच्छाशक्ति के परिचालक प्रभु के प्रति स्वतन्त्र-ज्ञान—
मनोवेगे गेला प्रभु, देखिते नारिला।
प्रभुरे ना देखिया संशय करिते लागिला॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु मन के वेग के अनुसार चले गये, कोई उन्हें देख नहीं पाया। श्रीस्वरूप दामोदर आदि श्रीमन्महाप्रभु के निजजन उन्हें नहीं देख पाने के कारण कुछ संशय करते हुए सोचने लगे—।

मन-मन में वितर्क—
''जगन्नाथ देखिते, किबा देवालये गेला?
अन्य उद्याने, किबा उन्मादे पड़िला?? ३५ ॥

३५। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु क्या भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन करने के लिये मन्दिर गये हैं?

अथवा किसी अन्य उद्यान में जाकर उन्मादग्रस्त होकर कहीं गिर पड़े हैं?

गुण्डिचा-मन्दिरे गेला, किबा नरेन्द्रेरे?
चटक-पर्वते गेला, किबा कोणार्केरे??' ३६ ॥

३६। प० अनु०—''कहीं श्रीमन्महाप्रभु गुण्डिचा मन्दिर तो नहीं गये, या फिर नरेन्द्र सरोवर ही न गये हों? कहीं चटक पर्वत तो नहीं गये, या फिर कोणार्क तो नहीं चले गये?''

समुद्र के तट पर गमन—
एत बलि' सबे फिरे प्रभुरे चाहिया।
समुद्रेर तीरे आइला कतजन लञा॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०— ऐसा विचार करते हुए समस्त भक्त श्रीमन्महाप्रभु को ढूँढ़ते हुए घूमने लगे, श्रीस्वरूप दामोदर कुछ भक्तों को अपने साथ लेकर समुद्र के तट पर आ गये।

प्रभु के नहीं मिलने पर उनके अन्तर्ध्यान का अनुमान—
चाहिये बेड़ाइते ऐछे रात्रि-शेष हैल।
''अन्तर्ध्यान हइला प्रभु'',—निश्चय करिल॥ ३८॥

३८। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर अन्यान्य भक्तों के साथ श्रीमन्महाप्रभु को इधर से उधर ढूँढ़ते हुए घूमते रहे, इस प्रकार उनकी सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत हो गयी। श्रीस्वरूप दामोदर ने मन-ही-मन निश्चय किया ''श्रीमन्महाप्रभु अन्तर्ध्यान हो गये हैं।''

मन-ही-मन भक्तों के द्वारा अमङ्गल की आशङ्का—
प्रभुर विच्छेदे कार देहे नाहि प्राण।
अनिष्टाशङ्का बिना कार मने नाहि आन॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—ऐसा प्रतीत होने लगा कि श्रीमन्महाप्रभु के विरह में किसी भी भक्त की देह में प्राण नहीं हैं, श्रीमन्महाप्रभु के अनिष्ट की आशङ्का को छोड़कर किसी भी भक्त के मन में अन्य कोई बात नहीं आ रही थी।

प्रिय हृदय में प्रिय के अदर्शन- हेतु अमङ्गल की आशङ्का—(अभिज्ञानशकुन्तल-नाटक के चतुर्थ अङ्क में शकुन्तला के प्रति प्रियम्वदा-वचन)
''अनिष्टाशङ्कीनि बन्धुहृदयानि भवन्ति हि॥'' ४०॥

अमृतप्रवाह भाष्य

४०। बन्धु का हृदय सदैव बन्धु के अनिष्ट की आशङ्का करता है।

अनुभाष्य

४०। मूलग्रन्थ में—''सिनेहो पावसङ्की'' अथवा ''सिनेहो पावमासङ्कादि''—ऐसा पाठ देखा जाता है।

सभी के द्वारा मिलकर प्रभु को ढूँढ़ना—
समुद्रेर तीरे आसि' युकति करिला।
चिरायु-पर्वत-दिके कतजन गेला॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों ने समुद्र के तट पर आकर कुछ विचार-विमर्श किया, तत्पश्चात् कुछ भक्त लोग चिरायु-पर्वत की ओर गये।

अनुभाष्य

४१। चिरायु-पर्वत,—चटक-पर्वत।

पूर्व-दिशाय चले स्वरूप लञा कत जन।
सिन्धु-तीरे-नीरे करेन प्रभुर अन्वेषण॥ ४२ ॥

४२। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर कुछ भक्तों को अपने साथ लेकर पूर्व दिशा की ओर चल दिये तथा वे श्रीमन्महाप्रभु को समुद्र के तट एवं साथ-ही-साथ समुद्र के जल में भी ढूँढ़ने लगे।

विषादे विह्वल सबे नाहिक 'चेतन'।
तबु प्रेमे बुले करि' प्रभुर अन्वेषण॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—सभी भक्त श्रीमन्महाप्रभु के विरह रूपी दु:ख में विह्वल हो रहे थे, उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उनमें चेतनता ही न हो, तब भी वे प्रेमपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु को ढूँढ़ते हुए इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे।

अद्‌भुत भाव में आविष्ट एक मछुवारे के साथ साक्षात्कार—

देखेन, एक जालिया आइसे कान्धे जाल करि'।
हासे, कान्दे, नाचे, गाय, बले 'हरि' 'हरि'॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर आदि भक्तों ने देखा कि एक मछुवारा अपने कन्धे पर जाल डालकर आ रहा है, वह 'हरि', 'हरि' बोलते हुए कभी हँस रहा था, कभी रो रहा था, कभी नाच रहा था तथा कभी गा रहा था।

मछुवारे से उसके भाव में आविष्ट होने के कारण के विषय में पूछना—

जालियार चेष्टा देखि' सबार चमत्कार।
स्वरूप-गोसाञि तारे पुछेन समाचार॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—उस मछुवारे की चेष्टाओं को देखकर सभी चमत्कृत हो रहे थे। श्रीस्वरूप दामोदर ने उस मछुवारे से कुछ समाचार पूछा,—।

ग्रहाविष्ट मछुवारे के द्वारा प्रभु के संवाद और उनकी अवस्था का वर्णन—

''कह, जालिया, एइ दिके देखिला एकजन?
तोमार एइ दशा केने,—कह त' कारण??'' ४६ ॥

४६। प० अनु०—''हे मछुवारे! बतलाओ तो, क्या तुमने इस तरफ किसी एक अकेले व्यक्ति को देखा है? तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है—मुझे इसका कुछ कारण बतलाओ?''

जालिया कहे,—''इँहा एक मनुष्य ना देखिल।
जाल बाहिते एक मृत मोर जाले आइल॥ ४७ ॥

४७। प० अनु०—मछुवारे ने कहा,—''मैंने यहाँ पर तो किसी अकेले मनुष्य को नहीं देखा, किन्तु जब मैंने समुद्र में जाल फैंका तो एक मृत व्यक्ति मेरे जाल में आ गया।

बड़ मत्स्य बलि' आमि उठाइलुँ यतने।
मृतक देखिते मोर भय हैल मने॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—''मैंने उसे बहुत बड़ी मछली समझकर बहुत परिश्रम से बाहर निकाला, किन्तु मेरे मन में मृत व्यक्ति को देखकर भय उत्पन्न हो गया।

जाल खसाइते तार अङ्ग-स्पर्श हइल।
स्पर्शमात्रे सेइ भूत हृदये पशिल॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—''उस व्यक्ति को जाल से छुड़ाते समय मुझे उसके शरीर का स्पर्श हो गया। स्पर्शमात्र से वह भूत मेरे हृदय में प्रविष्ट हो गया।

भये कम्प हैल, मोर नेत्रे बहे जल।
गद्‌गद वाणी रोम उठिल सकल॥ ५० ॥

५०। प० अनु०—मैं भय के कारण काँपने लगा। मेरे नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे, मेरे मुख से गद्‌गद वाणी निकलने लगी तथा मुझमें रोमाञ्च होने लगा।

किबा ब्रह्मदैत्य, किबा भूत, कहने ना जाय।
दर्शनमात्रे मनुष्येर पैशे सेइ काय॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०— ''मैं नहीं बतला सकता कि वह ब्रह्म-दैत्य है अथवा कोई भूत। दर्शन करने मात्र से ही वह मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाता है।

शरीर दीघल तार—हात पाँच-सात।
एकेक-हस्त-पद तार, तिन तिन हात॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—''उस मृत व्यक्ति का शरीर पाँच-सात हाथ दीर्घ है, उसका एक-एक हाथ-पाँव तीन-तीन हाथ लम्बा है।

अस्ति-सन्धि छुटि' चर्म करे नड़-बड़े।
ताहा देखि' प्राण का'र नाहि रहे धड़े॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—''उस मृत व्यक्ति की अस्थियों (हड्डियों) के जोड़ खुल गये हैं तथा उसका चर्म लटक गया है। उसे देखकर किसी के भी प्राण शरीर में नहीं रह सकते।

मड़ा-रूप धरि' रहे उतान-नयन।
कभु गों गों करे, कभु देखि अचेतन॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—''उस व्यक्ति ने मरे हुए व्यक्ति की भाँति रूप धारण किया हुआ है, उसने अपने नेत्रों को ऊपर चढ़ाया हुआ है। मैंने देखा कि कभी तो वह गों-गों करता है तथा कभी अचेतन हो जाता है।

साक्षात् देखेछों,—मोरे पाइल सेइ भूत।
मुइ मैले मोर कैछे जीवे स्त्री-पूत॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—''मैंने उस भूत को साक्षात् रूप में देखा है, वह भूत मुझे ही मिला था। उस भूत के कारण यदि मेरी मृत्यु हो जायेगी तो मेरी पत्नी तथा पुत्र इत्यादि किस प्रकार से जीवित रहेंगे।

अनुभाष्य

५५। जीवे,—बच पायेंगे।

सेइ त' भूतेर कथा कहन ना जाय।
ओझा-ठाञि जाइछों,—यदि से भूत छाड़ाय॥ ५६॥

५६। प० अनु०—''उस भूत की बातें बतलाने पर भी बतलायी नहीं जा सकती, मैं तो ओझा के पास जा रहा हूँ, हो सकता है कि वह भूत को छुड़ा दे।

श्रीनृसिंह के स्मरण से समस्त विपत्तियों का विनाश—

एका रात्र्ये बुलि' मत्स्य मारिये निर्जने।
भूत-प्रेत आमार ना लागे 'नृसिंह'-स्मरणे॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—''मैं अकेला ही रात्रि में इधर-उधर घूमता हूँ तथा निर्जन स्थान पर मछलियों को मारता हूँ। मुझे श्रीनृसिंह भगवान् का स्मरण करने के प्रभाव से भूत-प्रेत आदि नहीं लगते।

एइ भूत नृसिंह-नामे चापये द्विगुणे।
ताहार आकार देखिते भय लागे मने॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—''किन्तु यह भूत नृसिंह भगवान् के नाम का उच्चारण करने से मुझे दो गुणा अधिक बल से दबाता है। उसका आकार देखते ही मन भयभीत हो जाता है।

ओथा ना जाइह, आमि निषेधि तोमारे।
ताँहा गेले सेइ भूत लागिबे सबारे॥'' ५९ ॥

५९। प० अनु०—''मैं आप लोगों को निषेध करता हूँ कि आप उस ओर मत जाना। वहाँ जाने से आप लोगों पर भी वह भूत चढ़ जायेगा।''

स्वरूप के द्वारा प्रभु के सन्धान- प्राप्ति के विषय में यथार्थ-अनुमान—

एत शुनि' स्वरूप-गोसाञि सब तत्त्व जानि'।
जालियारे किछु कय सुमधुर वाणी॥ ६० ॥

६०। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर मछुवारे के मुख से ऐसा सुनकर सब समझ गये तथा उन्होंने मछुवारे को अत्यन्त मधुर वाणी से कहा,—।

स्वरूप के द्वारा मछुवारे को आश्वासन और उसके भय को दूर करना—

''आमि—बड़ ओझा, जानि भूत छाड़ाइते।''
मन्त्र पड़ि' श्रीहस्त दिला ताहार माथाते॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—''मैं एक बहुत बड़ा ओझा हूँ, मैं भूत छुड़ाना जानता हूँ।'' ऐसा कहकर श्रीस्वरूप दामोदर ने मन्त्र पढ़कर अपने श्रीहस्त को उस मछुवारे के सिर पर रख दिया।

तिन चापड़ मारि' कहे,—''भूत पलाइल।
भय ना पाइह''—बलि' सुस्थिर करिल॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने उस मछुवारे को तीन थप्पड़ लगाने के बाद कहा—''तुम्हारा भूत भाग गया है। अब तुम्हें भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है।'' इतना कहकर श्रीस्वरूप गोस्वामी ने मछुवारे को सुस्थिर किया।

एके प्रेम, आरे भय—द्विगुण अस्थिर।
भय-अंश गेल,—से हैल किछु धीर॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—मछुवारा एक तो प्रेम, उस पर भी भय—इसलिए दोगुणा अस्थिर था। अब श्रीस्वरूप दामोदर की कृपा से उसका भय वाला अंश तो दूर हो गया, इसलिए वह मछुवारा कुछ धीर-स्थिर हो गया।

स्वरूप के द्वारा प्रभु का परिचय-प्रदान—

स्वरूप कहे,—''जाँरे तुमि कर 'भूत'-ज्ञान।
भूत नहे, तेंहो—कृष्णचैतन्य भगवान्॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने मछुवारे से कहा,—''जिसे तुम भूत मान रहे हो, वह भूत नहीं बल्कि वे भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य हैं।

प्रेमावेशे पड़िला तेंहो समुद्रेर जले।
ताँरे तुमि उठाइला आपनार जाले॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—''भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य प्रेम के आवेश में समुद्र के जल में जा पड़े थे, तुमने उन्हीं को अपने जाल में पकड़कर उठाया है।

ताँर स्पर्शे हइल तोमार कृष्णप्रेमोदय।
भूत-प्रेत-ज्ञाने तोमार हैल महाभय॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—''भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य के स्पर्श से ही तुममें कृष्णप्रेम उदित हुआ है। उन्हें भूत-प्रेत समझने के कारण तुममें बहुत अधिक भय उत्पन्न हुआ है।

स्वरूप के द्वारा मछुवारे को प्रभु को दिखलाने का आदेश—

एबे भय गेल, तोमार मन हैल स्थिरे।
काँहा ताँरे उठाञाछ, देखाह आमारे॥'' ६७ ॥

६७। प० अनु०—''अब तुम्हारा भय दूर हो गया है, जिससे तुम्हारा मन स्थिर हो गया है। अब तुम हमें दिखलाओ कि तुमने उन्हें समुद्र से निकालकर कहाँ रखा है।''

बुद्धिविभ्रम—

जालिया कहे,—''प्रभुरे देख्याछो बारबार।
तेंहो नहेन, एइ अतिविकृत आकार॥'' ६८ ॥

६८। प० अनु०—मछुवारे ने कहा,—''मैंने श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु को बहुत बार देखा है। ये वे नहीं हैं, यह तो कोई बहुत-ही विकृत-आकार का व्यक्ति है।''

स्वरूप के द्वारा प्रभु के प्रेम का वर्णन—

स्वरूप कहे,—''ताँर हय प्रेमेर विकार।
अस्थि-सन्धि छाड़े, हय अति दीर्घाकार॥'' ६९ ॥

६९। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने कहा,—''भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु में प्रेम का विकार उत्पन्न होता है, उसी कारण उनकी अस्थियों के जोड़ खुल जाते हैं तथा वे बहुत दीर्घ आकार वाले हो जाते हैं।''

मछुवारे के द्वारा सभी को प्रभु के दर्शन कराना; प्रभु की अवस्था—

शुनि' सेइ जालिया आनन्दित हइल।
सबा लञा गेल, महाप्रभुरे देखाइल॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर की बात सुनकर मछुवारा बहुत आनन्दित हो गया। उसने सभी भक्तों को ले जाकर श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन कराये।

भूमिते पड़ि' आछेन दीर्घ सब काय।
जले श्वेत-तनु, बालु लागियाछे गाय॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—भक्तों ने देखा कि श्रीमन्महाप्रभु भूमि पर पड़े हुए हैं, उनकी देह बहुत दीर्घ हो गयी है। उनका शरीर जल में बहुत समय तक रहने के कारण सफेद पड़ गया है तथा उनके पूरे शरीर पर बालु लगी हुई है।

अतिदीर्घ शिथिल तनु-चर्म नट्काय।
दूर पथ उठाञा आनान ना जाय॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की देह अत्यन्त दीर्घ तथा त्वचा शिथिल होने के कारण लटक गयी थी, उन्हें बहुत दूर तक उठाकर नहीं लाया जा सकता था।

प्रभु को चेतन अवस्था में लाने के लिये प्रयत्न और सेवा—

आर्द्र कौपीन दूर करि' शुष्क पराञा।
बहिर्वासे शोयाइला बालुका छड़ाञा॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीमन्महाप्रभु के गीले कौपीन को उतारकर सूखा बाँध दिया, उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु की देह से बालू को छुड़ाकर उन्हें बहिर्वास वस्त्र पर सुला दिया।

सभी के द्वारा उच्च-सङ्कीर्त्तन—

सबे मेलि' उच्च करि' करेन सङ्कीर्त्तने।
उच्च करि' कृष्णनाम कहेन प्रभुर काणे॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—सभी भक्त लोग मिलकर उच्च स्वर में सङ्कीर्त्तन करने लगे, वे सभी उच्च स्वर से श्रीमन्महाप्रभु के कान में कृष्णनाम का उच्चारण करने लगे।

प्रभु का अर्धबाह्यदशा में आगमन—

कतक्षणे प्रभुर काणे शब्द परशिल।
हुङ्कार करिया प्रभु तबहिं उठिल॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—कुछ देर में श्रीमन्महाप्रभु के कान में कृष्णनाम प्रविष्ट हुआ, तभी श्रीमन्महाप्रभु हुङ्कार करते हुए उठ खड़े हुए।

उठितेइ अस्थि सब लागिल निज-स्थाने।
'अर्द्धबाह्ये' इति-उति करेन दरशने॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के उठते ही उनकी सब अस्थियाँ अपने-अपने स्थान पर जुड़ गयी, वे अर्ध-बाह्य दशा में इधर-उधर देखने लगे।

प्रभु की तीन दशाओं का परिचय—

तिन-दशाय महाप्रभु रहेन सर्वकाल।
'अन्तर्दशा', 'बाह्यदशा', 'अर्द्धबाह्य' आर॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु सब समय 'अन्तर्दशा', 'बाह्यदशा' तथा 'अर्ध-बाह्यदशा'—इन तीनों दशाओं में से किसी-न-किसी एक दशा में रहते।

स्वयं को गोपियों की दासी मानने वाले प्रभु की अर्धबाह्य-दशा का वर्णन (चित्रजल्प)—

अन्तर्दशार किछु घोर, किछु बाह्य-ज्ञान।
सेइ दशा कहेन भक्त 'अर्द्धबाह्य' नाम॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—जब अन्तर्दशा की प्रबलता रहती है तथा कुछ-कुछ बाह्य ज्ञान भी होता है तो भक्त लोग उस दशा को 'अर्धबाह्य' दशा कहते हैं।

'अर्द्धबाह्ये' कहेन प्रभु प्रलाप-वचने।
आकाशे कहेन प्रभु, शुनेन भक्तगणे॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उस अर्धबाह्य दशा में आकाश की ओर मुख करके प्रलापपूर्ण वचन कहने लगे तथा उपस्थित भक्तगण उन्हें श्रवण करने लगे।

''कालिन्दी देखिया आमि गेलाङ वृन्दावन।
देखि,—जलक्रीड़ा करेन व्रजेन्द्रनन्दन॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—[गोपीभावाविष्ट श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—]'' मैं कालिन्दी को देखकर वृन्दावन गयी थी, मैंने देखा कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण कालिन्दी में जल-केलि कर रहे थे।

राधिकादि गोपीगण-सङ्गे एकत्र मेलि'।
यमुनार जले महारङ्गे करेन केलि॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०— ''श्रीकृष्ण श्रीराधिका आदि गोपियों के साथ एकत्रित होकर यमुना के जल में अत्यधिक आनन्दपूर्वक जल-केलि लीला कर रहे थे।

तीरे रहि' देखि आमि सखीगण-सङ्गे।
एकसखी सखीगणे देखाय सेइ रङ्गे॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—''मैं सखियों के साथ कालिन्दी के तट पर खड़ी होकर सब देख रही थी, तब वहाँ खड़ी एक सखी अन्य सखियों को उस आनन्दमयी लीला के रहस्यों का उद्‌घाटन करके उसे दिखा रही थी।

अनुभाष्य

८२। अपनी-अपनी यूथेश्वरी के सेवानन्द-सुखतत्परा मैं और मेरी जैसी अन्यान्य नवीन लाल्य-किङ्करी (मञ्जरियाँ);—इसके द्वारा आत्मेन्द्रिय सम्भोग की वाञ्छा रखकर साधक के लिये अहंग्रहोपासना निषिद्ध हुई; मध्य-लीला के अष्टम परिच्छेद की २०२-२०४ वीं संख्या का अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

स्वयं को गोपियों की दासी जानकर प्रभु के द्वारा कृष्ण की श्रीराधा आदि गोपियों के साथ जल क्रीड़ा का वर्णन (चित्रजल्प)—[यथा राग:]

पट्टवस्त्र, अलङ्कारे, समर्पिया सखी-करे,
सूक्ष्म-शुक्लवस्त्र परिधान।
कृष्ण लञा कान्ता-गण, कैला जलावगाहन,
जलकेलि रचिला सुठाम॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—''श्रीकृष्ण ने पट्टवस्त्र तथा अलङ्कार आदि को किसी एक सखी के हाथों में समर्पित करके स्वयं सूक्ष्म सफेद रङ्ग के वस्त्र पहन लिये तथा फिर उन्होंने कान्ताओं को अपने साथ लेकर जल में अवगाहन किया और अत्यन्त सुन्दर जलकेलि प्रारम्भ की।

सखि हे, देख कृष्णेर जलकेलि-रङ्गे।
कृष्ण-मत करिवर, चञ्चल कर-पुष्कर,
गोपीगण करि' निज सङ्गे॥ ८४ ॥
आरम्भिला जलकेलि, अन्योऽन्ये जल फेलाफेलि,
हुड़ाहुड़ि, वर्षे जलधार।
सबे जय-पराजय, नाहि किछु निश्चय,
जलयुद्ध बाड़िल अपार॥ ८५ ॥

८४-८५। प० अनु०—''हे सखि! श्रीकृष्ण द्वारा आनन्दपूर्वक की जाने वाली जलकेलि को तो देखो! श्रीकृष्ण ने उन्मत्त श्रेष्ठ हाथी की भाँति अपने चञ्चल हाथ रूपी कमल अथवा सूँड के द्वारा गोपियों को अपने साथ लेकर जलकेलि आरम्भ की है। श्रीकृष्ण और गोपियाँ परस्पर जल उड़ेल रहे हैं, उनमें होड़ सी लगी हुई है अथवा वे परस्पर शब्द रूपी बाण भी निक्षेप कर रहे हैं तथा मुख से जल की धारा फैंक रहे हैं। किसकी जय हो रही है, किसकी पराजय—कुछ भी स्थिर नहीं हो पा रहा, जलयुद्ध बहुत अधिक बढ़ गया है।

अमृतप्रवाह भाष्य

८४। करपुष्कर,—करकमल; (मतान्तर में सूँड का अग्र भाग)

वर्षे स्थिर तड़िद्‌गण, सिञ्चे श्याम नवघन,
घन वर्षे तड़ित्-उपरे।
सखीगणेर नयन, तृषित चातकीगण,
सेइ अमृत सुखे पान करे॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—''स्थिर विद्युत की भाँति गोपियाँ नवघनश्याम कृष्ण पर जल वर्षण करके उन्हें सींचने लगी तथा श्याम रूपी नवघन भी विद्युत रूपी गोपियों पर जल की वर्षा करने लगा। दूर यमुना जी के तट पर खड़ी सखियों के नयन प्यासी चातकियों की भाँति उस अमृत का सुखपूर्वक पान कर रहे थे।

अमृतप्रवाह भाष्य

८६। स्थिर विद्युत की भाँति गोपियाँ नवघनश्याम रूप कृष्ण को जल की वर्षा करके सींचने लगी, दूसरी ओर, श्यामरूपी नवघन भी पुन: (गोपी रूपी) विद्युत पर जल की वर्षा करने लगे।

प्रथमे युद्ध 'जलाजलि', तबे युद्ध 'कराकरि',
तार पाछे युद्ध 'मुखामुखि'।
तबे युद्ध 'हृदाहृदि', तबे हैल 'वादावादि',
तबे हैल युद्ध 'नखानखि'॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—''पहले युद्ध परस्पर जल-निक्षेप से प्रारम्भ हुआ, तत्पश्चात् उस युद्ध ने हाता-हाती का रूप ले लिया, फिर वह युद्ध मुखा-मुखि में परिवर्तित हो गया। फिर हृदय-हृदय में युद्ध होने लगा, फिर युद्ध ने वाद-विवाद का रूप धारण किया तथा फिर नख से नख का युद्ध होने लगा।

अनुभाष्य

८७। पाठान्तर में,—'रदा-रदि'।

सहस्र-करे जल-सेके, सहस्र-नेत्रे गोपी देखे,
सहस्र-पदे निकट गमने।
सहस्रमुख-चुम्बने, सहस्रवपु-सङ्गमे,
गोपीनर्म शुने सहस्र-काणे॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—''ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो श्रीकृष्ण सैंकड़ों हाथों से जल उड़ेल रहे हैं, सैंकड़ों नेत्रों से गोपियों को देख रहे हैं, सैंकड़ों पदों से उनके निकट जा रहे हैं, सैंकड़ों मुखों से उनका चुम्बन कर रहे हैं, सैंकड़ों शरीरों से गोपियों के साथ सङ्गम कर रहे हैं तथा सैंकड़ों कानों से गोपियों के हास-परिहास को श्रवण कर रहे हैं।

कृष्ण राधा लञा बले, गेला कण्ठलग्न-जले,
छाड़िला ताँहा, जाँहा अगाध पानी।
तेंहो कृष्णकण्ठ धरि', भासे जलेर उपरि,
गजोत्खाते जैछे कमलिनी॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—''श्रीकृष्ण बलपूर्वक श्रीराधा जी को जल में ऐसे स्थान पर ले गये, जहाँ पर कण्ठ तक जल आ रहा था। श्रीकृष्ण ने राधा जी को वहाँ छोड़ दिया, जहाँ पर अगाध जल था। श्रीराधा जी श्रीकृष्ण के कण्ठ को पकड़कर जल के ऊपर ऐसे तैरने लगी जैसे जल में निमग्न हाथी की सूँड के द्वारा उखाड़ी हुई कमलिनी जल पर तैरती है।

जत गोप-सुन्दरी, कृष्ण तत रूप धरि',
सबार वस्त्र करिला हरणे।
यमुना-जल निर्मल, अङ्ग करे झलमल,
सुखे कृष्ण करे दरशने॥ ९० ॥

९०। प० अनु०— ''जितनी गोप-सुन्दरियाँ थी, श्रीकृष्ण ने उतने ही रूप धारण करके जल के भीतर ही उन सबके वस्त्रों का हरण कर लिया। यमुना जी के जल के अत्यन्त निर्मल होने के कारण गोपियों के अङ्ग झलमल कर रहे थे। श्रीकृष्ण आनन्दपूर्वक गोपियों के अङ्गों के दर्शन करने लगे।

पद्मिनी लता—सखीचय, कैल कारो सहाय,
तार हस्ते पत्र समर्पिल।
केह मुक्त-केशपाश, आगे कैल अधोवास,
हस्ते केह कञ्चुलि धरिल॥ ९१ ॥

९१। प० अनु०—''पद्मिनीलता (कमल ककड़ी) ने गोपियों की सखियों का काम किया, उन्होंने किसी-किसी गोपी के हाथ में जल के ऊपर तैरते अपने गोल पत्ते देकर उनकी सहायता की, अर्थात् किसी-किसी गोपी ने कमलिनी के पत्तों से अपने अङ्गों को ढका तथा किसी-किसी गोपी के केश बहुत लम्बे थे, उन्होंने अपने केशों को ही अधोवास (कटि में पहनने वाले वस्त्र) की भाँति व्यवस्थित किया तथा अन्य कुछ गोपियों ने अपने हाथों को वक्षःस्थल को ढकने वाली कञ्चुलि के रूप में उपयोग किया।

अमृतप्रवाह भाष्य

९१। अङ्ग आवरण के लिये हाथ रूपी कमल का पत्र; किसी ने केशपाश को मुक्त करके अधोवसन की कल्पना की; किसी-किसी ने हाथों को 'कञ्चुलि (चोली)' बना लिया।

अनुभाष्य

९१। पाठान्तर में,—'स्वस्तिके काँचुली रचिल'।

कृष्णेर कलह राधा-सने, गोपीगण सेइ क्षणे,
हेमाब्ज-वने गेला लुकाइते।
आकण्ठ-वपु जले पैशे, मुखमात्र जले भासे,
पद्मे-मुखे ना पारि चिनिते॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०— ''जिस समय श्रीकृष्ण का श्रीराधा जी के साथ प्रेम-कलह चल रहा था, उसी समय अन्य गोपियाँ स्वर्ण-कमल के वन में छिपने के लिये गयी। उन्होंने अपनी देह को कण्ठ तक जल में डुबो कर रखा, केवल उनका मुख ही जल के ऊपर तैर रहा था। जब मैंने उस ओर देखा तो यह न पहचान सकी कि कौन सा स्वर्ण कमल है और कौन सा गोपियों का मुख है।

एथा कृष्ण राधा-सने, कैला जे आछिल मने,
गोपीगणे अन्वेषिते गेला।
तबे राधा सूक्ष्ममति, जानिया सखीर स्थिति,
सखी-मध्ये आसिया मिलिला॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—''दूसरी ओर, श्रीकृष्ण ने श्रीराधा जी के साथ अपने मन की इच्छानुसार व्यवहार किया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण अन्यान्य गोपियों को ढूँढ़ने लगे। श्रीराधा अत्यन्त सूक्ष्ममति से युक्त हैं, इसलिए उन्होंने सखियों की स्थिति का सहज ही अनुमान लगा लिया तथा शीघ्र ही सखियों के समाज में आकर मिल गयी।

जत हेमाब्ज जले भासे, तत नीलाब्ज तार पाशे,
आसि' आसि' करये मिलन।
नीलाब्जे हेमाब्जे ठेके, युद्ध हय प्रत्येके,
कौतुके देखे तीरे सखीगण॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—''जितने स्वर्ण-कमल जल के ऊपर तैर रहे थे, उतने ही नील-कमल उनके पास आ-आकर उनसे मिल रहे थे। नील-कमल से स्वर्ण-कमल के टकराने पर सभी में युद्ध हुआ, यमुना जी के तट पर खड़ी हुई सखियाँ इस कौतुक को देखने लगी।

अमृतप्रवाह भाष्य

९४। हेमाब्ज,—गोपी; नीलाब्ज,—कृष्ण ; सेवापरायणा गोपियाँ तट पर खड़ी होकर दोनों की क्रीड़ा देखने लगी।

चक्रवाक-मण्डल, पृथक् पृथक् युगल,
जल हैते करिल उद्‌गम।
उठिल पद्ममण्डल, पृथक् पृथक् युगल,
चक्रवाके कैल आच्छादन॥ ९५ ॥
उठिल बहु रक्तोत्पल, पृथक् पृथक् युगल,
पद्मगणेर कैल निवारण।
'पद्म' चाहे लुटि' निते, 'उत्पल' चाहे राखिते,
'चक्रवाक लागि' दुँहार रण॥ ९६ ॥
पद्मोत्पल—अचेतन, चक्रवाक—सचेतन,
चक्रवाके पद्म आस्वादय।
इँहा दुँहार उल्टा स्थिति, धर्म हैल विपरीति,
कृष्णेर राज्ये ऐछे न्याय हय॥ ९७ ॥
मित्रेर मित्र सहवासी, चक्रवाके लुटे आसि',
कृष्णेर राज्ये ऐछे व्यवहार।
अपरिचित शत्रुर मित्र, राखे उत्पल,—ए बड़ चित्र,
एइ बड़ 'विरोध-अलङ्कार'॥ ९८ ॥

९५-९८। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९५-९८। गोपियों के स्तन,—चक्रवाक मण्डल हैं; सभी जब पृथक-पृथक युगल के रूप में जल से उठे, उस समय पृथक-पृथक कृष्ण के नीले कमल के समान दोनों हाथों ने चक्रवाकों का आच्छादन किया। गोपियों के हाथ—लाल कमल ; वे युगल-युगल उठकर नील कमलों को रोकने लगे। नीले कमल चक्रवाक को लूटना चाहते थे, और लाल कमल उनकी रक्षा करना चाहते थे, अतएव दोनों में विवाद होने लगा। नीला कमल और लाल कमल—प्रेम में अचेतन थे; चक्रवाक सचेतन होने पर

भी नीलकमल चक्रवाकों का आस्वादन करने लगे। इसमें विपरीत धर्म यह है कि, साधारणतया चक्रवाक पक्षी ही कमल का आस्वादन करता है; कृष्ण की इस लीला में अचेतन कमल ने ही सचेतन चक्रवाक का आस्वादन किया। सूर्यमित्र कमल सहज रूप में ही चक्रवाक के साथ रहने वाला है, किन्तु मित्र होने पर भी चक्रवाक को लूट लेता है। उत्पल अर्थात् कुमुद रात्रि में प्रस्फुटित होता है, इसलिए चक्रवाक का अपरिचित शत्रु होने पर भी गोपियों के हाथ रूपी वह कुमुद अपने स्तनरूपी चक्रवाक की रक्षा करता है;—यह बहुत ही विचित्र है, अतएव यहाँ पर 'विरोधालङ्कार' है।

अष्टादश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

९८। सूर्य के उदित होने पर कमल के प्रस्फुटित होने के कारण सूर्य—कमल का मित्र है; सूर्य के उदित होने पर चक्रवाक का मिलन होता है। किन्तु यहाँ पर कमल सूर्य का मित्र होने पर भी अपने-मित्र चक्रवाक का लुण्ठन कर रहा है। चक्रवाक—चेतन, और कमल—अचेतन पदार्थ है। किन्तु यहाँ पर कृष्ण-कर रूपी कमल अचेतन होने पर भी गोपियों के वक्षरूपी सचेतन चक्रवाक पर आक्रमण कर रहे हैं,—'यही विरोधाभासालङ्कार' है। सूर्योदय के समय कुमुद मुदित (बन्द) हो जाता है, इसलिए सूर्य—कुमुद का शत्रु है। रात्रि में कुमुद प्रस्फुटित होता है इसलिए वह—चक्रवाक से अपरिचित है। यहाँ पर सूर्य—कुमुद का शत्रु एवं चक्रवाक—उस शत्रु का मित्र है। गोपीवक्ष रूपी चक्रवाक ही यहाँ पर गोपियों के हाथरूपी कुमुद के द्वारा रक्षित है,—यह भी विचित्र 'विरोधालङ्कार' है।

अतिशयोक्ति, विरोधाभास, दुइ अलङ्कार प्रकाश, करि' कृष्ण प्रकट देखाइल।
जाहा करि' आस्वादन, आनन्दित मोर मन, नेत्र-कर्ण-युग्म जुड़ाइल॥ ९९ ॥

९९। प॰ अनु॰—''श्रीकृष्ण ने अतिश्योक्ति तथा विरोधाभास नामक दो अलङ्कारों को एकसाथ प्रकटित करके दिखलाय जिसका आस्वादन करके मेरा मन आनन्दित हो गया तथा मेरे नेत्र और कान सुशीतल हो गये।

अनुभाष्य

९९। अतिशयोक्ति,—उपमेय पदार्थ के स्थान पर उपमान को अभिन्न समझकर व्यवहार करने से वह—'अतिशयोक्ति-अलङ्कार' कहलाता है; यथा साहित्यदर्पण (१०.६९३) में- ''सिद्धत्वेऽध्यवसाय-स्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।'' [अर्थात् अध्यवसाय (अभेद-प्रतिपति) अर्थात् उपमेय और उपमान के एक ही भाव की सिद्धि होने पर, उस स्थान पर 'अतिशयोक्ति'-अलङ्कार कहा जाता है (अर्थात् उपमेय-रूपी गोपी-वक्ष के उपमान-'चक्रवाक' और उपमेय-रूपी श्रीकृष्ण के हस्त के उपमान-'नीलपद्म' एवं उपमेय-रूपी गोपी-हस्त के उपमान-'रक्तोत्पल'। उपमेय- विषय का निर्देश नहीं करके उपमान को ही अभिन्न-विचार से उपमेय-रूप में स्थापन करने को अतिशयोक्ति अलङ्कार कहते हैं। यहाँ पर उपमान—'चक्रवाक', 'नीलपद्म' और 'रक्तोत्पल' को यथाक्रम उपमेय—गोपीवक्ष, श्रीकृष्ण-हस्त और गोपी-हस्त के साथ अभेद प्रतिपादित कराके श्रीकृष्ण ने 'अतिशयोक्ति'-अलङ्कार को साक्षात् प्रकट करके दिखलाया)]।

विरोधाभास,—यथा काव्यप्रकाश (१०.२४) में—''विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः। जाति-श्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरुद्धाः स्याद्गुणस्त्रिभिः। क्रियाद्वाभ्यामपि द्रव्यं द्रव्येणैवेति ते दश॥'' [अर्थात् अविरोध होने पर भी विरुद्ध रूपी जो वाक्य हैं, वह 'विरोध' है; चार प्रकार की जाति, तीन प्रकार के गुण, दो प्रकार की क्रिया और द्रव्य—इन भेदों के कारण विरोध दस प्रकार का है।]

अप्राकृत मञ्जरियों के द्वारा गोपियों से समन्वित श्रीकृष्ण के सेवन की विचित्रता—

ऐछे विचित्र क्रीड़ा करि', तीरे आइला श्रीहरि,
सङ्गे लञा सब कान्तागण।
गन्ध-तैल-मर्द्दन, आमलकी-उद्वर्त्तन,
सेवा करे तीरे सखीगण॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—''श्रीहरि ऐसी विचित्र लीला करके अपनी सभी कान्ताओं के साथ यमुना जी के तट पर आ गये। तट पर खड़ी हुई सखियों ने श्रीश्रीराधा-कृष्ण के साथ-साथ यमुना से बाहर आयी सखियों की भी सुगन्धित तेल से मालिश की तथा उन्हें आँवले का उबटन लगाया।

अनुभाष्य

१००। उद्वर्त्तन,—उबटन, जिसके द्वारा अङ्ग मार्जित होता है।

पुनरपि कैल स्नान, शुष्कवस्त्र परिधान,
रत्न-मन्दिरे कैला आगमन।
वृन्दा-कृत सम्भार, गन्ध-पुष्प-अलङ्कार,
वन्यवेश करिल रचन॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—''श्रीकृष्ण ने पुनः श्रीराधा तथा अन्य गोपियों को अपने साथ लेकर स्नान किया तथा फिर सभी ने गीले वस्त्रों को उतारकर सूखे वस्त्र धारण किये। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण उन सभी के साथ रत्न-मन्दिर में आ गये तथा वहाँ उन्होंने श्रीवृन्दा देवी द्वारा प्रस्तुत किये गये शयन के वस्त्र तथा सुगन्धित पुष्पों से रचित अलङ्कारों से युक्त वन्यवेश धारण किया।

अनुभाष्य

१०१। सम्भार,—पुष्पगन्ध, सज्जा-वेश आदि के उपकरण समूह।

वृन्दावने तरुलता, अद्भुत ताहार कथा,
बारमास धरे फुल-फल।
वृन्दावने देवीगण, कुञ्जदासी जत जन,
फल पाड़ि' आनिया सकल॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—''वृन्दावन के वृक्षों तथा लताओं की भी अद्भुत कहानी है, उन पर बारह महीने फल-फूल लगते हैं। वृन्दावन में कुञ्ज की सेवा करने वाली जितनी देवियाँ हैं, वे समस्त फलों को एकत्रित करके ले आयी।

उत्तम संस्कार करि', बड़ बड़ थाली भरि',
रत्न-मन्दिरे पिण्डार उपरे।
भक्षणेर क्रम करि', धरियाछे सारि सारि,
आगे आसन बसिवार तरे॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—''उन दासियों ने फलों का भली-भाँति संस्कार करके अर्थात् उन्हें धोकर, छीलकर, गुठली आदि फैंककर तथा टुकड़े करके उन्हें बड़ी-बड़ी थालियों में भरकर रत्न मन्दिर के अन्दर बने चबूतरे पर भक्षण के क्रम के अनुसार अर्थात् पहले कौन-सा फल खाना अच्छा है, बाद में कौन सा, उसी के अनुसार पंक्ति में सजाकर रख दिया तथा उन फलों के सामने बैठने का आसन लगा दिया।

अनुभाष्य

१०३। संस्कार,—भोजन उपयोगी छिलके-गुठली आदि से रहित करना, खाद्य द्रव्यों को धोना, अमनिया करना इत्यादि।

एक नारिकेल नाना-जाति, एक आम्र नाना भाति,
कला, कोलि—विविध प्रकार।
पनस, खर्जुर, कमला, नारङ्ग, जाम, सन्तारा,
द्राक्षा, बादाम, मेओया जत आर॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—''उन फलों में एक नारियल की ही बहुत-सी प्रजातियाँ तथा आम भी अनेक प्रकार के थे। केले तथा बेर भी विविध प्रकार के थे। पका हुआ कटहल, खजूर, सन्तरा, नारङ्गी, जामुन, बड़े आकार वाला सन्तरा तथा द्राक्षा (काले अङ्गूर) आदि फल थे।

दासियों ने बादाम और बहुत से मेवे भी सजाकर रखे।

खरमुजा, क्षीरिका, ताल, केशुर, पानीफल, मृणाल,
बिल्व, पीलु, दाड़िम्बादि जत।
कोन देशे कार ख्याति, वृन्दावने सब प्राप्ति,
सहस्रजाति, लेखा जाय कत?? १०५ ॥

१०५।प० अनु०—दासियों ने खरबूजा, खिरनी, तालफल, कशेरू, सिङ्गाराफल, मृणाल (कमलककड़ी), बेल, पीलु तथा अनार आदि विविध प्रकार के फलों को सजाकर रखा। जितने स्थानों पर जितनी प्रकार के फल प्रसिद्ध हैं, वृन्दावन में वे समस्त फल उपलब्ध हैं। वृन्दावन में उपलब्ध फलों की सैकड़ो जातियाँ हैं, कितने प्रकार के फलों के विषय में लिखा जाये?

अनुभाष्य

१०४-१०५। कोलि,—बेर, बदरी; पनस,— कटहल; नारङ्ग,—संतरे की जाति का नींबू; द्राक्षा—अङ्गूर, सन्तारा,—बेताबी नींबू जैसा बड़ा नींबू; मेवा,—पिस्ता, बादाम इत्यादि, ठण्डे स्थानों पर उत्पन्न लाभकारी सुस्वादु [सूखे] फल; खरमूजा—तरबूज की जाति का छोटा फल; क्षीरिका,—क्षीरा; ताल,—तालशांस अथवा फोपल; केशुर— मुखा जाति का तृणमूल ; कशेरु, कसेरू इत्यादि नाम से भी परिचित; पानीफल,—शैवाल (काई) से ढके अत्यधिक प्राचीन सरोवर अथवा नदी के जल में उत्पन्न फल सिंगारा; मृणाल, —कमल की नाल (कमल ककड़ी) अथवा कमल की जड़(?); दाड़िम्ब,—मस्कट और अनार जातीय फल, 'अनार'।

गंगाजल, अमृतकेलि, पीयूषग्रन्थि, कर्पूरकेलि,
सरपुरी, अमृति, पद्मचिनि।
खण्डक्षीरिसार-वृक्ष, घरे करि' नाना भक्ष्य,
राधा जाहा कृष्ण-लागि' आनि॥ १०६ ॥

१०६।प० अनु०—''दासियों ने उन फलों तथा मेवों के साथ-ही-साथ गङ्गाजल नामक लड्डु, अमृतकेलि, पीयूषग्रन्थि, कर्पूरकेलि, सरपुरी, इमरती, पद्मचिनि तथा खण्डक्षीरिसार- नामक वृक्ष के आकार की मिठाई आदि विभिन्न प्रकार के मिष्ठान्न—जिन्हें श्रीराधिका अपने घर से बनाकर लायी थी, उन्हें भी सजाकर रखा।

अनुभाष्य

१०६। यहाँ पर 'गङ्गाजल' इत्यादि सबकुछ 'लड्डु' और गाय के दूध के बने छैने के साथ चीनी के सहयोग से प्रस्तुत किये गये अनेक 'पिष्टक' जातीय खाद्य; खण्डक्षीरिसार,—शर्करा से निर्मित वृक्ष की आकृति की अनेक प्रकार की मिठाइयाँ।

अष्टादश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

भक्ष्येर परिपाटी देखि', कृष्ण हैला महासुखी,
बसि' कैल वन्य-भोजन।
सङ्गे लञा सखीगण, राधा कैला भोजन,
दुँहे कैला मन्दिरे शयन॥ १०७ ॥

१०७।प० अनु०—''श्रीकृष्ण भक्ष्य वस्तुओं की परिपाटी देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए तथा उन्होंने बैठकर वन्य भोजन किया। तत्पश्चात् श्रीराधाजी ने सखियों के साथ बैठकर वन्य भोजन किया एवं उसके बाद श्रीकृष्ण और श्रीराधाजी ने रत्न-मन्दिर में शयन किया।

केह करे वीजन, केह पादसम्वाहन,
केह कराय ताम्बुल भक्षण।
राधा कृष्ण निद्रा गेला, सखीगण शयन कैला,
देखि' आमार सुखी हैल मन॥ १०८ ॥

१०८।प० अनु०—''कोई दासी उन दोनों को पंखा कर रही थी, कोई उनके चरणों का सम्वाहन कर रही थी, कोई उन्हें ताम्बूल बनाकर भक्षण करा रही थी। धीरे-धीरे श्रीराधा-कृष्ण को नींद आ गयी, सखियाँ भी सो गयी। उन सबको विश्राम करते देखकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ।

प्रभु की कृष्ण सुख की वाञ्छा—

हेनकाले मोरे धरि', महा कोलाहल करि',
तुमि-सब इँहा लञा आइला।
काँहा यमुना, वृन्दावन, काँहा कृष्ण, गोपीगण,
सेइ सुख भङ्ग कराइला!!'' १०९ ॥

१०९।प० अनु०—''उसी समय तुम सब लोगों ने मुझे पकड़कर बहुत अधिक कोलाहल किया तथा मुझे यहाँ लेकर आ गये। यमुना, वृन्दावन, कृष्ण तथा गोपियाँ कहाँ गये, तुम लोगों ने मेरे उस सुख को भङ्ग करा दिया!''

अर्धबाह्य से बाह्यदशा में आगमन, स्वरूप से कारण की जिज्ञासा, स्वरूप का उत्तर—

एतेक कहिते प्रभुर केवल 'बाह्य' हैल।
स्वरूप-गोसाञिरे देखि', ताँहारे पुछिल॥ ११० ॥

११०।प० अनु०—इतना कहते-कहते श्रीमन्महाप्रभु सम्पूर्णत: बाह्य दशा में आ गये, उन्होंने श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी को देखकर उनसे पूछा—।

''इँहा केने तोमरा आमारे लञा आइला?''
स्वरूप-गोसाञि तबे कहिते लागिला॥ १११ ॥

१११।प० अनु०—''तुम लोग मुझे यहाँ लेकर क्यों आ गये?'' तब श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी कहने लगे—।

''यमुनार भ्रमे तुमि समुद्रे पड़िला।
समुद्रेर तरङ्गे आसि' एत दूर आइला!! ११२ ॥

११२।प० अनु०—''आप यमुना के भ्रम से समुद्र में जा पड़े थे। आप समुद्र की तरङ्गों के साथ बहते-बहते इतना दूर आ गये हैं!

एइ जालिया जाले करि' तोमा उठाइल।
तोमार परशे एइ प्रेमे मत्त हइल॥ ११३ ॥

११३।प० अनु०—''इस मछुवारे ने आपको जाल के द्वारा समुद्र से निकाला है। आपके स्पर्श से यह मछुवारा प्रेम में मत्त हो गया है।

सब रात्रि सबे बेड़ाइ तोमारे अन्वेषिया।
जालियार मुखे शुनि' पाइनु आसिया॥ ११४ ॥

११४।प० अनु०—''सारी रात सभी भक्तों ने घूम-घूमकर आपको ढूँढ़ा है, मछुवारे के मुख से आपके विषय में सुनकर हमने यहाँ पर आकर आपको प्राप्त किया है।

तुमि मूर्च्छा-छले वृन्दावने देख क्रीड़ा।
तोमार मूर्च्छा देखि' सबे मने पाय पीड़ा॥ ११५ ॥

११५।प० अनु०—''आप मूर्च्छा के छल से वृन्दावन में लीला देख रहे थे और यहाँ आपको मूर्च्छित देखकर सभी भक्तों का मन अत्यन्त पीड़ित हो रहा था।

कृष्णनाम लइते तोमार 'अर्द्धबाह्य' हइल।
ताते जे प्रलाप कैला ताहा जे शुनिल॥'' ११६ ॥

११६।प० अनु०—''हमारे द्वारा कृष्णनाम कीर्त्तन करने पर आपको 'अर्धबाह्य' दशा की प्राप्ति हुई, उस अवस्था में आपने जो प्रलाप किया, उसे भी हम सबने सुना।''

प्रभु के द्वारा अपने वृत्तान्त का वर्णन—

प्रभु कहे,—''स्वप्ने देखि, गेलाङ वृन्दावने।
देखि,—कृष्ण रास करेन गोपीगण-सने॥ ११७ ॥

११७।प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,— ''मैं स्वप्न में वृन्दावन गया था, स्वप्न में मैंने देखा कि श्रीकृष्ण गोपियों के साथ में रास कर रहें हैं।

जलक्रीड़ा करि' कैला वन्य-भोजने।
देखि' आमि प्रलाप कैलुँ, हेन लय मने॥'' ११८ ॥

११८।प० अनु०—''श्रीकृष्ण तथा गोपियों ने जलक्रीड़ा करने के पश्चात् वन-भोजन किया, मुझे ऐसा लगता है कि उसे देखकर ही मैंने प्रलाप किया होगा।''

स्वरूप के द्वारा महाप्रभु को स्नान के बाद घर पर लाना—

तबे स्वरूप-गोसाञि, ताँरे स्नान कराञा।
प्रभुरे लञा घर आइला आनन्दित हञा॥ ११९ ॥

११९।प० अनु०—तब श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु को स्नान कराके आनन्दपूर्वक उन्हें घर ले आये।

प्रभु के इस महाभाव के श्रवण से अचैतन्य को भी कृष्णोन्मुखता रूपी चेतनता की प्राप्ति—

एइ त' कहिलुँ प्रभुर समुद्र-पतन।
इहा जेइ शुने, पाय चैतन्य-चरण॥ १२० ॥

१२०।प० अनु०—इस प्रकार मैंने श्रीमन्महाप्रभु के समुद्र में गिरने की लीला का वर्णन किया है, इसे जो कोई भी श्रवण करता है, उसे श्रीचैतन्य महाप्रभु के चरणों की प्राप्ति होती है।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १२१ ॥

१२१। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिनकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहे हैं।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे समुद्रपतनं नाम अष्टादशः परिच्छेदः।

❋❋❋

उनविंश परिच्छेद

कथासार— मातृभक्ति के द्वारा प्रेरित होकर प्रभु प्रत्येक वर्ष जगदानन्द-पण्डित को प्रसादी वस्त्र और मिष्ठान्न देकर श्रीनवद्वीप में भेजते थे। जगदानन्द उसी प्रकार एक वर्ष नवद्वीप जाकर अद्वैताचार्य के द्वारा लिखित तर्जाप्रहेली (पहेली) ले आये। उसे पढ़कर महाप्रभु की [विरह-] दशा वर्धित होने लगी एवं भक्तगण विचार करने लगे, 'लगता है कि महाप्रभु शीघ्र ही अप्रकट होंगे।' (प्रभु की अवस्था) ऐसी हो गयी कि रात्रि के समय मुख को घिसने से प्रभु के चोट वाले अङ्गों से रक्त निकलने लगा। स्वरूप-गोस्वामी ने उसे रोकने के लिये शङ्कर पण्डित को प्रभु के घर में सुलाना प्रारम्भ कराया। किसी समय [श्रीमन्महाप्रभु ने] वैशाख-पूर्णिमा की रात्रि में श्रीजगन्नाथवल्लभ उद्यान में प्रवेश करके अनेक प्रकार के भाव प्रकाशित करते-करते अशोक वृक्ष के नीचे हठात् कृष्ण का दर्शन किया; उससे वे कृष्ण की वपु की सुगन्ध से उन्मत्त होकर भाव प्रकाशित करने लगे।

(अ:प्र:भा:)

माता रूपी भक्त के प्रति अतुलनीय स्नेहमय एवं जगन्नाथवल्लभ उद्यान में महाभाव में आविष्ट प्रभु की वन्दना—

वन्दे तं कृष्णचैतन्यं मातृभक्तशिरोमणिम्।
प्रलप्य मुखसंघर्षी मधूद्याने ललास य:॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। जो मातृभक्त-शिरोमणि हैं एवं जिन्होंने प्रलाप करते-करते घर की दीवार से मुख को घिसा था तथा जिन्होंने कृष्णप्रेम की लालसा को प्रदर्शित करने के लिये जगन्नाथवल्लभ रूपी मधूद्यान अर्थात् वासन्तिक-विहार कानन में लीला की थी, मैं उन कृष्णचैतन्य की वन्दना करता हूँ।

अनुभाष्य

१। मुखसंघर्षी (मुखं सङ्घर्षयितुं शीलं यस्य स:) य: (कृष्णचैतन्यदेव:) प्रलप्य (प्रलापवचनादिकम् उच्चार्य) मधूद्याने (जगन्नाथवल्लभाख्ये वासन्तिक-विहारकानने) ललास (विलसितवान्), तं मातृभक्त-शिरोमणिं (मातृभक्तेषु शिरोमणि: तं मस्तक भूषणं परम-श्रेष्ठं कृष्णचैतन्यम्) अहं वन्दे।

जय जय श्रीचैतन्य जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीचैतन्य महाप्रभु की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्रीगौरभक्तवृन्द की जय हो।

प्रभु का दिव्योन्माद—

एइमते महाप्रभु कृष्णप्रेमावेशे।
उन्माद-प्रलाप करे रात्रि-दिवसे॥ ३ ॥

३। प० अनु०—पूर्व परिच्छेद के वर्णनानुरूप श्रीमन्महाप्रभु कृष्णप्रेम के आवेश में रात-दिन उन्माद ग्रस्त होकर प्रलाप करते थे।

पण्डित जगदानन्द के गुण—

प्रभुर अत्यन्त प्रिय पण्डित-जगदानन्द।
जाहार चरित्रे प्रभु पायेन आनन्द॥ ४ ॥

४। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीमन्महाप्रभु को अत्यन्त प्रिय थे। श्रीमन्महाप्रभु उनके चरित्र (आचार-विचार) को देखकर आनन्दित होते थे।

प्रत्येक वर्ष की भाँति उस बार भी प्रभु के द्वारा नवद्वीप में

अपनी माता के निकट अतुलनीय वात्सल्य-उक्ति-बतलाने के लिये पण्डित को भेजना—

प्रति वत्सर प्रभु ताँरे पाठान नदीयाते।
विच्छेद-दु:खिता जानि' जननी आश्वासिते॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु अपनी माता श्रीशची देवी के स्वयं से विच्छेद-दु:ख को समझ कर प्रत्येक वर्ष श्रीजगदानन्द पण्डित को उन्हें आश्वासन देने के लिये नदीया भेजते थे।

''नदीया चलह, मातारे कहिह नमस्कार।
आमार नामे पादपद्म धरिह ताँहार॥ ६ ॥
कहिह ताँहारे,—तुमि करह स्मरण।
नित्य आसि' तोमार वन्दिये चरण॥ ७ ॥

६-७। प० अनु०—[उसी शृङ्खला में एकदिन श्रीमन्महाप्रभु ने जगदानन्द पण्डित से कहा-]''हे जगदानन्द! तुम नदीया जाओ। श्रीशची माता को मेरा प्रणाम कहना। मेरी ओर से उनके चरणकमल को धारण करना तथा उन्हें मेरी ओर से कहना,—''हे माता! आप स्मरण कीजिए। मैं नित्यप्रति आकर आपके चरणों की वन्दना करता हूँ।

जे-दिने तोमार इच्छा कराइते भोजन।
से-दिने अवश्य आमि करिये भक्षण॥८॥

८। प० अनु०—''जिस दिन आपकी मुझे भोजन कराने की इच्छा होती है, उस दिन मैं अवश्य ही आपके पास आकर भोजन ग्रहण करता हूँ।

भक्तवत्सल भगवान् की भी स्वयं को भक्त की सेवा में अयोग्य जानकर दैन्यपूर्ण उक्ति और क्षमा-याचना—

तोमार सेवा छाड़ि' आमि करिलुँ सन्यास।
'बाउल' हञा आमि कैलुँ धर्मनाश॥ ९ ॥

९। प० अनु०—''मैंने आपकी सेवा को छोड़कर सन्यास ग्रहण किया है। मैंने पागल बनकर अपने धर्म का नाश अर्थात् आपकी सेवा करने रूपी अपने कर्त्तव्य का त्याग किया है।

एइ अपराध तुमि ना लइह आमार।
तोमार अधीन आमि—पुत्र से तोमार॥ १० ॥

१०। प० अनु०—''आप मेरे इस अपराध का ग्रहण मत करना। मैं आपके अधीन हूँ, आपका पुत्र हूँ।

शची देवी के आदेश से ही प्रभु का पुरी में वास—

नीलाचले आछि आमि तोमार आज्ञाते।
जावत् जीब, तावत् आमि नारिब छाड़िते॥'' ११॥

११। प० अनु०—''मैं आपकी आज्ञानुसार जगन्नाथपुरी में ही वास कर रहा हूँ। मैं जब तक जीवित रहूँगा, तब तक मैं नीलाचल में वास करने रूपी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूँगा।''

परमानन्द पुरी के अनुरोध से शचीदेवी के लिये नवद्वीप में वस्त्र और प्रसाद भेजना—

गोप-लीलाय पाइला जेइ प्रसाद-वसने।
मातारे पाठान ताहा पुरीर वचने॥ १२ ॥

१२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु को श्रीजगन्नाथदेव के गोप वेश को धारण करने के समय भगवान् श्रीजगन्नाथ का जो प्रसादी वस्त्र प्राप्त हुआ था, उन्होंने श्रीपरमानन्द पुरी के कहने पर उसे माता के लिये भेज दिया।

अनुभाष्य

१२। श्रीजगन्नाथदेव के गोपवेश से सम्बन्धित प्रसाद-वस्त्र।

जगन्नाथेर उत्तम प्रसाद आनिया यतने।
मातारे पृथक् पाठान, आर भक्तगणे॥ १३ ॥

१३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु अत्यधिक प्रयत्न करके श्रीजगन्नाथदेव का उत्तम प्रसाद लाये तथा उन्होंने श्रीशची माता एवं अन्य-अन्य भक्तों के लिये पृथक्-पृथक् करके प्रसाद भेजा।

अप्राकृत वात्सल्य-प्रेम के वशीभूत भगवान्—

मातृभक्तगणेर प्रभु हन शिरोमणि।
सन्यास करिया सदा सेवेन जननी॥ १४ ॥

१४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु मातृ-भक्तों में शिरोमणि हैं, वे सन्यास ग्रहण करके भी सदैव माता की सेवा करते हैं।

अनुभाष्य

१४। माता के द्वारा प्रदान किये गये, लालित और पुष्ट जड़ शरीर को धारण करके उसे कृष्णभजन में नियुक्त करने से ही हरिभजन के द्वारा शुद्ध रूप से अत्यधिक उत्तम मातृ-सेवा होती है।

पण्डित का नवद्वीप में जाकर शचीदेवी को प्रभु के द्वारा दिया गया सन्देश आदि प्रदान—

जगदानन्द नदीया गिया मातारे मिलिला।
प्रभुर जत निवेदन, सकल कहिला॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित नवद्वीप में जाकर श्रीशची माता से मिले तथा श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीशची माता के लिये जो सब निवेदन किया था, उन्होंने माता को कह सुनाया।

नवद्वीप और शान्तिपुर में रहने के बाद विदायी-हेतु प्रार्थना—

आचार्यादि-भक्तगणे मिलिला प्रसाद दिया।
माता-ठाञि आज्ञा लइला मासेक रहिया॥ १६ ॥

१६। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीअद्वैताचार्य आदि भक्तों से मिले तथा उन्होंने सभी को श्रीमन्महाप्रभु द्वारा भेजा गया प्रसाद दिया। श्रीजगदानन्द पण्डित ने एक मास तक नवद्वीप में रहने के पश्चात् श्रीशचीमाता से जाने हेतु आज्ञा माँगी।

आचार्येर ठाञि गिया आज्ञा मागिला।
आचार्य-गोसाञि प्रभुरे सन्देश कहिला॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित ने श्रीअद्वैताचार्य के निकट जाकर भी जाने हेतु आज्ञा माँगी। श्रीअद्वैताचार्य गोसाञि ने श्रीमन्महाप्रभु के लिये सन्देश दिया।

पण्डित के माध्यम से महाप्रभु के निकट श्रीअद्वैत प्रभु के द्वारा प्रहेली भेजना—

तरजा-प्रहेली आचार्य कहेन ठारे-ठोरे।
प्रभुमात्र बुझेन, केह बुझिते ना पारे॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य ने श्रीमन्महाप्रभु के निकट एक तरजा-पहेली के रूप में सन्देश भेजा। जिसे एकमात्र श्रीमन्महाप्रभु ही समझ सकते थे अन्य कोई भी नहीं।

''प्रभुरे कहिह आमार कोटि नमस्कार।
एइ निवेदन ताँर चरणे आमार॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—श्रीअद्वैताचार्य प्रभु ने श्रीजगदानन्द पण्डित से कहा,—''हे जगदानन्द! श्रीमन्महाप्रभु को मेरा करोड़ों-करोड़ों बार प्रणाम कहना। उनके श्रीचरणकमलों में मेरा यही (निम्नोक्त) निवेदन है—।

महाप्रभु के अवतार के उद्देश्य की सिद्धि एवं लीला को संगोपन करने हेतु इङ्गित प्रदान—

बाउलके कहिह,—लोक हइल बाउल।
बाउलके कहिह,—हाटे ना बिकाय चाउल॥ २० ॥
बाउलके कहिह,—काये नाहिक आउल।
बाउलके कहिह,—इहा कहियाछे बाउल॥'' २१ ॥

२०-२१। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

२०-२१। (श्रीअद्वैतप्रभु ने पण्डित जगदानन्द के माध्यम से यह कहकर भिजवाया,—)''महाप्रभु को कहना कि लोग प्रेम में उन्मत्त हो गये हैं, और प्रेम के हाट (बाजार) में प्रेमरूपी चावल को बेचने का स्थान नहीं है। महाप्रभु को कहना कि आउल अर्थात् प्रेमोन्मत्त बाउल को और कोई सांसारिक कार्य नहीं है। महाप्रभु को कहना

कि प्रेम में उन्मत्त होकर ही अद्वैताचार्य ने यह बात बोली है। तात्पर्य यह है कि प्रभु के आविर्भूत होने का जो तात्पर्य था, वह सम्पूर्ण हो गया है, अब प्रभु की जैसी इच्छा, वैसा हो।

अनुभाष्य

२०। पाठान्तर में,—'बाउलके कहिओ, लोक हइल आउल।' आउल शब्द का अर्थ आतुर अर्थात् प्रेमपूर्ण है। कोई-कोई उसका 'शिथिल', 'असंलग्न' अर्थ भी करते हैं; आउल- शब्द से 'निष्किञ्चन', 'आर्त्त (दुःखी)' और 'आतुर' इत्यादि भी समझा जाता है।

अनुभाष्य

२१। 'काये नाहिक आउल',—कोई-कोई व्याख्या करते हैं कि, प्रेम-प्रचार-कार्य में और उच्छृङ्खलता नहीं है।

उसे सुनकर जगदानन्द का हँसना और पुरी में आकर प्रभु के समक्ष उसका वर्णन—

एत शुनि' जगदानन्द हासिते लागिला।
नीलाचले आसि' तबे प्रभुरे कहिला॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—श्रीजगदानन्द पण्डित श्रीअद्वैताचार्य प्रभु के उपरोक्त वचनों को सुनकर हँसने लगे। उन्होंने नीलाचल में आकर श्रीमन्महाप्रभु को श्रीअद्वैताचार्य प्रभु द्वारा प्रदत्त सन्देश कह सुनाया।

उसे सुनकर प्रभु का हँसना और मौन धारण करना—

तरजा शुनि' महाप्रभु ईषत् हासिला।
''ताँर जेइ आज्ञा''—बलि' मौन धरिला॥ २३ ॥

२३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीअद्वैताचार्य प्रभु द्वारा कहे गये तरजे (पहेली) को सुनकर मन्द-मन्द मुस्कराए तथा तत्पश्चात् 'उनकी जैसी आज्ञा'—ऐसा कहकर मौन हो गये।

श्रीस्वरूप के द्वारा अर्थ की जिज्ञासा—

जानिया स्वरूप-गोसाञि प्रभुरे पुछिल।
''एइ तरजार अर्थ बुझिते नारिल॥'' २४ ॥

२४। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने उस तरजे के अर्थ को जानने पर भी श्रीमन्महाप्रभु से कहा,—''मैं इस तरजे का अर्थ नहीं समझ पाया हूँ।''

प्रभु के द्वारा प्रहेली की व्याख्या का सङ्केत—

प्रभु कहेन,—'आचार्य हय पूजक प्रबल।
आगम-शास्त्रेर विधि-विधाने कुशल॥ २५ ॥

२५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु ने उत्तर देते हुए कहा,—''श्रीअद्वैताचार्य प्रभु एक बहुत श्रेष्ठ पूजक हैं। वे आगम शास्त्र के विधि-विधान में कुशल हैं।

उपासना लागि' देवेर करेन आवाहन।
पूजा लागि' कत काल करेन निरोधन॥ २६ ॥

२६। प० अनु०—''श्रीअद्वैताचार्य उपासना हेतु देवता का आवाहन करते हैं तथा पूजा के लिये कुछ समय के लिये देवता को रोककर भी रखते हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

२६। आवाहन,—पूजा करने से पहले देवता का आह्वान; निरोधन,—जब तक पूजा होती रहती है, तब तक देवता को रखना।

पूजा-निर्वाहण हैले पाछे करेन विसर्जन।
तरजार ना जानि अर्थ, किबा ताँर मन॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—''पूजा के सम्पूर्ण होने के पश्चात् वे देवता का विसर्जन कर देते हैं। यह सब तो मैं जानता हूँ किन्तु यह सब श्रीअद्वैताचार्य ने मुझे क्यों कहलवाया है, इस पहेली का मेरे लिये क्या अर्थ है, मैं यह नहीं जानता। पता नहीं श्रीअद्वैत के मन में क्या है?

अमृतप्रवाह भाष्य

२७। विसर्जन,—पूजा की समाप्ति होने पर देवता को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना।

महायोगैश्वर्यशाली अद्वैतप्रभु—

महायोगेश्वर आचार्य—तरजाते समर्थ।
आमिह बुझिते नारि तरजार अर्थ॥'' २८ ॥

२८। प० अनु०—''श्रीअद्वैताचार्य महा-योगेश्वर हैं, वे तरजा करने में समर्थ हैं। किन्तु मैं भी उनके द्वारा किये गये तरजे का अर्थ नहीं समझ पा रहा हूँ।''

भक्तों में विस्मय, स्वरूप का विमर्ष (दुःख)—
शुनिया विस्मित हइला सब भक्तगण।
स्वरूप-गोसाञि किछु हइला विमन॥ २९ ॥

२९। प० अनु०—''श्रीमन्महाप्रभु भी तरजा के अर्थ को नहीं जानते''— ऐसा सुन करके सभी भक्त आश्चर्यचकित हुए तथा श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी कुछ उदास (मायूस) से हो गये।

प्रभु के कृष्ण-विरह की दशा की वृद्धि—
सेइ दिन हैते प्रभुर आर दशा हइल।
कृष्णेर विरह-दशा द्विगुण बाड़िल॥ ३० ॥

३०। प० अनु०—उस दिन से श्रीमन्महाप्रभु की दशा अन्य प्रकार की हो गयी। उनकी श्रीकृष्ण से विरह वाली अवस्था दोगुणी हो गयी।

उन्माद-प्रलाप-चेष्टा करे रात्रि-दिने।
राधा-भावावेशे विरह बाड़े अनुक्षणे॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु रात-दिन उन्माद-प्रलापमय चेष्टाएँ करते। श्रीराधाजी के भावावेश में उनका विरह अनुक्षण बढ़ने लगा।

प्रभु की उद्घूर्णा और प्रलाप—
आचम्बिते स्फुरे कृष्णेर मथुरा-गमन।
उद्घूर्णा-दशा हैल उन्माद-लक्षण॥३२॥

३२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु में अकस्मात् ही श्रीकृष्ण के मथुरा जाने की स्फूर्त्ति हो आयी तथा उनमें उन्माद की उद्घूर्णा-दशा उपस्थित हो गयी।

रामानन्देर गला धरि' करेन प्रलापन।
स्वरूपे पुछेन जानि' निज-सखीगण॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु श्रीरामानन्द राय के कण्ठ को धारण करके प्रलाप करने लगे तथा श्रीस्वरूप दामोदर को अपनी सखी समझकर कुछ पूछने लगे।

पूर्वे जेन विशाखारे राधिका पुछिला।
सेइ श्लोक पड़ि' प्रलाप करिते लागिला॥ ३४ ॥

३४। प० अनु०—श्रीकृष्ण लीला में श्रीराधिका ने श्रीविशाखा सखी से जो पूछा था, श्रीमन्महाप्रभु उसी श्लोक का उच्चारण करके प्रलाप करने लगे।

श्रीराधा की कृष्ण के विरह में कृष्ण के विषय में जिज्ञासा (चित्रजल्प)—ललितमाधव (३.२५) में विशाखा के प्रति श्रीराधा की उक्ति—
क्व नन्दकुलचन्द्रमाः क्व शिखिचन्द्रकालंकृतिः
क्व मन्दमुरलीरवः क्व नु सुरेन्द्रनीलद्युतिः।
क्व रासरसताण्डवी क्व सखि जीवरक्षौषधि-
निधिर्म्मम सुहृत्तमः क्व वत हन्त हा धिग्विधिम्॥३५॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३५। हे सखि, वे नन्दकुल के चन्द्रमा कहाँ हैं? वे शिखिचन्द्र (मयूर-पुञ्छ) के द्वारा अलंकृत कृष्ण कहाँ हैं? वे मुरली की मन्द-मन्द ध्वनि करने वाले कृष्ण कहाँ हैं? इन्द्रनीलमणि की कान्ति वाले कृष्ण कहाँ हैं? रासरूपी रस (आनन्द) में नृत्य करने वाले वे कहाँ हैं? मेरी जीवन-रक्षा की औषधि (स्वरूप श्याम) कहाँ हैं? मेरी वह सुहृत्तम निधि कहाँ है? हाय! हाय! विधाता को धिक्कार है।

अनुभाष्य

३५। हे सखि, (विशाखे), नन्दकुलचन्द्रमाः (नन्दयति इति नन्दः क्षीरसिन्धुः इव तस्य कुले जातः चन्द्रमाः नन्दवंशशशधरः) क्व (कुत्र वर्त्तते)? शिखिचन्द्रकालंकृतिः (शिखिचन्द्रकं मयूरपिच्छकम्

अलंकृतिः भूषणं यस्य सः) क्व तिष्ठति? मन्दमुरलीरवः (मन्दः अनुच्चः अस्फुटः मुरलीरवः यस्य सः) क्व वर्त्तते? सुरेन्द्रनीलद्युतिः (सुरेन्द्र इव इन्द्रनीलमणिरिव नीला द्युतिः कान्तिः यस्य सः) क्व? रासरसताण्डवी (रासे क्रीड़ायां रसेन ताण्डवं नृत्यं यस्य सः) क्व? जीवरक्षौषधिः (जीवस्य जीवनस्य रक्षायैः परित्राणाय औषधिस्वरूपः यः सः) क्व? मम सुहृत्तमः (परम प्रियतमः) निधिः (सर्वसम्पत्प्रसूः) क्व? वत (खेदे) हा हन्त, विधिं (विधातारं) धिक्।

श्लोक का अर्थ; कृष्ण-विरह में विधुरा श्रीराधा का व्रजवासियों के जीवन स्वरूप श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन—[यथा रागः]

''व्रजेन्द्रकुल — दुग्धसिन्धु, कृष्ण — ताहे पूर्ण इन्दु,
जन्मि' कैला जगत् उजोर।
कान्त्यमृत जेबा पिये, निरन्तर पिया जिये,
व्रज-जनेर नयन-चकोर॥ ३६ ॥

३६। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

३६। ''व्रजेन्द्रकुल—क्षीर समुद्र के समान है, उसमें पूर्णचन्द्र रूपी कृष्ण ने उत्पन्न होकर जगत् को आलोकित किया है। व्रजवासियों के नयन रूपी चकोर उन कृष्ण की अङ्ग-कान्ति रूपी अमृत का निरन्तर पान करते हुए जीवन धारण करते हैं। उजोर,— आलोकित (उज्ज्वल)।

कृष्ण के दर्शन की तृष्णा में आर्त्त श्रीराधा—

सखि हे, कोथा कृष्ण, कराह दरशन।
क्षणेके जाहार मुख, ना देखिले फाटे बुक,
शीघ्र देखाह, ना रहे जीवन॥ ३७ ॥

३७। प० अनु०—''हे सखि! कृष्ण कहाँ हैं? मुझे उन श्रीकृष्ण के दर्शन कराओ। जिनका मुख क्षण मात्र के लिये भी नहीं देखने पर मेरा वक्षःस्थल फटने लगता है, मुझे शीघ्र ही उनके दर्शन कराओ, अन्यथा मैं जीवित नहीं रह पाऊँगी।

गोपीप्राणधन कृष्णचन्द्र—

एइ व्रजेर रमणी, कामार्कतप्त-कुमुदिनी,
निज-करामृत दिया दान।
प्रफुल्लित करे जेइ, काँहा मोर चन्द्र सेइ,
देखाह, सखि, राख मोर प्राण॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—''इस व्रज की रमणियाँ कामरूपी सूर्य से तापित कुमुदिनी की भाँति हैं। अपने हस्त कमल रूपी अमृत को प्रदान करके जो व्रजरमणियों को प्रफुल्लित करते हैं, वे मेरे (श्रीकृष्ण)चन्द्र कहाँ हैं? हे सखी! मुझे उनके दर्शन कराके मेरे प्राणों की रक्षा करो।

अमृतप्रवाह भाष्य

३८। काम रूपी सूर्य के द्वारा उत्तप्त कुमुदिनी रूपी व्रजरमणियों को अपना कर रूपी अमृत अर्थात् किरणामृत देकर।

अनुभाष्य

३८। गोपियों का काम—सूर्य की भाँति है; गोपियों का हृदय—कुमुदिनी के समान है; कृष्ण-काम-तापित गोपी-हृदय—सूर्य की किरण से तप्त कुमुदिनी स्वरूप है। 'निज'-शब्द का अर्थ कृष्ण का 'कर' अर्थात् किरण, अथवा हस्त, उस अमृत के समान किरण अथवा हाथ प्रदान करने वाले कृष्णचन्द्र (चन्द्र से उपमा युक्त कृष्ण)।

कृष्ण के विरह में कृष्ण के रूप का वर्णन—

काँहा से चूड़ार ठाम, शिखिपिञ्छेर उड़ान,
नव-मेघे जेन इन्द्रधनु।
पीताम्बर—तड़ित्द्युति, मुक्तामाला—बकपाँति,
नवाम्बुद जिनि' श्यामतनु॥ ३९ ॥

३९। प० अनु०—''मयूर के पंख से बने इन्द्रधनुष सदृश्य अत्यन्त सुन्दर चूड़े (मुकुट) को मस्तक पर धारण करने वाले नवमेघ स्वरूप कृष्ण कहाँ हैं? विद्युत जैसी कान्ति से युक्त पीत-अम्बर धारण करने वाले, बक-पंक्ति जैसी मुक्ता की माला को धारण करने वाले तथा नवमेघ की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले श्याम तनु धारी श्रीकृष्ण कहाँ हैं?

अनुभाष्य

३९। बकपाँति,—बक-पंक्ति अथवा श्रेणी।

एकबार जार नयने लागे, सदा तार हृदये जागे,
कृष्णतनु—जेन आम्र-आठा।
नारी-मने पशि' जाय, यत्ने नाहि बाहिराय,
तनु नहे,—सेयाकुलेर काँटा॥ ४० ॥

४०। प० अनु०—''श्रीकृष्ण की देह एकबार भी जिसके नेत्रों के समक्ष प्रकाशित हो जाती है, वह उस व्यक्ति के हृदय में सदा ही उदित रहती है। वास्तव में कृष्ण की देह आम के वृक्ष के चिपचिपे गोंद की भाँति है। श्रीकृष्ण की अत्यन्त सुशोभित देह नारियों के हृदय में ऐसी घुस जाती है कि अनेक प्रयास करने पर भी बाहर नहीं निकलती, मानो वह देह नहीं बल्कि सेयाकुल का काँटा हो।

अमृतप्रवाह भाष्य

४०। 'तनु नहे सेयाकुलेर काँटा',—कृष्ण के शरीर की सेयाकुल के काँटे के साथ तुलना की जा सकती है; इसका धर्म यह है कि उसके एकबार चुभने पर उसे छुड़ाना दुष्कर होता है।

अनुभाष्य

४०। आम्र-आठा,—आम वृक्ष की गोंद के एकबार कहीं लग जाने पर उसे छुड़ाना कठिन होता है; वह जिस स्थान पर लगती है, वहाँ पर क्षत (cut) लगने तक की सम्भावना होती है।

जिनिया तमाल-द्युति, इन्द्रनील-सम कान्ति,
से कान्तिते जगत् माताय।
शृङ्गार-रस-सार-छानि', ताते चन्द्र-ज्योत्सना सानि',
जानि' विधि निरमिला ताय॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—''तमाल की कान्ति को पराजित करने वाली इन्द्रनील के समान कान्ति जगत् को मतवाला बना सकती है, ऐसा जानकर विधि ने शृङ्गार-रस के सार को छानकर, उसमें चन्द्र की ज्योत्सना को मिलाकर श्रीकृष्ण को निर्मित किया अर्थात् बनाया है।

अमृतप्रवाह भाष्य

४१। 'छानि',—छानकर ; सानि—मिलाकर।

कृष्ण कान्ति का वर्णन—

काँहा से मुरलीध्वनि, नवाम्बुद-गर्जित जिनि',
जगत् आकर्षे श्रवणे जाहार।
उठि' धाय व्रज-जन, तृषित चातकगण,
आसि' पिये कान्त्यमृत-धार॥ ४२ ॥

४२। प० अनु०—''वह मुरली की ध्वनि कहाँ है, जो नवमेघ की गर्जन को भी तिरस्कृत कर देती है, जिसे सुनकर जगत् के समस्त प्राणी आकर्षित हो जाते हैं, जिसे सुनकर व्रज के वासी उठकर दौड़ना आरम्भ कर देते हैं, और उनके निकट पहुँचकर प्यासे चातक के समान (अपने नेत्रों से) कृष्ण की कान्त्यमृत-धारा का पान करते हैं।

अनुभाष्य

४२। नवाम्बुद,—नवीन मेघ।

मोर सेइ कलानिधि, प्राणरक्षा-महौषधि,
सखि, मोर तेंहो सुहृत्तम।
देह जीये ताँहा बिने, धिक् एइ जीवने,
विधि करे एत विड़म्बन!!'' ४३ ॥

४३। प० अनु०— ''हे सखि! मेरे लिए यद्यपि कृष्ण कला के निधि (भण्डार) हैं, मेरे प्राणों की रक्षा के लिये महान् औषधि स्वरूप हैं, वे मेरे सबसे अधिक सुहृत हैं, तथापि मेरी देह उनके बिना जीवित है, मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है! विधि मेरी इतनी अधिक विडम्बना कर रही है।''

अमृतप्रवाह भाष्य

४३। देह जीये ताहा बिने,—उन्हें छोड़कर देह जो अब तक जीवित है।

अनुभाष्य

४३। कलानिधि,—चौंसठ कलाओं के आधार; पक्षान्तर में,—सोलह कलाओं से पूर्ण; विड़म्बन,—छलना, प्रतारणा।

विधि की निन्दा—

'जे-जन जीते नाहि चाय, तारे केने जीयाय',
विधिप्रति उठे क्रोध-शोक।
विधिरे करे भर्त्सन, कृष्णे देन ओलाहन,
पड़ि' भागवतेर एक श्लोक॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—'जो व्यक्ति जीवित नहीं रहना चाहता, उसे क्यों जीवित रखती है?' ऐसा विचार करके राधा भाव में विभावित श्रीमन्महाप्रभु का विधि के प्रति क्रोध तथा अपनी अवस्था पर शोक उत्पन्न होता है। श्रीमन्महाप्रभु विधि की भर्त्सना करते हैं, श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करके श्रीकृष्ण को उलाहना देते हैं—।

कृष्ण-विरह-संघटक विधि की निन्दा—श्रीमद्भागवत (१०.३९.१९) में—

अहो विधातस्तव न कचिद्दया
संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं
विचेष्टितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा॥ ४५ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

४५। हे विधातः, तुममें दया नहीं है! तुम मैत्री और प्रणय के द्वारा देही गणों को मिलाकर उनकी अकृतार्थ (अतृप्त) अवस्था में ही उन्हें पुनः पृथक् कर देते हो। तुम्हारी ऐसी चेष्टाओं को बालक की चेष्टा की भाँति ही कहना पड़ेगा।

अनुभाष्य

४५। कृष्ण के चरणों में अपने प्राण समर्पित करने वाली कृष्ण की वल्लभाओं व्रजगोपियों ने जब सुना कि श्रीअक्रूर राम और कृष्ण को मथुरा ले जाने के लिए ही व्रज में आये हैं, तब वे कृष्ण के भावी-विरह की आशङ्का से अत्यधिक शोक से कातर होकर क्रन्दन और विलाप कर रही हैं—

अहो (खेदे) विधातः, तव क्वचित् दया न (अस्तिः, यतः) मैत्र्या (हिताचरणेन) प्रणयेन (स्नेहेन) देहिनः (शरीरधारिणः जीवस्य अन्योऽन्यान्) संयोज्य अकृतार्थान् (अप्राप्तभोगान् अपि) तान् च वियुनङ्क्षि (वियोगं विघटयसि); ते (तव) विचेष्टितं (कर्म) अर्भक-चेष्टितं (मोट्यात्बालकेहितं) यथा (तथा) अपार्थकं (हेतुरहितम्)।

श्लोकार्थ ; चित्रजल्पोक्ति—[यथा रागः]

''ना जानिस् प्रेम-मर्म, व्यर्थ करिस् परिश्रम,
तोर-चेष्टा—बालक-समान।
तोर यदि लाग् पाइये, तबे तोरे शिक्षा दिये,
एमन जेन ना करिस् विधान॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०— ''हे विधि! तुम प्रेम के मर्म को नहीं जानती हो। व्यर्थ में ही सृष्टि-कार्य आदि करती हो। तुम्हारी चेष्टा वास्तव में बालक की भाँति है। यदि मुझे तुम्हारा ठिकाना पता चल जाये अथवा यदि तुम मेरे हाथ लग जाओ, तब मैं तुम्हें शिक्षा प्रदान करके बतलाऊँ कि तुम ऐसा विधान मत किया करो।

अनुभाष्य

४६। परिश्रम,—सृष्टि-कार्य आदि।

अरे विधि, तुइ बड़इ निष्ठुर।
अन्योऽन्य दुर्लभ जन, प्रेमे कराञा सम्मिलन,
'अकृतार्थान्' केने करिस् दूर?? ४७ ॥

४७। प० अनु०— ''हे विधि! तुम बहुत ही निष्ठुर भी हो! इसके पश्चात् अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

४७। जिनका परस्पर मिलन दुर्लभ है, प्रेम के द्वारा उनका मिलन कराके, मिलन कराने का जो तात्पर्य है, उसके पूर्ण नहीं होने से पहले ही पुनः उनको एक-दूसरे

से क्यों दूर कर देती हो?

अरे विधि अकरुण, देखाञा कृष्णानन,
नेत्र-मन लोभाइला मोर।
क्षणेके करिते पान, काड़ि' निला अन्यस्थान,
पाप कैलि 'दत्त-अपहार'॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०— "हे अकरुण (निष्ठुर) विधि! तुमने मुझे कृष्ण का मुख दर्शन कराके मेरे नेत्रों तथा मन को उनके प्रति लोभित करा दिया। अभी मैंने क्षण मात्र ही उनके कान्त्यमृत का पान किया था कि तुम उन्हें मुझसे दूर करके अन्य किसी स्थान पर ले गयी। तुमने वास्तव में दत्त-अपहार रूपी पाप अर्थात् दान देकर उसे पुनः लौटा लेने का पाप किया है।

अनुभाष्य

४८। 'दत्त-अपहार',—कोई द्रव्य किसी को देकर पुनः उसे ले लेने से दत्तापहार होता है; यह प्रायश्चित योग्य पाप में से ही एक है।

'अक्रूर करे तोर दोष, आमाय केने कर रोष',
इहा यदि कह 'दुराचार'।
तुइ अक्रूर-मूर्त्ति धरि', कृष्ण निलि चुरि करि',
अन्येर नहे ऐछे व्यवहार॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०— "हे दुराचारी विधि! यदि तुम कहो कि 'अक्रूर ने तुम्हारे प्रति दोष किया है, तब तुम मेरे प्रति क्यों रोष कर रही हो?' तो मेरा कहना है कि तुम ही अक्रूर का रूप धारण करके कृष्ण को चुराकर ले गयी हो, अन्यथा अन्य कोई ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता।

अमृतप्रवाह भाष्य

४९। ओहे दुराचार विधे, तुम यदि कहो कि, 'अक्रूर ने दोष किया है, मेरे प्रति क्यों क्रोध कर रही हो?' तब मैं कहती हूँ।

अपने दूरदृष्ट (भाग्य) को धिक्कार (चित्रजल्प)—

आपनार कर्म-दोष, तोरे किबा करि रोष,
तोर आमार सम्बन्ध विदूर।
जे—आमार प्राणनाथ, एकत्र रहि जाँर साथ,
सेइ कृष्ण हइला निष्ठुर!! ५० ॥

५०। प० अनु०— "हे विधि! वास्तव में यह मेरे अपने ही कर्मों का दोष है, तब फिर मैं तुम्हारे प्रति रोष क्यों करूँ, तुम्हारा और मेरा तो बहुत दूर का सम्बन्ध है। जो मेरे प्राणनाथ हैं, मैं जिनके साथ में ही रहती थी, वे कृष्ण ही तो मेरे प्रति निष्ठुर हो गये हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

५०। विदूर,—अत्यधिक दूर।

कृष्ण के प्रति प्रणयरोषपूर्वक दोषारोपण—

सब त्यजि' भजि जाँरे, सेइ आपना-हाते मारे,
नारीवधे कृष्णेर नाहि भय।
ताँर लागि' आमि मरि, उलटि' ना चाहे हरि,
क्षणमात्रे भाङ्गिल प्रणय॥ ५१ ॥

५१। प० अनु०— "मैं सबकुछ त्यागकर जिनका भजन (सेवा) करती हूँ, वही अपने हाथों से मेरा वध कर रहे हैं, वास्तव में कृष्ण को नारियों का वध करने में कोई भय नहीं है। मैं, श्रीकृष्ण के लिये मरी जा रही हूँ और श्रीकृष्ण एकबार मुड़कर मेरी ओर देखते तक भी नहीं हैं। उन्होंने क्षणमात्र में ही प्रेम के बन्धन को तोड़ दिया।

पुनः अपने भाग्य को धिक्कार—

कृष्णे केने करि रोष, आपन दुर्दैव-दोष,
पाकिल मोर एइ पापफल।
जे कृष्ण—मोर प्रेमाधीन, तारे कैल उदासीन,
एइ मोर अभाग्य प्रबल॥" ५२ ॥

५२। प० अनु०— "मैं कृष्ण के प्रति भी रोष क्यों करूँ? वास्तव में यह मेरे अपने ही दुर्दैव (दुर्भाग्य) का दोष है। मेरे द्वारा किये गये पापों का फल ही पककर मेरे सामने है। जो कृष्ण मेरे प्रेम के अधीन थे, मेरे पापों के फल ने ही पककर उन्हें मेरे प्रति उदासीन बना दिया है।

मेरा यह अभाग्य (दुर्भाग्य) ही प्रबल है।''

गोपीभाव में दिव्योन्मादग्रस्त प्रभु–

एइमत गौर-राय, विषादे करे हाय हाय,
''हा हा कृष्ण, तुमि गेला कति?''
गोपीभाव हृदये, तार वाक्य विलापये,
'गोविन्द दामोदर माधवेति॥' ५३ ॥

५३। प० अनु०— श्रीगौरराय इस प्रकार विषाद में हाय-हाय करते हुए कहा—''हे कृष्ण! आप कहाँ चले गये?'' श्रीगौरराय के हृदय में गोपी भाव प्रबल रूप में उदित हुआ तथा वे गोपियों के भाव में ही विलाप करते हुए 'गोविन्द, दामोदर, माधवेति' इत्यादि का उच्चस्वर से उच्चारण करने लगे।

भाव के उपयोगी गान के द्वारा प्रभु को स्वरूप का आश्वासन–

तबे स्वरूप-रामराय, करि' नाना उपाय,
महाप्रभुर करे आश्वासन।
गायेन मङ्गल-गीत, प्रभुर फिराइला चित्त,
प्रभुर किछु स्थिर हैल मन॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०— तब श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय ने अनेक प्रकार के उपायों से श्रीमन्महाप्रभु को आश्वासन प्रदान किया तथा कवि जयदेव गोस्वामी द्वारा रचित मङ्गल-गीत का गायन करके श्रीमन्महाप्रभु के चित्त को अन्य ओर लगा दिया जिससे श्रीमन्महाप्रभु का मन कुछ स्थिर हो गया।

गम्भीरा में प्रभु का शयन–

एइमत प्रलापिते अर्द्धरात्रि गेल।
गम्भीराते स्वरूप-गोसाञि प्रभुरे शोयाइल॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०— इस प्रकार प्रलाप करते हुए श्रीमन्महाप्रभु की आधी रात व्यतीत हो गयी। श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी ने श्रीमन्महाप्रभु को गम्भीरा में सुला दिया।

प्रभुरे शोयाञा रामानन्द गेला घरे।
स्वरूप, गोविन्द शुइला गम्भीरार द्वारे॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु को सुलाकर श्रीरायरामानन्द प्रभु अपने घर लौट गये तथा श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीगोविन्द प्रभु गम्भीरा के द्वार पर ही सो गये।

नाम-कीर्त्तन में रात्रि व्यतीत–

प्रेमावेशे महाप्रभुर गर-गर मन।
नामसङ्कीर्त्तन करि' करेन जागरण॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु का मन प्रेम के आवेश में धक-धक कर रहा था, वे नाम-सङ्कीर्त्तन करते हुए जागरण करने लगे।

प्रभु का मुख घर्षण रूपी दिव्योन्माद (उद्घूर्णा)–

विरहे व्याकुल प्रभु उद्वेगे उठिला।
गम्भीरार भित्ये मुख घषिते लागिला॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०— विरह में व्याकुल श्रीमन्महाप्रभु उद्वेग में उठ खड़े हुए तथा गम्भीरा की दीवारों पर अपने मुख को घिसने लगे।

मुखे, गण्डे, नाके क्षत हइल अपार।
भावावेशे ना जानेन प्रभु, पड़े रक्तधार॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु के मुख, कपोल तथा नाक पर अनेक चोटें लग गयी तथा उनसे रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी किन्तु उन्हें भावावेश के कारण इसका अनुभव तक ही नहीं हुआ।

सर्वरात्रि करेन भावे मुख संघर्षण।
गों-गों-शब्द करेन,—स्वरूप शुनिला तखन॥ ६०॥

६०। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु पूरी रात भाव में आविष्ट होकर अपने मुख का दीवार के साथ संघर्षण करते रहे, जब वे अपने मुख से गो-गो (अर्थात् गोविन्द शब्द का पूर्ण उच्चारण नहीं कर पाकर केवल गो-गो)

शब्द का उच्चारण कर रहे थे, तब श्रीस्वरूप दामोदर ने उनके द्वारा उच्चारित शब्द को सुना।

दीप ज्वालि' घरे गेला, देखि' प्रभुर मुख।
स्वरूप, गोविन्द दुँहार हैल बड़ दुःख॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०— श्रीस्वरूप दामोदर दीपक जलाकर श्रीगोविन्द प्रभु सहित गम्भीरा के भीतर गये तथा श्रीमन्महाप्रभु के मुख की अवस्था को देखकर उन दोनों को बहुत दुःख हुआ।

स्वरूप के द्वारा प्रभु की अवस्था के विषय में जिज्ञासा, प्रभु का उत्तर—

प्रभुरे शय्याते आनि' शयन कराइला।
''काँहे कैला एइ तुमि?''—स्वरूप पुछिला॥ ६२॥

६२। प० अनु०— श्रीस्वरूप दामोदर ने श्रीमन्महाप्रभु को शय्या पर लाकर शयन कराया तथा उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु से पूछा—''आपने ऐसा क्यों किया?''

प्रभु कहेन,—''उद्वेगे घरे ना पारि रहिते।
द्वार चाहि' फिरि' शीघ्र बाहिर हइते॥ ६३ ॥
द्वार नाहि' पाञा मुख लागे चारिभिते।
क्षत हय, रक्त पड़े, ना पाइ जाइते॥'' ६४ ॥

६३-६४। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु ने कहा,—''मैं उद्वेग के कारण घर के भीतर नहीं रह पा रहा था। मैं शीघ्र ही बाहर जाने के लिये द्वार को ढूँढ़ने लगा, मैं इधर-उधर घूमता रहा। किन्तु अन्धकार के कारण द्वार को नहीं ढूँढ़ पाया तथा मेरा मुख बीच-बीच में चारों ओर की दीवारों से टकराता रहा, जिससे मेरे मुख, नाक आदि पर चोट लग गयी, रक्त प्रवाहित होने लगा किन्तु मैं बाहर नहीं निकल पाया।''

प्रभु के दिव्योन्माद के लक्षण—

उन्माद-दशाय प्रभुर स्थिर नहे मन।
जेइ करे, जेइ बोले,—उन्माद-लक्षण॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०— उन्माद-ग्रस्त अवस्था के कारण श्रीमन्महाप्रभु का मन स्थिर नहीं था। वे जो भी करते थे, जो भी बोलते थे,—सब उन्माद के लक्षण होते थे।

भक्तों के साथ परामर्श करने के बाद स्वरूप का प्रभु के चरणकमलों के उपाधान (तकिये) के रूप में शङ्कर-पण्डित का निर्वाचन—

स्वरूप-गोसाञि तबे चिन्ता पाइला मने।
भक्तगण लञा विचार कैला आर दिने॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०— श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु की ऐसी अवस्था को देखकर मन-ही-मन में चिन्तित हो गये तथा अगले दिन उन्होंने भक्तों के साथ बैठकर विचार किया।

सब भक्त मेलि' तबे प्रभुरे साधिल।
शङ्कर-पण्डिते प्रभुर सङ्गे शोयाइल॥ ६७ ॥

६७। प० अनु०— सभी भक्तों ने मिलकर श्रीमन्महाप्रभु के विषय में विचार-विमर्श करके श्रीशङ्कर पण्डित को उनके साथ सुलाना प्रारम्भ कराया।

प्रभु-पादतले शङ्कर करेन शयन।
प्रभु ताँर उपर करेन पाद-प्रसारण॥ ६८ ॥

६८। प० अनु०— श्रीशङ्कर पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के चरणों के नीचे शयन करते थे तथा श्रीमन्महाप्रभु अपने चरणों को उनके ऊपर पसार देते थे।

द्वापरयुग के विदुर की भाँति शङ्कर के द्वारा भगवान् की सेवा—

'प्रभु-पादोपाधान' बलि' ताँर नाम हइल।
पूर्वे विदुरे जेन श्रीशुक वर्णिल॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०— श्रीशङ्कर पण्डित का नाम 'प्रभु-पादोपाधान अर्थात् श्रीमन्महाप्रभु के चरणों का तकिया' पड़ गया। श्रीमद्भागवत में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने श्रीविदुर का भी श्रीकृष्ण के पादोपाधान के रूप में

वर्णन किया है।

कृष्ण के चरणों के उपाधान (तकिये) रूपी विदुर के प्रति मैत्रेय का कीर्त्तन—श्रीमद्भागवत (३.१३.५) में —

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं
सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपाधानम्।
प्रहृष्टरोमा भगवत् कथायां
प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट॥ ७० ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

७०। सहस्रशीर्षपुरुष—कृष्ण के चरणों के उपाधान (तकिये) स्वरूप विनीत विदुर जब यह बात पूछ रहे थे, तब मैत्रेयमुनि भगवत्कथा में आनन्दवशतः रोमाञ्चित होकर कहने लगे।

अनुभाष्य

७०। महाभागवत मैत्रेय-ऋषि से महात्मा विदुर द्वारा हरिभक्तों में श्रेष्ठ स्वायम्भुव मनु और शतरूपा के कार्य-कलापों की जिज्ञासा करने पर, उसके उत्तर में मैत्रेय के द्वारा कीर्तित हरिकथा का श्रीशुकदेव परीक्षित के समक्ष वर्णन कर रहे हैं—

(श्रीशुक उवाच—) भगवत्कथायां (श्रीहरिगुणानुवर्णने) प्रणीयमानः (विदुरेण प्रवर्त्तमानः) प्रहृष्टरोमा (प्रहृष्टानि रोमाणि यस्य सः) मुनिः (मैत्रेयः) इति ब्रुवाणं पृच्छन्तं सहस्रशीर्ष्णः (सहस्र शीर्षा श्रीकृष्णः तस्य) चरणोपाधानं (चरणौ उपाधीयेते यस्मिन् तं—श्रीकृष्णः प्रीत्या यस्योत्सङ्गे चरणौ प्रसारयतीत्यर्थः) विनीतं (विनयान्वितम्) विदुरं अभ्यचष्ट (अभ्यभाषत)।

भगवान् श्रीकृष्ण विदुर के घर में आकर उनकी गोद में अपने चरणयुगल रखकर सोये थे, ऐसा कहा जाता है (सारार्थदर्शिनी टीका द्रष्टव्य)।

शङ्कर के द्वारा प्रभु की सेवा—

शङ्कर करेन प्रभुर पाद-सम्वाहन।
घुमाञा पड़ेन, तैछे करेन शयन॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०— श्रीशङ्कर पण्डित श्रीमन्महाप्रभु के चरणों का सम्वाहन करते थे तथा जब श्रीमन्महाप्रभु को नींद आ जाती तब श्रीशङ्कर पण्डित जिस अवस्था में होते उसी अवस्था में अर्थात् श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को अपनी गोद में लिये-लिये ही सो जाते।

उघाड़-अङ्गे पड़िया शङ्कर निद्रा जाय।
प्रभु उठि' आपन-काँथा ताहारे जड़ाय॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०— श्रीशङ्कर पण्डित अपने शरीर पर बिना कोई चादर लिये ही सो जाते तथा बाद में जब श्रीमन्महाप्रभु जागते और देखते कि शङ्कर पण्डित तो ऐसे ही सो गया तब श्रीमन्महाप्रभु अपने काँथे (पुराने फटे हुए वस्त्रों को सिलकर बनाये गये कम्बल) को ही उनपर डाल देते।

अमृतप्रवाह भाष्य

७२। उघाड़-अङ्गे,—बिना-ढ़के शरीर पर।

निरन्तर घुमाय शङ्कर शीघ्र-चेतन।
बसि' पाद चापि' करे रात्रि-जागरण॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०— श्रीशङ्कर पण्डित प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभु के साथ गम्भीरा में ही सोते, उनकी नींद बहुत ही कच्ची थी, थोड़ा-सा शब्द करने पर शीघ्र ही उठ जाते थे तथा फिर से बैठकर श्रीमन्महाप्रभु के चरणों को दबाते हुए पूरी रात बिता देते।

उसकी उपस्थिति के कारण प्रभु के उन्माद का विराम (शान्त होना)—

ताँर भये नारेन प्रभु बाहिरे जाइते।
ताँर भये नारेन भित्ये मुखाब्ज घषिते॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु श्रीशङ्कर पण्डित के भय से गम्भीरा से बाहर नहीं जा पाते थे तथा उनके भय से गम्भीरा की दीवारों से अपने मुख कमल को भी रगड़ नहीं पाते थे।

श्रीरघुनाथ के द्वारा स्वरचित ग्रन्थ में प्रभु की दिव्योन्माद दशा

का वर्णन–

एइ लीला महाप्रभुर रघुनाथ-दास।
चैतन्यस्तवकल्पवृक्षे कैराछेन प्रकाश॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की उपरोक्त लीला को श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी ने स्वरचित श्रीचैतन्यकल्पवृक्ष में प्रकाशित किया है।

कृष्ण के विरह में प्रलापोन्मादमय प्रभु–
(स्तावली में चैतन्यस्तव कल्पवृक्ष- स्तव का छटा श्लोक)

स्वकीयस्य प्राणार्बुदसदृश-गोष्ठस्य विरहात्
प्रलापानुन्मादात् सततमति कुर्वन् विकलधीः।
दधद्भित्तौ शश्वद्वदनविधुघर्षेण रुधिरं
क्षतोत्थं गौराङ्गो हृदय उदयन्मां मदयति॥ ७६ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

७६। अपने असंख्य प्राणों के समान व्रज के विरह में प्रलाप रूपी उन्माद के उत्पन्न होने पर सदैव उस चेष्टा के अधिक वर्धित होने पर विकल बुद्धि जो गौरचन्द्र प्रतिदिन अपने मुखचन्द्र को दीवार में घिसकर चोट से निकले रक्त को धारण करते थे, ऐसे गौराङ्गदेव मेरे हृदय में उदित होकर मुझे उन्मादित कर रहे हैं।

अनुभाष्य

७६। स्वकीयस्य (आत्मनः) प्राणार्बुदसदृश-गोष्ठस्य (प्राणार्बुदसदृशस्य असंख्यप्राणतुल्यस्य गोष्ठस्य व्रजस्य) विरहात् उन्मादात् (दिव्योन्मादात् हेतोः) सततं (निरन्तरम्) अतिप्रलापान् कुर्वन् विकलधीः (व्यग्रमतिः सन्) भित्तौ शश्वत् (निरन्तरं) वदन-विधुघर्षेण (मुखचन्द्र सङ्घर्षणेन) क्षतोथ्यं रुधिरं दधत् (धारयन्) गौराङ्गः हृदये उदयन् मां मदयति।

विप्रलम्भ प्रेमरस के आस्वादक प्रभु की भावावेश में निमग्न दशा–

एइमत महाप्रभु रात्रि दिवसे।
प्रेमसिन्धु-मग्न रहे, कभु डुबे, भासे॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु रात-दिन प्रेम के सिन्धु में निमग्न रहते थे। कभी तो वे सम्पूर्ण रूप से उस में डूब जाते थे तथा कभी उस में हिल्लोरें लेने लगते थे।

एकदिन जगन्नाथ वल्लभ उद्यान में प्रभु के महाभाव के आवेश में दस प्रकार के चित्र-जल्प का वर्णन–

एककाले वैशाखेर पौर्णमासी-दिने।
रात्रिकाले महाप्रभु चलिला उद्याने॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—एक समय वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन, रात्रि के समय श्रीमन्महाप्रभु उद्यान की ओर चल दिये।

'जगन्नाथवल्लभ' नाम उद्यान-प्रधाने।
प्रवेश करिला प्रभु लञा भक्तगणे॥ ७९ ॥

७९। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तों को साथ लेकर जगन्नाथ-वल्लभ नामक प्रधान उद्यान में प्रवेश कर गये।

प्रफुल्लित वृक्ष-वल्ली,—जेन वृन्दावन।
शुक, शारी, पिक, भृङ्ग करे आलापन॥ ८० ॥

८०। प० अनु०—उस जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान में वृक्ष-लताएँ ऐसे प्रफुल्लित हो रही थी, मानो वह वृन्दावन हो। वहाँ पर तोता, मैना, मयूर तथा भँवरे इत्यादि गुञ्जार कर रहे थे।

पुष्पगन्ध लञा बहे मलय-पवन।
'गुरु' हञा तरुलताय शिखाय नाचन॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—मलय-पवन जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान के पुष्पों की सुगन्ध को वहन करके प्रवाहित हो रही थी तथा वह गुरु बनकर वृक्ष-लताओं को नृत्य की शिक्षा प्रदान कर रही थी।

अनुभाष्य

८१। मलय पवन स्वयं पुष्पों की गन्ध को वहन करके पुनः नटन-गुरु (नृत्य के शिक्षक) के रूप में

वृक्ष-लताओं को नृत्य की शिक्षा प्रदान कर रही थी।

पूर्णचन्द्र-चन्द्रिकाय परम उज्ज्वल।
तरु-लतादि ज्योत्स्नाय करे झलमल॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान पूर्ण चन्द्र की चन्द्रिका से परम-उज्ज्वल प्रतीत हो रहा था तथा वृक्ष-लताएँ चन्द्र की चन्द्रिका (चाँदनी) से झलमल कर रही थी।

छय ऋतुगण जाँहा बसन्त प्रधान।
देखि' आनन्दित हैला गौर भगवान्॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान में छह ऋतुओं के विद्यमान होने पर भी बसन्त ही प्रधान था, उस उद्यान को देखकर भगवान् श्रीगौरसुन्दर अत्यन्त आनन्दित हुए।

''ललित लवङ्गलता'' पद गाओयाञा।
नृत्य करि' बुलेन प्रभु निजगण लञा॥ ८४ ॥

८४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु 'ललित लवङ्गलता' पद का गान कराके नृत्य करते हुए अपने परिकरों सहित जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान में भ्रमण करने लगे।

प्रतिवृक्षवल्ली ऐछे भ्रमिते भ्रमिते।
अशोकेर तले कृष्णे देखेन आचम्बिते॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—इस प्रकार प्रत्येक वृक्ष तथा लता के निकट भ्रमण करते-करते श्रीमन्महाप्रभु ने अचानक एक अशोक वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण को देखा।

कृष्ण देखि' महाप्रभु धाञा चलिला।
आगे देखि' हासि' कृष्ण अन्तर्द्धान हइला॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—श्रीकृष्ण को देखकर श्रीमन्महाप्रभु दौड़कर उस ओर चल दिये तथा श्रीकृष्ण श्रीमन्महाप्रभु को आगे आते देखकर हँसते हुए अन्तर्ध्यान हो गये।

आगे पाइला कृष्णे, ताँरे पुनः हाराञा।
भूमेते पड़िला प्रभु मूर्च्छित हञा॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—पहले तो श्रीकृष्ण को पाकर तथा बाद में उन्हें पुनः गँवाने के कारण श्रीमन्महाप्रभु मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े।

कृष्णेर श्रीअङ्गगन्धे भरिछे उद्याने।
सेइ गन्ध पाञा प्रभु हैला अचेतने॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—जगन्नाथ-वल्लभ उद्यान श्रीकृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध से भर गया था, उस सुगन्ध को पाकर ही श्रीमन्महाप्रभु अचेतन हो गये।

निरन्तर नासाय पशे कृष्ण-परिमल।
गन्ध आस्वादिते प्रभु हइला पागल॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के नाक में निरन्तर श्रीकृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध प्रविष्ट हो रही थी, जिसका आस्वादन करके श्रीमन्महाप्रभु पागल हो उठे।

प्रभु का चित्रजल्प—

कृष्णगन्ध-लुब्धा राधा सखीरे जे कहिला।
सेइ श्लोक पड़ि' प्रभु अर्थ करिला॥ ९० ॥

९०। प० अनु०—श्रीकृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध से लुब्ध श्रीराधा रानी ने अपनी सखी से जो कहा था, श्रीमन्महाप्रभु ने उसी श्लोक का उच्चारण करके उसका अर्थ बतलाया।

कृष्णगन्ध से आकृष्ट श्रीराधा की उक्ति—गोविन्दलीलामृत (८.६) में विशाखा के प्रति श्रीराधिका के वचन—

कुरङ्गमदजिद्वपुः परिमलोर्मिकृष्टाङ्गनः
स्वकाङ्गनलिनाष्टके शशियुताब्जगन्धप्रथः।
मदेन्दुवरचन्दनागुरुसुगन्धिचर्चार्चितः
स मे मदनमोहनः सखि तनोति नासास्पृहाम्॥ ९१॥

अमृतप्रवाह भाष्य

९१। जो मृग के मद को भी जीतने वाली अपनी देह

की गन्ध के प्रवाह के द्वारा स्त्रियों के चित्त को आकर्षित करते हैं, जो अपने आठ अङ्गों में आठ कमल से युक्त एवं कर्पूर से युक्त कमल की गन्ध का प्रचार (विस्तार) करते हैं, एवं जो—मृगनाभि-कर्पूर- चन्दन-अगुरु की सुगन्ध के द्वारा चर्चित हैं, हे सखि, वह मदनमोहन मेरी नाक की स्पृहा का विस्तार कर रहे हैं।

अनुभाष्य

९१। हे सखि, कुरङ्गमदजिद्वपुः परिमलोर्मिकृष्टाङ्गनः (मृगमदकस्तूरिकाविजयिनः वपुषः अङ्गस्य सुगन्ध-प्रवाहेण कृष्टा आकृष्टा अङ्गना व्रजाङ्गना येन सः) स्वकाङ्ग-नलिनाष्टके (स्वकानां अङ्ग-नलिनानां निजाङ्गपद्मनाम् अष्टके मुखनाभिनेत्रद्वयकरद्वयपद युगकमलाष्टके) शशियुताब्जगन्धप्रथः (कर्पूरयुतस्य पद्मगन्धस्य प्रथा विस्तारो यस्मिन् सः) मदेन्दुवरचन्दना-गुरुसुगन्धचर्चार्चितः (कस्तूरीकर्पूरशुभ्रचन्दनानां सुगन्धचर्चाभिः अर्चितः विलेपितः सः) मदन मोहनः मे (मम) नासास्पृहां तनोति (वर्द्धयति)।

[श्रीमन्महाप्रभु द्वारा] श्लोकार्थ ; कृष्णाङ्गगन्ध के माधुर्य के बल का वर्णन—[यथा रागः]

''कस्तूरिका-नीलोत्पल, तार' जेइ परिमल,
ताहा जिनि' कृष्ण-अङ्ग-गन्ध।
व्यापे चौद्द-भुवने, करे सर्व आकर्षणे,
नारिगणेर आँखि करे अन्ध॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०— ''कस्तूरी तथा नीलकमल की जो सुगन्ध होती है, श्रीकृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध उसे भी पराजित कर देती है। श्रीकृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध चतुर्दश-भुवन में व्याप्त हो जाती है तथा सभी को अपनी ओर आकर्षित करती है एवं वह सुगन्ध स्त्रियों के नेत्रों को तो मदान्ध बना देती है।

गोपियों को वश में करने वाली कृष्ण की अङ्ग-गन्ध—

सखि हे, कृष्णगन्ध जगत् माताय।
नारीर नासाते पशे, सर्वकाल ताँहा बसे,
कृष्णपाश धरि' लञा जाय॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—''हे सखि, श्रीकृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध जगत् को मतवाला बना देती है। वह सुगन्ध स्त्रियों के नाक में प्रविष्ट करके सर्वदा वहीं वास करती है तथा उन्हें पकड़कर श्रीकृष्ण के निकट ले जाती है।

कमल जैसे कृष्ण के अङ्गों की गन्ध के माधुर्य का वर्णन—

नेत्र,नाभि, वदन, कर-युग-चरण,
एइ अष्टपद्म कृष्ण-अङ्गे।
कर्पूर-लिप्त कमल, तार जैछे परिमल,
सेइ गन्ध अष्टपद्म-सङ्गे॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—''श्रीकृष्ण की देह में दो नेत्र, एक नाभि, एक मुख, दो हाथ तथा दो चरण—कुल मिलाकर आठ कमल हैं। कर्पूर से लिप्त कमल की जैसी सुगन्ध होती है, वही सुगन्ध श्रीकृष्ण की देह में विद्यमान आठ कमलों में है।

अनुभाष्य

९४। दो चक्षु, नाभि, मुख, दो हाथ, दो पद,—यह आठ अङ्ग।

हेम-कीलित चन्दन, ताहा करि' घर्षण,
ताहे अगुरु, कुंकुम, कस्तुरी।
कर्पूर-सने चर्चा अङ्गे, पूर्व अङ्गेर गन्ध सङ्गे,
मिलि' तारे जेन कैल चुरि॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—''स्वर्ण-जड़ित चन्दन को घिस कर तथा उसमें अगुरु, कुंकुम, कस्तूरी और कर्पूर को मिलाकर श्रीकृष्ण के अङ्गों पर की गयी चित्रकारी की सुगन्ध श्रीकृष्ण के अङ्गों की पहले वाली गन्ध अर्थात् अष्ट कमलों की सुगन्ध के साथ मिलने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो, चित्रकारी वाली सुगन्ध ने श्रीकृष्ण के अङ्गों की गन्ध को आच्छादित कर दिया है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९५। हेमकीलित,—स्वर्ण से जड़ित; चुरि,—गोपन, (आच्छादन)।

अनुभाष्य

९५। चर्चा,—लेपन; पाठान्तर में, 'मिलि डाका जेन कैल चुरि' और 'कामदेवेर मन कैल चुरि'।

गोपियों के चित्त को उन्मादित करने वाली कृष्ण के अङ्गों की गन्ध—

हरे नारीर तनुमन, नासा करे घूर्णन,
खसाय नीवि, छुटाय केशबन्ध।
करिया आगे बाउरी, नाचाय जगत्-नारी,
हेन डाकातिया कृष्णाङ्गगन्ध॥ ९६ ॥

९६। प० अनु०—"श्रीकृष्ण के देह की सुगन्ध नारियों के तन तथा मन का हरण कर लेती है। नारियों की नाक इधर-उधर घूमने लगती है। वह सुगन्ध नारियों के नीवि (नाड़े) के बन्धन को ढ़ीला कर देती है, उनके केशों के बन्धन को खुलवा देती है। वह सुगन्ध जगत् की नारियों को बावरी (उन्मत्त) बनाकर उन्हें नचाती है। वह सुगन्ध ऐसी डकैत है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९६। बाउरी,—उन्मत्त।

कृष्णाङ्ग-गन्ध के आस्वादन के लिये आर्त्त गोपियों का चित्त—

सेइ गन्धवश नासा, सदा करे गन्धेर आशा,
कभु पाय, कभु नाहि पाय।
पाइले पिया पेट भरे, पिओ पिओ तबु करे,
ना पाइले तृष्णाय मरि' जाय॥ ९७ ॥

९७। प० अनु०—"श्रीकृष्ण के अङ्गों की उसी सुगन्ध के वशीभूत होकर नाक सदैव उसी सुगन्ध की आशा करती है किन्तु कभी तो उसे वह सुगन्ध प्राप्त होती है तथा कभी नहीं। यदि सुगन्ध मिल जाती है तब तो नाक पेट भरकर उसे पी लेती है तथा पिओ-पिओ और पिओ करती है एवं सुगन्ध के नहीं मिलने पर नाक तृष्णा से मृतप्राय: हो जाती है।

चित्रजल्प-उक्ति—

मदनमोहन-नाट, पसारि गन्धेर हाट,
जगन्नारी-ग्राहके लोभाय।
बिना-मूल्ये देय गन्ध, गन्ध दिया करे अन्ध,
घर जाइते पथ नाहि पाय॥" ९८ ॥

९८। प० अनु०—"मदनमोहन रूपी बाजीगर सुगन्ध के हाट को पसारकर जगत् की नारियों रूपी ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। वह बिना किसी मूल्य के ही सुगन्ध का वितरण करता है तथा सुगन्ध देकर वह नारियों को मदान्ध बना देता है जिसके फलस्वरूप नारियाँ अपने घर जाने का मार्ग तक भी नहीं देख पाती।"

अनुभाष्य

९८। जगन्नारी ग्राहके लोभाय,—जगत् में व्रज की स्त्रियों, गोपियों को खरीददार के रूप में प्रलोभित करता है।

प्रभु की उन्माद अवस्था—

एइमत गौरहरि, गन्धे कैल मन चुरि,
भृङ्गप्राय इति-उति धाय।
जाय वृक्षलता-पाशे, कृष्ण स्फुरे—सेइ आशे,
कृष्ण ना पाय, गन्धमात्र पाय॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—इसी प्रकार श्रीगौरहरि के मन को भी श्रीकृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध ने चुरा लिया, जिसके फलस्वरूप श्रीगौरहरि भृङ्ग (भँवरे) की भाँति इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे। श्रीगौरहरि श्रीकृष्ण की स्फूर्त्ति की आशा से वृक्ष-लताओं के निकट जा रहे थे, किन्तु उन्हें श्रीकृष्ण तो नहीं मिल रहे थे, केवल मात्र उनके अङ्गों की सुगन्ध प्राप्त हो रही थी।

स्वरूप और राय की चेष्टा से प्रभु का बाह्य दशा में आगमन—

स्वरूप-रामानन्द गाय, प्रभु नाचे, सुख पाय,
एइमते प्रात:काल हैल।
स्वरूप-रामानन्द राय, करि नाना उपाय,
महाप्रभुर बाह्यस्फूर्त्ति कैल॥ १०० ॥

१००। प० अनु०—श्रीस्वरूप दामोदर एवं

श्रीरामानन्द राय गान कर रहे थे, श्रीगौरहरि उसके श्रवण से प्रसन्न-चित्त होकर नृत्य कर रहे थे। ऐसा करते-करते प्रात:काल हो गया। श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय ने अनेक प्रकार के उपायों के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु को बाह्य जगत् की स्फूर्त्ति करायी।

एइमत महाप्रभु पाञा चेतन।
स्नान करि' कैल जगन्नाथ-दरशन॥ १०२ ॥

१०२। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने चेतनता प्राप्त करके स्नान किया तथा फिर उन्होंने भगवान् श्रीजगन्नाथ के दर्शन किये।

प्रभु के द्वारा मातृभक्ति का प्रदर्शन, कृष्ण के विरह में उद्घूर्णा-चित्रजल्प वर्णित—

मातृभक्ति, प्रलापन, भित्ये मुख-घर्षण,
कृष्णगन्ध-स्फूर्तये दिव्यनृत्य।
एइ चारि लीला-भेदे, गाइल एइ परिच्छेदे,
कृष्णदास रूप गोसाञि-भृत्य॥ १०१ ॥

१०१। प० अनु०—श्रीगौरहरि द्वारा प्रदर्शित मातृभक्ति, उनके द्वारा किया गया प्रलाप, उनके द्वारा दीवार में अपने मुख को घिसना तथा कृष्ण के अङ्गों की गन्ध के स्फुरित होने पर दिव्य नृत्य—श्रीरूप गोस्वामी के सेवक कृष्णदास के अथवा गोस्वामियों के दास कृष्णदास रूप मेरे द्वारा इस परिच्छेद में इन चार लीलाओं का गान किया गया है।

अमृतप्रवाह भाष्य

१०१। 'कृष्णदास रूप गोसाञि-भृत्य',—इस पद को पाठ करके अनेक व्यक्तियों के मन में आता है कि श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी—रूप गोस्वामी के मन्त्र-शिष्य हैं। किन्तु अन्यान्य स्थानों को पढ़ने से ऐसा सिद्धान्त करना दुष्कर है। इस स्थान पर श्रीरूप द्वारा रचित भक्तिरसामृतसिन्धु की शिक्षा का अवलम्बन करके रस का विस्तार कर रहे हैं, इसलिए श्रील कविराज-प्रभु श्रीरूप का केवलमात्र नाम उल्लेख कर सकते हैं; अथवा गोस्वामियों के दास कृष्णदासरूप इस लेखक ने इस पद्य की रचना की है,—यह अर्थ भी हो सकता है।

उनविंश परिच्छेद का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अप्राकृत अधोक्षज कृष्ण और कार्ष्णलीला—अक्षजज्ञानी जड़विद्या-मत्त पण्डिताभिमानी तर्कपन्थी के लिये अगम्य—

अलौकिक कृष्णलीला, दिव्य शक्ति तार।
तर्केर गोचर नहे चरित्र जाहार॥ १०३ ॥

१०३। प० अनु०—श्रीकृष्ण की लीला अलौकिक है, उसकी शक्ति दिव्य है, उसका चरित्र (स्वरूप) तर्क के गोचर नहीं है।

एइ प्रेम सदा जागे जाहार अन्तरे।
पण्डितेह तार चेष्टा बुझिते ना पारे॥ १०४ ॥

१०४। प० अनु०—यह प्रेम जिनके हृदय में सदैव जागृत होता है, पण्डित व्यक्ति भी उनकी चेष्टाओं को समझ नहीं पाता।

(भ: र: सि: पू: वि: प्रेमभक्तिलहरी का १७ वाँ श्लोक)
धन्यस्यायं नव प्रेमा यस्योन्मीलति चेतसि।
अन्तर्वाणीभिरप्यस्य मुद्रा सुष्ठु सुदुर्गमा॥ १०५ ॥

१०५।अनु०—जिस धन्य व्यक्ति के चित्त में नवप्रेम उदित होता है, उसकी समस्त क्रियाएँ और मुद्राएँ अर्थात् समस्त चिह्न शास्त्रज्ञ पुरुषों के लिये भी अत्यधिक दुर्बोध्य हो पड़ते हैं।

अनुभाष्य

१०५। मध्य-लीला के २३वें परिच्छेद की ३६ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

अप्राकृत श्रद्धा के साथ प्रभु की अधोक्षज-लीला में विश्वास

संस्थापित करने का अनुरोध—

अलौकिक प्रभुर 'चेष्टा', 'प्रलाप' शुनिया।
तर्क ना करिह, शुन, विश्वास करिया॥ १०६ ॥

१०६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु की अलौकिक 'चेष्टा' और 'प्रलाप' को सुनकर किसी प्रकार का कोई तर्क मत करना, बल्कि उसे विश्वास पूर्वक सुनना।

भ्रमरगीता में श्रीराधा के प्रलाप और महिषियों के गीत में दस प्रकार की चित्रजल्प की उक्ति—

इहार सत्यत्वे प्रमाण श्रीभागवते।
श्रीराधार प्रलाप 'भ्रमर-गीता' ते॥ १०७ ॥

१०७। प० अनु०—इसकी सत्यता का प्रमाण श्रीमद्भागवत में मिलता है। भ्रमर-गीता में श्रीराधा जी का प्रलाप वर्णित है।

अनुभाष्य

१०७। (क) 'श्रीराधार प्रलाप भ्रमर-गीताते',— भा: १०.४७.१२-२१ श्लोक द्रष्टव्य ; यथा—''मधुप कितव बन्धो मा स्पृशांघ्रिं सपत्नया: कुचविलुलित-मालाकुंकुमश्रुभिर्न:। वहतु मधुपति-स्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्बयं यस्य दूतस्त्वमीदृक्॥''१॥

उद्धवेर आगमने व्रजे व्रजबाला। कृष्णकथा गाहि' काँदि' त्यजे अश्रुमाला॥ [उद्धव के व्रज में आने पर व्रज की बालाओं ने कृष्ण की बातों को कह-कहकर क्रन्दन करते हुए अश्रुओं की माला प्रवाहित की थी।]

सेइ काले गोपी एक भृङ्गे लक्ष्य करि'। उद्धवेरे 'दूत'-ज्ञाने बले प्रिय स्मरि'॥ [उस समय एक गोपी एक भ्रमर (भँवरे) को देखकर तथा उद्धव को कृष्ण का दूत जानकर प्रिय कृष्ण का स्मरण करते हुए कहने लगी।] गोपी कहे,—हे भ्रमर, तुमि-धूर्तमित्र। पदस्पर्श-कार्य तव बड़ई विचित्र॥ [गोपी ने कहा,—हे भ्रमर, तुम धूर्त्त व्यक्ति के मित्र हो। तुम्हारे द्वारा मेरे चरण-स्पर्श करने रूपी तुम्हारा यह कार्य बहुत विचित्र है।] तव नमस्कारे कभु ना हब प्रसन्न। तव श्मश्रुप्रान्ते देखि कुंकुमेर चिह्न॥ [मैं तुम्हारे नमस्कार से कभी भी प्रसन्न नहीं होऊँगी। मुझे तुम्हारी मूछों पर कुंकुम का चिह्न दिखलायी दे रहा है।] सपत्नीर वक्षोद्वये कृष्ण-वनमाला। मर्दित-कुंकुम देखि' हय मम ज्वाला॥ [सपत्नियों के दोनों वक्षों के द्वारा कृष्ण की मर्दित वनमाला पर लगे कुंकुम को देखकर मुझे ईर्ष्या होती है।] मानिनीर प्रसन्नता-संग्रहे माधव। व्यस्त आछे सेइ कार्ये माथुर-बान्धव॥ [माधव जो कि मथुरा की स्त्रियों के बान्धव हैं, अब मानिनी प्रियाओं की प्रसन्नता संग्रह करते हैं एवं उसी कार्य में बहुत व्यस्त हैं।]

व्रजजने जार कभु नाइ प्रयोजन। गोपी-तुष्टितरे ताँर नाहिक कारण॥ [व्रजवासियों की जिन्हें कोई आवश्यकता नहीं है, उनके द्वारा गोपियों को सन्तुष्ट करने का भी कोई कारण नहीं है।] तुमि—यदुपति-दूत, तोमार कि काय? तोमा' तरे सभामध्ये कृष्ण पाबे लाज॥१॥ [तुम यदुपति कृष्ण के दूत हो, तुम्हारा यहाँ क्या कार्य है? तुम्हारे कारण कृष्ण को सभा में लज्जित होना पड़ेगा।]

''सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक्। परिचरति कथं तत्पादपद्मं नु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता ह्युत्तम: श्लोकजल्पै:॥''२॥

गोपीस्थाने करे कृष्ण किबा अपराध? जाहा लागि' गोपीचित्ते हय एइ बाध??[गोपियों के प्रति कृष्ण ने ऐसा क्या अपराध किया है जिस कारण गोपियों के चित्त में यह अप्रसन्नता है?] हेतु शुन,—कृष्णचन्द्र स्वकीय मोहिनी। अधरेर सुधा पान कराइया जिनि॥ सद्य त्याग करि' हरि' गोपीकार मन। जेरूप तोमार मत अर्वाचीन जन॥ सुकुसुम त्याग करि' जाय अन्य-मने। तद्रूप कृष्णेर कार्य आमादेर सने॥ [हे भ्रमर, उसका कारण सुनो। कृष्णचन्द्र अपनी मोहिनी अधर-सुधा का पान कराके गोपियों के मन का हरण करके शीघ्र ही उन्हें त्याग कर चले गये जिस प्रकार तुम्हारे जैसा अर्वाचीन व्यक्ति एक सुकुसुम (के मधु का पानकर उस) का त्याग कर अन्य-मनस्क होकर चला जाता है, कृष्ण ने भी हमारे साथ वैसा ही किया।] अचतुरा पद्मा कृष्णपादपद्म केन। त्याग नाहि करि' एबे यतने सेवेन?? [अचतुरा लक्ष्मी

किसलिए कृष्ण-पादपद्म का त्याग नहीं करती एवं अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक उनकी सेवा करती हैं?]

कृष्ण-मिथ्या-वाक्ये पद्मा क'रेछे प्रत्यय। पद्मा-समा अविदग्धा गोपी कभु नय॥२॥[कारण, लक्ष्मी ने कृष्ण के मिथ्या वचनों पर विश्वास कर लिया है, किन्तु गोपियाँ कदापि लक्ष्मी की भाँति अविदग्धा नहीं हैं।]

''किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिम-गृहाणामग्रतो नः पुराणम्। विजयसख-सखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गः क्षपितकुचरुजस्ते कल्प-यन्तीष्टमिष्टाः॥''३॥

गोपीतुष्टि-हेतु भृङ्ग करे कृष्णगान। एइ बुझि' कहे गोपी शुनिया सुतान॥ शुन हे भ्रमर, कृष्ण—भवनरहित। यदुपति आमादेर चिर-परिचित॥

[गोपी की सन्तुष्टि के लिये भ्रमर कृष्ण का गुणगान करने लगा। यह जानकर (कि वह उसकी प्रसन्नता के लिये गा रहा है) तथा उसकी सुमधुर तान को सुनकर गोपी ने उससे कहा—हे भ्रमर, सुनो! कृष्ण का यहाँ कोई भवन (स्थान) नहीं है (किन्तु) हम उस यदुपति से चिर-परिचित हैं।] शुनियाछि तार कथा मोरा बहुबार। ताँरे जानियाछि, गान शुनिब ना आर॥ [हमने उसकी कथाएँ बहुत बार सुनी हैं। हम उसे भली-भाँति जान गयी हैं, (इसलिए) अब उसका गुणगान और नहीं सुनेंगी।] कृष्ण-निजप्रिय जन जाँहारा एखन। ताँदेर निकटे गिया करह गायन॥ [कृष्ण की जो अब नूतन निजप्रिय सखीगण हैं, तुम उन्हीं के निकट जाकर कृष्ण का गुणगान करो।] कृष्ण आलिङ्गन जाँरा लभेछे सुमति। वक्षोरोग ह'ते मुक्त, कृष्णप्रेमवती॥ सेइ धनी प्रियवरा तव कृष्ण गान। शुनिया आदर करि' दिबे तव मान॥३॥ [कृष्ण-आलिङ्गन को प्राप्तकर जिन महिषियों के स्तन-रोग की पीड़ा शान्त हो गयी है, वे कृष्ण-प्रेम से ओत-प्रोत, कृष्ण की सर्वाधिक प्रिय एवं (भाग्य की) धनी हैं तथा वे ही तुम्हारे मुख से कृष्ण का गुणगान सुनकर तुम्हें सम्मान प्रदान करेंगी।]

''दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपट रुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः। चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युतमःश्लोक शब्दः॥''४॥

हे मधुप, कृष्णचन्द्र गोपीके स्मरिया। अनङ्गवेदनाखिन्न व्याकुल हइया॥ पाठायेछे दूतरूपे मम तुष्टि तरे। बलिओ ना एइ कथा आमार गोचरे॥

[हे भ्रमर! कृष्णचन्द्र ने गोपी का स्मरण करके तथा अनङ्ग (काम)-वेदना से दुःखी एवं व्याकुल होकर तुम्हें मेरी सन्तुष्टि के लिये दूत बनाकर भेजा है — तुम यह बात मेरे सामने मत बोलना।] स्वरग-मरत-तले आछे जत नारी। सबेइ कृष्णेर प्राप्य, ता' बलिते पारि॥ [त्रिभुवन अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी एवं पाताल में जितनी भी स्त्रियाँ हैं, सभी कृष्ण को प्राप्त हो सकती हैं, इतना तो मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ।] कपट रुचिर-हास्य कृष्णेर भ्रूद्वय। विराजित देखि' लक्ष्मी सदाइ सेवय॥ [कृष्ण की दोनों भौहों पर कपट-रुचि के हास्य को विराजित देखकर ही लक्ष्मी उसकी सदैव सेवा करती हैं।] लक्ष्मीदेवी-तुलनाय आमरा—सामान्य। कपट हलेओ कृष्ण सहसा वदान्य॥ [लक्ष्मी की तुलना में हम तो साधरण स्त्रियाँ हैं (तो ऐसे में हम कैसे उसके योग्य बन सकती हैं, परन्तु) कृष्ण कपटी होने पर भी सहसा वदान्य भी बन जाता है।] बोलो ताँरे, दीन प्रति अनुग्रह जाँर। 'उत्तमःश्लोकाख्य'-शब्दे परिचय ताँर॥४॥ [तुम कृष्ण को जाकर बताना कि दीनों के प्रति जिसकी कृपा है, वही 'उत्तम-श्लोक' के रूप में परिचित होता है।]

''विसृज शिरसि पादं वेदम्यहं चाटुकारैरनुनय-द्विषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्। स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन्॥''५॥

भ्रमरे देखिया गोपी निज-पादमूले। क्षमाइछे अपराध पशि' पदांगुले॥ [भ्रमर को अपने चरणों पर मँडराते देखकर गोपी ने सोचा कि यह मेरे चरणों (की अंगुलियों) को स्पर्श कर अपने अपराध हेतु क्षमा माँग रहा है।] त्यज' शिर पद ह'ते भ्रमर कुशल। मुकुन्द कि शिखायेछे मोरे ताहा बल॥ [इसलिए गोपी ने भ्रमर से कहा— 'हे कुशल भ्रमर! अपने सिर को मेरे चरणों से दूर कर लो।

तुम मुझे यह बताओ कि मुकुन्द ने तुम्हें क्या सिखाकर भेजा है।] मिष्टवाक्य-प्रार्थनाय आर दौत्य-धर्मे। चतुरता आछे, भृङ्ग, जानिलाम मर्मे॥ [हे भ्रमर! मैंने निश्चित रूप से यह जान लिया है कि तुममें दूत का धर्म निभाने और मधुर वचनों के द्वारा प्रार्थना करने की चतुरता है।] मुकुन्देर अपराध किबा आछे, बल? बलिओ ना एइ कथा, तुमि भृङ्ग-खल॥ [(किन्तु) हे खल (दुष्ट) भ्रमर! मुझसे ऐसी बात मत कहना कि 'बताओ तो! मुकुन्द का अपराध ही क्या है?'] पतिपुत्र छाड़ि' आर परलोक-धर्म। कृष्णसेवा बिना मोर नाहि कोन कर्म॥ [मैंने कृष्ण सेवा के लिये पति-पुत्र तथा परलोक-धर्म का त्याग कर दिया, (यहाँ तक कि)कृष्ण-सेवा के अतिरिक्त मेरा अन्य कोई कार्य ही नहीं था।] असंयत-चित्त कृष्ण अनायासे भूलि'। काय नाइ कथा तार, सन्धान ना तुलि॥५॥ [कन्तु असंयत चित्त वाला कृष्ण इस बात को अनायास ही भूल गया। इसलिए ऐसे व्यक्ति की बातों से मुझे क्या काम? उस के साथ कैसे सन्धि सम्भवपर है?]

''मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्। बलिमपि बलि-मत्त्वावेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद्यस्तदलम- सितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्-कथार्थः॥६॥''

कृष्ण-पूर्वजन्मकथा जबे उठे मने। ओहे भृङ्ग, भय हय गोपीकार गणे॥ [हे भ्रमर, कृष्ण के पूर्व-जन्मों की कथायें जब भी हृदय में उदित (स्मरण) होती हैं तो गोपियाँ भयभीत हो जाती हैं।] राम-अवतारे जबे व्याधवत् हरि। अविचारे क्रूर हइ' बालि वध करि'॥ [राम-अवतार के समय हरि ने व्याध (शिकारी) की भाँति बिना कोई विचार किये क्रूरतापूर्वक बालि का वध किया था।] कामपरा शूर्पनखा जबे राम-स्थाने। जाय, तबे सीता-बाध्य काटे नाक-काणे॥ [काम-परायण होकर जब शूर्पनखा राम के पास आयी थी, तब सीता के वशीभूत होने के कारण राम ने उसके नाक एवं कानों को काट दिया था।] बलिराज ह'ते हरि वामनमूर्तिते। पूजा-उपहार लभि' ताहाके वञ्चिते॥ [हरि ने वामन रूप धारण करके महाराज बलि को वञ्चित करने के उद्देश्य से उससे पूजा के उपहारों को प्राप्त किया।] काकवत् बान्धिलेन सेइ गुणधर। तार सह सख्य भाल नय, हे भ्रमर॥ [बाद में उस गुण-धारी ने बलि को कौवे की भाँति बाँध दिया। हे भ्रमर! उस हरि (कृष्ण) के साथ सख्य-भाव रखना अच्छा नहीं है।] तार कथारूप अर्थ सुदुस्त्यज जानि'। से कारणे त्याग-कार्ये बलहीन मानि॥६॥[(परन्तु) उस की कथा रूपी अर्थ को सुदुस्त्यज्य अर्थात् अत्यन्त कठिनाई से भी जिसे छोड़ पाना असम्भव है, ऐसा जानकर मैं उसे त्याग करने में असमर्थ हूँ।]

''यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट् सकृददनविधूत द्वन्द्वधर्मा विनष्टाः। सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षु-चर्यां चरन्ति॥''७॥

धर्म-अर्थ-काम-लता-त्रिवर्ग-नाशिनी। कृष्णकथा एत बल धरे—मोरा जानि॥ [मैं जानती हूँ कि कृष्ण की कथा धर्म-अर्थ-काम रूपी त्रिवर्ग का नाश करने का बल रखती है।] कृष्णलीलामृतकण कर्णे पान करि'। रागद्वेषमुक्त-धर्मी सर्व परिहरि'॥ [कृष्ण के लीलामृत के कणमात्र का कानों के द्वारा पान करके धर्मज्ञ व्यक्ति राग-द्वेष आदि से मुक्त होकर सर्वस्व त्याग देता है।] भोगहीन पक्षितुल्य भिक्षाजीवि-जन। दुःखमय गृह आर कुटुम्ब-भवन॥ सहसा सकल त्यजि' सर्वतो भावेते। उचित हइलेओ मोरा असमर्थ ताते॥७॥ [वह व्यक्ति भोगहीन पक्षी की भाँति भिक्षा-जीवी बनकर दुःखमय गृह एवं परिवार-जनों आदि सभी को सहसा सर्वतोभाव से त्याग देता है। ऐसा करना उचित होने पर भी मैं उसमें असमर्थ हूँ।]

''वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रधधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः। ददृशुरसकृदेतत् तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्य-वार्ता॥''८॥

ओहे दूत, मूढ़पक्षी व्याधेर सङ्गीते। येरूप विश्वास करि' बाण-विद्ध-चित्ते॥ क्लेश भोग करे यथा, आमरा

तेमन। कृष्णकथा विश्वासिया पेयेछि वेदन॥ [ओहे दूत, मूर्ख पक्षी व्याध के सङ्गीत पर विश्वास कर (उससे आकर्षित होकर) जिस प्रकार बाण से बिद्ध-चित्त होकर कष्ट भोग करता है, उसी प्रकार हम भी कृष्ण की बातों पर विश्वास करके वेदना अनुभव कर रही हैं।]

कृष्णनख-स्पर्शे पीड़ा सुतीव्र मदन। जारितेछे मोरे, बल अपर वचन॥८॥ [कृष्ण के नख-स्पर्श जनित सुतीव्र काम-व्याधि मुझे जला रही है अतएव तुम किसी अन्य प्रसङ्ग का कीर्त्तन करो।]

''प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुद्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग। नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते॥''९॥

एइ सब कथा शुनि' भ्रमरे फिरिते। देखिया गोपिका कहे विचारिया चित्ते॥ [गोपी के मुख से इन सब बातों को सुनकर भ्रमर वहाँ से चला गया तथा पुनः लौट आया। ऐसा देखकर गोपी चित्त में कुछ विचार करके कहने लगी—] तुमि—प्रियकृष्ण-सखा, कृष्णेर आज्ञाय। तथा ह'ते आसियाछ एथा पुनराय॥ [हे भ्रमर! तुम कृष्ण के प्रिय सखा हो। तुम कृष्ण की आज्ञा से वहाँ से पुनः यहाँ लौटकर आ गये हो।] तुमि तबे पूजनीय मम, दूतवर। प्रार्थना बलह मोरे,—किबा इच्छा धर॥ [हे दूतवर! तुम मेरे पूजनीय हो। तुम मुझे अपनी प्रार्थना के विषय में बतलाओ, तुम्हारी क्या इच्छा है?]

श्रीकृष्ण युगल भाव कभु ना छाड़िबे। गोपीकाय तुमि एबे केन वा लइबे? [श्रीकृष्ण कभी भी युगल-भाव का परित्याग नहीं करेंगे। तुम अब गोपियों को किसलिए अपने साथ ले जाना चाहते हो?] श्रीकृष्णेर वधू लक्ष्मी प्रभुवक्षे रहि'। सतत सेविछे एबे, तव पाशे कहि॥९॥ [श्रीकृष्ण की वधू लक्ष्मी, उनके वक्षःस्थल पर रहकर अब सतत उनकी सेवा कर रही हैं, उनसे ऐसा जाकर कहना।]

''अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनास्ते स्मरति स पितृगेहान् सौम्यबन्धूंश्च गोपान्। क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्य-धास्यत् कदा नु॥''१०॥

'सौम्य' सम्बोधिया बले गोपी हर्षभरे। गुरुकुल ह'ते एबे मथुरा नगरे॥ सुखे बसे आर्यपुत्र, भूलि' व्रजाङ्गना। पितार आवास-कथा मने कि पड़े ना??[(भ्रमर को) 'हे सौम्य!' — ऐसे सम्बोधित करके गोपी प्रसन्नतापूर्वक कहने लगी। गुरुकुल अर्थात् सान्दीपनि मुनि के आश्रम उज्जैन से लौटकर क्या कृष्ण मथुरा में ही आये हैं? आर्यपुत्र कृष्ण व्रजाङ्गनाओं को भुलाकर क्या सुखपूर्वक रह रहे हैं? क्या उनके मन में उनके अपने पिता श्रीनन्द के आवास की बातें स्मरण नहीं आती?] किङ्करी छिलाम मोरा, आमादेर कथा। मुखे आने कभु किबा भुलिया सर्वथा?? [हम कृष्ण की दासियाँ थी, क्या कभी भूल से भी वे हमारी बात अपने मुख पर लाते हैं, या फिर हमें सम्पूर्ण रूप से ही भूल गये हैं?]क्षेमास्पद मोरे जानि' कबे परशिबे? अगुरु-सुगन्धि-कर गोपीशिरे दिबे??१०॥ [मुझे क्षेमास्पद (क्षमा का पात्र) जानकर वे कब मुझे स्पर्श करेंगे? कब अपने अगुरु सदृश्य सुगन्धित कर को गोपी के सिर पर रखेंगे?]

निज इन्द्रिय तर्पण परायण महामहा- अक्षजज्ञानी स्वयं को पण्डित मानने वाले जड़विद्या में मत्त व्यक्तियों की भी अप्राकृत विप्रलम्भ रस को समझने में असमर्थता—

महिषीर गीत जेन 'दशमे'र शेषे।
पण्डिते ना बुझे तार अर्थविशेषे॥ १०८ ॥

१०८। प० अनु०—श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के अन्त में महिषी-गीत भी है, उसके विशेष अर्थ को पण्डित तक भी नहीं समझ पाते।

अनुभाष्य

१०८। (ख) महिषीर गीत-जेन दशमेर शेषे (अर्थात् दशम स्कन्ध के अन्त में महिषी गीत)—भाः १०.९०. १५-२४ श्लोक द्रष्टव्य; यथा—

''कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः। वयमिव सखि

क्वचिद्गाढ़निर्विद्धचेता नलिन- नयनहासोदारलीले-क्षितेन॥''१॥

जलक्रीड़ा समापिया, कृष्णचिन्ता-पर हिया, चिन्तामग्न महिषीर गण। हे सखि कुररि, एबे, निशाय निद्रित देवे, मोरा करि' कृष्णे जागरण॥ [जलक्रीड़ा को समाप्त करने के पश्चात् श्रीकृष्ण-स्मरण परायण हृदय वाली महिषियाँ कह रही हैं- हे सखि कुररि, इस समय रात्रि में देव अर्थात कृष्ण तो निद्रा में हैं, किन्तु हम कृष्ण के कारण (उन्में स्मरण करते हुए) जागरण कर रही हैं।] ताँर निद्रासुख-भङ्ग, आमादेर देखि' रङ्ग, तुमि करितेछ विलापन। नाइ केन निद्रा तोर, कृष्णचिन्ता सुविभोर, किबा बिंधियाछे हास्येक्षण?? [कृष्ण के निद्रा-सुख को भङ्ग करके तथा हमारी अवस्था को देखकर तुम उपहास-पूर्वक विलाप कर रही हो। तुम्हें नींद क्यों नहीं आ रही, क्या तुम भी कृष्ण की चिन्ता में अत्यधिक विभोर हो? क्या तुम्हें भी कृष्ण के हास्यावलोकन ने बिद्ध कर दिया है?] कृष्णेर मधुर स्मित, कृष्ण-दृष्टिविद्धचित्त, महिषीगणेर भावचय। आमादेर मत तव, अवस्था घटेछे सब, महिषीर तति तारे कय॥१॥ [कृष्ण की मधुर मुस्कान एवं कृष्ण की प्रेममयी दृष्टि से बिद्ध-चित्त वाली महिषियाँ अपने हृदय में उदित भावों के वशीभूत होकर यही कह रही हैं कि ''हे कुररि! (क्या) तुम्हारी अवस्था भी हमारे समान ही हो गयी है।'']

''नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि। दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किंवा स्रजं स्पृहयसे कवरेण वोढुम्॥''२॥

रात्रे बन्धु ना देखिया, चक्षुर्द्वय ना मेलिया, चक्रबाकि, तुमि दुःखभरे। कारुण्ये रोदन कर, किबा तुमि किबा स्मर, स्पृहा कर धरिवार तरे॥ [हे चक्रवाकि! रात्रि में अपने प्रियतम को नहीं देखकर (उसके दर्शन की आशा से तुम अपने) दोनों नेत्रों को निमीलित नहीं कर रही हो एवं अत्यन्त दुःखपूर्वक करुणायुक्त अवस्था में रोदन कर रही हो। तुम किसको अथवा क्या स्मरण कर रही हो, तुम किसे पकड़ने की स्पृहा कर रही हो?] अच्युतचरण जुष्ट, महिषी जाहाते तुष्ट, सेइ माला शिरेते धरिते। रोदन-कारण तव, स्पष्ट करि' कह सब, चक्रबाकि महिषी बुझिते॥२॥ [अच्युत के चरणों के द्वारा सेवित माला, जिससे महिषियाँ सन्तुष्ट होती है, क्या तुम उस माला को अपने सिर पर धारण करने के लिये ही रोदन कर रही हो। हे चक्रवाकि! तुम स्पष्ट रूप से सब बतलाओ जिससे कि हम महिषियाँ तुम्हारे उद्देश्य को समझ सकें।]

''भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगत प्रजागरः। किम्वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वञ्च गतो दुरत्ययाम्॥''३॥

जलनिधे, रात्रिकाले, ना लिखेछे तव भाले, निरन्तर निद्रा सुखसङ्ग। जागिया रोदन-कर्म, पाइयाछ एइ धर्म, आमादेर मत चित्तभङ्ग॥ [हे जलनिधे (समुद्र)! क्या तुम्हारें कपाल में रात्रि के समय भी निरन्तर निद्रा-सुख-सङ्ग नहीं लिखा है? हमारी भाँति चित्त के भङ्ग होने के कारण सारी रात्रि जागकर रोना, क्या तुम्हारा भी यही धर्म है?] कुंकुमादि-चिह्न नाश, मुकुन्देर सुप्रयास, महिषीवृन्देर प्रति यथा। पाइया से व्यवहार, समदशा कि तोमार, जलधि कि लभियाछ तथा??३॥ [जिस प्रकार मुकुन्द ने अत्यधिक प्रयत्नपूर्वक हम महिषियों के कुंकुम आदि चिह्नों का हरण किया था, हे जलधि (समुद्र)! क्या तुम्हारे साथ भी वैसा ही व्यवहार हुआ है, क्या तुम्हारी भी वैसी ही अवस्था है?]

''त्वं यक्ष्मणा बलवता निगृहीत इन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि। कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः॥''४॥

अतिशय यक्ष्मा क्रान्त, अशक्त नाशिते ध्वान्त, शशधर स्वीय कान्तिबले। किबा कृष्ण-गाने भ्रान्त, वाक्य-व्यये रह क्षान्त, देखि' मोरा आमादेर दले॥४॥ [हे शशधर (चन्द्र)! क्या तुम अत्यधिक यक्ष्मारोग से आक्रान्त हो जो अपनी कान्ति (किरण समूह) के द्वारा अन्धकार राशि का नाश नहीं कर पा रहे हो? या फिर कृष्ण के

गान के द्वारा भ्रान्त होकर, वाक्य-व्यय करने में अर्थात् कुछ भी कहने में असमर्थ हो? ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम भी हमारे ही दल में अर्थात् हमारी ही अवस्था वाले हो।]

''किंन्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम्। गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम्॥''५॥

आमादेर आचरण, अनुचित कि एमन, शुन, हे मलयसमीरण। गोविन्द कटाक्ष-विद्ध, कन्दर्प प्रेरणे सिद्ध, प्रतिशोधग्रहण-कारण॥५॥ [हे मलय-समीर! सुनो, हमने ऐसा कौन-सा अनुचित आचरण किया है, जिसके फलस्वरूप बदले में गोविन्द के कटाक्ष से बिद्ध हमारे पास तुम कन्दर्प को भेज रहे हो?]

''मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान् ध्यायति प्रेमबद्धः। अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो वाष्पधाराः स्वृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसङ्गः॥''६॥

शुन, मेघ, कृष्णमित्र, चिन्तिछ श्रीवत्स-चित्र, प्रेमबद्ध महिषीर न्याय। कृष्णसङ्ग ध्यान करि', उत्कण्ठाय दुःखे मरि', सिञ्चितेछ वाष्पधारा-प्राय॥६॥ [हे कृष्ण के मित्र मेघ! सुनो, क्या तुम भी प्रेम में बद्ध महिषियों की भाँति श्रीवत्स आदि चिह्नों से सुशोभित कृष्ण का स्मरण कर रहे हो? क्या तुम कृष्ण के सङ्ग का स्मरण करके, उत्कण्ठा-वशतः दुःख में मृतप्राय होने के कारण ही वाष्पधारा (अश्रुओं) का विसर्जन कर रहे हो?]

''प्रियरावपदानि भाषसे मृतसञ्जीविकयानया गिरा। करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल॥''७॥

सुकण्ठ कोकिल शुन, अनुकारे सुनिपुण, मृतसञ्जीवनी तव कथा। तव-प्रिय आचरण, महिषीर सुकरण, सेइ रूप साधि, बल तथा॥७॥ [हे अत्यधिक मधुर कण्ठ वाली कोयल! तुम अनुकार (कृष्ण की वाणी का अनुकरण) करने में सुनिपुण हो। तुम्हारी वाणी कृष्ण के शब्दों की भाँति मधुर होने के कारण मृत व्यक्ति के लिये सञ्जीवनी स्वरूप है। तुम हमें बतलाओ, हम महिषियाँ तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करें, हम वही करेंगी।]

''न चलसि न वदस्युरदारबुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम्। अपि वत वसुदेवनन्दनांघ्रिं वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम्॥८॥

उदारधी क्षितिधर, अचञ्चल, मौनवर, महदर्थ-चिन्ताय मगन। तुमि आमादेर मत, हृदये राखिते व्रत, वसुदेव-तनय-चरण॥८॥ [हे महामति पर्वत! तुम अचञ्चल (स्थिर) तथा मौन हो, लगता है कि किसी महद् अर्थ की चिन्ता में ही निमग्न हो। लगता है, तुमने भी हमारी भाँति श्रीवसुदेव-पुत्र के चरणों को हृदय में धारण करने का व्रत लिया है।]

''शुष्यद्ध्रदाः करशिता वत सिन्धुपत्न्यः सम्प्रत्य-पास्त-कमलश्रिय इष्टभर्तुः। यद्वद्वयं मधुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म॥''९॥

सिन्धुपत्नी नदी सब, शुष्कनीर देखि' तव, अरविन्द-शोभा नाइ आर। कृशाङ्ग हयेछे तारा, निदाघे आनन्द-हारा, सिन्धु-सुख करे ना विस्तार॥ महिषी सकल दीना, शुष्कचित्त तनुक्षीणा, मधुपति— प्रणय-रहित। तोमरा कि सेइमत, तोयहीन शोभा-हत, ताँर प्रेमदृष्टि-विवर्जित??९॥ [हे समुद्र पत्नी नदियों! तुम्हारे जल को सूखा देखकर तथा तुममें कमलों की शोभा को नहीं देखकर लगता है कि तुम बहुत कमज़ोर हो गयी हो, तुम्हारा सम्पूर्ण आनन्द दूर हो गया है एवं समुद्र तुम्हारे सुख का विस्तार नहीं कर रहा है। क्या तुम्हारी जल रहित, शोभा-विहीन अवस्था समुद्र की प्रेमदृष्टि से विवर्जित होने के कारण तो नहीं है, जैसा कि मधुपति के प्रणय से रहित महिषियाँ दीन, शुष्क चित्त वाली और कमजोर शरीर वाली हो गयी हैं?]

''हंस स्वागतमास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदर्जितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा। किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम्॥''१०॥

सुखे आसियाछ, हंस, एस समादरि। कृष्णेर सन्देश बल, दुग्ध पान करि'॥ 'कृष्णदूत' बलि' तोमा मोरा

सदा जानि। हरि किछु आमादेर बलियाछे वाणी ? ? सुखे त' आछेन कृष्ण ?— जानिवारे चाइ। आमादेर कथा कि ताँर मने किछु नाइ ? ? एका लक्ष्मी सेवे ताँरे, आमरा—ि कङ्करी। अ-कामद-वाक्यव्ययि-जने किसे वरि ? ?'' १०॥ [हे हंस! तुम सुखपूर्वक तो आये हो ना, आओ, आओ, मैं तुम्हारा समादर करती हूँ। तुम दूध पीकर कृष्ण का सन्देश सुनाओ। मैं सदैव तुम्हें 'कृष्ण-दूत' के रूप में ही जानती हूँ। क्या हरि ने हमारे लिये कुछ कहकर भेजा है? कृष्ण सुखपूर्वक तो हैं ना? - हम जानना चाहती हैं। क्या उनके मन में हमारी पूर्वकालीन कोई स्मृति नहीं है? लक्ष्मी अकेले ही उनकी सेवा करती है, हम (सामान्य) दासियाँ हैं, जो केवल मीठे - मीठे वचन ही बोलते हैं, परन्तु कभी हमारी इच्छाओं (कामनाओं) को पूर्ण नहीं करते, हम उन कृष्ण को कैसे वरण कर सकती हैं?]

उनविंश परिच्छेद का अनुभाष्य समाप्त।

गुरु (नित्यानन्द)-गौराङ्ग-सेवकों की कृपा के बल से प्रभु की अप्राकृत विप्रलम्भमयी लीला में विश्वास का उदय—

महाप्रभु-नित्यानन्द, दोंहार दासेर दास।
जारे कृपा करेन, तार हय इथे विश्वास॥ १०९ ॥

१०९। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु—इन दोनों के दासों के दास जिन पर कृपा करते हैं, उन्हीं का उपरोक्त वर्णित लीलाओं में विश्वास होता है।

प्रभु के कृष्ण-विरह में उत्पन्न विप्रलम्भ-भाव के अनुसरण से ही अनर्थ निवृत्ति और कृष्ण प्रेम की प्राप्ति—

श्रद्धा करि' शुन इहा, शुनिते महासुख।
खण्डिबे आध्यात्मिकादि कुतर्कादि-दुःख॥ ११०॥

११०। प० अनु०—अतएव आप सभी श्रद्धापूर्वक इनका श्रवण करो, इन्हें सुनने से महासुख की प्राप्ति होती है तथा आध्यात्मिकादि कुतर्क आदि दुःखों का सम्पूर्णतः नाश हो जाता है।

नित्य नवनवायमान हृत्कर्ण-रसायन चैतन्यलीलामृत—

श्रीचैतन्यचरितामृत—नित्य नूतन।
शुनिते शुनिते जुड़ाय हृदय-श्रवण॥ १११ ॥

१११। प० अनु०—श्रीचैतन्यचरितामृत नित्य नवीन है। इसे सुनते-सुनते हृदय तथा कर्ण शीतलता को प्राप्त करते हैं।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ ११२ ॥

११२। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिनकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहे हैं।

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे विरह-प्रलाप-मुख-सङ्कर्षणादिवर्णनं नाम उनविंशः परिच्छेदः।

❋❋❋

विंश परिच्छेद

कथासार— महाप्रभु ने दैन्य-उद्वेग आदि उत्कण्ठा के साथ शिक्षाष्टक के आस्वादन में स्वरूप-रामानन्द के साथ रात्रि-व्यतीत की। समय-समय पर प्रभु (जयदेव द्वारा रचित) श्रीगीतगोविन्द, श्रीमद्भागवत, (श्रीराय-रामानन्द द्वारा रचित) श्रीजगन्नाथवल्लभ नाटक, (श्रीबिल्वमङ्गल द्वारा रचित) श्रीकर्णामृत में से श्लोक उच्चारण करके भाव में आविष्ट हो जाते थे,—इत्यादि इस परिच्छेद में वर्णित है।

इस प्रकार बारह वर्षों तक रसास्वादन करते हुए अड़तालीस वर्ष की आयु में श्रीमन्महाप्रभु ने लीला समाप्त की, ऐसा कहकर ग्रन्थकार ने आभास प्रदान किया है। इसके बाद उन्होंने अन्त्य-लीला के विवरण का संक्षिप्त अनुवाद देकर इस ग्रन्थ को समाप्त किया है। (अ: प्र: भा:)

ऐसे भक्त जिनमें प्रेम उत्पन्न हो गया है, उनकी ही श्रीमन्महाप्रभु के विप्रलम्भ भाव के अनुसरण में योग्यता—

प्रेमोद्भावितहर्षेर्ष्योद्वेगदैन्यार्तिमिश्रितम्।
लपितं गौरचन्द्रस्य भाग्यवद्भिर्निषेव्यते॥ १ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१। भाग्यवान् व्यक्तिगण ही गौरचन्द्र के प्रेम में उत्पन्न हर्ष, ईर्ष्या, उद्वेग, दैन्य और आर्त्ति से मिश्रित विलाप का आस्वादन करते हैं।

अनुभाष्य

१। भाग्यवद्भि: (लब्धप्रेमसम्पद्भि: महात्मभि: एव) गौरचन्द्रस्य प्रेमोद्भावित हर्षेर्ष्योद्वेगदैन्यार्तिमिश्रितं (प्रेम्ण: उद्भाविता: जाता: चित्तोल्लासा- सहिष्णुतास्थिरता-निजक्षुद्र-मननता-कातरतादिभावा: ताभि: मिश्रितं) लपितं (प्रलापं) निषेव्यते (आस्वाद्यते)।

जय जय गौरचन्द्र जय नित्यानन्द।
जयाद्वैतचन्द्र जय गौरभक्तवृन्द॥ २ ॥

२। प० अनु०—श्रीगौरचन्द्र की जय हो, जय हो। श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। श्रीअद्वैतचन्द्र की जय हो तथा श्रीगौर भक्तवृन्द की जय हो।

पुरी में अनुक्षण विप्रलम्भ-भाव में व्याकुल प्रभु—

एइमत महाप्रभु वैसे नीलाचले।
रजनी-दिवसे कृष्ण-विरहे विह्वले॥ ३ ॥

३। प० अनु०—इस प्रकार पूर्व परिच्छेद में वर्णित प्रसङ्गानुसार श्रीमन्महाप्रभु श्रीनीलाचल जगन्नाथपुरी में दिन-रात कृष्ण-विरह में विह्वल रहते थे।

प्रभु के परमश्रेष्ठ अन्तरङ्ग दो नित्य सङ्गी—

स्वरूप, रामानन्द—एइ दुइजन-सने।
रात्रि-दिने रस-गीत-श्लोक आस्वादने॥ ४ ॥

४। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु रात-दिन श्रीस्वरूप दामोदर तथा श्रीरामानन्द राय के साथ रस अर्थात् मधुर-रस-सम्बन्धीय गीतों एवं श्लोकों का आस्वादन करते थे।

आठ सात्त्विक और तैंतीस व्यभिचारी भावों का उदय—

नाना भाव उठे प्रभुर—हर्ष, शोक, रोष।
दैन्योद्वेग-आर्त्ति उत्कण्ठा, सन्तोष॥ ५ ॥

५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु में समय-समय पर

हर्ष, शोक, रोष, दैन्य, उद्वेग, आर्त्ति, उत्कण्ठा तथा सन्तोष आदि अनेक भाव उदित होते।

स्वयं अथवा दो भक्तों के साथ उन-उन भावों के उद्दीपक श्लोकों का उच्चारण अथवा श्रवण—

सेइ सेइ भावे निज-श्लोक पड़िया।
श्लोकेर अर्थ आस्वादये दुइ बन्धु लञा॥ ६ ॥

६। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु उन-उन भावों के अनुरूप स्वरचित श्लोक का उच्चारण करते तथा श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय नामक अपने दो बन्धुओं के साथ उन श्लोकों के अर्थ का आस्वादन करते।

कोन दिने, कोन भावे श्लोक-पठन।
सेइ श्लोक आस्वादिते रात्रि-जागरण॥ ७ ॥

७। प० अनु०—किसी दिन किसी भाव का श्लोक उच्चारण करते तथा उस श्लोक का आस्वादन करते हुए रात्रि में जागरण हो जाता।

प्रभु के द्वारा साध्य-साधन अथवा उपेय और उपाय के अभेद का वर्णन; सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट चरम अभिधेय अथवा शाब्दिक-अवतार श्रीनाम- कीर्त्तन के माहात्म्य का वर्णन—

हर्षे प्रभु कहेन,—"शुन, स्वरूप-रामराय।
नामसङ्कीर्त्तन—कलौ परम उपाय॥ ८ ॥

८। प० अनु०—एक दिन श्रीमन्महाप्रभु ने प्रसन्नतापूर्वक कहा,—"हे स्वरूप! हे राम राय! सुनो! नाम-सङ्कीर्त्तन ही कलियुग में [उद्धार प्राप्त करने का] परम उपाय है।

कृष्ण-कीर्त्तन करने वाला ही एकमात्र सुबुद्धिमान्—

सङ्कीर्त्तनयज्ञे कलौ कृष्ण-आराधन।
सेइ त' सुमेधा पाय कृष्णेर चरण॥ ९ ॥

९। प० अनु०—"कलियुग में सङ्कीर्त्तन-यज्ञ के द्वारा कृष्ण की आराधना करने वाला व्यक्ति ही सुमेधा (सुबुद्धि वाला) है तथा उसी को श्रीकृष्ण के चरणों की प्राप्ति होती है।

अनुभाष्य

९। आदि-लीला के तृतीय परिच्छेद की ७६-७७ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

श्रीमद्भागवत (११.५.३२) में—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥ १० ॥

१०। अनु०—"जिनके मुख में सदैव कृष्ण-वर्ण (कृष्ण-शब्द कथा, कृष्णमहिमा-वर्णन) है, जिनकी कान्ति अकृष्ण अर्थात् गौर है, उन्हीं अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र एवं पार्षद से परिवेष्टित महापुरुष का सुबुद्धिमान् जन संकीर्त्तन-प्राय यज्ञ के द्वारा आराधन करते हैं।

अनुभाष्य

१०। आदि-लीला के तृतीय परिच्छेद की ५१ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

अपराध-शून्य (रहित) नामाभास का फल—समस्त अनर्थों का नाश, उसके पश्चात् शुद्धनाम का फल— निःश्रेयस और कृष्ण-प्रेम का उदय—

नाम-सङ्कीर्त्तने हय सर्वानर्थ-नाश।
सर्व-शुभोदय कृष्णे प्रेमेर उल्लास॥ ११ ॥

११। प० अनु०—"नाम-सङ्कीर्त्तन के द्वारा ही समस्त-अनर्थों का नाश होता है, समस्त शुभ उदित होते हैं तथा कृष्ण के प्रति होने वाले प्रेम में उल्लास होता है।

श्रीमुख से निःसृत (निकला) श्रीशिक्षाष्टक (अथवा श्रीभागवत का सार); नामाभास और नाम का फल—(पद्यावलीके दशम अङ्क में उद्धृत शिक्षाष्टक का प्रथम श्लोक)—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयः कैरव चन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनम्॥१२॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१२। ''चित्तरूपी दर्पण का मार्जन करने वाले, भवरूपी महादावाग्नि को बुझाने वाले, जीवों के मङ्गलरूपी कैरव (चन्द्र) की चन्द्रिका को वितरण करने वाले, विद्यावधु के जीवन-स्वरूप, आनन्दरूपी समुद्र को वर्धित करने वाले, पग-पग में पूर्णामृत-आस्वादन स्वरूप एवं सर्व-स्वरूप अर्थात् स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा आत्मा को शीतल करने वाले श्रीकृष्ण-सङ्कीर्त्तन विशेष रूप से जययुक्त हों।

अनुभाष्य

१२। चेतोदर्पणमार्जनं (चेतः एव दर्पणः आदर्शः तस्य मार्जनं मालिन्यस्य अपाकरणं यस्मात् तत्) भवमहादावाग्नि-निर्वापणं (भवः संसारः एव महादावाग्निः तस्य निर्वापणं यस्मात् तत्) श्रेयः कैरव चन्द्रिकावितरणं (श्रेयांसि एव कैरवाणि कुमुदानि तेषां चन्द्रिका ज्योत्स्ना तस्याः वितरणं यस्मात् तत्) विद्यावधूजीवनं (विद्या एव वधूः पत्नी तस्याः जीवनं प्राणधारणं यस्मात् तत्) आनन्दाम्बुधिवर्धनं (आनन्दः प्रेमा एव अम्बुधिः समुद्रः तस्य वर्धनं यस्मात् तत्) प्रतिपदं (प्रतिक्षणं) पूर्णामृतास्वादनं (पूर्णामृतस्य आस्वादनं यस्मात् तत्) सर्वात्मस्नपनं (सर्वेषाम् आत्मनां सर्वतोभावेन आत्मनो वा स्नपनं यस्मात् तत्) परं (केवलमद्वितीयं) श्रीकृष्णसङ्कीर्त्तनं विजयते (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते)।

श्लोक के अर्थ की व्याख्या—

सङ्कीर्त्तन हैते पाप-संसार-नाशन।
चित्तशुद्धि, सर्वभक्तिसाधन-उद्‌गम॥ १३ ॥
कृष्णप्रेमोद्‌गम, प्रेमामृत-आस्वादन।
कृष्णप्राप्ति, सेवामृत-समुद्रे मज्जन॥'' १४ ॥

१३-१४। प० अनु०— ''सङ्कीर्त्तन से ही पाप-संसार का नाश होता है। सङ्कीर्त्तन से ही चित्त-शुद्धि तथा सर्व (साधन, भाव तथा प्रेम) भक्ति के साधन प्रकाशित होते हैं। सङ्कीर्त्तन से ही कृष्णप्रेम का आविर्भाव होता है, उस से ही प्रेम रूपी अमृत का आस्वादन होता है तथा सङ्कीर्त्तन के द्वारा ही कृष्ण प्राप्ति होती है और श्रीकृष्ण सेवारूपी अमृत-समुद्र में निमज्जन होता है।''

अशोक, अभय, अमृत का आधार श्रीनाम—

उठिल विषाद, दैन्य, पड़े आपन-श्लोक।
जाहार अर्थ शुनि' सब जाय दुःख-शोक॥ १५ ॥

१५। प० अनु०—उपरोक्त वचनों को कहते हुए श्रीमन्महाप्रभु में विषाद तथा दैन्य उत्पन्न हो आया तथा वे स्वरचित उस श्लोक का उच्चारण करने लगे, जिसके अर्थ का श्रवण करने से समस्त प्रकार के दुःख तथा शोक दूर हो जाते हैं।

नाम-साधन के सुलभ होने का कारण अथवा कृष्ण की महा-वदान्यता; दुर्दैव रूपी अपराधमयी अवस्था में जीव के द्वारा शुद्धनाम के उच्चारण का अभाव—(पद्यावली के १९ वें अंक में उद्धृत शिक्षाष्टक का द्वितीय श्लोक)

''नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन्ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥ १६ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१६। ''हे भगवन्, आपका नाम ही जीवों के समस्त मङ्गल का विधान करता है, इसलिए आपने 'कृष्ण', 'गोविन्द आदि' अपने अनेक प्रकार के नामों का विस्तार किया है। उन नामों में आपने अपनी समस्त शक्ति अर्पित की है एवं आपने उन नामों के स्मरण में काल आदि का भी नियम (विधि अथवा विचार) नहीं रखा। हे प्रभो, जीवों के प्रति ऐसी कृपा करके आपने अपने नाम को सुलभ बनाया है, तथापि मेरे नामापराध रूपी दुर्दैव ने मेरी ऐसा दुर्दशा की है कि वह आपके सुलभ नाम में भी मेरा अनुराग उत्पन्न नहीं करने देता।

अनुभाष्य

१६। हे भगवन्, (प्रभो कृष्ण, भवता अहैतुक्या कृपया) नाम्नां बहुधा (बहुप्रकारः) अकारि

(प्रकटितवान्) तत्र (नाम्नि) निजसर्वशक्तिः (अनन्तशक्तिमति भगवति तस्या अनन्ता शक्तिः) अर्पिता (निहिता, अतः तस्य) स्मरणे कालः अपि न नियमितः (न विहितः, अपेक्षितः; सर्वकालेऽपि न कोऽपि विधिः)—तव एतादृशी कृपा ; (किन्तु तथापि) मम अपि ईदृशं दुर्दैवं यत् इह (नाम्नि) अनुरागः न अजनि (न जातः)।

श्लोक के अर्थ की व्याख्या—

अनेक-लोकेर वाञ्छा—अनेक-प्रकार।
कृपाते करिल अनेक-नामेर प्रचार॥ १७ ॥

१७। प० अनु०—''अनेक लोगों की अनेक प्रकार की वाञ्छाएँ हैं, इसलिए कृष्ण ने कृपा करके अपने अनेक नामों का प्रचार अर्थात् विस्तार किया है।

खाइते शुइते यथा तथा नाम लय।
काल-देश-नियम नाहि, सर्वसिद्धि हय॥ १८ ॥

१८। प० अनु०—''खाते हुए, सोते हुए, कहीं पर भी नाम ग्रहण करने में काल-देश-नियम का कोई विचार नहीं है, नाम ग्रहण करने से ही सर्वसिद्धि (भक्ति-सिद्धि) की प्राप्ति होती है।

सर्वशक्ति नामे दिला करिया विभाग।
आमार दुर्दैव,—नामे नाहि अनुराग॥ १९ ॥

१९। प० अनु०—''भगवान् ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति को नाम में विभाग करके प्रदान किया है। किन्तु मेरा ही दुर्दैव है कि मेरा नाम के प्रति अनुराग नहीं है।

प्रेम को प्राप्त करने के लिये नाम- कीर्त्तन के लक्षणों का वर्णन—

जेरूपे लइले नाम, प्रेम उपजय।
तार लक्षण-श्लोक शुन, स्वरूप-रामराय॥ २० ॥

२०। प० अनु०—''हे स्वरूप! हे राम राय! जिस प्रकार से नाम ग्रहण करने पर प्रेम उत्पन्न होता है अब तुम उसके लक्षणों का वर्णन करने वाले श्लोक को सुनो।

साध्यनाम-प्रेम को प्राप्त करने हेतु नाम साधन की प्रणाली अथवा समस्त प्रकार के अपराधों की जड़ देहात्म-बुद्धि का निषेध और नाम को निरन्तर करने की विधि—(पद्यावली के २० वें अंक में उद्धृत शिक्षाष्टक का तृतीय श्लोक)

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥ २१ ॥

२१। अनु०— ''जो अपने आपको तृण की अपेक्षा अधिक छोटा मानते हैं, जो वृक्ष के समान सहिष्णु होते हैं, स्वयं मानशून्य तथा दूसरे लोगों को सम्मान प्रदान करते हैं, वही सदैव श्रीहरिनाम कीर्त्तन के अधिकारी हैं।

अनुभाष्य

२१। आदि-लीला के सप्तदश परिच्छेद की ३१ वीं संख्या द्रष्टव्य है।

श्लोक के अर्थ की व्याख्या—

उत्तम हञा आपनाके माने तृणाधम।
दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम॥ २२ ॥

२२। प० अनु०—''नाम ग्रहण करने वाला व्यक्ति उत्तम होने पर भी स्वयं को तृण से भी अधम मानता है तथा वह वृक्ष की भाँति दो प्रकार का सहिष्णुता युक्त आचरण करता है।

वृक्ष जेन काटिलेह किछु ना बोलय।
शुकाञा मैलेह कारे पानी ना मागय॥ २३ ॥
जेइ जे मागये, तारे देय आपन-धन।
घर्म-वृष्टि सहे, आनेर करये रक्षण॥ २४ ॥

२३-२४। प० अनु०— ''जिस प्रकार वृक्ष काटे जाने पर भी कुछ नहीं बोलता तथा सूखकर मरने की अवस्था आने पर भी किसी से पानी नहीं माँगता। वृक्ष से जो कोई भी उसके धन फल, फूल इत्यादि को माँगता है, वह उसे दे दता है एवं स्वयं धूप तथा वर्षा को सहन करके भी अन्यों की रक्षा करता है।

सर्वत्र कृष्ण दर्शन रूपी सम्बन्ध ज्ञान से युक्त नाम-साधन द्वारा प्रेम-लाभ—

उत्तम हञा वैष्णव हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि 'कृष्ण'-अधिष्ठान॥ २५॥

२५। प० अनु०—''इसी प्रकार उत्तम होने पर भी वैष्णव निरभिमान अर्थात् अभिमान रहित होंगे, वे समस्त जीवों में कृष्ण के अधिष्ठान को जानकर सभी को सम्मान प्रदान करेंगे।

एइमत हञा जेइ कृष्णनाम लय।
श्रीकृष्णचरणे ताँर प्रेम उपजय॥'' २६ ॥

२६। प० अनु०—''उपरोक्त विधि के अनुरूप होकर जो कृष्णनाम ग्रहण करता है, उसका श्रीकृष्ण के चरणों में प्रेम उत्पन्न होता है।''

शुद्धा अधोक्षज-कृष्णभक्ति की कामना—
कहिते कहिते प्रभुर दैन्य बाड़िला।
'शुद्धभक्ति' कृष्ण-ठाञि मागिते लागिला॥ २७ ॥

२७। प० अनु०—उपरोक्त वचन बोलते-बोलते श्रीमन्महाप्रभु का दैन्य वर्धित हो गया तथा वह श्रीकृष्ण से शुद्ध भक्ति माँगने लगे।

प्रेमी भक्तों के लक्षण अथवा स्वभाव—
प्रेमेर स्वभाव,—जाँहा प्रेमेर सम्बन्ध।
सेइ माने,—'कृष्णे मोर नाहि भक्तिगन्ध'॥ २८ ॥

२८। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

२८। प्रेम का यह एक स्वभाव है कि जिस व्यक्ति में प्रेम का वास्तविक सम्बन्ध हुआ है, वह दीनतापूर्वक यह मानता है कि 'मुझमें कृष्ण के प्रति लेशमात्र भी भक्ति उदित नहीं हुई है।'

अनुभाष्य

२८। जो—प्रेमधन में द्ररिद हैं, वे कपटता वशत: प्रेम प्राप्त नहीं करने पर भी जगत् में स्वयं के प्रेम प्राप्ति की बात का झूठ-मूठ में प्रचार करते हैं, वास्तव में लोगों के निकट बाह्य प्रकाश अथवा घोषणा के द्वारा कपटी, कृष्णप्रेमसम्पत्ति रहित दरिद्रों के प्रेम प्राप्ति की सम्भावना ही नहीं है। प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय अपने सौभाग्य का ज्ञापन करने के लिये कपटता के आश्रय में अनेक स्थानों पर बाह्य-प्रेम के चिह्न परस्पर प्रकाशित करते हैं। शुद्धभक्तगण ऐसे कपट सहजियाओं को 'प्रेमिक' कहने की बात तो दूर, उनके सङ्ग तक को भक्ति के नष्ट होने का कारण जानकर वर्जन करते हैं ; कपटतापूर्वक उन्हें 'भक्त' की आख्या प्रदान करके शुद्धभक्तों के साथ उन्हें समान मानने का उपदेश नहीं देते। वास्तविक प्रेम के उदित होने पर, जीव अपनी महिमा को छुपाकर कृष्णभजन के लिये ही प्रयास करता है। कपटी प्राकृत-सहजिया लोग कनक-कामिनी-प्रतिष्ठा आदि के लोभ से शुद्धभक्तों को 'दार्शनिक पण्डितप्रवर', 'तत्त्ववित्', 'सूक्ष्मदर्शी' आदि संज्ञाओं से तिरस्कार करके स्वयं को 'रसिक', 'भजनानन्दी', 'भागवतोत्तम', 'लीलारस-पानोन्मत्त', 'रागानुगीय-साधकाग्रगण्य', 'रसज्ञ', 'रसिकचूड़ामणि' आदि भूषणों से समलंकृत करते हैं। वास्तव में वे अपने-अपने चित्त के प्राकृत-भावरङ्ग से भजन-प्रणाली को कलुषित (कलंकित) करके दुष्क्रियाओं में आसक्त होकर स्वयं की झूठी (कपट)-वैष्णवता का ही बहुमानन करते हैं। इस श्रेणी के लेखक अप्राकृत-रस की बात लिखते हुए अपने-अपने प्राकृत भाव समूह को कृष्णसेवा के अङ्गीभूत करते हैं। वे अप्राकृत विप्रलम्भ-रस के स्वरूप को नहीं जानकर विरस से युक्त प्राकृत-सम्भोग को ही 'रस' समझते हैं।

निष्कपट साधक के द्वारा एकमात्र नित्य और शुद्ध काम्य 'शुद्ध-भक्ति का स्वरूप'—(पद्यावली के ८५ वें अंक में उद्धृत शिक्षाष्टक का चतुर्थ श्लोक)

''न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥ २९ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

२९। '' हे जगदीश, मैं धन, जन अथवा सुन्दरी कविता की कामना नहीं करता; (मैं मन में यही कामना करता हूँ कि) जन्म-जन्म में आपमें ही मेरी अहैतुकी भक्ति हो।

अनुभाष्य

२९। हे जगदीश (जगन्नाथ) अहं धनं न, जनं न, सुन्दरीं कवितां वा (इत्यादि-कैतवात्मक-त्रिवर्गमूलं कर्म) न कामये (न प्रार्थये किन्तु) मम जन्मनि जन्मनि (अतः अपौनर्भवरूपं ज्ञानमपि न कामये, अपि तु) त्वयि (अधोक्षजे) अहैतुकी (निष्कामा व्यवधानरहिता) भक्तिः भवतात् (भूयात्—अहं धर्मार्थकामात्मिकां भुक्तिं भवबन्धमोचनात्मिकां मुक्तिं न प्रार्थये, केवलां शुद्धामेव सेवां त्वच्चरणे अहं याचे इत्यर्थः)।

श्लोकार्थ-व्याख्या—

धन, जन नाहि मागों, कविता सुन्दरी।
'शुद्धभक्ति' देह' मोरे, कृष्ण कृपा करि'॥'' ३० ॥

३०। प० अनु०—''हे कृष्ण! मैं आपसे धन, जन तथा सुन्दरी कविता नहीं माँगता हूँ। आप कृपा करके मुझे शुद्धभक्ति प्रदान कीजिए।''

दीनता और कृष्णसेवा-प्रवृत्ति का अविच्छेद्य (अटूट) संयोग—

अति दैन्ये पुनः मागे दास्यभक्ति-दान।
आपनारे करे संसारी जीव-अभिमान॥ ३१ ॥

३१। प० अनु०—श्रीगौरहरि स्वयं को साधारण संसारी जीव मानकर अत्यधिक दीनतापूर्वक पुनः दास्यभक्ति का दान माँगने लगे।

साधक की स्व-स्वरूप में चिद्विलासी अधोक्षज के निकट कृपा-याचना—(पद्यावली के १३ वें अंक में उद्धृत शिक्षाष्टक का पञ्चम श्लोक)

''अयि नन्दतनुज किङ्करं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपङ्कजस्थितधूलीसदृशं विचिन्त्य॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३२। ''ओहे नन्दनन्दन, मैं तुम्हारा नित्य किङ्कर (दास) होने पर भी अपने कर्म के विपाक (दोष) के कारण विषम भव सागर में पड़ा हुआ हूँ, आप कृपा करके मुझे अपने चरणकमलों में स्थित धूलि के समान मानिये।

अनुभाष्य

३२। अयि नन्दतनुज, (सेवानन्दलीलारसविग्रह व्रजेन्द्रसुत) विषमे भवाम्बुधौ (संसार-समुद्रे) पतितं किङ्करं कृपया (अनुकम्पया) तव पादपङ्कजस्थित-धूलीसदृशं (पादः एव पङ्कजं पद्मं तस्मिन् स्थिता अधिष्ठिता संलग्ना या धूली तस्याः सदृशं निजचिर-क्रीतदासमेव) मां विचिन्त्य (भावय)।

श्लोक के अर्थ की व्याख्या—

तोमार नित्य दास मुइ, तोमा पासरिया।
पड़ियाछों भवार्णवे मायाबद्ध हञा॥ ३३ ॥

३३। प० अनु०—''हे नन्दनन्दन! मैं आपका नित्यदास हूँ, किन्तु आपको भूल जाने के कारण मैं मायाबद्ध होकर भवसमुद्र में गिर पड़ा हूँ।

कृपा करि' कर मोरे पदधूली-सम।
तोमार सेवक, करों तोमार सेवन॥'' ३४ ॥

३४। प० अनु०— ''हे प्रभु! आप कृपा करके मुझे अपने चरणों की धूलि के समान बना दीजिए, जिससे आपका सेवक आपकी सेवा में ही नियुक्त रहे।''

नामसङ्कीर्त्तन में सिद्धि-प्रार्थना—

पुनः अति उत्कण्ठा, दैन्य हइल उद्गम।
कृष्ण-ठाञि मागे प्रेम-नामसङ्कीर्त्तन॥ ३५ ॥

३५। प० अनु०—श्रीगौरहरि में पुनः अत्यधिक उत्कण्ठा वशतः दैन्य का प्रादुर्भाव हो आया तथा वह श्रीकृष्ण के निकट प्रेम-नाम सङ्कीर्त्तन करने हेतु कृपा माँगने लगे।

सिद्धि अथवा साध्यभक्ति के बाह्यलक्षण—(पद्यावली के ८४ वें अंक में उद्धृत शिक्षाष्टक का षष्ठ श्लोक)

''नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्‌गद-रुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नाम-ग्रहणे भविष्यति॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३६। ''हे नाथ, आपके नाम-ग्रहण करने में कब मेरे नयनयुगल बहती हुयी अश्रु धारा से सुशोभित होंगे? वचन निकलने के समय मुख से गद्‌गद स्वर बाहर निकलेगा एवं मेरा समस्त शरीर पुलक से युक्त होगा?

अनुभाष्य

३६। हे प्रभो, तव नामग्रहणे (नाम-भजन-काले) मम गलदश्रुधारया (गलन्ती या अश्रुधारा तया सह) नयनं, गद्‌गदरुद्धया (गद्‌गदेन स्वरभेदेन रुद्धया) गिरा (वचसा) वदनं, पुलकैः (रोमाञ्चैः सह) निचितं (व्याप्तं) वपुः कदा भविष्यति?

भक्तिसन्दर्भ की ६९ वीं संख्या में उद्धृत प्रभु-उक्ति—''श्रुतमप्यौपनिषदं दूरे हरिकथामृतात्। यन्न सन्ति द्रवच्चित्तकम्पाश्रुपुलकादयः॥'' [अर्थात् हरिकथामृत से शुद्ध जीव के हृदय में जो चित्त की द्रवता, कम्पन, अश्रु, पुलक आदि अप्राकृत सात्त्विकभाव प्रकटित होते हैं, वे सब लक्षण उपनिषद् में बतलाये गये ब्रह्मज्ञान के श्रवण से नहीं होते, अतएव उसे दूर ही रहने दो।]

श्लोक के अर्थ की व्याख्या—

''प्रेमधन बिना व्यर्थ दरिद्र जीवन!
'दास' करि' वेतन मोरे देह' प्रेमधन!!'' ३७ ॥

३७। प० अनु०—''प्रेम रूपी धन के बिना मेरा यह दरिद्र जीवन व्यर्थ ही है। अतएव हे कृष्ण! आप मुझे अपना दास बनाकर वेतन स्वरूप प्रेमधन प्रदान कीजिए।''

सिद्धि अथवा साध्यभक्ति के अन्तर्लक्षण; अप्राकृत विप्रलम्भ (कृष्ण विरह)- मूलक-भजन—

रसान्तरावेशे हइल वियोग-स्फुरण।
उद्वेग, विषाद, दैन्ये करे प्रलापन॥ ३८ ॥

३८। प० अनु०—श्रीगौरहरि में एक अन्य प्रकार के रस का आवेश होने पर वियोग स्फुरित हो आया। वे उद्वेग, विषाद तथा दैन्य वशतः प्रलाप करने लगे।

पद्यावली ३२७ अंक में उद्धृत शिक्षाष्टक का सप्तम श्लोक—

''युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्द-विरहेण मे॥'' ३९ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

३९। ''हे गोविन्द, आपके अदर्शन में मुझे 'निमेष' का समय भी 'युग' की भाँति लग रहा है; नेत्रों से वर्षा की भाँति अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं, समस्त जगत् शून्यप्राय लग रहा है।

अनुभाष्य

३९। गोविन्दविरहेण (व्रजेन्द्रनन्दनस्य विच्छेदेन) मे (मम) निमेषेण (त्रुटिलवपरिमितकालेन अत्यल्पेन) युगायितं (युगपरिमित-कालवत् तद्‌वत् आचरितं) चक्षुषा (नयनेन) प्रावृषायितं (वर्षाकालीन-मेघवत् आचरितं) सर्वं जगत् शून्यायितं (शून्यवत् आचरितम्—आभातीत्यर्थः)।

श्लोक के अर्थ की व्याख्या—

उद्वेगे दिवस ना जाय, 'क्षण' हैल 'युग'-सम!
वर्षार मेघप्राय अश्रु वर्षे दुनयन!! ४० ॥

४०। प० अनु०—''उद्वेग वशतः दिन व्यतीत नहीं होता, एक-एक क्षण एक-एक युग के समान हो गया है। दोनों नेत्रों से वर्षा ऋतु के मेघों की भाँति अश्रुओं की वर्षा हो रही है।

गोविन्द-विरहे शून्य हइल त्रिभुवन!
तुषानले पोड़े,—जेन ना जाय जीवन॥ ४१ ॥

४१। प० अनु०—''गोविन्द के विरह में त्रिभुवन

शून्यवत् हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि देह तूष (भूसी) में लगी हुयी आग की भाँति जल रही है, किन्तु तब भी देह से प्राण नहीं निकलते।

कृष्ण उदासीन हइला करिते परीक्षण।
सखी सब कहे,—'कृष्ण कर उपेक्षण॥' ४२ ॥

४२। प० अनु०— ''श्रीकृष्ण मेरी परीक्षा करने के लिये मुझसे उदासीन हो गये हैं और समस्त सखियाँ कह रही हैं, 'तुम भी कृष्ण की उपेक्षा करो।''

एतेक चिन्तिते राधार निर्मल हृदय।
स्वाभाविक प्रेमार स्वभाव करिल उदय॥ ४३ ॥

४३। प० अनु०—इस प्रकार चिन्ता करते हुए श्रीराधा रानी के निर्मल हृदय में स्वाभाविक प्रेम का स्वभाव उदित हो आया।

एकान्त कृष्ण परतन्त्रा-शिरोमणि श्रीराधा-भावमय प्रभु—
ईर्ष्या, उत्कण्ठा, दैन्य, प्रौढ़ि, विनय।
एत भाव एक-ठाञि करिल उदय॥ ४४ ॥

४४। प० अनु०—श्रीराधिका में ईर्ष्या, उत्कण्ठा, दैन्य, प्रौढ़ि और विनय—ये समस्त भाव एक साथ उदित हो गये।

एत भावे राधार मन अस्थिर हइला।
सखीगण-आगे प्रौढ़ि-श्लोक जे पड़िला॥ ४५ ॥

४५। प० अनु०—इतने अधिक भावों के एक साथ उदित होने से श्रीराधा जी का मन अस्थिर हो गया। उन्होंने सखियों के समक्ष प्रौढ़ि-श्लोक (निःसंकोच वचनों) का उच्चारण किया।

सेइ भावे प्रभु सेइ श्लोक उच्चारिला।
श्लोक उच्चारिते तद्रूप आपने हइला॥ ४६ ॥

४६। प० अनु०—श्रीराधा रानी के उसी भाव में विभावित होकर श्रीगौरहरि ने उस श्लोक का उच्चारण किया तथा श्लोक का उच्चारण करते ही स्वयं भी वैसे ही हो गये।

सिद्धि अथवा साध्यभक्ति की निष्ठा अर्थात् एकान्त कृष्ण-परतन्त्रता—(पद्यावली के १३४ वें अंक में उद्धृत शिक्षाष्टक का अष्टम श्लोक)

''आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टुमा-
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः॥ ४७ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

४७। इस चरणों में रत दासी को कृष्ण आलिङ्गन-पूर्वक छाती से लगा लें अथवा अदर्शन के द्वारा मर्माहत ही करें, वे—लम्पट पुरुष, मेरे प्रति जिस किसी भी प्रकार का विधान क्यों नहीं करें, [तब भी] वे अन्य कोई नहीं, मेरे ही प्राणनाथ हैं।

अनुभाष्य

४७। सः पादरतां (चरण-सेवैकपरायणां किङ्करीं) मां (राधाम्) आश्लिष्य (गाढ़तरं समालिंग्य) वा पिनष्टु (आत्मसात् करोतु) वा अदर्शनात् (विच्छेदात्) मां मर्महतां (मर्मसुप्रपीड़तां) करोतु वा, सः लम्पटः (निजेन्द्रिय-तर्पणसुखाभिनिविष्टः) यथा तथा विदधातु (यदृच्छया अन्याभिः वल्लभाभिः सह विहरतु वा) तु (तथापि) सः (कृष्णः) एव मत्प्राणनाथः (मद्दयितः एव), न अपरः।

श्लोक के अर्थ की व्याख्या ; ''आमि त' तोमार, तुमि त' आमार, कि काज अपर धने?''[मैं आपकी हूँ आप मेरे हैं, अन्य किसी वस्तु की क्या आवश्यकता?]—[यथा रागः]

''आमि—कृष्णपद-दासी, तेंहो—रससुखराशि,
आलिङ्गिया करे आत्मसाथ।
किबा ना देय दरशन, जारेन मोर तनुमन,
तबु तेंहो — मोर प्राणनाथ॥ ४८ ॥

४८। प० अनु०—''मैं श्रीकृष्ण के चरणकमलों की दासी हूँ तथा वे आनन्द रूपी सुख की सम्पति हैं। श्रीकृष्ण

मुझे आलिङ्गन करके मुझे आत्मसात् करें या फिर मुझे अपने दर्शन प्रदान नहीं करके मेरे तन तथा मन को विरह-ताप प्रदान करें, तब भी वे मेरे प्राणनाथ हैं।

सखि हे, शुन मोर मनेर निश्चय।
किबा अनुराग करे, किबा दुःख दिया मारे,
मोर प्राणेश्वर—कृष्ण, अन्य नय॥ ४९ ॥

४९। प० अनु०—''हे सखि, मेरे मन के निश्चय को सुनो। श्रीकृष्ण मेरे प्रति अपने अनुराग को प्रकट करें या फिर मुझे दुःख देकर मार डालें, तब भी श्रीकृष्ण ही मेरे प्राणों के ईश्वर हैं, अन्य कोई नहीं।

मदीयत्व और तदीयत्व-स्नेह अथवा मधु और धृत स्नेह-माधुर्य-वैचित्र्य-वर्णन; उनके साथ मेरे सुख के समय में भी कृष्णेन्द्रिय तर्पण की इच्छुक मैं उनकी परतन्त्र—

छाड़ि' अन्य नारीगण, मोर वश तनुमन,
मोर सौभाग्य प्रकट करिया।
ता-सबारे देय पीड़ा, आमा-सने करे क्रीड़ा,
सेइ नारीगणे देखाञा॥ ५० ॥

उनके विरह में मेरे दुःख के समय में भी कृष्ण की इन्द्रियों के तर्पण की इच्छुक मैं उनकी परतन्त्र—

किबा तेंहो लम्पट, शठ, धृष्ट, सकपट,
अन्य नारीगण करि' साथ।
मोरे दिते मनः पीड़ा, मोर आगे करे क्रीड़ा,
तबु तेंहो—मोर प्राणनाथ॥ ५१ ॥

५०-५१। प० अनु०—''यदि श्रीकृष्ण अन्य स्त्रियों को त्याग कर मेरे तन और मन के सम्पूर्ण रूप से वशीभूत होकर मेरे सौभाग्य को प्रकटित कर उन सब को पीड़ा दें तथा उन स्त्रियों को दिखला-दिखलाकर मेरे साथ लीला करें या फिर वे लम्पट, शठ, धृष्ट, कपटी श्रीकृष्ण अन्य स्त्रियों को अपने साथ लेकर मेरे मन को पीड़ा प्रदान करने के उद्देश्य से मेरे समक्ष उनके साथ लीला करें, तब भी वे मेरे प्राणनाथ हैं।

अमृतप्रवाह भाष्य

५०। 'मोर वश तनुमन'—काय और मन के एकान्त बाध्य।

ऐकान्तिकी कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-वाञ्छा— ''तोमार सेवाय, दुःख हय जत, सेइ त' परमसुख'' [अर्थात् तुम्हारी सेवा करने में जितना भी प्रकार के दुःख मिले, वही परम सुख है]—

ना गणि आपन-दुःख, सबे वाञ्छि ताँर सुख,
ताँर सुख—आमार तात्पर्य।
मोरे यदि दिया दुःख, ताँर हैल महासुख,
सेइ दुःख—मोर सुखवर्य॥ ५२ ॥

५२। प० अनु०—''मैं अपने दुःख के विषय में नहीं सोचती, मैं केवल मात्र श्रीकृष्ण के सुख की वाञ्छा करती हूँ। श्रीकृष्ण का सुख-विधान करना ही मेरे जीवन का एकमात्र तात्पर्य (उद्देश्य) है। यदि मुझे दुःख देकर उन्हें अत्यधिक सुख की प्राप्ति होती है, तब वह दुःख मेरे लिये सर्वोत्तम सुख है।

अनुभाष्य

५२। भक्त अपने सुख और दुःख को नहीं गिनता; जिससे कृष्ण का सुख उदित होता है, वह उस के लिये ही अखिल चेष्टा युक्त रहता है। कृष्ण के सुख को उदित करने के अलावा भक्त का अपना स्वतन्त्र सुख अन्य कुछ भी नहीं है। कृष्ण के द्वारा भक्त को दुःख देकर अत्यन्त सुखी होने पर, भक्त उस प्रकार के दुःख को ही सर्वोत्तम निज-सुख मानता है। प्राकृत-रसिकाभिमानी अतत्त्वज्ञ सहजिया-सम्प्रदाय में कोई-कोई अपने सुख की अभिलाषा को ही काम्यफल मानते हैं, कोई प्राकृतसुख की अपेक्षा कृष्णसेवा के उपलक्षण में 'स्वयं ही अधिकतर सुखभोग करूँगा',— इत्यादि अनेक प्रकार के सुखभोग तात्पर्यमय कर्मकाण्ड को ही अपने भजन की चेष्टा का 'फल' मानते हैं; वास्तव में उनकी इस प्रकार की चेष्टा और कल्पना—शुद्धभजन के विषय में कपटता मूलक अनभिज्ञता का ही फल मात्र है।

निरन्तर कृष्णेन्द्रिय तर्पण अथवा कृष्ण सुखवर्धन चेष्टा—

जे नारीरे वाञ्छे कृष्ण, तार रूपे सतृष्ण,
तारे ना पाञा हय दुःखी।
मुइ तार पाये पड़ि', लञा जाङ हाते धरि',
क्रीड़ा कराञा ताँरे करों सुखी॥ ५३ ॥

५३। प० अनु०—''श्रीकृष्ण जिस नारी की अभिलाषा करते हैं, जिसके रूप के प्रति अत्यधिक तृष्णातुर होते हैं तथा उसे प्राप्त नहीं कर पाने के कारण दुःखी होते हैं, मैं उस नारी के चरणों में पड़कर उसके हाथ को पकड़कर श्रीकृष्ण के पास ले जाऊँगी एवं श्रीकृष्ण की उसके साथ लीला कराके मैं उन्हें प्रसन्न करूँगी।

कान्ता कृष्णे करे रोष, कृष्ण पाय सन्तोष,
सुख पाय ताड़न-भर्त्सने।
यथायोग्य करे मान, कृष्ण ताते सुख पान,
छाड़े मान अल्प-साधने॥ ५४ ॥

५४। प० अनु०—[तब मैं कभी-कभी किसलिए मान धारण करती हूँ, उसका कारण सुनो।] ''कान्ता यदि श्रीकृष्ण के प्रति रोष प्रदर्शित करती है तो श्रीकृष्ण उससे सन्तुष्ट होते हैं, वे डाँट-फटकार तथा तिरस्कार करने पर प्रसन्न होते हैं। कान्ता के द्वारा यथायोग्य मान करने पर श्रीकृष्ण ऐसा देखकर प्रसन्न होते हैं तथा थोड़े प्रयास से ही कान्ता अपने मान को छोड़ देती है।

कृष्ण को सम्भोग अर्थात् उनके द्वारा अपने स्वार्थ को पूर्ण करने की इच्छा करने वाली कामिनी का तिरस्कार—

सेइ नारी जीये केने, कृष्ण-मर्म नाहि जाने,
तबु कृष्णे करे गाढ़ रोष।
निज-सुखे माने लाभ, पड़ुक तार शिरे बाज,
कृष्णेर मात्र चाहिये सन्तोष॥ ५५ ॥

५५। प० अनु०—''जो नारी कृष्ण के मर्म को नहीं जानकर कृष्ण के प्रति गाढ़ रोष करती है, वह जीवित ही क्यों रहती है। जो अपने सुख में ही लाभ मानती है, उसके सिर पर तो वज्र पड़ना चाहिये। मैं तो केवल श्रीकृष्ण का ही सन्तोष चाहती हूँ।

अनुभाष्य

५५। जो भक्त अपने सुख में अपने को कृतार्थ मानता है, उसका सर्वनाश हो जाता है, वे प्राकृत सम्भोग-परायण सहजिया 'अभक्त' बन जाता है।

कृष्ण का सुख विधान करने वाली अपने प्रतिकूल कृष्ण-सेविका का भी आदर—

जे-गोपी मोर करे द्वेषे, कृष्णेर करे सन्तोषे,
कृष्ण जारे करे अभिलाष।
मुइ तार घरे जाञा, तारे सेवों दासी हञा,
तबे मोर सुखेर उल्लास॥ ५६ ॥

५६। प० अनु०—''जो गोपी मेरे प्रति तो द्वेष करती है, किन्तु वह श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करती है, और श्रीकृष्ण भी उसकी अभिलाषा करते हैं, तब फिर मैं उस गोपी के घर पर जाकर उसकी दासी बनकर उसकी सेवा करूँगी, तभी मेरे सुख में उल्लास उत्पन्न होगा अर्थात् सुख वर्धित होगा।

कुष्ठ रोगी-विप्र-पत्नी के पतिव्रता-धर्म का वर्णन—

कुष्ठी-विप्रेर रमणी, पतिव्रता-शिरोमणि,
पति लागि' कैल वेश्यार सेवा।
स्तम्भिल सूर्येर गति, जीयाइल मृत पति,
तुष्ट कैल मुख्य तिन-देवा॥ ५७ ॥

५७। प० अनु०—अमृतप्रवाह भाष्य एवं अनुभाष्य द्रष्टव्य है।

अमृतप्रवाह भाष्य

५७। कहा जाता है कि किसी कुष्ठ से ग्रस्त ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री ने पति की सन्तुष्टि के लिये पति को प्रिय लगने वाली वैश्या की सेवा की थी; पति की मृत्यु के समय पातिव्रत्य के बल से उसने सूर्य की गति को रोककर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन देवताओं को सन्तुष्ट करके अपने मृत पति को जीवित किया था। तात्पर्य यह है कि कृष्ण के प्रति दृढ़-पातिव्रत्य ही जीव

का शृङ्गाररस से उत्पन्न उत्तम धर्म है। [अर्थात् शृङ्गार-रस का अनुशीलन करने वाले जीव में ही कृष्ण के प्रति दृढ़-पातिव्रत्य रूपी उत्तम धर्म उत्पन्न होता है।]

अनुभाष्य

५७। आदित्य-पुराण और मार्कण्डेय पुराण (१५.१९) में एवं पद्मपुराण में उल्लिखित है कि किसी कुष्ठ रोग से ग्रस्त ब्राह्मण की अत्यन्त सुन्दर एवं स्निग्ध पतिव्रता पत्नी ने अपने अयोग्य कुष्ठरोगग्रस्त पति की वासना की परितृप्ति के लिये पाप-निकेतन वैश्या के भवन का संस्कार करके वैश्या के साथ अपने अकर्मण्य कामुक पति के सम्मिलन का प्रयास किया था। वैश्या के द्वारा उसकी बात को मान लिये जाने पर पतिव्रता ब्राह्मणी अपने कुष्ठरोगी पति को उसकी इच्छानुसार वैश्यालय में ले गयी। वह कुष्ठरोगी पापिष्ठ ब्राह्मण पतिव्रता (पत्नी) की निष्ठा को देखकर अन्त में पाप से सम्पूर्ण रूप से निवृत्त होकर जब रात्रि में अपने घर लौट रहा था, तब माण्डव्य-ऋषि के शरीर से उसके पैर के स्पर्श होने से माण्डव्य-ऋषि के द्वारा अभिशाप ग्रस्त हुआ। पतिव्रता ब्राह्मणी ने जब सुना कि उसके पति के अनजाने में किये गये कर्म से समाधि के भङ्ग होने के कारण ऋषि ने क्रोधित होकर 'सूर्योदय के बाद ही उसके प्राण छूट जायेंगे' ऐसा कहकर अभिशाप दिया है एवं उसके फलस्वरूप पतिव्रता होने पर भी उसका विधवा बनना—अवश्यम्भावी है, तब उसके विरोध स्वरूप उसने सूर्योदय को उदित नहीं होने देने की प्रतिज्ञा की। उसके इस प्रयास को देखकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव,—इन प्रधान तीन देवों ने उसके समीप आकर, पतिव्रता की पति-परायणता से सन्तुष्ट होकर उसके पति के पुनः स्वस्थ होने और नवजीवन प्राप्ति की व्यवस्था कर दी। तात्पर्य यह है कि इस प्रकार अपने स्वार्थ से रहित होकर केवल पातिव्रत्य ही (केवल-सेव्य के सुख की वाञ्छा ही) शुद्धभक्तजनों के लिये उचित है।

''कृष्णप्रेमभावित-चित्त-इन्द्रियकाया''—

''कृष्ण—मोर जीवन, कृष्ण—मोर प्राणधन,
कृष्ण—मोर प्राणेर पराण।
हृदय-उपरे धरों, सेवा करि' सुखी करों,
एइ मोर सदा रहे ध्यान॥ ५८ ॥

५८। प० अनु०—''श्रीकृष्ण मेरे जीवन स्वरूप हैं, श्रीकृष्ण मेरे प्राण-धन हैं, श्रीकृष्ण मेरे प्राणों के भी प्राण हैं। मैं श्रीकृष्ण को अपने हृदय के ऊपर रखूँ, उनकी सेवा करके उन्हें सुखी करूँ, यह बात ही सदैव मेरे ध्यान में रहती है।

सर्वेन्द्रियों के द्वारा कृष्ण के सुख का विधान और निरन्तर कृष्ण के किङ्कर होने का अभिमान—

मोर सुख—सेवने, कृष्णेर सुख—सङ्गमे,
अतएव देह देङ दान।
कृष्ण मोरे 'कान्ता' करि', कहे मोरे 'प्राणेश्वरी',
मोर हय 'दासी'-अभिमान॥ ५९ ॥

५९। प० अनु०—''मेरा सुख श्रीकृष्ण की सेवा करने में है तथा श्रीकृष्ण का मुझसे सङ्गम (मिलन) होने में ही सुख है अतएव मैं श्रीकृष्ण को अपनी देह अर्पण करती हूँ। कृष्ण मुझे अपनी कान्ता बनाकर मुझे अपनी प्राणेश्वरी कहते हैं, किन्तु मुझमें उनकी दासी होने का ही अभिमान है।

स्वसुख की अपेक्षा सेवन में ही सेविका की असीम प्रीति—

कान्त-सेवा-सुखपूर, सङ्गम हैते सुमधुर,
ताते साक्षी—लक्ष्मी ठाकुराणी।
नारायण-हृदि स्थिति, तबु पादसेवाय मति,
सेवा करे 'दासी'-अभिमानी॥'' ६० ॥

६०। प० अनु०—''कान्त की सेवा सुख का पूर (सार) है, सेवा-सुख सङ्गम से भी अत्यधिक मधुर है, इसकी साक्षी लक्ष्मी ठाकुराणी हैं। यद्यपि वे नारायण के हृदय पर स्थित रहती हैं, तब भी उनकी नारायण के चरणों की सेवा में ही मति लगी रहती है तथा वे स्वयं में नारायण की दासी होने के अभिमान का पोषण करती हैं।''

श्रीराधा-भावमय प्रभु के द्वारा केवल प्रेम का आस्वादन—

एइ राधार वचन, विशुद्ध प्रेम-लक्षण,
आस्वादये श्रीगौर-राय।
भावे मन नहे स्थिर, सात्त्विके व्यापे शरीर,
मन-देह धारण ना जाय॥ ६१ ॥

६१। प० अनु०—श्रीराधारानी के उपरोक्त वचन जो विशुद्ध प्रेम के लक्षण स्वरूप हैं, श्रीगौर सुन्दर उन्हीं का आस्वादन कर रहे थे। भाव की अवस्था में होने के कारण उनका मन स्थिर नहीं था, उनके शरीर पर सात्त्विक भाव व्याप्त हो गये थे तथा वे अपने मन एवं देह को धारण नहीं कर पा रह थे।

कृष्ण की इन्द्रियों की प्रीति की वाञ्छा में आत्मेन्द्रिय-प्रीति की वाञ्छा का अभाव; स्वभजन- विभजन- प्रयोजनावतार महावदान्य गौर का शिक्षाष्टक के द्वारा जीव को सम्बन्ध-अभिधेय- प्रयोजनात्मक श्रीमद्भागवत के फल के निर्यास (सार) का वितरण—

व्रजेश्वर-शुद्धप्रेम,—जेन जाम्बुनद-हेम,
आत्म-सुखेर जाँहा नाहि गन्ध।
स्व-प्रेम जाना' ते लोके, प्रभु कैला एइ श्लोके,
पद कैला अर्थेर निर्बन्ध॥ ६२ ॥

६२। प० अनु०— व्रजेश्वर अर्थात् कृष्ण के प्रति श्रीराधा जी का शुद्ध-प्रेम जाम्बुनदी के सोने की भाँति है, उसमें आत्म-सुख की गन्ध तक भी नहीं है। अपने हृदय के उसी प्रेम को लोगों को बतलाने के लिये श्रीमन्महाप्रभु ने उपरोक्त अष्टम श्लोक की रचना की तथा उसके वास्तविक अर्थ को प्रदर्शित करने हेतु पद कहे।

अनुभाष्य

६२। पाठान्तर में, 'व्रजेर विशुद्ध प्रेम', पाठान्तर में, 'से-प्रेम'।

एइमत महाप्रभु भावाविष्ट हञा।
प्रलाप करिला किछु श्लोक पड़िया॥ ६३ ॥

६३। प० अनु०—इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने भाव में आविष्ट होकर श्लोक पढ़कर कुछ प्रलाप किया।

इस शिक्षाष्टक के स्वयं ही आस्वादक और स्वयं ही प्रचारक—

पूर्वे अष्ट-श्लोक करि' लोके शिक्षा दिला।
सेइ अष्ट-श्लोक आपने आस्वादिला॥ ६४ ॥

६४। प० अनु०—पहले श्रीमन्महाप्रभु ने आठ श्लोकों की रचना करके लोगों को उसकी शिक्षा प्रदान की एवं तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं भी उन आठ श्लोकों की व्याख्या करके उनका आस्वादन किया।

'श्रीशिक्षाष्टक' के श्रवण और कीर्त्तन से निश्चय ही कृष्णप्रेम की प्राप्ति—

प्रभुर 'शिक्षाष्टक'- श्लोक जेइ पड़े, शुने।
कृष्णे प्रेमभक्ति तार बाड़े दिने दिने॥ ६५ ॥

६५। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु द्वारा रचित 'शिक्षाष्टक' के श्लोकों को जो व्यक्ति पढ़ता तथा सुनता है, उसके हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है।

पूर्णचन्द्र के उदित होने पर समुद्र के उफनने के समान, अतुल गम्भीरता होने पर भी विप्रलम्भ से उत्पन्न दिव्योन्माद- महाभाव में प्रभु की सदैव अस्थिरता—

यद्यपिह प्रभु—कोटिसमुद्र-गम्भीर।
नाना-भाव-चन्द्रोदये हयेन अस्थिर॥ ६६ ॥

६६। प० अनु०—यद्यपि श्रीमन्महाप्रभु समुद्र से भी कोटि गुणा अधिक गम्भीर थे तथापि अनेक भावों रूपी चन्द्रों के उदित होने पर वे अस्थिर हो जाते थे।

महाभागवत, मुक्त, परमहंसगणों के नित्य आस्वाद्य और विप्रलम्भ भाव में आविष्ट प्रभु की प्रिय ग्रन्थावली—

जेइ जेइ श्लोक जयदेव, भागवते।
रायेर नाटके, जेइ आर कर्णामृते॥ ६७ ॥
सेइ सेइ भावे श्लोक करिया पठने।
सेइ सेइ भावावेशे करेन आस्वादने॥ ६८ ॥

६७-६८। प० अनु०—जो-जो श्लोक कवि जयदेव की लेखनी, श्रीमद्भागवत, श्रीरायरामानन्द के जगन्नाथ-वल्लभ-नाटक तथा श्रीबिल्वमङ्गल ठाकुर कृत

श्रीकृष्णकर्णामृत में वर्णित हैं, श्रीमन्महाप्रभु उन-उन भावों के अनुरूप श्लोकों का पाठ करके उन-उन भावों के आवेश में उनका आस्वादन करते थे।

अनुभाष्य

६७। जयदेव,—अर्थात् उनके द्वारा रचित अष्टपदी अथवा गीत-गोविन्द।

अन्तिम बारह वर्षों की अन्त्यलीला में अनुक्षण कृष्णप्रेम का आस्वादन—

द्वादश वत्सर ऐछे दशा—रात्रि-दिने।
कृष्णरस आस्वादये दुइबन्धु-सने॥ ६९ ॥

६९। प० अनु०— श्रीमन्महाप्रभु की बारह वर्षों तक रात-दिन ऐसी दशा थी, वे श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरामानन्द राय रूपी अपने दो बन्धुओं के साथ कृष्णरस का आस्वादन करते थे।

साक्षात् भगवान् शेष-विष्णु की भी प्रभु की कृष्ण-प्रेममयी दशा के वर्णन में असमर्थता—

सेइ सब लीला-रस आपने अनन्त।
सहस्र-वदने वर्णि' नाहि पा'न अन्त॥ ७० ॥

७०। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा प्रकाशित उस लीला-रस का स्वयं अनन्त भी अपने सहस्र मुखों के द्वारा वर्णन करके अन्त नहीं पा पाते।

महासुकृति के फल से जीव उस सागर की एक बूँद के स्पर्श से धन्य—

जीव क्षुद्रबुद्धि कोन् ताहा पारे वर्णिते?
तार एक कणा स्पर्शि आपना शोधिते॥ ७१ ॥

७१। प० अनु०—तब फिर क्षुद्रबुद्धि वाला कौन-सा जीव उस लीला-रस का वर्णन कर सकता है? मैं तो स्वयं को पवित्र करने के उद्देश्य से ही उस लीला-रस रूपी समुद्र के एक कण का स्पर्श कर रहा हूँ।

ग्रन्थ के बड़े हो जाने के भय से प्रभु की प्रेम-चेष्टा के वर्णन को विश्राम—

जत चेष्टा, जत प्रलाप,—नाहि पारावार।
से-सब वर्णिते ग्रन्थ हय सुविस्तार॥ ७२ ॥

७२। प० अनु०—श्रीमन्महाप्रभु जितनी प्रकार की चेष्टाएँ करते, जितने प्रकार के प्रलाप करते—उनका कोई पारावार (सीमा) नहीं था। उन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करने से ग्रन्थ बहुत अधिक बढ़ जायेगा।

चैतन्यभागवत में विस्तृत वर्णन हेतु इस ग्रन्थ में संक्षेप में वर्णित, वहाँ संक्षेप में वर्णन हेतु यहाँ पर विस्तृत वर्णित—

वृन्दावन-दास प्रथम जे लीला वर्णिल।
सेइ सब लीलार आमि सूत्रमात्र कैल॥ ७३ ॥

७३। प० अनु०—श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने पहले जिन लीलाओं का स्वरचित चैतन्य भागवत में वर्णन किया है, मैंने उन समस्त लीलाओं का केवल सूत्र के रूप में ही वर्णन किया है।

ताँर त्यक्त 'अवशेष' संक्षेपे कहिल।
लीलार बाहुल्य ग्रन्थ तथापि बाड़िल॥ ७४ ॥

७४। प० अनु०—मैंने श्रीवृन्दावन दास ठाकुर के द्वारा अवर्णित श्रीमन्महाप्रभु की लीलाओं का संक्षेप में वर्णन किया है, तब भी लीलाओं की विविधता के कारण ग्रन्थ वर्धित हो ही गया है।

अतएव सेइ सब लीला ना पारि वर्णिबारे।
समाप्त करिलुँ लीला करि' नमस्कारे॥ ७५ ॥

७५। प० अनु०—अतएव मैं श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा की गयी समस्त लीलाओं का वर्णन नहीं कर सकता, इसलिए मैंने उनके द्वारा की गयी लीलाओं को नमस्कार करके इस ग्रन्थ को समाप्त कर दिया है।

जे किछु कहिलुँ, एइ दिग्दरशन।
एइ अनुसारे हबे तार आस्वादन॥ ७६ ॥

७६। प० अनु०—मैंने अभी तक जो वर्णन किया है, वह दिग्दर्शन मात्र है, इसके अनुसार ही भक्तगण उन लीलाओं का अस्वादन करेंगे।

स्वयं श्रीचैतन्य की इच्छा से परिचालित होने पर भी ग्रन्थकार की दैन्यपूर्ण उक्ति–

प्रभुर गम्भीर-लीला ना पारि बुझिते।
बुद्धि-प्रवेश नाहि ताते, ना पारि वर्णिते॥ ७७ ॥

७७। प० अनु०—मैं श्रीमन्महाप्रभु की गम्भीर लीलाओं को नहीं समझ पाया, मेरी बुद्धि का उन लीलाओं में प्रवेश नहीं है, इसलिए मैं उनका वर्णन नहीं कर पाया।

मानद (सभी को सम्मान देने वाले) ग्रन्थकार के द्वारा श्रोतृवर्ग की वन्दना–

सब श्रोता-वैष्णवेर वन्दिया चरण।
चैतन्यचरित्र-वर्णन कैलुँ समापन॥ ७८ ॥

७८। प० अनु०—मैं समस्त श्रोता-वैष्णवों के चरणों की वन्दना करके चैतन्य-चरित्र का वर्णन समाप्त कर रहा हूँ।

अलौकिक अधोक्षज गौरलीला-सिन्धु– बद्धजीव के स्पर्श से अतीत, जीव के अभिमान में दैन्य से भरकर ग्रन्थकार के द्वारा उसके बिन्दु को स्पर्श करने की चेष्टा-मात्र–

आकाश—अनन्त, ताते जैछे पक्षीगण।
जार जत शक्ति, तत करे आरोहण॥ ७९ ॥
ऐछे महाप्रभुर लीला नाहि ओर-पार।
'जीव' हञा केबा सम्यक् पारे वर्णिबार? ८० ॥

७९-८०। प० अनु०—आकाश अनन्त है तथा जिस पक्षी की जितनी शक्ति होती है, वे उस आकाश में उतनी ऊँचाई तक उड़ता है, उसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभु की लीलाओं का कोई ओर-छोर नहीं है, 'जीव' होकर कौन उसका सम्पूर्ण रूप से वर्णन कर सकता है।

अनुभाष्य

७९। भा: १.१८.२३ श्लोक द्रष्टव्य।

जावत् बुद्धिर गति, ततेक वर्णिलुँ।
समुद्रेर मध्ये जेन एक कण छुँइलुँ॥ ८१ ॥

८१। प० अनु०—मेरी बुद्धि की जहाँ तक गति है अर्थात् पहुँच है, मैंने चैतन्यचरित्र का वहाँ तक वर्णन किया है, मानो मैंने समुद्र के एक कण को स्पर्श किया हो।

ठाकुर वृन्दावन का माहात्म्य और गौर-लीला–

नित्यानन्द-कृपापात्र—वृन्दावन-दास।
चैतन्यलीलाय तेंहो हयेन 'आदिव्यास'॥ ८२ ॥

८२। प० अनु०—श्रीवृन्दावन दास-ठाकुर श्रीनित्यानन्द प्रभु के कृपा-पात्र हैं तथा वे चैतन्यलीला के 'आदि व्यास' हैं।

अनुभाष्य

८२। कोई-कोई कहते हैं कि,—बाद वाले शुद्ध गौर-लीला के लेखक आचार्यगण भी 'आदिव्यास' श्रीवृन्दावन दास ठाकुर के आनुगत्य में उनके अभिन्न अङ्ग अथवा 'प्रकाश व्यास'-शब्द वाच्य हैं।

ताँर आगे यद्यपि सब लीलार भाण्डार।
तथापि अल्प वर्णिया छाड़िलेन आर॥ ८३ ॥

८३। प० अनु०—यद्यपि श्रीवृन्दावन दास ठाकुर के समक्ष श्रीमन्महाप्रभु की लीलाओं का भाण्डार था तथापि उन्होंने उसमें से अल्प वर्णन करके अन्य सब छोड़ दिया।

जे किछु वर्णिलुँ, सेह संक्षेप करिया।
लिखिते ना पारेन, तबु राखियाछेन लिखिया॥ ८४॥

८४। प० अनु०—श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने स्वरचित श्रीचैतन्य भागवत में लिखा है कि ''मैंने जो कुछ वर्णन किया है, उसे भी संक्षेप में ही वर्णन किया है।'' यद्यपि वे भावाविष्ट होने के कारण उतना भी नहीं लिख पा रहे थे, तब भी उन्होंने कृपापूर्वक कुछ लिखकर रखा है।

विष्णु, वैष्णव और शुद्ध विष्णु भक्ति के सम्बन्ध में चूड़ान्त (सर्वोत्तम) ग्रन्थ चैतन्यभागवत ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण–

चैतन्यमङ्गले तेंहो लिखियाछेन स्थाने-स्थाने।
सेइ वचन शुन, सेइ परम-प्रमाणे॥ ८५ ॥

८५। प० अनु०—श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने स्वरचित चैतन्यमङ्गल (चैतन्यभागवत) में स्थान-स्थान पर अन्य जो एक वचन लिखा है, आप लोग उस निम्नोक्त वचन को भी सुनिये, वही सर्वोत्तम प्रमाण है।

संक्षेपे कहिलुँ, विस्तार ना जाय कथने।
विस्तारिया वेदव्यास करिबेन वर्णने॥ ८६ ॥

८६। प० अनु०—श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने लिखा है—''मैंने श्रीमन्महाप्रभु की लीलाओं का संक्षेप में ही वर्णन किया है, विस्तारपूर्वक उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। विस्तारपूर्वक वेदव्यास उसका वर्णन करेंगे।''

चैतन्यमङ्गले इहा लिखियाछे स्थाने-स्थाने।
सत्य कहेन,—'आगे व्यास करिला वर्णने'॥ ८७ ॥

८७। प० अनु०—चैतन्य मङ्गल (चैतन्यभागवत) में श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने स्थान-स्थान पर यही लिखा है। उन्होंने सत्य ही कहा है,—'आगे व्यास ने वर्णन किया है'।

अनुभाष्य

८७। पाठान्तर में,—'आगे व्यास करिबेन वर्णने (आगे व्यास वर्णन करेंगे)' अर्थात् चैतन्य भागवत के प्रथम अध्याय में —''शेष खण्डे चैतन्येर अनन्त विलास। विस्तारिया वर्णिते आछेन वेदव्यास॥'' इत्यादि बहुत से वचन श्रील कविराज गोस्वामी आदि प्रमुख बाद के गौरलीला के लेखक शुद्ध वैष्णव-आचार्यों को उद्देश्य करके ही लिखे गये हैं,—कोई-कोई ऐसी व्याख्या भी करता है।

अमानी और मानद ग्रन्थकार के द्वारा स्वयं को ठाकुर-वृन्दावन का उच्छिष्ट भोजी समझना—

चैतन्य-लीलामृत-सिन्धु—दुग्धाब्धि-समान।
तृष्णानुरूप झारी भरि' तेंहो कैला पान॥ ८८ ॥

८८। प० अनु०—श्रीचैतन्य-लीलामृत रूपी सिन्धु दुग्ध के सागर के समान है। श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने अपनी तृष्णा के अनुरूप मटकी भरके उसका पान प्रारम्भ किया था।

ताँर झारी-शेषामृत किछु मोरे दिला।
ततेके भरिल पेट, तृष्णा मोर गेला॥ ८९ ॥

८९। प० अनु०—श्रीवृन्दावन दास ठाकुर ने स्वयं पान करने के उपरान्त अपनी मटकी में बचे हुए अमृत में से कुछ मुझे दिया है, उस से ही मेरा पेट भर गया तथा मेरी तृष्णा मिट गयी।

पुनः दैन्यपूर्ण उक्ति—

आमि—अति क्षुद्र जीव, पक्षी राङ्गाटुनि।
से जैछे तृष्णाय पिये समुद्रेर पानी॥ ९० ॥
तैछे आमि एक कण छुँइलुँ लीलार।
एइ दृष्टान्ते जानिह प्रभुर लीलार विस्तार॥ ९१ ॥

९०-९१। प० अनु०—मैं छोटे टुनटुनी पक्षी की भाँति अति क्षुद्र जीव हूँ, वह टुनटुनी पक्षी जिस प्रकार तृष्णा निवृत्ति के लिये समुद्र पर जाकर एक बूँद ही पीकर तृप्त हो जाता है, उसी प्रकार क्षुद्र जीव होने के कारण मैं भी श्रीमन्महाप्रभु की लीला के एक कण का ही स्पर्श करके तृप्त हो गया हूँ, इस दृष्टान्त के द्वारा ही आप श्रीमन्महाप्रभु की लीला के विस्तार को समझ लेना अर्थात् समझ लेना कि तब फिर श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कितनी अधिक लीलाएँ की होंगी।

अमृतप्रवाह भाष्य

९०। राङ्गाटुनि, —छोटा टुनटुनी पक्षी।

प्राकृत कवि और साहित्यिक की भाँति अप्राकृत कवि-सम्राट ग्रन्थकार अहंकार विमूढ़ात्मा नहीं होकर सम्पूर्ण रूप से कृष्ण के परतन्त्र और चैतन्य की इच्छा के द्वारा चलाये जाने वाले—

'आमि लिखि',—इहा मिथ्या करि अनुमान।
आमार शरीर—काष्ठपुतली-समान॥ ९२ ॥

९२। प० अनु०—'मैं चैतन्यलीला का वर्णन कर रहा हूँ'—वास्तव में यह भी मेरा मिथ्या अनुमान ही है। वास्तव में मेरा शरीर तो लकड़ी की बनी पुतली के समान है।

अमृतप्रवाह भाष्य

९२। मैं—लकड़ी की बनी पुतली के समान अकर्मण्य (कोई भी कार्य करने में असमर्थ) हूँ ; मैंने यह ग्रन्थ लिखा है—ऐसा अनुमान करना व्यर्थ है। तात्पर्य यह है, भगवान् और भक्तजन ही मुझसे यह ग्रन्थ लिखवा रहे हैं।

स्वयं को यन्त्र-मानकर अपनी अयोग्यता का वर्णन करके दैन्यपूर्ण उक्ति—

वृद्ध, जरातुर आमि अन्ध, बधिर।
हस्त हाले, मनोबुद्धि नहे मोर स्थिर॥ ९३ ॥

९३। प० अनु०—मैं वृद्ध हूँ, जरातुर (कमजोर) हूँ, मुझे बहुत कम दिखलायी देता है तथा मुझे बहुत कम सुनायी देता है। मेरे हाथ काँपते हैं तथा मेरा मन और बुद्धि भी स्थिर नहीं है।

नाना-रोगग्रस्त,—चलिते बसिते ना पारि।
पञ्चरोग-पीड़ा-व्याकुल, रात्रि-दिने मरि॥ ९४ ॥

९४। प० अनु०—मैं अनेक रोगों से ग्रस्त हूँ—मैं न तो चल पाता हूँ और न ही बैठ पाता हूँ। मैं रात-दिन पञ्च इन्द्रियों के रोगों की पीड़ा से दु:खित होता हूँ।

पूर्वे ग्रन्थे इहा कैराछि निवेदन।
तथापि लिखिये, शुन इहार कारण॥ ९५ ॥

९५। प० अनु०—यद्यपि मैंने पहले भी इसी ग्रन्थ में निवेदन किया है कि मैं इस ग्रन्थ को लिखने में असमर्थ हूँ किन्तु तब भी कैसे लिख रहा हूँ, आप इसका कारण सुनिये।

अपने उपास्य-विग्रहों का वर्णन—

श्रीगोविन्द, श्रीचैतन्य, श्रीनित्यानन्द।
श्रीअद्वैत, श्रीभक्त, आर श्रीश्रोतृवृन्द॥ ९६ ॥
श्रीस्वरूप, श्रीरूप, श्रीसनातन।
श्रीरघुनाथ-दास श्रीगुरु श्रीजीव-चरण॥ ९७ ॥

मदनमोहन-कृपा लाभरूपी अपने- सौभाग्य का प्रख्यापन (वर्णन)—

इँहा-सबार चरण-कृपाय लेखाय आमारे।
आर एक हय—तेंहो अतिकृपा करे॥ ९८ ॥

९६-९८। प० अनु०—श्रीगोविन्ददेव, श्रीचैतन्यदेव, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु, समस्त श्रीभक्त, तथा समस्त श्रीश्रोतागण, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीगुरुदेव- श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, तथा श्रीजीव गोस्वामी—इन सबके चरणों की कृपा ही मुझसे लिखवाती है। अन्य कोई एक और हैं, जो मुझ पर बहुत अधिक कृपा करते हैं।

अनुभाष्य

९७। 'श्रीरघुनाथदास श्रीगुरु'-ग्रन्थकार श्रीकविराज गोस्वामी प्रभु के भजन-शिक्षा गुरु ही श्रीरूपानुग-श्रेष्ठ श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी प्रभु। बाद की १४५ संख्या और आदि-लीला के प्रथम परिच्छेद के प्रारम्भ में अनुभाष्य में श्रीरूपानुग-आम्नाय अथवा गुरु-परम्परा द्रष्टव्य है।

श्रीमदनगोपाल मोरे लेखाय आज्ञा करि'।
कहिते ना जुयाय, तबु रहिते ना पारि॥ ९९ ॥

९९। प० अनु०—श्रीमदन गोपाल (श्रीमदन मोहन) मुझे आदेश प्रदान करके मुझसे लिखवा रहे हैं। यद्यपि यह सब कहना उचित प्रतीत नहीं होता, किन्तु तब भी मैं कहे बिना रह नहीं पा रहा हूँ।

ना कहिले हय मोर कृतघ्नता-दोष।
दम्भ करि' बलि, श्रोता, ना करिह रोष॥ १०० ॥

श्रोताओं की वन्दना—

तोमा-सबार चरण-धूलि करिनु वन्दन।
ताते चैतन्य-लीला हैल, जे किछु लिखन॥ १०१॥

१००-१०१। प० अनु०—यदि मैं इसके विषय में नहीं कहूँगा तो मुझे कृतघ्नता-रूपी दोष लगेगा, अतएव मैं दम्भ करके सब बतला रहा हूँ। हे श्रोताओं! आप रोष मत करना अर्थात् इसके लिये मुझको क्षमा करना। मैंने आप सबके चरणों की धूलि की वन्दना की है, उसी के फलस्वरूप ही चैतन्य-लीला का वर्णन सम्भवपर हुआ है।

भागवत में वर्णित व्यास की रीति का अनुसरण कर संक्षेप में अन्त्यलीला के परिच्छेदों का वर्णन करते हुए पुनः आवृत्ति—

एबे अन्त्यलीलागणेर करि अनुवाद।
'अनुवाद' कैले पाइ लीलार 'आस्वाद'॥ १०२॥

१०२। प० अनु०—अब मैं अन्त्य-लीला में वर्णित लीलाओं का अनुवाद अर्थात् संक्षेप में पुनः उनका वर्णन करता हूँ, अनुवाद करने से लीलाओं का आस्वादन हो जायेगा।

प्रथम परिच्छेदे—रूपेर द्वितीय-मिलन।
तार मध्ये दुइ नाटकेर विधान-श्रवण॥ १०३॥

१०३। प० अनु०—अन्त्य-लीला के प्रथम परिच्छेद में श्रीरूप गोस्वामी के श्रीमन्महाप्रभु के साथ द्वितीय-मिलन का वर्णन हुआ है। उसी के अर्न्तगत श्रीरूप गोस्वामी द्वारा रचित विदग्ध-माधव तथा ललित-माधव नामक दो नाटकों के श्रवण का विधान हुआ है।

तार मध्ये शिवानन्द-सङ्गे कुक्कुर आइला।
प्रभु तारे कृष्ण कहाञा मुक्त करिला॥ १०४॥

१०४। प० अनु०—प्रथम परिच्छेद में ही वर्णित हुआ है कि श्रीशिवानन्द सेन के साथ एक कुकुर (कुत्ता) भी नीलाचल आया, श्रीमन्महाप्रभु ने उसके मुख से कृष्ण कहलाकर उसे मुक्त कर दिया।

द्वितीये—छोट-हरिदासे कराइला शिक्षण।
तार मध्ये शिवानन्देर आश्चर्य दर्शन॥ १०५॥

१०५। प० अनु०—द्वितीय परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा छोटे हरिदास को शिक्षा प्रदान की गयी। उसी में श्रीशिवानन्द सेन के [श्रीमन्महाप्रभु के मुख से नृसिंहानन्द के द्वारा उन्हें कराये गये भोजन के वृत्तान्त को सुनने के उपरान्त उनके] आश्चर्यचकित हो जाने का वर्णन है।

तृतीये—हरिदासेर महिमा प्रचण्ड।
दामोदर-पण्डित कैला प्रभुरे वाक्यदण्ड॥ १०६॥

१०६। प० अनु०—तृतीय परिच्छेद में श्रीहरिदास ठाकुर की प्रचण्ड महिमा का वर्णन हुआ है। उसी परिच्छेद में दामोदर पण्डित के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु को दिये गये वाक्य-दण्ड का भी वर्णन है।

प्रभु 'नाम' दिया कैला ब्रह्माण्ड-मोचन।
हरिदास करिला नामेर महिमा-स्थापन॥ १०७॥

१०७। प० अनु०—उसी परिच्छेद में श्रीहरिदास ठाकुर के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा 'नाम' प्रदान करके ब्रह्माण्ड के उद्धार तथा नाम की महिमा को स्थापित करने का प्रसङ्ग भी वर्णित हुआ है।

चतुर्थे—श्रीसनातनेर द्वितीय-मिलन।
देहत्याग हैते ताँर करिला रक्षण॥ १०८॥

१०८। प० अनु०—चतुर्थ परिच्छेद में श्रीसनातन गोस्वामी के श्रीमन्महाप्रभु के साथ द्वितीय-मिलन का तथा श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा श्रीसनातन की देह त्याग करने से रक्षा करने का वर्णन हुआ है।

ज्येष्ठ-मासेर धूपे प्रभु ताँरे कैला परीक्षण।
शक्ति सञ्चारिया पुनः पाठाइला वृन्दावन॥ १०९॥

१०९। प० अनु०—उसी परिच्छेद में वर्णित हुआ है कि ज्येष्ठ मास की तपती धूप में श्रीमन्महाप्रभु ने

श्रीसनातन गोस्वामी की परीक्षा ली तथा उनमें शक्ति सञ्चारित करके उन्हें पुनः वृन्दावन भेजा।

अनुभाष्य

१०९। पाठान्तर में, — ''ज्येष्ठमासे धूपे ताँरे।''

पञ्चमे—प्रद्युम्न-मिश्रे प्रभु कृपा करिला।
राय-द्वारा कृष्णकथा ताँरे शुनाइला॥ ११० ॥

११०। प० अनु०—पञ्चम परिच्छेद में वर्णित हुआ है कि श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीप्रद्युम्न मिश्र पर कृपा करके उन्हें श्रीरामानन्द राय से कृष्णकथा का श्रवण कराया।

तार मध्ये 'बाङ्गाल'-कविर नाटक-उपेक्षण।
स्वरूप-गोसाञि कैला विग्रहेर महिमा-स्थापन॥

१११। प० अनु०—उसी परिच्छेद में श्रीस्वरूप दामोदर के द्वारा बङ्गाल के कवि के द्वारा रचित नाटक की उपेक्षा तथा विग्रह की महिमा को स्थापित करने का प्रसङ्ग वर्णित हुआ है।

षष्ठे—रघुनाथ-दास प्रभुरे मिलिला।
नित्यानन्द-आज्ञाय चिड़ा-महोत्सव कैला॥ ११२ ॥
दामोदर-स्वरूप-ठाञि ताँरे समर्पिल।
'गोवर्धन-शिला','गुञ्जामाला' ताँरे दिल॥ ११३ ॥

११२-११३। प० अनु०—षष्ठ परिच्छेद में श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के श्रीमन्महाप्रभु से मिलन, बाद में उनके द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभु की आज्ञा से किये गये दही-चिड़ा महोत्सव, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी के पुरी में श्रीमन्महाप्रभु के पास आने पर महाप्रभु के द्वारा उन्हें श्रीस्वरूप दामोदर के निकट समर्पित करने तथा उन्हें गोवर्धन शिला एवं गुञ्जामाला प्रदान करने का वर्णन हुआ है।

सप्तम-परिच्छेदे—वल्लभ-भट्टेर मिलन।
नाना-मते कैला ताँर गर्व-खण्डन॥ ११४ ॥

११४। प० अनु०—सप्तम परिच्छेद में वल्लभ भट्ट के श्रीमन्महाप्रभु के साथ मिलन तथा श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा अनेक प्रकार से उनके गर्व (अभिमान) के खण्डन का वर्णन हुआ है।

अष्टमे—रामचन्द्र-पुरीर आगमन।
ताँर भये कैला प्रभु भिक्षा-सङ्कोचन॥ ११५ ॥

११५। प० अनु०—अष्टम परिच्छेद में रामचन्द्र पुरी के जगन्नाथ पुरी आने तथा उनके भय से श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा भोजन को कम करने का प्रसङ्ग वर्णित हुआ है।

नवमे—गोपीनाथ पट्टनायक-मोचन।
त्रिजगतेर लोक प्रभुर पाइल दरशन॥ ११६ ॥

११६। प० अनु०—नवम परिच्छेद में गोपीनाथ पट्टनायक के मोचन तथा त्रिजगत् के लोगों के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन प्राप्त करने का प्रसङ्ग वर्णित हुआ है।

दशमे—कहिलुँ भक्तदत्त-आस्वादन।
राघव-पण्डितेर ताँहा झालिर-साजन॥ ११७ ॥
तार मध्ये गोविन्देर कैला परीक्षण।
तार मध्ये परिमुण्डा-नृत्येर वर्णन॥ ११८ ॥

११७-११८। प० अनु०—दशम परिच्छेद में मैंने श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा भक्तों के द्वारा प्रदान की गयी वस्तुओं के आस्वादन का वर्णन तथा श्रीराघव पण्डित की झालि की विस्तृत व्याख्या की है। उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा गोविन्द की परीक्षा तथा उनके द्वारा किये गये परिमुण्डा-नृत्य का वर्णन हुआ है।

एकादशे—हरिदास-ठाकुरेर निर्याण।
भक्त-वात्सल्य जाँहा देखाइला गौर-भगवान्॥११९॥

११९। प० अनु०—एकादश परिच्छेद में श्रीहरिदास ठाकुर के निर्याण का वर्णन हुआ है जिसमें श्रीगौर भगवान् ने अपने भक्त-वात्सल्य का दर्शन कराया।

द्वादशे—जगदानन्देर तैल-भञ्जन।
नित्यानन्द कैला शिवानन्देरे ताड़न॥ १२० ॥

१२०। प० अनु०—द्वादश परिच्छेद में श्रीजगदानन्द पण्डित के द्वारा तेल की मटकी को फोड़ने तथा श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा श्रीशिवानन्द सेन के ताड़न का प्रसङ्ग वर्णित हुआ है।

त्रयोदशे—जगदानन्द मथुरा जाइ' आइला।
महाप्रभु-देवदासीर गीत शुनिला॥ १२१ ॥
रघुनाथ-भट्टाचार्येर ताँहाइ मिलन।
प्रभु ताँरे कृपा करि' पाठाइला वृन्दावन॥ १२२ ॥

१२१-१२२। प० अनु०—त्रयोदश परिच्छेद में श्रीजगदानन्द पण्डित के मथुरा में जाकर आने तथा श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा देवदासी के गीत को सुनने का वर्णन आया है। उसी परिच्छेद में श्रीरघुनाथ भट्टाचार्य (भट्ट) के श्रीमन्महाप्रभु से मिलन का प्रसङ्ग तथा श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा कृपा करके उन्हें वृन्दावन भेजने का वर्णन हुआ है।

चतुर्दशे—दिव्योन्माद-आरम्भ वर्णन।
'शरीर' एथा प्रभुर, 'मन' गेला वृन्दावन॥ १२३ ॥
तार मध्ये प्रभुर सिंहद्वारे पतन।
अस्थि-सन्धि-त्याग, अनुभावेर उद्‌गम॥ १२४ ॥
चटक-पर्वत देखि' प्रभुर धावन।
तार मध्ये प्रभुर किछु प्रलाप-वर्णन॥ १२५ ॥

१२३-१२५। प० अनु०—चतुर्दश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु में दिव्योन्माद के आरम्भ का वर्णन हुआ है, जिसमें उनका शरीर तो जगन्नाथपुरी में था किन्तु उनका मन वृन्दावन चला गया। उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु का सिंहद्वार पर पड़े मिलना, उनकी अस्थियों के द्वारा जोड़ों के त्याग तथा अनुभाव के उदित होने का प्रसङ्ग वर्णित हुआ है। उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा चटक पर्वत को देखकर दौड़ना तथा उनके द्वारा किये गये कुछ प्रलाप का वर्णन हुआा है।

पञ्चदश-परिच्छेदे—उद्यान-विलासे।
वृन्दावन भ्रमे जाँहा करिला प्रवेशे॥ १२६ ॥
तार मध्ये प्रभुर पञ्चेन्द्रिय-आकर्षण।
तार मध्ये करिला रासे कृष्ण-अन्वेषण॥ १२७ ॥

१२६-१२७। प० अनु०—पञ्चदश परिच्छेद में उद्यान-विलास का वर्णन है, जिसमें श्रीमन्महाप्रभु वृन्दावन के भ्रम से प्रवेश कर गये थे। उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु की पाँचों इन्द्रियों का श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षण तथा उसी में उनके द्वारा रासलीला में श्रीकृष्ण को ढूँढ़ने का प्रयास वर्णित हुआ है।

षोड़शे—कालिदासे प्रभु कृपा करिला।
वैष्णवोच्छिष्ट खाइबार फल देखाइला॥ १२८ ॥

१२८। प० अनु०—षोड़श परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा श्रीकालिदास पर कृपा करके वैष्णव के उच्छिष्ट खाने के फल को प्रदर्शित करने का वर्णन आया है।

शिवानन्देर बालके श्लोक कराइला।
सिंहद्वारेर द्वारी प्रभुरे कृष्ण देखाइला॥ १२९ ॥
महाप्रसादेर ताँहा महिमा वर्णिला।
कृष्णाधरामृतेर फल-श्लोक आस्वादिला॥ १३०॥

१२९-१३०। प० अनु०—उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीशिवानन्द सेन के पुत्र के द्वारा श्लोक की रचना करवाने एवं सिंहद्वार के द्वारपाल के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु को कृष्ण के दिखलाने के प्रसङ्ग का वर्णन हुआ है। उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा महाप्रसाद की महिमा एवं कृष्ण के अधरामृत के फल रूपी श्लोक के आस्वादन का वर्णन हुआ है।

सप्तदशे—गाभी-मध्ये प्रभुर पतन।
कूर्माकार-अनुभावेर ताँहाइ उद्‌गम॥ १३१ ॥
कृष्णेर शब्द-गुणे प्रभुर मन आकर्षिला।
''कास्त्यङ्ग ते'' श्लोकेर अर्थ आवेशे करिला॥१३२॥

भाव-शाबल्ये पुनः कैला प्रलापन।
कर्णामृत-श्लोकेर अर्थ कैला विवरण॥ १३३ ॥

१३१-१३३। प० अनु०—सप्तदश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के गैयाओं के बीच में पड़े मिलने तथा कूर्माकार-अनुभाव के वहीं पर प्रकाशित होने के प्रसङ्ग का वर्णन हुआ है। उसी परिच्छेद में कृष्ण के शब्द-गुण के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु के मन को आकर्षित करने पर श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा आवेश में 'कास्त्यङ्ग ते' श्लोक के किये गये अर्थ का वर्णन तथा उनके द्वारा भाव-शाबल्य में पुनः प्रलाप करने एवं कर्णामृत के श्लोक के अर्थ का विवरण प्रदत्त हुआ है।

अष्टादश-परिच्छेदे—समुद्रे पतन।
कृष्ण-गोपी-जलकेलि ताँहा दरशन॥ १३४ ॥

१३४। प० अनु०—अष्टादश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के समुद्र में जा गिरने तथा कृष्ण एवं गोपियों के द्वारा की जाने वाली जलकेलि के दर्शन का वर्णन हुआ है।

ताँहाइ देखिला कृष्णेर वन्य-भोजन।
जालिया उठाइला, प्रभु आइला स्व-भवन॥ १३५॥

१३५। प० अनु०—उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा श्रीकृष्ण के द्वारा किये जाने वाले वन्य-भोजन का दर्शन तथा मछुवारे के द्वारा श्रीमन्महाप्रभु को समुद्र से निकालने एवं महाप्रभु के अपने वास-स्थान पर आने का प्रसङ्ग वर्णित हुआ है।

उनविंशे—भित्ये प्रभुर मुखसंघर्षण।
कृष्णेर विरह-स्फूर्त्ति-प्रलाप-वर्णन॥ १३६ ॥

१३६। प० अनु०—उनविंश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा दीवारों पर अपने मुख का संघर्षण तथा कृष्ण के विरह में हुयी उनकी स्फूर्त्ति एवं प्रलाप का वर्णन आया है।

बसन्त-रजनीते पुष्पोद्याने विहरण।
कृष्णेर सौरभ्य-श्लोकेर अर्थ-विवरण॥ १३७ ॥

१३७। प० अनु०—उसी परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा बसन्त की रात्रि में पुष्पोद्यान में विहार करना तथा कृष्ण के अङ्गों की सुगन्ध का वर्णन करने वाले श्लोक के अर्थ को प्रकाशित करने का प्रसङ्ग वर्णित हुआ है।

विंशति-परिच्छेदे—निज 'शिक्षाष्टक' पड़िया।
तार अर्थ आस्वादिला प्रेमाविष्ट हञा॥ १३८ ॥

१३८। प० अनु०—विंश परिच्छेद में श्रीमन्महाप्रभु द्वारा स्वरचित शिक्षाष्टक के श्लोक का पाठ तथा प्रेमाविष्ट होकर उसके अर्थों का आस्वादन करना वर्णित हुआ है।

भक्ते शिखाइते जेइ शिक्षाष्टक कहिला।
सेइ श्लोकाष्टकेर अर्थ पुनः आस्वादिला॥ १३९॥

१३९। प० अनु०—भक्तों को सिखाने के लिये श्रीमन्महाप्रभु के द्वारा शिक्षाष्टक के श्लोकों को सुनाने तथा उसके द्वारा पुनः स्वयं उनके आस्वादन का प्रसंग वर्णित हुआ है ।

अनुवाद, पुनःचर्चा अथवा पुनरावृत्ति के फलस्वरूप लीला के स्मरण का उदय—

मुख्य-मुख्य लीलार अर्थ करिलुँ कथन।
'अनुवाद' हैते स्मरे ग्रन्थ-विवरण॥ १४० ॥

१४०। प० अनु०—मैंने उपरोक्त पयारों में विभिन्न परिच्छेदों में वर्णित मुख्य-मुख्य लीलाओं के अर्थ को प्रकाशित किया है। अनुवाद अर्थात् संक्षेप में किये गये वर्णन से भी ग्रन्थ के विवरण का स्मरण होता है।

बहुलता के भय से प्रधान-प्रधान घटना मात्र वर्णित—

एक एक परिच्छेदेर कथा — अनेक प्रकार।
मुख्य-मुख्य कहिलुँ, कथा ना जाय विस्तार॥१४१॥

१४१। प० अनु०—यद्यपि एक-एक परिच्छेद में ही अनेक प्रकार की लीलाएँ वर्णित हुयी हैं, तथापि मैंने उपरोक्त वर्णन में मुख्य-मुख्य कथाओं के विषय में ही बतलाया है, यहाँ पर विस्तार से उसका वर्णन सम्भवपर नहीं है।

ग्रन्थकार के अपने उपास्य-विग्रह सम्बन्ध-अभिधेय-प्रयोजन के अधिदेव गौड़ीयेश्वर श्रीराधा-मदनमोहन-गोविन्द-गोपीनाथ—

श्रीराधा-सह 'श्रीमदनमोहन'।
श्रीराधा-सह 'श्रीगोविन्द'-चरण॥ १४२ ॥
श्रीराधा-सह श्रील 'श्रीगोपीनाथ'।
एइ तिन ठाकुर हय 'गौड़ीयार नाथ'॥ १४३ ॥

१४२-१४३। प० अनु०—श्रीराधा के साथ श्रीमदनमोहन, श्रीराधा के साथ श्रीगोविन्द, श्रीराधा के साथ श्रीगोपीनाथ— यह तीनों ठाकुर गौड़ीय भक्तों के नाथ हैं।

पञ्चतत्त्वात्मक गौर को प्रणाम—

श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीयुक्त नित्यानन्द।
श्रीअद्वैत-आचार्य, श्रीगौरभक्तवृन्द॥ १४४ ॥

रागमार्गीय ग्रन्थकार का गौरशक्तिस्वरूप गुरुवर्गों को प्रणाम—

श्रीस्वरूप, श्रीरूप, श्रीसनातन।
श्रीगुरु श्रीरघुनाथ, श्रीजीव-चरण॥ १४५ ॥

उनके नमस्कार से ही अभीष्ट सिद्धि—

निज-शिरे धरि' एइ सबार चरण।
जाहा हैते हय सब वाञ्छित-पूरण॥ १४६ ॥

१४४-१४६। प० अनु०—मैं श्रीकृष्णचैतन्य, श्रीयुक्त नित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगौरभक्तवृन्द, श्रीस्वरूप, श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीगुरु श्रीरघुनाथ तथा श्रीजीव गोस्वामी पाद—इन सबके श्रीचरणों को अपने सिर पर धारण करता हूँ, जिससे समस्त प्रकार की वाञ्छाँए पूर्ण हो जाती हैं।

चैतन्यमयी नित्यानन्द-कृपा के आनुगत्य में ही जिह्वा अथवा वचनों का चैतन्यलीला के कीर्त्तन का सामर्थ्य—

सबार चरण-कृपा—'गुरु उपाध्यायी'।
तार वाणी—शिष्या, तारे बहुत नाचाइ॥ १४७ ॥

१४७। प० अनु०—इन सभी के चरणों की कृपा ही गुरु-उपाधि से युक्त है तथा उनकी वाणी उस कृपा की शिष्या है, कृपा रूपी गुरु ने वाणी रूपी शिष्या को बहुत नचाया है।

अनुभाष्य

१४७। उपाध्यायी,—'उपेत्य अधीयते अस्मात्' ; ''एकदेशस्तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः। योऽध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते॥— (मनु.सं)उपाध्यायी— निकट जाकर, यहाँ से अध्ययन किया जाता है। मनुसंहिता-'जिन्होंने जीवनधारण के लिये वेद के एकदेश, पुनः वेदों के षट् अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष) अध्ययन करते हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं। कला विद्या-शिक्षक। पाठान्तर में—'मोर वाणी शिष्या'।

शिष्यार श्रम देखि' गुरु नाचान राखिला।
'कृपा' ना नाचाय, 'वाणी' बसिया रहिला॥ १४८॥

१४८। प० अनु०—शिष्या का श्रम देखकर अर्थात् उसे थके हुए जानकर गुरु ने शिष्या के नचाने को विश्राम दे दिया। कृपा के नहीं नचाने पर वाणी स्वयं ही शान्त होकर बैठ गयी है।

अनिपुणा वाणी आपने नाचिते ना जाने।
जत नाचाइला, नाचि' करिला विश्रामे॥ १४९ ॥

१४९। प० अनु०—अनिपुण वाणी स्वयं नाचना नहीं जानती, उसे उसके गुरु ने जितना नचाया, वह उतना नाच कर शान्त हो गयी।

श्रोताओं की वन्दना और कृपा-प्रार्थना—

सब श्रोतागणेर करि चरण-वन्दन।
जाँ-सबार चरण-कृपा—शुभेर कारण॥ १५० ॥

१५०। प० अनु०—मैं समस्त श्रोताओं के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, जिनके चरणों की कृपा शुभ (मङ्गल) का कारण है।

चैतन्यचरितामृत जेइ जन शुने।
ताँर चरण धुञा करों मुञि पाने॥ १५१ ॥

१५१। प० अनु०—जो भी व्यक्ति चैतन्यचरितामृत का श्रवण करता है, मैं उनके चरणों को धोकर उनके चरणामृत का पान करता हूँ।

श्रोतार पदरेणु करों मस्तक-भूषण।
तोमरा ए-अमृत पिले सफल हैल श्रम॥ १५२ ॥

१५२। प० अनु०— मैं श्रोताओं के चरणों की धूलि को अपने मस्तक का आभूषण बनाता हूँ, आप सभी ने इस चैतन्य चरित्र रूपी अमृत का पान किया, जिससे मेरा परिश्रम सफल हुआ।

श्रीरूप-रघुनाथ-पदे जार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥ १५३ ॥

१५३। प० अनु०—श्रीरूप तथा श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में ही जिनकी आशा है, वही कृष्णदास इस चैतन्यचरितामृत का वर्णन कर रहे हैं।

ग्रन्थकार की दैन्यपूर्ण उक्ति—

चरितममृतमेतच्छील चैतन्यविष्णोः
शुभदमशुभनाशि श्रद्धयास्वादयेद् यः।
तदमलपदपद्मे भृङ्गतामेत्य सोऽयं
रसयति रसमुच्चैः प्रेममाध्वीकपूरम्॥ १५४ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५४। जो श्रद्धापूर्वक भगवान् श्रीचैतन्यदेव के इस अमृत सदृश्य शुभ प्रदान करने वाले एवं अशुभ का नाश करने वाले चरित्र का आस्वादन करेगें, मैं लेखक उनके अमल (मलरहित) चरणकमलों का मधुकर (भँवरा) बनकर [उनके चरणकमलों में विराजमान] प्रेममाध्वीक (प्रेमरूपी मदिरा) से पूर्ण रस का अत्यधिक आस्वादन करूँगा।

अनुभाष्य

१५४। यः श्रद्धया श्रीलचैतन्यविष्णोः एतत् अशुभनाशि शुभदं चरितम् आस्वादयेत् सः अयं तदमल-पदपद्मे भृङ्गताम् एत्य (प्राप्य) प्रेममाध्वीकपूरं (प्रेम-मदिरापूर्ण) रसम् उच्चैः (अतिशयेन) रसयति (आस्वादयति)।

कृष्ण की प्रसन्नता के लिये श्रीचैतन्य के प्रति इस ग्रन्थ रूपी अमृत का अर्पण—

श्रीमन्मदनगोपाल-गोविन्ददेव-तुष्टये।
चैतन्यार्पितमस्त्वेतत् चैतन्यचरितामृतम्॥ १५५ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५५। श्रीमन्मदनगोपाल और श्रीगोविन्ददेव की प्रसन्नता हेतु, यह श्रीमच्चैतन्यचरितामृत ग्रन्थ श्रीकृष्णचैतन्य देव को समर्पित हो।

अनुभाष्य

१५५। श्रीमन्मदनगोपाल-श्रीगोविन्ददेव-तुष्टये एतत् चैतन्यचरितामृतं ग्रन्थं चैतन्यार्पितं (श्रीचैतन्ये समर्पितम्) अस्तु।

कृष्ण के चरणकमल ही अप्राकृत अनन्त रस के आधार—

परिमलवासितभुवनं
स्वरसोन्मादित-रसज्ञ-रोलम्बम्।
गिरिधरचरणाम्भोजं कः
खलु रसिकः समीहते हातुम्॥ १५६ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५६। कृष्ण के जो चरणकमल सुगन्ध के द्वारा त्रिभुवन को सुगन्धित करते हैं, अपने रस के रसज्ञ अर्थात् उस रस को जानने वाले भ्रमरों को उन्मादित करते हैं, उन्हें कौन-सा रसिक व्यक्ति परित्याग करने की चेष्टा करता है?

अनुभाष्य

१५६। कः रसिकः (रसज्ञः कृष्णभजनशीलः) परिमलवासितभुवनं (सुगन्धेन सुरभितं भुवनं येन तं) स्वरसोन्मादित-रसज्ञ-रोलम्बं (शृङ्गाररसोन्मादिताः रसिक भक्तरूप भ्रमराः यस्मिन् तत्) गिरिधरचरणाम्भोजं हातुं (परित्यक्तुं) समीहते (संचेष्टते)?

अपने अभीष्ट देव श्रीराधागोविन्द के प्रति प्रपत्ति (शरणागति)—

मत्प्राणसर्वस्वपदाब्जरेणो-
र्मदीश्वरी-श्रीयुतराधिकायाः।
प्राणोरुसर्वस्वपदाब्जरेणुं
श्री श्रील-गोविन्दमहं प्रपद्ये॥ १५७ ॥

अमृतप्रवाह भाष्य

१५७। अपने प्राण-सर्वस्व* के चरणकमलों की रेणु के बल से मैं मदीश्वरी श्रीराधिका के प्राण-सर्वस्व श्रीश्रीगोविन्ददेव की चरण-रेणु का ध्यान करते हुए उनके शरणागत होता हूँ।

ग्रन्थ समाप्ति के काल का निर्देश—

शाके सिन्ध्वग्निवाणेन्दौ ज्यैष्ठे वृन्दावनान्तरे।
सूर्याहेऽसितपञ्चम्यां ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः॥ १५८॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृते अन्त्यखण्डे शिक्षा-श्लोकार्थास्वादनं नाम विंशः परिच्छेदः।

इति अन्त्यलीला समाप्ता।

अमृतप्रवाह भाष्य

१५८। १५३७ शकाब्द के ज्येष्ठ मास की कृष्ण-पञ्चमी तिथि रविवार को श्रीवृन्दावन में यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ।

विपिनविहारी हरि, ताँर शक्ति अवतरि',
विपिनविहारी प्रभुवर।
श्रीगुरुगोस्वामि-रूपे, देखि' मोरे भवकूपे,
उद्धारिल आपन-किङ्कर॥

[विपिन-विहारी अर्थात् वन में विहार करने वाले श्रीहरि की शक्ति मेरे प्रभुवर श्रीविपिन-विहारी के रुप में अवतरित हुयी। विपिन-विहारी श्रीहरि ने मेरे श्रीगुरुदेव श्रीविपिन-विहारी गोस्वामी के रूप में मुझे भवकूप में पड़ा देखकर मुझे अपना किङ्कर जानकर मेरा उद्धार किया।]

तदाज्ञा-पालनकामे, 'अमृतप्रवाह'-नामे,
चैतन्यचरितामृत-अर्थ।
रचिलाम सयतने, अर्पिलाम भक्तगणे,
पाठ करि' घुचाओ अनर्थ॥

[उन्हीं अपने गुरुदेव श्रीविपिन-विहारी गोस्वामी की आज्ञा का पालन करने की कामना से मैंने अमृतप्रवाह के नाम से श्रीचैतन्यचरितामृत के अर्थ की अत्यधिक प्रयत्न पूर्वक रचना करके उसे भक्तों को अर्पित किया है। हे भक्तों! आप उसका पाठ करके अपने अनर्थों को दूर करो।]

जे-सब आत्मज मम, करियाछे परिश्रम,
एइ ग्रन्थ प्रस्तुत-कारणे।
निर्विघ्न-जीवने सबे, साधुसङ्ग-महोत्सवे,
करुक भक्ति श्रीहरिचरणे॥

[मेरे जिन सब आत्मजों (पुत्रों) ने इस श्रीचैतन्यचरितामृत नामक ग्रन्थ को प्रस्तुत करने में परिश्रम किया है, (मेरा उनके लिये आशीर्वाद है कि) वे सभी बिना किसी विघ्न के अपना सम्पूर्ण जीवन साधुसङ्ग महोत्सव में श्रीहरि के चरणों की भक्ति करें।]

वैष्णव-चरणे धरि', सदैन्य प्रार्थना करि,
ए दासेर जीवनावशेषे।
श्रीगोद्रुमे साधुसङ्गे, चिदानन्द-रसरङ्गे,
जाय दिन कृष्णनामावेशे॥

[मैं वैष्णवों के चरणों को धारण करके अत्यधिक दीनता-पूर्वक उनसे प्रार्थना करता हूँ कि इस दास के जीवन के अन्तिम दिन श्रीगोद्रुम में साधु-सङ्ग रूपी चिदानन्दहमय रस के महोत्सव में कृष्णनाम के आवेश में व्यतीत हो।]

*श्रीरूप-रघुनाथ

ए संसार—सारहीन, एते मजे अर्वाचीन,
इहाते विरक्त महाशय।
साधुसङ्गे कृष्णे भजे, राधाकृष्णे सेवे व्रजे,
निरन्तर कृष्णनामाश्रय॥

[यह संसर सारहीन है। इसमें निर्बोध व्यक्ति ही निमज्जित होता है। इस संसार से विरक्त महान् आशय से युक्त व्यक्ति इस साधक देह में साधुसङ्ग में रहकर निरन्तर कृष्णनाम के आश्रय में भजन करता है तथा अपनी अन्तिश्चित देह से व्रज में राधा- कृष्ण की सेवा करता है।]

गौर चारिशत-दशे, मेष-शुक्ल-एकादशे,
श्रीसुरभिकुञ्ज-वनान्तरे।
सम्पूर्ण हइल भाष्य, इहाते पुरिल दास्य,
दोष-क्षमा मागि' अतः परे॥

[चार सौ दस गौराब्द में मेष-शुक्ल एकादशी के दिन श्रीसुरभिकुञ्ज वन के अन्तर्गत अमृतप्रवाह भाष्य सम्पूर्ण हुआ। इस से ही मेर दास्य पूर्ण हुआ। अन्त में मैं सभी से इस अमृतप्रवाह भाष्य के अन्तर्गत अपने द्वारा हुयी किसी दोष-त्रुटि के लिये क्षमा माँगता हूँ।]

श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ का अमृतप्रवाह भाष्य समाप्त।

अनुभाष्य

१५८। अयं (श्रीचैतन्यचरितामृताख्यः) ग्रन्थः वृन्दावनान्तरे ज्यैष्ठे असितपञ्चम्यां (कृष्णपञ्चम्यां) सूर्याहे (रवौ) सिन्ध्वग्निवाणेन्दौ ('अङ्कस्य वामा गतिः' इति न्यायेन, १५३७ शकावनीपतेरतीताब्दे) पूर्णतां गतः।

१५६ से १५८ तक के श्लोक अनेक प्रकाशनों में दिखायी नहीं देते।

चारिशत उनत्रिंशे, ज्येष्ठे दिन एकत्रिंशे,
चैतन्याब्दे, मास—त्रिविक्रम।
श्रीव्रजपतने थाकि', 'गौरहरि' बलि' डाकि,
दयितदासिया नराधम॥१॥
नवद्वीप-मायापुरे, प्रभुगृहे-नातिदूरे,
अनुभाष्य कैल समापन।
श्रीगौरकिशोर-दास, सम्प्रति कुलिया वास,
जाँर भृत्य—एइ अभाजन॥२॥

[चार सौ उन्नतीस चैतन्याब्द त्रिविक्रम मास में ज्येष्ठ मास के इक्कतीसवें दिन, श्रीनवद्वीप मण्डल के अन्तर्गत स्थित मायापुर धाम में श्रीशचीनन्दन गौरहरि के जन्मस्थान के निकट स्थित स्थान श्रीव्रजपतन (अर्थात् वर्तमान समय के मूलमठ श्रीचैतन्य मठ) में रहकर 'गौरहरि' बोलते हुए इस समय कुलिया (कोलद्वीप, अर्थात् श्रीनवद्वीप शहर) में वास कर रहे श्रीगौरकिशोर दास बाबा जी महाराज के अभाजन भृत्य इस दयितदास नामक नराधम ने श्रीचैतन्यचरितामृतके 'अनुभाष्य' को लिखना समाप्त किया है अर्थात् अनुभाष्य सम्पूर्ण किया है।]

आजि एइ सुख-दिने, भकतिविनोद बिने,
सुखवार्त्ता जानाब काहारे?
'अनुभाष्य' शुनि' जेइ, परम प्रफुल्ल हइ'
उरुकृपा वितरिल मोरे॥३॥

[आज इस परम सुख के दिन में श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के प्रकट रूप में विद्यमान नहीं रहने के कारण मैं इस सुखवार्त्ता को किस को कहूँ? 'अनुभाष्य' (के कुछेक अंशों) को सुनकर वे अत्यधिक आनन्दित हुए थे और मुझपर महती कृपाका वितरण किया था।]

ताँहार करुणा-कथा, माधव-भजन-प्रथा,
तुलना नाहिक त्रिभुवने।
ताँर सम अन्य केह, धरिया ए नरदेह,
नाहि दिल कृष्णप्रेमधने॥४॥

[उनकी करुणा की बात तथा उनके माधव-भजन की प्रथा की इन तीनों लोकों में तुलना नहीं है। उनके समान अन्य किसी ने भी इस मनुष्य देह को धारणकर श्रीकृष्णप्रेम रूपी धन का वितरण नहीं किया है।]

सेइ प्रभु-शक्ति-पाइ', एबे 'अनुभाष्य' गाइ,
इहाते आमार किछु नाइ।
जावत् जीवन रबे, तावत् स्मरिब भवे,
नित्यकाल सेइ पद चाइ॥५॥

[उन प्रभु की शक्ति को प्राप्तकर ही मैंने इस समय 'अनुभाष्य' का कीर्त्तन किया है, इसमें मेरा कुछ भी कर्त्तृत्व नहीं है। जब तक जीवन रहेगा, तब तक मैं भाव में विभोर होकर उनका स्मरण करूँगा। (इस जीवन के उपरान्त भी जन्म-जन्मान्तर तक) नित्यकाल के लिए मैं उन श्रीचरणकमलों को चाहता हूँ।]

गदाधर-मित्रवर, श्रीस्वरूप-दामोदर,
सदा काल गौर-कृष्ण यजे।
जगतेर देखि' क्लेश, धरिया भिक्षुक-वेश,
अहरहः कृष्णनाम भजे॥६॥

[श्रीगदाधर पण्डित के मित्रवर श्रीस्वरूप दामोदर जो सदैव श्रीगौर-कृष्ण का यजन करते हैं, वे जगत् के क्लेश को देखकर भिक्षुक के वेश को धारण करके दिन-रात कृष्णनाम का भजन करते हैं।]

श्रीगौर इच्छाय दुइ, महिमा कि कब मुइ,
अप्राकृत-पारिषद-कथा।
प्रकट हइया सेवे, कृष्ण-गौराभिन्न-देवे,
अप्रकाश्य कथा यथा तथा॥७॥

[श्रीगदाधर पण्डित और श्रीस्वरूप दामोदर- इन दोनों अप्राकृत-पार्षदों की महिमा का मैं क्या वर्णन करूँ? ये दोनों इस जगत् में प्रकटित होकर श्रीकृष्ण से अभिन्न भगवान् श्रीगौरहरि के अप्राकश्य तथ्यों को यत्र-तत्र-सर्वत्र प्रकाशित कर रहे हैं।]

श्रीगौराङ्ग-निजजन, भकतिविनोद-गण,
अप्राकृत-भावे जाँर स्थिति।
'अनुभाष्य' सयतने, पाठ कर भक्त-सने,
लाभ कर युगल-पीरिति॥८॥

[श्रीगौराङ्ग महाप्रभु के निजजन श्रीभक्तिविनोद ठाकुर के गणों की अप्राकृत-भाव में स्थिति है। हे पाठको! श्रीचैतन्यचरितामृत के अनुभाष्य का भक्तों के सङ्ग में पाठ करके श्रीश्रीराधा-कृष्ण युगल की प्रीति (प्रसन्नता) प्राप्त करो।]

श्रीचैतन्यचरितामृत-ग्रन्थ का अनुभाष्य समाप्त।

❋❋❋